लखनऊ विश्वविद्यालय

बी. ए.

हिन्दी

दिग्दर्शन

(गाइड)

लखनऊ विश्वविद्यालय

बी० ए० हिन्दी गाइड

द्वितीय वर्ष

(पाठ्यक्रम में स्वीकृत दोनों प्रश्न-पत्रों का सम्पूर्ण अध्ययन
आधुनिक काव्य की सम्पूर्ण व्याख्या)

1981

लेखक

श्री राकेश, एम० ए०

प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

प्रकाशन केन्द्र
रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ-226007
(Phone : 31858)

लखनऊ विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम

बी० ए० द्वितीय वर्ष

प्रथम प्रश्न पत्र [आधुनिक हिन्दी-काव्य]

आधुनिक हिन्दी कविता, वाद एवं प्रवृत्तियाँ : (१) मैथिलीशरण गुप्त, (२) जयशंकर प्रसाद, (३) सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, (४) सुमित्रानन्दन पन्त, (५) महादेवी वर्मा, (६) रामधारी सिंह दिनकर, (७) स० ही० वात्सायन अज्ञेय, (८) गजानन माधव मुक्तिबोध, (९) बंशीधर शुक्ल।

द्वितीय प्रश्न-पत्र [हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास हिन्दी-भाषा और व्याकरण एवं निबन्ध]

(क) इतिहास-काल-विभाजन और प्रत्येक काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं काव्य-धाराओं का अध्ययन।

(ख) हिन्दी-भाषा और व्याकरण : (१) हिन्दी का उद्भव और विकास, (२) हिन्दी के प्रचलित विविध रुप, (३) हिन्दी की बोलियां, (४) हिन्दी शब्द समूह, (५) हिन्दी-ध्वनियाँ, (६) प्रत्यय और उपसंग, (७) ध्वनि-परिवर्तन, (८) सर्वनाम, (९) विश्लेषण, (१०) समास, (११) क्रियापद, काल-रचना (१२) अव्यय, (१३) संधि-व्यवस्था, (१४) देवनागरी लिपि—विकास, त्रुटियाँ, सुधार, (१५) नागरी अंक।

(ग) निबन्ध।

● प्रकाशक : **प्रकाशन केन्द्र,**
रेलवे क्रासिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ-226007

● सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीन

● मूल्य : पच्चीस रुपये पचास पैसे (Rs. 25·50) मात्र

● मुद्रक : महेश प्रेस, आगरा।

B. A. (Part II) Examination (HINDI)

संभावित प्रश्न-पत्र

(Adhunik Kavya)

FIRST PAPER

Time Allowed—Three Hours] [Maximum Marks—50

नोट :—प्रथम प्रश्न अनिवार्य है ।

शेष प्रश्नों में से किन्हीं चार के उत्तर दीजिए ।

1. निम्नलिखित अवतरणों में से किन्हीं तीन की प्रसंग-निर्देश पूर्वक व्याख्या कीजिए :—

(क) "मुझे फूल मत मारो" (मैथिलीशरण गुप्त)

(ख) "जो घनीभूत ……… डेरा डाला" (प्रसाद)

(ग) किसलय बसना नव वय लतिका ………की माया (निराला)

(घ) लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर

…. …. ……….. ……. ………..

अखिल विश्व ही विवर वक्रकुण्डल दिङ्मण्डल ! (पन्त)

(च) चरणों से चिह्नित अलिन्द की भूमि सुनहली,

……………. .. ……….. ……. ….

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।। (महादेवी)

(छ) मन का होगा आधिपत्य जिस दिन मनुष्य के तन पर ।

………. …. …. …. …. ….. ….

उस दिन होगा शंख ध्वनित मानव की महाविजय का । (दिनकर)

(ज) "नदी तुम ……… तुम देना ।" (अज्ञेय)

(झ) वह ज्योति अपनी……… पहुँचा सकूँ । (मुक्तिबोध)

(ट) जहँ गाइन का………राम मड़ैया ।। (वंशीधर शुक्ल)

2. गुप्तजी की वैष्णव भक्ति-भावना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए । 8

3. "प्रसाद जी का काव्य अधिकांशतः माधुर्य-मण्डित हैं" सोदाहरण विवेचना कीजिए । 8

4. अज्ञेय की 'ब्रह्मराक्षस' कविता की समीक्षा कीजिए ।

5. "पन्तजी प्रकृति के अनन्य कवि हैं"—सिद्ध कीजिए । 8

6. महादेवी की काव्य-कला का संक्षेप में आकलन कीजिए । 8

7. दिनकर की राष्ट्रीय भावना को स्पष्ट कीजिए । 8

8. "अज्ञेय ने हिन्दी कविता को नया चिन्तन और नया शिल्प प्रदान किया है"—आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ? 8

9. "मुक्तिबोध प्रधानतः भयानकता और विचार-वेदना के कवि हैं"—इस कथन की मीमांसा कीजिए । 8

10. 'वंशीधर जी ग्रामीण-व्यवस्था के श्रेष्ठ कवि हैं—पठित कविताओं के आधार पर स्पष्ट कीजिए । 8

11. एक क्रान्तिकारी कवि-रूप में निराला अथवा दिनकर के काव्य का संक्षेप में तुलनात्मक मूल्याकन कीजिए । 8

12. मैथिलीशरण गुप्त अथवा जयशंकर 'प्रसाद' का संक्षिप्त जीवन-परिचय दीजिए । 8

13. निम्नलिखित में से किसी एक पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए— 8

(क) प्रसाद का गीति-काव्य, (ख) छायावादी कवि-चतुष्टय, (ग) आँसू ।

SECOND PAPER

(Hindi Sahitya Ka Itihas, Vyakaron Tatha Nibandh)

Time Allowed—Three Hours] [Maximum Marks – 50

नोट—प्रथम प्रश्न अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त 'क' खण्ड से दो प्रश्नों तथा 'ख' खण्ड से एक प्रश्न का उत्तर दीजिए ।

1. निम्नलिखित विषयों में से किसी एक पर निबन्ध लिखिए— 15

(क) साहित्य और समाज, (ख) भारतीय समाज में अन्धविश्वास, (ग) भारत में गरीबी की समस्या, (घ) वन-संरक्षण—महत्व और उपयोगिता, (ङ) समाज में व्याप्त गुन्डागर्दी और कानून-व्यवस्था, (च) सातवाँ आम-चुनाव और भारतीय लोकतन्त्र ।

'क' खण्ड

2. भक्तिकालीन अथवा आधुनिक हिन्दी-काव्य की विशेषताओं की समीक्षा कीजिए । 10

3. निर्गुण सन्त-काव्य की सामान्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए । 10

4. रीतिकालीन स्वच्छन्तावादी काव्य-धारा पर प्रकाश डालिए । 10

5. 'नयी कबिता' से आप क्या समझते हैं ? हिन्दी की नयी कविता की कविताएँ बताइए । 10

6. हिन्दी एकांकी-साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए । 10

7. प्रेमीचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास-साहित्य का संक्षिप्त परिचय दीजिए । 10

'ख' खण्ड

8. व्याकरण किसे कहते हैं ? किसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके व्याकरण के अध्ययन की आवश्यकता और उपयोगिता किस सीमा तक है ? 15

9. हिन्दी के संज्ञा-पदों में रूप-परिवर्तन किन कारणों से होता है ? विभिन्न कारणों से संज्ञा-पदों में होने वाले रूप-परिवर्तन का सोदाहरण विवेचन कीजिए । 10

10. 'समास' से आप क्या समझते हैं ? समास के विभिन्न भेदों का उल्लेख करते हुए प्रत्येक समास का सोदाहरण परिचय दीजिए । 15

11. देवनागरी लिपि के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालिये । 15

अनुक्रमणिका

प्रथम प्रश्नपत्र

[आधुनिक हिन्दी-काव्य]

क्रम संख्या **पृष्ठ संख्या**

आधुनिक हिन्दी-कविता [वाद एवं प्रवृत्तियाँ]

१. आधुनिक काव्य-धारा का सक्षिप्त क्रमिक इतिहास इस प्रकार बतलाइये कि उसके मोड़ की समस्त प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जायें । १

२. ''हिन्दी-काव्य-धारा भारतेन्दु के नवजागरण के शंखनाद से प्रारम्भ हुई और द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता के कूलों को स्पर्श करती हुई भविष्य की मंगलमयी नव चेतना का सन्देश दे रही है ।'' इस कथन को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक हिन्दी-काव्य धारा का विकास बतलाइये । १

३. स्वतन्त्रता के पश्चात् वर्तमान हिन्दी-काव्य की विषय-वस्तु, कलापक्ष और नवीनता की दृष्टि से सम्यक् समीक्षा कीजिये । ५

४. साठोत्तर हिन्दी काव्य का इस प्रकार मूल्यांकन कीजिए कि स्वतन्त्रता के पहले हिन्दी-काव्य से उसकी समृद्धि और ह्रास का रूप भी स्पष्ट हो जाय । ५

छायावादी-काव्य

५. छायावादी काव्य और उसकी विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिये ? १४

प्रगतिवादी

६. प्रगतिवादी काव्य और उसकी विशेषताओं का परिचय दीजिए । १८

प्रयोगवाद

७. प्रयोगवादी काव्य और उसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिए । २०

नई कविता, नव गीत और आज की कविता

८. नई कविता, नवगीत और आज की कविता की विवेचना कीजिए । २१

पन्त

१. पन्त की प्रारम्भिक कृतियों से लेकर उनकी नवीनतम रचनाओं के नाम बताते हुए उनके वर्णन-विषयों पर प्रकाश डालिए ; २३

२. पंत की काव्य कला के क्रमिक विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए, तथा अपनी पाठ्य-पुस्तक के यथातथ्य उदाहरण भी प्रस्तुत कीजिए । २३

३. "पन्त जी का काव्य समय के साथ बदलता रहा है।" इस कथन को ध्यान में रखकर पन्त के काव्य-विकास पर विचार कीजिये। २३

४. पन्त के काव्य-विकास की विभिन्न स्थितियों की विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए। २३

५. छायावावी अथवा प्रगतिवादी पंत के काव्य की आलोचना कीजिए। ३६

६. "प्रकृति के सहज सौन्दर्य को स्थापित करने में पन्त जी आधुनिक कवियों में अप्रतिम हैं।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए। ३६

७. पन्त के प्रकृति-चित्रण का निरूपण कीजिए ;

अथवा

"पन्तजी प्रकृति के अनन्य कवि हैं।"—सिद्ध कीजिए। ३६

८. "पन्त जी की कविता में प्रकृति का बड़ा सम्मोहक एवं प्रभावशाली रूप चित्रित हुआ है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं ? ३६

९. "पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि है।" सोदाहरण इस मत को स्पष्ट कीजिये। ३६

१०. "पन्त जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं। इस कथन की समीक्षा कीजिए। ४३

११. पन्त के भावपक्ष की विवेचना करते हुए उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिये। ४३

१२. "पन्त जी सौन्दर्य के प्रमुख कवि हैं।" इस मत से आप कहाँ तक सहमत हैं ? सोदाहरण उत्तर दीजिये। ४३

१३. पन्त जी के भाव-सौन्दर्य का विश्लेषण समीचीन उद्धरणों सहित कीजिए और सिद्ध कीजिये कि वे सुकुमार भावनाओं और कोमल-कल्पना के कवि हैं। ४३

१४. "पन्त जी की रचनाओं में कल्पना की प्रधानता है और अनुभूति की कमी है, जिसके कारण उनकी कल्पना-प्रधान कवितायें वीरान हो गई हैं।" इस कथन से औचित्य पर अपनी पाठ्य-पुस्तक से उदाहरण देते हुए अपने विचार प्रकट कीजिये। ४३

१५. "जहाँ मेरी कल्पना ने मेरा साथ दिया है, वहाँ तक मैं भात्री मानवता के सत्य को सफलतापूर्वक वाणी दे सका हूँ और जहाँ मैं किसी कारण-वश अपनी कल्पना के केन्द्र से च्युत या विलग हो गया हूँ, वहाँ मेरी रचनाओं पर मेरे अध्ययन का प्रभाव अधिक हो उठा है और मैं केवल आंशिक सत्य को ही देख सका हूँ।" अपनी पाठ्य कविताओं के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिये। ४४

१६. "कल्पना ही पन्त जी की कविता का मेरुदण्ड है, उनकी काव्य-सृष्टि का मानदण्ड है। कोरी कल्पना की बाल-सुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यन्त तल्लीन और गहन कल्पना-अनुभूतियों के चित्रण में पन्त जी का विकास क्रम देखा जा सकता है।"—आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के उक्त कथन की सम्यक् समीक्षा कीजिए। ४४

१७. पन्त के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये। ५१

१८. पन्त के काव्य की विशेषताओं पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए सिद्ध कीजिये कि वे सम्पूर्णता के कवि हैं। ५१

१९. पन्त के भाषा-सौन्दर्य का विश्लेषण समीचीन उद्धरणों सहित कीजिये। ५३

२०. पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट कविताओं के आधार पर पन्त जी की नवीन उपमान-योजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, शब्द-संगति की कोमलता एवं चित्रोपम अभिव्यक्ति पर लेख लिखिये। ५३

२१. पन्त जी के काव्य की कलापक्ष की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिये। ५३

२२. पन्त जी की भाषा-शैली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिये। ५३

२३. "पन्त का काव्य छायावादी काव्य-शैली के प्रतिनिधि गुणों से युक्त है।"—सिद्ध कीजिये। ५६

२४. "पन्त जी ने उस खड़ी बोली को मधुरता, गेयता तथा कोमलता प्रदान की है, जिसका नामकरण उसकी इन विपरीत विशेषताओं के कारण ही हुआ था।" इस उक्ति को दृष्टि में रखते हुए पन्त जी के कलापक्ष पर एक निबन्ध लिखिये, जिसमें आवश्यकतानुसार उदाहरण भी दीजिये। ५६

२५. छायावादी कवि के रूप में सुमित्रानन्दन पन्त का महत्व निर्धारित कीजिये। ५६

२६. छायावादी कवियों में पन्त जी का स्थान निश्चित कीजिये। ५७

२७. क्या आप पन्त जी को छायावाद का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं ? पक्ष या विपक्ष में अपने मत की पुष्टि कीजिये। ५७

२८. छायावादी कविता की विशेषताओं की विवेचना करते हुए पन्त जी के महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख कीजिए। ५७

जयशंकर प्रसाद

१. भाव-पक्ष और कला-पक्ष को दृष्टि में रखते हुए प्रसाद जी के काव्य की विशेषताओं की सम्यक् विवेचना कीजिए। ६३

२. प्रसाद जी की काव्य-साधना और काव्य-सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए। ६३

३. ''प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख कवि हैं ।'' इस कथन की सम्यक् विवेचना कीजिये । ६९
४. प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति-चित्रण की विशेषताओं पर अपने विचार प्रकट कीजिए । ७०
५. प्रसाद जी के काव्य में राष्ट्रीय-भावना को स्पष्ट कीजिए ? ७२
६- प्रसाद जी के काव्य के विकास का क्रमिक विवेचन कीजिए । ७३
७. 'आँसू' की काव्यगत विशेषताएँ बतलाते हुए सिद्ध कीजिए कि 'प्रसाद जी' ने 'आँसूं' में वेदना के अन्तर्गत यौवन की मस्ती के मादक चित्र अंकित किए हैं । ७७
८. प्रसाद जी के काव्य में भाव-व्यंजना एवं मार्मिक अनुभूति पर विचार कीजिए ।
अथवा
''प्रसाद जी का काव्य अधिकाशतः माधुर्य मंडित है ।'' सोदाहरण विवेचना कीजिये । ७९

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

१. निराला जी की काव्यकला पर एक सार-गर्भित निबन्ध लिखिए । ८१
२. आपने निराला जी की रचनाएँ पढ़ी हैं, उनके आधार पर निराला जी के कवि-व्यक्तित्व के विकास का मूल्यांकन कीजिए । ८१
३. सिद्ध कीजिए कि निराला जी प्रगतिवाद के अग्रदूत हैं । ८४
४. भावपक्ष की दृष्टि से निरालाजी के काव्य-सौन्दर्य की समीक्षा कीजिए । ८६
५. छायावादी गीत-काव्य की विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए निराला जी के काव्य की विशेषताएँ बतलाइये । ८८
६. ''जीवन में जो कुछ सुन्दर और मंगलमय है, वह निराला जी का आराध्य रहा है ।'' महादेवी के इस कथन को दृष्टि में रखकर निराला जी के काव्य की समीक्षा कीजिए और साहित्य में उनका स्थान निश्चित कीजिए । ९०
७. निराला की रहस्य-भावना की विवेचना कीजिए । ९२
८. ''निराला के काव्य की मूल प्रेरक शक्ति उनकी आध्यात्मिक भावना रही है ।'' इस कथन को ध्यान में रखते हुए निराला जी रहस्य भावना का विवेचन कीजिए । ९२

मैथिलीशरण गुप्त

१. गुप्तजी के काव्य की शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से सोदाहरण समीक्षा कीजिए । १

२. भाव-पक्ष और कला-पक्ष (काव्य-कला) की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताएँ बतलाइये। ४

३. आधुनिक हिन्दी-काव्य में मैथिलीशरण गुप्त के योगदान पर प्रकाश डालते हुए उनका स्थान और महत्व निश्चित कीजिए ? ६

४. "गुप्तजी समन्वयकारी युग-प्रतिनिधि कवि हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए। ६

५. "गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं।" उपर्युक्त कथन की युक्तिपूर्ण विवेचना कीजिए। १०

६. "गुप्तजी में मानव-हृदय के रहस्यों में प्रवेश करते की अतुल क्षमता है।" डा० नगेन्द्र के इस कथन पर प्रकाश डालिए। १२

७. "गुप्तजी ने मानव-हृदय को स्पर्श करते वाले भावपूर्ण स्थलों का चित्रण करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।" इस कथन पर प्रकाश डालिए। १२

८. गुप्तजी के काव्य में भावानुभूति के प्रसार की समीक्षा कीजिए। १२

महादेवी वर्मा

१. महादेवी वर्मा के काव्य के छायावादी स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। १

२. "महादेवी वर्मा छायावाद की प्रतिनिधि कवियत्री है।"—इस कथन की समीक्षा करते हुए उनके काव्य के छायावादी स्वरूप को स्पष्ट कीजिए। १

३. "महादेवी वर्मा की रचनाओं में छायावाद का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप दिखाई देता है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? सप्रमाण उत्तर दीजिए। १

४. प्रमाणित कीजिए कि महादेवी वर्मा छायावाद की प्रतिनिधि कवियत्री हैं। १

५. "छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन।"— इस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए। १

६. महादेवी की काव्य-कला की समीक्षा कीजिए।

अथवा

महादेवी की काव्य-कला को संक्षेप में आंकलन कीजिए। १५

७. महादेवी वर्मा की कविताओं की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए। १५

८. "महादेवी की कविता मार्मिक और हृदयग्राही होने के साथ ही साथ कलात्मक भी है।"—इस कथन की विवेचना कीजिए। १५

९. "गीति-काव्य लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को मिली वैसी और किसी को नहीं"—इस मत की समीक्षा कीजिए। १५

१०. "साधारणतया गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"—गीत की इस परिभाषा के आधार पर महादेवी के गीत-काव्य का विवेचना कीजिए। १५

११. एक सफल गीतिकाव्य की दृष्टि से महादेवी वर्मा के काव्य की समीक्षा कीजिए। १५

१२. "काव्य वास्तव में मानव के सुख-दुखात्मक संवेवना की ऐसी कथा है, जो उसे सम्पूर्ण परिवष के साथ दूसरे की अनुभूति का विषय बना देती है,"—महादेवी के काव्य के सन्दर्भ में इस कथन की समीक्षा कोजिए। १६

१३. महादेवी के काव्य में प्राप्त वेदना के स्वरूप को उपयुक्त-उद्धरणों सहित स्पष्ट कीजिए। १६

१४t "महादेवी की वेदना हिन्दी-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट निधि है।" महादेवी वर्मा की वेदना के प्रेरक तत्वों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उक्त कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए। १९

१५. "महादेवी वर्मा का काव्य वेदना का, वेदना के बहुरूपों का काव्य है।" समीक्षा कीजिए। १९

१६. "प्रेम का जीवन पीड़ा का जीवन है।"—कथन को दृष्टि में रखते हुए महादेवी वर्मा के दुःखवाद का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए। १९

१७. "महादेवो करुणा की कवियत्री हैं।" —इस मत की पुष्टि कीजिए। २०

१८. सिद्ध कीजिए कि महादेवी ने दुःखवाद को अत्यन्त मधुर और कोमल शब्दों में व्यक्त किया है। २०

१९. "महादेवी के काव्य में वेदना भाव"—शीर्षक पर निबन्ध लिखिए। २०

२०. सोदाहरण स्पष्ट कोजिए कि, "महादेवी को वेदना-भाव विशेष प्रिय रहा है और उन्होंने, अपने काव्य में अवसरानुकूल विविध रूप में उसे अभिव्यक्ति प्रदान की है।" २०

दिनकर

१. 'दिनकर जी' का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए निम्न कथन की पुष्टि कीजिए। १

"कवि का व्यक्तित्व और जीवन की परिस्थितियाँ ही उसके काव्य का निर्माण करती हैं।" १

२. दिनकर जी के काव्य की विशेषतायें संक्षेप में बतलाइए। ५

३. विनकर जी की काव्य-भाषा की विशेषताओं पर सारगर्भित निबन्ध लिखिए। ८

४. "दिनकर जी की भाषा में चित्र-योजना ने अद्भुत सौन्दर्य और आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए। १२

५. अलंकार-योजना (अप्रस्तुत-विधान) की दृष्टि से दिनकर जी के काव्य की समीक्षा कीजिए। १६

६. दिनकर जी की छन्द-योजना का निरूपण कीजिए । १६

७. आधुनिक काव्य में राष्ट्रीय काव्यधारा की विवेचना करते हुए उसमें दिनकर का स्थान निश्चित कीजिए । २०

अथवा

८. दिनकर की राष्ट्रीय भावना को स्पष्ट कीजिए । २०

अज्ञेय

१. प्रयोगवादी नवीन काव्यधारा में अज्ञेय जी का स्थान और महत्व निश्चित कीजिए । १

२. अज्ञेय जी के काव्य का इस प्रकार परिचय दीजिए कि उसके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट हो जायं । २

३. प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए । ६

४. भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए । ८

५. भाषा में नवीनता की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए ।

अथवा

अज्ञेय ने हिन्दी कविता को नया चिन्तन और नया जीवन प्रदान किया ।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ? ११

६. "अज्ञेय जी ने प्रकृति के नूतन एवं पुरातन उपकरणों को लेकर बड़े सुन्दर और सजीव बिम्बों की योजना की है ।"—इस कथन की व्याख्या करते हुए अज्ञेय जी के काव्य में बिम्ब-विधान पर विचार कीजिए । १२

७. बिम्ब-योजना की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए । १२

८. अप्रस्तुतत-योजना (अलंकार-विधान) की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीखा कीजिए । १३

गजानन माधव मुक्तिबोध

१. मुक्तिबोध की कविताओं की सामान्य विशेषताएँ बताते हुए उनके काव्य का मूल्यांकन कीजिए । १

२. मुक्तिबोध के काव्य की विषयगत विशेषताओं का विवेचन कीजिए ।

अथवा

"मुक्तिबोध प्रधानतः भयानकता और विचार-वेदना के कवि हैं"—इस कथन की समीक्षा कीजिए । ३

३. `मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन कीजिए । ३

४. नयी कविता की विशेषताओं के आधार पर मुक्तिबोध के कविता-संसार का मूल्यांकन कीजिए । ५

५. नयी कविता में मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित कीजिए । ५

६. मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प का मूल्यांकन कीजिए । ६

७. नयी कविता के क्षेत्र में मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए । १२

८. नयी कविता की विशेषताएँ बताइये और उनके आधार या मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित कीजिए । १२

बंशीधर शुक्ल

१. बंशीधर शुक्ल के काव्य की विशेषताएँ बतलाइये । १

२. बंशीधर शुक्ल के काव्य की इस प्रकार विवेचना कीजिए कि उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष की समस्त विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँ । १

३. भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से बंशीधर शुक्ल के काव्य के काव्य-सौन्दर्य की परीक्षा कीजिए । १

४. प्रकृति-चित्रण की सफलता की दृष्टि से बंशीधर शुक्ल के काव्य की समीक्षा कीजिए । ७

५. "बंशीधर का काव्य प्रकृति की रमणीय स्थली है ।"—इन कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए । ७

६. "बंशीधर शुक्ल की रचनाओं में अवध के ग्रामीण अंचल की समस्त प्रकृति अपने सहज रूप में उपस्थित हुई है ।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए । ७

७. 'राम-मड़ैया' कविता के काव्य-सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए । १०

८. 'राजा की कोठी' शीर्षक कविता के काव्य-सौन्दर्य को स्पष्ट करते हुए इसमें निहित कवि के क्रान्ति के उद्घोष को स्पष्ट कीजिए । ११

९. 'हुवाँ कस कस होइ निरवाह' शीर्षक कविता में बंशीधर शुक्ल ने ग्राम और शहर की स्थिति पर दृष्टि डालते हुए जो निर्णय दिए हैं, उन पर विचार कीजिए । १३

१०. 'किसान की दुनियाँ' की कविता की समीक्षा करते हुए सिद्ध कीजिए कि यह कविता किसान की दुनियाँ का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है । १४

११. 'दाता चौमास' शीर्षक कविता के काव्य-सौन्दर्य की परीक्षा कीजिए । १५

१२. आप अपनी पाठ्य कविताओं के आधार पर सिद्ध कीजिए कि बंशीधर शुक्ल अवध की आंचलिक प्रकृति के सम्पूर्णता के कवि हैं । १५

१३. सिद्ध कीजिए कि शुक्ल जी अवध के ग्रामीण अंचल की प्रकृति तथा लोक-संस्कृति के कवि हैं । प्रकृति अपने सम्पूर्ण रूप में श्री बंशीधर शुक्ल के काव्य में उभरी है । १५

अथवा

"बंशीधर जी ग्रामीण-व्यवस्था के महाकवि हैं ।" पठित कविताओं के आधार पर स्पष्ट कीजिए । १५

व्याख्या-विश्लेषण

१. प्रसाद १
२. निराला २८
३. पन्त ४९
४. महादेवी ७१
५. दिनकर ४९
६. अज्ञेय ९७
७. मुक्तिबोध ११४
८. बंशीधर शुक्ल १२४
९. मैथिलीशरण गुप्त १४५

द्वितीय प्रश्नपत्र

हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास

१. हिन्दी के जन्म पर प्रकाश डालिये। १
२. हिन्दी के पूर्व की भाषाओं का विकास बतलाइये। २
३. हिन्दी-काव्य का प्रारम्भ समझाइये। ३
४. हिन्दी-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन कीजिए। ३
५. हिन्दी-भाषा के क्षेत्र और प्रमुख इतिहास लेखकों का उल्लेख कीजिए। ४
६. अपभ्रंश और सिद्ध-काव्य का उल्लेख कीजिए। ५
७. वीरगाथा (आदिकाल) काल का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी विशेषताएँ बतलाइये। ६
८. भक्तिकाल का संक्षिप्त परिचय दीजिए और उसकी विशेषतायें बतलाते हुए सिद्ध कीजिए कि वह हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-काल है। १०
९. रीतिकाल का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी विशेषतायें बतलाइये। २७
१०. भक्तिकाल और रीतिकाल की तुलना कीजिए। ३२
११. आधुनिक काल का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी विशेषतायें बतलाइये। ३३
१२. आधुनिक काल की नवीन धारा की विशेषतायें बतलाइये। ३९
१३. यथार्थवाद, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, हालावाद की विशेषतायें बतलाइये। ३९
१४. नई कविता, नवगीत और आज की कविता की विवेचना कीजिये। ४४
१५. नई कविता, प्रयोगवाद और अकविता का स्वरूप एवं अन्तर को स्पष्ट कीजिए। ४६

प्रमुख विधाएँ

१६. १. निबन्ध, २. उपन्यास, ३. कहानी, ४. एकांकी, ५. आलोचना, ६. नाटक, ७. रेखाचित्र। ४९-७२

हिन्दी-भाषा और व्याकरण

[मानक हिन्दी के सन्दर्भ में]

१ हिन्दी का उद्भव और विकास

१. हिन्दी-भाषा के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालिये । १

२. हिन्दी के प्रचलित विविध रूप

२. हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा स्पष्ट करते हुए, उसके प्रचलित विभिन्न रूपों का उल्लेख कीजिए । ६

३. हिन्दी की बोलियाँ

३. हिन्दी की बोलियों का संक्षिप्त वर्गीकरण कीजिए । ९
४. हिन्दी की प्रमुख बोलियों के नाम बताइये तथा उनकी विशेषतायें एवं उनके साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालिए : ९
५. दक्खिनी हिन्दी पर प्रकाश डालिए । १३
६. दक्खिनी हिन्दी की उत्पत्ति, उसके विकास एवं उसकी शैली पर पड़ने वाले प्रभाव का संक्षिप्त परिचय दीजिए । १३
७. 'विभाषा' शब्द की स्पष्ट व्याख्या करते हुए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी, रेखता, उर्दू तथा खड़ी बोली के रूप पर प्रकाश डालिये । १६

४. हिन्दी-शब्द-समूह

८. हिन्दी-भाषा में जिन भाषाओं के शब्दों का उपयोग पाया जाता है, उनका उल्लेख कीजिए तथा उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए । २२
९. हिन्दी के शब्द-समूह के मूल स्रोतों का परिचय दीजिए । २२
१०. हिन्दी शब्द-समूह के उद्गम पर प्रकाश डालिए । २२
११. "हिन्दी शब्द-समूह में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओं का समाहार है ।" उपयुक्त उदाहरण देकर इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए । २२
१२. "शब्द-समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक खिचड़ी होती है ।" हिन्दी के शब्द-समूह को दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए । २२
१३. आर्य भाषाओं के अन्तरंग और बहिरंग उप शाखाओं के विभाजन में ग्रियर्सन का क्या आधार है ? इस आधार की मान्यता पर विचार कीजिए । २८
१४. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण का आधार स्पट करते हुए डॉ० ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना कीजिए । २८
१५. आधुनिक आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए । २८

१. देवनागरी लिपि—विकास, त्रुटियाँ, सुधार

१. देवनागरी लिपि की उत्पत्ति, नामकरण और विकास पर प्रकाश डालिए । १

२. भाषा और लिपि के अन्तरंग सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए देवनागरी लिपि के विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए । १

३. "देवनागरी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए । ६

४. देवनागरी लिपि के गुण-दोषों का सोदाहरण परिचय दीजिए । ६

५. देवनागरी लिपि में सुधार करने के लिए जो प्रयास हुए हैं, उनका उल्लेख कीजिए । ६

६. देवनागरी लिपि की प्रमुख त्रुटियों का उल्लेख कीजिए । इन त्रुटियों को कैसे सुधारा जा सकता है ? ६

२. नागरी अंक

७. नागरी अंकों का विकास बतलाइये । १५

१. हिन्दी-ध्वनियाँ

१. हिन्दी-ध्वनि-समूह का विवेचन कीजिए । १

२. भारतवर्षीय आर्यभाषाओं की ध्वनियों में आरम्भ से लेकर अब तक क्या-क्या परिवर्तन हुए ? ७

३. हिन्दी की ध्वनियों का विकास प्रस्तुत कीजिए । ७

४. हिन्दी में स्वराघात और उसके विकास को स्पष्ट कीजिए । १४

२. प्रत्यय और उपसर्ग

५. हिन्दी के उपसर्ग और प्रत्यय का इतिहास देते हुए उनका सम्यक् विवेचन कीजिए १६

३ संज्ञा पद-रचना

६. संज्ञा में ध्वनि-परिवर्तन को उदाहरण सहित समझाइये । २२

४. सर्वनाम

७. हिन्दी-सर्वनामों की उत्पत्ति पर सम्यक् विचार कीजिए । २९

५. विशेषण

८. हिन्दी-विशेषण और संख्या वाचक विशेषणों की क्रमिक व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिने । ३३

६. समास

९. हिन्दी-भाषा के समासों की व्युत्पत्ति लिखिए । ३९

७. क्रिया-पद : काल-रचना

१०. हिन्दी-क्रियाओं की उत्पत्ति पर सम्यक् रूप से विचार कीजिए । ४१

८ अव्यय

११. हिन्दी-अव्ययों की व्युत्पत्ति समझाइये । ४६

९. संधि-व्यवस्था

१२. हिन्दी संधि-व्यवस्था का सम्यक् निरूपण कीजिए । ४९

निबन्ध-लेखन

१. मद्य-निषेध १
२. अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष ६
३. बढ़ती हुई महंगाई ८
४. सातवाँ आमचुनाव और भारतीय लोकतन्त्र १२
५. साहित्य और समाज १७
६. साहित्य में आदर्श एवं यथार्थ २१
७. राष्ट्र-भाषा और हिन्दी २५
८. हिन्दी-साहित्य में प्रकृति वर्णन २९
९. विद्यार्थी जीवन और राजनीति ३३
१०. विश्व-शान्ति की समस्या ३६
११. निःशस्त्रीकरण ३९
१२. भ्रष्टाचार-उन्मूलन ४२
१३. भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति के गुण-दोष और सुधार ४४
१४. जीवन और साहित्य ४७
१५. साहित्य की उपयोगिता (उद्देश्य) ५०
१६. हिन्दी-काव्य का स्वर्ण-युग (भक्तिकाल) ५२
१७. वर्तमान हिन्दी-कविता की गति-विधि ५५
१८. सत्यं, शिवं, सुन्दरम् ५८
१९. हिन्दी-उपन्यास का स्वरूप और विकास ६१
२०. हिन्दी-कहानी का स्वरूप और विकास ६४
२१. हिन्दी-नाटक का स्वरूप और विकास ६७
२२. देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता ७१
२३. हिन्दी और उर्दू का विरोध मिटाने की आवश्यकता और उपाय ७४
२४. अकविता तथा नई कविता ७७
२५. राष्ट्र-निर्माण में छात्रों (युवाजन) का दायित्व ८१
२६. विज्ञान अभिशाप या वरदान ८३
२७. विद्यार्थी और अनुशासन (छात्र-समस्या का समाधान) ८५
२८. कर्म प्रधान विश्व रचि राखा ८८
२९. अपनी करनी पार उतरनी ९१
३०. लोकतन्त्र में विरोधी दलों का महत्व ९३

आधुनिक हिन्दी-कविता

[वाद एवं प्रवृत्तियाँ]

प्रश्न १—आधुनिक काव्यधारा का संक्षिप्त क्रमिक इतिहास इस प्रकार बतलाइये कि उसके मोड़ की समस्त प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जायें ।

अथवा

प्रश्न २—"हिन्दी-काव्य-धारा भारतेन्दु के नव-जागरण के शंखनाद से प्रारम्भ हुई और द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नई कविता के कूलों को स्पर्श करती हुई भविष्य की मंगलमयी नव-चेतना का सन्देश दे रही है ।" इस कथन को दृष्टि में रखते हुए आधुनिक हिन्दी-काव्य-धारा का विकास बतलाइये ।

उत्तर—खड़ी-बोली काव्य के विकास का निरूपण निम्न चरणों में किया जा सकता है :

भारतेन्दु-युग से पूर्व खड़ी-बोली काव्य

खड़ी-बोली में काव्य-रचना यद्यपि मध्यकालीन में ही अमीर खुसरो जैसे कवियों के द्वारा प्रारम्भ हो गई थी, किन्तु उसकी धारा अबाध रूप से प्रवाहित न हो सकी थी । भारत में अँग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद ही खड़ी-बोली काव्य का सम्यक् विकास प्रारम्भ हुआ । भारतीय साहित्य एवं संस्कृति का, अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार और प्रसार करना स्वाभाविक ही था । अँग्रेजों के कारण भारत में औद्योगिक सम्पन्नता का विकास हुआ तथा चिन्तन का क्षेत्र भी विस्तृत हुआ । ब्रज-भाषा की रचना बदलती हुई परिस्थितियों का साथ न दे सकी और उसका महत्व कम होता चला गया । आगे चलकर ब्रज-भाषा में रचनाएँ होती रही हैं । रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न, वियोगी हरि आदि ब्रज-भाषा में काव्य-रचना करने वाले महान् कवि भी हुए, परन्तु ब्रज-भाषा को पीछे ढकेलती हुई खड़ी-बोली पूर्ण रूप से काव्य-भाषा में एकाधिपत्य जमा बैठी ।

भारतेन्दु और भारतेन्दु-युग

भारतेन्दुजी की रचनाओं में नव-जागरण का सर्वाधिक व्यापक एवं प्रभावोत्पादक स्वरूप प्राप्त होता है । आपने रीतिकाल के विषयों के स्थान पर नए विषय ग्रहण किये और भाषा से अप्रचलित शब्दों को निकाला । भारतेन्दुजी काव्य-भाषा को जन-सम्पर्क में ले आए । उनकी भाषा बड़ी मार्मिक और भाव-गर्भित है । भारतेन्दु के साथ ही इनके मण्डल के पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित बद्रीनारायण चौधरी ठाकुर जगमोहनसिंह, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास आदि कवियों ने युग की आवश्यकता के अनुरूप साहित्य की रचना की और रीतिकाल की आलं-

कारिक शैली से हटकर नवीन विषयों का समावेश किया। इस युग के काव्य में सुधारवादी भाषाओं की प्रचुरता रही। राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों की जीवनियों एवं उपदेशों के प्रभाव में भारतीय चिन्तन तथा सामाजिक एव धार्मिक स्थिति और सामाजिक तथा धार्मिक चेतना के कारण "अँग्रेज राज सुख साज सजे अति भारी" कहने के साथ ही "पै धन विदेश चलि जाने का दुःख" आन्तरिक विद्रोह की सृष्टि कर रहा था। इस चरण के कवियों ने देश-भक्ति, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, जाति-पाँति-बन्धन, छूआ-छूत, मूर्ति-पूजा आदि के विषय में लिखना प्रारम्भ कर दिया। अतीत की गौरव-गाथा एवं वर्तमान के करुण कथन की भारतेन्दु-काल में विशेष अभिव्यक्ति हुई।

दूसरा चरण (द्विवेदी-युग)

दूसरे चरण मे पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के द्वारा खड़ी-बोली काव्य तथा राष्ट्रीय-भावना को विशेष प्रोत्साहन दिया। इसी समय मैथिलीशरण गुप्त ने तिलक और महात्मा गांधी के सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आन्दोलन अहिंसक क्रान्ति से प्रभावित होकर 'भारत-भारती' में स्वदेश की गौरव-गाथा, वर्तमान दुर्दशा तथा भविष्य के निर्माण की ओर संकेत किया। द्विवेदी-मण्डल के कवियों में मैथिलीकरण गुप्त, रामचरित्र उपाध्याय, गिरधर शर्मा नवरत्न, लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा मण्डल से बाहर के कवियों में अयोध्यासिह उपाध्याय, रामादेवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम शंकर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, कविरत्न सत्यनारायण आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी जी ने भाषा-संस्कार के साथ-साथ काव्य के अन्तर एवं बाह्य रूपों को सँवारा। उन्होंने खड़ी-बोली को काव्य-धारा के रूप में प्रतिष्ठित करने के अतिरिक्त छन्द, अलंकार-योजना, पदावली-प्रयोग आदि में भी नवीनता लाने का प्रयास किया। छन्द की दृष्टि से उन्होंने संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयास किया। अयोध्यासिह उपाध्याय ने 'प्रिय-प्रवास' में खड़ी-बोली एवं संस्कृत वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया। आगे चलकर अनूप शर्मा ने भी 'सिद्धार्थ' महाकाव्य की रचना संस्कृत वर्ण-वृत्तों में की।

आधुनिक काल का तृतीय चरण

तृतीय-चरण में हिन्दी-काव्य विभिन्न दिशाओं की ओर उन्मुख हुआ। देश-भक्ति की भावना-महात्मा गाँधी की अहिंसावादिता एवं स्वतन्त्र विचारों के प्रभाव और अँग्रेजों के दमन-चक्र के परिणामस्वरूप सत्याग्रह-आन्दोलन अधिकाधिक उग्र होता गया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध किसान-मजदूर आदि नाना प्रकार के आन्दोलन उग्र रूप धारण करने लगे। स्वतन्त्रता-संग्राम की रण-भेरी सुनकर मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहनलाल द्विवेदी, गयाप्रसाद शुक्ल

'सनेही', रामधारीसिंह 'दिनकर', आदि अत्यन्त ओजपूर्ण भाषा में राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने लगे ।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य-धारा

बंग-भंग से स्वतन्त्रता की प्राप्ति की भावना को विशेष बल मिला । उन्हीं दिनों रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीतांजलि' को प्रतिष्ठा मिली । अंग्रेजी-साहित्य के माध्यम से भी एक नवीन काव्य-परिपाटी सामने आई । इस सबके प्रभाववश हिन्दी में 'छायावाद' के नाम से काव्य का एक विशेष रूप प्रारम्भ हुआ । छायावादी काव्य-धारा के कवियों ने प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना की और अत्यन्त चित्रमयी भाषा में मनोरम रूप एवं भाव-संकेत उपस्थित किये । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यद्यपि इस धारा का प्रवर्तक मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय से हुआ तथापि रहस्यवाद के सन्दर्भ में प्रसाद, पन्त, निराला, एवं महादेवी वर्मा के नाम ही प्रमुख हैं । लाक्षणिकता एवं मधुर कल्पना के साथ कवि की अज्ञात प्रिय के प्रति प्रेम में विह्वलता, उसमे मिलने के लिए अभिसार, उसके पद-चापों की ध्वनि को सुनना और तप के परदे में उसके आने की आकुल प्रतीक्षा करते हुए नीरव गान गाना रहस्यवाद एवं छायावाद की विशेषता बन गई । कबीर, जायसी, मीरा आदि के साहित्य में भी ऐसी रहस्यात्मकता के दर्शन होते हैं । छायावादी कविता में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण, विभिन्न प्राकृतिक रूप व्यापारों में अपने प्राणों की छाया देखने की प्रवृत्ति, आकुलता और अनुभूतियों की व्यंजना मे प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया गया है । प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा के अतिरिक्त डॉ० रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण गुप्त, नरेन्द्र शर्मा तथा दिनकर आदि ने इस प्रकार की काव्य-रचना को प्रौढ़ता प्रदान की ।

प्रगतिवादी काव्य-धारा

छायावाद-रहस्यवाद की अति सूक्ष्मता, काल्पनिकता आदि के विरुद्ध आगे चलकर साम्यवाद के प्रभाव से प्रगतिवादी कवियों ने जन-जीवन की यथार्थ भावनाओं को व्यक्त करना आरम्भ किया । उन्होने रूढ़ियों तथा शोषकों के प्रति आक्रोश, शोषित के प्रति करुणा एवं सहानुभूति का प्रसार किया तथा समस्त पद-दलित शक्तियों का क्रान्ति के लिए आह्वान किया । रीतिकालीन शृंगार-भावना एवं समाजवादी विचारधाराओं के विरोध को इस काव्य में सरल, किन्तु ओजस्वी भाषा में अभिव्यक्त किया गया । प्रकृति के उपासक पन्त ने इस दिशा में काव्य की रचना की । निराला दिनकर, भवगतीचरण वर्मा आदि भी इस ओर मुड़े । इस युग के लेखकों में शिव मंगलसिंह 'सुमन', रांगेय राघव, रामेश्वर शुक्ल, अंचल, गिरजा कुमार माथुर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर बहादुर,

महेन्द्र भटनागर, नरेन्द्र शर्मा, रामविलास शर्मा आदि से इस काव्यधारा को विशेष बल मिला।

प्रयोगवादी काव्यधारा

सन् १९४३ में अज्ञेय के प्रयास से 'तार सप्तक' के प्रकाशन स्वरूप कवियों का ध्यान नवीन उपमान-विधान तथा अभिव्यंजना की प्रणाली से वैचित्र्य-विधान की ओर आकृष्ट हुआ। परम्परागत साहित्यिक मानदण्डों, परम्पराओं के विरुद्ध प्रगतिवादी प्रवृत्ति इस काव्य में भी दिखाई देती है। प्रयोगवाद के लगभग साथ ही पटना के नलिन विलोचन शर्मा, केसरीकुमार तथा नरेश के नाम के आदि अक्षरों के मेल से 'नकेनवाद' नाम की एक और प्रवृत्ति भी सामने आई। इसे 'अपद्यवाद' कहा गया। शब्दों के विचित्र प्रयोग, वर्ण्या-विषयों की संकेतात्मक संक्षिप्त शब्दावली में अभिव्यक्ति इसकी विशेषतायें हैं। यह काव्य प्रवृत्ति आगे न चल सकी। 'प्रयोगवाद का प्रभाव ही विशेष रहा। प्रयोगवाद से सम्बन्धित अज्ञेय के सम्पादकत्व में 'तार-सप्तक' के बाद दो सप्तक और प्रकाशित हुए। इन तीनों सप्तकों में जो कवि प्रकाश में आये; उनमें रामविलास शर्मा; नेमिचन्द जैन, गजानन्द माधव मुक्तिबोध, जैसे प्रगतिवादी कवि भी सम्मिलित हैं, इनके अतिरिक्त भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुरसिंह, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह आदि कवियों की रचनायें भी प्रस्तुत हुईं।

सन् १९५३ में निरालाजी के 'नये-पत्ते' काव्य के प्रकाशन के साथ नई कविता की नींव पड़ गई थी। सन् १९५४ में डॉ० जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में 'नई कविता' के पत्रिका के प्रकाशन से इस धारा को विशेष बल मिला। नई कविता में मुख्यता यथार्थवादी, अहंवादी आत्माभिव्यक्ति की स्वच्छन्द प्रवृत्ति, वर्तमान जीवन की कटुताओं के प्रति व्यंग्य और रसात्मकता के स्थान पर बौद्धिकता तथा विशेष क्षण की अनुभूति को बिम्ब रूप देने का प्रयत्न दिखाई देता है। प्रयोगवाद के समान ही इस कविता में भी व्याकरण और शिष्ट भाषा का जहाँ-तहाँ तिरस्कार हुआ है। इस काव्य के लेखक में लक्ष्मीकान्त वर्मा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, जगदीश गुप्त, केदारनाथ सिंह, विजयदेवनारायण साही, तथा कुँवरनाराण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि खड़ी-बोली काव्यधारा विविध कूलों से टकराती हुई प्रवाहित होती जा रही है। उनकी इस प्रगति में चाहे जितना भी शैली सम्बन्धी दिशा-भेद उपस्थित हुआ और कुछ आलोचकों की दृष्टि से प्रयोगवाद और उसके बाद की कविताओं में काव्य का अनिष्ट भी हुआ तो भी इसके विकास में राष्ट्रीय-भावना और प्रकृति-प्रेम की भावना बराबर काम करती रही। इस काव्य में 'प्रिय-प्रवास', 'साकेत', 'कामायनी' और 'उर्वशी' जैसे महाकाव्य

के तुल्य प्रबन्ध-काव्य भी बड़ी संख्या में लिखे गये। आज खड़ी-बोली काव्य की गति-विधि और उसकी प्रगति उसके उज्ज्वल भविष्य का संकेत करती है। आज का हिन्दी-काव्य विभिन्न काव्य-धाराओं को समेटे हुए अप्रतिहत गति से बढ़ रहा है। यह निश्चय ही प्रगति का शुभ लक्षण है। प्रयोगवादी काव्यधारा नई कविता और नव गीत की ओर मुड़ गई हैं।

प्रश्न ३— स्वतन्त्रता के पश्चात् वर्तमान हिन्दी-काव्य की विषयवस्तु, कला-पक्ष और नवीनता की दृष्टि से सम्यक् समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४- साठोत्तर हिन्दी-काव्य का इस प्रकार मूल्यांकन कीजिए कि स्वतन्त्रता के पहले हिन्दी-काव्य से उसकी समृद्धि और ह्रास का रूप भी स्पष्ट हो जाय।

उत्तर—स्वतन्त्रता के पश्चात् निम्न दृष्टिकोणों से हिन्दी-काव्य समृद्ध है :

(१) व्यक्ति-जीवन और समाज-जीवन की विविध समस्याओं, स्थितियों, भाव और अनुभूतियों का उसमें अपेक्षाकृत अधिक वर्णन हुआ है। व्यक्ति की मनः स्थिति के विभिन्न रूपों और उतार-चढ़ाव का इतना सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन पहले नहीं हुआ।

(२) नए-नए कवि नई उद्भावना और नई विचारधारा लेकर सामने आये।

(३) परिणाम की दृष्टि से भी अपेक्षाकृत अधिक काव्य लिखा गया।

(४) शैली-शिल्प, तन्त्र, भाषा, अप्रस्तुत-विधान आदि में नए प्रयोग हुए।

स्वतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता के पहले की अपेक्षा निम्न दृष्टियों से हिन्दी-काव्य का ह्रास हुआ :

(१) ऐसे कला-सौन्दर्य का प्रायः अभाव मिलता है, जो जन-मानस की भाव-चेतना में युग-समस्याओं के प्रति मानव की सह-अनुभूति का विस्तार कर सके।

(२) पाठक-वर्ग आज के काव्य के प्रति आकर्षण खोता जा रहा है। वर्तमान काव्य का पाठक वर्ग तथा उसको पसन्द करने वाला वर्ग सीमित हो गया व सामान्य पाठक के राग एवं सौन्दर्य-बोध का विषय आज की कविता नहीं बन पाई। अनेक कविताएँ तो केवल रचयिता कवि के बोध की सीमा में ही लिपट कर रह जाती है।

स्वतन्त्रता के बाद काव्य की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं। एक धारा तो वह है, जो कि स्वतन्त्रता के पूर्व से चली आ रही और दूसरी धारा स्वतन्त्रता के बाद उत्पन्न हुई है। स्वतन्त्रता के बाद व्यक्ति और समाज का जीवन बड़ा ही विविधतापूर्ण और संकुल हो गया है। हिन्दी काव्यधारा ने अपने विविधतारूपी मुक्तक, छन्द-युक्त, छन्दोबद्ध कविता, गीत-नाटक, सॉनेट प्रबन्ध-काव्य आदि के माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों ही स्तरों पर हो रहे परिवर्तनों एव संघर्षों को काव्य की विषय-वस्तु बनाया है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-काव्य-धाराओं और अन्तरधाराओं का वर्गीकरण और विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है।

व्यक्तिपरक मुक्त-छन्द-काव्य

युग के संघर्ष से त्रस्त मानव की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को आज काव्य ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। यह धारा व्यक्ति को सामाजिक प्राणी स्वीकार न कर अपने में पूर्ण इकाई स्वीकार करती है। अतः यह धारा व्यक्तिवादी चेतना का काव्य है। व्यक्ति को लगता है कि समाज में उसका कोई साथी नहीं है। वह अनास्था और संशय से भरा जाता है :

"कूड़े सा हम को तजकर तट के पास
मन्थर गति से बढ़ जायेगा इतिहास।
सामूहिकता ही खेल
साबित होगी जिस दिन छल
अपनी वैयक्तिता हार क्या पायेंगे
प्रभु हम क्या पायेंगे।"

इस धारा का काव्य भोगवाद को प्रधानता देता है। सामाजिक नैतिकता को बन्धन मानकर उसे त्याज्य समझता है। उसके व्यक्ति-स्वातन्त्र्य में स्वच्छन्द और उन्मुक्त भोग की स्वीकृति है :

"आज मुख्य मेहमान तुम,
रात के 'फ्लोर शो' के
एक बार, बस एक बार
अपने तन की छाप छोड़ जा
मुझ पर।"

समष्टि-चेतना-मूलक आस्थावादी काव्य

इस धारा के काव्य में व्यक्ति अपने मन का विमंथन कर आस्था के नये बसे धरातल को खोजने में प्रयत्नशील है। उनके अन्वेषण की राहें मानव की प्रवृत्ति की राहें हैं :

"आज आत्मा को सृजनातुर वैदेही—
परित्यक्ता मन से क्षीण, विवश,
संशय और अनिश्चय की अटवी में
पा गई शरण वाल्मीकि—सरीखे
काव्य-वृक्ष की छाया में,
यह जनमेगा वे पुत्र कि उसकी पीड़ा को सस्वर गाएँ।
जो सहज सत्य के भटके नृप को उनकी जननी तक वापस लाएँ।"

आज का कवि समाज-द्रोही चेतना के प्रति सचेत होता जा रहा है। वह व्यक्तिवादी चेतना के कवि का उद्‌बोधन कर उसे सृजन की नई चेतना को वरण करने का आह्वान करता है :

"अहं की कारा को मुक्त करो,
बाहर ले जाओ
रत्न हैं पास तो
प्रकाश दिखलाओ
व्यष्टि को
समष्टि के निकष पर उतारो
घर्षण से
तेजमयी किरणें निखारो।"

वह आन्तरिक भ्रष्टाचार, अव्यवस्था एवं शोषण-जनित परिस्थितियों के बीच इन्सान की इन्सानियत को शरणार्थी हुई देखकर उसे फिर बसाना चाहता है :

"इन्सानों की भीड़ में
इन्सानियत खो गई।
× × ×
है कोई ?
जो—
इसे खोये सिसकते हुए
प्यार के भूखे बालक को
उसके घर तक पहुँचा दे ?
टूटे हुए तार को सूने आसमान में
फिर से बसा दे।
आज—"

इन्सानियत शरणार्थी है। आज वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रसार के कारण कविता वन, उपवन, नदी, निर्झर, पर्वत, समुद्र के इन्द्रधनुषी सौंदर्य से रहित होकर कस्बे और नगरों के जन-संकुल फुटपाथों पर आकर भटक गई है। छायावादी युग में जहाँ प्रत्येक कवि ने प्रकृति चित्रण का प्रायः साध्य मान लिया था, वहाँ इस वर्ष के कवि ने प्रकृति का प्रयोग प्रायः साधन के रूप में किया है। स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी-कविता पर भावना और अनुभूति के स्थान पर बौद्धिकता की छाप अधिक गहरी है। कल्पना के स्थान पर चिन्तन को अधिक महत्व दिया गया है।

इस काल में प्रेम और सौन्दर्य के जहाँ अनास्थामूलक, मांसल, भोगवादी और वासनात्मक रूप सामने आये, वहाँ प्रेम और सौन्दर्य का स्वस्थ वर्णन भी हुआ।

नये कवियों ने प्रेम के चित्रण में सामाजिक रूढ़ियों, बर्बताओं और अर्थ-वैषम्य जनित मानव की विषमताओं का भी चेतना-परक चित्रण किया है :

"तुम अमीर थीं
इसीलिए हमारी शादी न हो सकी
पर मान लो, तुम गरीब होतीं
तो भी क्या फर्क पड़ता,
क्योंकि तब
मैं अमीर होता।"

आज कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें दैनिक जीवन के समस्त चित्र उपस्थित हुए हैं। चूड़ी का टुकड़ा, चाय की प्याली, प्लेट, फार्म, लिपिस्टक, हैण्डबेग, अस्पताल, नर्स और बाजरे की कलंगियों तक के स्वाभाविक चित्र कविता में खींचे गये हैं। एक उदाहरण लीजिए :

"पार्टनर !
झाड़ दो ना राख
दर्शक को बड़ी मनहूस लगती है।
तुम्हारी अंगुलियों में दबी सिगरेट जल चुकी है,
राख केवल रह गई है
पुरानी गठन के, सम्पर्क के कारण
लेकिन
यह सुरुचि-दर्शक को बड़ा बेचैन करती है।"

इस प्रकार की रचनाओं में कोई स्थायित्व नहीं है।

व्यक्तिपरक गीत-काव्य

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में अनेक नये गीतकार आये। इनमें नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, शम्भुनाथसिंह, रामनाथ अवस्थी, रामावतार त्यागी, रामकुमार चतुर्वेदी, बालस्वरूप राही, सोम ठाकुर आदि उल्लेखनीय हैं। इन कवियों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, पन्त, बच्चन, निराला, नरेन्द्र शर्मा, नवीन, नैपाली, अंचल, रांगेय राघव आदि स्वतन्त्रता के पूर्व के कवियों ने भी गीत लिखे हैं, इन गीतों में जहाँ निराशामूलक और वेदनामूलक गीतों की परम्परा मिलती है, वहीं आशाजनक जिजीविषामूलक गीत भी मिलते हैं।

निराशाजनक मृत्युवादी गीत

"मत करो प्रिय रूप का अभिमान।
कब्र है धरती, कफन है आसमान।"

× × ×

'इस तरह तै हुआ साँस का यह सफर,
जिन्दगी थक गई, मौत चलती रही।'

—नीरज

वेदना और विवशता

"हर चमन का शूल पहरेदार जिनका,
उस अकिंचन डाल की हँसती कली हूँ।"

× × ×

तुझे न हँसने दिया समय के निष्ठुर झंझावात ने,
मुझे न सोने दिया चाँद पर मरने वाली रात ने।"

आशाजनक जिजीविषामूलक गीत

"किसी के नयन का सन्देश लेकर आ नये बादल,
तुम्हारी आज भी पाती नहीं आई।
सुबह जब मेघ में छिपकर किरण फूटी,
तुम्हीं जैसा तनिक हँसती तनिक रूठी।
दिखाकर दामिनी, पलभर मुझे बहका गये बादल,
तुम्हारी आज भी पाती नहीं आई।"

× × ×

"श्याम गगन बन घन मँडलाए,
कानन गिरि, वन आँगन छाए,
लगे नाग आमों के परसे,
धानों के खेतों पर बरसे,
युवती निकली अपने घर से,
पुरवाई के झोंके खाती।"

आज का कवि छायावादी चित्र-कल्पना की अपेक्षा अमूर्त और मूर्त चित्र कल्पनाओं के नये और सहज प्रयोग कर रहा है।

"अनबोली प्रीति-सी,
निंदिया के गीत-सी
प्राणों में छा गई,
चैत की चाँदनी।
गोरी की छाँव-सी
सुधियों के गाँव सी।
सपनों को भा गई,
चैत की चाँदनी॥"

समाजपरक कविताएँ

स्वतन्त्रता के पश्चात् सामाजिक दृष्टिकोण को भी सामने रखकर काव्य-रचना हुई। परन्तु माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, नवीन, नरेन्द्र शर्मा, नागार्जुन आदि अनेक व्यापक जन-चेतनावादी कवियों की कविता स्वतन्त्रता के पश्चात् सामने आई। समाजपरक काव्यधारा के अन्तर्गत प्रबन्ध-काव्य, मुक्त कविताएँ और गीत-काव्य लिखे गये।

प्रबन्ध-काव्य—'कृष्णयण', 'जयभारत', विष्णुप्रिया', 'वर्धमान', 'रावण', 'पार्वती', 'प्रेमचन्द', 'मीरा', 'उर्मिला', 'ऋतुम्बरा', 'रश्मि-रथी', 'उर्वशी', 'एकलव्य' 'महारथी कर्ण', 'साकेत सन्त', 'रामराज्य', 'द्रोपदी', 'कनुप्रिया', 'जननायक', 'अंगराज', 'आर्यावर्त', 'मेधावी', 'बणाम्बरी', 'सरसी', 'भूमिजा', 'अमिताभ' आदि।

इन प्रबन्ध-काव्यों में व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना की गई है। युद्ध और शान्ति तथा हिंसा और अहिंसा का चित्रण किया गया है। वर्ग और वर्ग-वैषम्य पर करारा प्रहार किया गया है। पौराणिक विषयों के माध्यम से आधुनिक युग की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। नारी पुरुष के सनातन आकर्षण और काम सम्बन्धों का दार्शनिक पुनर्विश्लेषण किया गया है। 'गांधीवाद', 'मार्क्सवाद' और फ्रायडवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। उपेक्षित समझे जाने वाले पात्रों को नायक बनाया गया है। भाषा, छन्द, अलंकार शब्द आदि अभिव्यक्ति के विविध उपकरणों का यथासम्भव स्वच्छन्द प्रयोग किया गया है।

समाजपरक मुक्तक कविताओं तथा गीतों में व्यापक रूप से समाज को प्रभावित करने वाली समस्याओं और घटनाओं का चित्रण किया गया है। बिनोवाजी ने भूमिहीनों को भूमि दिलाने का एक रास्ता भूदान खोजा। परन्तु आज का सचेतन कवि समय की हवा समझने की स्पष्ट चेतावनी भू-स्वामियों को देता हुआ कहता है :

"अपने को ही नहीं देख, टुक ध्यान इधर भी देना,
भूमि-हीन कृषकों की कितनी बड़ी खड़ी है सेना।
बाँध तोड़ जिस रोज फौज खुलकर हल्ला बोलेगी,
तुम दोगे क्या चीज? वही जो चाहेगी सो लेगी।
कृष्ण दूत बनकर आया है, सन्धि करो सम्राट,
मच जायेगी प्रलय, कहीं वामन हो पड़ा विराट।"

बहुमुखी विकास की जो योजनाएँ देश में चल रही हैं, उन सभी को आज की कविता ने ग्रहण किया है। उन वर्षों में चीन और पाकिस्तान के आक्रमण से जनता में जन्म-भूमि की रक्षा के लिए अपार उत्साह जाग पड़ा था। इन आक्रमणों को लेकर हिन्दी को नयी तथा पुरानी पीढ़ी के प्रायः सभी कवियों ने अपने विक्षोभ

और आक्रोश की आवाज कविता के माध्यम से उठायी थी। हिन्दी को नई पीढ़ी का कवि सीमा पर जूझते हुए सैनिकों का आश्वासन देता हुआ कहता है :

"हे हिमालय-सी अजय दुर्घर्ष आस्था की सजग प्रतिमूर्ति,
पुत्कारमय उद्धृत जलधि की राशि-राशि पुकार,
मेरे देश के चालीस कोटि निवासियों की भावना।
आकांक्षाओं, कामनाओं की सुदृढ़,
संजीवनी भाषा तुम्हारी वन्दना हो।
हे अनादि अनन्त यौवन-अथक पौरुष की सुलगती
ज्वाल के उद्दाम, पूंजीभूत रूप विराट !
युग-इतिहास के पथ पर चरण रख
........कांगो काश्मीर, गाजा-सिनाई के मरुस्थल में
तुम जहाँ भी
शान्ति, रक्षा, कीर्ति, अन्वेषी बने अभियान करते चल रहे हो,
मैं तुम्हारी मचलती रफ्तार का उन्मेष बनकर,
साथ पग से पग मिलाकर चल रहा हूँ।"

कला और शिल्प

आज की कविता में भाषा, छन्द, अलंकार आदि के नये उपयोगों की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। काव्य-रूपों में एक ओर परम्परा युगानुरूप नवीनता लाने का सजग प्रयास किया गया, तो साथ ही स्वतन्त्रता से पूर्व अनेक कम प्रचलित काव्य-रूपों का परिष्कार कर उन्हें प्रचलित किया गया तथा नये काव्य-रूपों का प्रयोग किया गया है।

प्रबन्ध-काव्य

स्वतन्त्रता के पश्चात् दो दर्जन से भी अधिक प्रबन्ध-काव्यों की रचना हुई। इनमें कथा की दृष्टि से परम्परागत मान्यताओं का ही निर्वाह किया गया। किन्तु, नायक, सर्ग तथा छन्द-विधान की दृष्टि से परम्परा के निर्वाह की अपेक्षा युगानुरूप तथा भाव-व्यक्ति के अनुरूप स्वच्छन्दता से भी काम लिया गया साथ ही आधुनिक काल को भी प्रबन्ध-काव्यों का विषय बनाया गया।

छन्द-मुक्त-काव्य

यह युग छन्द-मुक्त का युग कहा जा सकता है। समस्त प्रयोगशील कविता प्रायः छन्द मुक्त-काव्य ही है। इसका कवि किसी छन्द की सीमा नहीं मानता। शब्द-योजना, पंक्ति-योजना या लय आदि के बन्धनों की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। इसलिए कविता भी गद्य-काव्य के ही समान हो जाती है।

गीति-काव्य

गीतों की परम्परा बहुत पुरानी है। आज गीतों में लोक-गीतों का समावेश आज की कविता की नई उपलब्धि है। इस क्षेत्र में बच्चन, केदारनाथसिंह, धर्मवीर भारती, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता तथा शमशेर बहादुर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस युग में अनेक कवियों ने उर्दू की गजलों, रुबाइयों तथा शेरों के ढंग पर अनेक रचनाएँ कीं। इस क्षेत्र में नीरज तथा शमशेर बहादुर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

काव्य-शिल्प के नए प्रयोग

कई कविता में शिल्पगत नई उपलब्धियों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

१. बिम्ब-प्रधान। २. प्रतीक-विधान। ३. भाषा।

बिम्ब विधान

बिम्ब-विधान में नई-नई उपमाओं का सबसे अधिक सहारा लिया गया है। इसके अतिरिक्त असम भावो के रूपात्मक बिम्ब भी इस काल की कविताओं में बड़ी सफलता के साथ प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए :

नई उपमाओं के माध्यम से सूर्य और शुक्र तारे के नये-नये रूप निम्न उदाहरण में दृष्टव्य हैं :

नए दूल्हे-सा सूरज, नव वधू-सा शुक्र तारा।
इंजन के हेडलाइट सा सूरज, गार्ड की रोशनी,
शुक्र सा तारा, दिये से, बल्ब से तारे, पैट्रोमैक्स
सा सूरज, बैलगाड़ी की लालटेन सा शुक्र तारा।
मिनिस्टर का सूरज, एम० एल० ए० सा शुक्र तारा।"

आज का भोगवादी व्यक्ति माँ बनी नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण रखता है, नई उपमाओं से प्रस्तुत बिम्ब में यह कितना स्पष्ट हो उठा है :

"अब हो तुम
पतझड़ की धरा-सी उजाड़
साँझ सी बीरान,
बासी ककड़ी सी अलसाई,
अब तुम ढल चुकी,
अब तुम चार-चार बच्चे की माँ हो।"

हिन्दी के कवियों ने प्राकृतिक दृश्य-चित्रण में नई उपमाओं के प्रयोग की बौद्धिक जागरूकता भी प्रकट की है :

"अभी सीजन नहीं आया है।
रंगमिल भुजाओं से पर्वत दो और
जादूगर के डिब्बा जैसे फैले हुए घर।
जिनसे पारावतों की जगह आदमी निकलते हैं।
जड़ से फूले हुए आड़ू के वृक्ष
तथाकथित अवसाद युग के अपवाद से लगते हैं।
झील किसी कामिनी के चू पड़े नयन सी
नावें जिसमें सपने सी बहती हैं।"

प्रतीक-विधान

इस काल की कविता में नये-नये प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ी है। कुछ कवियों में नये प्रतीकों का प्रयोग एक फैशन के रूप में किया है। लेकिन यह स्थिति धीरे-धीरे बदलती जा रही है। 'नदी के द्वीप', 'वर्षान्त', 'यह द्वीप अकेला' आदि अज्ञेय की इसी प्रकार की कविताएँ प्रतीक रूप में अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना करती हैं। धर्मवीर भारतीय का 'अन्धायुग' में प्रतीकों के सन्दर्भ में नए अर्थों की व्यंजना हुई है। 'गीतकारों में प्रायः सभी ने प्रतीकों का प्रयोग किया है। निम्न उदाहरणों में जीवन के लिए नैतिक मान्यता के रूप में 'मडगार्ड' की आवश्यकता की प्रतीकात्मक व्यंजना की गई है :

"बिना मडगार्ड की पहिया
जभी चलता
बड़ी कीचड़ उछलती है।
अगर हो शुष्क मौसम,
तो बहुत ही धूल उड़ती है।
सड़क पर चल रहे जो भी
उन्हें यह बहुत खलती है।
न उछले गन्दगी यह
इसलिए
मडगार्ड का होना जरूरी है
बिना मनगार्ड पहिये की—
बनावट भी अधूरी है।"

छन्द-विधान

आज की कविता मुक्त-छन्द प्रधान है। परम्परागत छन्द-योजना के साथ-साथ विशेष रूप से उर्दू की गजल और रुबाई को तर्ज पर एवं लोक-गीतों की धुनों

पर नवीन छन्द योजनाएँ की गई हैं। अतुकान्त-मुक्त छन्द के प्रयोग की प्रवृत्ति विशेष रूप से बढ़ रही है। अधिकांश नये कवि इसी प्रवृत्ति के हैं। अनेक नये कवियों ने प्रारम्भ में नये प्रयोग के जोश में हर प्रकार की छन्द-योजना से विद्रोह कर नितान्त स्वच्छन्द काव्य-सृजन की प्रवृत्ति अपनाई थी। परन्तु अब वे लयात्मक शब्द संयोजन तथा नाद-सौन्दर्य के अनुशासन को स्वीकार करने लगे हैं।

भाषा

नई कविता में कवियों ने भाषा और शब्दों का नया संस्कार कर नये-नये अर्थों की प्रतिष्ठा कर अनेक नये अर्थों की व्यजना करने वाले शब्दों के निर्माण का सराहनीय कार्य किया है। उर्दू, अँग्रेजी तथा जन-भाषाओं के शब्दों को भी आवश्यकतानुसार ग्रहण कर हिन्दी को समृद्ध बनाया है। किसी-किसी कवि ने फैशन के रूप में ऐसे-नये शब्दों का निर्माण किया है, जिससे भाषा में दुरूहता आ गई है।

उपर्युक्त विवेचना से सहज ही में इस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है कि वर्तमान हिन्दी-काव्यधारा छायावादी वायवीय अतीन्द्रिय, अमूर्त चित्र कल्पना से निकालकर सहज जीवन-सम्पन्न और मूर्त काव्याभिव्यवित की ओर अग्रसर हुई है। वह मानव-जीवन के बहुत निकट आ गई है। यह उसकी पहली उपलब्धि है। वर्तमान हिन्दी कविता की दूसरी उपलब्धि काव्य-कला के प्रति उसकी सजगता कही जा सकती है। आज का कवि वस्तु और कला दोनों के प्रति समान रूप से सचेत होता जा रहा है। वर्तमान हिन्दी कविता की इन उपलब्धियों से ही हिन्दी-काव्य की भावी सम्भावनाएँ स्पष्ट हो उठती हैं। हिन्दी-कवि की आस्था जो संशय, अनिश्चय, अनास्था और प्रयोग के वियावान में भटक गई थी, वह 'आत्मा की सृजनातुर वैदेही' अब निश्चय ही उस कवि पुत्र को जन्मेगी, जो मानव की पीड़ा को 'सरस्वर' गायेगा और जो समता, न्याय और शान्ति की स्थापना करेगा।

"अब आज आत्मा की सृजनातुर वैदेही,
परित्यकता मन से क्षीण, विवश
संशय और अनिश्चय की अटवी में
पा गई शरण बालमीकि-सरीखे,
काव्य-वृत्त की छाया में।
वे जनेगी पुत्र जो कि उसकी पीड़ा सरस्वर गायें।
जो सहज सत्य से भटके नृप को जननी तक वापस लाएँ।"

छायावादी काव्य

प्रश्न ५—छायावादी काव्य और उसकी विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए?

उत्तर-छायावादी युग—(सन् १६१८-१६३६)—द्विवेदी-युग की कविता इतिवृत्तात्मकता के कारण कुछ शुष्कता लिए हुए थी। द्विवेदीजी के कठोर नियन्त्रण से कविगण भी मुक्त नहीं थे। नैतिकता तथा मानवता के आदर्शों और व्याकरण आदि के बन्धनों के कारण कविगण काव्य का स्वच्छन्दतापूर्वक विकास नहीं कर सके। छायावादी-युग में कविता इतिवृत्तात्मकता के घेरे से बाहर निकलकर स्वच्छन्दतापूर्वक विकसित होने लगी। छायावादी कविता द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता और स्थूलता के विरुद्ध वैयक्तिक सूक्ष्मता का विद्रोह लेकर जन्मी थी। इस काव्य में वैयक्तिकता, भावुकता तथा कल्पना का रुचिर संगम था। छायावादी कवियों ने प्रकृति, नारी, प्रेम तथा सौन्दर्य को कलात्मक रीति से चित्रित करने का प्रयास किया।

छायावाद की कोई सुनिश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मतानुसार "छायावाद के दो अर्थ रहस्यवाद और प्रतीकात्मक शैली ?, किन्तु हिन्दी-साहित्य में यह एक शैली विशेष है।"

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार "नई छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है, परन्तु उसकी प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय एवं सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।"

डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार "युग की उद्बुद्ध चेतना ने बाह्याभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अन्तर्मुखी साधना आरम्भ की, वह काव्य में छायावाद के नाम से अभिव्यक्त हुई।"

डॉ० गंगाप्रसाद पाण्डेय के शब्दों में "विश्व की किसी वस्तु में अज्ञात सप्राण छाया की झांकी पाना अथवा आरोप करना ही छायावाद है।"

श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुसार—"प्रकृति में चेतना का आरोप, सूक्ष्म-सौन्दर्य-सत्ता का उद्घाटन एवं असीम के प्रति अनुरागमय आत्म-विसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नई शैली में व्यक्त रूप छायावाद है।" छायावाद में निम्नलिखित तत्व माने गये हैं :

१. असीम के प्रति अनुराग तथा आध्यात्मिक चेतना,
२. मानवीन एवं सांस्कृतिक चेतना,
३. प्रतीकात्मक एवं गीतात्मक शैली का प्रयोग,
४. बदलते हुए जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति,
५. वैज्ञानिक एवं भौतिकवादी प्रगति की प्रतिक्रिया,
६. थोथी नैतिकता तथा रूढ़िवाद के विरुद्ध विद्राह,
७ आत्माबद्ध अन्तर्मुखी साधना,
८. अनुरागमयी अनुभूति,

९. किसी वस्तु में अज्ञात सप्राण छाया का आरोपण,
१०. शाश्वत एव सूक्ष्म सौन्दर्यवाद ।

यों छायावाद का आदि स्रोत भक्तिकाल एवं रीतिकाल की प्रेमपरक प्रकृति में भी मिलता है। असीम के प्रति अनुराग की भावना तथा चेतन प्रकृति पर आरोपित वैयक्तिक प्रेम-भावना—ये दोनों प्रवृत्तियाँ भक्ति और शृंगार की अन्तःसलिलाएँ ही मानी जा सकती हैं। द्विवेदी-युग में ही पं० माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मुकुटधर पाण्डेय आदि स्वच्छन्दतावादी कवि छायावाद के प्रारम्भिक रूप की प्राण-प्रतिष्ठा कर रहे थे, सन् १९१८ ई० में छायावादी काव्यधारा उन्मेष को प्राप्त हुई। १९२५ ई० तक उसे प्रयोगों के दौर से गुजरना पड़ा। पंत, प्रसाद, निराला और श्रीमती महादेवी वर्मा को छायावादी युग के स्तम्भों में गिना जाता है। इनकी कविताओं में प्रकृति चेतना-सत्ता के रूप में निरूपित हुई है। यथा :

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त रजनी !
तारकमय नव वेणी-वंधन
शीशफूल धर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन अवगुंठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी
पुलकती आ बसंत रजनी ! —महादेवी

चंचल पग दीपशिखा के धर
गृह मग वन में आया बसंत,
सुलगा फाल्गुन का सूनापन
सौन्दर्य शिखाओं का अनन्त ! —पंत

पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिका,
मूक आह्वान-भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के ! —निराला

सिंधु-सेज पर धरा-वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी,
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में
मान किए-सी ऐंठी-सी ।

—प्रसाद

छायावादी काव्य मुख्यतः सौन्दर्य-भावना का काव्य है। उसमें कल्पना, भावना, मधुरिमा और चित्रोपमता का अद्भुत संगम है यथा :

> तुम कनक-किरण के अन्तराल में लुक-छिपकर चलते हो क्यों ?
> नतमस्तक गर्व बहन करते, यौवन के घन रसकन ढरते,
> अधरों के मधुर कगारों में, कल-कल ध्वनि की गुंजारों में
> मधु-सरिता-सी यह तरल हँसी अपनी पीते रहते हो क्यों ?
>
> —प्रसाद

छायावादी काव्य में प्रेम भी एक प्रमुख तत्व है। यह प्रेम कहीं नारी के प्रति, कहीं प्रकृति के प्रति, कहीं माता के प्रति, कहीं संतति के प्रति, कहीं दम्पति के प्रति तथा कहीं असीम सत्ता के प्रति व्यंजित हुआ है। इसी प्रकार दु:खवाद भी छायावादी कविता का एक महत्वपूर्ण तत्व है। रहस्य-भावना, मानवता का आग्रह, नारी का उच्च मूल्यांकन, वैयक्तिकता, दार्शनिकता, भावुकता एवं काल्पनिकता, नये जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति, अलंकारमयी गीतात्मक शैली, लाक्षणिक एवं चित्रात्मक भाषा तथा प्रतीकात्मकता छायावादी काव्य के विशिष्ट लक्षण हैं। आँसू, लहर, कामायनी, उच्छ्वास, पल्लव, वीणा, गुंजन, परिमल, गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, यामा, दीपशिखा आदि प्रसिद्ध छायावादी काव्य-कृतियाँ हैं।

हिन्दी की राष्ट्रवादी काव्य-धारा द्विवेदी-युग में विकसित हो रही थी; मैथिलीशरण गुप्त तथा सियारामशरण गुप्त इसके प्रमुख कवि थे। 'भारत-भारती' ने राष्ट्रवादी काव्यधारा का शंखनाद दूर-दूर तक गुंजित किया। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामधारीसिंह 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी तथा सुभद्राकुमारी चौहान के नाम राष्ट्रीय काव्य-धारा के अन्तर्गत विशेष उल्लेखनीय हैं। देश-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व एवं मानव-प्रेम की भावना छायावादी काव्य तथा प्रगतिवादी काव्य में भी समान रूप से स्थान पाती रही है। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी तथा सोहनलाल द्विवेदी विशुद्ध गांधीवादी कवि कहे जा सकते हैं। राष्ट्रीय कविता की यह धारा अपने उत्कट वेग से बाद की कविता के साथ आज भी प्रगतिशील है। श्री रामकुमार चतुर्वेदी, 'अंचल', आनन्द मिश्र आदि इसी सांस्कृतिक चेतना के सर्जन रत महत्वपूर्ण कवि हैं।

छायावाद के समानान्तर ही हालावादी प्रवृत्ति को लेकर श्री हरिवंशराय बच्चन प्रकाश में आये। इस प्रवृत्ति का उद्गम फारस के सूफी-काव्यों में सन्निहित है। फारस के प्रसिद्ध हालावादी कवि उमरखय्याम की रुबाइयों का अंग्रेजी में अनुवाद फिटजराल्ड द्वारा १९२७-२८ में सम्पन्न हुआ। हालावाद से प्रभावित होकर बच्चनजी ने 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश' आदि कृतियों का सर्जन किया।

इसका प्रभाव १९३३ ई० से १९३६ ई० तक विशेष रहा। हालावादी प्रवृत्ति पलायनवादी, क्षणवादी तथा निराशामूलक है। प्याला, हाला, सुराही, मदिरालय, साकी आदि इसके प्रतीक हैं।

प्रगतिवादी

प्रश्न ६—प्रगतिवादी काव्य और उसकी विशेषताओं का परिचय दीजिए।

उत्तर—छायावादी कविता अपनी उदात्त भावना, व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की चेतना और सम्पन्न शैली के बावजूद वायवीयता के कारण ज्यादा नहीं चल सकती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय मानस में जो उथल पुथल हुई उसके प्रभाव से भी नहीं बच पायी। औद्योगिक सभ्यता की कदाचित् यह अपरिहार्य नियति थी कि कविता को भी मार्क्स की भाषा मानवीय गरिमा के हित में स्वीकार करनी पड़ी। यह आकस्मिक नहीं है कि 'पल्लव' की भूमिका के द्वारा छायावादी कविता का घोषणा-पत्र देने वाला कवि स्वयं अपनी ही कृति से 'युगान्त' (१९३६) की घोषणा करता है। प्रेम और सौन्दर्य के कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने ही संस्कृति के प्रश्न से अधिक अहम् रोजी-रोटी के प्रश्न को स्वीकार किया। अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर प्रगतिवाद मार्क्सवाद के साहित्यिक स्वरूप में स्थापित हो चुका था। इसी समय प्रेमचन्द का 'गोदान' भी सामाजिक यथार्थ और मानवीय संकट के दस्तावेज के रूप में प्रकाशित हुआ। १९३६ में प्रगतिशील लेखक-संघ की स्थापना मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर आदि के प्रयत्नों से हुई। लखनऊ में पहली सभा प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुई, जहाँ प्रगतिशील साहित्य के लक्ष्यों और उद्देश्यों को लेकर एक घोषणा पत्र तैयार किया गया। प्रगतिवाद मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त को स्वीकार कर आर्थिक विषमता अर्थात् पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ जन-जागरण और संघर्ष का साहित्य है। भारतवर्ष में पूंजीवाद और मध्य-वर्ग के बीच की चेतना भी जन्म ले चुकी थी। मजदूर और किसान उद्योगपतियों और जमींदारों के शिकंजों में जकड़े हुए थे।

अतः कविता पर भी अपने समय के संघर्ष की छाप पड़नी ही थी। पन्त ही के साथ निराला जैसे कवि भी सामाजिक जीवन और मनुष्य के इस दारुण पक्ष को काव्य-वाणी देने लगे थे। निराला को भिक्षुक, विधवा, वह तोड़ती पत्थर तथा मानव जहाँ बैल, घोड़ा है जैसी रचनाएँ इसी विचारधारा की कविताएँ हैं। पन्त के तो 'युगान्त' के बाद 'युगवाणी' और फिर 'ग्राम्या' संकलन ही समय के तकाजों को लेकर लिखी गई कविताओं से भरे हैं। प्रगतिवाद का आन्दोलन वैचारिक स्तर पर बढ़ता ही गया। 'हंस' और 'रूपाभ' पत्रिकाओं ने इसके प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया। प्रगतिवादी कविता की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

१. साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का घृणापूर्ण विरोध।
२. जनवाद का समर्थन।

३. मार्क्सवाद की साहित्यिक चेतना।
४. रूस-चीन के प्रति आकर्षण।
५. मध्यवर्गीय जीवन के चित्र।
६. मजदूरों-श्रमिकों के प्रति सहानुभूति।
७. नारी के सामाजिक महत्व के प्रति जागरूकता।
८. सामाजिक यथार्थ का आग्रह।
९. सहज जन-जीवन के निकट की काव्य-भाषा।
१०. दैनिक जीवन के तथा औद्योगिक-वैज्ञानिक परिवेश के उपमान प्रतीक।

काव्य के परिवर्तन के साथ भाषा और काव्य-शैली का परिवर्तन अनिवार्य घटना है। मुक्त-छन्द का आरम्भ तो प्रसाद के समय से ही हो गया था, पर प्रगतिवाद का मुक्त-छन्द उससे भिन्न और गद्यमय है। हिन्दी-कविता इस दौर से गुजरते हुए मनुष्य के नजदीक आ गई। पंत, निराला के अतिरिक्त दिनकर, नवीन, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियों ने भी सामाजिक विषमता का विषय बनाकर अनेक कविताएँ लिखीं। 'नवीन' की जूठे पत्ते, विप्लव गायन, भगवतीचरण वर्मा की भैंसा गाड़ी, 'दिनकर' की विपथगा, क्रांति आदि प्रसिद्ध कविताएँ हैं। इन कवियों के अतिरिक्त उस समय के विख्यात प्रगतिवादी कवियों में सर्वश्री शिवमंगलसिंह 'सुमन' रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', 'नागार्जुन, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, अज्ञेय, गजानन माधव, मुक्तिबोध, केसरी नारायण आदि प्रमुख हैं। अंचल, सुमन मूलतः रोमान्टिक चेतना के कवि हैं। किन्तु समय का प्रभाव और युग की माँग ने इन्हें हंसिया, लाल तारा और मास्को के निकट खड़ा कर दिया था। माचवे और अज्ञेय ज्यादा समय तक इस भूमि पर नहीं टिक पाए और प्रयोग की दिशा में उन्मुख हो गये। रामविलास शर्मा के लिए समीक्षा अधिक उपयुक्त सिद्ध हुई। नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, केसरीनारायण आदि इस काव्यधारा का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। इनकी कविताओं में साहित्य की जुझारू प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित होती है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी इनमें के प्रथम दो कवि इसी काव्य-भूमि में जुड़ रहे हैं।

प्रगतिवादी कविता ने हिन्दी-कविता को मानवीय समस्याओं और सामाजिक यथार्थ से न केवल सम्पृक्त किया, अपितु कविता को जीवन के निकट और सामान्य दुखी परेशान मनुष्य की कविता के भीतर ला खड़ा किया। यह एक महत्वपूर्ण घटना और उपलब्धि है। किन्तु जिस तरह से अतिशय वायवीयता और सूक्ष्मता के दुष्परिणाम-स्वरूप रूमानी उड़ानों वाली छायावादी कविता को समाप्त होना पड़ा, उसी तरह अतिशय राजनीतिक पक्षधरता ने प्रगतिवाद कविता को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। प्रगतिवादी कविता को यहाँ एक ओर सौष्ठववादी समीक्षकों ने स्वीकार

किया, वहीं प्रगतिवादी खेमे के आलोचकों के पारस्परिक मतभेद और झगड़ों ने भी उसे अधिक क्षति पहुँचाई ।

प्रयोगवाद

प्रश्न ७—प्रयोगवादी काव्य और उसकी विशेषताओं की विवेचना कीजिए ।

उत्तर—अज्ञेय के संपादन में 'तारसप्तक' (१९५३) के प्रकाशन से प्रयोगवाद का प्रारम्भ माना जाता है । यद्यपि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के मध्य इस समय तक कोई विभाजन की स्पष्ट रेखा नहीं थी । 'सप्तक' के कवियों में कुछ घोषित रूप से मार्क्सवादी भी थे । ये राहों के अन्वेषक काव्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर नवीनता के आकांक्षी और इसी अर्थ में प्रयोगधर्मी चेतना से आक्रान्त-से थे । प्रगतिवादी राजनीतिक जकड़ से मुक्ति की आतुरता के साथ जीवन के प्रति सत्यान्वेषी बुद्धिवादी दृष्टि का आग्रह इनमें विशेष रहा । नये मूल्यों की तलाश और अनकहा कहने की ललक इनकी रचनाओं में सायास झलकती है :

यह जन है, गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गाएगा ?
पनडुब्बा, ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लाएगा ?
—अज्ञेय

स्पष्ट है कि अहं केन्द्रित व्यक्तिवाद की प्रधानता के साथ यह धारा बुद्धिवाद से भी जुड़ती है । प्रयोगवाद में यह कुंठा का रूप ग्रहण करते हुए जीवन-प्रवाह की अभिव्यक्ति को प्रतीकों और नयेपन के मोह के बीच धुंधला कर देती है । काव्य का सत्य यदि जीवन के सत्य से विमुख होकर ढूँढ़ा जाए तो कदाचित् निराश ही होना पड़ेगा । फिर मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर और भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ जीवन और मनुष्य के प्रति खुली और विवेकपूर्ण दृष्टि का परिचय देती हैं । नरेश मेहता के प्रयोगों में भाषा के ताजे लयात्मक और सौन्दर्यबोध में संस्कृत रूप मिलता है । अज्ञेय के काव्य-संग्रह चिन्ता (१९३२) इत्यलम् (१९४६) हरी घास पर क्षण भर (१९४९) बावरा अहेरी (१९५४) में इस प्रयोगशील चेतना का क्रमशः स्पष्ट होता हुआ स्वरूप देखा जा सकता है । कुशल शिल्पी अज्ञेय की सधी हुई अनुशासित अभिव्यक्ति बहुत बड़ी विशेषता है । रचनाकार का ऐसा संयम दुर्लभ गुण है, जो अज्ञेय की रचनाओं में सहज सुलभ होता है । दूसरा सप्तक (१९५१) भी प्रयोगवाद के विकास का अगला और अन्तिम पड़ाव-सा है । शमशेर बहादुर की प्रभाववादी रचनाएँ और नरेश मेहता की 'समय देवता' कविता इसकी उपलब्धि है । डॉ० धर्मवीर भारती 'गुनाहों के देवता' और 'गुनाहों के गीत' में डुबोकर 'कौन कहता है कि कविता मर गई' का उद्घोष करते दिखाई देते हैं ।

नई कविता, नव गीत और आज की कविता

प्रश्न ८—नई कविता, नवगीत और आज की कविता की विवेचना कीजिए।

उत्तर—तीसरा सप्तक (१९५७) का प्रकाशन प्रयोगवाद नहीं अपितु इसके विकास और विस्तार के अन्तर्गत आता है। नई कविता रूपवाद (फार्मलिज्म) से मुक्ति का प्रयत्न है। 'धुरी की खोज' 'लघु मानव पर बहस' और आधुनिकता-बोध की पहचान के साथ 'नई कविता' (१९५४) पत्रिका के प्रकाशन से नई कविता का 'नई' विशेषण, विशेषण मात्र न रहकर संज्ञा बन जाता है। आधुनिकता और समसामयिकता के विश्लेषण और विवेचन से नई कविता मानव-मूल्यों की वादमुक्त तलाश है। प्रयोगवाद और सायास नवीनता के परे नई कविता में सहजता और खुलापन है। व्यक्तिवादी घुटन के स्थान पर जीवन और मनुष्य के प्रति एक नया यथार्थवादी दृष्टिकोण है। भाषा और शिल्प में भी परिवर्तन हुआ। नई कविता में ताजगी के साथ ही भाषा अभिव्यक्ति का भी अकृत्रिम और स्वाभाविक, किन्तु सामान्य जीवन के यथार्थ से जुड़ा रूप उजागर होता है। डॉ० जगदीश गुप्त, कुंवरनारायण, विजय, देवनारायण राही, लक्ष्मीकांत वर्मा, बालकृष्ण राव, नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीरसहाय, केदारनाथसिंह आदि नई कविता के प्रमुख कविगण हैं।

नवगीत—नई कविता के समानान्तर अनुभूति और संवेदना की भूमि पर नवगीत की शुरूआत भी परम्परागत गीत के विकास की घटना है। प्रेम और सौन्दर्य का समकालीन यथार्थ से सम्पृक्त गीत-रूप परम्परागत ढर्रे से हटकर नितान्त नये और ताजा रूप में सामने आया। पिष्टपेषित रूमानी और कल्पना-प्रधान अभिव्यक्ति के स्थान पर नवगीत में आधुनिक संवेदना का तनाव अनौपचारिक लय में प्रकट हुआ। नवगीत में ऊब और अकेलेपन की दारुणिकता की चेतना भी मार्मिक ढंग से उजागर हुई है। लोक-गीतों की लयात्मकता से प्रभावित ये नवगीत सामाजिक चेतना के अधिक निकट हैं। सर्वश्री वीरेन्द्र मिश्र, सोम ठाकुर, शम्भूनाथसिंह, ठाकुरप्रसादसिंह, माहेश्वर शलभ, नरेश सक्सैना, नईम आदि प्रमुख नवगीतकार हैं

आज की कविता- सातवें दशक के प्रारम्भ से मोह-भंग का सिलसिला शुरू होता है। आश्वासनो की भाषा और व्यवस्था से उत्पन्न असन्तोष, युवा-कवियों का आक्रोश, विद्रोह और निषेध के नए तेवरों से जोड़ देता है। 'तारसप्तक' के कवि मुक्तिबोध युवा कवि के लिए सहसा ही नहीं सकारण महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की विडम्बना तथा सामाजिक जीवन की वंचना का उद्घाटन करते हुए आज की कविता आम आदमी की जमीन पर आ गई है। शालीनता और रूढ़ सौन्दर्यबोध के स्थान पर आक्रमण और व्यंग्यात्मक भंगिमा इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। राजकमल चौधरी का 'मुक्ति-प्रसंग' इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।

सातवें दशक की कविता एक दशक की कलावधि ही से अनेक आन्दोलन और संज्ञाओं के दौर से गुजरी है। राजकमल चौधरी के अतिरिक्त श्रीकान्त वर्मा, कैलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी, धूमिल, लीलाधर जागूड़ी, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, कुमार विकल दूधनाथसिंह, चन्द्रकान्त देवताले, विष्णु खरे, मोमित्र मोहन, कमलेश, देवेन्द्रकुमार आदि सर्जनरत समकालीन युवा कवि हैं। महिला लेखिकाओं में इन्दु जैन, नीलमसिह, मणिका मोहिनी, कान्ता, ममता, कालिया आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार हिन्दी-कविता ने भारतेन्दु-युग से लेकर आज तक समय और परिस्थितियों के दबावों और परिवर्तनों के साथ अनेक मोड़ देखे हैं। कविता आज त्रासदी की घटना बन चुकी है। सभ्यता और जीवन निष्ठा के बदलावों के साथ आगे भी कबिता के काव्य और रूप में परिवर्तन होते रहेंगे। पहले कविता विशेष कर्म और कवि गौरवशाली व्यक्ति होता था। आज कविता सामान्य आदमी के उत्पीड़न का आख्यान बन गई है।

पन्त

प्रश्न १—पन्त की प्रारम्भिक कृतियों से लेकर उनकी नवीनतम रचनाओं के नाम बतलाते हुए उनके वर्णन-विषयों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

प्रश्न २—पन्त की काव्यकला के क्रमिक विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए तथा अपनी पाठ्य-पुस्तक से यथातथ्य उदाहरण भी प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३—"पन्त जी का काव्य समय के साथ बदल रहा है।" इस कथन को ध्यान में रखकर पन्त के काव्य-विकास पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४—पन्त के काव्य-विकास की विभिन्न स्थितियों की विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—कविवर सुमित्रानन्दन पन्त विकासशील कवि माने जाते हैं और उन्होंने अपने काव्य-संग्रह 'उत्तरा' की भूमिका के पृष्ठ दो में स्वयं ही स्वीकार किया है—"लेखक एक सजीव अस्तित्व या चेतना है और वह भिन्न-भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शों तथा संवेदनों से किस प्रकार आन्दोलित होता है, उन्हें किस रूप में ग्रहण करता तथा प्रदान करता है, इनका निर्णय ही उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में अधिक उपयोगी है।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पन्तजी समय-समय पर न केवल युग के स्पर्शों से आन्दोलित होते रहे हैं अपितु उन युगस्पर्शों को ग्रहण भी करते हैं, अतः स्वाभाविक ही उनकी विचारधारा में विविधता विद्यमान है। यों तो श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने पन्त जी की समग्र काव्य-कला को प्रधानतः इस प्रकार विभाजित किया है :

१—'प्रारम्भ में' अर्थात् वीणा से गुंजन तक उनकी कविता का मूल भाव प्रकृति-प्रेम एवं केन्द्रित उल्लास है, जिसमें वस्तु सत्य के साथ आत्म-सत्य के समन्वय का प्रयास है।

२—गुंजन के बाद युगान्त से 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' तक कवि की अनुभूति और जिज्ञासा वृत्ति अधिक सजग और सचेत हो उठी है। उसके भावोन्माद का अब प्रौढ़ विकास हुआ है और उसकी चिन्तन-सरणि भाव-जगत में बैठने की अपेक्षा वस्तु जगत में अधिक खुलकर विचरण करती है।

३—'स्वर्णधूलि' में कवि का सूक्ष्मचेता मन मार्क्सवादी भौतिक संघर्षों से ऊबकर आध्यात्मवाद की ओर मुड़ा है।

४ और 'युगपथ', 'उत्तरा' आदि उसकी इधर की कृतियों में आत्मोन्मुख मनोभूमि अर्थात् उसके अवचेतन मन के साथ ऊर्ध्वमुखी वृत्तियों का समाहार है, जहाँ उसकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि स्थूल तथ्यों पर उतराती हुई सूक्ष्म-सत्यों में रम गई है।

इस विभाजन को ध्यान में रखते हुए जब हम पन्त की विचारधारा पर विचार करने बैठते हैं, तब हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि रोमांटिक काव्यधारा के प्रवर्त्तक होते हुए भी उनकी रचनाओं में उनकी कविता का विकास क्रम विभिन्न प्रवृत्तियों; भावों और विचारों की भूमि का स्पर्श करता हुआ प्रवाहित होता है। सम्भवत: यही कारण है कि उनकी विचारधारा भी निम्नांकित तीन भागों में विभाजित की जा सकती है और इन्हीं तीन भागों को पन्त-काव्य के तीन युग माने जाते हैं :

१—**छायावादी और रहस्यवादी**—सन् १९१८ से १९३६ तक की कृतियों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है और इस प्रकार वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन तथा ज्योत्सना इसी के अन्तर्गत आती हैं।

२—**प्रगतिवादी**—इसमें सन् १९३६ से ४० तक की रचनायें युगान्त, युगवाणी एवं ग्राम्या आदि आती हैं।

३ **आध्यात्मवादी**—यह विचारधारा उनकी नवीनतम कृतियों—स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, युगपथ, उत्तरा, अतिमा, वाणी और कला और बूढ़ा चाँद आदि काव्य-संग्रह में दृष्टिगोचर होती हैं।

यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि पन्त की विचारधारा व कवित्व का यह कोई वैज्ञानिक विभाजन नहीं है और न इसका अभिप्राय यह है कि किसी एक युग में कवि की एक ही विचारधारा रही है, अपितु इससे केवल मात्र पन्त की विचार-सरणि के अध्ययन में सुविधा मिलती है।

अब हम यहाँ प्रत्येक विचारधारा का संक्षिप्त मूल्यांकन करेंगे।

छायावादी विचारधारा—वस्तुत: पन्त की प्रारम्भिक काव्य कृतियों में इसी की प्रधानता दीख पड़ती है और 'वीणा' से 'युगान्त' तक की रचनाओं में यही विचारधारा विद्यमान है। यों तो श्री विश्वम्भर 'मानव' का विचार है कि "जहाँ तक छायावाद का सम्बन्ध है, वहाँ अब तक कवियों ने प्रकृति को अपने दृष्टिकोण से देखा था। पन्त ने उसे निरपेक्ष दृष्टि से देखा, अब तक उसे चेतन माना; अब तक उसे किसी न किसी प्रकार मानव जीवन से सम्बद्ध करके रखा गया था, पन्त ने उसके

जीवन को अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र घोषित किया । प्रकृति के प्रति वह अभिनव दृष्टिकोण बीसवीं शताब्दी की ही विशेषता है और इस सम्बन्ध में दो मत नहीं कि प्रकृति की इस मुक्ति में पन्त का सबसे बड़ा हाथ है । पर जहाँ तक रहस्यवाद का सम्बन्ध है, वहाँ पन्त जी का काव्य रहस्य-भावना के विकास की नहीं, ह्रास की कहानी है । प्रारम्भ में उनकी सुकुमार वृत्ति जिस सौन्दर्य-प्रेम के कारण अनन्त का चिंतन करने में लीन रहीं, बाद में वहीं अन्य विषयों की ओर मुड़ी ।"

स्मरण रहे यह पराधीनता के विद्रोह की भावना उस समय के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन की हलचल का प्रधान कारण थी तथा यह विद्रोह-भावना साहित्य जगत में बौद्धिक प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न हुई । अतः जो कलाकार चिंतन-प्रधान, एकान्तप्रिय और वास्तविक जीवन के यथार्थ संघर्ष से दूर थे, उनमें पलायन वृत्ति उत्पन्न हुई । साथ ही वे मानव-समाज की मूल समस्याओं की ओर ध्यान न देकर उन्हें स्थूल और बाह्य प्रवृत्ति समझ अन्तर्मुख हो गये तथा सृष्टि-सौन्दर्य में ईश्वर की कौतूहलपूर्ण एवं रागमय खोज करने लगे । यही उनका स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह था जो कि छायावाद या रहस्यवाद के रूप में काव्य-जगत में प्रस्तुत हुआ ।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि पंत पर बँगला के रवीन्द्र और अँग्रेजी के शैली, कीट्स आदि की काव्य-विशेषताओं का प्रभाव पड़ा है अतः कवि ने भी रूढ़िगत रीतिकालीन काव्य परम्परा से विद्रोह कर, प्राचीन काव्य-भाषा ब्रजभाषा से विद्रोह कर, खडी बोली को काव्योचित कोमलता और प्रभावपूर्ण मार्दवता प्रदान की । इस प्रकार वीणा से युगान्त तक की रचनाओं में सौन्दर्य भावनाओं की ही प्रधानता है तथा कवि की प्रकृति भी सजीव सत्ता धारणा किये हुए खेल रही दीख पड़ती है :

> उस अकेली हरियाली में
> कौन अकेली खेल रही माँ—
> वह अपनी वय-बाली में ?
> सजा हृदय की थाली में ।
> क्रीड़ा, कौतूहल, कोमलता
> मोद, मधुरिमा, हास, विलास
> लीला, विस्मय, आतुरता, भय
> स्नेह, पुलक, मुख सरल, हुलास
> ऊषा की मृदु लाली में ।

चूँकि छायावाद की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का ही दूसरा रूप शृङ्गारिता का है, अतः पन्त को इन रचनाओं में शृङ्गार-भावना भी स्पष्टता दीख पड़ती है और दुःखवाद एवं करुणा की धारा भी उसमें प्रवाहित हो रही है तथा कवि का करुण हृदय-जगत की प्रत्येक वस्तु को करुणा से प्लावित देखता है :

सिसकते हैं समुद्र से मन,
उमड़ते हैं नभ से लोचन।
विशद वाणी ही है क्रन्दन,
विश्व का काव्य अश्रुकन।
गगन के उर में भी है घाव,
देखती ताराएँ भी राह।
बँधा विद्युत छवि में जलवाह,
चन्द्र के चितवन में है चाह।
दिखाते जड़ भी तो अपनाव,
अनिल भी भरता ठण्डी आह।

प्रगतिवादी विचारधारा—यों तो 'युगान्त' में ही कवि ने राजनीतिक विचारधारा को प्रश्रय दिया है और वह उस कृति में गांधीवाद से प्रभावित भी जान पड़ता है, लेकिन भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन को और भी अधिक तीव्रगति से चलाने के लिए विभिन्न राजनैतिक दलों की भी स्थापना हुई तथा रूस से होने वाली समाजवादी क्रान्ति से प्रभावित हो भारतीय नवयुवकों ने भी समाजवादी दल स्थापित किया। इस समाजवादी विचारधारा में भी दो वर्ग थे, जिनमें से प्रथम में क्रान्ति के लिए हिंसा और अहिंसा सभी कुछ उपयुक्त समझा जाता तथा द्वितीय में शोषण की समाप्ति-हेतु शोषक वर्ग की सत्ता से सक्रिय विद्रोह अनिवार्य माना गया था।

वस्तुतः साम्यवादी विचारधारा ने शोषण और अन्याय के प्रति विद्रोह भावना जाग्रत कर साहित्य में नयी प्रवृत्तियों की उद्भावना की है तथा भारत की सभी भाषाओं में प्रगतिवाद एक विद्रोही चेतना के रूप में अग्रसर हुआ है। यद्यपि जिस समय प्रगतिवादी विचारधारा का प्रारम्भ हुआ था, उस समय अँग्रेजी के साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध विद्रोह की भावना रखने वाले किसी भी साहित्य को प्रगतिवादी कह दिया जाता था, लेकिन विदेशियों के चले जाने पर भी भारत में साम्राज्यवादी शोषण का अन्त नहीं हुआ, बल्कि अन्य सामाजिक-आर्थिक शोषण-जन जीवन को और भी अधिक संकट-ग्रस्त बनाते जा रहे हैं। अतः स्वाभाविक ही उसके प्रति विद्रोह-भावना भी बलवती हो जाती है।

इस प्रकार प्रगतिवादी से अभिप्राय है, साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी शक्तियों द्वारा समाज, साहित्य एवं संस्कृति आदि जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन श्रम शक्तियों के होने वाले शोषण के विरुद्ध जनता में विद्रोही भावना भर कर एक ऐसे मनुष्य के निर्माण की प्रेरणा देना जो समस्त गतिरोधों पर विजय प्राप्त कर विराट विश्व-मानवता का निर्माण कर सके। यों तो स्वयं पन्त जी का विचार है कि "वैसे सभी युगों का लक्ष्य सदव प्रगति ही की ओर रहा पर आधुनिक प्रगति ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन-समाज की सामूहिक संगति के सिद्धान्तों की

पक्षपाती है।" और श्री शिवदानसिंह चौहान भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं "पन्तजी के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि वे प्रारम्भ से ही प्रगति के समर्थक रहे हैं, जीवन-संघर्ष से भागने की प्रवृत्ति उन पर अधिकार न कर सकी। 'पल्लव' में भी उन्होंने परिवर्तन का स्वागत किया है और गुंजन में उनके विदग्ध हृदय की भावुकता और कोमल कल्पना का लय आत्म-चिन्तन और लोक-कल्याण की भावना में हो गया।" परन्तु पन्तजी की प्रगतिवादी विचारधारा युगवाणी और ग्राम्या में ही विशेष रूप से दीख पड़ती है। अतः इन्हीं के आधार पर हम उनके प्रगतिशील विचारों का अध्ययन करेंगे।

वस्तुतः युगवाणी में कवि की चेतना परिपक्व हो गयी है और आत्म-चिन्तन एवं कठोर अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात् उसे मानव-विकास का एक नूतन मार्ग मिल गया है तथा साथ ही अब उसे कविता के बधन ही टूटते हुए दीख पड़ते हैं :

खुल गए छद के बंध,
प्राण के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ युगवाणी बहती अयास !
बन गए कलात्मक भाव,
जगत के रूप नाम।
जीवन संघर्षण देता सुख,
लगता ललाम !

स्मरण रहे, कवि ने स्वयं ही इस बात का उत्तर दे दिया है कि "उस छायावाद को अब वास्तविक जगत में क्यों प्रवेश कराया है, कविता के स्वप्नभाव को छोडकर हम इस खुरदरे पथ पर क्यों उतर आये ?······ इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण किया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा के आकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गयी। उनकी जड़ों को अपनी शोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है और युग जीवन ने उसके चिर संचित सुख स्वप्नों को चुनौती दी है, उसको उसे स्वीकार करना पड़ा है।"

कदाचित् इसीलिए कवि का विचार है कि प्राचीन मूल्यों के निकट हुए बिना जगत का कल्याण सम्भव नहीं और वह रूढ़िवादिता का खण्डन कर जगत के जीर्ण-शीर्ण पत्रों को ध्वस्त होता हुआ देखना चाहता है :

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण,

हिम ताप पीत मधु बात भीत,
तुम वीतराग जड़ पुराचीन।

उन्हें कोकिल की मधुर तान से भी मोह नहीं रहा और वे यही चाहते हैं यह पावक-कण बरसा उठे ताकि जिनमें जीवित रहने का साहस न हो वे स्वयं मर जायें :

गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रष्ट जग के जड़ बन्धन
पावक पग धर आवें नूतन।

युगवाणी में मार्क्सवादी विचारधारा की प्रधानता है और कवि ने 'मार्क्स के प्रति' रचना में मार्क्स को प्रलयंकारी शिव का तृतीय ज्ञानचक्षु बतलाया है इतना ही नहीं अनेक रचनाओं में मार्क्सवादी दर्शन की स्पष्ट छाप है तथा साम्यवादियों के अनुकूल ही पन्तजी ने भी संसार, इतिहास और समाज की व्याख्या की है। श्री विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में "वही संसार को सत्य मानना, वही सामूहिक हित की दृष्टि से सब-कुछ सोचना, वही पूँजीवाद को सब प्रकार के कष्टों के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए मरणासन्न घोषित करना, वही द्वन्द्वात्मक तर्क प्रणाली से काम लेना, वही साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग का पदार्पण मानना—सब कुछ वही है। साम्राज्यवाद और पूँजीपतियो की निन्दा भी कवि ने साम्यवादी दृष्टिकोण से की है। दूसरी दिशा में इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर किसानों और मजदूरों की प्रशंसा भी की गयी है। यहीं तक नहीं, हथौड़े पर भी एक रचना प्रस्तुत है।"

इतना ही नहीं मानव जी यह भी स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि "साम्यवादी" दर्शन और साम्यवादी दृष्टिकोण को अब तक एक स्थान पर जिस स्पष्टता, विश्वास और पूर्णता से पन्तजी ने उपस्थित किया है, उस प्रकार अन्य किसी साम्यवादी कवि ने नही। उन जैसी चिन्तन की व्यापकता और गहराई भी दूसरे छोटे-मोटे साम्यवादी कवियों में नहीं पायी जाती। ये रचनाएँ कवि की दृढ़ आस्था से उद्भूत हैं, अतः कहीं-कहीं सिद्धान्तों और परिचित विचारों को चाहें दुहराने वाली हो गयी हों, पर उस कट्टर प्रचारात्मक प्रवृत्ति की गन्ध इनमें नहीं है "जिसके लिए अन्य नारे लगाने वाले कवियों को दोषी ठहराया जाता है। पन्त की संस्कृत रुचि के अनुशासन में चलने के कारण, इनमें अश्लीलता और कुरुचि का पुट भी कहीं-कहीं दिखलाई देता है।" परन्तु कविवर पन्त ने मार्क्सवाद को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जिस रूप में वह पाया जाता है, फलतः मार्क्सवादियों से उनका मतभेद भी प्रारम्भ हो गया और कालान्तर में भी इन साम्यवादी समीक्षकों ने पन्त की काव्य-कला को सर्वथा हीन कोटि की सिद्ध करने का दृढ़ निश्चय-सा कर लिया।

डॉ० रामविलास शर्मा ने इसी उद्देश्य से पन्त जी पर आक्षेप करते हुए लिखा है "दूसरे महायुद्ध के पहले जब कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने थे तब 'उत्तरा' के लिखने तक जनता की चेतना और उसके साथ हिन्दी-जनता की चेतना में काफी परिवर्तन हो गया। अन्तश्चेतनावादी पन्त जी से सामाजिक चेतना के ये परिवर्तन छिपे नहीं हैं, लेकिन वे इस नयी सामाजिक चेतना से सहानुभूति नहीं रखते—न बौद्धिक, न हार्दिक।" वह अपने पुराने समन्वयवाद को नया जामा पहनाकर हिन्दी पाठकों से कहते हैं—"मैं प्रतिगामी नहीं, लेकिन मार्क्सवाद का कौन-सा विरोधी अपने को प्रतिगामी मानता है? उनका व्यवहार उनकी प्रतिगामिता प्रकट कर देता है। पन्त जी यदि अपने अन्तश्चेतनावाद से लोगों को बहकाना चाहते हैं तो कुछ दिन और कोशिश करके देखें।" स्वयं पन्त जी ने भी 'उत्तरा' की भूमिका में स्पष्टतः कह दिया है—"हमारे कतिपय प्रगतिशील विचारक प्रगतिवाद को वर्ग-युद्ध की भावनाओं से सम्बधित साहित्य तक ही सीमित रखना चाहते हैं। उन्हें इस युग को अन्य सभी प्रकार की प्रगति की धाराएँ प्रतिक्रियात्मक, पलायनवादी, सुधार-जागरणवादी तथा युग चेतना से पीड़ित दिखायी देती हैं। आलोचक अपने सांस्कृतिक विश्वासों में मार्क्सवादी ही नहीं अपने राजनीतिक विचारों में कम्युनिष्ट भी हैं।

यद्यपि कवि ने मार्क्सवाद को सर्वथा हेय नहीं समझा है, लेकिन वह उसे उस रूप में स्वीकार नहीं करता जिस रूप में प्रगतिवादी विचारक करते हैं। उसका कहना है "मार्क्सवाद का आकर्षण उसके खोखले दर्शन-पक्ष में नहीं, उसके वैज्ञानिक लोकतन्त्र के रूप में, मूर्त्त आदर्शवाद में है जो जनहित अथवा सर्वहारा का पक्ष है, किन्तु उसे वर्ग-क्रान्ति का रूप देना अनिवार्य नहीं है। वर्ग-युद्ध का पहलू फासिज्म की तरह ही निकट भविष्य में पूँजीवाद तथा साम्राज्यवादी युग की दूसरी प्रतिक्रिया के रूप में विकृत एवं विकीर्ण हो जायगा। हीगेल के द्वन्द्ववाद तक में बिम्बित पश्चिम के मनोजगत का अन्तर्द्वन्द्व मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में वहिर्द्वन्द्व का रूप धारण कर लेता है।" इस दृष्टि से इन प्रवृत्तकों का मानव-चिन्तन, ऐंजिल के अनुसार "अपनी युगसीमाओं से बाहर अवश्य नहीं जा सका है।...... हीगल और मार्क्स दोनों ही, अपने युग के बहुत बड़े मनस्वी हुए हैं, किन्तु इनकी मनःशक्ति ही इनकी सीमायें भी बन गयीं।"

इसीलिए कवि ने मार्क्स के सम्बन्ध में यह भी कहा है "सहस्त्रों वर्षों से आध्यात्म-दर्शन की सूक्ष्म सूक्ष्मतम झंकारों से रहस्य मौन निनादित भारत के एकान्त मनोजगत में मार्क्स तथा ऐंजिल के विचार-दर्शन की गूँज बौद्धिकता से शुभ्र अन्धकार के भीतर के रेंगने वाले की झींगुरों की रुँधी हुई झनकारों से अधिक स्पन्दन नही पैदा करतीं। ऐंजिल के शाश्वत सत्य की व्याख्या, जिसके उदाहरणस्वरूप 'नेपोलियन ५ मई को मरा है' तथा हीगल का 'विचार निरपेक्ष' जो कण-कण जोड़कर बिकसित होता है, अथवा ऐसे इतर सिद्धान्तों की दुहाई देकर द्वन्द्व-तर्क तथा

भौतिकवाद का महत्व दिखाना भारतीय दर्शन के विद्यार्थी के लिए हास्यापद दार्शनिक तुतलाहट से अधिक अर्थ गौरव नहीं रखता। जिस मार्क्स तथा ऐंजिल के उदाहरणों को दुहराते हुए हमारा तरुण बुद्धिजीवी नहीं थकता, उसे अन्य दर्शनों के साथ अपने देश के दर्शन का भी सांगापाग तुलनात्मक अध्ययन अवश्य करना चाहिए और देखना चाहिए कि ऊँट तथा हिमालय के शिखर में कितना अन्तर और क्या भेद है ?"

कविवर पंत की दृष्टि में आध्यात्मिक, मानसिक तथा भौतिक तीन को सम्बोधित किए बिना मानव-कल्याण नभ-कुसुमवत् है और इसलिए उन्होंने यही कहा है कि ' मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग सन्तुलित) जनतन्त्र तथा भारतीय जीवन दर्शन को विश्व-शांति तथा लोक-कल्याण के लिए आदर्श संयोग मानता हूँ तथा वे अपने अन्तश्चेतनावाद को भी प्रगतिवाद से कोई भिन्न वस्तु नहीं समझते अपितु उनका यही कहना है कि "मैं जनवाद की राजनीतिक सस्था या तन्त्र को बाह्यरूप में ही न देखकर भीतरी प्रज्ञात्मक मानव-चेतना के रूप में भी देखता हूँ और जनतन्त्र की आन्तरिक (आध्यात्मिक) परिणति को ही 'अन्तश्चेतनावाद' अथवा 'नव मानववाद' कहता हूँ ... दूसरे शब्दों में जिस विकासगामी चेतना को हम संघर्ष के समतल धरातल पर प्रजातन्त्र नाम से पुकारते हैं, उसी को ऊर्ध्वा सांस्कृतिक धरातल पर मैं अन्तश्चेतना-अन्तर्जीवन कहता हूँ। मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव अहंता के साथ विधान की भी नवीन चेतना के रूप में परिणित सम्भव समझता हूँ और युग-संघर्ष में जन-संघर्ष के अतिरिक्त अन्तर्मानव का संघर्ष भी देखता हूँ।"

इस प्रकार कवि की प्रगतिवादी विचारधारा की समीक्षा हमें स्वयं कवि के कथन को कसौटी मानकर करनी चाहिए अन्यथा हम उसका उचित मूल्यांकन न कर सकेंगे। यों तो हम पन्त जी को किसी वाद विशेष का प्रचारक न मानकर जीवन का द्रष्टा ही मानते हैं तथा युगवाणी और ग्राम्या में संकलित उनकी रचनाओं में हमें भविष्य-द्रष्टा की दृष्टि ही दीख पड़ती है, भले ही उनकी विचारधारा मार्क्सवादी समीक्षकों के पूर्णतः अनुकूल न रह सकी हो। स्मरण रहे 'युगवाणी' को कतिपय समीक्षक भारतीय साम्यवाद की वाणी ही मानते थे और स्वयं कवि ने अपनी कृति के सम्बन्ध में कहा था—"मैंने युगवाणी में मध्य-युग की संकीर्ण नैतिकता का घोर खण्डन किया है और जनता के मन में जो अन्धविश्वास और मृत आदर्शों के प्रति मोह घर किए हैं, उसे छुड़ाने का प्रयत्न कर उन्हें नवीन जागरण का सन्देश दिया है। इसलिए कवि ने उस युग की कल्पना की है, जहाँ :

श्रेणी में मानव नहीं विभाजित
धन बल से हो जहाँ न जन-श्रम शोषण
पूरित नव-जीवन के निखिल प्रयोजन

'ग्राम्या' में तो यथार्थवाद का पुट और भी अधिक गहरा हो गया तथा केवल बौद्धिक सहानुभूति प्रदान करने की घोषणा करते हुए भी कवि ने गाँव के व्यापक जीवन पर दृष्टि फेरी है और जहाँ कि एक ओर धोबियों, कहारों, चमारों आदि के नृत्य, ग्रामश्री ग्राम-युवती आदि का वर्णन किया है, वहाँ दूसरी ओर उसने धूलि में खेलते बच्चों से विदा होती बहन-बेटियों और पीतल के गहने लादे किसानों की पत्नियों को नहाने के लिए जाते देखा है साथ ही उसने ग्राम्य-यौवन के उस पक्ष पर भी दृष्टि फेरी है, जहाँ कि दरिद्रता, अज्ञान, रोग और कराह आदि है तथा क्षुधा-शान्ति को अन्न, तन ढँकने को वस्त्र और रक्षा पाने को घर आदि वस्तुओं का अभाव है, नर-नारी रूढ़ियों में बँधे हुए हैं और छोटी-छोटी बातों पर लड़ते-झगड़ते हैं तथा जीवन के प्रकाश से मुँह फेरे बैठे हैं। अतः शिक्षा-संस्कृति और कला की बात वहाँ करना व्यर्थ ही है। ग्राम्य जीवन की यह झलक भी कवि ने पूर्णतः यथार्थवादी दृष्टिकोण से अंकित की है :

यहाँ धरा का मुख कुरूप है
कुत्सित गर्हित जन का जीवन,
सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या
जहाँ उदर है क्षुब्ध नयन तन।

× × ×

मिट्टी से भी मटमैले तन
    अधफटे, कुचैले जीर्ण बसन,
ज्यों मिट्टी के ही बने हुए
    ये गँवई लड़के—भू के धन ?
कोई खंडित, कोई कुण्ठित
    कृश बाहु पसलियाँ रेखांकित,
टहनी-सी टाँगें, बड़ा पेट
    टेढ़े मेरे विकलांग घृणित !
जग जीवन धारा में बहते
    यह मूक, पंगु बालू के कण।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ग्रामीण जीवन की इन स्थितियों का अध्ययन साम्यवादी भी करते हैं तथा प्रगतिवादी भी इनका चित्रण करते हैं, लेकिन पन्त जी के चित्रण में अधिक यथार्थता है और उनमें प्रचारात्मकता की अपेक्षा स्वाभाविकता ही विशेष रूप से है, अतः हम उन्हें संकीर्ण सीमाओं में घिरा हुआ प्रगतिवादी कवि चाहे न मानें, परन्तु इतना तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि उनकी विचारधारा में प्रगतिशीलता विद्यमान अवश्य है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में "पहले उन्होंने छायावाद को ललित कला दी थी, आज समाजवाद की वस्तु-कला दे रहे हैं। पहले

उन्होंने 'भू-पलकों' पर स्वप्न-जाल सी छाया का रेशमी संसार बुन दिया था, आज के 'भू-पृष्ठों' पर जीवन के स्थापत्य के कठिन उपकरक चुन रहे हैं। आज ये सौन्दर्य के नये आकार और जीवन के नये मोड़ की रचना कर रहे हैं।"

आध्यात्मवादी विचारधारा—पन्तजी की प्रगतिवादी विचारधारा भी सर्वदा स्थिर नहीं रही और मार्क्सवाद में आस्था रखते हुए भी वे उससे पूर्णतः प्रभावित न हो सके तथा मार्क्सीय सिद्धान्तों को वाणी देने के साथ-साथ उन्होंने आत्मवाद, ईश्वरवाद और अहिंसा के विषय में भी कुछ न कुछ अवश्य लिखा। यों तो छायावादी रचनाओं के प्रणयन काल में ही वे गांधीवाद से साम्यवाद की ओर आकर्षित हुये थे, लेकित भूत और आत्मा के समन्वय का संकेत भी उन्होंने अनेक स्थानों पर किया है तथा सन् ४० तक 'ग्राम्या' के प्रभाव के समाप्त हो जाने पर सन् ४२ में होने वाले भारतीय आन्दोलन का प्रभाव भी उन पर पड़ा। इसी बीच वे अस्वस्थ भी रहे तथा पाँडिचेरी जाकर संत अरविन्द के सम्पर्क में रहने का भी उन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ और लोक-जीवन से दूर हो एकान्त में ही अधिक रहने के कारण न केवल मुखी हो गये अपितु उनका दृष्टिकोण भी दार्शनिक हो गया।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अपनी प्रगतिवादी काव्य-कृतियों में उन्हें मूर्त समस्याओं और साम्यवादी लोक-जीवन की ओर जो आकर्षण था, वह युगीन प्रभाव से उत्पन्न अस्थायी बौद्धिक जागरण मात्र था, अतः उसे अपने सहज रूप में परिवर्तित होते देर नहीं लगी और फिर अरविन्दाश्रम में तो उन्हें मार्क्सवाद की सीमाएँ भी स्पष्ट दिखायी दे गईं—"मैं आध्यात्मिक और भौतिक दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ, पर भारतीय दर्शन की, सामंतकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकान्त परिणित व्यक्त हुई, उसकी मुक्ति प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृश्य-जगत एवं ऐहिक जीवन को माया कहने के कारण उनके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपहार मात्र हैं) और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, वर्ग-युद्ध और रक्त-क्रांति के परिणामस्वरूप हुई है—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।"

साथ ही अरविन्द की 'दी लाइफ डिवाइन' ने भी उन्हें प्रभावित किया और उन्होंने 'उत्तरा' की भूमिका में स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि "श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ। उससे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतल-स्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन-दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि-आग्रह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला। विश्व-कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत विज्ञान का बड़ से बड़ा दान भी जीव-मृत मानव-जाति के भविष्य

के लिए आत्मपराजय तथा अशांति ही का वाहक बन जाता है। मैं नहीं कह सकता, संसार के मनीषी तथा लोक-नायक श्री अरविन्द की इस विशाल आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करेंगे अथवा भगवान उसके लिए कब क्षेत्र बनाएँगे।"

पन्त जी की नूतन काव्य-कृतियाँ—स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा तथा अतिमा में अरविंद का प्रभाव दर्शनीय है और महर्षि अरविन्द के प्रति श्रद्धा रहने के कारण ही उन्होंने 'स्वर्णधूलि' के एक गीत में उन्हें अपनी श्रद्धांजलि भी प्रदान की है :

श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम
स्वमानस के ज्योतित सरसिज
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज
चिदानन्द के स्वर्णिम मनसिज
ज्योति ललाम
सज्ञान प्रणाम !

वस्तुत: 'ज्योत्स्ना' में जिस आध्यात्मिक मानववाद के दर्शन हुए थे, वही इन कविताओं में समन्वय के आधार पर विकसित होने वाला अन्तश्चेतनावादी नवमानववाद बन गया और यही कारण है कि कतिपय समीक्षक पन्त जी समस्त कृतियों में ही आध्यात्मिकता देखते हैं। श्री विश्वम्भर नाथ उपाध्याय के शब्दों में "पन्त जी के सारे काव्य में एक ही आध्यात्मिक आस्था का विकास मिलता है। अरविन्द से प्रभावित होने के पूर्व भी वह ब्रह्मवादी था और अरविन्द से प्रभावित काव्य में तो वह उसको स्पष्ट रूप से स्वीकार ही करता है। बीच के काव्य में—युगवाणी युगान्त आदि में—मार्क्सवाद से प्रभावित कुछ कविताएँ हैं, साथ ही आध्यात्मवाद से प्रभावित प्राचीन धारा की कविताएँ भी हैं।"

उपाध्याय जी के इस कथन की आलोचना करना हम यहाँ उचित नहीं समझते, क्योंकि हम यह पहले ही स्वीकार कर चुके हैं कि कवि किसी एक ही विचारधारा से सर्वदा प्रभावित नहीं रहा, लेकिन यहाँ यह तो कहा ही जा सकता है कि उसकी कृतियों में आध्यात्मिक भावनाओं की प्रधानता है। अरविंद के सम्पर्क में आने पर जिस प्रकार अरविन्द ने अन्तर और बाह्य दोनों के भव्य समन्वय से सुख-शान्ति सम्भव समझी हैं, उसी प्रकार पन्त जी ने भी इसी समन्वय को स्वीकार किया है "भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं, उसके लिए हमें बाहर-भीतर दोनों ओर से प्रयत्न करना चाहिए, सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही शक्तियों से काम लेना चाहिए। ऐसा नहीं समझना चाहिए कि स्थूल के अंगठन से सूक्ष्म अपने आप सुगठित हो जायगा—जैसा कि आज का भौतिक दर्शन या मार्क्सवादी कहता है, अथवा सूक्ष्म में सामंजस्य स्थापित कर लेने से स्थूल में अपने आप सन्तुलन आ जायगा, जैसा कि मध्ययुगीन विचारक कहता आया है। ये दोनों दृष्टिकोण अतिवैय-

क्तिकता तथा अतिसामाजिकता के दुराग्रह मात्र हैं।" इसलिए पन्त जी ने सृष्टि-विकास-वर्णन भी अरविन्द की विचार-धारा के अनुरूप ही किया है :

नभ से पवन पवन से जल, लालायित यह चेतना अमर।
सोई धरती से लिपट जगाने, उसे युगों की जड़ता हर ।।

वहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पन्त का आध्यात्मवाद न तो किसी साम्प्रदायिक धार्मिकता में ही विश्वास रखता है और न किसी दर्शन विशेष के सिद्धान्तों का ही प्रचार करता है तथा उसका आधार विरक्ति न होकर मानव के विकास के प्रति मनोवैज्ञानिक अनुरक्ति ही है। कवि वाह्य-विकास के लिए अन्तर का विकास अनिवार्य समझता है और उसका यह आध्यात्मवाद मनोवैज्ञानिक आध्यात्मवाद है, जो अन्तश्चेतना के विकास के आधार पर अपार्थिव के पूर्ण विकास-हेतु उत्सुक है।

कवि को इसलिए वर्ग संघर्षवादियों की भाँति जनवाद नहीं अपितु मानववाद अभीष्ट है और वह इसी में संसार का सुख निहित देखता है—"केवल राजनीतिक आर्थिक हलचलों की बाह्य सफलताओं द्वारा ही मानव-जाति के भाग्य (भावों) का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के सभी आन्दोलनों को परिपूर्णता प्रदान करने के लिए संसार में एक व्यापार सांस्कृतिक आन्दोलन को जन्म लेना होगा, जो मानव-चेतना के राजनीतिक आर्थिक मानसिक तथा आध्यात्मिक सम्पूर्ण धरातलों में मानवीय सन्तुलन तथा सामंजस्य स्थापित कर आज के जनवाद को विकसित मानव-वाद का स्वरूप दे सकेगा।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त का विचार-जगत विस्तृत और भावभूमि विशद है।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि 'वाणी' तथा 'कला और बूढ़ा चाँद' नामक उनकी कृतियों को लक्ष्य कर कुछ विचारक कहते हैं कि कवि पुनः अब छाया-लोक की ओर लोट रहा है। परन्तु यह आरोप उचित नहीं है, क्योंकि इनमें भी कवि अन्तश्चेतनावादी या आध्यात्मवादी हो रहा और पन्त-काव्य के विविध युगों के विभाजन की दृष्टि से इन कृतियों की गणना भी आध्यात्मवादी युग में ही की जाएगी। हाँ, भविष्य के सम्बन्ध में अवश्य यह नहीं कहा जा सकता कि पन्त की काव्य-धारा किस ओर मुड़ेगी।

यहाँ एक इस महत्वपूर्ण प्रश्न की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट होता है कि अपनी पूर्ववर्ती कृतियों की अपेक्षा पंत की परवर्ती काव्य कृतियाँ कवित्व की दृष्टि से कुछ हीन तो नहीं जान पड़ती ? यों कुछ समीक्षकों ने पंत काव्य का मूल्यांकन करते हुए यही कहा है कि "उनकी परवर्ती काव्य कृतियों में रमणीयता की दृष्टि से उनके कवित्व का ह्रास होता गया है पर यह आरोप युक्तिसंगत नहीं है; क्योंकि 'अतिमा', 'वाणी' तथा 'कला और बूढ़ा चाँद' में कई ऐसे प्रसंग हैं जो भाव एवम् कला दोनों ही दृष्टियों से काव्य-साहित्य के श्रेष्ठतम उदाहरण कहे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ :

> प्राण, धन्य तुम, रजत ज्वारों में उठकर
> आशा आकांक्षा के मोहित फेनिल सागर
> चन्द्रकला को बिठा स्वप्न की बाल तरी में
> तुम बखेरते रत्न-छटा आनन्द तीर पर !
> मैं उपकृत, इन्द्रियाँ, रूप गंध स्पर्श स्वर
> लीला द्वार खुले अनंत के भीतर बाहर
> अप्सरियों से दीपित सुरधनुओं के अंबर,
> निज असीम शोभाओं में तुम पर न्योछावर
> ज्योति मुग्ध हूँ तुम उज्ज्वल उर-मुकुर अगोचर
> शांति, देह मन की तुम सात्विक सेज अनश्वर
> प्रिय आनंद, छंद तुम मेरे, आत्मा के स्वर !

'लोकायतन' 'तारापथ' तथा 'ऋता' आदि नवीनतम काव्य-संग्रह पन्त जी की नयी मानवतावादी काव्य-दिशा का निर्देश करते हैं।

काल क्रमानुसार रचनाएं पंत जी की कवि प्रतिभा उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी रही है और उनकी विचारधारा भी प्रौढ़ होती गयी है तथा प्रकाशन की तिथि के क्रमानुसार उनकी समस्त रचनाओं की तालिका सुपरिचित कवि बच्चन ने एक स्थल पर इस प्रकार प्रस्तुत की है— उच्छवास (१९२२), पल्लव (१९२६), वीणा (१९२७), ग्रन्थि (१९२९), गुञ्जन (५९३२), ज्योत्सना (१९४९), युगांत (१९३६), पाँच कहानियाँ (१९३६), युग-वाणी (१९३९), ग्राम्या (१९४७), स्वर्णकिरण (१९४७), स्वर्णधूलि (१९४७), मधुज्वाल (१९४८), खादी के फूल (१९४८), युग-पथ (१९४९), उत्तरा (१९४९), रजतशिखर (१९५१), शिल्पी (१९५२), गद्यपथ (१९५३), अतिमा (१९५५), सौवर्ण (१९५७), वाणी (१९५८), कला और बूढ़ा चाँद (१९५९), साठ वर्ष : एक रेखांकन (१९६०)।

उक्त कृतियों के साथ ही सन् १९६० में पन्त जी का उपन्यास 'हार' भी प्रकाशित हुआ है जो अभी तक अप्रकाशित था और इधर मई १९६१ में उनके काव्य-संकलनों की प्रस्तावनाओं, आकाशवाणी से प्रसारित वार्ताओं, अभिभाषणों व पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों का संग्रह 'शिल्प और दर्शन' नाम से प्रकाशित हुआ। इस 'शिल्प और दर्शन' में पन्त जी ने 'गद्य-पथ' निबंध-संग्रह की सामग्री भी सम्मिलित कर दी है। इन कृतियों के अतिरिक्त उनके पल्लविनी (१९४०) आधुनिक कवि भाग दो (१९४१), कविश्री (१९५५) रश्मि-बंध (१९५८) अभिषेकिता और चिदम्बरा (१९५८) आदि काव्य-संकलन भी प्रकाशित हुए हैं। इधर हाल ही में पन्त जी की दो महत्वपूर्ण कृतियाँ 'लोकायतन' और छायावावी : पुनर्मूल्यांकन' नामक भी प्रकाशित हुई हैं। 'लोकायतन' (१९६२) लोक-संस्कृति से सम्बन्धित महाकाव्य है और उनके पक्ष-विपक्ष में पृथक्-पृथक् मत व्यक्त किये जाते हैं, पर यदि विचारपूर्वक

देखा जाय तो इसे पन्त जी की महत्वपूर्ण देन तो माना ही जा सकता है। सोवियत रूस ने पन्त जी की इस कृति को पुरस्कृत भी किया है। इसी प्रकार 'छायावाद : पुनर्मूल्यांकन' में छायावादी काव्यधारा सम्बन्धी पन्त जी के विचार संकलित हैं। इस कृति का अध्ययन-अनुशीलन कर इस आधुनिक हिन्दी-काव्यधारा की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति छायावाद का स्वरूप समझने में बहुत अंशों में समर्थ हो सकते हैं। 'तारापथ' (१९६८) 'ऋता' और 'परिक्रमा' पन्त जी के नवीनतम काव्य-सग्रह हैं। पन्त जी उदात्त मानवता और विश्व-मंगल का स्वप्न अपनी अन्तिम कविताओं में देखते हुए २८ दिसम्बर १९७७ की मध्य रात्रि को चिर निद्रा में सो गये।

प्रश्न ५—छायावादी अथवा प्रगतिवादी पन्त के काव्य की आलोचना कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या ३ का उत्तर पढ़िये।

प्रश्न ६—"प्रकृति के सहज सौन्दर्य को स्थापित करने में पन्त जी आधुनिक कवियों में अप्रतिम हैं।" इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७—पन्त के प्रकृति-चित्रण का निरूपण कीजिए।

प्रश्न ८—"पन्त जी की कविता में प्रकृति का बड़ा सम्मोहक एवं प्रभावशाली रूप चित्रित हुआ है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

अथवा

प्रश्न ९—"पन्त प्रकृति के कोमल सुकुमार कवि हैं।" सोदाहरण इस मत को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—पन्त जी और प्रकृति—पन्त जी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। प्रकृति ही उनकी काव्य-प्रेरणा का स्रोत है। बचपन से ही पन्त का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, वह उनके हृदय में आत्मसात हो गई। पन्त ने प्रकृति को अपनी काव्य प्रेरणा के रूप में स्वीकार किया है :

'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति से ही मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि जीवन के पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँख मूँदकर लेटता था, वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था।"

× × ×

"……प्रकृति सुषमा ने छुटपन से ही मुझे अपने रुपहले एकान्त में तन्मयता के रश्मि-दोल में झुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ बन-पंखियों के साथ बोलना—कुहकना सिखलाया। प्रकृति-निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गये हैं, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकट के क्षणों में अमोघ सान्त्वना मिली है। …… साधारणतया प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही मुझे लुभाया।"

पन्त जी के काव्य में प्रकृति-चित्रण—पन्त जी के काव्य में प्रकृति-चित्रण निम्नलिखित रूपों में हुआ है :

१. आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण।
२. उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण।
३. अलंकार रूप में प्रकृति-चित्रण।
४ पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण।
५. रहस्य-संकेत के रूप में प्रकृति-चित्रण।
६. दार्शनिक तथ्यों के रूप में प्रकृति-चित्रण।
७. मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण।
८ प्रस्तुत अप्रस्तुत रूप में प्रकृति-चित्रण।
९. संवेदनात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण।
१०. वातावरण-निर्माण के रूप में प्रकृति-चित्रण।
११. प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण।
१२. उपदेशात्मक रूप में प्रकृति-चित्रण।
१३. दूती रूप में प्रकृति-चित्रण।

आलम्बन रूप में प्रकृति-चित्रण—प्रकृति का आलम्बन रूप का चित्रण दो प्रकार से होता है—एक तो प्रकृति के संश्लिष्ट एवं भव्य चित्र अंकित किये जाते हैं, जिनमें प्रकृति अलौकिक रमणीयता के साथ अपने पूर्ण एवं समग्र रूप में अंकित की जाती है। दूसरे प्रकृति का आलम्बन रूप में संश्लिष्ट चित्र तो प्रस्तुत नहीं होता अपितु प्रकृति के पदार्थों के नाम भर गिना दिये जाते हैं। इसे 'नाम-परिगणन प्रणाली' का प्रकृति चित्रण कहते हैं। पन्त जी ने नामपरिगणन शैली में भी प्रकृति-वर्णन किया किन्तु प्रकृति के आलम्बन रूप में संश्लिष्ट चित्र ही अधिक अंकित हुए हैं। 'बादल', 'आँसू', 'बसन्तश्री', 'परिवर्तन', 'गुंजन', 'एकतारा', 'नौका-बिहार', 'हिमाद्रि' आदि कविताओं में प्रकृति के बड़े ही अनूठे चित्र सामने आये हैं।

पन्त जी के नाम-परिगणनात्मक शैली में प्रकृति-वर्णन के उदाहरण 'युगान्त' की 'कलरव' तथा 'गाम्या' की 'ग्रामश्री कविता में मिल जाते हैं। 'ग्रामश्री' की निम्न पंक्तियों में प्रकृति का कोई संश्लिष्ट प्रभाव सामने न आकर विविध फलों और तरकारियों के नाम भर आते हैं :

"महके कटहल, मुकुलित जामुन,
जङ्गल में झरबेरी फूली।
फूले आड़ू नीबू, दाड़िम,
आलू, गोभी, बैंगन, मूली।
पीले मीठे अमरूदों में अब,
लाल-लाल चित्तियाँ पड़ीं।
पक गये सुनहले मधुर बेर,
अँवलों से तरु की डाल जड़ी।
लह-लह पालक, महमह धनिया,
लौकी औ सेम फलीं फैली।
मखमली टमाटर हुए लाल,
मिरचों की बडी हरी थैली।"

—**ग्रामश्री (ग्राम्या)**

उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण—उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण मे प्रकृति मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती हुई चित्रित की जाती है। प्रकृति संयोग, सुख और दुख दोनों ही स्थितियों में मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करती है। निम्न उदाहरण में प्रकृति-सुषमा संयोग के भावों को उद्दीप्त कर रही है :

"डोलने लगी मधुर मधुवात,
हिला तृण, वृन्त, कुंज तरु पात।
डोलने लगी प्रिये ! मृदु वात,
गूंज-मधु-गन्ध-फूल हिम-पात ।
खोलने लगीं, शयित चिरकाल,
नवल कवि अलस-पलक दल जाल।
बोलने लगी डाल से डाल,
कुमुद पुलकाकुल कोकिल बाल।
युवाओं का प्रिय पुष्प गुलाब,
प्रणय स्मृति-चिन्ह प्रथम मधुबाल।
खोलता लोचन दल मदिराल,
प्रिये ! चल अलि दल से बाचाल।
आज मुकुलित कुसुमित सब ओर,
तुम्हारी छवि की छटा अपार।
फिर रहे उन्मद मधुप्रिय भौंर,
नयन पलकों के पंख पसार।"

—**मधुवन (पल्लविनी)**

वियोग के क्षणों में प्रकृति वियोगी के हृदय को अधिक व्याकुल बना देती है। 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास', 'आँसू' परिवर्तन' आदि कविताओं में प्रकृति-वर्णन का यह रूप देखा जा सकता है। निम्न उदाहरण में उपवन को अपने प्यालों में मधुकरों को यौवन पिलाते देखकर तथा लहर को प्रसूनों के समीप तनिक रुककर और फिर झट सरकते देखकर कवि व्यग्र हो उठा है :

"देखता हूँ जब उपवन, पियालों में फूलों के,
प्रिये ! भर भर अपना यौवन पिलाता है मधुकर को।
नवोढ़ा वाल लहर अचानक उपकूलों के,
प्रसूनों के ढिग रुककर सरकती है सत्वर।
अकेली आकुलता सी प्राण ! कहीं जब करती मृदु आघात,
सहर उठता कृश गात, ठहर जाते हैं पग अज्ञात।"

—आँसू (पल्लव)

अलंकार रूप में प्रकृति-चित्रण—पन्तजी ने विविध अलंकारों की योजना के लिए प्रकृति से उपकरणों को चुना है। निम्न उदाहरण में प्रकृति से उपमान जुटाकर अभिव्यक्ति की गई है :

"मेरा पावस ऋतु-सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन।
गहरे धुँधले, धुले साँवले,
मेघों से मेरे भरे नयन।
कभी उर में अगणित मृदु भाव,
कुजते हैं विहगों के हाय।
अरुण कलियों से कोमल घाव,
कभी खुल पड़ते हैं असहाय।"

—आँसू (पल्लव)

पृष्ठभूमि या वातावरण-निर्माण के रूप में प्रकृति-चित्रण—प्रकृति-चित्रण पृष्ठभूमि या वातावरण को उपस्थित करने में सहायक होता है। जहाँ गम्भीर वातावरण की आवश्यकता होती है, वहाँ कवि प्रकृति को गम्भीर रूप से चित्रित करता है और जहाँ उसे उल्लासपूर्ण वातावरण पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करना होता है, वहाँ वह प्रकृति को आनन्द एवं उल्लास के रूप में प्रस्तुत करता है। 'एक तारा' का प्रारम्भिक प्रकृति-चित्रण कविता के प्रतिपाद्य विषय की गम्भीरता को कला के आवरण में प्रस्तुत करके पाठक के हृदय को सहज गति देता है, जो दार्शनिक तथ्यों को आत्मसात सुगमता से कर लेता है। 'ग्राम-चित्र' शीर्षक कविता में कवि गाँव की करुण दशा का चित्रण कर वर्णन को अधिक सशक्त बना देता है। 'संध्या के बाद' कविता में अत्यन्त गम्भीर वातावरण की सृष्टि हुई है :

"सिमटा पंख साँझ की लाली,
जा बैठी जब तक शिखरों पर।
ताम्रपर्ण पीपल से शतमुख,
झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर।
ज्योति-स्तम्भ सा धँस सरिता में,
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल।
बृहद जिह्म श्लथ केंचुल-सा,
लगता चितकबरा गंगाजल।"

रहस्यात्मक संकेत के रूप में प्रकृति-चित्रण—पन्त जी प्रकृति को अव्यक्त सत्ता के रूप में देखते हैं। वह उन्हें कभी नक्षत्र के रूप में 'मौन निमन्त्रण' देती है, कभी लहरों के रूप में हाथ उठाकर अपनी ओर बुलाती है और कभी खद्योतों के रूप में पथ दिखलाती है और कभी वह उसके स्वप्नों में आकर छाया-जगत में विचरण करती है। पन्त जी के हृदय में अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा जागृत होती है, परन्तु उनको यह पता नहीं चल पाता कि अव्यक्त सत्ता कौन है। निम्न उदाहरण में प्रकृति का निखरा हुआ रहस्यात्मक रूप मिलता है :

"सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार।
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार।
न जाने, तपक तड़ित में कौन,
मुझे इंगित करता तब मौन।
देख वसुधा का यौवन-भार,
गूँज उठता है जब मधुमास।
विधुर-उर के-से मृदु-उपहार,
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास।
न जाने, सौरभ के मिस कौन,
संदेशा मुझे भेजता मौन।"

दार्शनिक तथ्यों की उद्भावना के रूप में प्रकृति-चित्रण—पन्त जी की कई ऐसी कविताएँ हैं, जिनका प्रकृति-चित्रण उपनिषदों के दर्शन से प्रभावित है। 'एक तारा' और 'नौका-बिहार' शीर्षक कविताओं में इसी प्रकार का प्रकृति-चित्रण हुआ है। 'एक तारा' की निम्न पंक्तियों में "एकोऽहं बहुस्यामि" का स्पष्ट प्रभाव है :

"जगमग-जगमग नभ का आँगन; लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन।"

'नौका-बिहार' शीर्षक कविता की अन्तिम पंक्तियों में उपनिषदों का प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ कवि ने जीवन के अमरत्व के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है :

"इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम !

मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण—आधुनिक काव्य में प्रकृति को सचेतन मानव के रूप में ग्रहण करके मानव के समान उसके क्रिया-कलापों का वर्णन किया गया है। पन्त जी के मानवीकृत प्रकृति-दर्शन में मानवीय रूप एवं व्यापार ही अधिक मुखरित हो उठे हैं। निम्न उदाहरण में शरद की चाँदनी का एक नवयुवती के रूप में मानवीकरण किया गया है :

"नीचे नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनि।
मृदु करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिन।
वह स्वप्न जड़ित नत चितवन,
छू लेती अग-जग का मन।
श्यामल कोमल चल चितवन,
जो लहराती जग-जीवन।"

पन्त जी की 'छाया', 'बादल', 'मधुकरी', 'संध्या', 'सांध्य-तारा', 'नौका-बिहार', 'चाँदनी' आदि कविताएँ मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण के सुन्दर उदाहरण हैं। ग्रीष्म की गंगा के निम्न चित्र में मानवीय भाव, आकार, चेष्टा-व्यापार और साज-सज्जा का इतना सजीव वर्णन हुआ है कि वह सजीव 'तापस-बाला' ही लगने लगती है :

"सैकत-शैया पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त क्लान्त निश्चल
तापस-बाला गंगा निर्मल; शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें ऊपर कोमल कुन्तल !
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर लहराता तार तरल सुन्दर,
चचल अंचल सा नीलाम्बर !
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर शशि की रेशमी विभा से भर'
सिमटी है वर्तुल मृदुल लहर !"

प्रस्तुत-अप्रस्तुत के सामंजस्य के रूप में प्रकृति-चित्रण—पन्त जी की कई कविताओं में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सामंजस्य भी मिलता है। इनमें मानव-भावना का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'ग्रन्थि' की "इन्दु पर उस इन्दुमुख पर" पंक्तियों को लिया जा सकता है। इनमें उधर चन्द्रमा उदित है और

इधर कवि के सामने प्रिया का मधुर मुख, उधर संध्या है और इधर अलक-जाल का अन्धकार।

दूती के रूप में प्रकृति-चित्रण—काव्य में प्रकृति को दूत या दूती रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा रही है। कालिदास का 'मेघदूत' और हरिऔध के प्रियप्रवास की 'पवन दूती' इस प्रकार के वर्णन के अन्यतम उदाहरण हैं। प्रकृति-वर्णन के इस रूप की छाया 'बादल' की निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है :

"सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवन धर।"

बादल दमयन्ती के समान कुमुद-कला को सन्देश देने के लिए स्वयं स्वर्ण हंस का-सा रूप धारण करते हैं और उसे प्रिया का ललाम सन्देश देकर पूर्ण रूप से दूतकाय करते हुए दिखाई देते हैं :

"दमयन्ती-सी कुमुद-कला के रजत करों में फिर अभिराम।
स्वण हंस से हम मृदु ध्वनि कर कहते प्रिय सन्देश ललाम।"

लोक-शिक्षा के रूप में प्रकृति-चित्रण—काव्य में प्रकृति का उपयोग उपदेशात्मक रूप में भी हुआ है। पन्त जी की 'परिवर्तन' शोर्षक कविता में सर्वाधिक लोकशिक्षा समाहित है। 'पतझर' शीर्षक कविता में पुराने पत्तों के निरन्तर झडने तथा नूतन किसलयों के आगमन की बात कहकर संसार के चिर आवागमन का अथवा आत्मा की अमरता का सुन्दर सन्देश दिया गया है :

"झरो, झरो, झरो !
जगम जग अंगण में, जीवन संघर्षण में।
नव युग परिवर्तन में, मन के पीले पत्तो !
झरो, झरो, झरो !
जाने से लगता भय, जग में रहना सुखमय ?
फिर आओगे निश्चय, निज चिरत्व से पत्तो !
डरो, डरो, डरो !"

प्रतीकात्मक रूप में चरित्र-चित्रण—आधुनिक युग में प्रकृति का सर्वाधिक प्रयोग प्रतीकों के रूप में हुआ है। पन्त जी की परिवर्तन शोर्षक कविता में अनेक प्रतीक आये हैं। निम्न उदाहरण में सुकुमार वात-हता लतिका को एक सुकुमार नवयुवती का प्रतीक बनाकर सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है :

"अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हल्दी के हाथ।
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन-शून्य कपोल।

हाय रुक गया वही संसार,
बना सिन्दूर अंगार।
बात-हत-लतिका वह सुकुमार,
पड़ी है छिन्नाधार।"

पन्त जी का प्रकृति के प्रति बदलता हुआ दृष्टिकोण—प्रकृति के प्रति पन्तजी का दृष्टिकोण निरन्तर विकासशील रहा। 'वीणा' प्रकृति का रम्य प्रांगण है। यहाँ पन्त जी के हृदय में प्रकृति के प्रति कोमल जिज्ञासा का भाव है। 'ग्रन्थि' में प्रकृति संवेदनात्मक रूप धारण करती है। 'पल्लव' में प्रकृति का विस्तृत चित्र फलक मिलता है। अब तक पन्त जी की दृष्टि प्रकृति के कोमल और रम्य रूप पर ही रही। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पन्त जी की दृष्टि प्रकृति के कठोर और भीषण रूप पर भी जाती है। 'एक तारा' और 'नौका बिहार' में प्रकृति-वर्णन पर पन्त जी के दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन की विचारधारा दिखाई पड़ती है। 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में पन्त प्रकृति की यथार्थ भूमि पर आ जाते हैं। 'झंझा के नीम' जैसे सामान्य प्राकृतिक विषयों पर भी उनकी दृष्टि जाती है। इस प्रकार प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में पन्तजी के विकसित दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

निष्कर्ष—पन्त जी प्रकृति के अन्यतम कवि हैं। उन्होंने प्रकृति के प्रायः सुकुमार और कोमल चित्र अंकित किये थे।

प्रश्न १०—"पन्त जी सुकुमार भावनाओं के कवि हैं।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ११—पन्त के भावपक्ष की विवेचना करते हुए उनके काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

अथवा

प्रश्न १२—"पन्त जी सौन्दर्य के प्रमुख कवि हैं।" इस मत से आप कहाँ तक सहमत हैं? सोदाहरण उत्तर दीजिए।

अथवा

प्रश्न १३—पन्त जी के भाव-सौन्दर्य का विश्लेषण समीचीन उद्धरणों सहित कीजिए और सिद्ध कीजिए कि वे सुकुमार भावनाओं और कोमल-कल्पना के कवि हैं।

अथवा

प्रश्न १४—"पन्त जी की रचनाओं में कल्पना की प्रधानता है और अनुभूति की कमी जिसके कारण उनकी कल्पना-प्रधान कवितायें वीरान हो गई हैं।" इस

कथन के औचित्य पर अपनी पाठ्य-पुस्तक से उदाहरण देते हुए अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

प्रश्न १५—"जहाँ मेरी कल्पना ने मेरा साथ दिया है, वहाँ तक मैं भावी मानवता के सत्य को सफलतापूर्वक वाणी दे सका हूँ और जहाँ मैं किसी कारणवश अपनी कल्पना के केन्द्र से च्युत या विलग हो गया हूँ, वहाँ मेरी रचनाओं पर मेरे अध्ययन का प्रभाव अधिक प्रबल हो उठा है और मैं केवल आंशिक सत्य को दे सका हूँ।" अपनी पाठ्य कविताओं के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १६— 'कल्पना ही पन्त जी की कविता का मेरुदण्ड है, उनकी काव्य-पुष्टि का मापदण्ड है। कोरी कल्पना की बाल-सुलभ रंगीन उड़ानों से लेकर अत्यन्त तल्लीन और गहन कल्पना अनुभूतियों के चित्रण में पन्त जी का विकास क्रम देखा जा सकता है।"—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के उक्त कथन की सम्यक् समीक्षा कीजिए।"

स्मृति-संकेत

१. कल्पना के प्रकर्ष में कवि का जड़ व्यक्तित्व छूट जाता है और कवि स्वच्छन्द होकर व्यापक, निर्लेप, काव्य-सृष्टि करने लगता है। कल्पना शक्ति के उत्सर्ग ने ही "जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' कथन की सार्थकता सिद्ध की है।

२. पन्तजी की कल्पना-शक्ति ही उनके काव्य का मूलाधार है। पन्तजी की कल्पना शक्ति ईश्वर-प्रदत्त है।

३. कल्पना के उत्कर्ष की पृष्ठभूमि में ही पन्त जी के काव्य का विकास हुआ है।

४. 'वीणा' से लेकर 'ग्राम्या' तक की रचनाओं की कल्पना ने ही वाणी दी है।

५. 'बादल' शीर्षक कविता में पन्त जी की कल्पना इन्द्रधनुषी बनकर काव्य-सृष्टि करती है।

६. कल्पना के सहारे ही पन्त जी निष्कर्षों की खोज करते हैं।

७. पन्तजी की कल्पना का वैभव शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों में मिलता है।

८. पन्त जी कल्पना के सत्य को ही विश्व का सबसे बड़ा सत्य मानते हैं।

उत्तर—**कल्पना का काव्य में महत्व** कल्पना मानव के अन्तःकरण की उद्भाविका शक्ति है वह अगोचर को गोचर और अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष तथा अदृश्य को दृश्य कर देती है। उत्कृष्ट कविता के लिए कवियों में कल्पना-शक्ति का उत्सर्ग होना अनिवार्य है। कल्पना के माध्यम से ही कवि भावों का मूर्त चित्रण करता है। कल्पना भाव-प्रेरित होनी चाहिए। शुक्ल जी का कथन है :

"जब तक कल्पना भाव की प्रेरणा से उद्भूत नहीं होगी, वह पाठकों के हृदय में भाव जगाने में समर्थ न होगी।"

काव्य में सौन्दर्य और चमत्कार की अवतारणा कल्पना ही करती है।

पन्त जी के काव्य का आधार कल्पना है—उन्होंने स्वीकार किया कि कल्पना का सत्य ही विश्व का सबसे बड़ा सत्य है :

“मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ और उसे ईश्वरीय प्रतिभा का अंश भी मानता हूँ। मेरी कल्पना को जिन-जिन विचारधाराओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की मैंने चेष्टा की है। मेरा विचार है कि 'वीणा' से लेकर 'ग्राम्या' तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना ही को वाणी दी है और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा है। शेष सब विचार, भाव, शैली आदि उसकी पुष्टि के लिए गौण रूप से काम करते हैं।”

[आधुनिक कवि, भूमिका पृष्ठ ३३]

× × ×

“……जहाँ मेरी कल्पना-शक्ति ने साथ दिया है, वहाँ मैं भावी भावना के सत्य को सफलतापूर्वक वाणी दे सका हूँ और जहाँ मैं किसी कारणवश अपनी कल्पना के केन्द्र से च्युत या विलग हो गया हूँ, वहाँ मेरी रचनाओं पर मेरे अध्ययन का प्रभाव अधिक प्रबल हो उठा है और मैं केवल आंशिक सत्य दे सका हूँ।”

पन्त जी प्रकृति प्रेम के कवि हैं—उन्होंने प्रकृति के कोमल एवं आकर्षक तत्व को ही वाणी दी है, इसलिए उसके काव्य में कल्पना-तत्व की प्रधानता है। उनका सारा काव्य-प्रसाद ही कल्पना की भूमि पर खड़ा हुआ है। कल्पना के उत्कर्ष के उन्होंने प्रकृति के इन्द्रधनुषी चित्र प्रस्तुत किये हैं। पन्तजी ने लिखा है :

“प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जन-भीरु भी बना दिया। यही कारण है कि जन-समूह से मैं आज भी दूर भागता हूँ और मेरे आलोचकों का यह कहना कुछ अंशों तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगों के सामने जाने में डरने लगती है।”

[आधुनिक कवि की भूमिका, पृष्ठ २]

पन्त के काव्य में कल्पना—पन्त जी का काव्य कल्पना की व्यापक और इन्द्रधनुषी रंगस्थली है। उनके काव्य में एक ओर जहाँ बाल-सुलभ कल्पना की उड़ानें मिलती हैं, वहाँ दूसरी ओर वे कल्पना के द्वारा ही महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। निम्न उदाहरण में पन्त जी की कोमल-कल्पना का स्वरूप देखा जा सकता है :

“प्रथम रश्मि का आना रंगिणि,
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनि,
पाया तूने यह गाना ?”

यहाँ पन्त जी की कल्पना यह देख लेता है कि बाल-विहंगिनी सबसे पहले सूर्य की किरणों का आना किस प्रकार जान लेती है। वेदना की कसक ही पन्त जी की

कोमल और रंगीन कल्पना का आधार है। वे कल्पना में ही वेदना की कसक तथा आँसुओं में सिसकते हुए गान का अनुभव करते हैं :

"कल्पना में है कसकती वेदना,
अश्रु में रोता कसकता मान है।
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है ?"

'उच्छ्वास' शीर्षक कविता में पन्त जी 'उच्छ्वास की बालिका' की कल्पनाओं को कल्पलता कहकर सम्बोधित करते हैं :

"कह उसे कल्पनाओं की
कल-कल्पलता अपनाया,
बहु नवल भावनाओं का,
उसमें पराग था पाया।"

'बादल' शीर्षक कविता में तो पन्त जी की कल्पना बहुरंगी होकर नयनाभिराम दृश्य उपस्थित कर देती है—कल्पना के उत्कर्ष से निर्मित बादल का निम्न चित्र देखिए :

"पवन धेनु, रवि के पांशुल श्रम,
सलिल-अनल के विरल वितान।
व्योम-पलक जल-खग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान।।"

यहाँ बादल पवन रूपी ग्वाले की गायें, या रवि के श्रम का परिणाम हैं। बादल आकाश की पलकें हैं। बादल मानों जल-पक्षियों के लिये विश्राम लेने वाली चलती हुई भूमि के समान है।

पन्त जी कल्पना से प्रेम और सौन्दर्य के सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत कर देते हैं—उदाहरण के लिए 'आँसू की बालिका'; 'आँसू', 'उच्छ्वास', 'मौन निमंत्रण', 'अनित्यजग' 'परिवर्तन' आदि रचनाओं को लिया जा सकता है। पन्त जी की कल्पना का वैभव संयोग और वियोग दोनों प्रकार के वर्णनों में मिलता है। इनमें उनकी कल्पना रसमयी और मोदमयी रहती है। रहस्यानुभूति के वर्णन करने में भी पन्त जी ने कल्पना का आश्रय लिया है। पन्तजी की उन्मुक्त कल्पना ने अपने विचरण के लिए प्रेम और सौन्दर्य के क्षेत्र को विशेष रूप से चुना, परन्तु शृंगार-वर्णन में उनकी रुचि सर्वत्र कोमल, परिमार्जित, संयत और उदात्त रही। कल्पना के उत्कर्ष ने उनके शृंगार-वर्णन को रमणीयता प्रदान की है। रीतिकाल के शृंगारी कवियों में कल्पना का वैभव रहा है। इसलिए उनका शृंगार-वर्णन बहुत असंयत हो गया है। वियोग-वर्णन में कहीं-कहीं भावातिरेक में पन्त जी कल्पना का आश्रय छोड़ देते हैं, किन्तु संयोग-वर्णन में सर्वत्र ही कल्पना का उत्कर्ष रहता है। पन्तजी का शृंगार-वर्णन

कल्पना-प्रसूत होने के कारण शुद्ध और अनुभूतिजन्य है। कल्पना के उत्कर्ष के कारण उनके शृंगार-वर्णन में कहीं-कहीं पर आध्यात्मिक भावनाओं की अनुभूति भी होने लगती है। 'गुंजन' की अनेक कवितायें पन्तजी की कल्पना के उत्कर्ष में इन्द्रधनुषी सौन्दर्य प्रस्तुत कर देती हैं।

कोमल कल्पना के कवि—पंत जी सुकुमार एवं कोमल कल्पना के कवि हैं। उनकी कल्पना कोमलता के आवरण में प्रस्फुटित हुई है, उसमें वेदना की भावना है :

"कल्पना में सिसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है!"

पन्त जी के समस्त काव्य का अनुशीलन करने से यह तथ्य सामने आ जाता है कि उसमें कोमल कल्पना की प्रधानता है। बच्चन का पन्त जी की कोमल-कल्पना के सम्बन्ध से निम्न कथन दृष्टव्य है :

"पन्त जी कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं—इच्छा के नायक हैं, वासना की तीव्रतम इच्छा के नहीं।"

प्रकृति-चित्रण में कोमल कल्पना—पन्त के हृदय का तादात्म्य प्रकृति के सुकुमार रूप से है। उनके काव्य में प्रकृति जड़ मात्र न होकर सचेतन है। प्रकृति की रमणीयता छोड़कर बाला के बाल-जाल में भी उनके नेत्र नहीं उलझते :

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति की भी माया।
बाले तेरे बाल-जाल में।
कैसे उझला दूँ लोचन,
छोड़ अभी से इस जग को।

पन्त की कोमल प्रकृति सचेतन नारी रूप में हैं, उसमें धड़कन, कम्पन, स्पन्दन और सिहरन है। कोमल कल्पना के सहारे पन्त ने प्रकृति के सजीव एवं रमणीय चित्र प्रस्तुत किये हैं।

नारी-सौन्दर्य-निरूपण में कोमल कल्पना—पन्त जी ने अपने काव्य में नारी के सहज-स्वाभाविक सौन्दर्य का अपूर्व चित्र प्रस्तुत किया है। पन्त जी के काव्य की नारी अनन्त सुषमा से मण्डित है। वह देवी, माँ, सहचरि, प्राण आदि सभी कुछ है। उसके ये सभी रूप पवित्रता, कोमलता और अलौकिक उज्ज्वलता से आलोकित हैं। नारी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए निम्न उदाहरण में पन्त जी की कोमल-कल्पना निखर उठी है :—

"तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरों का गान।

उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विलास।
चाँदनी का स्वभाव मे वास,
विचारों में वच्चों की साँस।"

भाव-निरूपण में कोमल-कल्पना—पन्त जी का काव्य कोमल और मधुर भावों का अथाह सागर है। 'ग्रन्थि' में विरहानुभूति के सप्राण और सजीव चित्र अंकित हुए हैं। कल्पना और वेदना की पृष्ठभूमि में सहानुभूति बड़ी गहरी और प्रेषणीय हो गई है। 'ग्रन्थि' का आधार कवि के व्यक्तिगत जीवन की प्रथम-दुर्घटना है। कवि की नाव धारा में उलट जाती है। चेतना आने पर वह अपना शीश सुन्दरी की गोद मे पाता है। इस सुन्दरी का ग्रन्थि बन्धन किसी अन्य के साथ हो जाता है। कवि की भावुकता और कोमलता उसे 'ग्रन्थि' में पुकार उठती है :

"शैवालिनी! जाओ-मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन का।
चन्द्रिके! चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणो! गाओ मधुर वीणा बजा।
पर हृदय! सब भाँति तू कंगाल है।"

वस्तु-वर्णन में कोमल-कल्पना—पन्त जी का वस्तु-वर्णन उनकी सुकुमार कल्पना से सजीव, प्रेषणीय और अनूठा बन गया है। उसकी पाठक के हृदय पर अमिट छाप पड़ती है। 'ग्राम्या' की ग्राम-युवती का एक सौन्दर्य-चित्र देखिए। इसमें सरलता, सजीवता, सरलता और कोमल-कल्पना कूट-कूट कर भरी हुई है :

"उन्मद यौवन से उभर, घटा-सी नव अषाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण, श्लथ मन्द चरण,
इठलाती आती ग्राम युवति,
वह गज गति सर्प डगर पर।
सरकाती पट, खिसकाती लट—
शरमाती झट
नव नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।"

जीवन के विविध चित्रों में कोमल-कल्पना—पन्त की कोमल कल्पना ने जीवन की विभिन्न दशाओं के एक-से-एक सुन्दर और अनूठे चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता भावों के अनुसार भाषा-प्रयोग, चित्र-विधान, शब्द चयन की दृष्टि से छायावादी काव्य में उच्च कोटि की कविता है। इसमे जीवन की अनेक मार्मिक स्थितियों का चित्रण हुआ है। कल्पना की कोमलता ने इस कविता में अनूठा सौंदर्य भर दिया है। निम्न उदाहरण में नव-परिणीता के सद्यः वैधव्य का चित्र अंकित किया

गया है। कबि की कोमल कल्पना ने इसमें वेदना, करुणा एवं पीड़ा का सजीव चित्र खींच दिया है :

"अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हल्दी के हाथ!
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन शून्य कपोल।
हाय रुक गया यहीं संसार,
बना सिन्दूर अंगार।
बात-हत लतिका वह सुकुमार,
पड़ी है, छिन्नाधार!!!"

भाषा एवं शब्द-योजना में कोमल कल्पना—भावों के अनुकूल भाषा और शब्द-चयन का प्रयोग करने से पन्त जी की कोमल कल्पना बहुत आगे है। भाषा और शब्द उनके संकेतों पर उनका अनुगमन करते हैं। पन्त जी को भाषा और शब्दों के मर्म और आत्मा का पूर्ण ज्ञान है। एक ही शब्द के पर्यायवाची शब्द आकर भिन्न-भिन्न अर्थ का द्योतन करते हैं। भाषा एवं शब्द-शिल्पी की दृष्टि से पन्त जी की समता नहीं मिलेगी। वे कर्णकटु और अनगढ़ शब्दों को भी अपनी कोमल-कल्पना से मधुर बना देते हैं। पन्त जी ने शब्दावली को सुकुमारता के आवरण में प्रस्तुत किया है। इससे भाव की रसधारा प्रवाहित हो उठती है। पन्त जी का निम्न कथन दृष्टव्य है :

"जिस प्रकार संगीत के भिन्न-भिन्न स्वर राग की लय से इस प्रकार मिल जाते कि हम उन्हें पृथक नहीं कर सकते, यहाँ तक कि उनके होने न होने की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता, हम केवल राग के सिन्धु में डूब जाते हैं, उसी प्रकार कविता में भी शब्दों के भिन्न-भिन्न कण एक होकर रस की धारा के स्वरूप में बहने लगते, उनकी लँगड़ाहट में गति आ जाती है। हम केवल रस की धारा को देख पाते हैं, कणों का हमें अस्तित्व ही नहीं मिलता।" निम्न उदाहरण में भावानुकूल शब्दावली का कितना सुकुमार एवं मधुर प्रयोग हुआ है। 'काजर कारे', 'बादर', 'बहादुर' शब्द स्वरैक्य में मधुरता एवं चित्र-राग की सृष्टि कर देते हैं :

"धूम धुँआरे काजर-कारे,
हम ही विकरारे बादर।
मदनराज के वीर-बहादुर,
पावस के उड़ते फणिधर।"

पदावली को सुकुमार बनाने के लिए पन्त जी ने कहीं-कहीं ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इससे काव्य और संगीत की मधुर धारा प्रवाहित हो उठी है। 'धीरे' शब्द का प्रयोग कोमलता की सृष्टि करता है :

"नवल कवियों के धीरे झूम,
प्रसूनों के अधरों को चूम।
मुदित कवि-सी तुम अपना पाठ,
सीखती हो सखि ! जग में घूम।
सुना दो न, हे मधुर-कुमारि,
मुझे भी ये केसर के गान।"

छन्द-विधान में कोमल कल्पना—पन्त जी के काव्य में छन्दों का प्रयोग भावानुकूल है। वह भाव और वस्तु-वर्णन को कोमलता और सौन्दर्य प्रदान करता है। पन्त के छन्दों में गति का उत्थान-पतन, शब्दों का मधुर स्पन्दन, राग-ध्वनि की मादक रुन-झुन और संगीत का अनुसरण देखते ही बनता है। छन्दों में झरनों का कलरव और वर्षा की रिम-झिम बूँदों का संगीत भरा हुआ है। पन्त जी ने अपने छन्दों को सुकुमार बनाने का अथक प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में उनका निम्न कथन द्रष्टव्य है :

"छन्दों को अपनी अँगुलियों पर नचाने से पूर्व कवि को छन्दों के संकेतों पर नाचना पड़ता है। सरकस के नवीन अदम्य अश्वों की तरह उन्हें साधना, उसके साथ-साथ घूमना, दौड़ना, चक्कर खाना पड़ता है, तब कहीं वे स्वेच्छानुसार इंगित-मात्र पर वर्तुलाकार, अण्डाकार, आयताकार नचाये जा सकते हैं। जिस प्रकार 'सा रे ग म' आदि स्वर एक होने पर भी पृथक-पृथक वाद्य यन्त्रों में उनकी पृथक-पृथक रीति से साधना करनी पड़ती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न छन्दों के तारों, परदों तथा तन्तुओं से भावनाओं का राग जागृत करने से पूर्व, भिन्न-भिन्न प्रकार से निहित प्रत्येक की स्वर-योजना से परिचय प्राप्त कर लेना पड़ता है, तभी छन्द की तंत्रियों से कल्पना की सूक्ष्मता, सुकुमारता सफलतापूर्वक झंकारित की जा सकती है।

निम्न उदाहरण में सुकुमारता एवं कोमलता के साथ गति-शीलता और चित्रोपमता मिलती है :

"नवोढ़ा—बाल—लहर,
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुककर
सरकती है सत्वर।"

× × ×

"आज बचपन का कोमल गात;
जरा का पीला पात।
चार दिन सुखद चाँदनी रात;
और फिर अन्धकार अज्ञात।"

अलंकार-योजमा में कोमल-कल्पना—पन्त जी के अलंकार-विधान में भी सुकुमार एवं कोमल कल्पना मिलता है। पन्त जी के काव्य में प्रायः साहृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग हुआ। उपमा और रूपक आपके विशेष प्रिय अलंकार हैं। उपमा और रूपक का प्रयोग परम्परागत मात्र नहीं है। इनमें अपनी उर्बर सुकुमार कल्पना से पन्त जी ने नवीनता और मौलिकता ला दी है। निम्न उदाहरणों में छाया का मानवीकरण करते हुए पन्त जी सुन्दर सुकुमार और सजीव उपमानों की योजना करते हैं :

"पीले पत्तों की शय्या पर,
तुम विरक्ति-पी मूर्छा-सी।
विजन-विपिन में कौन पड़ी हो,
विरह-मलिन, दुःख विधुरा-सी?

× × ×

तरुवर के छायानुवाद-सी,
उपमा-सी, भावुकता-सी।
अविदित भावाकुल भाषा-सी,
कटी-छँटी "नव कविता-सी।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पन्त जी का काव्य भावानुभूति प्रधान है। पन्त जी की कोमल, सुकुमार कल्पना सजीव चित्रोपम काव्य का सृजन करती है। उनके समस्त शब्द-चित्र, अलंकार और काव्य कोमल कल्पना को लेकर सामने आते हैं। पन्त जी की कोमल कल्पना प्रकृति को सुकुमार प्रहरी के रूप में देखती है? पन्त जी यथार्थ में कोमल कल्पना के भावुक कवि हैं। जैसा कि आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के निम्न कथन से स्पष्ट है :

"कल्पना ही पन्त जी की कविता की विशेषता और उसके आकर्षक का रहस्य है। यही उनकी बहुमुखी रचनाओं का आकार, उनकी रमणीयता का विस्तार करती है। कल्पना केवल शैली में ही नहीं, काव्य-विषय में भी है। कल्पना ही पन्त जी की कविता का मेरुदण्ड और उनकी काव्य-सृष्टि का मापदण्ड है। कोरी बाल्य-सुलभ उड़ानों से लेकर अत्यन्त तल्लीन और गहन कल्पना अनुभूतियों के चित्रण में पन्त जी का विकास क्रम देखा जा सकता है।"

प्रश्न १७—पन्त के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न १८—पन्त के काव्य की विशेषताओं पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए सिद्ध कीजिए कि वे सम्पूर्णता के कवि हैं।

उत्तर—पन्त जी अपनी काव्य-भावना के पचास से अधिक वर्ष पार कर चुके हैं। प्रकृति और प्रेम के सुकुमार कवि पन्त की काव्यधारा छायावाद, रहस्यवाद,

प्रगतिवाद, अन्तश्चेतनावाद और मानवतावाद के कूलों को समेटती हुई प्रवाहित हुई है । उसमें आज का युग, उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ और मानव मूल्य मुखरित हैं । 'लोकायतन' में पन्त जी की समस्त काव्य धारा का समन्वित रूप देखा जा सकता है । पन्त जी प्रारम्भ में ही सम्पूर्णता के कवि रहे । 'लोकायतन' में उनका यह रूप बड़े उभरे हुए एवं सजीव रूप में मिल जाता है । 'पल्लव' की भूमिका में पन्त जी ने कविता को 'परपूर्ण क्षणों' की वाणी कहा है । पन्त जी के काव्य की संपूर्णता भाव सत्ता एवं काव्य-चिन्तन के साथ निरन्तर विकसित होती गई है । अपनी परिपूर्णता में उन्होंने चेतना के सारे स्तरों को क्रमशः आत्मसात् और अंगीकार कर लिया है । सौन्दर्य-चेतना, बौद्धिक-चेतना और सूक्ष्म-चेतना एक दूसरे को अतिक्रमण करने के साथ-साथ पन्त के सम्पूर्ण काव्य की अन्तश्चेतना को एक सूत्र में सम्बद्ध करती हैं । 'उच्छवास' से लेकर गुंजन' तक समस्त सौन्दर्य-चेतना का काव्य है । पन्त जी की यह सौन्दर्य-दृष्टि एकांकी अथवा लोक-मंगल से पृथक नहीं है । प्रेम-भावना कहीं भी उच्छृंखल एवं स्वार्थ-जनित नहीं है । अपनी सौन्दर्य-सृष्टि की इस विशेषता में पन्त जी अकेले हैं । सौन्दर्य-चेतना एक नये प्रकार से संस्कार-युक्त मनुष्य से परिचालित है । पन्त जी की कविता की वैयक्तिक निर्वेयक्तिकता ही उसे सम्पूर्णता प्रदान करती है । सौन्दर्य-चेतना काल की पन्त जी की सारी कविताएँ शिल्प-तन्त्र, भाषा, शब्द, लय तथा काव्य की एकान्विति में सम्पूर्णता से गुँथी हुई हैं । पन्त जी के काव्य की यह सम्पूर्णता: और सफलता अप्रितम है । इस वैभवमयी सौन्दर्य-चेतना से ही उनकी बौद्धिक-चेतना विकसित होती है । इसके परिणामस्वरूप उनके काव्य-विकसित का अगला चरण एक नितान्त नया रूप लेता हुआ दृष्टिगोचर होता है । पन्त जी की काव्य-चेतना सतत् जागरूक चेतना का फल है । पन्त जी ने सदैव नई भाव-भूमियों को आत्मसात् करके उन्हें अपनी कविता में व्यक्त किया है । इन सारे प्रयत्नों में कविता कहीं भी खण्ड-खण्ड नहीं हुई है । सर्वत्र ही एक सूक्ष्म संगति बनी रही है । पन्त जी की काव्यधारा में जो परिवर्तन हुए उनमें मार्क्स या अरविन्द-दर्शन का प्रभाव मानना आंशिक ही सत्य है । पन्त जी का कवि-व्यक्तित्व स्वतन्त्र चेता रहा । वे किसी वाद विशेष से बँधकर कभी नहीं चले । पन्तजी की इस काल की कविताओं को बौद्धिक-चेतना का काव्य भी कहा जाता है । इस बौद्धिक-चेतना ने उन्हें निराशवादी होने से बचाया । इस युग की कविताओं में भी 'जन' और 'जग' की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है । 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचनाएँ पुरातन की परिसमाप्ति और नव-निर्माण का सन्देश देती हैं :

> "द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
> हे स्रस्त ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
> × × ×
> कंकाल-जाल · जग में फैले
> फिर नवल रुधिर पल्लव लाली !

प्राणों की मर्मर से मुखरित,
जीवन की मांसल हरियाली।''

अन्तश्चेतनावादी रचनाओं में पन्त जी की कविता की मनोभूमि उस द्रष्टा की मनोभूमि बन जाती है, जिसके लिये वेदों में ऋषि शब्द का आख्यान किया गया है।

काव्योपलब्धि की इसी भूमिका पर 'लोकायतन' की रचना हुई है। 'लोकायतन' में पन्त जी के काव्य की सम्पूर्ण अन्तर्मुख और बहिर्मुख परिणतियाँ एक हो गईं। कोमल-कल्पना, सौन्दर्य-सृष्टि, अन्तश्चेतना, युग के अनुरूप प्रगतिशीलता, बौद्धिक चैतन्यता और लोक-मंगल की गहरी दृष्टि का समन्वय 'लोकायतन' में हुआ है। इस काव्य में पन्त जी एक महान् युग-द्रष्टा के रूप में सामने आते हैं :

'कविर्मनीषी का कर्त्तव्य सनातन,
जीवन-मंगल का करता मुख सर्जन।'

'लोकायतन' में उर्ध्व-चेतना, अन्तश्चेतना और लोक-मंगल की चेतना का समन्वय सिद्ध कर देता है कि पन्त जी सम्पूर्णता के महाकवि हैं। 'लोकायतन' युग-धर्म और युग-जीवन के विराट यथार्थ को समेटे हुए हैं। इसके पश्चात् पन्त जी के 'किरण-वीणा', 'पुरुषोत्तम राम', 'पौ फटने से पहले', 'तारापथ' आदि काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें भी पन्त जी की सम्पूर्णता के दर्शन होते हैं। पन्तजी का वर्तमान युग महासंक्रान्ति का युग है। पन्त जी जैसा महाकवि ही इस महासंक्रान्ति युग में कविता में आस्था और लोक-मंगल की प्रतिष्ठा कर सकता है। एक महान् जीवन और विराट आस्था की परिकल्पना का सन्देश पन्त जी के समस्त काव्य में मिलता है। पन्त जी के काव्य में सत्य की पूर्णता की साधना और सार्वभौमिक शुभेच्छा का सन्देश है, इसीलिए वे सम्पूर्णता के कवि हैं।

प्रश्न १९—पन्त के भाषा-सौन्दर्य का विश्लेषण समीचीन उदाहरणों सहित कीजिए।

अथवा

प्रश्न २०—पाठक्रम में निर्दिष्ट कविताओं के आधार पर पन्त जी की नवीन उपमान, योजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, शब्द-संगति की कोमलता एवं चित्रोपम अभिव्यक्ति पर एक लेख लिखिए।

अथवा

प्रश्न २१—पन्त जी के काव्य की कलापक्ष की विशेषता का उद्घाटन कीजिए।

उत्तर—पन्त जी के काव्य में कलापक्ष की दृष्टि से सर्वथा नवीनता है। भाषा छन्द, अलंकार और शब्द-चयन आदि प्रत्येक क्षेत्र में पन्त जी नवीनता लेकर आये। भाषा की अर्थ-शक्ति का जैसा ज्ञान पन्त जी को है, वैसा हिन्दी के अन्य कवियों को बहुत ही कम है। एक ही अर्थ के बोधक पर्यायवाची शब्दों में क्या सूक्ष्म

अन्तर है ? इसको पन्त जी ने भली-भाँति पहचाना है और उसी के अनुसार 'भौंह', भृकुटि' आदि की भावानुकुलता देखकर प्रयोग किया है। उनका सा शब्द-चयन अन्यत्र नहीं मिलता। पन्त जी की भाषा में कोमलता और संगीत की मधुरता है। खड़ी बोली को मृदुता और स्निग्धता प्रदान करने का श्रेय पन्त जी को ही है।

पन्त जी के काव्य का कलापक्ष—पन्त जी के काव्य के भावपक्ष की तरह ही उनके काव्य का कलापक्ष भी पूर्ण और सफल है। पन्त जी की काव्यकला कोमल, कमनीय और सुकुमार है। पन्त जी मुख्य रूप से कलाकार हैं। पन्त जी की काव्य-कला की प्रमुख विशेषता कोमल कल्पना-शक्ति है। यह कोमल-कल्पना ही पन्त जी की काव्य कला का मेरुदण्ड है। पन्त जी की काव्य कला का प्रमुख गुण उनकी चित्रमयता है। वे भावों, मुद्राओं और वस्तुओं का चित्र-सा उपस्थित कर देते हैं। निम्न उदाहरण में सन्ध्या का सौन्दर्य चित्र दृष्टव्य है :

बाँसों का झुरमुट
सन्ध्या का झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
करती टी वी टी टुट-टुट।

पन्त जी इस प्रकार शब्द-चित्र उपस्थित करने में बहुत सफल हुए हैं। ऐसी चित्रमयता मिलना अन्यत्र दुर्लभ है।

अलंकार—पन्त के काव्य में अलंकार बिना बुलाये आ गये हैं। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। शब्दालंकार तो भाषा में मिलजुलकर एक हो गये हैं :

"सिकता की सस्मित सीपी पर·······।"
"मृदु मन्द-मन्द मन्थर-मन्थर·······।"
"साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर·······।"

उन्होंने अनुप्रास का प्रयोग तो बड़े स्वाभाविक रूप से किया है। अनुप्रास पर उनका पूर्ण अधिकार है :

"सहयोग सिखा शासित जग को, शासन का दुर्वह हरा भरा।"
"पत्ते पक्षी पुष्पों से प्रेरित·······।"
"शुभ्र शान्ति में समाधिस्थ ! शाश्वत सुन्दरता की विभूति।"

जैसे रमणी के नुपुरों का झनकार रसिकों के मन को आकर्षित करती है, उसी प्रकार पन्त जी के अनुप्रासों की ध्वनिमयी अभिव्यक्ति भावुक जनों को मुग्ध बनाती है। श्लेष, पुनरुक्ति और यमक आदि अलंकारों का प्रयोग भी बड़ा सफल हुआ है।

पन्त जी के अर्थालंकारों पर पाश्चात्य प्रभाव अधिक है। सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक है। उपमा और रूपक भी बड़ी सफलता से कार्य में लाये

गये हैं। पन्त जी अपने अलंकार-विधान में स्वतन्त्र रहते हैं। सांगरूपक, उल्लेख, स्मरण, सन्देह, समासोक्ति, अन्योक्ति, सहोक्ति उत्प्रेक्षा और दूसरे अलंकारों का उपयोग रुचि-वैचित्र्य के अनुकूल किया है। अँग्रेजी से पन्त जी ने मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय अलंकार लिये हैं।

छन्द-योजना—पन्त की छन्द-योजना अत्यन्त विशद, व्यापक एवं सार्थक है। छन्द के विषय में पन्त की धारणा है—"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृदय-कम्पन है, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन में धारा की गति सुरक्षित रखते हैं (जिसके बिना वह अपनी बन्धन-हीनता में प्रभाव खो बैठती है), उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से पद को स्पन्दन, कम्पन, वेग प्रदान कर निर्जीव शब्द के रोड़ों में एक कोमल कलरव भर उन्हें सजीव बना देता है।" इस दृष्टिकोण में उन्होंने निम्न बातें अपनाईं :

(क) छन्द के क्षेत्र में नये प्रयोग।
(ख) संस्कृत के वर्णिक छन्दों की उपेक्षा।
(ग) सवैया और कविता की उपेक्षा।
(घ) तुक के प्रति मोह ('तुक राग का हृदय है।')

मात्रिक छन्दों में ही पन्त जी ने समस्त काव्य की रचना की है। छन्द-योजना में भी अँग्रेजी का प्रभाव पड़ा। उनके छन्द भाव की गति के अनुसार चलते हैं, 'उच्छवास' नामक कविता से स्पष्ट हो जाता है कि कवि इस शेत्र में बड़ी स्वतन्त्रता से काम लेना चाहता है। वह कुछ ही पंक्तियों में अनेक छन्द गूंथ देता है। यह केवल 'लय-साम्य' ढूंढ़ता है। शेष के लिए वह अपने को स्वतन्त्र समझता है। **उदाहरण :**

सिसकते अस्थिर गान से
बाल-बादल सा उठकर आज
सरल अस्फुट उच्छवास
अपने छाया के पंखों में
नीरव घोष भरे पंखों में
भरे आँसूं गूंथ, फैल गम्भीर मेघ सा
आच्छादित कर ले सारा आकाश।
ग्रह अमूल्य मोती का साज,
इन सुवर्णमय, सरस परों में।

कबि का साधारण वर्णन भी उसकी चित्रांकन शक्ति से स्फूर्तिमय और सजीव हो उठता है। प्रत्येक शब्द एक नये सौन्दर्य का उद्घाटन करता हुआ सामने आता है। 'नौका-बिहार' की ये पंक्तियाँ लीजिये :

नौका से उठती जल हिलोर,
हिल उठते नभ के ओर छोर।
विस्फारित नयनों से निश्चय कुछ खोज रहे चल तारक दल।
ज्योतित कर नभ का अन्तस्तल,
जिनके लघु-द्वीपों को चंचल की ओट किये अविरल।

छन्द मे चित्रोपमता और कोमलता लाने के लिए उन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं। 'ज्योत्सना' के गीत गीत-काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। 'ज्योत्सना' के इस गीत को देखिए :

कुन्द धवल, तुहिन तरल
तारा दल, ए—
तारक चल दल जल पल
नील गगन विकसित दल
नीलोत्पल, ए (हम)—
नृत्य निरत सकल सतत;
रवि, शशि, उडु, ग्रह अविरत
पुलकित अणु-अण गति रत
प्रेम-विकल, ए (हम)—

इस गीत में शब्द-संगीत और छन्द-संगीत का इतना सामंजस्य है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना ही करना असम्भव है। इस तरह छन्द और संगीत का आदर्श समन्वय पन्त के अनेक गीतों में मिलेगा।

प्रश्न २२—पन्त जी की भाषा-शैली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

प्रश्न २३—"पन्त का काव्य छायावादी काव्य-शैली के प्रतिनिधि गणों से युक्त है।"—सिद्ध कीजिये।

अथवा

प्रश्न २४—"पन्त जी ने उस खड़ी बोली को मधुरता, गेयता तथा कोमलता प्रदान की है, जिसका नामकरण उसकी इन विपरीत विशेषताओं के कारण ही हुआ था।" इस उक्ति को दृष्टि में रखते हुए पन्त जी के कलापक्ष पर एक निबन्ध लिखिये जिसमें आवश्यकतानुसार उदाहरण भी दीजिये।

अथवा

प्रश्न २५—छायावादी कवि के रूप में सुमित्रानंदन पन्त का महत्व निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न २६—छायावादी कवियों में पन्त जी का स्थान निश्चित कीजिए।

अथवा

प्रश्न २७—क्या आप पन्त जी को छायावाद का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं? पक्ष या विपक्ष में अपने मत की पुष्टि कीजिए।

अथवा

प्रश्न २८—छायावादी कविता की विशेषताओं की विवेचना करते हुए पन्त जी के महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—छायावादी काव्य का स्वरूप और विशेषताएँ इस प्रकार हैं: (१) छायावाद में आध्यात्मिकता होती है, (२) यह एक प्रवृत्ति विशेष है, (३) छायावाद प्रकृति में मानवीकरण है, (४) छायावाद में एक दार्शनिक अनुभूति है, (५) यह एक भावनात्मक दृष्टिकोण है, (६) यह स्थल के प्रति सूक्ष्म का एक विद्रोह है, (७) यह एक गीति-काव्य है जिसमें प्रेम और सौन्दर्य का अंकन होता है, (८) इसमें स्वानुभूति का ध्वन्यात्मक, लाक्षणिक या उपचार-वक्रतामयी प्रतीकात्मक शैली में अभिव्यक्तिकरण होता है, (९) इसमें युगानुरूप वेदना की विवृत्ति होती है और यह एक सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है, (१०) इसमें आधुनिक औद्योगिकता से प्रेरित व्यक्तिवाद है, जिसमें वैयक्तिक चिन्तन और अनुभूति का प्राधान्य है तथा इसमें मानवीय जीवन के नव मूल्यों का अंकन है, (११) यह एक थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह है, (१२) इसका मूलाधार सर्वात्मवाद है।

पन्त और छायावाद—पन्त जी छायावाद के प्रथम उन्नायकों में से है और उन्होंने अपने 'पल्लव' तथा 'गुंजन' शीर्षक काव्यों में छायावाद की सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना का सफल समावेश किया है। छायावाद के प्राकृतिक चित्रों में कवि की अपनी भावनाओं की छाया रहती है और कवि की भावनाओं में प्रकृति सौन्दर्य की छाया का अस्तित्व रहता है। उदाहरणार्थ, गुंजन में उनकी निम्नलिखित भावाभिव्यक्ति देखिए:

खोल कलियों ने उर के द्वार
दे दिया उनको छवि का देश!
बजा भौंरों ने मधु का तार
कह दिये भेद भरे सन्देश।

× × ×

गूढ़ संकेतों में हिल पात,
कह रहे अस्फुट बात,
आज कवि के चित्र चंचल प्राण,
पा गए अपना मान।

पन्त जी के काव्य में छायावादी भावनाओं और छायावादी कला का सफल समावेश हुआ है। इस प्रकार छायावादी काव्यधारा में पन्त जी का विशिष्ट स्थान है और उनकी वीणा, पल्लव, ग्रन्थि, गुंजन आदि कृतियाँ छायावादी काव्यधारा के अन्तर्गत ही हैं। साथ ही जिस प्रकार श्री जयशंकर प्रसाद को छायावाद के उद्‌भव विकास का श्रेय दिया जाता है, उसी प्रकार पंत को उसे लोकप्रिय बनाने का श्रेय है और डॉ० इन्द्रनाथ मदान का तो यही कहना है "छायावादी कविता को जिन कवियों ने आगे बढ़ाया उनमें हमारे पंत जी का प्रमुख स्थान है यों तो छायावाद का प्रारम्भ जयशंकर 'प्रसाद' जी के 'झरना' काव्य-संग्रह से माना जाता है और वही इसके प्रवर्तक कहे जाते हैं, लेकिन पंत जी ने छायावाद की कला को सबसे अधिक निखारा है।"

अब हम यहाँ यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि पंत की काव्यधारा में छायावादी विशेषताएँ किस रूप में और किस परिणाम में विद्यमान हैं।

छायावाद की विषयगत प्रवृत्तियाँ

व्यक्तित्व की प्रधानता—छायावादी कविता की विषयगत प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करते समय हमारा ध्यान सबसे पहले इस ओर आकृष्ट होता है कि छायावाद में व्यक्तित्व की प्रधानता विशेष रूप से दीख पड़ती है और छायावादी कविता को मूलतः व्यक्तिवाद की कविता कहा जाता है तथा डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में "काव्य में वैयक्तिकता के समावेश से हमारा तात्पर्य कवि की आत्मगत उक्तियों से है। यद्यपि यह सत्य है कि छायावाद युग से पूर्व भी कविगण हिन्दी काव्य में आत्माभिव्यक्ति को स्थान प्रदान किया करते थे। किन्तु इस युग में कवियों ने इसे अपने काव्य की एक प्रवृत्ति विशेष के रूप में स्वीकार कर लिया। छायावाद में स्थूल भौतिक वस्तुओं के आख्यान के लिए स्थान नहीं था, अतः सूक्ष्म तत्वों के चित्रण के लिए कवियों ने स्वभावतः अपनी आत्मा के चित्रण का मार्ग अपनाया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि छायावाद में कवि की अन्तर्मुखी वृत्ति की अभिव्यक्ति रहती है अर्थात् छायावादी कवि इतिवृत्तात्मक और वस्तुगत कविता के स्थान पर भावात्मक और आत्मगत कविता की रचना की ओर प्रवृत्त होता है। पन्त जी ने अपनी आत्म-प्रधान कविताओं में नवीन सांस्कृतिक और दार्शनिक चेतना तथा जीवन दृष्टि का समावेश किया है। इस प्रकार उन्होंने अपनी व्यक्तिवादी कविताओं में चिन्ता के वैभव और अनुभूति के उल्लास का सफल समावेश किया। उनके काव्य में यह वैयक्तिकता स्व-रति में परिवर्तित हो गई है और गुंजन की रचना के उपरान्त उन्होंने इसे आदर्शमूलक रूप प्रदान कर दिया है। 'गुंजन' की निम्नलिखित पंक्ति में इस स्व-रति की ध्वनि स्पष्टतया विद्यमान है :

"अपने ही मधु में लिपटा, करता रहता मधु गुञ्जन ॥"

वस्तुत व्यक्तित्व की प्रधानता या आत्माभिव्यंजना की अधिकता के कारण

छायावादी कविता में वैयक्तिक सुख-दुख की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से हुई लेकिन छायाबादी कवियों की वैयक्तिकता में निजत्व की अपेक्षा प्रबुद्ध भारतीयों की मर्म-वेदना भी व्यक्त हुई है तथा श्री शिवदान सिंह चौहान के शब्दों में "कबि का 'मैं' प्रत्येक प्रबुद्ध भारतवासी का 'मैं' था, इस कारण कबि की विषयगत दृष्टि ने अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूति को व्यक्त करने के लिए जो लाक्षणिक भाषा और अप्रस्तुत योजना शैली अपनाई, उनके संकेत और प्रतीक हर व्यक्ति के लिए सहज प्रेषणीय बन सके। छायावादी कवियों की भावनाएँ यदि उनके विशिष्ट वैयक्तिक दुखों के रोने-धोने तक ही सीमित रहती, उनके भाव यदि केवल आत्मकेन्द्रित ही होते तो उनमें इतनी व्यापक प्रेषणीयता कदापि न आ पाती।" इस प्रकार पंत की कविताओं में आत्माभिव्यंजना के कई उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं और उच्छ्वास, आँसू व ग्रंथि इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं, उदाहरणार्थ :

प्राण ! तुम लघु-लघु गात !
नील नभ के निकुञ्ज में लीन,
नित्य नीरव, निःसंग नवीन
निखिल छवि की छवि ! तुम छवि हीन
अप्सरा सी अज्ञात !
अधर मर्मरयुत, पुलकित अंग
चूमती चल पद, चपल तरंग
चटकतीं कलियाँ पा भ्रू-भंग
थिरकते तृण, तरु पात !
हरित-द्युति चंचल अंचल अछोर
सजल छवि, नील-कंबु तन गोर
चूर्ण कच, साँस सुगन्ध झकोर
परों में सायं प्रात !
विश्व हृत्-शतदल निभृत निवास
अहर्निशि साँस-साँस में लास !
अदृश्य, अस्पृश्य, अज्ञात !

साथ ही एक स्थन पर कवि के अहंभाव का विस्फोट भी इस प्रकार दीख पड़ता है :

मधुरिमा के मधुमास
मेरा मधकर का-सा जींवन
कठिन कर्म है कोमल है मन,
विपुल मृदुल समनों से सुरभित
विकसित है विस्मृत जग उपवन।

यही हैं मेरे तन, मन प्राण
यही है ध्यान, यही अभिमान,
मूल की ढेरी, में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।

सौन्दर्य-प्रियता—सौन्दर्य प्रियता छायावादी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है और छायावादी कवि प्रत्येक सुन्दर वस्तु के साथ अपने हृदय के रागात्मक सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है, अतः स्वाभाविक ही छायावादी काव्यधारा में सौन्दर्य-चित्रण के कलात्मक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। छायावादी कवियों ने वाह्य और आभ्यांतरिक दोनों ही प्रकार के सौन्दर्य-चित्र अपनी उक्तियों में अंकित किए हैं तथा प्रकृति-चित्रण में तो उनका मन बहुत अधिक रमा है और उन्होंने प्रकृति पर चेतनता का आरोप भी किया है। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी आदि सभी प्रमुख छायावादी कवियों ने प्रकृति को चेतन माना है और जैसा कि श्री विश्वम्भर 'मानव' का कहना है "जहाँ तक पंत जी का सम्बन्ध है उन्होंने इससे भी सूक्ष्मता और गहराई से प्रकृति के प्राणों को पहचाना है। उन्होंने उसे सबसे अधिक व्यापक रूप में मानवीय क्रिया-कलापों से सम्पन्न किया है। उनके 'पल्लव' विश्व पर विस्मय चितवन डालते हैं, उनका गिरि सुमन दृगों से अवलोकता है। उनका उपवन फूलों के प्याले में अपना यौवन भर-भर कर मधुकर को पिलाता है; उनके मेघों के बाल मेमनों से गिरि पर फुदकते हैं, उनकी लहरें किरणों के हिंडोल पर नाचती हैं, विटपी की व्याकुल प्रेयसी छाया बाँह खोलकर कवि को गले लगाने की क्षमता रखती है, उनका मलयानिल उर्वी के उर से तद्रिल छायांचल सरका देता है।"

मानवीकरण—पन्त की कविताओं में प्रकृति की एक-एक वस्तु में चेतना आरोपित की गयी है और कवि ने प्रकृति का शरीर ही नहीं देखा अपितु मन और उसकी भावनायें भी देखी हैं। कवि जब सरिता, सुमन, नक्षत्र बादल आदि के सम्पर्क में आता है तब उनकी रूप निहारने की अपेक्षा उनके हृदय की बातें सुनना चाहता है और इसीलिए सरिता के सम्बन्ध में यह कहता है :

मैं भी उस के गीत सीखने
आज गई थी उसके पास
उनके कैसे मृदुल भाव हैं
उज्ज्वल तन मन भी उज्ज्वल !

साथ ही अनेक स्थलों पर अन्तःप्रकृति व बाह्य प्रकृति में तादाम्य स्थापित किया गया है और इस प्रकार 'सववाद या सर्वात्मवाद' की भावना भी दीख पड़ती है; जैसे :

स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान।

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान।
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

नारी रूप का सूक्ष्म चित्रण—छायावादी कवियों का नारी रूप चित्रण सूक्ष्म ही है और उनकी उक्तियों में रीतिकालीन कवियों की भाँति स्थूलता व निरावंणता नहीं पाई जाती, अत: पन्त ने भी नारी रूप सौन्दर्य का सूक्ष्म व भावमय चित्रण ही किया है; उदाहरणार्थ :

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन,
सुरीले ढीले अधरों बीच,
अधूरा उसका लचका गान,
विकल बचपन के मन की खींच,
उचित बन जाता था उपमान।

शृंगारिकता—छायावादी काव्या-धारा में शृंगारिकता की भी अधिकता है और जैसा कि डॉ॰ नगेन्द्र का कहना है छायावाद की कविता प्रधानत: शृंगारिक है, क्योंकि उसका जन्म हुआ है व्यक्तिगत कुंठाओं से और व्यक्तिगत कुंठाएँ प्राय: काम के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं। जिस समय छायावाद का जन्म हुआ उस समय स्वच्छन्द विचारों के आदान से स्वतन्त्र प्रेम के प्रति समाज में आकर्षण बढ़ रहा था। परन्तु सुधार युग की कठोर नैतिकता से सहम वह अपने में ही कुंठित रह जाता था। समाज के चेतन मन पर नैतिक आतंक अभी इतना अधिक था कि इस प्रकार स्वच्छन्द भावनाएँ अभिव्यक्ति नहीं पा सकती थीं। निदान के अवचेतन में उतर कर वहाँ से अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्त होती रहती थीं और यह अप्रत्यक्ष रूप था नारी का अशरीरी सौन्दर्य अथवा अतीन्द्रिय शृंगार। छायावाद का यह अतीन्द्रिय शृंगार दो प्रकार से व्यक्त होता है। एक तो प्रकृति के प्रतीकों द्वारा, प्रकृति पर नारी भाव के आरोप द्वारा। दूसरे नारी के अतीन्द्रिय सौन्दर्य द्वारा अर्थात् उसके मन और आत्मा के सौन्दर्य को प्रधानता देते हुए उसके शरीर के अमांसल चित्रण द्वारा।

छायावाद में शृंगार के प्रति उपभोग का भाव न मिलकर, विस्मय का भाव मिलता है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और मांसल न होकर कल्पनामय या मनोमय है। छायावाद का कवि प्रेम को शरीर की भूख न समझकर एक रहस्यमयी चेतना समझता है। नारी के अंगों के प्रति उसका आकर्षण नैतिक अंग से सहमकर जैसे एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणित हो गया है, उसी कौतूहल ने

छायावाद के कवि और नारी के व्यक्तित्व के बीच अनेक रेशमी झिलमिल पर्दे डाल दिए हैं और वास्तव में छायावाद के झिलमिल काव्य-चित्रों का मूल उद्गम ये ही झिलमिल पर्दे हैं। उसके वायवी रूप रंग का वैभव उन्हीं से उत्कीर्ण होता है और इन्हीं पर आश्रित होने के कारण छायावाद की काव्य-सामग्री के अधिकांश प्रतीक काम-प्रतीक हैं।" पंत की कविताओं में छायावाद की इन श्रृंगारिक प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं और कहीं-कहीं कोमल व मधुर श्रृङ्गार चित्र भी दीख पड़ते हैं :

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकसित मृदु उर पुलकित गात।
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक दल पात॥

करुणा की विवृत्ति—छायावादी काव्य में युगानुरूप करुणा की प्रवृत्ति भी हुई है और साथ ही आंतरिकता की प्रधानता होने से विरह-भावना की अधिकता सी दीख पड़ती है। पंत की उक्तियों में दुःखवाद एवं करुणा की धारा प्रवाहित होती है और उनका कहना है कि इस संसार में दुःख है तथा सुख की आशा करना तारे तोड़ने की आयोजना करना है :

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु
अरे, जग है जग का कंकाल।
वृथा रे, यह अरण्य-चीत्कार,
शांति, सुख है उस पार।

मानवतावादी दृष्टिकोण—अन्य छायावादी कवियों की भाँति पन्त की उक्तियों में भी, जीवन मीमांसा सम्बन्धी उक्तियाँ मिलती हैं और मानवतावादी दृष्टिकोण भी विद्यमान है तथा उन्होंने सुख-दुःख दोनों को ही परमात्मा की देन समझा है और जीवन में सुख-दुख का संतुलन भी आवश्यक माना है :

जग पीड़ित है अति दुःख से, जग पीड़ित रे अति सुख से।
मानव जग में बँट जाये, दुःख सुख से और सुख दुख से।

शैलीगत प्रवृत्तियाँ—उक्त विषयगत प्रवृत्तियों के साथ ही छायावादी काव्य-धारा में प्रतीकात्मकता, चित्रात्मक भाषा व लाक्षणिक पदावली, गेयता, मानवीकरण व विशेषण-विपर्यय आदि नवीन अलंकारों की उद्भावना और कोमलकांत संस्कृत पदावली आदि विशेषतायें भी दीख पड़ती हैं।

इस प्रकार कलागत विशिष्टिताओं की दृष्टि से भी पन्त की छायावादी कविताएँ पूर्ण सफल रही हैं और हम देखते हैं कि डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त ने उचित ही कहा है "पन्त जी ने छायावाद के भाव-सौष्ठव की भाँति उसके कला-सौन्दर्य की भी व्यापक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी कविताओं में छायावाद को सभी कला-विषयक विशेषताएँ सहज रूप में प्राप्त हो जाती हैं। इस दृष्टि से उन्होंने छायावाद की प्रतीक शैली और चित्र शैली को अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति प्रदान की है। शैली के अतिरिक्त भाषा, छंद और अलंकार प्रयोग के क्षेत्र में भी अपने काव्य में छायावादी कला की वक्रता, व्यंजना और संकेत-प्रणाली का स्मरणीय समावेश किया है।"

जयशंकर प्रसाद

प्रश्न १—भावपक्ष और कलापक्ष को दृष्टि में रखते हुए प्रसाद जी के काव्य की विशेषताओं की सम्यक् विवेचना कीजिए ।

अथवा

प्रश्न २—प्रसाद जी की काव्य-साधना और काव्य-सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—प्रसाद छायावाद के जनक—प्रसाद जी छायावाद काव्य के जनक और पोषक होने के साथ ही आधुनिक काव्यधारा का गौरवमय प्रतिनिधित्व करते हैं । प्रसाद जी ने जहाँ रीतिकाल की अफीमची शृंगारिकता से कविता कामिनी को निकाला, वहाँ उन्होंने द्विवेदी युग के इतिवृत्तात्मकता के नीरसता के शुष्क रेगिस्तान में उसके सूखते हुए कण्ठ को मधुर रस-धारा प्रदान की। प्रसाद जी की कोमल कल्पना ने प्रेम के स्वरूप को उपस्थित करते हुए मधुर और कोमल भावनाओं से कविता-कामिनी का शृंगार किया । उनके काव्य की भागवत विशेषताओं का उद्घाटन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है ।

प्रेम और सौन्दर्य के कवि—प्रसाद जी सौन्दर्य और प्रेम के कुशल चितेरे कवि हैं । प्रसादजी प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक पृष्ठभूमि से प्रारम्भ करते हैं । वह क्रमशः उठता हुआ अलौकिकता की सीमा तक पहुँच जाता है । उनका 'आँसू' काव्य विरह काव्य है । उनका लौकिक प्रेम अलौकिकता का रूप धारण करके विश्व-मंगल की कामना करने लगता है । उनको समस्त विश्व वेदना से व्यथित दिखाई देने लगता है । उनकी करुणा अपने तक ही सीमित न रहकर समस्त विश्व के लिए बरस पड़ती है । देखिए :

निर्मल जगती को तेरा, मंगलमय मिले उजाला ।
इस जलते हुए हृदय की, कल्याणी शीतल ज्वाला ।।

सौंदर्य वर्णन करने में प्रसादजी भौतिक जगत पर ही रहें हैं, परन्तु उनका सौंदर्य वर्णन रीतिकाल के कवियों की तरह कहीं भी एन्द्रिकता के भार से बोझिल नहीं होने पाया है । उसका पावन प्रभाव पाठक के हृदय को मधुरता प्रदान करता है । वे सौंदर्य के सभी उपकरण उपस्थित कर देते हैं । सौंदर्य की पृष्ठभूमि में चाँदनी का चित्र देखिये :

विछल रही हैं चाँदनी छवि मतवाली रात ।
कहती कम्पित अधर में, बहलाने की बात ।।

प्रसाद जी 'आँसू' में प्रियतम के चौंदर्य चित्र उतारते हुए नहीं थकते ।

उनका सौंदर्य वर्णन करने के लिए वे एक से एक सुन्दर उपमान खोज लाते हैं। निम्न छन्दों में देखिये :

काली आँखों में कितनी, यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली।।

प्रसादजी प्रेम और सौंदर्य के सभी उपकरण उपस्थित कर देते हैं। उनसे नेत्रों की भूख मिटती और हृदय को शान्ति मिलती है। परन्तु उनमें अश्लीलत्व दोष कहीं भी नहीं आने पाता।

प्रसादजी के प्रेम-वर्णन में शीतलता है। वह भव-आतप से तापित मनुष्यों को विश्राम और शीतल छाया देने वाला है :

घने प्रेम तरु तले,
बैठ छाँह लो भव-अताप से तापित और जले।

प्रसादजी के प्रेम विरह की करुणा पर्याप्त मात्रा में है। उनका 'आँसू' काव्य इसका सफल उदाहरण है। उसका एक-एक छन्द करुण-अनुभूति से परिपूर्ण है। कुछ उदाहरणों में देखिए :

रो-रो कर सिसक-सिसक कर, कहता मैं करुण कहानी।
तुम सुमन नोंचते सुनते, करते जानी अनजानी।।

प्रसादजी के इस करुण विप्रलम्भ में आसावाद है। वे विश्वास के साथ कहते हैं कि उनका प्रियतम अवश्य ही उनके पास आयेगा :

इस शिथिल आह से खिचकर तुम आओगे, आओगे।
इस बढ़ी व्यथा को मेरी, रो-रो कर अपनाओगे।

प्रेम में कितना दृढ़ विश्वास है। विरही दावा करता है कि उसका प्रियतम आयेगा और अवश्य ही आयेगा। उसको भी उसके साथ में आँसू गिराने पड़ेंगे। उसके कष्टों की परवाह किये बिना ही आना पड़ेगा।

प्रसादजी ने अपने काव्य में इस प्रकार के प्रेम को अभिव्यक्त किया है कि जिसके सामने कोई भी बाधाएँ नहीं ठहरतीं।

रहस्यवाद—प्रसादजी के काव्य में रहस्यवाद की सफल अनुभूति हुई है। प्रकृति के माध्यम से भी उनका रहस्य उद्घाठित हुआ है। उनके रहस्य में कौतूहल के साथ अलौकिक प्राणी की प्राप्ति की ओर संकेत है और कहीं वे उस अलौकिक प्रियतम को लुके-छिपे यहीं कहीं देखते जान पड़ते हैं। उनकी जिज्ञासा के कुछ उदाहरण देखिए :

"हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम हो, यह मैं कैसे कह सकता।
सिर नीचा कर किसकी सत्ता ? सब करते स्वीकार यहाँ।
सदा मौन हो प्रवचन करते, जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?"

रहस्यमयी सत्ता उनके साथ आँख मिचौनी खेलती है तो कवि आह्वान करता है :

इन अलकों के अन्धकार में, तुम कैसे छिप जाओगे ?
इतना सहज कुतूहल ! ठहरो, यह न कभी कर पाओगे।

मानवतावाद—सच्ची मानवता के दर्शन उनके काव्य में बिखरे पड़े हैं। वे सन्त कबीर की तरह भेद-भाव और साम्प्रदायिकता के विरोधी थे। उनका ताना ईश्वर के प्रति देखिए :

आकर झगड़ा क्यों फैलाओ ?
मन्दिर मस्जिद, गिरजा खोजत भरमायो !

'कामायनी' में मानवता ने भौतिकवाद पर विजय पाई है। सम्पूर्ण कथा में मानवता के क्रमिक विकास की गाथा है। मनु का विनाश भौतिकवाद और बुद्धिमान की प्राप्ति में ही होता है। अन्त में मनु श्रद्धा के आँचल को थामकर ही आनन्द के किनारे छू पाते हैं।

उनके काव्य में 'जीओ और जीने दो' (Live and let live) का सिद्धांत ही प्रस्तुत जान पड़ता है :

"क्यों इतना आतंक ठहर जा, जा ओ हे गर्वीले।
जीने दे सबको फिर तू, भी सुख से जी ले।

प्रकृति-चित्रण—प्रकृति की प्रेरणा से ही प्रसाद में कविता उत्पन्न हुई। उनके काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण है। मानवीय भावनाओं का आकर्षण-पूर्ण आरोप प्रकृति पर किया गया है—कामायनी का 'काम' सर्ग प्रकृति को इसी रूप में उपस्थित करता है। वह मानवीय भावों का उत्तेजित करने में सहायक है। प्रकृति की रमणीयता में ऊषा नागरी का भावपूर्ण चित्र कितना सजीव और सुन्दर बन पड़ा है :

"बीती विभावरी जागरी
अम्बर 'पनघट में डुबो रही,
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुलकुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अञ्चल डोल रहा।
लो यह लतिका भी भर लाई,
मधु मुकुर नवल रस गागरी।"

कवि प्रकृति-चित्रण में अनन्त सत्ता की झाँकी पर भावुकतापूर्ण चित्र उपस्थित करता है। उसको वह अलौकिक प्रियतम छाया के पर्दे में सम्मोहन वेणु बजाता हुआ दिखाई देता है :

"छायानट छवि के पर्दे में, सम्मोहन वेणु बजाता।
संध्या कुहकिनि अंचल में, कौतुक अपना कर जाता।"

संध्या की वेला और उस पर तुषार धवलित शैल-श्रेणियों का सौंदर्य कितना रंगीन वातावरण उपस्थित करता है :

संध्या घन माला की सुन्दर, ओढ़े रंग बिरंगी छींट।
गगन चुम्बिनी शैल-श्रेणियाँ, पहने हुए तुषार किरीट।।

देश-प्रेम—प्रसादजी के काव्य में देश-प्रेम और देश-भक्ति की भावना खूब तरंगित हुई है। नाटकों में तो देश-प्रेम के गीत आत्मा को झंकृत कर देते हैं। देश प्रेम के गीतों में छायावादी शैली होने से मधुर कोमल भावना उमड़ पड़ी है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का लोकप्रिय गीत देखिए :

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरु शिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।

भाव-जगत—प्रसादजी के काव्य में भावनाओं की तो अक्षय निधि है। वे प्रधानतः यौवन और प्रेम के ही तो कवि हैं। 'कामायनी', 'आँसू' झरना और नाटकीय गीता में भाव-सौंदर्य बिखरा पड़ा है। प्रसाद जी के यौवन के चित्र आदर्श-पूर्ण और सयत हैं। कल्पित होने पर भी वे वास्तविक बन पड़े हैं। उनके काव्य का प्रारम्भ श्रृंगार-रस से होकर शांत या करुण-रस में परिणित होता है। 'आँसू' में 'करुण-रस' के नाटकों में शांत रस के तथा सौंदर्यशाली चित्रों को देखकर वे श्रृंगार के उत्कृष्ट कलाकार जान पड़ते हैं। रस-परिपाक की स्वाभाविक परिणति उनके काव्य में दृष्टव्य है। संक्षेप में हम प्रसाद के काव्य में श्रृंगार की प्रधानता के साथ दूसरे स्थान पर शाँत और करुण-रस का सुन्दर और सफल प्रयोग पाते हैं।

कला-पक्ष—भाव-पक्ष की भाँति कला-पक्ष को भी सरलता से समझने के लिए उसे विभाजित करना उचित होगा।

१—अलंकार। २—छायावाद शैली की अप्रस्तुत योजना। ३—अलंकार-योजना। ४—लाक्षणिक भाषा।

प्रसाद जी का कला-पक्ष भी उत्कृष्ट है। उनकी भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वर्णनों में सजीवता लक्षित होती है। प्रसाद जी से मानव का पौरुषमय चित्र कितना सजीव और सुन्दर बन पड़ा है, जिसकी तुलना में कहीं अन्य ऐसा वर्णन मिलना असम्भव है :

अवयव की दृढ़ माँस पेशियाँ, उर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीति शिरायें स्वस्थ रक्त का, होता था जिनमें संचार।

अमूर्त 'चिन्ता' का जैसा चित्र प्रसाद जी ने प्रस्तुत किया, वैसा चित्र कुशल चित्रकार भी भाग्यवश ही चित्रित कर पायेगा :

ओ चिंता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की व्याली ।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण, प्रथम कंप सी मतवाली ।।

कल्पना—वे अपनी उपमाओं और उत्प्रेक्षा में कल्पना की ऊँची उड़ान भरते दृष्टिगत होते हैं। निम्न चार पंक्तियों में कैसा शरीरिक सौंदर्य का निखार है :

चंचला स्नान कर आवे, चन्द्रिका पर्व में. जैसी ।
उस पावन तन की शोभा, आलोक मधुर थी ऐसी ।।

प्रियतम का इतना मुग्धकारी स्वस्थ चित्रण अन्य कवि विस्तृत रूप में नहीं कर पाये ।

इस उक्त उदाहरण में कला-कुशल कवि ने प्रियतम के तन को चन्द्रिका में गोता लगवाकर चापल्य मिटाने की कल्पना की है। तत्पश्चात् वह सौंदर्य की पवित्रता को 'पावन' शब्द से घोषित करता है और अन्तिम रूप में 'आलोक मधुर' के द्वारा तेज और माधुर्य दोनों गुणों का समावेश करने में सफल हुआ है ।

छायावादी शैली की प्रस्तुत योजना छायावाद की शैली से पूर्ण रूप से प्रभावित अप्रस्तुत योजना प्रसाद के काव्य में दृष्टव्य है । नवीन उपमानों के तो वे सिद्धहस्त कलाकार हैं । वे मूर्त्त के लिए अमूर्त्त और मूर्त्त दोनों उपमान ले आते हैं, इसी तरह अमूर्त्त के लिए मूर्त्त भी तथा अमूर्त्त भी । एक दो उदाहरण देखिए :

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल ।।

(मूर्त्त के लिए अमूर्त्त उपमान)

'नव हो जगी अनादि वासना,
मधुर प्राकृतिक भूख समाना ।

(अमूर्त्त के लिए उपमान)

छायावादी शैली की प्रमुख विशेषता विशेषण विपर्यय है । विशेषण विपर्यय का उदाहरण देखिए :

'जग की सजल कालिमा रजनी में मुख चन्द्र लिखा जाओ ।'

× × ×

तुम्हारी आँखों का बचपन खेलता जब अल्हड़ खेल ।

पहले उदाहरण में सजल कालिमा का विशेषण नहीं है वरन् 'रजनी' या 'जग' का है, परन्तु वह कालिमा के साथ है । इसी तरह दूसरे उदाहरण में 'अल्हड़ खेल' में अल्हड़ खेल का विशेषण नहीं वरन् बचपन का विशेषण है :

मानवीकरण का प्रयोग तो छायावाद की विशेषता है । प्रसाद के मानवीकरण के कुछ सजीव चित्र देखिए :

अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा-घट ऊषा नागरी ।

× × ×

सिंधु सेज पर धरा बधू, अब तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय निशा की स्मृति हलचल में मान किए सी, ऐंठी सी।

प्रथम उदाहरण से ऊषा तथा दूसरे में 'धरा' का मानवीकरण हुआ है।

अलंकार-योजना—परम्परागत अलंकारों का प्रयोग करने पर भी प्रसाद जी ने उन्हें नवीनता प्रदान की है। जैसे कानों की उपमा कमल के पत्तों से परम्परावश दी जाती थी, परन्तु उन्होंने उस उपमान द्वारा प्रेमी की करुणा-कथा कानों पर न ठहरने का काव्यमय कारण भी प्रस्तुत कर दिया है :

मुख-कमल समीप सजे थे दो किसलय से पुरइन के।
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब, उन कानों में दुख तिनके॥

प्रसाद जी ने असंगति, विभावना, विरोधाभास आदि अलंकारों को लेकर चमत्कार उत्पन्न किया है जैसे :

हार बैठे जीवन का दाँव जीतते मरकर जिसका वीर।
—विरोधाभास

पी ली मधु मदिरा किसने, थी बन्द हमारी पलकें।
—असंगति

लाक्षणिक भाषा—प्रसाद जी की भाषा में लाक्षणिकता है। उन्होंने इसके सहारे किसी वस्तु का सजीव चित्र सफलता से चित्रित कर दिया है। छायावादी शैली की विशेषता है कि उसमें लाक्षणिकता बहुत बढ़ गई है। लाक्षणिक प्रयोग के उदाहरण :

'छल में विलीन बल।'
'छाती लड़ती हो भरी आग'

किसी-किसी स्थल पर तो उन्होंने लाक्षणिक अर्थ और मुख्यार्थ को मिलाकर चमत्कार उत्पन्न कर दिया है :

'बना विषम ध्वान्त
सिर चढ़ी रही पाया न हृदय।'

'सिर चढ़ी रही' इड़ा अर्थात् बुद्धि के लिए कहा गया है। बुद्धि का स्थान मस्तिष्क है। इसलिए यहाँ पर अभिधार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों ही सार्थक हो जाते हैं।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद जी का काव्य अनुभूति-प्रधान है। अभिव्यक्ति का निखार कला-पक्ष में बन पड़ा है। प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति विस्तृत रूपों में प्रकट हुई है। 'कामायनी' में तो प्रकृति के रौद्र और सौम्य दोनों रूप ही प्रयोग किये गये हैं। वे प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। उनका लौकिक प्रेम विकसित होकर अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। प्रकृति की छाया का भी उन्हें आभास होता है। भाषा में एकरसता है। लाक्षणिकता और चित्रोपमता अभिव्यक्ति की रमणीयता प्रदान करती है।

संक्षेप में प्रसाद जी का काव्य, काव्य-कला की सच्ची अभिव्यक्ति है। उसमें भाव-पक्ष और कला-पक्ष का मणि कांचन सयोग हुआ है। आपकी सोने में सुहागा मिलाकर एक दर्शनीय और प्रशंसनीय काव्य-साधना मूर्त हो गई है।

प्रश्न ३—"प्रसाद जी छायावाद के प्रमुख कवि हैं।" इस कथन की सम्यक् विवेचना कीजिए।

उत्तर—प्रसाद जी छायावाद के जनक और पोषक हैं। उनके काव्य में छायावाद उत्कर्ष की चरमावस्था को पहुँच गया है।

प्रसाद जी के काव्य में छायावाद का अवतरण अभिनव पृष्ठभूमि में हुआ। द्विवेदी युग रीतिकाल की श्रृंगार की इति श्री हो चुकी थी। द्विवेदी युग का इतिवृत्तात्मक काव्य हृदय को रिझाने में असमर्थ था परिणाम यह हुआ कि इतिवृत्तात्मकता के प्रति विद्रोह के रूप में छायावाद का आविर्भाव हुआ। छायावाद में प्रेम की अभिव्यक्ति सूक्ष्म शैली में हुई। उसमें रीतिकाल की मांसलता और स्थूलता निकल गई। तात्पर्य यह है कि रीतिकालीन प्रेम स्थूल भावना छायावाद में आकर अन्तर्मुखी हो गई। छायावाद में रति-भावना की अभिव्यक्ति लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शैली में हुई। 'आँसू' में प्रसाद जी की छायावाद शैली अभिव्यक्त हुई। 'कामायनी' महाकाव्य तो छायावादी काव्यों का प्रतिनिधि काव्य है।

प्रसाद जी के काव्य में छायावादी शैली की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। छायावादी काव्य में प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। वह मानवी भावों के आरोप में सजीव हो उठी। रजनी का मानवीकरण निम्न उदाहरण में दृष्टव्य हैं :

घूंघट उठा देख मुसक्याती, किसे ठिठकती सी आती।
विजन-गगन में किसी भूलसी, किसको मृति-पथ में लाती॥

छायावादी काव्य में अलंकार नवीन रूप में प्रयुक्त हुए हैं। मूर्त भावों के चित्रण के लिए छायावादी कवियो ने अमूर्त उपमानों को लाकर रखा। अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान किया गया। प्रसाद के काव्य में अभिलाषायें करवट बदलती हैं, सुप्त व्यथा जगती है और सुख स्वप्न होता है। यह सभी क्रियायें चेतन मनुष्य की हैं।

अभिलाषाओं की करवट, फिर गुप्त व्यथा का जगना।
सुख का सपना हो जाना भीगी पलकों का लगना॥

भाव-व्यंजना प्रतीकात्मक शैली में—छायावादी काव्य में कोई बात सीधे रूप में न कही जाकर प्रतीकों के द्वारा कही जाती है। इसी प्रकार अभिव्यक्ति में बल और प्रभावोत्पादकता आ जाती है। प्रसाद जी का समस्त 'आँसू' काव्य प्रतीकात्मक शैली का उदाहरण है। निम्न उदाहरण को देखिए, इसमें झंझा-झकोर, भाव-संघर्ष, बिजली-टीस और पीड़ा नीरद माला की प्रतीक है :

झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला॥

लाक्षणिकता—छायावादी काव्य में लाक्षणिकता के आवरण में भावाभिव्यक्ति अत्यन्त मनोरंजक हो गई है। प्रसाद जी लक्षण की सहायता से अनुभूति को रूप प्रदान करते हैं। निम्न उदाहरण में कवि मानस में सागर का आरोप करता है। लोल लहर चंचल-हृदय की भावनाओं की प्रतीक हैं :

मानस-सागर के तट पर, क्यों लोल-लहर की घातें।
कहती हैं कल-कल ध्वनि से, कुछ विस्मृत बीती बातें।।

प्रसाद जी की भाषा छायावादी शैली के अनुरूप है—उनकी भाषा में चित्रमयता है। वह ध्वन्यात्मकता से वस्तु और भाव का चित्र उपस्थित कर देती है। उन्होंने कामायनी में चिन्ता, आशा, काम, वासना लज्जा आदि अमूर्त मानवीय भावों के सफल चित्र प्रस्तुत किए हैं। निम्न उदाहरण में लज्जा का रूप देखिए :

वैसी ही माया में लिपटी, अधरों पर उँगली धरे हुए।
माधव के सरस कुतूहल का, आँखों में पानी भरे हुए।

प्रसाद जी के काव्य में चित्रमय विशेषण भाव-व्यंजना में विशेष रूप से सहायक हुए हैं। उदाहरण के लिए 'हे अनन्त की गणना' (तारे) 'विश्व कमल की मृदुल मधकारी' (रजनी) आदि प्रयोगों को लिया जा सकता है। ध्वन्यात्मकता के सहारे कहीं-कहीं पर तो प्रसाद जी वस्तु का चित्र ही मूर्त कर देते हैं। निम्न उदाहरण देखिये :

धँसती धरा धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास।
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि प्रसाद जी के काव्य में छायावादी काव्य की सभी विशेषतायें चरमोत्कर्ष की स्थिति में मिलती हैं। उनके कवि-कौशल ने छायावादी शैली में आधुनिक काव्य के स्वरूप को पूर्ण रूप से सजा दिया है।

प्रश्न ४—प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति-चित्रण की विशेषताओं पर अपने विचार कीजिए।

उत्तर—प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति-वर्णन के सौम्य और रौद्र दोनों रूप प्रतिष्ठित हुए हैं। कहीं प्राकृतिक चित्रण में अनन्त सत्ता की ओर संकेत है तो किन्हीं स्थानों पर प्रकृति मानवीय भावों की पृष्ठभूमि का सृजन करती सी दृष्टव्य है।

प्रकृति—प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति-चित्रण विविध रूपों में उपस्थित हुआ है :

(१) शुद्ध रूप में प्रकृति-वर्णन। (२) कोमल तथा रौद्र रूप में। (२) रहस्यात्मक रूप में।

(४) अलंकृत रूप में। (५) अप्रस्तुत रूप में।

प्रकृति वर्णन शुद्ध रूप में—आशा सर्ग का शरद् ऋतु में प्रकृति का यह रूप देखिये :

अचल हिमालय का शोभनतम, लता-कलित शुचि शानु शरीर।

ऐसे वर्णन बहुत कम हैं। ऐसे रूप में प्रकृति यथारूप में प्रस्तुत की जाती है।

कोमल तथा रौद्र रूप में—जब प्रसाद जी शान्तमय होकर प्रकृति का अविराम रूप अंकित करते हैं तो दृश्य में कितनी रमणीयता छलक उठती है :

नव कोमल आलोक बिखरता, हिम-संसृति पर भर अनुराग।
सित सरोज पर क्रीड़ा करता, जैसे मधुमय पिंग पराग।।

महाकाव्य कामायनी का प्रारम्भ ही प्रलय से हुआ है। वहाँ प्रसाद जी ने प्रकृति का प्रलयंकारी चित्र उपस्थित किया है कि देवता जब वासना में उत्तेजित हुए तो प्रकृति ने रौद्र रूप में ताण्डव नृत्य प्रारम्भ किया :

पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं का शकल निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ, खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।।
धँसती धरा धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास।
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास।।

रहस्यात्मक रूप में—प्रसाद जी की प्रकृति आनन्द से परिपूर्ण है। वे प्रकृति के रोम-रोम में विराट रहस्यात्मक सत्ता की विशेष अनुभूति अभिव्यक्त करते हैं :

महानील उस परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह-नक्षत्र और विश्रुत कण, किसका करते हैं संधान।।

अलंकृत रूप—इस रूप में प्रकृति-वर्णन बड़ा आकर्षक बन पड़ा है। वे वस्तुओं की संश्लिष्ट-योजना से बिम्बों का आधार लेते जान पडते हैं। निम्न उदाहरण में आलंकृत रूप में प्रकृति मनोरम सौन्दर्य उपस्थित कर रही है :

नव नील कंज हैं झीम रहे, कुसुमों की कथा न बन्द हुई।
है अन्तरिक्ष आमोद भरा, हिम कणिका ही मकरन्द हुई।

अप्रस्तुत रूप में—प्रसाद जी अप्रस्तुत को अत्यन्त अनुभूति से अभिव्यक्त करते हैं। कामायनी में श्रद्धा के मुख के सौन्दर्य को अप्रस्तुत रूप में वर्णन करते हुए प्रकृति कितनी सजीव हो उठी है :

आह ! वह मुख, पश्चिम के व्योम, बीच जब घिरते हों घनश्याम।
अरुण रवि मंडल उनको भेद, दिखाई पड़ता हो छविधाम।।
और उस मुख पर वह मुस्कान, रक्त किसलय पर ले विश्राम।
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम।।

प्रकृति के अन्य रूप—इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने प्रकृति का मानवीकरण करके उसे सप्राण बना दिया है। वे नाम परिणात्मक शैली का चित्रण नहीं करते। प्रारम्भ में प्रकृति के गति-विधान पर ही उनकी दृष्टि रही, परन्तु परवर्ती काव्य शुद्ध रहस्यात्मक चित्र में उपस्थित हुआ। 'कामायनी' महाकाव्य में जब जल-प्लावन हो रहा है, समुद्र के बीच में जो भूमि निकलती है, कवि-कल्पना से उसे नव बधू के रूप में चित्रित किया गया है :

सिन्धु सेज पर धरा वधू, तब तनिक संकुचित बैठी सी ।
प्रलय-निशा की स्मृति हलचल में, मान किये सी, ऐंठी सी ॥

निम्न प्रसंग में ऊषा की साक्षात् नागरी के रूप में कवि देखता है । वह निहारिन सी आकाश रूपी पनघट में तारक-घटों को डुबो रही है :

बीती विभावरी जागरी ।
अम्बर पनघट में डुबो रही, तारावट ऊषा नागरी ।

प्रसाद जी के महाकाव्य का कथानक ही प्रकृति की पृष्ठभूमि से पल्लवित है । प्रसाद जी की प्रकृति-चित्रण की अनुभूति में कितनी तीव्रता है—"मधु बरसाती विधु किरण है काँपती सुकुमार ।" उनकी प्रकृति में उद्दीपन का रूप भी प्रस्तुत है । मानव स्वभाव से ही अपनी भावनाओं का आरोप दूसरों पर करता देखा गया है । इसी प्रकार कवि प्रसाद अपने हृदय का स्पन्दन प्रकृति में पाकर झंकृत हो उठा है :

भुज लता पड़ी सरिताओं की शैली के गले सनाथ हुए ।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रसाद जी प्रकृति-वर्णन के महान कलाकार हैं । उनके काव्य में जातिगत और काव्यगत तभी विशेषतायें हैं । उनकी प्रकृति काव्य में सुन्दर रंग-स्थली बन उठी है ।

प्रश्न ५—प्रसाद जी के काव्य में राष्ट्रीय-भावनाओं को स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर—प्रसाद जी यद्यपि सौंदर्य, प्रेम तथा प्रकृति के चित्रकार हैं तथापि युग की प्रवृत्तियों से भी वे अछूते नहीं हैं, उनके काव्य में पराधीनता के प्रति आवेश एवं स्वाधीनता के लिए झलक पाई जाती है । उनकी राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति काव्य की अपेक्षा नाटकों में अधिक एवं स्पष्टता से हुई है । अतीत का चित्रण करते समय कवि ने राष्ट्रीय उद्‌गारों को व्यक्त करने का अवकाश निकाल ही लिया है । 'चन्द्रगुप्त' नाटक में कर्नेलिया का 'अरुण बह मधुमय देश हमारा' तथा 'स्कन्दगुप्त' में 'प्रथम जिसे किरणों का दे उपहार' वाला मीत भारत के प्रति उनकी असीम भक्ति प्रदर्शित करता है। उन्होंने 'चन्द्रगुप्त' में अलका द्वारा प्रयाण गीत गवाकर स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर सहर्ष बलिदान होने वाले वीरों का आह्वान किया है :

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती ।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती ॥
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो ।
प्रशस्त पुण्य पन्थ है बढ़े चलो बढ़े चलो ॥

अपने काव्य-ग्रंथों में भी उन्होंने यत्र-तत्र राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त किया है । 'लहर' में संग्रहीत अतीत घटनाओं पर दी हुई कवितायें—करुणा की सहस्रधार, वैशाली की प्रति-ध्वनि, प्रलय की छाया आदि—में भारतीय गौरव और गरिमा के प्रति उनका प्रेम प्रदर्शित होता है । अपने महाकाव्य 'कामायनी' में भी उनके राष्ट्रीय भावों की छाप स्पष्ट लक्षित होती है । कामायनी में श्रद्धा मनु से

पशुवध का विरोध करती है, इस भावना में गाँधीवाद की अहिंसा सजग हो उठी है। इसी प्रकार कामायनी द्वारा कवि ने सूत कतवाकर गाँधीवाद का समर्थन किया है :

तुम दूर चले जाते हो जब, तक लेकर तकली यहाँ बैठ,
मैं उसे फिराती रहती हूँ, अपनी निर्जनता बीच पैठ।
मैं बैठी गाती हूँ तकली के प्रतिवर्तन में स्वर विभोर—
चल री तकली धीरे-धीरे प्रिय गये खेलने को अहेर।

महात्मा गाँधी यन्त्रवाद के विरोधी थे और कुटीर उद्योगों के प्रति उनके हृदय में निष्ठा थी, प्रसाद ने उनकी इस भावना को भी अपने काव्य में साकार रूप दिया है। कामायनी' संघर्ष सर्ग में वे यन्त्र-शक्ति के अभिशाप का चित्रण करते हुए कहते हैं :

प्रकृत शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।

प्रसाद जी की राष्ट्रीयता न तो संकुचित थी और न उनका अतीत प्रेम पुरातनता के प्रति आग्रह था। अपितु वे नवयुवक के विकास के लिए नूतनता के पक्षपाती थे। उन्होंने जिस प्रकार से हिन्दी-काव्य को नवीन भावना, नवीन विचार, नवीन भाषा, नवीन छन्द ओर नवीन शैली प्रदान की, उसी प्रकार वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता देखना चाहते थे। तभी तो उन्होंने कहा है :

पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक।
नित्य न्यूनता का आनन्द, किए है परिवर्तन में टेक॥

प्रश्न ६—प्रसाद जी की काव्यधारा के विकास की क्रमिक विवेचना कीजिए।

उत्तर— विभिन्न प्रभाव—प्रसाद जी की काव्य-साधना का प्रारम्भ ब्रजभाषा में समस्या-पूर्ति से होता है। काव्य-साधना का यह रूप विकसित होता हुआ अपने विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है, जो 'कामायनी' जैसे महाकाव्य की देन हिन्दी-जगत को प्रदान करता है। काव्य-प्रेम प्रसाद जी को पैतृक परम्परा के रूप में मिला था। प्रसाद जी कवि-समाज में समस्या-पूर्ति में भाग लिया करते थे।

प्रसाद जी की ब्रजभाषा की ये रचनाएँ बड़ी ही सरल और मधुर हैं। इनको 'मतिराम' और 'पद्माकर' के सवैयों की तुलना में रखा जा सकता है। एक उदाहरण लीजिए :

सावन आए वियोगिनि को तन, आलि अनंग लगे अति तावन।
तावन हीय लगी अबला, चमकै जब बिज्जु छटा छवि छावन॥
छावन कैसे कहूँ मैं विदेश, लगे जुगनू जब आग लगावन।
गावन लागो मयूर कलाधार, झंपि के मेह लगे बरसावन॥

ब्रजभाषा की रस-माधुरी बहुत समय तक प्रसाद जी को न विरमा सकी। खड़ी बोली ने तत्काल ही उन्हें आकर्षित कर लिया। प्रसाद जी की काव्य-साधना पर

अनेकों प्रभाव पड़े। किशोरावस्था के भ्रमण ने उनके हृदय को प्रकृति माधुरी से भर दिया। उपनिषदों और शैव-दर्शन के गहन अध्ययन ने प्रसाद जी के कवित्व को गम्भीरता और शिवत्व की भावना प्रदान की। बौद्ध दर्शन के प्रभाव से प्रसाद जी के काव्य में विश्व-कल्याणमयी करुणा की व्यापक भावना आ गई। इसके साथ ही उनके जीवन के सुख-दुःख के झंझावातों का भी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार उनका काव्य इन्द्रधनुषी बन गया।

प्रसाद जी की काव्य-कृतियाँ—प्रसादजी का ब्रजभाषा की कविताओं का संग्रह 'चित्राधार' नाम से सन् १९०६ में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् प्रसाद जी खड़ी बोली की ओर आ गये और 'कामायनी' तक अविराम रूप से उनकी काव्य-साधना विकसित होती रही :

१. चित्राधार	सन् १९०६
२. कानन-कुसुम	सन् १९१२
३. प्रेम-पथिक	सन् १९१३
४. महाराणा का महत्व	सन् १९१४-१५
५ करुणालय (गीत-नाट्य)	सन् १९१९
६. आँसू	सन् १९२५
७. झरना	सन् १९३२
८. लहर	सन् १९३२
९. कामायनी	सन् १९३२

चित्राधार—इसमें प्रसाद जी की लिखी हुई ब्रजभाषा की कविताएँ संग्रहीत हैं। इनमें ब्रजभाषा का समस्त माधुर्य और सरसता भरी हुई है। इस संग्रह की रचनाएँ प्रसाद जी के प्रगति के पथ पर उठे हुए चरणों का संकेत करती हैं।

कानन-कुसुम—'कानन-कुसुम' रचनाओं पर द्विवेदी जी का स्पष्ट प्रभाव हैं। प्रायः सभी रचनाएँ इतिवृत्तात्मक हैं। इनमें प्रेम और प्रकृति-सम्बन्धी उद्‌गारों को प्रसाद जी ने अभिव्यक्त किया है। इनमें प्रसाद जी प्रेम की मस्ती में निमग्न रहना चाहते हैं :

जितना चाहे शांत बनो गम्भीर हो,
खुल न पडो तब ही जानेंगे धीर हो,
सखे सदा तुम रहो, रुद्र रस के भरे,
हम तुम जब हैं एक लोग बकते फिरें।

महाराणा का महत्व और प्रेम पथिक—"महाराणा का महत्व' अतुकान्त छन्दों में है। 'प्रेम-पथिक' में प्रसाद जी के भावों का विकास और पवित्रता मिलती है। प्रसाद जी 'प्रेम-पथिक' में प्रेम का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं :

इस पथ का उद्देश्य नहीं है, शांत भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर, जिसके आगे रह नहीं।

झरना—हिन्दी में छायावादी काव्य का प्रारम्भ प्रसाद जी के 'झरना' से ही होता है। प्रसाद जी विश्व में कण-कण में प्राणों की छाया देखते हैं। इसमें आशा-निराशा, सुख-दुःख और व्यथा वेदना के बड़े ही सुन्दर चित्र अंकित हुए हैं।

आँसू—आँसू विप्रलम्भ काव्य है। अतीत की संयोग स्मृतियाँ कवि ने हृदय को रह-रहकर कचोटती हैं। अर्थात् प्रियतम के लिए प्रेमी-हृदय के आँसू प्रवाहित हो उठते हैं। कवि दग्ध वसुधा को अपनी प्रेम-वेदना की कल्याणी शीतल ज्वाला देने को उत्सुक हो उठता है। उसके आँसू करुणा के आँसू बन जाते हैं 'आँसू' के सम्बन्ध में शुक्ल जी ने लिखा है :

"उक्तियों के भीतर बड़ी रंजनकारिणी कल्पना, व्यंजक चित्रों का बड़ा ही अनूठा विन्यास और भावनाओं की बड़ी ही सुकुमार योजना मिलती है। प्रसाद जी की यह पहली काव्य रचना है, जिसने बहुत लोगों को आकर्षित किया। अभिव्यंजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम-वेदना को दिव्य विभूति का विश्व में उसके मंगलमय प्रभात का सुख और दुःख दोनों को अपनाने की उसकी अपार-शक्ति का और उसकी छाया में सौन्दर्य और मंगल के संयम का भी अभ्यास मिलता है। 'नियतिवाद' और 'दुःखवाद' का विलक्षण स्वर भी सुनाई पड़ता है। इस चेतना को दूर हटाकर मद तंद्रा, स्वप्न और असंज्ञा की दशा को आह्वान कर रहस्यवाद की एक स्वीकृति देता है।"

लहर—'लहर' में प्रसाद जी की कई प्रकार की कविताएँ संग्रहीत हैं। इनमें कवि उस आनन्द लहर को अभिव्यक्त करता है, जो उसके मानस में उठा करती है। इन लहरों में प्रियतम का आँख मिचौनी खेलना, दबे पाँव आना, किरण की उँगलियों से आँख मूँदना, प्रियतम का अभिसार आदि सभी कुछ होता है। कवि संसार की हलचल छोड़कर अपने नाविक से पलायन करने को भी कहता है :

ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक ! धीरे धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी।
अम्बर के कानों में गहरी।
निश्चल प्रेम कथा कहती हो।
तज कोलाहल की अवनी रे।

'लहर' की कविताएँ प्रायः रहस्यवादी हैं। प्रकृति सौन्दर्य को लेकर बड़े सुन्दर रूपक बाँधे गये हैं। निम्न उदाहरण में ऊषा सुन्दरी का चित्र देखिए :

बीती विभावरी जाग री,
अम्बर पनघट में डुबो रही, ताराघट ऊषा नागरी।

कामायनी—'कामायनी' में प्रसाद जी की काव्य-साधना अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। आधुनिक हिन्दी-साहित्य के 'कामायनी' का शीर्ष स्थान है। वह छायावादी काव्यधारा का प्रतिनिधि काव्य है।

कामायनी की कथावस्तु—मनु और श्रद्धा के सहयोग से 'कामायनी' मानवता के विकास की कथा है। जब प्रलय के पश्चात् मनु हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर चिन्तित बैठे हैं। इसी समय कामायनी (श्रद्धा) का आगमन होता है। मनु उससे परिचित होते हैं। श्रद्धा उनको आत्म-समर्पण करके लोक-मंगल के लिए कर्म करने के लिए प्रेरित करती है। मनु ने देव संस्कार के कारण विलास और हिंसा की भावना जागृत हो जाती है। श्रद्धा गर्भवती होती है, उसका प्रेम बँठ जाता है। इससे मनु को ईर्ष्या होने लगती है। उनका मन उचट जाता है। वे श्रद्धा को छोड़ कर चले जाते हैं। सारस्वत प्रदेश की रानी इड़ा उनका स्वागत करती है। इड़ा देवी की बहिन थी और मनु के अन्न से पली थी। परन्तु मनु इस रहस्य को नहीं जानते थे। इड़ा अपने राज्य का भार मनु को दे देती है। मनु इससे सन्तुष्ट न होकर इड़ा की ओर हाथ बढ़ाते हैं और उसके साथ बलात्कार करने यर उतारू हो जाते हैं। इस पर देवता क्रुद्ध होते हैं और प्रज्ञा मनु के विरुद्ध विद्रोह कर देती है। मनु युद्ध में घायल होकर बेहोश हो जाते हैं। दूसरी ओर श्रद्धा स्वप्न में घायल मनु को देखती है। वह अपने पुत्र मानव को साथ लेकर उनकी खोज में निकल पड़ती है। यह मन को पा लेती है और अपने उपचारों से उनको होश में लाती है। अब मनु अपने पर पश्चाताप करते हुए लज्जित होकर भाग निकलते हैं। इड़ा भी दुखी होती है। वह श्रद्धा से उसका पुत्र माँगती है। श्रद्धा इड़ा को लोक-कल्याण का उपदेश देकर अपना पुत्र उसे दे देती है और स्वयं मनु की खोज में निकल पड़ती है। मनु उसे एक घाटी में मिल जाते हैं। अब वे अपनी भूलों से परिचित हो चुके हैं। वे श्रद्धा का अनुसरण करते हैं। श्रद्धा उनको संसार के विविध रूपों को दिखाती हुई कैलाश तक ले जाती है। यहाँ मनु को एकात्मक की अनुभूति होती है। वे यहाँ विराट नृत्य का दर्शन करते हैं और आनन्द में लीन हो जाते हैं।

'कामायनी' में कथानक के साथ में एक रूपक भी चलता है: मनु मन के प्रतीक हैं। प्रत्येक व्यक्ति का मन न जाने कितनी चिन्ताओं से घिरा रहता है। चिंता किसी न किसी अभाव के कारण उत्पन्न होती है। इससे मुक्ति पाने के लिए 'आशा' का उदय होता है। 'आशा' के पश्चात् 'श्रद्धा' जीवन में आती है। श्रद्धा के मिल जाने से 'काम' अपना प्रभाव डालता है। 'काम' के पश्चात् 'वासना' और फिर 'लज्जा' जीवन में आती है। इसी समय जीवन में कर्म की प्रधानता होती है और साथ ही साथ ना समझी के कारण 'ईर्ष्या का जन्म होता है। ईर्ष्या मनुष्य को पथभ्रष्ट करती है। 'ईर्ष्या' 'अहं' को देती है, जिससे मनुष्य 'ईड़ा' (बुद्धि) की शरण लेता है और भौतिक विकास का स्वप्न देखता है। परन्तु बुद्धि और भौतिकता के अतिरेक में सघर्ष होता है, जिससे मनु पुनः श्रद्धा उसका साथ नहीं छोड़ती और उसे ऊपर उठाती हुई 'आनन्द' की ओर ले. जाती है। अब मन में 'निर्वेद' आ जाता है। मन द्वैत बुद्धि को त्याग देता है। वह क्रिया, ज्ञान और इच्छा को त्याग कर श्रद्धा की सहायता से 'आनन्द' में लीन हो जाता है। इस प्रकार मन चिन्ता का परित्याग कर

श्रद्धा, काम, वासना, धर्म, लज्जा, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन और रहस्य की भूमिकाओं को पार करता हुआ अन्त में आनन्द को प्राप्त करता है।

प्रश्न ७—'आँसू' की काव्यगत विशेषताएँ बतलाते हुए सिद्ध कीजिए कि 'प्रसादजी' ने 'आँसू' में वेदना के अन्तर्गत यौवन की मस्ती के मादक चित्र अंकित किए हैं।

उत्तर—'आँसू प्रसादजी का मुक्तक काव्य है। इसमें वेदना के सर्वोत्कृष्ट चित्र प्रतीकात्मक शैली में अंकित किए गए हैं। 'आँसू' में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक करुणा का भीगा हुआ अंचल है। आँसू के छन्द बिहारी के दोहों की भाँति मुक्तक होते हुए भी एक दूसरे में इस क्रम से गूँथे हुए हैं कि पाठक को यह भ्रम होने लगता है कि कहीं वह प्रबन्ध काव्य तो नहीं पढ़ रहा है। 'आँसू' का एक-एक छन्द हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। एक छन्द की छटा द्रष्टव्य है:

'जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई।'

जब तक मानव हृदय है, प्रेम है 'आँसू' सदैव अमर रहेगा। आँसू की तुलना मोतियों से की जाती है, किन्तु मोती कठोर है, आँसू जैसी कोमलता एवं तरलता उसमें कहाँ। आँसू की दो बूंदों में हृदय की जो पवित्रता है वह मोतियों में नहीं है।

सम्वत् १९८२ में इस काव्य का प्रकाशन हुआ। प्रथम संस्करण में केवल २५२ पंक्तियाँ थीं, परन्तु सं० १९९० के द्वितीय संस्करण में ३८० पंक्तियाँ कर दी गई। 'प्रसादजी' अपनी यह प्रथम रचना को लेकर छायावाद के क्षेत्र में आए। रचना बड़ी लोकप्रिय हुई। 'आँसू' में विप्रलम्भ श्रृंगार के साथ ही साथ बीते-यौवन की मादकता के भी अनेक चित्र मिलते हैं। कवि ने लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता एवं सुन्दर अनूठी उक्तियों का प्रयोग किया है। कवि ने नई कल्पना, नई पद योजना, नयी शैली, नये उपमानों का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर उर्दू-फारसी की शैली का प्रभाव है। जैसे—'छाले फोड़ना' भारतीय काव्य-परम्परा के विरुद्ध है।

श्री इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में 'प्रसादजी' की आँसुओं की पंक्तियों ने हिन्दी-जगत को प्रथम बार वेदना की मादकता में विभोर किया, जिसमें बाद में सारा छायावाद युग मतवाला हो उठा था। वेदना की भयंकर बाढ़ में सारे युग को परिप्लावित कर देने जैसी क्षमता 'प्रसादजी' के इन आँसुओं में रही है, वह हमारे साहित्य के इतिहास में अतुलनीय है।

यथार्थ में 'आँसू' एक छोटा-सा सुन्दर प्रेम तथा विरह से युक्त काव्य है। 'आँसू' विरह-वेदना की व्यथा तथा कथा है 'आँसू' में विरह मनोविज्ञान पर आधारित है। 'आँसू' का नायक सुखद एवम् सुख पूर्ण जीवन की बीती बातें याद करता है। अतीत सुखद था, तथा वर्तमान दुःखपूर्ण है। मिलन स्मृति आते ही आँसू झरने लगते हैं। प्रथम परिचय में ही युग-युग की पहचान हो गई 'Love at first sight' हो गया। कण-कण में उनकी वेदना व्याप्त है। मनुष्य भौतिक सुख छिन जाने पर

दुखी होता है, तथा आँसू बहाता है। धीरे-धीरे उसका मोह भी दूर हो जाता है। यह पाने की आशा छोड़ देता है। वह अपनी वेदना को लोक-कल्याण के लिए लगा देता है।

भाव-पक्ष—आँसू का मुख्य-भाव विरह मिश्रित करुणा है। आँसू में दो हृदयों के मिलन की सुखद बीती घड़ियों की झाँकी है। वियोग मिश्रित करुणा की धारा अवाध रूप से प्रबाहित हुई है। कवि ने नख-शिख वर्णन भी किया है, जो रीतिकालीन कवियों की याद दिलाता है। प्रसाद द्वारा नख-शिख-वर्णन का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

काली आँखों में कैसी, यौवन के मद की लाली।
मानिक मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली॥

'प्रसादजी' ने प्रतीकों के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति की है। जैसे :

लहरों में प्यास भरी थी, थे भँवर पात्र भी खाली।
मानस का सब रस पीकर, लुढ़का दी किसने प्याली॥

अब क्या शेष रहा ? केवल वेदना रह गई। प्रसाद ने अमूर्त्त भावों को भी मूर्त्त कर दिया है। जैसे वेदना के लिए

'वेदना विकल फिर आई, मेरी चौदहों भवन में।'

कला-पक्ष—काव्य में अभिधा, व्यंजना तथा लक्षणा शक्ति से अर्थ निकाला जाता है, 'आँसू' में लक्षणा शक्ति का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। सुख और दुःख का भाव प्रकट करने के लिए चाँदनी और अँधेरी रात के प्रतीक का प्रयोग किया है। उपमा, रूपक तथा विरोधाभास को छटा दर्शनीय है। कवि ने मिश्रित उपमानों तथा नये शब्दों का प्रयोग भी किया है। 'आँसू' पर अंग्रेजी का प्रभाव है : जैसे Golden evening का स्वर्णिम संध्या, Golden dreams, का स्वर्णिम स्वप्न आदि। प्रसाद की शैली मे कहने का ढंग निराला है। कहीं-कहीं भावों की दुरुहता के कारण भाषा कठिन एवं जटिल हो गई है। अन्त में हम कह सकते हैं कि आँसू में कवि ने नवीन शब्दों का प्रयोग किया है, उसमें अर्थ चमत्कार भी परिलक्षित होता है। अतएव शुक्लजी का यह कथन है कि 'आँसू' में अभिव्यजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम वेदना की दिव्य विभूति का, विश्व में उसके मंगलमय प्रभाव का, सुख और दुःख दोनों को अपनाने की उसकी अपार शक्ति की ओर उसकी छाया में सौन्दर्य और मंगल के संगम का भी आभास पाया जाता है।" पूर्ण रूपेण सत्य ही है।

निष्कर्ष—सुख और दुख के संतुलन से ही जगत् का कल्याण हो सकता है। आँसू की विषम आर्थिक समस्याएँ इस प्रकार हल हो सकती हैं कि हम सुख का त्याग करें और दूसरों के लिए दु.ख सहे। दुःख को करुणा की आधारशिला पर पल्लवित करके समता का उदय करावें, तभी विषमता मिट सकती है और सच्चे प्रेम मय वसुधा-समाज का निर्माण हो सकता है। इस प्रकार 'आँसू' आदर्शोन्मुख मानवतावादी सन्देश देता है।

प्रश्न ८—प्रसाद जी के काव्य में भाव-व्यंजना एवं मार्मिक अनुभूति पर विचार कीजिए।

उत्तर—भावुक कवि—प्रसाद जी एक भावुक कवि थे। उनकी भाव-धारा का धीरे-धीरे विकास होता है। वह कानन-कुसुम से कामायनी तक अपने विभिन्न रूप दिखाती है। कभी उसके किनारे 'करुणालय' बनते हैं, तो कभी महाराणा प्रताप उसके किनारे विचरण करते हैं और कभी कोई 'प्रेम पथिक', उनमें निमज्जित होकर आनन्द लाभ करता है, कभी लुकती-छिपती वह भाव धारा झरना बनकर हृदय-हिमाद्रि से झरती है और कभी 'आँसू' ढरती 'लहर' उठाती हुई 'कामायनी' के आनन्द-सिन्धु में लय हो जाती है। ध्यान से देखने पर उसके प्रेम और सौन्दर्य के दो फूल दिखाई देते हैं। यौवन का उन्माद उसको गति देता है और आनन्द की तृष्णा उसको उपसंहार की ओर ले जाती है। विराट प्रकृति उस भाव-धारा का विपक्ष है। मानव-हृदय का अपूर्व सामंजस्य उसमें प्रसादजी ने किया है। शारीरिक सौन्दर्य और प्रेम कुछ दूर तक उनके काव्यों में एक साथ चलते हैं और फिर धीरे-धीरे प्राकृतिक-सौन्दर्य के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है।

सौन्दर्याकर्षण—उनके काव्य में यौवन के प्रति सबसे अधिक आकर्षण है। सौन्दर्य अपनी रक्षा स्वयं करता है। राणा प्रताप जब सैनिकों द्वारा पकड़ी हुई रहीम खानखाना की पत्नी को ससम्मान लौटा देते हैं, तो खानखाना उससे विनोद करता हुआ सच्चे सौन्दर्य के इस महत्व को प्रकट करता है :

सुन्दर मुख की होती है सर्वत्र ही विजय,
प्रिये ! तुम्हारे अनुपम सौन्दर्य से।
वशीभूत होकर वह कानन केसरी,
दांत लगा न सका ………………… !

प्यार की गम्भीरता—प्रसाद का हृदय प्यार की गम्भीरता को भी समझ रहा है। वह उसकी दूरी से परिचित है। वह जानता है कि 'प्यार' किया नहीं जाता। इसलिए मनु श्रद्धा के निकट पहुँचकर उससे कुछ चाहते नहीं, अपितु अपने हृदय का उसे दान करते हैं :

चन्द्र की विश्रान्त राका बालिका सी कान्त।
विजयिनी सी दीखती तुम माधुरी सी शान्त॥
आज ले लो चेतना का यह समर्पण दान।
विश्व रानी ! सुन्दर नारी जगत की मान॥

रति भाव की अभिव्यंजना—संचारियों और अनुभावों से परिपक्व रति भाव की कैसी सुन्दर अभिव्यंजना इन पंक्तियों से हुई है।

यह वह दशा है जबकि भोग-वासना प्रबल होने पर यौवन, प्रेम-सौन्दर्य का रूप विकृत हो जाता है तथा वात्सल्य की उत्पत्ति होती है। गर्भवती श्रद्धा भावी शिशु के प्रति उत्कण्ठा का कैसा भाव प्रकट करती है :

यह हिंसा कितनी प्यारी है जो भुलवाती है देह-गेह ।

जननी बनने के साथ :

उनके घर में कोलाहल हैं, मेरा सूना गुफा द्वार ।
तुमको क्या ऐसी कमी रही, जिसके हित जाते अन्य द्वार ?

और इस अवस्था में रति भाव का लेश नहीं रहता ? अपितु गृहस्थी के दायित्व की भी भावना आ जाती है :

मैंने जो एक बनाया है, चल देखो मेरा कुटीर ।
यों कह श्रद्धा हाथ पकड़, मनु को ले चल वही अधीर ॥

वात्सल्य—भावी शिशु के प्रति उसका एक साथ वात्सल्य उमड़ पड़ता है। अब उसे प्रियतम के मिलन की विरह की तनिक भी चिन्ता नहीं रह जाती । वासना का तन्तु एक दम टूट जाता है :

सूना न रहेगा यह मेरा, लघु विश्व कभी ………… ।
मैं उसके लिए बिछाऊँगी, फूलों के रस का मृदुल फेन ।
झूले पर उसे झुलाऊँगी, दुलरा कर लूँगी बदन चूम ।
मेरी छाती से लिपटा इस, घाटी में लेगा सहज घूम ।

पुत्र के रूप में नारी का स्नेह साकार हो जाता है। संयोग पक्ष की साधना का यही चरम लक्ष्य है ।

विप्रलम्भ शृंगार – वियोग-पक्ष में पहुँच कर नारी की साधना की ओर वेदना उन्मुख हो उठती है । उस समय वियोग करुण और विषाद की साधना करता हुआ अपनी संवेदना को व्यापक कर 'विराट प्रकृति' पुरुष तथा आत्मा-परमात्मा के मिलन पथ पर बढ़ता है । प्रेमी और प्रेमिका के लौकिक मिलन का अभाव होने की दशा में आत्मा-परमात्मा का मिलन हो प्रेम के साधक का लक्ष्य हो जाता है । संयोग में यदि लौकिक पक्ष प्रबल है तो वियोग की इस दिशा में परमार्थ प्रबल है । संभोग साधना का फल यदि वात्सल्य है. तो वियोग की चरम साधना का फल है भक्ति ।

निष्कर्ष--उपर्युक्त विवेचन से यह न समझना चाहिए कि प्रसाद की दृष्टिकोण एकाकी है एवं वे हृदय की विशाल भाव-भूमि पर नहीं खड़े हुए हैं । केवल यौवन, सौन्दर्य, प्रेम, मिलन, विरह एवं वेदना के ही चारों ओर कल्पना को दौड़ाते रहे हैं । उनका उत्साह, क्रोध आदि भावों का चित्रण भी अनूठा है । उनकी कविता में शृंगार, वात्सल्य, शान्ति आदि रसों के अतिरिक्त वीर, रौद्र आदि रसों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति है । शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण शीर्षक कविता पढ़ते-पढ़ते पाठक की भुजायें फड़कने लगती हैं तथा हृदय का उत्साह का एक ज्वर-सा आ जाता है ।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

प्रश्न १—निराला जी की काव्यकला पर एक सार-गर्भित निबन्ध लिखिए।

अथवा

प्रश्न २—आपने निराला जो की जो रचनाएँ पढ़ी हैं, उनके आधार पर निराला जी के कवि-व्यक्तित्व के विकास का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—रूढ़ि के विरोधी—निराला जी रूढ़ि के विरोधी रहे। उनके साहित्य के कला-पक्ष में भी विद्रोह की भावना उभरी हुई मिलती है। हम उनके काव्य के कला-पक्ष का विवेचन निम्न शीर्षकों में कर सकते हैं :

छन्द—निराला जी की कला छन्द के क्षेत्र में विद्रोही बनकर सामने आई। हिन्दी को मुक्त-छन्द उनकी नवीन देन है। प्रारम्भ में निराला जी के इस मुक्त-छन्द का बहुत विरोध हुआ। पं॰ महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने इस नवीन छन्द के कारण ही उनकी 'जुही की कली' कविता को नहीं छापा। उन्होंने कई लेख लिखकर भी मुक्त-छन्द का विरोध किया। किन्तु निराला जी अपने पथ से विचलित नहीं हुए। आगे चलकर मुक्त-छन्द में लिखी गई उनकी रचनाएँ हिन्दी की अमर निधि बन गईं। राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, पंचवटी-प्रसंग, जुही की कली, बनबेला, सरोज-स्मृति आदि रचनाएँ उनकी सफलता का उदाहरण हैं।

निराला जी के मुक्त छन्द में किसी प्रकार के वर्ण, मात्रा, गुण आदि का बन्धन नहीं है। निराला जी ने अपने मुक्त-छन्द के सम्बन्ध में 'परिमल' में लिखा है :

"उनमें कोई नियम नहीं, केवल प्रवाह कवित्त छन्द का सा जान पड़ता है। कही-कहीं आठ अक्षर आप ही आ जाते हैं। मुक्त-छन्द की सार्थकता उसका प्रवाह ही है, वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसमें निर्मित साहित्य उसकी मुक्ति है।"

अपने उपर्युक्त कथन के समर्थन में निराला जी ने 'जुही की कली' की प्रारम्भिक पंक्तियों को उद्धृत किया है :

'विजन-वन बल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न-मग्न अमल कोमल तनु-तरुणी
जुही की कली
दृग बन्द किये शिथिल पत्रांक में।'

यहाँ तमाम की पंक्तियों गति कवित्त छन्द की तरह, हैं 'सोती थी सुहाग भरी' आठ अक्षरों छन्द का बन गया है।

निराला जी के मुक्त छन्दों के विषय और गति में एक ही साम्य का अपार सौंदर्य मिलता है।

अमिताक्षरा, अतुकांत और लयात्मक-मुक्त-छन्द के रूप में निराला जी इतने आगे बढ़ गये कि विरोधी लोग उनके छन्द को केंचुल-छन्द और रबड़ छन्द कहकर पुकारने लगे। किन्तु निराला जी समस्त गतिरोधों पर विजयी हुए। आज हिन्दी के अधिकांश युवक-वर्ग इसी छन्द में रचना कर रहे हैं।

निराला जी के मुक्तक-छन्द में अलाप-प्रधान संगीत की प्रधानता है। इस लिए स्वर का अनवरत प्रवाह झंकृत हो उठता है। छोटी पंक्ति के साथ लय छोटी होती है और बड़ी के साथ स्वर की दीर्घता बढ़ जाती है। निम्न उदाहरण में देखिए :

मुक्त हो गये प्राण
रुका है सारा-करुणा-क्रन्दन।
बहती कैसी पागल धारा
हाथ जोड़कर देखता दीप विश्व यह सारा।

द्वितीय और चतुर्थ चरण प्रथम और तृतीय चरण से बहुत बड़े हैं। अतः स्वर का उतार-चढ़ाव आकार के अनुरूप है।

निराला के मुक्त छन्द में प्रसाद और ओज गुण के अनुरूप शब्दावली परिवर्तित होती चलती है :

प्रसाद गुण—पिउ रब पपीहे बोल रहे।

ओज-गुण—ब्रिध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल।

'राम की शक्ति पूजा' में ओज गुण के अनुरूप सशक्त पदावली का सफल प्रयोग हुआ है। मुक्त-छन्द में 'संध्या सुन्दरी' का सौन्दर्य खिल उठा है।

इस प्रकार निराला जी मुक्तक-छन्द के जन्मदाता और उसके सबसे अधिक सफल कवि हैं।

भाषा—छन्द के समान निरालाजी ने भाषा के क्षेत्र में भी नए-नए प्रयोग किए हैं। निराला जी की भाषा भाव की सफल वाहिका हैं। वह कोमल और परुष दोनों ही प्रकार की है। निरालाजी की भाषा में चमत्कार-प्रदर्शन की भावना नहीं है। सामान्य भाव के साथ-साथ छायावादी लाक्षणिक शैली और कोमल कान्त पदावली मिलती है।

निरालाजी की भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक है। 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' की रचना समास-पद्धति पर ही हुई है। भाव-गाम्भीर्य की अभिव्यक्ति करने के लिए इस प्रकार की शब्दावली सर्वथा समर्थ होती है। इसके द्वारा वातावरण का यथार्थ चित्रण हो जाता है।

कहीं-कहीं पर निरालाजी सामान्य शब्दावली के द्वारा ही विस्तृत भाव को अभिव्यक्त कर देते हैं। 'सरोज-स्मृति' से निम्न पंक्तियाँ उदाहरण के लिए लीजिए :

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।

निरालाजी कतिपय स्थलों पर ऐसी भाषा का प्रयोग कर जाते हैं, जो कलात्मक नहीं कही जा सकती । निम्न उदाहरण में देखिए :

एन्ट्रैंस पास है लड़की वह
बोले मुझसे छब्बीस हो तो,
वर की उम्र ठीक ही है
लड़की भी अट्ठारह की है ।

परन्तु ऐसे स्थल बहुत ही कम मिलेंगे । कुछ कविताएँ तो इतनी सुन्दर हैं कि भाषा सजीव चित्र उपस्थित कर देती है । 'संध्या-सुन्दरी' में एक-एक शब्द चुन-चुन कर और तराश-तराश कर रखा है । इसमें कहीं भी शिथिलता नहीं मिलती । प्रत्येक शब्द गम्भीर वातावरण को ध्वनित कर देता है :

दिवासवसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी सी
धीरे-धीरे-धीरे ।
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास ।
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किन्तु जरा गम्भीर नहीं, नहीं है उसमें हास-विलास ।

'तुलसीदास' एवं 'राम की शक्ति पूजा' की समास-प्रधान शब्दावली प्रभावपूर्ण वातावरण की सृष्टि कर देती है ।

लक्षणात्मक प्रयोग और नवीन अलंकार—पन्तजी की तरह निरालाजी के काव्य में नूतन अलंकार और लक्षणात्मक प्रयोग काफी मिलते हैं । लक्षणात्मक प्रयोग निम्न उदाहरण में देखिये :

गन्ध-व्याकुल-कुल उर स्वर
लहर खुलकर कमल मुख पर
हर्ष अलि हर स्पर्श शर : शर
गूंज बारम्बार (रे कह)

निरालाजी के अनेक गीतों की भाषा लोक गीतों की सी है । 'गीतिका' के बहुत से गीत भाव, भाषा और संगीत आदि सभी दृष्टियों से लोक-गीतों की परम्परा के अनुकूल हैं । निरालाजी ने कुछ कजली और गजल भी लिखी हैं । इनमें उर्दू शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । 'कुक्कुरमुक्ता', नये पत्तों आदि की कविताओं में दैनिक बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग हुआ है । इनमें तीखा व्यंग्य मिलता है ।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कला-पक्ष की दृष्टि से निराला जी का काव्य धनी है । उनकी भाषा में विविधता मिलती है । भाषा कहीं दीर्घ समास प्रधान है, तो कहीं सरल और व्यावहारिक है । उनकी अलंकृत मधुर भाषा

सुबोध और सौष्ठव प्रधान है। उनकी कला में कोमलता और माधुर्य के स्थान पर ओज और पुरुषता अधिक है।

निराला जी की रूप-विधायिनी शब्द-कला थोड़े में ही बहुत कुछ कह जाती है।

प्रश्न ३—सिद्ध कीजिये कि निराला जी प्रगतिवाद के अग्रदूत हैं।

उत्तर—प्रगतिवाद का ऊँचा स्तर— निराला जी के काव्य में आरम्भ से प्रगतिवाद का ऊँचा स्तर मिलता है। वे सदैव ही अन्याय के विरोधी और मानवता के समर्थक रहे हैं।

निराला जी संकीर्णता को कहीं भी स्वीकार नहीं करते। वे व्यक्ति की तुलना में समाज को प्रधानता देते हैं :

"हम पुण्य उसे ही मानते हैं, जिसमें अधिक संख्यक मनुष्य को लाभ हो। जिसमें वे सुखी हों।"

निरालाजी के सामाजिक विचारों में कहीं-कहीं पर विरोध भी मिलता है—कहीं वे द्विजों को फटकारते, शूद्रों को दान देते हैं, तो कहीं वर्णाश्रम धर्म का प्रबल समर्थन करते हैं। 'तुलसीदास' में उन्होंने शूद्रों की दीन दशा का सारा उत्तरदायित्व द्विजों पर डाला है। वे ऊँच-नीच के भेद का परिणाम निम्न प्रकार व्यक्त करते हुए कहते हैं :

जागी रहेगी यदि,
इसी तरह आपस में
द्वन्द्व कलह वैमनस्य।
निश्चय है—
देश उन तरंगों का,
और घट जायगा—
क्षुद्र से क्षुद्रतर होकर भर जावेंगी
चंचलता शान्त होगी।
स्वप्न-सा विलीन हो जायगा अस्तित्व सब,
दूसरी ही तरंग कोई फिर फैलेगी।

निराला जी एक स्वतन्त्र विचारक रहे हैं। वे रूढ़ियों में बँधकर रहना-सहन नहीं कर सकते।

निराला जी का साहित्य प्रगतिशील साहित्य है—उन्होंने भारतीय ऐतिहासिक पुरुषों और अतीत प्रेम पर कविताएँ लिखीं हैं। उनमें देश-भक्ति की भावना बहुत प्रबल है। निरालाजी प्रारम्भ से लेकर आज तक सभी प्रकार की दासता से लड़ते रहे। उन्होंने काव्य को बन्धन से मुक्त कर उसे स्वतन्त्र रूप प्रदान किया।

निराला जी का प्रगतिशील काव्य परतन्त्रता दूर करने के लिए ललकारता है। 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता उसका उदाहरण है :

जागो फिर एक बार।
सिहनी की गोद से।
छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण रे अजान !
एक मेष माता ही
रहती है निनिर्मेष—
दुर्बल वह—
छिनती सन्तान जब
जन्म पर वह अपने अभिशप्त
तप्त आंसू बहाती है।

शोषण के विरुद्ध ऊँचा स्वर—निराला के काव्य में शोषण के विरुद्ध तीखे स्वर मिलते हैं। वे शोषकों, पाखण्डियों और ढोंगी नेताओं पर कसकर चोटें करते हैं। 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' आदि रचनाओं में सामाजिक विषमता पर निराला जी ने गहरी चोट की है। 'कुकुरमुत्ता' शोषित वर्ग का प्रतीक होते हुए भी स्वावलम्बी है। निम्न गजल में निराला जी पूँजीपतियों को ललकारते हुए कहते हैं :

भेद कुल खुल जाये वह सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय जो पूंजी तुम्हारे मिल में है।

'मंहगू मंहगा रहा' में निरालाजी ने धन के बल पर जीतने वाले उम्मीदवार नेताओं की कलई खोली है।

प्रगतिवाद—सन् १९४० के पश्चात् की रचनाओं में निरालाजी का शक्तिशाली प्रगतिवादी रूप मिलता है।

'भिखारी', 'विधावा', 'तोड़ती पत्थर' आदि रचनायें उदाहरण के लिए ली जा सकती हैं। 'भिखारी' शीर्षक कविता अभिव्यक्ति, भाव-व्यंजना, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से वर्तमान प्रगतिवादी साहित्य में शीर्ष स्थान रखती हैं।

निराला-साहित्य यथार्थ जीवन का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। वह उज्ज्वल भविष्य की प्रेरणा भी देता है। अतः निरालाजी सच्चे अर्थों में सच्चे प्रगतिवादी कवि हैं। उसके साहित्य के सम्बन्ध में रामविलास शर्मा का निम्न कथन दृष्टव्य हैं :

''उनका काव्य-साहित्य भारत पर अंग्रेजी राज्य की कटु आलोचना तथा जनता की दरिद्रता और दुखी जीवन की तस्वीरें सभ्य अंग्रेजी शासन पर सबसे अच्छी

टिप्पणी हैं। साथ ही यह साहित्य भारतीय रूढ़िवाद की खरी आलोचना करता है। विशेष रूप से जाति-प्रथा की हानियाँ, समाज में ऊँच-नीच का भेद कायम रखने वालों की असलियत जाहिर कर देता है। वह उनके ऊपर से धर्म के लवादे उतार फेंकता है और उनका सच्चा मानव-द्रोही रूप प्रगट कर देता है। ………धर्म ही नहीं, विवाह, पारिवारिक जीवन, नैतिक मूल्य जहाँ भी मनुष्य दूरंगी नीति वरतता है, निराला उसे उखाड़ कर रख देता है। दुखी मानव के प्रति सहानुभूति प्रकट करने की, जीवन-संघर्ष से लड़ने के लिए ललकारने की, अन्याय का डटकर विरोध करने की प्रवृत्ति उसमें है। यह दूसरी प्रवृत्ति ही अधिक शक्तिशाली है, जो उन्हें युग निर्माता साहित्यकार बनाती है।"

प्रश्न ४—भाव-पक्ष की दृष्टि से निरालाजी के काव्य-सौन्दर्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—निरालाजी के काव्य में विविधता—निरालाजी की रचनाओं में वैसे तो सभी भाव-स्तर मिल जाते हैं, जो आज के युग में किसी बड़े कवि में मिल सकते हैं, पर कोई व्यवस्थित विकास नहीं दिखाई पड़ता। एक ओर रहस्यमयी रचनायें भी हैं, जिनमें बंगाल के 'रामकृष्ण' मिशन के वेदान्त का प्रभाव है। 'तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता' नाम की इनकी कविता प्रसिद्ध ही है। दूसरी ओर इनकी करुणा की प्रबल धारा ने प्रपीडितों और शोषितों को भी अपनाया है और यह सहानुभूति प्रगतिवादी वृत्ति के अनुकूल बैठती है। 'विधवा' अथवा 'भिखारी' उनकी ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'कुकुरमुत्ता' में अद्भुत ढंग से शोषित तथा उपेक्षित का मौलिक महत्व प्रतिष्ठित किया गया है। इन सबके साथ ही निरालाजी में भारतीय संस्कृति का प्रेम भी प्रबल है।

निरालाजी का भक्ति-सिद्धान्त—निरालाजी मस्तिष्क से अद्वैतवादी हैं, पर हृदय से भक्त तथा प्रेमवादी हैं। उनकी अनेक रचनाओं पर दार्शनिकता की छाप है। 'जागरण', 'मैं और तुम', 'कर्ण' आदि अनेक रचनायें सूक्ष्म दार्शनिक विचारों से ही ओत-प्रोत हैं।

सिद्धान्त रूप में इन दार्शनिक सिद्धान्तों को मानते हुए भी हृदय में उनसे सन्तोष नहीं होता। इसी से निरालाजी उपासक बने रहना चाहते हैं। इन्हीं विचारों को लक्ष्मण ने 'पंचवटी प्रसङ्ग' में व्यक्त किया है :

आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।

ये ही पंक्तियाँ निरालाजी की भक्ति का आधार हैं। अतः निरालाजी 'सोहम्' की रट नहीं लगाये रहते। वे करुणा-निधान, भक्तवत्सल भगवान पर भरोसा करते हुए 'सर्व धर्मान परित्यज मामेकं शरणं व्रज' की भावना व्यक्त करते रहे हैं :

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभाली जीवन खेवनहार।

उन्हें पूर्ण विश्वास है कि एक दिन उन प्रिय के अंचल में भक्त की सारी वेदना, विफलता तथा पीड़ा शान्त हो जायगी :

एक दिन थम जायगा रोदन तुम्हारे अंचल में।

अद्वैतवाद पर पूर्ण आस्था रखने के कारण तथा भक्तोचित भावुकता में मग्न रहने के कारण अस्पष्ट रहस्यवाद इनकी रचनाओं में टिकने नहीं पाता। वह प्रेम की सुकुमारिता का रूप धारण कर लेता है। नीचे की पंक्तियों में रहस्योन्मुख भावना भक्ति-भावना में लीन हो गई है :

फिर किधर को हम रहेंगे, तुम किधर होगे,
कौन जाने सहारा तुम किसे दोगे ?
हम मगर बहते मिले,
क्या कहोगे भी कि हाँ पहचानते !
या अपरिचित खोल प्रिय चितवन,
मगर बह जावेंगे पल में
परम-प्रिय-संग अतल जल में ?

भाव-पक्ष—निरालाजी निराशावादी नहीं हैं, पर ऐसे आशावादी नहीं, जो दुखों की उपेक्षा करें। वे सुख-दुख के द्वन्द्व को महत्व देते हैं। निरालाजी की रचनाओं का प्रेम भी एक विषय है। पर वह प्रेम अत्यन्त पावन है। प्रेम की इस पावन धारा में सर्वसाधारण स्नान करने का साहस ही कहाँ कर सकते हैं :

दिव्य देहधारी ही कूदते हैं इसमें
प्रिय पाते हैं प्रेममृत पीकर अमर होते हैं।

प्रेम की इस साधना के लिए न जाने कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं। हरिश्चन्द्रजी के :

पगन में छाले पड़े, नाघिवे को नाले परे।

वाले कष्टों से कम कष्ट निराला जी के प्रेमी को भी नहीं झेलने पड़ते तो भी हरिश्चन्द्रजी के प्रेमी की तरह :

तऊ लाल लाले पर रावरे दरस के।

निरालाजी के प्रेमी को भी दर्शन के लाले पड़ जाते हैं :

बिछे हुए थे काँटे उन गलियों में जिनमें मैं चलकर आई।

निरालाजी की रचनाओं में करुणा भी हृदय को द्रवित करने वाली है। इनकी रचनाओं में देश-प्रेम का स्वर भी मुखरित है। 'जागो फिर एक बार' की कुछ पंक्तियाँ देखिये।

"जागो फिर एक बार,
समर में अमर कर प्राण,
गान गाये महा सिन्धु से,
सिन्धु-नदी तीरवासी !"

निरालाजी कुशल चित्रकार की तरह वस्तु के चित्र को खींचकर रख देते हैं। एक भिक्षुक का चित्र देखिये :

"दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।"

निरालाजी के काव्य का भाव-पक्ष सफल है, परन्तु उनका काव्य पुरुष भावनाओं का काव्य है।

प्रश्न ५—छायावादी गीत-काव्य की विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए निरालाजी के काव्य की विशेषताएँ बतलाइये।

उत्तर—गीत-तत्व—छायावादी कवियों में सबसे अधिक गीत निरालाजी ने ही लिखे हैं। उन्होंने लगभग ४०० गीत लिखे हैं, जिनमें से कुछ प्रकाशित और शेष उनके काव्य-संग्रहों में संकलित हैं। निरालाजी के गीतों में कई महत्वपूर्ण बातें देखने को मिलती हैं।

संगीत-तत्व—इनके काव्य में पहली बात तो संगीत के समावेश की है। कबीर, सूर, तुलसीदास और मीरा की भाँति उनके गीत भी संगीत-शास्त्र के आधार पर लिखे गये हैं। इनके गीत खड़ी बोली के हैं, जिनमें सन्त पदावली से भिन्न आज तक के मानस की मनः-स्तिथि के अनुकूल भावनाओं को व्यक्त किया गया है।

निराला जी के गीतों में दूसरी विशेषता संगीत-तत्व की है। उनका शैशव बंगाल में बीता था, इसलिए उनके संगीत और साहित्य के संस्कारों का निर्माण बंगाल के वातावरण में होने से उनका दृष्टिकोण उदार बन गया। बंगला के प्रसिद्ध नाट्यकार डी० एल० राय और विश्वकवि रवीन्द्र ठाकुर ने अपनी रचनाओं में संगीत का पुट दिया है। निराला जी ने उनके प्रभाव से खड़ी बोली के अपने इन गीतों में बंगला के माध्यम से इस तत्व को समाविष्ट किया है।

संगीतमय शब्दावली—तीसरी विशेषता उनके गीतों की यह है कि उन्होंने हिन्दी-संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों के ही सुधार करने का प्रयत्न किया है। एक गीत की मूल पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

जग का एक देखा तार
कंठ अगणित देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार।

निराला जी संगीत की दृष्टि से उसे यों रखना पसन्द करते हैं :

एक देखा, तार जग का
कंठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार जग का।

निराला जी गीतों में संगीत के समावेश के तो पक्षपाती हैं, किन्तु वे यह नहीं चाहते कि प्रान्त विशेष या गायकी के घरास विशेष की भाँति कोरी अदायगी पर ही जोर दिया जाय।

संगीत और उच्चस्तरीय साहित्य का समन्वय—निराला जी के गीतों की चौथी विशेषता यह है कि उसमें उच्चस्तरीय साहित्यिक सौन्दर्य मिलता है। शास्त्रीय संगीत के साथ साहित्यिक छटा का भी संगम हो, ऐसे गीत आधुनिक कवियों में उन्हीं के हैं। उनमें उच्चकोटि की दार्शनिकता भी है और गम्भीर रहस्यानुभूति भी। उनमें प्राकृतिक सुषमा के आकर्षक चित्र भी हैं और मानवीय सौन्दर्य का सफल अंकन भी है। उनमें बलिदानी भावना का उफान भी है और सहज आत्मनिवेदन भी।

तटस्थता का भाव—निराला जी के गीतों की पाँचवीं विशेषता यह है कि उन में एक तटस्थता का भाव है। वे निजी वेदना या उल्लास को लेकर नहीं चले हैं वरन् उनमें एक विशाल मानव-समुदाय की भावनाओं को मुखरित होने का अवसर मिला है।

लघु आकार—निराला जी के गीतों की छठवीं विशेषता यह है कि वे लघु आकार के हैं। अधिकांश गीतों के तीन बंध हैं। वैसे दो और एक बन्ध के गीत भी उन्होंने बहुत लिखे हैं। इनके गीत में विखराव नहीं आता, वरन् कसावट आ जाती है और पाठक या श्रोता रसमग्न हो जाता है।

परिष्कृत खड़ी बोली—निराला जी के गीतों की सातवीं विशेषता यह है कि उनकी भाषा परिष्कृत खड़ी बोली है, जिसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली का उपयोग हुआ है। आगे चलकर जब इन्होंने उर्दू के गीतों, गजलों के प्रयोग किए तब अवश्य अरबी, फारसी के शब्दों को ग्रहण किया लेकिन फिर भी वे अरबी फारसी के प्रचलित शब्दों को ही लेकर चले हैं। साथ ही उनमें संस्कृत की शब्दावली का भी मिश्रण किया है। सबसे बड़ी बात यह रही कि उन्होंने कम से कम शब्दों में अधिक बात कहने का प्रयत्न किया है।

(१) **प्रगीत**—गीतों के साथ निराला जी ने कविताओं की भी रचना की हैं। प्रगीत में भी गीत की भाँति ही कवि के हृदय की कोमल भावनाओं का प्रकाशन होता है, लेकिन गीतों से इनमें एक अन्तर है, वह यह कि इनमें शास्त्रीय संगीत के आधार पर गाये जाने और वैयक्तिकता के गहरे स्पर्श के स्थान पर वाह्यतत्व और दृश्यांकन के साथ भाव-चित्रण को महत्व दिया जाता है। प्रगीत के आकार भी गीतों से बड़े होते हैं और तुकान्त और अतुकान्त या मुक्त-छन्द किसी में लिखे जा सकते

हैं। गीतों की भाँति इनमें संक्षिप्तता, कसावट या भाषा की सामासिकता का वह रूप नहीं रहता जो शब्दों की मितव्यता की प्रवृत्ति को अपनाने से आता है। निराला जी की कुछ कविताएँ जैसे 'संध्या सुन्दरी', 'खडहर', 'भिक्षुक', 'प्रेम' आदि इसी के अन्तर्गत आती हैं।

(२) **आख्यानक काव्य**—अंग्रेजी में जिसे ब्रैलेडी कहा जाता है, उसे हिन्दी में आख्यानक काव्य कहा गया है। सामान्य जन-मानस में उसे लोक विश्वासों के आधार पर जब कोई रचना प्रणीत होती है, तो उसे आख्यानक काव्य कहते हैं। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में इसी लोक-गाथा की प्रणाली को अपनाया है और अत्यन्त कुशलता से साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करके सफल आख्यानक काव्यों की सृष्टि की है।

(३) **गीत-नाट्य**—जैसा कि इस साहित्य-विधा के नाम से ही ध्वनित होता हैं, गीति-तत्व में नाट्यतत्व या नाट्यतत्व का गीति-तत्व के मिश्रण से गीतिनाट्य का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में कविता में अभिनेयता के तत्व जब समविष्ट हो जाते हैं तो गीतिनाट्य का जन्म होता है। निराला जी ने 'पंचवटी प्रसंग' नाम से एक गीति-नाट्य का सृजन किया है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इस सन्दर्भ में लिखा है:

"निराला का यह गीति-नाट्य बंगाल की रास-लीलाओं की पद्धति पर रचा गया है। उन रास लीलाओं में विभिन्न पात्र आते हैं और लम्बे-लम्बे उद्‌गार व्यक्त करते हैं। लम्बे उद्‌गारों के लिये गद्य उतना समीचीन माध्यम नहीं होता, इसलिये कथात्मक रूप दिया जाता है। निराला को मुक्त-छन्द की प्रेरणा रास की नाट्य प्रणाली से प्राप्त हुई थी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला जी ने काव्य रूपों के विविध प्रयोग किये हैं। गीत, प्रगीत, आख्यानक काव्य और गीत-नाट्य आदि से गीतों और प्रगीतों में से उनकी प्रयोगशील प्रवृत्ति ने उन्हें कितने ही नये रूपों को जन्म देने की प्रेरणा दी है। उन्होंने जिन काव्य रूपों को लिया है, उनको टकसाली बना दिया है यह विशेषता उनके समकालीनों में केवल उन्हीं में पायी जाती है।

प्रश्न ६—"जीवन में जो कुछ सत्य सुन्दर और मंगलमय है, वही निरालाजी का आराध्य रहा है।" महादेवी के इस कथन को दृष्टि में रखकर निराला जी के काव्य की समीक्षा कीजिए और साहित्य में उनका स्थान निश्चित कीजिए।

उत्तर—युगाराध्य निराला—यदि निराला को युगाराध्य कहा जाये, तो अनुचित न होगा। निराला अपने काव्याभिव्यंजन के आरम्भिक क्षणों से लेकर जीवन पर्यन्त आराधना और साधना के साथ पूर्णतया प्रबुद्ध रहे हैं। वस्तुतः अपनी इस आराधना और साधना को सच्चाई के साथ निभाने के लिए ही उन्होंने समय के

स्वार्थ सम्बन्धों को कठोरतापूर्वक व्यक्त किया। दार्शनिक चिन्तन की गम्भीरता एवं भक्ति की अनन्य तन्मयता का परिचय 'अनामिका' और 'परिमल' से ही इनकी रचनाओं में हम पाने लगते हैं। कल्पना-जगत की यही धारा उत्तरोत्तर गम्भीरता तथा प्रभविष्णुता प्राप्त करती गयी है। अपनी रचनाओं में 'अर्चना' और 'आराधना' का प्रणयन करते समय निराला की आराध्यनिष्ठा स्पष्ट परिलक्षित होती है। किसी साधक को आराध्य भावनाओं में तन्मय देखकर उसके जीवन के आराध्य स्वरूप का परिचय मिलना सर्वथा स्वाभाविक है। कवि की आराध्यनिष्ठा के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा ने लिखा है :

"जीवन में जो कुछ सत्य सुन्दर और मंगलमय है, वही निराला का आराध्य रहा—आराधना भी उसी जीवन-व्यापी-अर्चना की एक कड़ी है।"

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो वह स्वीकार करना अनुचित नहीं है कि मनुष्य ने आत्मगौरव की उपलब्धि के लिए ही त्रिविध रूपों में आराधना देवी को प्रतिष्ठित किया है। मंदिर-मस्जिद-गिरजाघर आदि के द्वारा अपने तिरोहित आत्म-सम्मान को मानव उपलब्ध करना चाहता है। आराधना का ध्येय इस प्रकार आराध्य-स्वरूप की उपलब्धि ही है। निराला जी की जीवन-साधना से उनकी कल्पना और भावना का पार्थक्य कहीं भी किसी प्रकार नहीं दिखाई देता है।

लोक-मंगल—निरालाजी सचमुच प्राचीन सन्त और भक्त कवियों की भाँति विश्व-नियन्ता के अभिनन्दन में निरन्तर तन्मय दिखायी देते हैं। कवि की महान कृतियों 'अर्चना' और 'आराधना' का अध्ययन कर लेने के पश्चात् उनको युगाराध्य मान लेने में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। कविता के क्षेत्र में ही नहीं, गद्य-साहित्य में भी नितान्त लघु चित्रों में महानता का पूर्ण प्रभाव उन्होंने दिखाया है। 'अप्सरा' उसकी प्रथम औपन्यासिक कृति है। अप्सरा की कनक वैश्या की ही पुत्री है, परन्तु निराला ने आराधना की शक्ति के साथ उसे महानीय बना दिया है। अपने रचनात्मक कौशल की लोक-मंगल विधायकता पर निराला दृढ़निष्ठ हैं और यही उनकी बन्दनीयता का सनातन आधार भी है :

तुमने जो दिया दान वह,
जनता का जनता ज्ञान वह
सच्चा कल्याण वह,
अथच है यह सच है।

इसी आधार पर "निराला" ने अपने को बसन्त का अग्रदूत कहा है। निराला की कृति और प्रकृति को अधिक निकटता एवं पूर्णता के साथ समझने वाले चोटी के आलोचकों तथा मनीषियों ने जो निष्कर्ष निकाला है, वही हमारी चिन्तन-दृष्टि एवं

अनुभूति के सर्वथा अनुरूप है। निराला के निधन के पश्चात् महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने अपना भावोद्गार व्यक्त करते हुये लिखा है :

"आज निराला को मानने वाला नास्तिक समझा जायेगा। आने वाली पीढ़ियाँ इस महान कलाकार की प्रतिभा के बारे में कितनी ही कल्पनाएँ करेंगी; किन्तु वह उनके सरल, निष्कपट, उदार जीवन की झाँकी कही जा सकेगी। निराला जैसी विभूति दुर्लभ है। उनकी साहित्य प्रतिभा की भाँति उनकी महा मानवता भी साधारण मापदण्ड के मान से बाहर की चीज है।"

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निराला के साहित्य के मूल्य का परिचय देते हुये लिखा है—"निराला जी का अध्ययन बहुत विशाल है, परन्तु कभी भी उन्होंने पुराने और आधुनिक बड़े साहित्यकारों का अनुकरण नहीं किया। वे नख से शिख तक मौलिक हैं। उनका निराला उपनाम बिल्कुल सार्थक है। क्या काव्य, क्या कहानी, क्या निबन्ध 'निराला' जी का व्यक्तित्व सर्वत्र ही अत्यन्त मुखर होता है। इतना अद्भुत व्यक्तित्व हिन्दी-कवियों की वर्तमान दुनियाँ में नहीं है।"

आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने निराला के सम्बन्ध में अपने विश्वास को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है—"हमारी दृष्टि में यदि निराला जैसा कवि हिन्दी में नहीं लिखता होता तो हिन्दी राष्ट्र भाषा के सम्मानित पद की अधिकारिणी नहीं हो सकती थी।"

'छायावाद' के अभिमन्यु थे निराला, लेकिन इस अन्तर के साथ कि चक्रव्यूह भेदन करने के बाद वे पराजित नहीं हुये। निराला जी जॉनसन की तरह कर्मठ और अध्यवसायी, लार्ड वायरन से उद्भट प्रत्यालोचक, कीट्स और टैगोर की तरह सुकवि और टाल्सटाय, ह्यूगो और शा की तरह निर्भीक तथा क्रान्तिकारी औपन्यासिक हैं।"

आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी ने सर्वथा सत्य का अनुभव किया है—"बीसवीं शताब्दी में भारत में एक ऐसा भी मनस्वी और यशस्वी कवि हुए, जिसकी वाणी में बिजली की कड़क स्वभाव में बालक की सरलता और महापुरुष की महत्ता, तेजस्विता और उदारता विद्यमान थी।"

उपर्युक्त समालोचकों तथा चिन्तकों के निष्कर्षों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि निराला की प्रतिमा सर्वथा वन्दनीय थी। वे सचमुच युगाराध्य थे।

प्रश्न ७—निराला की रहस्य-भावना का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८—"निराला-काव्य की मूल प्रेरक शक्ति उनकी आध्यात्मिक भावना रही है।" इस कथन को ध्यान में रखते हुए निराला की रहस्य-भावना का विवेचन कीजिए।

उत्तर—निराला और रहस्यवाद की प्रेरणा—निराला की रहस्यानुभूति की प्रेरणा के स्रोत प्रायः तीन माने जा सकते हैं –(१) बंगाल का सुरम्य प्राकृतिक वातावरण, जिसकी गोद में निराला की बाल्यावस्था एवं युवावस्था व्यतीत हुई, (२) रवीन्द्रनाथ के साहित्य का प्रभाव तथा (३) स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव के फलस्वरूप रामकृष्ण मिशन के साधुओं के साथ निराला का गहन सम्पर्क । निराला पर रामकृष्ण मिशन के स्वामी शारदानन्द का गहरा प्रभाव था ।

निराला और रहस्यवाद—निराला के काव्य में पग-पग पर रहस्यवाद की अभिव्यक्ति पाई जाती है : उनकी शायद ही कोई ऐसी कविता हो, जिनमें रहस्यवाद की व्यंजना न पाई जाती हो । निराला के काव्य में —विशेषकर 'अपरा' में —उपलब्ध रहस्यवाद का विश्लेषणात्मक अध्ययन निम्नलिखित प्रकार है ।

अद्वैतवादी चिन्तन –निराला सदैव एक दार्शनिक की भाँति सोचते रहते थे । उनकी चिन्तन-पद्धति प्रायः अद्वैतवादी थी, परन्तु एक अन्तर के साथ । निराला का अद्वैतवाद शंकराचार्य की भाँति गतिहीन न होकर विवेकानन्द की भाँति गतिशील अद्वैतवाद है । वह अपने जीवन के दुखः को माया कहकर नहीं टाल देते हैं, वरन् उससे संघर्ष करते हैं तथा प्रभावपूर्ण पंक्तियों का निर्माण करते हैं :

"आत्मा-परमात्मा' का सम्बन्ध लेकर निराला 'तुम और मैं' कविता में अद्वैतवाद का स्पष्टता प्रतिपादन करते हुये दिखाई देते हैं :

तुम मृदु मानस के भाव,
और मैं मनोरंजनी भाषा,
तुम नन्दन - वन-घन विटप,
और मैं सुख-शीतल-तन शाखा,
तुम प्राण और मैं काया,
तुम युद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया ।

निराला का विश्वास है कि इस नाम रूपात्मक जगत का संचालन करने वाली कोई अदृश्य, अज्ञात एवं चेतन सत्ता अवश्य है । उसे ही सम्बोधित करते हुए वह ब्रह्म के प्रति अपने अटूट विश्वास को व्यक्त करते हैं :

एक दिन थम जायेगा रोदन,
तुम्हारे प्रेम अंचल में,
लिपट स्मृति बन जायेंगे कुछ कन,
कनक सींचे नयन जल में ।

ब्रह्म और जीव के तादात्म्य तक निराला ने तीन सोपानों का वर्णन किया है (१) ब्रह्म की ओर झुकाव, (२) ब्रह्म के प्रति आत्मसमर्पण तथा (३) एकाकार हो

जाना—जहाँ द्वैत भावना समाप्त हो जाती है और कबीर की तरह कवि की आत्मा लाल की लाली से लाल होकर स्वयं भी लाल बन जाती है कवि निराला स्वयं को ब्रह्म मान लेते हैं :

वहाँ कहाँ कोई अपना सब,
सत्य नीलिमा में लयमान,
केवल मैं, केवल मैं,
केवल मैं, केवल मैं ज्ञान ।

फिर भी निराला का रहस्यवाद कबीर से भिन्न है । कबीर का दर्शन वैराग्य-प्रधान है, निराला दार्शनिक हैं परन्तु वैरागी नहीं ।

दाम्पत्य-भाव की व्यंजना—इन्होंने एक-दो स्थानों पर स्वामी विवेकानन्द की भाँति अपने आराध्य को नारी रूप में सम्बोधित किया है :

प्रिय कोमल पदगामिनी मन्द उतर ।
जीवनमृत-तरु-तृण गुल्मों की पृथ्वी पर ।।

विवेकानन्द की भाँति निराला जीव और ब्रह्म के मध्य माया के आवरण को स्वीकार करते हैं ।

भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति—निराला के अद्वैतवाद में भक्ति की भावना का सम्मिश्रण पाया जाता है । 'पंचवटी' प्रसंग की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

मुनियों में मनुष्यों के मन की गति,
सोच ली थी पहले ही ।
इसीलिए द्वैत भाव-भावुकों में,
भक्ति की भावना करो ।

कई स्थानों पर निराला की उस अदृश्य सत्ता के प्रति प्रेम और विश्वास की भावना मुखर दिखाई देती है । यह अभिव्यक्ति एकदम वैष्णव-भावना के साथ मेल खाती है :

भर देते हो,
बार-बार प्रिय, करुणा की किरणों से,
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो ।

× × ×

तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो ।

इस प्रकार के स्थलों पर निराला में एक वैष्णव कवि की-सी तन्मयता मिलती है :

रहस्यवाद की तीन स्थितियों का वर्णन—कबीर में जिस वैष्णवीय प्रेम-भक्ति का वर्णन मिलता है, वह हमको निराला में दिखाई देता है। निराला ने उस अनन्त शक्ति को श्यामा, माता जननी कह कर पुकारा है। यह आत्म-निवेदन का ही एक रूप है और रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है।

(१) जिज्ञासा की स्थिति—

कौन तुम शुभ्र किरण-वसना ?
सीखा केवल हँसना केवल हँसना—
रूप राशि में टलमल-टलमल,
कुन्दन धवल दशना ।

'निराला' की कविताओं में 'जिज्ञासा' की स्थिति प्रायः मिल जाती है। इसमें ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा भी रहती है तथा उससे उत्पन्न कौतूहल, विस्मय एवं आनन्द की व्यंजना भी। निराला में या तो 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' प्रधान चिन्तन मिलता है अथवा आत्यंतिक स्थिति में अनुभवों को अंकन किया गया है, यथा :

स्पर्श से लाज लगी,

× × ×

नयनों का नयनों में बन्धन,
काँपे थर-थर थर-थर तन,
लाज लगे तो जाओ,
तुम जाओ ।

(२) विरह की स्थिति—निराला के मन में चेतना के प्रति अटूट विश्वास उठता है, तब उस चेतना में लय हो जाने के लिए आत्मा विकल हो उठती है—बस उसको समस्त विश्व में एक ही चेतना के दर्शन होने लगते हैं :

प्राणधन को स्मरण करते ।
नयन झरते नयन झरते ॥

(३) मिलन की स्थिति—रहस्यवाद में 'विरह' और 'मिलन' की अवस्थाएँ साथ-साथ चलती हैं। साधक के मन में कभी तो विरह जन्य विकलता अंकुरित होती है और कभी किन्हीं विरल मधुमय क्षणों में उस चेतना का मधुर संस्पर्श प्राप्त होता है। प्रिय तो सदैव हृदय में स्थित रहता है। फिर उसे कहाँ और क्यों खोजा जाय ?

हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?

जिससे—

हुई ज्योत्स्ना अखिल मायापुरी ?

प्राकृतिक रहस्यवाद—कवि निराला प्रकृति के कण-कण में उसी सत्ता की

छवि का दर्शन करते हैं। वह छायावादी कवियों के समान प्रकृति के रूपों में अरूप का आभास पाते हैं :

> किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिला कर,
> आती हो तुम सजी मंडलाकार,

निष्कर्ष—निराला के रहस्यवाद की सामान्य विशेषताएँ :

(१) अन्य छायावादी कवियों की भाँति निराला ने प्रकृति की प्रत्येक वस्तु को विस्मय और जिज्ञासा के भाव से देखा है, जिसे 'कौन' 'क्या' आदि शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। इस पद्धति से सामान्य वस्तु में भी एक प्रकार का साधारण सौन्दर्य आ गया है। निराला ने खिले हुए पुष्पों को गरजते हुए बादलों को पर्वत के उत्तुंग श्रृंगों को, बल खाती हुई यमुना की लहरों का विस्मित एवं विमुग्ध नयनों से देखा है। प्रकृति में एक चेतना सत्ता का भाव इनके काव्य के वस्तु-पक्ष को रमणीयता प्रदान करता है :

> यमुने तेरी इन लहरों में
> किन अधरों की व्याकुल तान ?
> पथिक प्रिया-सी जगा रही है—
> उस अतीत के नीरव गान।

यह ठीक ही है कि "निराला की रहस्यानुभूति में केवल कवि की अनुभूतियाँ नहीं, एक दार्शनिक का गूढ़ चिन्तन भी है। इसलिए इनका दर्शन सरस भी है और नीरस भी है।"

(२) निराला के रहस्यवाद में 'चिन्तन' की प्रधानता है।

(३) निराला के रहस्यवाद में जिज्ञासा एवं मिलन की स्थितियों का वर्णन अधिक है। विरह की स्थिति का वर्णन अपेक्षाकृत कम है।

(४) पद्धति की दृष्टि से रहस्यवाद में वेदान्तवादी धारा को मुखरित किया गया।

(५) निराला जिस अनन्त प्रकाश के कवि हैं, जिस अपरिमेय अव्यक्त सत्ता के प्रति उसने आत्म-विसर्जन किया है वह विभिन्न स्वरों में अभिव्यक्त हुआ है।

(६) बौद्धिकता के प्राधान्य के कारण कहीं-कहीं इनकी कविताएँ कविता न रहकर केवल दर्शन का प्रतिपादन करने वाली नीरस पंक्तियाँ बन कर रह गई हैं।

(७) चिन्तनशील होते हुए भी निराला नीरस नहीं हैं। सहृदयतापूर्ण अनुभूति के संयोग के कारण इनकी रहस्यानुभूतियाँ प्रायः सरल और रमणीय हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में, "निराला जी की आध्यात्मिक पंक्तियों तथा उनकी कविताओं में जहाँ-जहाँ इस प्रकार का अनुभूति-दर्शन मिलता है, वहाँ हृदय का संगीत है।"

मैथिलीशरण गुप्त

प्रश्न १—गुप्तजी के काव्य की शिल्प-सौन्दर्य की दृष्टि से सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उत्तर—भाषा शैली—शैलियों के निर्वाचन में गुप्तजी ने विविधता दिखाई है, किन्तु प्रधानता प्रबन्धात्मक इतिवृत्तमय शैली की है। गुप्तजी के अधिकांश काव्य इस शैली में हैं। रंग में भंग, जयद्रथ-वध, नहुष, सिद्धराज, त्रिपथगा, साकेत आदि प्रबन्ध शैली में हैं। यह शैली दो प्रकार की है—खंड काव्यात्मक तथा महाकाव्यात्मक। साकेत महाकाव्य है तथा शेष सभी काव्य खण्ड-काव्य के अन्तर्गत आयेंगे।

गुप्तजी की एक शैली विवरण शैली भी है। 'भारत-भारती' और 'हिन्दू' इसी शैली में हैं। तीसरी शैली गीत-नाट्य शैली है। इस शैली में गुप्तजी ने नाटकीय प्रणाली का अनुगमन किया है। 'अनघ' इसका उदाहरण है। चौथी गीति-शैली है। इस शैली में गुप्तजी ने 'झंकार' की रचना की। पाँचवीं शैली आत्मोद्गार की है। इसमें गुप्तजी ने 'द्वापर' की रचना की है। छठी शैली नाटक, गीत, प्रबन्ध, पद्य और गद्य सभी के मिश्रण के परिणामस्वरूप बनी मिश्रित शैली है। इस शैली में गुप्तजी ने 'यशोधरा' की रचना की।

इन सभी शैलियों में गुप्तजी को समान रूप से सफलता नहीं मिली। गीत और गीत-नाट्य-शैलियों में गुप्तजी अवश्य ही सफल रहे हैं।

भाषा—गुप्तजी की काव्य-भाषा खड़ी बोली है। इस पर उनका पूर्ण अधिकार है। भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए गुप्तजी के पास अत्यन्त व्यापक शब्दावली है।

गुप्तजी की भाषा में संस्कृत की तत्समता है। संस्कृत के शब्द-भण्डार से ही उन्होंने अपनी भाषा का भण्डार भरा है। भाषा में संस्कृत की शब्दावली की प्रचुरता होते हुए भी 'प्रियप्रवास' की भाषा की तरह गुप्तजी की भाषा संस्कृत-बहुला नहीं होने पाई है। उसका प्रकृत रूप सर्वथा उभरा हुआ है। भाव-व्यंजना को स्पष्ट और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ही संस्कृत पदावली का सहारा लिया गया है।

संस्कृत के साथ-साथ गुप्तजी की भाषा पर प्रान्तीयता का भी प्रभाव है। झीमना, धड़ाम, तत्ती, लोटना, लंघन, डिडकार आदि प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं पर तो भाषा सौन्दर्य के लिए इन शब्दों का प्रयोग बहुत सार्थक बन पड़ा है। जैसे—'कहकर हाय धड़ाम गिरी।'

उर्दू शब्दों का प्रयोग गुप्तजी ने नहीं किया है। पर यह बात उनकी प्रौढ़ रचनाओं के विषय में है। किसान, रंग में भंग आदि रचनाओं में उर्दू के प्रचलित शब्द प्रचुर मात्रा में हैं। व्याकरण की दृष्टि से गुप्तजी की भाषा पूर्ण-रूप से व्याकरण समस्त है। गुप्तजी की परिष्कृत भाषा सौन्दर्य और माधुर्य के साथ सदैव भाव की अनवर्तिनी रही है। भावों की अनुकूलता के साथ ही गुप्तजी पात्र और प्रसंग के अनुसार भी भाषा का प्रयोग करते हैं। लक्ष्मण की भाषा में ओज उर्मिला की वाणी में यौवन का चांचल्य और शील का माधुर्य है; राम की भाषा गम्भीर है, कैकयी के शब्दों में उच्छ्वास है और राहुल की बातों में बाल-सुलभ सारल्य तथा यशोधरा की भाषा में वेदना की कसक है।

भावानुकूलता के साथ गुप्तजी की भाषा में लाक्षणिक समृद्धि, मूर्तिमत्ता और 'चित्रोपमता प्रचुर मात्रा में है। अपनी भाषा में गुप्तजी ने लोकोक्तियों और मुहावरों का कम प्रयोग किया है। जो भी प्रयोग हैं, वे अपने सहज रूप में नहीं हैं। फलतः भाषा-सौन्दर्य की अभिवृद्धि में सबसे अधिक सहायता मिली है।

छन्द-योजना—छन्द-योजना की दृष्टि से गुप्तजी का काव्य पूर्णरूप से सफल है। गुप्तजी में भाव और विषय के अनुकूल छन्द चयन करने की अनोखी शक्ति है। इसलिये उनके भावों को सशक्त और मार्मिक व्यंजना का श्रेय बहुत कुछ छन्दों को है। उन्होंने तुकान्त, अतुकान्त, गीत आदि सभी प्रकार के छन्दों को अपनाया है। जो छन्द काव्य-साहित्य से बहिष्कृत हो गये थे, उन्हें बड़ी उदारता के साथ गुप्तजी ने अपनाया और काव्य के नवीन सौन्दर्य से उन्हें अभिभूत किया। उन्होंने रोला, छप्पय, सवैया, कवित्त, दोहा आदि मात्रिक रीतिकालीन छन्द, हरिगीतिका, आर्यागीत, पद, पादाकुलक आदि हिन्दी-छन्द, शार्दूलविक्रीड़ित, शिखरिणी, मालिनी, द्रुतविलम्बित आदि संस्कृत छन्द, सभी प्रकार के नये और पुराने छन्दों का आश्रय लिया है। 'सोहनी' नाम से उन्होंने उर्दू गजली का हिन्दी रूपान्तर किया और इसमें भी सन्देह नहीं कि उर्दू की लावनियों को हिन्दी की ही पद्धति में पूर्ण रूप से ढाल दिया है। तुकान्त छन्दों की तुक मिलाने में गुप्तजी सिद्धहस्त हैं। अतुकान्त छन्द कहीं शिथिल नहीं हैं। भावों की तीव्रता ने अतुकान्त छन्द-विधान में कहीं भी लचरपन नहीं आने दिया। सभी छन्दों का प्रयोग प्रसंग के अनुकूल है और वे अपूर्व गति एवं लय लिये हुए हैं। भावनाओं का तारतम्य उनमें भली प्रकार प्रकट हुआ है।

अलंकार-योजना—काव्य में अलंकारों का प्रयोग भावों के स्पष्टीकरण के लिए होना आवश्यक है। गुप्तजी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग किसी व्यापार, क्रिया रूप अथवा घटना की तीव्रता, प्रभाव अथवा सामर्थ्य दिखलाने के लिये हुआ है। यद्यपि गुप्तजी स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग भाव-साधक की भाँति करते हैं, फिर

भी कहीं-कहीं सजावट भर के लिए भी अलंकारों ने आकर व्याघात उपस्थित किया है। उर्मिला के विरह की भूमिका में निम्न छन्द इसी प्रकार का है :

उस रुदन्ती विरहिणी के हृदय रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके, प्रिय विरह विक्षेप से।
वर्ण-वर्ण सदैव जिनके, हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कवि जनों के, ताम्रपत्र सुवर्ण के ।।

प्रायः अलंकारों में अकृत्रिमता है। गुप्तजी ने परम्परा युक्त अलंकारों का प्रायः कम ही प्रयोग किया है। बहुधा उन्हें भी नये ढंग से रखा है फिर भी उन्होंने कवि-प्रथा को पूर्णतया त्यागा नहीं है, निम्न उदाहरणों में देखिए :

टाँगा धनुष को कल्पलता पर, मनसिज ने झूला डाला।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तजी ने अलंकारों का प्रयोग विभिन्न शैलियों में किया है। प्राचीन परिपाटी को नवीन रूप दिया है और नवीन प्रणाली को प्रयास से संयत कर दिया है। गुप्तजी के काव्यों में अलंकारों का प्रयोग प्रायः भावों को उद्दीप्त करने में हुआ है। उनको अलंकारों के प्रयोग में कहीं भी प्रयास नहीं करना पड़ता। वे भाव और अभिव्यक्ति में सहायक बनकर स्वयं ही उपस्थित हो गये हैं।

सारांश यह है कि गुप्तजी का काव्य भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष दोनों ही दृष्टि से सफल है। उनके काव्य की विशेषताओं का संक्षेप में विश्लेषण निम्न प्रकार कर सकते हैं :

१—गुप्तजी की कविता में राष्ट्रीयता और गाँधीवाद की प्रधानता है। उसमें गौरवमयी अतीत के इतिहास और भारतीय संस्कृति को महत्ता दी गई है।

२—गुप्तजी ने राष्ट्रीय जीवन के साथ पारिवारिक जीवन का भी यथोचित महत्ता दी।

३—गुप्तजी अनन्य राम-भक्त होते हुए भी साम्प्रदायिकता से अछूते हैं। उन्होंने सभी धर्मों से सम्बन्धित काव्य लिखे हैं।

४—गुप्तजी ने साहित्य की उपेक्षिताओं को ही नहीं वरन् नारी मात्र को विशेष महत्व दिया है।

५—गुप्तजी ने प्रबन्ध और मुक्त दोनों ही काव्य लिखे हैं और वे समय की गति के साथ कदम मिलाते रहे हैं।

६—गुप्तजी की भाषा 'प्रियप्रवास' की सी संस्कृत प्रधान नहीं है। संस्कृत-गर्भित होते हुए भी प्रसादजी की भाँति गुप्तजी की कविता दुरूह नहीं हो पाई है।

७—गुप्तजी ने शब्द शक्तियों तथा अलंकारों से पूरा पूरा लाभ उठाया है। कहीं-कहीं मुहावरों की ओर भी काव्यमय संकेत हैं।

८—गुप्तजी के बड़े सुन्दर शब्द-चित्र दिये हैं।

चूमता था भूमितल को अर्द्ध-विधुसा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम दृग-जाल बनाकर बाल,
छत्र सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ ।।

९—गुप्तजी के सम्वाद बड़े ही सजीव सरल और प्रत्युत्पन्न-मति पूर्ण हैं।

प्रश्न २—भाव-पक्ष और कला-पक्ष (काव्य-कला) की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त के काव्य की विशेषताएँ बतलाइये।

उत्तर—गुप्तजी और उनका काव्य आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। गुप्तजी की प्रतिभा के प्रस्फुटन का श्रेय आचार्य द्विवेदीजी को है। उनकी 'सरस्वती' ने कवियों को प्रेरणा दी, उत्साह दिया और निर्देशन दिया। द्विवेदी-युग का यह कवि उस काल से लेकर आज तक की सभी काव्य-प्रवृत्तियों में अपना स्थान रखता है।

गुप्तजी की सबसे बड़ी विशेषता है—भारतीय सभ्यता और संस्कृति से प्रेम। वे अपने काव्य के द्वारा देश के अतीत को हमारे सामने लाये और उसका सच्चा चित्रण करके हमारे नेत्रों का उन्मीलन किया। उन्होंने पौराणिक युग से लेकर वर्तमान युग तक की सभी प्रकार की कलाओं का गुम्फन किया है। वैष्णव धर्मानुयायी होते हुए भी कवि में संकीर्णता नहीं है। सभी धर्मों सभी सम्प्रदायों के उच्च विचारों के लिए उनके हृदय में प्रेम है। शकुन्तला और नहुष पौराणिक युग की गाथाएँ हैं। 'बैंक संहार' 'जयद्रथ बध', 'सरैन्ध्री' उनके महाभारत प्रेम को प्रकट करती हैं। 'द्वापर' 'कृष्ण-काव्य का उत्तम उदाहरण है। 'साकेत' और 'पंचवटी' में उनकी राम-भक्ति उमड़ पड़ी है। 'हिन्दू' उनके हिन्दुत्व का प्रतीक है। 'गुरु तेग बहादुर' सिख धर्म की ज्योति को आलोकित करता है। 'यशोधरा' बुद्धकालीन संस्कृति की परिचायिका है। 'काबा-कर्बला' इस्लाम का सच्चा स्वरूप उपस्थित करता है। 'रंग में भंग और 'सिद्धराज' जैसी रचनायें उनके ऐतिहासिक ज्ञान का प्रमाण हैं और 'भारत-भारती' राष्ट्रीयता का शंखनाद है। इस प्रकार गुप्तजी की विशाल हृदयता उनके काव्यों में झलकती है।

गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीयता—साहित्य में गुप्तजी राष्ट्रीय-कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी राष्ट्रीयता के तत्व उनके काव्य में सर्वत्र पाये जाते हैं। उनकी राष्ट्रीयता का समारम्भ 'भारत-भारती' से होता है, जिसमें उन्होंने अतीत के साथ वर्तमान का रूप भी प्रस्तुत किया है और भविष्य के लिए चेतावनी भी दी है। उनके प्रबन्ध-काव्यों में राष्ट्रीयता का पुट मिलता है। 'साकेत' में सीता का सूत कातने का उपदेश देना तथा राम-बन-गमन के समय नगरवासियों का असहयोग करना गांधीवादी विचारधारा के प्रमाण हैं।

गुप्त जी की भक्ति-भावना—भक्ति क्षेत्र में गुप्तजी ने तुलसी की राम-भक्ति को नवीनता प्रदान की है। राम-भक्ति उन्हें परम्परा से प्राप्त है। राम उन्हें आधुनिक युग का तुलसी कह सकते हैं, क्योंकि उनकी भक्ति में वही तन्यता और वही चिंतनशीलता पाई जाती है, जो तुलसी में थी। इसी कारण वे राम के प्रति अनन्य भक्ति प्रदर्शित करते हुए कहते हैं :

धनुर्वाण या बेणु लो श्याम रूप के संग।

राम की भक्ति के समक्ष वे ईश्वर की उपेक्षा करते हुए भी नहीं हिचकिचाते। वे राम के भक्त इसलिए नहीं हैं कि राम ईश्वर के अवतार थे, अपितु इसलिये हैं कि वे इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आये थे। तभी तो वे **'साकेत'** में कहते हैं :

राम, तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमे हुए सभी कहीं नहीं हो क्या?
तो मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करे।
मुझमें न रमो राम, तो मन तुम में रमा करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी के हृदय में राम के प्रति अनन्य प्रेम है।

नवीन सामाजिक दृष्टिकोण—सामाजिक क्षेत्र में भी गुप्तजी ने अपना दृष्टिकोण उपस्थित किया है। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन किया। वर्तमान भारतीय समाज में नारी की हीन दशा देखकर उनका हृदय करुणा से द्रवित हो उठा और यशोधरा में उन्होंने नारी का यह चित्र उपस्थित किया :

अवला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

करुणा ही नारी-जीवन की निधि है। विवश अवला पर अत्याचार करके पुरुष जिस प्रकार अपने स्वामित्व पर दम भरता है, उस पर तीखा व्यंग्य उन्होंने 'द्वापर' में इस प्रकार किया है :

अविश्वास ही अविश्वास है, नारी के प्रति नर का।
नर के सौ-सौ दोष क्षम्य हैं, वह है स्वामी घर का।।

कवि केवल आँसू बहाकर ही नहीं रह गया है, अपितु उसने नर और नारी के आदर्श सम्बन्ध का रूप प्रस्तुत किया है। 'साकेत' में उर्मिला और लक्ष्मण का विनोद इसका प्रमाण है। गुप्तजी ने हरिजन और दीन वर्ग की समस्याओं पर भी ध्यान दिया है।

भाव-पक्ष—गुप्तजी के काव्य में मानव हृदय के विविध भावों का मर्मस्पर्शी प्रत्यक्षीकरण हुआ है। 'जयद्रथ बध' में वीरता और करुणा के भावों का, 'यशोधरा' में वात्सल्य-प्रेम और विरह-वेदना का 'पंचवटी' में क्रोध, जुगुप्सा और प्रेम का

'साकेत' में प्रेम, आत्मग्लानि, शोक, उत्साह आदि की चित्ताकर्षक व्यंजना हुई है। विरहिणी यशोधरा की यह युक्ति कितनी मार्मिक है, देखिए :

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ॥
आंचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

गुप्तजी की कविता में बाह्य दृश्यों का चित्रण भी उच्चकोटि का है। वात्सल्य में उसकी वर्णन-शक्ति अनुपम है। रूप वर्णन में उन्होंने कमाल किया है। सूर्पणखा का रूप वर्णन देखिये :

चकाचौंध सी लगी देखकर, प्रखर ज्योति की वह ज्वाला।
निस्संकोच खड़ी थी सम्मुख, एक हास्यवदनी बाला।
रत्नाभरण भरे अंगों में, ऐसे सुन्दर लगते थे।
ज्यों प्रफुल्ल वल्ली पर सौ सौ, जुगनू जगमग जगते थे ॥

कला-पक्ष—कला की दृष्टि से भी गुप्तजी अपनी समता नहीं रखते। उन्होंने अपने काव्य में प्रत्येक रस का सफल परिपाक किया है। भावों की मृदुल व्यंजना और मर्मस्पर्शी स्थानों का ज्ञान उनकी कुशलता का परिचायक है। गुप्तजी ने खण्डकाव्य, महाकाव्य तथा मुक्तक काव्य तो लिखे ही हैं; आधुनिक शैली के आधार पर गीत काव्य में भी पीछे नहीं रहे। पुरातनता के उपासक होते हुए भी उन्होंने प्रगतिवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। 'मेरी मिट्टी', 'एटमबम' नामक कविताएँ प्रगतिवादी ही हैं। गुप्तजी ने आरम्भ में हरिगीतिका छन्द का प्रयोग बहुत किया है। परन्तु अपने महाकाव्य 'साकेत' में अनेकों प्रकार के छन्द लिखे हैं। उनकी विशेषता यह है कि उनके वर्ण-वृत्त भी तुकान्त होने से मात्रिक लगते हैं। उनकी भाषा में प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुणों का प्रयोग हुआ है। भाषा विशुद्ध प्रवाहमयी खड़ी बोली है, जिसमें एक ओर तत्सम शब्दों का प्राधान्य है, तो दूसरी ओर तुकबन्दी के मोह में शब्दों की विकृति भी पाई जाती है। कहीं तुक के लिए व्याकरण के नियमों की अवहेलना तक की है। फिर भी भाषा पर उनका महान् अधिकार है।

गुप्तजी की कविता में अलंकारो का प्रयोग रमणीय है। वे सर्वत्र भावों की अभिव्यंजना में सहायक हुए हैं। वे अपनी स्वतन्त्र सत्ता नहीं दिखलाते।

गुप्तजी ने जो पौराणिक प्रबन्ध-काव्य रचे हैं, उनमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। 'साकेत सबसे उत्तम प्रबन्ध काव्य है। उसमें वस्तु, चरित्र-चित्रण, सम्वाद सभी अच्छे उतरे हैं। कैकेयी और उर्मिला का चरित्र बड़ा अच्छा चित्रित हुआ है। पंचवटी में लक्ष्मण-सूर्पणखा का सम्वाद तथा 'साकेत' में लक्ष्मण-उर्मिला सम्वाद उच्चकोटि के हैं। लक्ष्मण और सूर्पणखा के सम्वाद का एक नमूना देखिये :

'पाप शान्त हो, पाप शान्त हो, कि मैं विवाहित हूँ वाले
'पर क्या पुरुष नहीं होते हैं, दो-दो दाराओं वाले ?'

गुप्तजी के काव्य में राष्ट्रीयता, उच्चादर्श और पवित्रता के भाव भरे हैं। 'भारत-भारती' राष्ट्रीयता का ज्वलन्त उदाहरण है। इनकी रचनाओं में आधुनिक काल का पूरा प्रतिनिधित्व देखा जाता है। जहाँ इनकी रचनाओं में अर्वाचीन भावनायें हैं, वहाँ प्राचीन आदर्श भी हैं। एक ओर इनकी आस्था भारत के गौरव में है, दूसरी ओर उस गौरव को वर्तमान दासता से मुक्त कराने के लिए इनका हृदय जागृति की भावनाओं से ओत-प्रोत है। इस प्रकार इनके काव्य में प्राचीन काल और अर्वाचीन का सुन्दर समन्वय है।

गुप्तजी आधुनिक काल के प्रतिनिधि कवि हैं। वे सबसे अधिक लोकप्रिय कवि हैं।

प्रश्न ३—आधुनिक हिन्दी-काव्य में मैथिलीशरण गुप्त के योगदान पर प्रकाश डालते हुए उनका स्थान और महत्व निश्चित कीजिए ?

अथवा

प्रश्न ४—"गुप्तजी समन्वयकारी युग प्रतिनिधि कवि हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिये ?

उत्तर—अपने देश-काल की प्रत्येक विचारधारा, संस्कृति और साहित्यिक चेतनाओं का समन्वय अपने काव्य में करने वाला प्रतिनिधि कवि के नाम से विख्यात होता है। वह अपनी अमर प्रेरणा से जन-जीवन में प्राण फूंककर युग को अमर संदेश देता है। मैथिलीशरण गुप्त ऐसे ही युग प्रतिनिधि कवि हैं।

गुप्तजी के विभिन्न काव्य युग की विभिन्न समस्याओं को उभार कर उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं। गुप्त जी प्राचीन मर्यादा समन्वय, प्रेम, कर्मण्यता आदि आदर्श भावों की पृष्ठभूमि में आधुनिक समस्याओं का हल खोजते हैं। 'नहुष' का पतन के बाद उत्थान युग-युग को प्राणदायक सन्देश देता है। 'द्वापर' में पौराणिक पात्र क्रान्तिकारी नेता के रूप में उपस्थित होते हैं। 'विधृता' प्रसंग में यौन-मनोविथा और काम भाव का विश्लेषण है।

गुप्तजी की लगभग सभी रचनाओं में सन् १९०० से लेकर अब तक के भारत की गति-विधि का सजीव चित्रण है। वे युग की विभिन्न मान्यताओं, रीति नीतियों, राजनैतिक विचारों, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों की झलक दिखाकर आदर्शों का संकेत करते हैं तथा उनके प्राप्ति के साधनों पर भी प्रकाश डालते हैं।

गुप्तजी की काव्यधारा १९०० से लेकर अब तक के राष्ट्रीय आन्दोलन को अपने में समेटे हुए हैं :

रंग में भंग (सन् १९०९ ई०) तथा 'भारत-भारती' (सन् १९११ ई०) में तत्कालीन राष्ट्रीयता का शंखनाद है। राष्ट्रीय आन्दोलन के समस्त परिवर्तन प्रभाव गुप्तजी की रचनाओं में मिलते हैं। हिन्दू मुसलमानों के झगड़े का स्पष्ट प्रभाव गुप्तजी

के 'हिन्दू' तथा 'गुरुकुल' में मिलता है। इस प्रकार गांधी, मार्क्स आदि की विचार-धारा से गुप्तजी की काव्यधारा प्रभावित हुई है।

वे आर्य-संस्कृति की आदर्श विशेषताओं का उल्लेख करते हैं और वर्तमान संयम में भारतीय समाज को पिछड़ा हुआ देखकर खिन्न हो जाते हैं तथा उसी आदर्श संस्कृति के पुनः अवतरण की कामना करने लगते हैं। गुप्तजी की 'भारत-भारती' 'जयद्रथ-वध', 'साकेत' 'द्वापर' आदि से ऐसे असंख्य उदाहरणों का चयन किया जा सकता है। 'सिद्धराज' में मध्यकालीन आर्य-गौरव का निरूपण मिलता है। गुप्तजी अतीत आदर्श से अपना वर्तमान का आयोजन करने और वर्तमान के आधार पर भावी जीवन को सम्हालने की सलाह देते हैं :

वर्तमान यह आयोजन है, निज भावी जीवन का।
कुछ अतीत संकेत मिले तो, अधिक लाभ वह जन का।

किन्तु वे प्राचीन संस्कृति की रूढ़ि में स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। वे उसमें से बुराइयों के कूड़ा-करकट को साफ करके युगानुकूल बनाकर स्वीकार करने को कहते हैं। बलराम ग्वाल-बालों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं :

पुरखे नदियाँ करते थे, तब है सिन्धु तरो तुम।

'साकेत' में आश्वस्त आर्य धर्म को प्रतिष्ठित देखकर गुप्तजी प्रसन्नता से भरकर कह उठते हैं :

आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य-धर्म आश्वस्त हुआ।

गुप्तजी के काव्य में आधुनिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व मिलता है

आधुनिक युग बुद्धिवाद से प्रभावित है। गुप्तजी के काव्यों के पात्र प्रायः बुद्धिवाद की पृष्ठभूमि पर खड़े हैं। 'द्वापर' के सभी पात्र बुद्धिवादी हैं। वे कर्म को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। 'साकेत' के लक्ष्मण अपने अधिकारों के लिए पिता से भी उलझने को तैयार हो जाते हैं।

गुप्तजी का काव्य पूर्ण रूप से भारतीय समाज का प्रतिबिम्ब है। 'हिन्दू' और 'किसान' प्रेमचन्दजी के 'गोदान' की तरह भारतीय कृषकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'गुरुकुल' में बदा वैरागी का जीवन एक सच्चे देश-भक्त का प्रतिनिधित्व करता है। स्वदेश-प्रेम का पूर्ण विकास 'सिद्धराज' में है। जयदेव कहता है :

जाग उठें एक-एक पत्ता जन्म भूमि का,
काँप उठें शून्य और कुग्रह हमारे वे।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जो अहिंसात्मक-आन्दोलन और सत्याग्रह हुआ, उसकी समस्त पृष्ठभूमि गुप्तजी के काव्यों में मिलती है। राम के गमन के समय अयोध्या की जनता उनके सामने लेट जाती है और कहती है :

जाओ, यदि जा सको रौंद हमको यहाँ।
यों कह पथ में लेट गये, बहु जन वहाँ॥

गुप्तजी अपने काव्य में नारी-भावना का पूर्ण प्रतिनिधित्व लेकर उपस्थित हुए हैं। 'द्वापर' में नारी का काम मूलक प्रश्न लिया गया है। 'विधृता' के स्वर में आधुनिक नारी प्रश्न करती हुई कहती है :

हाय ! वधू ! ने क्या नर विषयक, एक वासना पाई ।
नहीं और कोई क्या उसका, पिता पुत्र या भाई ।।

'द्वापर' में बलराम नारद आधुनिक युग के क्रान्तिकारी नेता बनकर उपस्थिति हुए हैं। बलराम नई सृष्टि के लिए प्रलय को भी प्रेक्षणीय मानते हैं ;

नई सृष्टि के लिये प्रलय भी प्रेक्षणीय हो हमको ।

'द्वापर' में मैथिलीशरणजी की विचारधारा पर मार्क्सवादी रक्त-क्रान्ति और वर्ग-संघर्ष का प्रभाव है। वे शान्ति के लिए क्रान्ति को आवश्यक समझते हैं। उनके नारद शान्ति के लिये आग लगाने को प्रस्तुत हो जाते हैं।

अरे आग भी कभी लगानी, पड़ जाती है हमें यहाँ ।

गुप्तजी ने प्राचीन आदर्शों में ही आधुनिक समस्याओं का समाधान खोजा है। गुप्तजी ने चिरंतन समस्याओं के समाधान के रूप में समन्वय, मर्यादापालन, त्याग और कर्मनिष्ठता प्रदान की है।

गुप्तजी की रचनाओं में द्विवेदी-युग से लेकर छायावादी और उससे आगे प्रगतिवादी युग की सभी विशेषताएँ मिलती हैं। राम, कृष्ण, महापुरुष, सन्त आदि सभी से सम्बन्धित काव्य गुप्तजी ने प्रणीत किये हैं। गुप्तजी की 'भारत-भारती' राष्ट्रीय रचना है। 'झंकार' उनकी छायावादी कविताओं का संग्रह है।

गुप्तजी की खड़ी बोली हिन्दी-भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें शुद्धता और परिमार्जन के साथ-हाथ भावों की सुन्दर अभिव्यंजना है।

छन्दों के क्षेत्र में गुप्तजी ने प्रतिनिधित्व किया है। उनके काव्य में मात्रिक छन्दों के साथ में संस्कृत में वर्णिक वृत्तों का भी प्रयोग हुआ है। गुप्तजी ने 'भारत-भारती' तक गीतिका और हरिगीतिका छन्दों का प्रयोग किया। 'सिद्धराज' में गुप्तजी ने अतुकान्त छन्दों को ही अपनाया है। 'यशोधरा' में गीति, काव्य, नाटक आदि सभी का समन्वय मिलता है। काव्य को नवीन रूप देना नवीय छन्दों का विधान कर लेना गुप्तजी की विशेषता है।

इस प्रकार गुप्तजी के काव्य में जन-जीवन और समाज का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व मिलता है। उनके काव्यों में शृंगार, करुण, वीर रसों की अभिव्यंजना हुई है। उनकी भाषा में समय की प्रचलित सभी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। उनके काव्य विभिन्न-शैणियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने प्रबन्ध, मुक्तक, महाकाव्य, गीति-काव्य नाटक आदि सभी क्षेत्रों में लिखा है। गुप्तजी ने 'यशोधरा' काव्य की भूमिका में लिखा है :

"मेरी शक्ति का विचार किये बिना ही मुझसे ऐसे अनुरोध किया करते हो। कविता लिखो, नाटक लिखो, अच्छी बात है, लो कविता लो, गीत लो, नाटक और गद्य-पद्य, तुकान्त सभी कुछ परन्तु वास्तव में कुछ नहीं।"

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि क्या भाव, क्या भाषा, क्या शैली और विषय आदि प्रत्येक दृष्टि में गुप्तजी युग प्रतिनिधि कवि हैं

प्रश्न ५—"गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं।" उपर्युक्त कथन की युक्तिपूर्ण विवेचना कीजिए।

उत्तर—राष्ट्रीयता गुप्तजी का एक विशेष उद्देश्य रहा है. परन्तु उनकी राष्ट्रीयता संस्कृति पोषित है। इसलिए उनके काव्यों में जातीय गौरव की प्रधानता हो गई है। गुप्तजी ने 'काबा कर्बला', 'उमर खैयाम' आदि पर कविताएँ लिखकर सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व किया है, किन्तु उनकी विशेष रुचि भारत एवं भारत के अतीत गौरव गान में ही रही है। गुप्तजी के काव्य में हिन्दू-मुसलमानों को समान स्थान नहीं मिल सका है। वे प्रायः हिन्दू संस्कृति के ही वैतालिक हैं। गुप्तजी ने अपने काव्यों के द्वारा समस्त सुधार आन्दोलन और हिन्दू समाज के प्रति ही अभिव्यक्ति की है। 'गुरुकुल' गुप्तजी का सांस्कृतिक काव्य है और केन्द्र-बिन्दु हिन्दू है। अतः ऐसा प्रतीत होने लगता है कि गुप्तजी पहले जातीय कवि हैं और पीछे हैं राष्ट्रीय कवि, किन्तु ध्यान से देखने पर गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना तथा जातीय भावना में कोई अन्तर नहीं मिलता। बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध भारतीय इतिहास में पुनरुत्थान का युग रहा। सारे देश में जन जागरण की लहर फैल रही थी। युग की माँग ही गौरव गान की थी। गुप्तजी प्राचीन की ओर उन्मुख हुए और प्राचीन संस्कृति हिन्दू ताने वाने से ही बनी हुई थी। भारत भूमि हिन्दुओं की भूमि है। अतः गुप्तजी की राष्ट्रीय और जातीय भावना में अन्तर न करके हम उनको राष्ट्रीय कवि ही मानेंगे।

गुप्तजी ने समाज के सभी अंगों में जागरण देने के लिए काव्य-सृष्टि की। उन्होंने स्त्री शिक्षा और अछूतोद्धार का समर्थन किया। सामाजिक सुधार के साथ-साथ उन्होंने सांस्कृतिक सुधारों की ओर ध्यान दिया। गुप्तजी की 'भारत भारती' राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत है, इसमें उनका अतीत के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है। इसमें उन्होंने प्राचीन गौरव, वर्तमान दुर्दशा, आशापूर्ण भविष्य के चित्र खींचे हैं। किसानों के प्रति गुप्तजी ने विशेष सहानुभूति प्रकट की है। किसान हमारे देश की राष्ट्रीय इकाई हैं।

गुप्तजी की प्रत्येक रचना राष्ट्रीय उत्थान का शंखनाद करती हैं। इसलिये निश्चय ही उनकी राष्ट्रीय भावना की प्रमुख विशेषता भारत को स्वतन्त्र देखने की रही है।

गुप्तजी की राष्ट्रीयता की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं

गुप्तजी ने भारत के प्राचीन गौरव पर अभिमान करके उसके द्वारा भारतियों को सचेत किया है।

गुप्तजी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का श्रेष्ठ और युग प्रेरक मानते थे, अत: वे आर्यों के आदर्श का विवरण देते हुए नहीं थकते। निम्न प्रसंग में देखिए :

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है, इसके निवासी आर्य हैं।
विद्या, कला, कौशल सभी के जो प्रथम आचार्य हैं।

उनका विचार है कि सभ्यता पूर्व से ही पश्चिम को गई है :

है आज पश्चिम में प्रभा जो, पूर्व से ही ली है गई।

गुप्तजी के काव्य का प्रत्येक पात्र देश प्रेम की भावनाओं से युक्त है :

साकेत के राम, सिद्धराज का जयसिंह, अनघ के बुद्ध, रंग में भंग का कुम्भा आदि पात्र विशेष रूप से राष्ट्रीय भावना से युक्त हैं। गुप्तजी की राष्ट्रीयता उत्थान के लिए भारतीयों को उद्बोधन करते हुए नहीं थकती। निम्न प्रसंग में चारों वर्णों के लिए उद्बोधन दृष्टव्य है :

हे ब्राह्मणों पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।
क्षत्रीय सुनो अब तो, सुयश की कालिमा को भेंट दो।

गुप्तजी संस्कृति के सुधारों को राष्ट्रीय विकास की पृष्ठभूमि मानते थे। भौतिक उन्नति के साथ साथ आध्यात्मिक उन्नति होना भी आवश्यक है। वे परस्पर में संगठन के लिए त्याग, सहिष्णुता आदि को प्रमुखता देते हैं। उनका 'अनघ' "न तन सेवा न मन सेवा, मुझे इष्ट दृष्टि पर सेवा" का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मनुष्य को अधिकार प्राप्त करने के लिए कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये, अधिकार खोकर बैठे रहना मनुष्य के लिए पाप है। वे 'जयद्रथ वध' में कहते हैं :

अधिकार खोकर बैठ रहना महा दुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी, दण्ड देना धर्म है।

गुप्तजी मर्यादा के समर्थक थे। कर्त्तव्य के मार्ग में प्रेम को बाधा रूप में नहीं उपस्थित करते। गुप्तजी के पात्र कर्त्तव्य के प्रति सदैव ही जागरूक दिखाई पड़ते हैं। उनमें कोई भी प्रतिक्रियावादी या स्वप्न देखने वाला नहीं है।

गुप्तजी राष्ट्रीयता के पल्लवन के लिए स्वतन्त्रता को आवश्यक मानते हैं। गुप्तजी की स्वतन्त्रता राजतन्त्र में फलित नहीं होती। उनका विचार था कि राजा होना चाहिये, किन्तु राजा प्रजा का हितैषी हो। राजा प्रजा के सम्बन्ध में गुप्तजी ने प्राय: सभी काव्यों में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। वे राजा को लोक का प्रतिनिधि मात्र समझते हैं। यदि वह प्रजा पालक नहीं तो वह त्याज्य है :

राजा प्रजा का पात्र है, वह लोक प्रतिनिधि मात्र है।
यदि वह प्रजा पालक नहीं, तो त्याज्य है।

राज्य को भोग समझने से वह रोग बन जाता है। शत्रुघ्न 'साकेत' में कहते हैं :

राज्य को यदि हम बनालें भोग, तो वह बनेगा प्रजा का रोग।

'सिद्धाराज' में गुप्त जी संघ राज्य को प्रमुखता देते हैं। मदन वर्मा कहते हैं।

संघ में ही शक्ति गति वही एक सबकी।

गुप्तजी भी राष्ट्रीय जागरण में भारतेन्दु की तरह ब्रिटिश शासन का उपकार मानते हैं :

है ब्रिटिश शासन की कृपा हो, यह कि हम कुछ जग गये।
स्वाधीन हैं हम धर्म में, सब भय हमारे भग गये।

गुप्तजी अपने काव्य में आर्तभूमि के ही गीत गाते हैं। वे कहते हैं कि भारत भूमि एक विश्व तीर्थ बन जाय और इसमें सभी संस्कृतियों का सम्मिलन हो :

आकर मिलेंगी यहीं, संस्कृतियाँ सब की,
होगा एक विश्व तीर्थ, भारत ही भूमि का।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष निकलता है कि गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं। उनकी जातीय भावना तथा राष्ट्रीय भावना में कोई अन्तर नहीं है। वे संस्कृति से शून्य राष्ट्रीयता के पोषक नहीं हैं। उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता वही है, जो अपने पूर्व और गौरव आर्य मर्यादा का गान करे। गुप्तजी पिछले पचास वर्षों में भारतीय जन-समूह को राष्ट्रीय भावों से अनुप्रमाणित करते रहे हैं। अतः व्यक्ति का देश के लिए उत्सर्ग, आकृति और जीवन पर्यन्त साधना गुप्तजी को राष्ट्रीय कवि के आसन पर निःसंकोच बिठा देती है।

प्रश्न ६—"गुप्तजी में मानव-हृदय के रहस्यों में प्रवेश करने की अतुल क्षमता है।" डॉ० नगेन्द्र के इस कथन पर प्रकाश डालिये।

अथवा

प्रश्न ७—"गुप्तजी ने मानव-हृदय को स्पर्श करने वाले भावपूर्ण स्थलों का चित्रण करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।" इस कथन पर प्रकाश डालिये।

अथवा

प्रश्न ८—गुप्तजी के काव्य में भावानुभूति के प्रसार की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार प्रवन्ध काव्य की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि काव्य के मर्मस्पर्शी स्थलों को कवि चुनने और उनका सरस चित्रण करने में कहाँ तक सफल हुआ है। साकेत के सरस स्थल हैं—लक्ष्मण उर्मिला की विनोद वार्ता, कैकेयी मंथरा संवाद, विदा-प्रसंग, निषाद मिलन, दशरथ मरण, भरत-आगमन, चित्रकूट सम्मिलन, उर्मिला की विरह कथा आदि।

दशरथ की कहानी बड़ी करुण है। वे वचनों के पाश में जकड़ गये, उनकी आत्म बन्दिनी होकर छटपटा रही है। उनको स्वयं अपने कृत्य पर ग्लानि थी, तभी तो लक्ष्मण के कठोर वचनों को सुनकर वे कहने लगे :

मुझे बन्दी बनाकर वीरता से,
करो अभिषेक साधन धीरता से ॥

परन्तु राम चले ही गये। जब राम लौटकर नहीं आये, तो उनका जीवन भार हो गया और :

हे जीव चलो अब दिन बीते,
हा राम, राम लक्ष्मण सीते ॥

कहकर दीप-निर्माण हो जाता है।

भरत आगमन का प्रसंग और भी अधिक मार्मिक है। भरत और शत्रुघ्न दोनों साकेत को लौट रहे हैं। उनका हृदय गम्भीर और उदास है। सचमुच ही भरत के हृदय पर एक छाया सी पड़ती जाती है :

फिर वही गायें रँभाती दूर, भागते हैं श्लथ शिखण्ड मयूर ॥

इस प्रकार भरत की ग्लानि को अंकित करने के लिए जिस वातावरण की सृष्टि की गई है, वह बड़ा उपयुक्त और व्यंजनापूर्ण है।

घर की देहली पर पैर रखते ही :

'हाँ पिता' सहसा चिहुँक चीत्कार।
गिर पड़े सुकुमार भरत कुमार।

कैकेयी की करनी देखकर भरत ग्लानि से भर उठते हैं निम्न पंक्तियों में कैसी वचन-वक्रता के साथ इसका चित्रण हुआ है :

खर माँगा, वाहन वही अनुरूप,
देख लें सब है, यही वह भूप
आज मैं हूँ कौसलाधिप धन्य,
गा, विरुद गा, कौन तुमसा अन्य ॥

अन्तिम पंक्तियों में कितनी वचन वक्रता (Irony) है, लेकिन उसे फिर भी सन्तोष नहीं होता। वह तड़प जाता है, विवश हो जाता है और :

रो दिया, हो मौन राजकुमार।

इसके उपरान्त चित्रकूट मिलन है, जिसे चित्रकूट में 'राजसभा' नाम दिया गया। चित्रकूट में सबसे पहले बनवासी सीता की झाँकी मिलती है। वे पर्णकुटी के बिरवे सींच रही हैं और राम उन सीता के देखते हुए ऐसा अनुभव कर रहे हैं, मानों योगी के सम्मुख अटल ज्योति जग रही हो। कवि उनका चित्रण करता है :

पाकर विशाल कच भार एड़ियाँ धँसती,
तब नख ज्योति मिस मृदुल अँगुलियाँ हँसती ।
पर पग उठने में भार उन्हीं पर पड़ता,
तब अरुण एड़ियों से सुहाग सा झड़ता ।।

वनवासी दम्पत्ति चित्रकूट में बैठे हुए अपने सुख में मग्न थे । इतने में वन कोलाहल से भर गया ।

राम और भरत का चित्रकूट-मिलन प्रेम और आवेग का मिलन है । भरत आकर राम के चरणों पर पडते हैं और रोने लगते हैं ।

कहावत है "When the heart is full, the tongue is mute." राम न बोल सकने के कारण खींच कर उन्हें हृदय से लगा लेते हैं :

रोकर रज में लोटो न भरत, ओ भाई !

भरत कहते हैं :

उस जड़ जननी का विकृत वचन तो पाला ।
तुमने इस जन की ओर न देखा भाला ।

राम क्या उत्तर दें ।

राज-सभा में राम प्रश्न करते हैं—'हे भरत भद्र अब कहो अभीप्सित अपना ।' प्रश्न भरत के हृदय में वाण के समान लगता है । उनकी ग्लानि एक बार फिर उमड़ पड़ती है ।

हे आर्य रहा क्या भरत अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब तब भी ।

ग्लानि, करुणा स्नेह, दैन्य तथा आवेश का सम्मलित रूप इसमें वह रहा है । कवि ने वातावरण चित्रण में बड़ी कुशलता दिखाई है । 'अभीप्सित' शब्द की पुनरावृत्त भावावेश को तरल बना देती है :

आगे राम कहते हैं :

उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जनकर जननी भी जा न पाई जिसको ?

कैकयी को इन शब्दों से साहारा मिलता है और :

"यह सच है तो तुम लौट चलो अब घर को"

इससे सारे श्रोता विस्मय विमुग्ध होकर :

सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य तुषारावृत्ता यथा विधुलेखा ।
× × ×
वह सिंही अब थी हहा ! गोमुखी गंगा ।।

अपने किये के लिये वह किसी अन्य को दोष नहीं देती वरन् सारा अपराध अपने ऊपर लेकर कहती है :

मेरा ही मन रह सका न निज विश्वासी।

इसी प्रकार भावों का तारतम्य चलता है। कैकयी की ग्लानि पुनः उमर आती है उसने आज मातृत्व को भी लांछित कर दिया कितनी विषमता है :

कहते आते थे यही अभी नरदेही,
माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही।
अब कसें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता,
है पुत्र, पुत्र ही, रहे कुमाता माता।

वह अपने से घृणा करने लगती है। अपने वंश और करतूत की तुलना का भाव मन में आता है और उसके साथ ही अपनी कलूषित भविष्य का भी। वह कहती है :

युग-युग चलती रहे कठोर कहानी—
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा—
'धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।'

कैकेयी की अवस्था राम को असह्य हो जाती है और वे उसका गुणगान करने लगते हैं :

सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,

इन पंक्तियों से पता चलता है कि कवि में मानव-हृदय के रहस्यों में प्रवेश करने को अतुल क्षमता है। इस समय रानी की वेदना सीमा पर है। अतः राम इन शब्दों द्वारा मातृत्व को फिर उद्दीप्त करने की चेष्टा करते हैं।

कैकयी राम से घर चलकर राज्य सभालने के लिए कहती है। इसके लिए तरह-तरह की युक्तियाँ देती हैं, परन्तु यह उक्ति उससे प्रबलतर है :

आगत ज्ञानी जन, उच्च भाल ले लेकर,
समझाते तुमको, अतुल युक्तियाँ देकर।
मेरे तो एक अधीर हृदय है बेटा,
उसने फिर तुमको आज हृदय भर भेटा॥

कहने की आवश्यकता नहीं इस अचूक युक्ति के सन्मुख एक बार राम भी विचिलित हो उठे होंगे।

इसी प्रकार यशोधरा गौतम के छोड़ जाने पर भी दोष उनके ऊपर नहीं लगाती। वे तो सम्पूर्ण विश्व के दुःख से दुःखी थे, फिर भला वे यशोधरा को कैसे

दुःख देते। उसको विश्वास है कि वे संसार के दुःखों को समाप्त करने के लिये गये हैं और अवश्य ही सब के साथ उसका भी दुःख दूर करेंगे। यद्यपि वह दुखी है फिर भी उनकी महानता का बखान कर रही है।

पेड़ों के त्यागे हुए पत्ते उसको उसके त्याग का ही प्रभाव मालूम पड़ते हैं। उन्हीं की सफलता प्राप्त होने पर सारे संसार में घर-घर अग्नि के कुँड प्रकाशित हो रहे हैं। इतनी अधिक सर्दी है कि पानी भी जम गया है, किन्तु यशोधरा का दुःख दूर नहीं हुआ। वह विरह की ज्वाला से जल रही है, किन्तु फिर भी गौतम को एक शब्द भी नहीं कहती है। वह तो भगवान से इतनी ही विनय करती है :

उनके श्रम के फल सब भोगें,
यशोधरा की विनय यही।

इसी प्रकार के अन्य प्रसंगों के अध्ययन के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि गुप्त जी भावपूर्ण स्थालों का चित्रण करने में पूर्ण सफल रहे हैं।

महादेवी वर्मा

प्रश्न १—महादेवी वर्मा के काव्य के छायावादी स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ।

अथवा

प्रश्न २—"महादेवी वर्मा छायावाद की प्रतिनिधि कवियत्री हैं ।"—इस कथन की समीक्षा करते हुए उनके काव्य के छायावादी स्वरूप को स्पष्ट कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ३—महादेवी वर्मा की रचनाओं में छायावाद का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप दिखाई देता है । क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? सप्रमाण उत्तर दीजिए ।

अथवा

प्रश्न ४—प्रमाणित कीजिए कि महादेवी वर्मा छायावाद की प्रतिनिधि कवियत्री हैं ।

अथवा

प्रश्न ५—"छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन ।"—इस कथन की सार्थकता पर विचार कीजिए ।

उत्तर—छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—वस्तु और शिल्प अथवा भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही क्षेत्रों में नवीनता का सन्देश लेकर 'छायावाद' का आगमन हुआ है । इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं शैलीगत प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ।

(क) वस्तुगत-प्रवृत्तियाँ—(१) वैयक्तिकता तथा आन्तरिक अनुभूति अर्थात् समाज-चित्र की अपेक्षा ही अपनी भावनाओं का चित्रण ।

(२) अतीन्द्रिय प्रेम का चित्रण ।

(३) विषाद भावना अथवा दुःखवाद की अभिव्यक्ति । इसे हम निराशा एवं वेदना अथवा करुणा की विवृत्ति कह सकते हैं ।

(४) प्रकृति पर चेतना का आरोप ।

(५) स्वच्छन्दता ।

(६) रहस्य-भावना ।

(७) सौन्दर्य एवं शृंगार भाव की अभिव्यक्ति ।

(८) नवीन मानवतावादी जीवन-दर्शन ।

(ख) शिल्पगत विशेषताएँ—छायावाद की कविता कल्पना-प्रधान होने के कारण बहुत कुछ अस्पष्ट भाव-जगत से सम्बद्ध रही । इस कारण उसकी भाषा-शिल्प

भी उसी के अनुभव पर कोमल और स्पष्ट है। सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान एवं लाक्षणिक मूर्तिमत्ता उसके शैली-शिल्प की प्रमुख विशेषता है। इसकी भाषा-शैली से सम्बन्धित सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(१) कोमलकान्त संस्कृतनिष्ठ पदावली ।
(२) भाषा में संगीतात्मकता।
(३) शब्द-विधान में ध्वन्यात्मकता।
(४) आलंकारिकता।
(५) लाक्षणिकता।
(६) प्रतीकात्मकता। तथा,
(७) मुक्त छन्द का प्रयोग ।

महादेवी वर्मा और छायावाद—अब देखना यह है कि महादेवी वर्मा के काव्य में छायावादी काव्य की विशेषताएँ कहाँ तक प्राप्त होती हैं।

(क) वस्तुगत प्रवृत्तियाँ

(१) **वैयक्तिकता तथा आन्तरिक अनुभूति**—छायावाद के कवियों ने अपने काव्य में समाज-चित्रण की अपेक्षा अपने व्यक्तित्व हर्ष-विषाद को ही प्रधानता प्रदान की है। प्रसाद ने 'आँसू' में अपने वियोग-विचलित हृदय के अश्रु बहाए हैं, पन्त ने 'ग्रन्थि' में अपने मन की गाँठ खोलकर रख दी है, निराला ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही विधियों से अपनी वैयक्तिक भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति की है तथा महादेवी वर्मा ने अपनी व्यक्तिगत वेदना के संसार को विविध रंगों में रंग कर प्रस्तुत किया है। महादेवी वर्मा के काव्य में और व्यक्तित्व के मध्य एक अविच्छिन्न सम्बन्ध की प्रच्छन्न धारा दिखाई देती है। इसी तथ्य को लक्ष्य करके 'मानव' ने यह मन्तव्य प्रकट किया है कि 'महादेवी वर्मा के गीतों के मूल में एक क्षीण सी कथा-धारा बहती है।"

महादेवी वर्मा की रचनाएँ इनके जीवन-काल में आने वाले विविध पड़ावों के समान हैं। 'नीहार' और 'रश्मि' में अधिकांशतः कवियत्री के मन की कोमल स्निग्ध और उल्लासमयी भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। 'नीरजा' में उनका हृदयस्थ विषाद साकार हो उठा है और 'दीपशिखा' में महादेवी जी के अकम्प विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है। यथा :

दूसरी होगी कहानी !
शून्य में जिसके मिटे स्वर
धूलि में खोई निशानी !
आज जिस पर प्रलय विस्मित
मैं लगती चल रही नित
मोतियों की हाट और चिनगारियों का एक मेला।
पंथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।

कहीं-कहीं इनका यह व्यक्ति तत्व अस्पष्ट हो गया है। इनके काव्य के आलम्बन के सम्बन्ध में जो अनेक सम्भावनाएँ की जाती हैं, उसका कारण यह अस्पष्टता ही है। परन्तु यह सब होने पर भी उसमें व्यक्तिगत उल्लास, स्वाभिमान एवं विरह-वेदना का सुखद समावेश दिखाई देता है।

(२) **अतीन्द्रिय प्रेम का चित्रण**—छायावादी कविता में अभिव्यक्ति प्रेमतत्व के ऊपर आलौकिकता का आवरण पड़ा हुआ दिखाई देता है जिसे अतीन्द्रियता कहा जाता है। इन्होंने ऐसे अवसरों पर प्रतीकों के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है :

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।

महादेवी ने अपने प्रेम का आलम्बन प्रायः यह बताया है, जिसका स्वरूप विराट एवं विशाल है और जो अलौकिक है। उनके 'ये सपने सुकुमारी तुम्हारी स्मित से उजाले' जैसे गीतों में उनकी प्रेम-भावना अलौकिकता का संस्पर्श करती हुई दिखाई देती है। इनके अतीन्द्रिय प्रेम का चित्रण देखते ही बनता है जिसमें आलम्बन का कोई संश्लिष्ट बिम्ब स्पष्ट नहीं होता है :

कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरचित ?
स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में ?

(३) **विषाद-भावना**—निराशा, वेदना दुःखवाद एवं करुणा की विवृत्ति की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है। छायावाद के कवियों ने वेदना एवं दुःख को जीवन का सर्वस्व एवं उपकारक माना है। 'प्रसाद' के 'आँसू' के माध्यम से कवि की वेदना शत सहस्त्र धाराओं में प्रवाहित हुई है। 'निराला' ने 'स्नेह-निर्झर बह गया है' सदृश्य कविताओं में वेदना एवं दुःखवाद को कई प्रकार से प्रकट किया है। महादेवी वर्मा ने भी विविध प्रकार से विषद-भावना एवं दुःखवाद की अभिव्यक्ति की है, किन्तु एक भिन्न प्रकार से। महादेवी जी को सुख की अपेक्षा दुःख अधिक प्रिय रहा है। इस सन्दर्भ में उनका कथन दृष्टव्य है— "सुख और दुःख के धूपछाहीं डोरे से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है, × × × संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने

लगी है।" विशेष बात यह है कि विषाद के भाव ने महादेवी जी को अकर्मण्य नहीं बना दिया है। उनकी कर्म-शक्ति कुण्ठित नही हो सकी है—उसमें परहित-साधना की प्रबल आकांक्षा है। वह नीर भरी बदली से अपनी एकता स्थापित करती हुई कहती हैं कि :

मैं नीर भरी दुख की बदली।
× × ×
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नवजीवन-अंकुर बन निकली।
× × ×
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

विषाद-भावना कवियत्री को इतनी प्रिय है कि उसके बनाए रखने के लिए वह अमरों के लोक को भी नगण्य समझती हैं :

ऐसा तेरा लोक वेदना नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद।
क्या अमरों का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार।
रहने दो हे देव अरे यह मेरे मिटने का अधिकार।

(४) प्रकृति पर चेतना का आरोप—प्रकृति के प्रति प्रेम छायावाद की कविता की एक प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवियों ने प्रायः समस्त मान्य शैलियों पर प्रकृति के वर्णन लिखे हैं।

प्रकृति पर चेतना का आरोप तथा प्रकृति का मानवीकरण छायावाद के प्रकृति-वर्णन की बहुत-बड़ी मौलिक देन है। महादेवी वर्मा के काव्य में भी यह विशेषता मिलती है। वह रजनी का मानवीकरण करती हुई कहती हैं कि :

रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर,
जब रोती थी उजियाली।

इसी प्रकार

पिक की मधुमय बंशी बोली
नाच उठी सुन अलिनी भोली,
अरुण सजल पाटल बरसाता
तुम पर मृदु पराग की रोली,
मृदुल अंक धर दर्पण-सा सर
आज रही निशि दृग इन्दीवर।

में भी प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। महादेवी जी ने चैतन्यारोपण की पद्धति पर भी प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन किया है।

महादेवी जी के प्रकृति-वर्णन में की जाने वाली कल्पनाएँ कहीं-कहीं क्लिष्ट और अस्पष्ट हैं। वे कहीं कहीं ऐसे प्रतीकों को लाती हैं जो परम्परा से पोषित हमारी सौन्दर्य-भावना पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। उपर्युक्त 'रजनी' के मानवीकरण में 'उजियाली' का रोना हमारी परम्परा पोषित-सौन्दर्य-भावना के प्रतिकूल पड़ता है। इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण में क्लिष्ट कल्पना भावाभिव्यक्ति को अस्पष्ट कर देती है :

निश्वासों का नीड़ निशा का बन जाता जब शयनागार।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्ताबलियों के बन्दनवार।
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हा-हाकार।
आँसू में लिख-लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।

भाव तक पहुँचने के लिए बड़ी क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है। इसी कारण भावाभिव्यक्ति अस्पष्ट हो गई है।

(५) **स्वच्छन्दतावाद**—स्वच्छन्दता का वरण छायावाद की प्रमुख प्रेरणा रही है। परम्परा और प्राचीन के प्रति विद्रोह इसका मुख्य लक्षण है। सिद्धान्त रूप में महादेवी जी ने भी स्वच्छन्दतावाद को स्वीकार किया है—"सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द-छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।"

नारियोचित शालीनता एवं व्यक्तिगत सात्विकता के फलस्वरूप महादेवी जी में प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति में वासना की प्रवृत्ति अद्यान्त संयत बनी रहती है। प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति में बासना का लेश भी परिलक्षित नहीं होता है। उसमें हमें सर्वत्र पूजा-अर्चना के सात्विक उपकरणों का प्रयोग दिखाई देता है।

(६) **रहस्य भावना**—छायावाद की कविता में रहस्य भावना की इतनी अधिक अभिव्यक्ति हुई है कि छायावाद और रहस्यवाद का अटूट सम्बन्ध परिलक्षित होता है। इन कवियों ने अपनी रहस्य भावना को प्रायः जिज्ञासा और कौतूहल के रूप में ही प्रकट किया है। महादेवी वर्मा की कविताओं में भी रहस्य-भावना प्रचुरता से उपलब्ध है। यथा :

शून्य नभ में उमड़ जब दुःख भार सी
नैश तम में सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की भाँति भी
जब सुनहले आँसुओं की हार-सी,

तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?

रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का वर्णन अनिवार्य होता है। इस सम्बन्ध का उल्लेख करती हुई महादेवी जी कहती हैं कि :

ओ चिर नीरव।
मैं शांति विकल,
तेरी समाधि की सिद्धि विकल।

× × ×

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ,
नाश भी हूँ मैं अनंत निकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार का आघात भी झंकार की गति भी,
पात्र भी मधु भी, मधुप की, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

(७) सौन्दर्य एवं शृंगार भाव की अभिव्यक्ति—छायावाद के काव्य में प्रेम-भाव का प्रचुर चित्रण हुआ है। वह प्रेम लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही प्रकार का है। लौकिक प्रेम-वर्णन में इन कवियों ने संयोग जन्य सुख और वियोग जन्य दुःख की अभिव्यक्ति की है। पारलौकिक पक्ष में इनकी प्रेमभिव्यक्ति सत्य की सीमा का संस्पर्श करती हुई दिखाई देती है।

महादेवी वर्मा ने अपने काव्य में प्रणय के अनेक रूपों को व्यक्त किया है। विशेषता यह है कि इन्होंने पार्थिव तथा प्रकृत-प्रेम का चित्रण कहीं नहीं किया है। इनका एक भी गीत ऐसा नहीं है, जिसमें पार्थिव आलम्बन के प्रति इन्द्रियवासना की अभिव्यक्ति की गई हो।

महादेवी वर्मा की प्रणयानुभूति के दो रूप हैं—सात्विक प्रेम और निर्गुण निराकार के प्रति मानव-आत्मा की ज्ञानमूलक आनन्दबद्धता।

महादेवी वर्मा का प्रियतम यद्यपि निर्गुण-निराकार है, तथापि वह सगुण प्रतीत होता है :

जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करुणा कितने संदेश पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार तार अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार !

अलौकिक आलम्बन के प्रति उनकी जो कल्पना है, वह भी नारी-हृदय की कोमलता के अनुरूप भव्य और विराट है :

लौ ने वर्ती को जाना है !
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने रज का अंचल पहचाना है ।
चिर-बन्धन में बांध इन्हें घुलने का वर दे जाना है !

महादेवी वर्मा ने अपनी प्रणयानुभूति को सर्वत्र उन्नयन कर दिया है । उनके काव्यगत प्रेम को कल्पित प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है ।

डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने इनकी सौन्दर्यानुभूति का यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है—"महादेवी जी की समस्त सौन्दर्य-निधि इसी एक की आराधना में अर्पित है, हृदय के समस्त भाव उसी को समर्पित हैं । × × × × अतएव महादेवी जी की उक्तियों में अनुभूति का भेद चाहे जैसा हो, सौन्दर्य में अन्तर कभी नहीं आता । उसी के ऐश्वर्य से प्रकृति भी ऐश्वर्यमयी ही दीखती है ।"

(८) **नवीन मानवतावादी जीवनह-दर्शन**—रवीन्द्र, टॉलस्टॉय, गांधी प्रभृति युग पुरुषों ने विश्व-मानव की वन्दना की ओर इस प्रकार एक नवीन मानवतावादी जीवन-दर्शन का उद्भव और विकास हुआ । महादेवी वर्मा के काव्य में भी इस नवीन मानवतावादी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है । जर्जरित समाज के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करती हुई वह कहती हैं :

कह दे मां क्या देखूं ।
देखूं खिलती कलियां या,
प्यासे सूखे अधरों को ।
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूं ।

महादेवी वर्मा के दुखी होने पर विश्व ताप में तपने तथा तिल-तिल कर मिटने में क्या रहस्य है ? यही, जिससे वह अपने जीवन की भस्म से हम विश्व को अधिक उर्वर, अधिक तरल बना सकें :

मुसकरा कर राग मधुमय
वह लुटाता पी तिमिर विष
आंसुओं का क्षार पी मैं
बांटती नित स्नेह का रस
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ मधुर जितना प्रात

वह अपने अश्रु कण से समाज को नव-चेतना प्रदान करना चाहती है । उनका दुःख भार समाज के सुख का हेतु बन जाए :

मैं नीर भरी दुख की बदली।
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा।
× × ×
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नव जीवन अंकुर बन निकली

कवियत्री की करुणा और तरलता में इस विशाल विश्व की मंगल-कामना निहित है, जैसे सिद्धार्थ की करुणा में अखिल विश्व जीवों का कल्याण। महादेवी के प्रत्येक स्वर से मधु के युग-निसृत होने की स्वर्णाशा सदा से संचार करती आई है। वे कहती हैं:

जब मेरे शूलों पर शतदल
मधु के युग होंगे अबलम्बित
मेरे क्रन्दन से आतप के दिन सावन हरियाले होंगे।

कुछ आलोचकों को महादेवी जी से यह शिकायत है कि उन्होंने व्यवस्था और सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के लिए सामाजिक संघर्ष की प्रेरणा नहीं दी। परन्तु उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि कवियत्री ने जीवन के उपरान्त शान्ति या नियति में सन्तोष का सुझाव भी नही दिया है। एक विचारक ने ठीक ही कहा कि "महादेवी ने तुमुल संघर्ष के लिए भेरी नाद जरूर नहीं किया, परन्तु अपनी बंशी से मानव की चेतना, सतत् सक्रियता का मधुर उद्बोधन अवश्य किया है। उनकी अत्यन्त आत्मरति परक कल्पनाएँ भी जीवन-संगीत की ध्वनि से गुंजरित हैं:

सिखाने जीवन का संगीत तभी तुम आए इस पार:

उनके स्वप्न भी काल्पनिक चिर सुख के नहीं, लौकिक जीवन के हैं:

स्वप्न लोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं अब मेरे पागल प्राण।

निर्माण के प्रयत्नों में विफल होने पर भी वह हतोत्साहित नहीं होती हैं:

सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान।
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में ही पूर्ति-विकास।

(ख) शिल्पगत विशेषतायें

(१) संस्कृतनिष्ठ कोमलकान्त पदावली—छायावादी-काव्य आदर्शवादी काव्य-

धारा है। तदनुरूप इसमें संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग हुआ है। कोमल-कान्त कल्पना के अनुरूप कविता की पदावली भी कोमलकान्त है। तथा

सकुच सलज खिलती शेफाली, अलस मौलश्री डाली-डाली,
बुनते नव प्रभात कुंजों में रजत श्याम तारों से जाली।

गीत गोविन्दकार जयदेव सदृश्य संस्कृत कवियों की रचनाओं में उपलब्ध कोमलकान्त पदावली की यह मनोहारी ध्वनि देखिए :

शुभ्र-हिम-शतदल-किरीटनि, किरण-कोमल-शकुन्तला जो,
सरित-तुंग-तरंग मालिनि, मरुत-चंचल-अंचला जो,
फेन उज्ज्वल अतल सागर चरण पीठ जिसे मिला है,
आतपत्र रजत-फलक-नभ चलित रंगों से धुला है,
पा तुझे यह स्वर्ग की धात्री प्रसन्न प्रकाम :
मानव-वर ! असंख्य प्रणाम

(२) **भाषा में संगीतात्मकता**—महादेवी वर्मा को संगीत का अच्छा ज्ञान है। इनकी कविता में संगीतात्मकता का सुन्दर पुट दिखाई देता है, जिसके फलस्वरूप भाषा विशेष प्रभावशाली एवं प्रवाहयुक्त बन गई है। यथा :

शुक्लाभिसारिका मुग्धा बसन्त रजनी की श्रृंगार-सज्जा देखिए :

तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि-वलय सित घन अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।

तथा :

निशा को धो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल
कली से कहता था मधुमास
बता दो मधु मदिरा का मोल।

(३) **शब्द-विधान में ध्वन्यात्मकता**— अँग्रेजी की कविता में नादार्थ व्यंजना का बड़ा महत्व रहा। छायावाद की कविताओं में यह बहुत लोक-प्रिय रहा। महादेवी जी की कविता में भी यथा अवसर इसके दर्शन होते हैं। यथा शुक्लाभिसारिका मुग्धा बसन्त रजनी के आभूषणों की रुनझुन सुनते ही बनती है :

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि
अलि गुंजित पद्मों की किंकिण
भर पद-गति में अलस् तरंगिणि
तरल रजत की धार बहा दे मृदु स्मित से सजनी।

तरंगों की गरज एवं उनके निर्घोषजन्य आतंक की इस ध्वन्यार्थ व्यंजना को देखिए :

तरंगें उठीं पर्वताकार
भयंकर करती हा हा कार।
अरे, उनके फेनिल उच्छवास
तरी का करते हैं उपहास
हाथ से गई छूट पतवार
कौन पहुँचा देगा उस पार?

(४) **अलंकारिकता**—संस्कृतनिष्ठ कोमलकान्त पदावली के फलस्वरूप छायावाद की कविता में अनुप्रास-छटा तो सर्वत्र दिखाई ही देती है। महादेवी जी की कविता में भी अनुप्रास की छटा व्याप्त है। कहीं-कहीं यमक का भी प्रयोग पाया जाता है :

जगती जगती की भूख प्यास।

इनकी कल्पना के साथ अर्थालंकार स्वयं ही आ जाते हैं। इनकी उक्तियों में अलंकार बहुत ही स्वाभाविक रूप में उलझे हुए दिखाई देते हैं। एक उदाहरण देखिए :

फूलों की मीठी चितवन नभ की ये दीपावलियाँ,
पीले मुख पर सन्ध्या के वे किरणों की फुलझड़ियाँ
विधु की चाँदी की थाली मादक मकरंद भरी थी,
जिसमें उजियारी रातें, लुटती, घुलती मिसरी थी।

इन पंक्तियों में उपमा, रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग दिखाई देता है।

उपमा और मानवीकरण महादेवी जी का विशेष प्रिय हैं :

'कनक से दिन मोती सी रात' में उपमा दृष्टव्य है।

कहीं इन्होंने अंग्रेजी के मानवीकरण तथा ध्वन्यार्थ व्यंजना के अतिरिक्त विशेषण-विपर्यय का भी खूब प्रयोग किया है—"इन दीवानी चोटों" (चोट दीवानी नहीं है, परन्तु दीवानी है वह नायिका) जिसने विरह की चोट खाई है :

(५) **सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान एवं लाक्षणिक मूर्तिमत्ता**—सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान एवं लाक्षणिक मूर्तिमत्ता छायावादी कविता का एक महत्वपूर्ण बहिरंग तत्व है। महादेवी वर्मा भावों का साकार चित्र प्रस्तुत करने में बहुत सिद्धहस्त हैं। थोड़ी-सी रेखाएँ और थोड़े से रंगों से उभरते हुए चित्रों के समान ही इनकी कविता में भी अल्प शब्दों से अंकित अनेक सुन्दर चित्र विद्यमान हैं। इनका अप्रस्तुत-विधान भी इनकी कला को उत्कृष्टता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ है। निम्न उदाहरण देखिये :

तिमिर पारावार में आलोक प्रतिमा है अकम्पित,
आज ज्वाला से बरसता क्यों मधुर घनसार सुरभित,

लाक्षणिक मूर्तिमत्ता का यह चित्रण भी द्रष्टव्य है :

सकुच सलज खिलती शेफाली
अलस मौलश्री डाल-डाली
बुनते नव-प्रबाल कुञ्जों में
रजत श्याम तारों की जाली
शिथिल मधु-पवन गिन-गिन मधुकण
हर सिंगार झरते हैं झर-झर

इसमें लाक्षणिक मूर्तिमत्ता के अतिरिक्त हमको छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, मानवीकरण, रूपक तथा ध्वन्यार्थ व्यंजना अलंकारों का स्वाभाविक प्रस्फुटन दिखाई देता है :

महादेवी वर्मा के सूक्ष्म अप्रस्तुत-विधान में एक ओर विशेषता द्रष्टव्य है। कवियत्री की अभिव्यंजना में भाव-विशेष या स्थिति विशेष की सूक्ष्मता, भिन्न गुण-स्थापना, विपरीत और विरोधी स्वभाव का समावेश, विपरीत, परिणाम विपरीत-क्रिया, उक्ति वक्रता आदि सभी प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं। 'विपरीत परिणाम' का यह उदाहरण देखिये :

प्यास वह पानी हुई इस पुलक के उन्मेष में,
शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष। (दीपशिखा)

(६) प्रतीकात्मकता—प्रतीक-विधान छायावाद के शिल्प का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। इन कवियों ने प्रकृति के पदार्थों का प्रतीक रूप ग्रहण किया है।

महादेवी जी ने दीपक, कमल अथवा कवि का क्रमशः आत्म-भावना और पीड़ा के रूप में ग्रहण किया है। कहीं-कहीं दीपक प्रेम का भी प्रतीक है। यथा :

दीप मेरे जल अकंपित
घुल अचंचल

अथवा—

फिर तुमने क्यों शूल बिछाए।

नीचे के उदाहरण में सौरभ और कलिका क्रमशः जीव और ब्रह्म के प्रतीक बनकर आये हैं :

वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर
कलिका में लौट नहीं पाता

हम अन्यत्र बता चुकें हैं। उनके कविता संग्रहों का नामकरण ही प्रतीकात्मक शैली पर हुआ है—वे उनके चेतना-विकास के स्तरों के प्रतीक हैं। उदाहरणार्थ—

'दीपशिखा' उनकी अकम्पित अजस्र साधना की प्रतीक है। उसमें महादेवी जी विविध दीप-रूपों में उतरी हैं। साधक का पूर्ण स्वरूप जैसा दीपक के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त होता है, वैसा अन्य प्रतीक (शलभ, चातक, चकोर, कमल) आदि के द्वारा नहीं। यथा :

उर का दीपक चिर स्नेह अतल
सुधि लौ शत झंझा में निश्चल
सुख से भीगी दुख से गीली
वर्त्ती-सी साँस अशेष रही।

महादेवी वर्मा में छायावाद की कतिपय प्रमुख विशेषताओं का अभाव—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान" को छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या कहा है। इस कसौटी पर उनके मतानुसार केवल अंग्रेजी कवि शैली ही खरे उतरते हैं। महादेवी जी की कविता को उन्होंने छायावाद की मुख्य विशेषताओं से रिक्त बताया है। आचार्य जी के तर्क इस प्रकार हैं :

(१) महादेवी के काव्य में प्राकृतिक सुख-दुख का अथवा उसके सामंजस्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता। × × दृश्य प्रकृति में हिमालय पर ही उनकी दृष्टि गयी। वहाँ भी अन्तर्मुखी भावना ही उभर कर आई है।

(२) महादेवी जी ने रूढ़िबद्ध धार्मिक काव्य और वास्तविक काव्य का स्पष्ट अन्तर अपने सामने नहीं रखा, जिससे उनकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर प्रकृति मे अध्यात्म की जगह रूढ़ि के चिह्न मिलते हैं।

(३) प्रतीकों का कल्पित व्यापार सौन्दर्य-संस्कार के प्रतिकूल है और कहीं-कहीं इतना क्लिष्ट हो गया है कि हम ईप्सित सौन्दर्य की झाँकी नहीं पा सकते। यथा

रजनी ओढ़े जाती, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे बैखरे वैभव, जब रोती थी उजियाली।

यह प्रभात का दृश्य है। यहाँ उजियारी के 'रोने' का वर्णन है, जबकि वह सदा हंसती ही आती है। इसके लिए हमें यह कल्पना करनी पड़ती है कि प्रभातकाल की नमी अथवा ओस रूपी आँसू में उजियाली रो रही है।

(४) छायावाद के सौन्दर्य-चित्रण में जो एक विशेष चेतना, चटक और चांचल्य रहे हैं, उनका महादेवी में अभाव है। इनमें विलक्षण उदासीनता, सात्विकता शान्ति और निश्चलता झलकती है :

सुमन वर-वेशिनी री,
छाँह में अस्तित्व खोए, अश्रु से सब रंग धोए।
गन्दप्रभ दीपक सँजोये, पन्थ किसका देखती तू,
अलस स्वप्न निवेशिनी री।

आध्यात्मिक रहस्य—मुद्राओं से परिपूर्ण इस प्रकार के सौन्दर्य चित्रण को आचार्य जी 'छायावाद' की परम्परा के अन्तर्गत स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।

(१) महादेवी जी की कविता में वेदना की विवृत्ति और रहस्यात्मकता बढ़ गई है, किन्तु ऐसे स्थल अपेक्षाकृत अधिक दुरूह हो गये हैं।

(२) महादेवी जी के काव्य में सौन्दर्य-संवेदन के 'आनन्द' पक्ष का अभाव है। वेदना स्वरूप का ही प्रसार मिलता है।

(३) महादेवी जी अपनी व्यंजना-शैली में नवीनता रखती हैं। इस प्रकार उनमें समृद्ध छायावादी चमत्कृति नहीं मिलती।

उक्त अभावों का निराकरण -महादेवी जी के काव्य में छायावादी की इतनी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है कि उनके अभावों की ओर संकेत करते समय आचार्य जी स्वयं अपने तर्क को शिथिल कर देते हैं। यथा :

(१) 'मधुरतम व्यक्तित्व' की सृष्टि करके महादेवी जी ने रहस्य की इति नहीं कर दी है। प्रचुर कल्पना के कारण रहस्यात्मकता कभी खोई नहीं। 'मत अरुण घूँघट खोल री', 'श्रृंगार कर ले री सजनि' जैसे स्थलों पर रहस्यात्मक रूप-विन्यास के सुन्दर उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

छायावाद की विशेषता—कल्पना का बाहुल्य उनके काव्य में दीखता है। वह बात है कि कल्पनाएँ सर्वत्र सीधी और मार्मिक न हों।

(३) महादेवी जी ने अलंकृत चित्रण छोड़कर जहाँ सीधा रास्ता पकड़ा है, वहाँ बड़ी सजीव कविता का स्रोत बहा है। ऐसे स्थलों पर उनके चित्र खूब साफ आए हैं।

(४) आचार्य जी एक ओर तो यह कहते हैं कि महादेवी में रवि बाबू जैसी एकतानता प्रसार, अटूट श्रृंखला का अभाव दिखाई देता है, वहाँ दूसरी ओर यह भी लिख देते हैं कि तो भी छोटे-छोडे टुकड़ों में अपने ढंग की सफाई और काफी काम महादेवी जी के बहुत से गीतों में मिलता है।

(५) महादेवी जी के लाक्षणिक प्रयोग प्रायः दुरूह हो गए हैं :

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात हमारे सम्मुख यह निष्कर्ष प्रस्तुत होता है कि आचार्य जी द्वारा इंगित प्रभाव पक्ष भावपक्ष शून्य नहीं है। जो आक्षेप हैं, उनमें अधिकांश सतही हैं। महादेवी में छायावाद की विशेषताओं का जो समावेश है, उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप है, जो कवियत्री की प्रतिभा का द्योतन करता है।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी वर्मा ने लाक्षणिकता मानवीकरण, चित्रात्मकता, प्रतीक-योजना आदि विशेषताओं के समावेश द्वारा अपनी कविता को छायावादी कला-सौष्ठन प्रदान किया है तथा चिर-प्रचिलित स्थूल उपमानों के

स्थानों पर सूक्ष्य व मौलिक उपमानों को प्रयुक्त करके अपनी रचनाओं में एक विचित्र अनूठापन भर दिया है :

विधु की चाँदी की प्याली
मादक मकरन्द भरी सी
जिसमें उजियाली रातें
लुटतीं घुलती मिसरी-सी ।

इस विवेचन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी काव्य का जितना भी भाव-वैभव है और छायावादी अभिव्यक्ति के जितने भी प्रकार हैं वे सभी महादेवी के काव्य में उपलब्ध हैं । उन्होंने अपने काव्य को छायावादी सौन्दर्य चेतना द्वारा मण्डित करने का प्रत्येक सम्भव प्रयास किया है और इसमें पूर्णतः सफल हुई हैं । यही कारण है कि समीक्षक उन्हें छायावादी कवियों के प्रमुख स्थान प्रदान करते हैं । महादेवी के काव्य की छायावादी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि "महादेवी के काव्य में हमको छायावाद का शुद्ध अमिश्रित रूप मिलता है । छायावाद की अन्तर्मुखी अनुभूति अशरीरी प्रेम, जो वाह्य तृप्ति न पाकर अमांसल सौन्दर्य की सृष्टि करता है और प्रकृति के चेतन संस्पर्श, रहस्य चिन्तन, तितली के पंखों और फूलों की पखुड़ियों से चुराई हुई कला और इन सबके स्वप्न सा पूरा हुआ एक वायवी वातावरण ये सभी तत्व जिसमें घुले-मिले हैं वह है महादेवी की कविता । महादेवी ने छायावाद को पढ़ा नहीं, अनुभव किया है ।'

छायावाद के कवियों में महादेवी जी का तुलनात्मक महत्व निर्धारित करते समय हमारे सामने कुछ विशेष तथ्य आते हैं । जहाँ तक वैयक्तिकता की अभिव्यंजना का प्रश्न है, प्रसाद और निराला अद्वितीय हैं ।

रहस्य भावना की दृष्टि से भी प्रसाद और निराला अधिक समृद्ध हैं । प्रसाद और निराला की रहस्य भावना में दार्शनिकता की प्रधानता है । पन्त की रहस्य भावना में जिज्ञासा-भाव का बाहुल्य है । महादेवी ने अलौकिक आलम्बन के प्रति जो मधुर कल्पना की है, वह अन्य छायावादी कवियों में नहीं है । महादेवी वर्मा की रहस्य-भावना नारी हृदय की कोमलता के अनुरूप होने के अतिरिक्त भव्य विराट और कल्पनामय है :

लौ ने वर्ती को जाना है ।
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने रज का अंचल पहचाना है ।
चिर-बन्धन में बांध इन्हें धुलने का वर दे जाना है ।

जहाँ तक विषाद या वेदना का सम्बन्ध है, इसका जितना विस्तृत वर्णन महादेवी की कविता में उपलब्ध होता है, उतना अन्य किसी छायावादी कवि की रचनाओं में नहीं । महादेवी का वेदना-साहित्य शुद्ध सेवा का साहित्य है, जिसमें साधना संकल्प और लोक-कल्याण की भावना निहित है ।

कला के क्षेत्र में महादेवी जी की कविता में एक प्रमुख विशिष्टता पाई जाती है —चित्रात्मकता। शब्दों के द्वारा भाव-चित्र करने में महादेवी जी अपनी सानी नहीं रखतीं। यथा :

तू भू के प्राणों का शतदल !
झीने मृदु स्वर्णिम तारों-सी
किरणों के मिस केसर झरती,
हल्के आतप में रस भीनी
शतरंगी रज बरसा करती,
निर्झर में बहता मधु अविरल।

सारांश यह है कि महादेवी वर्मा के काव्य में छायावाद की समस्त विशेषताएँ मिलती हैं। वे छायावाद का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती हैं। महादेवी और छायावाद प्रायः अभिन्न अंग हैं। पण्डित विनय मोहन शर्मा ने ठीक ही लिखा है कि "छायावाद ने महादेवी को जन्म दिया और महादेवी ने छायावाद को जीवन।"

प्रश्न ६—महादेवी की काव्य-कला की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७— महादेवी वर्मा की कविताओं की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या ५ में 'शिल्पगत विशेषताएँ शीर्षक को पढ़िये।

प्रश्न ८—"महादेवी की कविता मार्मिक और हृदयग्राही होने के साथ ही साथ कलात्मक है।"—इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ९—"गीति-काव्य लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को मिली वैसी और किसी को नहीं"—इस मत की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०—"साधारणतयः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"—गीत की इस परिभाषा के आधार पर महादेवी के गीत-काव्य का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ११—गीतकार की दृष्टि से महादेवी वर्मा के काव्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १२—"काव्य वास्तव में मानव के सुख-दुखात्मक संवेदनों की ऐसी कथा है, जो उन्हें सम्पूर्ण परिवेश के साथ दूसरे की अनुभूति का विषय बना देती है।"—महादेवी के काव्य के सन्दर्भ में इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—छायावादी काव्य-धारा के अन्तर्गत गीति-काव्य की समृद्धि में महादेवी वर्मा का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह मानव सुख-दुःख की संवेदनात्मक अनुभूति है।

महादेवी वर्मा के गीति-काव्य में हमको एक निश्चित विकास-क्रम दिखाई देता है। 'नीहर' में वह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं। भाव कम और शब्दों के बाहुल्य की प्रवृत्ति है। 'नीरजा' तक आते-आते उनके भावों और भाषा में मैत्री स्थापित हो जाती है अर्थात् भाव और भाषा के मध्य एक सुखद सन्तुलन स्थापित हो जाता है। 'दीपशिखा' में उनका काव्य पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो जाता है। वह थोड़े से शब्दों में गहरे से गहरे भावों को सहज रूप से व्यक्त करने की सामर्थ्य—'गागर में सागर' करने की स्थिति को प्राप्त होती हैं।

गेयता या संगीतात्मकता—गेयता गीत का प्रमुख तत्व है। महादेवी जी ने स्वयं भी इस तत्व की महत्ता को स्वीकार किया है—"गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।" महादेवी जी के गीतों में हमको गेयता का पूरा-पूरा निर्वाह दिखाई देता है। गेयता के लिए स्वर का संगीत और शब्द का संगीत, इन दो साधनों का आश्रय लिया जाता है। अपने गीतों में महादेवी जी ने दोनों ही साधनों का समर्थ प्रयोग किया है। महादेवी जी का वर्ण-विन्यास बहुत ही लयात्मक और भावानुरूप है। यह विषमता उनके अनेक गीतों में दृष्टव्य हैं :

सपने जगाती आ !
श्याम चंचल
स्नेह उर्म्मिल,
तारकों से चित्र उज्ज्वल
घिर घटा-सी चाप से पुलकें उठाती आ !
सपने जगाती आ !

कहीं-कहीं मात्राओं को घटा बढ़ाकर भी लय अक्षुण्य रखी गई है। परन्तु ऐसे अवसरों पर कवियत्री सजग होकर भावों की काट-छाँट करती है तथा अनुभूति की तीव्रता के बिना भी अपने आप अनुकूल संगीत व लय में मुखरित हो उठती है जैसे :

पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।
और होंगे चरण हारे,
अन्य होंगे लौटते दे शूल को संकल्प सारे,
दुखव्रती निर्माण उन्मद
यह अमरता नापते पद
क्या बाँध देंगे अमर संसृति से तिमिर में स्वर्ण-बेला !

सारांश यह है कि महादेवी की कृतियों में हमें ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता से प्रचुर गीत पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। उन्होंने अपने गीतों में गेयता का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। इनकी दृष्टि शब्द-संगति पर विशेष रूप से रही है। डॉ० नगेन्द्र ने महादेवी जी के गीतों की गेयता का विश्लेषण करते हुए ठीक ही लिखा है कि, "स्वर-तन्त्रियों में गुम्फित कोमल शब्दावली रेशम पर मोती की भाँति ढुलकती जाती है।"

व्यक्ति तत्व की प्रधानता अर्थात् वैयक्तिकता तथा आत्माभिव्यक्ति—अन्य अनेक समीक्षकों के अनुसार महादेवी जी गीतों में व्यक्ति तत्व की प्रधानता देती हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने तो आत्माभिव्यक्ति को गीत-काव्य की सच्ची अभिव्यंजना माना है। उनके अधिकांश गीत में आत्म-निवेदन ही झलकता है :

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ;
× × ×
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ।
जान लो यह मिलन एकाकी विरह में दुकेला,
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।
ज्वार की तरणी बना मैं इस प्रलय का पार पा लूँ !
आज दीपक राग गा लूँ।

कुछ आलोचकों ने इनके गीतों में सामंजस्य स्थापित करते हुए ठीक ही कहा है कि "'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'दीपशिखा' आदि स्फुट गीतों के संग्रह मात्र नहीं हैं, वरन् इसमें कवियत्री की जीवन व्यथा की एकतानता है। 'नीहार' के उल्लास, 'नीरजा' के विषाद और 'दीपशिखा' के अकम्प विश्वास को देखकर यह कल्पना निराधार नहीं कही जा सकती कि इनके गीतों में इनका व्यक्तित्व पूर्णतः मुखरित हुआ है। व्यक्तित्व-विकास के अनुरूप अभिव्यक्ति के स्वर भी बदलते गये हैं।"

भाव-प्रवणता एवं अन्तःस्फूर्ति—गीत भावावेश की सहज अभिव्यक्ति होता है। अतएव उसमें भाव-प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक

है। अतएव उसमें भाव-प्रवणता एवं अन्तः स्फूर्ति का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक

होता है। महादेवी जी के आरम्भिक गीतों में भाव-प्रवणता और अन्तः स्फूर्ति दोनों का ही समावेश दिखाई देता है।

उनके कई गीत ऐसे हैं जिन्हें बार-बार दोहराने पर भी मन तृप्त नहीं हो पाता है। यथा :

गूँजती क्यों प्राण-वंशी ?
शून्यता तेरे हृदय की
आज किसकी साँस भरती ?
प्यास को वरदान करती,
स्वर लहरियों में बिखरती
आज मूक अभाव किसने कर दिया लयवान वंशी ?

महादेवी जी के गीत विश्लेषण-सापेक्ष बन गये हैं। यही कारण है कि आगे चलकर गीतों में चिन्तन की प्रधानता होने के कारण भाव-प्रवणता तत्व क्षीण हो गया है। प्रारम्भ के गीतों में निश्चित रूप से भाव-प्रवणता का तत्व प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है :

कैसे कहती हो सपना है अलि ! उस मूक मिलन की बात,
भरे हुए अब तक फूलों में उनके आँसू मेरे हास।

जैसा कि महादेवी जी ने स्वयं 'दीपशिखा' की भूमिका में लिखा है कि, "मेरे गीत आध्यात्मिकता के अमूर्त आकाश के नीचे लोक गीतों की धरती पर पले हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि एक ओर तो उनके गीतों की आधार भूमि आध्यात्मिक है और दूसरी ओर उन गीतों में लोक-गीतों की-सी लय तथा भाव-प्रवणता है।

संक्षिप्तता—भावना जब घनीभूत हो उठती है, तब रचना गेय हो जाती है और गीति-काव्य की सृष्टि होती है। अनावश्यक विस्तार की प्रवृत्ति से बचने पर ही गीतों में स्वाभाविक भावान्विति का सफल संयोजन होता है। महादेवी जी ने सर्वत्र इस तथ्य का ध्यान रखा है और अपनी रचना में कहीं भी आवश्यक विस्तार नहीं आने दिया है। उनका कोई भी गीत अनावश्यक विस्तार अथवा पुनरावृत्ति के कारण बोझिल नहीं बन पाया है। कवियत्री की दृष्टि सदैव विषय की मूल चेतना पर ही बनी रहती है। इस कारण उनके प्रत्येक गीत में भाव-ऐक्यता के दर्शन होते हैं। यथा :

प्राण पिक, प्रिय नाम रे कह !
मैं मिटी निस्सीम प्रिय में !
बह गया बँध लघु हृदय में
अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह

सहज अलंकृत शैली—सहज भावों की सहज अभिव्यक्ति के लिए सहज तथा

अलंकृत शैली का होना आवश्यक है। यही कारण है कि गीत में एक ओर यदि अवरुद्ध भाव-प्रवाह की आवश्यकता है तो दूसरी ओर उसमें सजावट आदि से दूर प्रवाहमयी सरल और बोधगम्य शब्दावली भी अनिवार्य है। महादेवी जी के गीतों में कहीं-कहीं अभिधेय अर्थ के अतिरिक्त रूपक से युक्त सांकेतिक अर्थ भी विद्यमान हैं, परन्तु स्वाभाविकता व अर्थ-रहस्य कहीं भी खण्डित नहीं हो पाया है :

कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो !
हो उठी है चंचु छूकर
तीलियाँ भी वेणु सस्वर;
बंदिनी स्पन्दित व्यथा ले
सिहरता जड़ मौन पिंजर

महादेवी जी का काव्य अत्यधिक सांकेतिक है, इसी कारण वह कहीं-कहीं दुरूह-सा लगता है। इस प्रकार इनके गीतों में सहजता का अभाव ही रहता है। इनके गीतों को समझने के लिए मस्तिष्क को झकझोरना पड़ता है।

"गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को मिली, वैसी और किसी को नहीं—महादेवी जी को गीत लिखने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इनकी रचना में अभिव्यक्ति की गहनता, गूढ़ता एवं रहस्यमयता के दर्शन होते हैं। इनकी कलात्मकता का अपना अक्षुण्य स्थान है। इन्होंने गीति-काव्य की समृद्धि में अपना विशेष योग प्रदान किया है। उनके गीत प्रगीतत्व से पूर्ण हैं तथा उनमें काव्य-कला का मनोहर सौष्ठव समाविष्ट है।"

प्रश्न १३—महादेवी के काव्य में प्राप्त वेदना के स्वरूप को उपयुक्त उद्धरणों सहित स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रश्न १४—"महादेवी की वेदना हिन्दी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट निधि है।" महादेवी वर्मा की वेदना के प्रेरक तत्वों का विलेश्षण प्रस्तुत करते हुए उक्त कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

अथवा

प्रश्न १५—"महादेवी वर्मा का काव्य वेदना का, वेदना के बहुरूपों का काव्य है।" समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १६—"प्रेम का जीवन पीड़ा का जीवन है।"—इस कथन को दृष्टि में रखते हुए महादेवी वर्मा के दुःखवाद का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न १७—"महादेवी करुणा की कवियत्री हैं।"—इस मत की पुष्टि कीजिए।

अथवा

प्रश्न १८—सिद्ध कीजिए कि महादेवी ने दुःखवाद को अत्यन्त मधुर और कोमल शब्दों में व्यक्त किया है।

अथवा

प्रश्न १९—"महादेवी के काव्य में वेदना भाव"—शीर्षक पर एक निबन्ध लिखिए।

अथवा

प्रश्न २०—सोदाहरण स्पष्ट कीजिए कि, "महादेवी को वेदना भाव विशेष प्रिय रहा है और उन्होंने अपने काव्य में अवसरानुकूल विविध रूप में उसे अभिव्यक्ति प्रदान की है।"

उत्तर—महादेवी जी ने 'यामा' की भूमिका में अपनी वेदनानुभूति के दो स्वरूप बतलाए हैं—"एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से अविछिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।" उन्होंने अपनी वेदना' के कारण पर प्रकाश डालते हुए यह भी इंगित किया है कि दुःख की व्यंजना हृदय में उठती हुई स्वाभाविक सहृदयता और करुणा के व्यापक प्रभाव के कारण है।

महादेवी वर्मा की 'वेदना' के प्रेरक-तत्व—महादेवी जी की वेदना के प्रेरक तत्वों के सम्बन्ध में आलोचकों में पर्याप्त मतभेद है। इन आलोचकों के सामान्यतः दो वर्ग मुख्य हैं - श्री विश्वम्भर मानव, श्रीमती शचीरानी गुर्टू, आचार्य विनयमोहन शर्मा, डॉ० नगेन्द्र वेदना को लौकिक मानते हैं। वेदना को आध्यात्मिक मानने वालों में मुख्य हैं—श्री व्यथित हृदय, गंगाप्रसाद पाण्डेय, सन्तकुमार वर्मा तथा श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु।

श्री मानव ने महादेवी जी की वेदनाभूति में अन्तर के व्यक्तिगत जीवन के प्रभाव की झलक देखी है। वह लिखते हैं कि "इनकी वेदना रहस्यवादी जीवन की वह पीड़ा है जो सहज नहीं, बल्कि बौद्धिक है और जिसकी पृष्ठभूमि में निर्दयता से मन के सपनों के भजने का कटुतम क्रन्दन है।"

श्रीमती शचीरानी गुर्टू ने इनकी वेदनानुभूति का स्रोत खोजने में उनके असफल वैवाहिक जीवन और युवती नारी के हृदय की रंगीन कल्पनाओं की विफलता को ही मुख्य रूप के कारण माना है। यथा, "यौवन के तूफानी" क्षणों में जब उनका (महादेवी का) अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ-पट स्नेह-ज्योत्स्ना छिटकी पड़ रही थी, तभी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिलखिलाहट पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ सी

अंकित हो गईं। आत्म-संयम का व्रत लिए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नान होकर बहुत कुछ निखर तो गई, परन्तु उनके हठीले मन का उससे कभी लगाव न छूटा और वे उसे निरन्तर कलेजे से चिपटाये रखने की मानो हठ पकड़ बैठीं।"

आचार्य विजयमोहन शर्मा ने महादेवी जी की वेदनाभूति की व्याख्या इस प्रकार की है—"महादेवी का काव्य व्यक्तिगत मानसिक संघर्ष, अभाव और बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित है। दुःख को उन्होने 'मधुर भाव' के रूप में स्वीकार किया है। उसमें उनकी प्रेयसी की भूमिका है, जो परोक्ष प्रिय के लिए अहर्निशि आतुर होती रहती है। प्रिय और प्रियतम की इस कल्पित आँखमिचौनी से उनका काव्य क्रीड़ामयी हो उठा है। वे कहती हैं :

प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

डॉ० नगेन्द्र ने महादेवी जी की वेदना को अतृप्त वासना की अभिव्यक्ति माना है। वह लिखते हैं कि—"सामयिक परिस्थितियों के अनुरोध से जीवन से रस और सांस न ग्रहण कर सकने के कारण यह एक तो वांछित शक्ति का संचय नहीं कर पायीं दूसरे एकान्त अन्तर्मुखी हो गईं। इस प्रकार उनके आविर्भाव में मानसिक दमन और अतृप्तियों का बहुत बड़ा योग है, इसको जैसे भुलाया जा सकता है ?"

इन मन्तव्यों का निष्कर्ष यही है कि महादेवी जी को 'वेदना' पर वैवाहिक जीवन की असफलता की गहरी छाया है। उनकी वेदना का मूल कारण तो भौतिक ही है, जो उदात्त बनकर रहस्यवादी या अलौकिक बन गया है।"

श्री 'व्यथित हृदय' आदि कतिपय आलोचकों के मतानुसार "उनकी वेदना आध्यात्मिक है, सत्य है। × × वे प्रकृति और सम्पूर्ण जगत को अपने से दूर नहीं देखती है।"

श्री गंगाप्रसाद पांडेय तथा सन्तकुमार वर्मा महादेवी जी के व्यक्तित्व को, आध्यात्मिकता की भूमिका पर व्यवत साधना का जीवन मानते हैं, जिसका संचारी रूप सेवा का ठोस जीवन है। इसके अनुसार, "उन्होंने महादेवी" के जीवन में दुःखवाद को पूर्णरूप से समझने की चेष्टा की है, क्योंकि उनका विश्वास है कि दुःख द्वारा अपने जीवन को ही नहीं वरन् मानवता को सुखी और समृद्ध बनाया जा सकता है :

चिर ध्येय यही जलने का
ठण्डी विभूति बन जाना
है पीड़ा की सीमा यह
दुःख का चिर सुख हो जाना

श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु ने भी महादेवी जी की आध्यात्मिक साधना को उनके वास्तविक जीवन की उदात्त अभिव्यक्ति ही माना है।

कुछ आलोचकों ने महादेवी जी की करुणा का रहस्य उनके नारी स्वभाव में ही ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। डॉ॰ रामविलास शर्मा ने महादेवी जी के पीड़ावाद को पूर्ण भौतिक और नारी जीवन की परिस्थितियों से सम्बन्धित बताया है। उनके विचार से आज की नारी सामन्ती व्यवस्था के कारण पीड़ित है।

अपने दुःख एवं वेदना भाव के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा के विचार—महादेवी वर्मा बचपन से ही विशेष कल्पनाशील रही हैं। अपनी इस कल्पनाशील प्रवृत्ति का वर्णन कवियत्री ने 'यामा' की भूमिका में बड़ी कवित्वपूर्ण शैली में किया है—"मेरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा ही हाथ बाँधकर चलता रहा है, इसी से जब रात-दिन होने का प्राकृतिक कारण मुझे ज्ञात न था तभी सन्ध्या से रात तक बदलने वाले आकाश के रंगों में मुझे परियों का दर्शन होने लगा था, × × × मेरी रंगीन कल्पना के जो रंग शब्दों में न समाकर छलक पड़े या जिनकी शब्दों में अभिव्यक्ति मुझे पूर्ण रूप से सन्तोष न दे सकी, वे ही तूलिका के आश्रित हो सके हैं।"

स्पष्ट है कि महादेवी जी की कीवता में उनकी आत्मा का सौन्दर्य ही अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि उनकी कविता में अभिव्यक्त वेदनानुभूति भी उनकी आत्मा का सौन्दर्य ही है—किसी बाह्य प्रभाव की अभिव्यक्ति नहीं है। कवियत्री ने अपनी वेदनानुभूति के विषय में जो विचार प्रकट किए हैं उन पर इसी सन्दर्भ में विचार किया जाना चाहिए। यथा—"सुख-दुःख के धूप छाहीं डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। × × संसार जिसे साधारणतः दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है. उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगती है।

इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके सारे संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। इस दुःख के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती हुई वह कहती हैं कि "दुःख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वरक बनाए बिना नहीं गिर सकता। × × विश्व-जीवन में अपने जीवन को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"

मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।

× × "इससे मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा।"

× × × "व्यक्तिगत सुख विश्व-वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख घुलकर जीवन को अमरत्व।"

(यामा की भूमिका)

उपर्युक्त कथन के विश्लेषण स्वरूप महादेवी जी ने दुःखवाद के सम्बन्ध में हमारे सम्मुख निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं :

(१) महादेवी जी का दुःख भौतिक प्रभावों के कारण नहीं है।

(२) उनकी वेदना में चिरन्तन प्रिय के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन का भाव निहित है जो उनकी आत्मा का सौन्दर्य है।

(३) उनकी वेदना संसार के दुःख-भार को हल्का करने में सहायक है।

(४) बुद्ध के दुःखवादी जीवन-दर्शन के प्रति उनके मन में भक्तिमय अनुराग है।

(५) इस दुःख और वेदना के जीवन में सुख के स्वप्न भी हैं।

(६) सभी प्रकार के प्रभावों से समन्वित उनका दुःखवाद एक विशिष्ट स्थान रखता है।

महादेवी की वेदना का स्वरूप विषादकारी न होकर आह्लादकारी है। उन्हें करुणा-स्नात उजले उल्लासमय दुःख की अपेक्षा है, निराशाजनित मलिन दुःख की नहीं :

शून्य मन्दिर में बनूंगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी,
अर्चना हो शूल भोले, सार दृगजल अर्घ्य होले,
आज करुणा स्नात उजला, दुःख हो मेरा पुजारी।

इस प्रकार महादेवी की काव्य-कृतियों में वेदना का स्वाभाविक विकास उपलब्ध होता है।

महादेवी जी के दुःख का वह रूप प्रिय है जो सहानुभूति और समता की वृद्धि करके आत्मा का विस्तार करता है। अद्वैतवादी प्रभाव की भूमिका में दुःखवादी आत्मप्रतीत दृष्टव्य है :

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खींच चलाते अस्थिर कर, कर
कौतूहल के बाण

महादेवी जी की वेदनाभूति के पीछे इनका सेवा-संकल्प लेकर चलने वाला जीवन और उसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ भी हैं। एक ओर तो कवयत्री सबके दुःख को अपना दुःख समझकर करुणा पूरित हो जाती हैं और दूसरी ओर अपनी साधना के प्रति पूर्णतः आश्वस्त दिखाई देती हैं।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि महादेवी वर्मा की वेदनानुभूति बहुत ही व्यापक है और वह जीवन की सक्रियता प्रदान करने वाली ठोस सेवा का संकल्प लिए हुए है। महादेवी जी की वेदनानुभूति का विकास जीवन की यथार्थता को लेकर और युगानुकूल प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। इनकी वेदना के साहित्य में साधना, संकल्प और लोक-कल्याण की भावना मुखरित हुई है।

महादेवी की वेदनानुभूति मे विविधता और व्यापकता दोनों ही हैं। मर्मस्पर्शिता की दृष्टि से उनका भाव कवीन्द्र रवीन्द्र के वेदना-भाव के सर्वाधिक निकट है। छायावाद कवियों में वेदनानुभूति की दृष्टि से वह जयशंकर प्रसाद के सर्वाधिक निकट हैं।

उनकी वेदनानुभूति में यत्र-यत्र उस प्रेमाभक्ति का संकेत मिलता है, जो रागानुगा-भक्ति की प्रथम अवस्था है।

डॉ० कुमार विमल के शब्दों में "वेदना महादेवी के काव्य का अर्थ है और करुणा उसकी इति। अतः करुणा ही इनके दुःखवाद का मेरुदण्ड है तथा इनकी वेदना का चरम रूप भी।"

महादेवी जी छायावादी वेदना की सम्राज्ञी हैं।

दिनकर

जीवन-परिचय

प्रश्न १—'दिनकर जी का संक्षिप्त जीवन-परिचय देते हुए निम्न कथन की पुष्टि कीजिए ।

"कवि का व्यक्तित्व और जीवन की परिस्थितियाँ ही उसके काव्य का निर्माण करती हैं ।"

उत्तर—जन्म और परिवार—दिनकर जी का जन्म बिहार प्रदेश में सिमरिया ग्राम में एक कृषक परिवार में ३० सितम्बर सन् १९०८ में हुआ था । उनके पिता का नाम रविसिंह और माता का नाम मनरूप देवी है । दिनकर जी के बड़े भाई का नाम श्री बसन्तसिंह और छोटे भाई का नाम सत्यनारायण सिंह है । दिनकर जी को दो वर्ष का ही छोड़कर पिता स्वर्गवासी हुए । भाइयों ने पालन-पोषण किया । दिनकर जी की माँ त्याग और संघर्ष की साक्षात् प्रतिमा थीं । दिनकर जी के व्यक्तित्व के निर्माण में उनकी पत्नी का विशेष योग रहा । श्यामा यथार्थ में सुगृहिणी और पति की सच्ची सहचरी सिद्ध हुई । दिनकर जी के काव्य में नारी-भावना का स्वस्थ्य विकास उनकी पत्नी का आदर्श चरित्र ही है, वह अपने को मिटा-कर दिनकर जी को बनाती रहीं । 'रसवन्ती' की 'मानवती' कविता में दिनकर जी ने अपनी सुखद गृहस्थी का चित्र प्रस्तुत किया है :

तुम सखि-इन्द्रपुरी के तन में सावित्री का मन लाई ।
ताप तप्त मरु में मेरे हित शीत-स्निग्ध जीवन लाई ।।

× × ×

तुम्हें, न जाने, क्या मिलता है लिपटे रहने में पन्नों से ?

दिनकर एक सम्पन्न और सुखी परिवार के गृहपति रहे । १९ वर्ष की आयु में उनके प्रथम पुत्र श्री रामसेवक सिंह का जन्म हुआ । सन् १९३४ में उनकी बड़ी पुत्री विनता तथा सन् १९३६ में छोटे पुत्र श्री केदारनाथ सिंह का जन्म हुआ । उनकी छोटी पुत्री विभा है ।

शिक्षा—गंगा तट पर स्थिति सिमरिया गाँव की प्रकृति ने दिनकर जी को बहुत अधिक प्रभावित किया । दिनकर जी लगभग नित्य ही गंगा पार करके मोकामाघाट के स्कूल जाया करते थे । मध्यावकाश में ही स्कूल से चल पड़ने पर ६ या ७ बजे संध्या को घर पहुँच पाते थे । वर्षा के दिनों में उन्होंने गंगा का सागर

के समान भयानक और ग्रीष्म में रेगिस्तान जैसी मीलों फैली हुई बालू देखी । इस प्रकार दिनकर जी की शिक्षा का प्रारम्भ एक तपस्वी की साधना से कम नहीं है । 'रेणुका' में संकलित 'मिथिला में शरद' शीर्षक कविता में दिनकर जी ने अपनी जन्म-भूमि का वर्णन निम्न प्रकार किया है :

> हे जन्म-भूमि ! शत बार धन्य,
> तुम सा न 'सिमरिया घाट' धन्य
> तेरे खेतों की छवि महान्,
> अनियंत्रित आ उर में अजान,
> भावुकता बन लहराती है,
> फिर उमड़ गीत बन जाती है ।

दिनकर जी ने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की राष्ट्रीय पाठशाला में प्राप्त की । सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होने पर राष्ट्रीय पाठशाला टूट गई । इस राष्ट्रीय पाठशाला की राष्ट्रीय शिक्षा ने दिनकर जी के राष्ट्रीय व्यक्ति के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग दिया । इसके पश्चात् दिनकर जी ने राष्ट्रीय स्कूल से मिडिल और मोकामाघाट के एच० ई० स्कूल से सन् १९२८ में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की । इसके पश्चात् पटना विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की । कविता की ओर दिनकर जी की रुचि आरम्भ में ही थी । वे सादा जीवन और उच्च विचार लेकर चले । राष्ट्रीय कार्यों में बचपन से उनका योग बना रहा ।

व्यवसाय—अर्थाभाव के कारण बी० ए० उत्तीर्ण करने पर दिनकर जी को नौकरी की खोज करनी पड़ी । सन् १९३३ में एक नये हाईस्कूल में प्रधान अध्यापक की नौकरी कर ली, परन्तु यहाँ बहुत दिनों तक आप न रह सके । यहाँ की परिस्थितियों से ऊबकर सन् १९३४ में बिहार सरकार के आधीन सब-रजिस्ट्रार का पद स्वीकार किया । इस पद पर आप सन् १९४३ तक रहे । द्वितीय महासमर के प्रारम्भ होने पर दिनकर जी को मानसिक द्वन्द्व ने घेर लिया । उन जैसा राष्ट्रीयता का नायक सरकार युद्ध-नीति का समर्थन नहीं कर सकता था । सन् १९४३ में आपका तबादिला युद्ध-प्रचार विभाग में कर दिया गया । सन् १९४७ में बिहार-सरकार में प्रचार विभाग के उपनिदेशक और १९५० में मुजफ्फरनगर कालेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष हुए । यह क्रम १९५२ की मार्च तक चलता रहा । ११ मार्च १९५२ को उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दिया और वे राज्यसभा के कांग्रेसी सदस्य हो गये । सन् १९६४ से वे राज्यसभा से त्यागपत्र देकर भागलपुर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर बने । परन्तु यहाँ भी आपका मन नहीं लगा । वहाँ से त्यागपत्र देकर आप भारत सरकार के स्वराज्य-मन्त्रालय में हिन्दी-सलाहकार के रूप में रहे । २३ अप्रैल सन् १९७४ को आपकी मृत्यु से हिन्दी-काव्य-जगत को जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति संभव नहीं है ।

व्यक्तित्व—दिनकर जी का व्यक्तित्व आत्म-विश्वास, दृढ़ता, साहित्यकार की अनुभूति-प्रवणता, दार्शनिक तत्व-चिन्तन तथा ओज से युक्त है। उनके बाह्य व्यक्तित्व में क्षत्रियों का तेज, ब्राह्मण का अहं, परशुराम की गर्जना और कालिदास की कलात्मकता है। उनके इसी व्यक्तित्व के कारण निराला जी उन्हें 'ईरानी' कहा करते थे। गौर-वर्ण, उन्नत मस्तक, तेजपूर्ण नेत्र, ऊँचे कद और लम्बी पतली उँगलियों से युक्त जब वे कविता पाठ करते, ऐसा लगता था, मानो परशुराम गरज रहे हों। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दिनकर जी पार्लियामेंट गये। परन्तु 'प्रथम दर्शन के गहरे आतंक के कारण उनके साहित्य के प्रशसकों की भी उनके निकट जाने की हिम्मत मुश्किल से ही पड़ती थी। दिनकर जी का गर्वोन्नत मस्तिष्क बोलता हुआ जान पड़ता था। कुरुक्षेत्र के भीष्म, रश्मिरथी के कर्ण और परशुराम की प्रतीक्षा के परशुराम दिनकर के व्यक्तित्व के ही अंश हैं।

विदेशों में भ्रमण—दिनकर जी ने सन् १९४५ में वारसा (पोलैण्ड) के अन्तर्राष्ट्रीय काव्य-समारोह में भाग लिया। वहाँ जनता ने आपका जोरदार स्वागत किया। पोलैण्ड से लौटते हुए वे इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड और मिश्र भी गये। सन् १९५७ ई० में दिनकर जी ने चीन के लेखक-संघ के निमन्त्रण पर चीन का भ्रमण किया। वहाँ अनेक नगरों में गये। अनेक कवियों, उपन्यासकारों ओर नाटककारों से भेंट की। इसी दौरान उन्होंने वर्मा और थाइलैण्ड के साहित्यिकारों से भेंट की। सन् १९६१ में दिनकर जी ने विविध भारतीय भाषाओं के साहित्यक प्रतिनिधि-मण्डल के साथ रूस का भ्रमण किया। दिनकर जी की अनेक कविताओं का अनुवाद रूसी भाषा में हो चुका है।

साहित्यिक सम्मान—दिनकर जी को सन् १९५९ में राष्ट्रपति ने 'पद्म-भूषण' की उपाधि प्रदान की। सन् १९५३ में उनका ग्रन्थ 'संस्कृत के चार अध्याय' पर साहित्य अकादमी ने राष्ट्रीय पुरस्कार दिया। सन् १९३२ में भागलपुर विश्व-विद्यालय ने आपको डॉक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि दी, सन् १९४९ में साहित्य-संसद प्रयाग ने आपके कुरुक्षेत्र पर पुरस्कार दिया। इस अवसर पर मैथिलीशरण गुप्त के सभापतित्व में पन्त, महादेवी वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा आदि ने आपका अभिनन्दन किया। इसी अवसर पर इलाहाबाद की 'परिमाल' की ओर से आपको मानपत्र दिया गया। दिनकर जी को समय-समय पर भारत सरकार, उत्तर प्रदेक सरकार, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, साहित्यकार संसद इलाहाबाद तथा बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद पटना द्वारा अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए। 'नागरी प्रचा-रणी सभा' का द्विवेदी-पदक आपको दो वार मिला।

दिनकर जी की कृतियाँ विदेशों में भी सम्मानित हुईं। जापान के अंग्रेजी पत्र "Orent West' में आपकी 'कलिंग विजय' का अनुवाद प्रकाशित हुआ। 'United Asia" में उनकी आठ कविताओं का अनुवाद छपा। रूस के 'विदेशी-साहित्य ग्र थ

माला' के अन्तर्गत उनकी कविताओं के संकलन का रूसी अनुवाद सन् १९६३ से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। 'कुरुक्षेत्र' का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

गांधीजी का प्रभाव—३२ वर्ष की आयु में गाँव की पाठशाला से ही दिनकर के हृदय में राष्ट्रीयता के अंकुर फूटने लगे थे। सन् १९३० में नमक-सत्याग्रह में उन्होंने ३-४ माह काम भी किया। आप राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कवितायें लिखने लगे। सन् १९४७ से पूर्व तक दिनकर ने गांधीजी को कविता में लाने का प्रयास नहीं किया। गांधीजी की शुद्ध अहिंसा को दिनकर जी ने मान्यता नहीं दी। जब सन् १९३७ में कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल बना, तब दिनकर जी ने 'अनल किरीटी' नामक कविता लिखी :

ओ मदहोष बुरा फल है, सूरों का शोणित पीने का।
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन-गिन मोल पसीने का॥

राजनीति में दिनकर जी वीरता और बाहुबल रहित अहिंसा को महत्व नहीं देते। उनकी मान्यता है कि शक्ति के बिना देश की रक्षा नहीं हो सकती।

दिनकर जी के व्यक्तित्व और परिस्थितियों का उनके काव्य पर प्रभाव—कविता लिखने की प्रेरणा दिनकर जी को गाँव की रामलीला, रामायण पाठ और नौटंकियों से मिली। बचपन में उनके घर के दरबाजे पर लगभग नित्य ही रामायण का पाठ होता था। आठ-दस वर्ष की उम्र में ही दिनकर जी नाटक में प्रयुक्त गीतों की तर्जों पर नये गीत लिख लेते थे। दिनकर जी पत्र-पत्रिकायें बराबर पढ़ते रहते। छायावादी कवितायें उनको रुचिकर नहीं लगती थीं। छायावाद के प्रति निश्चय रूप में श्रद्धा कभी भी उनके हृदय में जागृत न हो पाई। उनकी रुचिगत आत्मीयता भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र, बच्चन, नेपाली और नागार्जुन से अधिक रही। कविता लिखने के लिए दिनकर जी ने छन्द, रस अलंकार और व्याकरण का कभी अभ्यास नहीं किया। यही कारण है कि 'रेणुका' और 'हुंकार' में आलोचकों को शिल्प-तत्व का अभाव लगा। अपनी समस्त काव्य-प्रेरणा और पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में दिनकर जी ने लिखा है :

"दोनों को हम जिस रूप में प्राप्त करते हैं, उन्हें जिस शीतलता या ताप के साथ जिस धूमिलता या स्पष्टता के साथ अथवा जिस उद्वेलित या संयमित मनोदशा में ग्रहण करते हैं, वही मनोदशा हमारी शैली बन जाती है और चूंकि मेरी कल्पना रस्से के समान इंच-इंच तनी होती थी, इसलिए शब्द भी मुझे वे ही पसन्द आते थे, जो इस तनाव को अभिव्यक्त कर सकें। कविता लिखने के समय मेरी मनोवृत्ति कैसी होती थी, इसका कुछ अनुमान सहृदय इस बात से लगा सकते हैं कि प्रायः ही रचना के समय मुझमें सात्विक भाव (रोमांच, अश्रु, वैवर्ण्य, स्वेत आदि) जाग उठते थे और एक रचना पूरी करते-करते उनकी नई-नई आकृतियाँ हो जाती थीं

और यह भी सत्य है कि मेरी जिन कविताओं से पाठक और श्रोता सबसे अधिक आन्दोलित हुए, वे ठीक, वे ही कवितायें हैं, जिनकी रचना के समय मैंने सात्विक भावों का सबसे अधिक अनुभव किया।"

दिनकर जी का विश्वास है कि 'उर्वशी' के कवि की अपेक्षा 'कुरुक्षेत्र' के कवि के रूप में वे अधिक याद किये जायेंगे। चीन के आक्रमण के पश्चात 'उर्वशी' सुनना ही उन्होंने बन्द कर दिया था। अब वह 'परशुराम की प्रतीक्षा' ही को समय की मांग समझने लगे। उनका कहना है—"मेरी प्रिय रचना अभी लिखी ही नहीं गई—जब मैं 'रिल्के' के भाव को तुलसी की भाषा में लिख सकूँगा तभी अपने को सिद्ध कवि मान सकूंगा।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिनकर जी का महान कवि विषम परिस्थितियों और संघर्षों से होकर उभरा है। सरकारी नौकरी की विवशता और गुलामी को झेलते हुए भी दिनकर जी ने राष्ट्रीयता का जो उद्घोष किया, अन्यत्र नहीं मिलेगा। उनकी कविता उनके व्यक्ति और परिस्थितियों का ही विकास है। भारत के राष्ट्रीय कवियों में दिनकर जी का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

काव्य की विशेषतायें

प्रश्न २—दिनकर जी के काव्य की विशेषतायें संक्षेप में बतलाइए।

उत्तर—दिनकर जी हिन्दी के क्रान्तिदर्शी कवि हैं। उनकी कविता हृदय को झकझोर डालती है। उनके काव्य में वर्तमान भारत की दलित आत्मा जागृत हो उठी है, उनकी रचनाओं से हिन्दी को अपार शक्ति मिली है।

ओज गुण की प्रधानता—दिनकर जी की कविता में माधुर्य की अपेक्षा ओज की प्रधानता है। उनकी रचनाओं का ओज गुण प्राणदायिनी शक्ति भर देता है। 'हुंकार' और 'सामधेनी' में दिनकर की ओजपूर्ण कविताओं का संकलन है। 'द्वन्द्वगीत' संग्रह की कवितायें दार्शनिक चिन्तन तथा राग-विराग के द्वन्द्व का चित्रण सामने उपस्थित करती हैं। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर जी ने एक दार्शनिक कवि की तरह बड़े कौशल से अतीत की पृष्ठभूमि पर वर्तमान को चित्रित किया है। इस रचना में भाषा-प्रवाह, भावों में स्पष्टता और विचारों में नये युग का प्रतिनिधित्व हुआ है। युद्ध और शान्ति, हिंसा और अहिंसा, काव्य और तर्क, अनुभूति और विवेक, बाहुबल और आत्मबल, प्रवृत्ति और निवृत्ति, हृदय और मस्तिष्क की जो विवेचना इस काव्य में हुई है, उसमें भारतीय संस्कृति, दर्शन और समाज का सुन्दर समन्वय हुआ है।

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता और जागरण का स्वर—दिनकर जी के काव्य में देशव्यापी राष्ट्रीयता और जागरण का स्वर मुखरित हुआ है। उसमें भारत के विगत स्वर्ण-युग की सुनहली, किन्तु ममतामयी करुण मूर्ति सजीव हो उठी है तथा

वर्तमान में लौह-शृंखला में जकड़ी हुई आर्य-संस्कृति की पतितावस्था के प्रति असन्तोष व्याप्त हुआ है । इसी असन्तोष के कारण वे क्रान्ति भी चाहने लगते हैं :

क्रान्ति-धात्रि ? जाग उठे
आडम्बर में आग लगा दे ।
पतन, पाप, पाखण्ड जलें,
जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे ॥

दिनकर जी मुख्यतः जन-चेतना के गायक हैं । भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व आपने काव्य के द्वारा पूरी शक्ति से ब्रिटिश साम्राज्यशाही का विरोध किया और आप निरन्तर क्रान्ति का आह्वान करते रहे । स्वराज्य मिलने के पश्चात् आशा के अनुरूप देश की सामाजिक प्रगति न होते देखकर आपके हृदय में रह-रहकर आग भभक उठती है । वे अनुभव करते हैं कि अभी जनता का स्वराज्य नहीं आया है और इसमें संघर्ष की आवश्यकता है । देश की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार जन-भावना का सदैव ही दिनकर जी को ध्यान रहा है । वे राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के सजग प्रहरी रहे हैं । जन-भावनाओं को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करना दिनकर जी के काव्य की प्रमुख विशेषता है ।

दिनकर जी की रचनायें दो भागों में विभाजित की जा सकती हैं । उनकी रचनाओं का अधिकांश भाग राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है । इन रचनाओं में क्रांति का उद्घोष है, हृदय की ज्वाला है और दासता की वेदना के प्रति तीव्र विद्रोह है । पीड़ित मानवता और दलित समाज के प्रति दिनकर जी की सहानुभूति प्रत्येक पंक्ति में फूट पड़ी है । राष्ट्रीय भावधारा को अपने युग के अनुसार चित्रित करने में गुप्त जी के पश्चात् दिनकर जी का ही स्थान है ।

दूसरे प्रकार की रचना में विश्व-कल्याण की महती भावना की अभिव्यक्ति हुई है । दिनकर जी की इस श्रेणी की रचनायें विश्व-कल्याण की पोषक हैं । दिनकर जी विश्व में क्रान्ति द्वारा शान्ति चाहते हैं । विश्व की विषम परिस्थितियाँ उनको उसी प्रकार उद्वेलित करती हैं, जिस प्रकार देश की विषम परिस्थितियाँ उनको चैन नहीं लेने देतीं ।

विचारों की स्पष्टता—विचारों की स्पष्टता दिनकर जी के काव्य की मूलभूत विशेषता है । उनका काव्य अवचेतन मन की उलझी हुई संवेदना का वाहक कहीं नहीं बनता । उन्होंने अपने काव्य में सौंदर्य और उपयोगिता का सफल समन्वय किया है । वे कहते हैं :

"सुन्दर काव्य का श्रेय है, परन्तु उपयोगी होना भी उसका श्रेय है । इसलिए बिना दोनों का ग्रन्थि-बन्धन हुए सत्काव्य की सृष्टि-सम्भव नहीं ।"

यही कारण है कि दिनकर जी का समस्त काव्य सोद्देश्य है । उसमें प्रसाद और ओज गुण का सुन्दर समन्वय हुआ है । दिनकर जी एक विचारक कवि हैं ।

'कुरुक्षेत्र' में उनकी विचारशीलता के दर्शन होते हैं। इसमें बुद्धि और हृदय से सन्तुलित विकास पर उन्होंने बल दिया है। आध्यात्म और विज्ञान के समन्वय पर बल देते हुए 'साहित्य का नूतन ध्येय' निबन्ध में वे लिखते हैं।

"संसार उस बिन्दु पर पहुंच रहा है, जहाँ जड़ से चेतन की उत्पत्ति होगी, जहाँ भौतिकता से आध्यात्मक किरणें फूटेंगी और जिस युग के नेता आँकड़े एकत्र करने वाले वैज्ञानिक नहीं, गांधी या अरविन्द अथवा गांधी और अरविन्द होंगे।"

दिनकर जी की 'सीपि और शंख' रचना समस्त विश्व की आधुनिक काव्य चेतना का निचोड़ है। इस दृष्टि से दिनकर जी की काव्यधारा में एक नया मोड़ आता है। रहस्यात्मक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए संकेतों की भाषा का प्रयोग करने की ओर मुड़ते हैं।

नारी-भावना—दिनकर जी ने नारी को भी अपने काव्य में स्थान दिया है और उसके रूप-आकर्षण, महिमा एव रहस्यात्मकता का गान किया है।

प्रकृति-प्रेम—दिनकर जी के स्वभाव में प्रकृति के प्रति एक अबोध आकर्षण है। वे समस्त प्राकृतिक व्यापारों में एक आत्मीयता का अनुभव करते हैं। इसलिए जहाँ भी उन्होंने प्रकृति-वर्णन किया है, वह मार्मिक और सजीव है। उसके यथार्थ-वर्णन के कारण उसमें गीतात्मकता की अपेक्षा कथात्मकता अधिक है।

भाषा-शैली—दिनकर जी की काव्य-भाषा विशुद्ध खड़ी बोली है। तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ी सफलता के साथ हुआ है। शब्द-योजना पुष्ट और भावानुकूल है। भावों की शिथिलता भाषा में नहीं मिलती। उनकी भाषा-शैली पूर्ण रूप से विचारों और भावों को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। प्रत्येक शब्द विचार और भावों का वाहक बन गया है। दिनकर जी के काव्य में कहीं भी क्लिष्ट शब्द योजना नहीं मिलेगी। भावों के अनुकूल ही उनकी भाषा सरल, सुबोध, सुलझी हुई एवं प्रांजल है। शब्दों की तोड़-मरोड़ और व्याकरण की अशुद्धियाँ नहीं मिलती। शाब्दिक चमत्कार तथा साहित्य-प्रदर्शन के चक्कर में दिनकर जी कहीं नहीं पड़े। लाक्षणिक तथा व्यंजक शब्दों का प्रयोग भी बहुत कम उन्होंने किया है। इसलिए उनकी शैली अत्यन्त परमार्जित और प्रौढ़ है। सरलता और सुबोधता ही भाषा का अपना सौंदर्य और विशेषता है। दिनकर जी की छन्द-योजना में नवीनता है तथा अलंकारों के प्रयोग में भी स्वाभाविकता है। उनकी समस्त रचनाओं में भाव और भाषा का सामंजस्य मिलता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिनकर जी युग प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी भाषा में ओज और भावों में क्रांति की ज्वाला है। अतीत के चित्रों को अपनी भावना के अनुसार सजाने में वर्तमान युग का कोई अन्य कवि उनकी समता नहीं कर सकता। उनकी प्रत्येक पंक्ति में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का उद्वेलन है। उनमें जन-जीवन के जागरण का स्वर है।

प्रश्न ३—दिनकर जी की काव्य-भाषा की विशेषताओं पर सारगर्भित निबन्ध लिखिए ।

उत्तर—अभिव्यक्ति की स्वच्छता—अभिव्यक्ति की स्वच्छता दिनकर जी की भाषा की प्रमुख विशेषता है । सर्वत्र सहज, सार्थक और भावानुकूल शब्दों का प्रयोग हुआ है । 'हुंकार' में ज्वाला बरसाने, 'रसवन्ती में रस की अभिव्यक्ति करने, 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी में अन्तर्मन्थन को व्यक्त करने में उनकी भाषा में समान रूप से गतिमयता, सरसता और गम्भीरता बनी रहती है । दिनकर जी अपने भावों को शब्दों में भर देने वाले कुशल शिल्पी हैं । उनका शब्द-कोष बहुत व्यापक है । उनकी भाषा में शब्द भाव-गर्भित, अर्थ गर्भित और चित्रमय होते हैं ।

लाक्षणिकता—लाक्षणिकता भाषा की रमणीयता को बढ़ा देती है । दिनकर जी के लाक्षणिक शब्दों में दुरुह कल्पना का प्रयोग नहीं होता । संस्कृत शब्दों में प्रायः लाक्षणिकता मिलती है । कहीं-कहीं पद, भाव, चित्र एवं वातावरण के गुंफन में प्रचलित शब्दों की अपेक्षा दुरुह शब्दों का भी प्रयोग हो जाता है । 'आलोक धन्वा' से एक उदाहरण लीजिए :

ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर मण्डल का
मेरा शिखण्ड अरुणाभ किरीट अनल का

भावानुकूल होने के कारण तत्सम शब्द प्रेषणीयता में बाधक न होकर साधक ही होते हैं । तत्सम शब्दों का प्रयोग 'उर्वशी' में देखा जा सकता है । प्रतिपाद्य विषय की गम्भीरता, गरिमा और विशदता के निर्वाह के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो गया है। इससे अभिव्यक्ति में भव्यता आ गई है ।

कुछ तत्सम शब्द—'भावप्रद,' 'अस्थिपुंज,' 'तमिश्र,' 'कृशानु,' 'म्रियमाण,' 'ज्योतिर्धर,' 'विश्रांत,' कस्मै देवाय,' 'चक्षु श्रवा,' 'चक्षुस्विनी,' 'उत्क्रान्ति,' 'खाग्रास' आदि ।

'उर्वशी' की भाषा के अतिरिक्त दिनकर जी के अन्य काव्यों की भाषा तत्सम नहीं कही जा सकती । दिनकर जी द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्दों के प्रयोग में औचित्य और सन्तुलन का निर्वाह हुआ है । ये शब्द उनके प्रतिपाद्य को गम्भीरता और भव्यता के प्रतिपादन में सहायक हुए हैं ।

तत्सम तथा देशज शब्द—तत्सम और देशज शब्दों के द्वारा दिनकर जी ने अपनी काव्य-भाषा को सहज-स्वाभाविक बना दिया है । 'निठुर,' 'सपना ब्याह,' 'सुहाग,' 'नैन,' 'पिता,' 'जैसे शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा जीवन के निकट आ गई है । इसके द्वारा रमणीयता और स्वाभाविकता का भी समावेश हुआ है :

माँ की ठीक दुलार पिता की ओ लाजवन्ती भोली ।
ले जायगी हिया को मणि को अभी पिया की डोली ।

स्थानीय शब्दों के प्रयोग में दिनकर जी बड़े सिद्धहस्त हैं । कहीं-कहीं कविता की पूरी पंक्तियों में ही स्थानीय शब्दों का प्रयोग मिलता है :

भैया ! लिख दे एक कमल खत मो बालम के जोग ।
चारो कोने खेम कुसल माँझे ठाँ तोर वियोग
× × ×
चौपालों में बैठ कृषक गाते कहुँ आल्हा बनवारी ।

विदेशी शब्द—दिनकर जी की रचनाओं में उर्दू, फारसी, अँग्रेजी आदि शब्दों के प्रयोग प्रचुरता से मिल जाते हैं । इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में गत्यात्मकता आ गई है । हिन्दी-उर्दू के गंगा-यमुना रूप के उदाहरण 'द्वन्द्वगीत' तथा अन्य सामाजिक यथार्थवादी रचनाओं में मिल जाते हैं ।

मैंने देखा आजाद उन्हें जो साथ जिस्म के जलते थे,
मंजिल मिली उन वीरों को जो अंगारों पर चलते थे ।
× × ×
जिनमें बाकी ईमान अभी वे भटक रहे वीरानों में ।
दे रहे सत्य की जाँच, आखिरी दम तक रेगितानों में ।

जग-जीवन से सम्बन्धित रचनाओं में दिनकर जी जिस प्रकार उर्दू हिन्दी और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी का भी प्रयोग करते हैं । 'परशुराम की प्रतीक्षा' की कुछ कविताओं में अंग्रेजी की शब्दावली और मुहावरे रूपान्तरित होकर प्रयुक्त हुए हैं । ऐसे शब्दों से भाषा की व्यंजना शक्ति बढ़ी है । उदाहरण के लिए 'परशुराम की प्रतीक्षा' की 'एनार्की शीर्षक कविता को लिया जा सकता है :

एक कैबिनेट अनेक यहाँ मुख्य हैं ।
डिमोक्रेसी दूर करो हमें तानाशाह दो ।
चिन्तन में सोसलिस्ट गर्क है ।
कम्युनिस्ट और कांग्रेस में क्या फर्क है ।
× × ×
रेलवे का स्लीपर उठाये कहाँ जाता है ।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ—मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से अनुभूति में प्रखरता और तीव्रता आ जाती है । दिनकर जी ने भाषा में मुहावरों का प्रयोग अनुभूति के साथ एकाग्र होकर किया है । प्रायः वे भाव के अंग ही बन गये हैं ।

मुहावरे :

१. फट न जाए अम्बर की छाती ।
२. ये हैं वे जिनके जादू पानी में आग लगाते हैं ।
३. अपनी ही उंगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं ।
४. पड़ी समय से होड़ खींच मत तलवों से काँटे रुककर ।
फूँक-फूँक न चलती जवानी चोटों से बचकर झुककर ।

५. हम धोते हैं घाव इधर सतलज के शीतल जल से।
उधर तुझे भाता है, इन पर नमक हाय छिड़काना।
६. अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती

लोकोक्तियाँ :

१. है फर्क मगर काशी में जब वर्षा होती,
हम नहीं तानते हैं छाते बरसातों में।
२. जीवन के दिन चार अवधि उसमें भी अल्प जवानी की।
३. थके सिंह आदर्श ढूँढ़ते व्यंग-बाण सहते हैं।

'नए सुभाषित' 'नील कुसुम' और 'उर्वशी' में पुराने सुभाषितों की नए रूप में प्रतिष्ठा दिनकर जी ने की है।

वर्ण-योजना—शब्दालंकारों का प्रयोग दिनकर जी के काव्य में विरल ही है। 'पुनरावृत्ति,' 'वर्ण-योजना' अवश्य मिल जाती है। इससे भाषा में चमत्कार आ गया है। निम्न उदाहरण में 'दिल्ली' और 'आह' शब्दों की पुनरावृत्ति कविता को प्रभावपूर्ण और भावपूर्ण बना देती है :

दिल्ली आह कलंक देश का
दिल्ली आह ग्लानि की भाषा।
दिल्ली आह मरण पौरुष का
दिल्ली छिन्न-भिन्न अभिलाषा।

'परशुराम की प्रतीक्षा' में पद-मैत्री है। इसमें जो आकृतियाँ हैं उनको दिनकर की कंठ-कला का प्रभाव द्विगुणित कर देता है। 'हाय,' 'अरे' 'अहा' 'उफ' आदि शब्दों के प्रयोग दिनकर जी ने भावोत्तेजना के ढंग से किए हैं :

हाय! मरण तक जीकर मुझको हलाहल पीना है।
उफ! रो मत घड़ी प्रेम के प्रथम प्रथम परिचय की।
आह! गर्भ में लिए उसे कल्पना शृंग पर चढ़कर।
किस सुरम्य उत्तुंग स्वप्न को मैंने नहीं छुआ है।

किन्हीं-कहीं ऐसे प्रयोग खटकते हैं। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में 'जवानियाँ' 'जवानी का झण्डा' जैसी ओज पूर्ण कविताओं में 'अहा' तथा 'देखलो' की, आवृत्तियाँ खटकने लगती हैं :

अहा की एक रात चाँदनी मेरी सुहावनी ?
अहा, कि एक बात प्रेम की बड़ी सुहावनी ?
अहा, कि एक याद दूब-सी मरु प्रदेश में,
अहा, कि एक चाँद जो छिपा विचार देश में,
अहा, कि पुकार कर्म की अहा कि पीर मर्म की
अहा, कि आँसुओं में मुस्करा रही जवानियाँ॥

वृत्ति, गुण और रीति—दिनकर मुख्यतः वीर रस के कवि हैं। 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' में मधुर, कोमल और आर्द्र भावनायें भी अभिव्यक्त हुई हैं। 'तत्सम शब्दों और लम्बे वाक्यों से माधुर्य की हानि हुई है। ओज पूर्ण, परुषावृत्ति और गौड़ी रीति का परम्परागत सांमजस्य दिनकर के काव्य में नहीं मिलेगा। 'ओज' उनके समस्त काव्य की आत्मा है। 'हुंकार' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' ओज गुण से ओत-प्रोत काव्य-संग्रह हैं। प्रसाद शैली में समास रहित ऋजु पदावली होती है। उसमें मधुरावृत्ति की मसृणता और पुरुषावृत्ति की कठोरता का समन्वय होता है। इस शैली में सरल, सुबोध और प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। दिनकर जी मुख्यतः इसी शैली के कवि हैं।

शब्द-शक्तियाँ—दिनकर जी के काव्य में विकास के साथ-साथ अभिधा से लक्षणा का प्रयोग बढ़ता गया। अभिधात्मक वर्णन दिनकर जी के नीरस नहीं होने पाये हैं। अभिधा में भाव चित्र समन्वित हो गये हैं :

दो प्रेमी हैं वहाँ एक जब
बड़े साँझ अल्हा गाता है।
पहला स्वर उसकी राधा को,
घर से यहाँ खींच लाता है।
चोरी-चोरी बड़े नीम की—
छाया में छिपकर सुनती है,
हुई न क्यों में कड़ी गीत की,
विधना, यों मन में गुनती है।

दिनकर जी के काव्य में लक्षणा के विविध प्रयोग देखने को मिलते हैं। दिनकर लक्षणा के कवि हैं। शब्दों के प्रतीकात्मक प्रयोगों और अर्थ-गर्भित विशेषणों के निर्माण की सामर्थ्य में उनकी सशक्त लक्षणा की ही शक्ति निहित है। उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग सामाजिक और राजनीतिक वैषम्यों की आक्रोश-पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए किया है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' से कुछ उदाहरण लीजिए। स्वार्थी राजनीतिक नेताओं और पूंजीपतियों के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया गया है :

सिंहों पर अपना अतुल भार मत डालो,
हाथियो स्वयं अपना तुम बोझ सम्हालो,
कौन पाप ? याद भेड़िये जब टूटे ये,
तेरे घर के पास दीन दुर्बल भेड़ों पर।

व्यंजना और लक्षणा से संयुक्त अभिव्यंजना में भारत की नीति और तत्सम्बन्धी विचारधारा के प्रति दिनकर जी का आक्रोश उवल पड़ा है :

है जिनके दाँत, उनसे अदन्त कहते हैं,
यानी शूरों को देख सन्त कहते हैं,
तुम तुड़ा दन्त क्यों नही पुण्य पाते हो ?

यानी तुम भी क्यों भेड़ न बन जाते हो ?
पर कौन शेर भेड़ों की बात सुनेगा ?
जिन्दगी छोड़ मरने की राह चुनेगा।

'लोहे के पेड़', लोहे के मर्द' इत्यादि शब्दों की व्यंजना लक्षणा पर आधारित है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' की पूरी 'एनार्की' कविता दिनकर जी की सबल और सक्षम व्यंजना का उदाहरण है।

निष्कर्ष—छायावादी शब्द-समूह की कोमलता दिनकर के प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल नहीं है। दिनकर जी की काव्य-भाषा में कुछ छुट-पुट दोष भी मिल जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

१. कहीं-कहीं उनकी भाषा में चारणों की भाषा की नाटकीयता आ गई है। बोधिसत्व को जगाते हुए जब वह बार-बार 'जागो-जागो'—की रट लगा देते हैं, तब उनकी शैली चारणों की सी हो जाती है।

२. लिंग और वचन सम्बन्धी दोष भी मिल जाते हैं। जैसे :

(क) मैं चांदनियों का बोझ किसी विध सहती हूं।

(ख) मारुत फूलों से भरा आंसुओं से गीला।

(ग) आपस ही के दोष से हो गया संहार पूरे देश का।

३. कहीं-कहीं स्त्रीलिंग बहुवचन के साथ प्रयुक्त क्रियाओं का रूप, दोषपूर्ण हो गया है। स्त्रीलिंग में बहुवचन के साथ क्रियाओं का रूप, पुलिङ्ग में प्रयुक्त क्रियाओं की ही भांति रहता है, लेकिन दिनकर के प्रयोग में स्वाधीनता आ गई है—'हम लौट रही थीं', 'हम मारी मारी फिरती हैं', 'हम चलीं' आदि गलत प्रयोग हैं।

४. कहीं-कहीं अनावश्यक पुनरावृत्ति भी मिलती है।

(क) गली कूच वन-तीरथ नगर में।

(ख) मनु दुर्बल मन लाचार।

(ग) महिमा मुक्ता विद्रुम-प्रवाल से विचरते हुए भवन में।

दिनकर जी की काव्य-भाषा में छुट-पुट दोषों का कोई उल्लेखनीय महत्व नहीं है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि दिनकर जी की भाषा सशक्त और समर्थ है।

प्रश्न ४—"दिनकर जी की भाषा में चित्र-योजना ने अद्भुत सौन्दर्य और आकर्षण उत्पन्न कर दिया है।" —इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उत्तर—दिनकर जी की भाषा में चित्रात्मकता का विशेष गुण है, आलम्बन की विविधता के कारण दिनकर जी के काव्य में लक्षित और उपलक्षित चित्रों के विविध प्रयोग हुए हैं। उनके चित्र ओज-पूर्ण भी हैं और मधुर एवं कोमल भी। उनमें आलम्बन चित्र और विस्तृत आधार फलक का विचित्र विराट चित्र है और लघु फलकों पर निर्मित कोमल मधुर चित्र भी हैं। साथ ही अनुभाव चित्रों की भी सुन्दर योजना है।

विस्तृत आलम्बन फलक पर अंकित आलम्बन चित्र—क्रान्ति और युद्ध-सम्बन्धी रचनाओं में दिनकर जी ने इसी प्रकार के चित्र अंकित किये हैं। ये चित्र सबल और शक्तिपूर्ण हैं। रेखाओं और वर्णों के संयुक्त प्रयोग से चित्र बड़े सजीव हो गये हैं। कुछ उदाहरण लीजिए। निम्न उदाहरण में क्रान्ति का समग्र चित्र सामने आ जाता है। रेखाएँ ध्वनि से संयुक्त हैं। तलवार की झनकारें और क्रुद्ध हुंकारें वीर रस के अनुभावों की सृष्टि करती हैं। बिजली और आग सैनिकों के उबलते क्रोध, मृत्यु और नाश का वेग भरती हैं। भूचाल और तूफान क्रान्ति की व्यापक अवस्था, भीषण संहार और घोर अस्तव्यस्तता का चित्र प्रस्तुत करते हैं। अनुकरणात्मक शब्द 'झन-झन' की आवृत्ति 'मारू' राग के वातावरण का निर्माण कर देती है :

झन-झन-झन-झन घनन घनन
बेरी पायल झनकार रही तलवारों झनकारों में।
अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुँकारों में।
मैं अहंकार-सा कड़क उठी हंसती विद्युत की कोरों में।
बन काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में।
अंगड़ाई में भू-चाल सांस में लेकर के उनचास पवन।

दिनकर जी के चित्र गत्यात्मक हैं। करुण तथा भयानक रस के चित्र खींचने में भी दिनकर जी समर्थ हुए हैं। एक उदाहरण लीजिए :

विष की ज्वाला से दह्यमान ही उठा व्यग्र सारा खगोल।
मतवाले नाग अशंक चले खोले जिह्वाएँ लाल-लाल।

दिनकर जी ने विस्तृत आधार फलक पर ग्रामीण और सामाजिक वातावरण के अनेक चित्र खींचे हैं, एक उदाहरण लीजिए। इसकी एक पंक्ति में कवि ग्राम के सात्विक सौरभ की सफल अनुभूति देता है। तुलसी के पौधे के साथ घण्टे की ध्वनि पवित्र वातावरण को उपस्थित कर देती है। दीपक की लौ के सामने अपनी पुस्तक में सिर खपाते हुए ग्रामीण बालकों का चित्र वातावरण को सजीवता प्रदान करता है। बालकों से प्रिय को पत्र लिखने का अनुरोध करती हुई ग्राम्य-युवती के सारे वातावरण का शब्द-चित्र सा खींच देते हैं। यह चित्र क्रिया-विधायक है :

वन-तुलसी की गन्ध लिये हल्की पुरवैया आती है।
मन्दिर की घण्टा ध्वनि युग-युग का सन्देश सुनाती है।
टिम-टिम दीपक के प्रकाश में पढ़ते निज पोथी शिशुगन।
परदेशी की प्रिया बैठ गती यह विरह-गीत उन्मन।
भैया लिख दे एक कलम खत मो बालम के जोग।
चारों कोने खेम-कुशल मांझे ठां तोर वियोग।

दिनकर जी के उपस्थित किये हुए समस्त चित्रों में अधिकतर रेखायें ही

प्रधान हैं। ओज, वीरता, आत्म-शक्ति की प्रचुरता की चरम अभिव्यक्ति इन चित्रों में हुई है।

लघु फलकों पर अंकित प्रकृति-चित्र—दिनकर जी प्रकृति के कवि न होकर जीवन के कवि हैं। परन्तु जीवन प्रकृति से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता। प्रायः प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ है। प्रकृति-चित्रण में चित्रात्मकता के सजीव चित्र ही दिनकर जी ने प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति-चित्रण में चित्रात्मकता 'रसवन्ती' और 'नील कुसुम' में विकसित होकर 'उर्वशी' में चरमसीमा पर पहुँच गई हैं। 'उर्वशी' के प्रकृति-चित्रण प्रायः आलंकारिक हैं। 'रेणुका' की रचनाओं के प्रकृति-चित्रों में उनकी चित्रांकन शक्ति का परिचय मिलता है :

आज हरित का कल-कल छल-छल
निर्झर का अविरल झर-झर।
पावस की बूँदों में रिमझिन,
पीले पत्रों का सा मर्मर।

प्रकृति का निम्न संश्लिष्ट चित्र बहुत सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृति का निस्तब्ध, नीरव और स्थिर रूप सजीव हो उठा है :

पूर्व कुंजों में न मर्मर गान
सो गया थक कर शिथिल पवमान
कब न जल पर रश्मि बिम्बित लाल
मूँद उर में स्वप्न सोया ताल
सामने द्रुम राशि तमसाकार
बोलते तम में विहंग दो चार
झींगुरों के रोग खग से लीन
देखते ज्यों एक रव अस्पष्ट अर्थ विहीन

दिनकर जी ने वर्ण-योजना के द्वारा इन्द्रधनुष वातावरण उपस्थित कर दिया है। चाँदनी का शुभ्र, श्वेत परिधान, नक्षत्रों के झिलमिलाते अलंकार, दर्पण-सा चमकता सरोवर, जल आदि सभी कुछ सामने आ जाता है, उड़ता हुआ पुष्प पराग, चहकती मैना का स्वर और तितलियों का रंग-विरंगापन वातावरण में फागुन का रंग और होली की मादकता भर देता है :

चन्द्रिका पट का कर परिधान, सजा नक्षत्रों से शृंगार
प्रकृति पूलकाकुल आँखें खोल देती निज सुवर्ण संसार
चमकते तरु पर झिलिमिल फूल, बौर जाता है कभी रसाल
चहकती चित्रित मैना कहीं उड़ती कसुमों की धूल

शुभ्र शरद-वर्णन के निम्न उदाहरण में सात्विक प्रभाव देखते ही बनता है :

उजड़ रही मंजरी काँस की, हवा झूमती आती।
राशि-राशि अवली फूलों की एक ओर झुक जाती है।

उगा अगस्त्य उतर आया सरसी में निर्मल व्योम सखी
झलमल-झलमल काँप रहे हैं जल में उड्गन सोम सखी ।

रूप और अनुभाव चित्र—दिनकर जी की 'उर्वशी' में रूप तथा अनुभाव के सुन्दर चित्र मिलते हैं। 'उर्वशी' की चित्र-योजना प्राय: आलंकारिक और प्रतीकात्मक है । रूप तथा क्रिया से समन्वित एक चित्र देखिए :

खोल दृग देखा प्राची और आरक्तक चरणों का शृंगार
तुम्हारा नव उद्वेलित रूप, व्योम में उड़ता कुन्तल भार ।

निम्न उदाहरणों में कार्य-कलापों और मानसिक स्थितियों के बहुत सुन्दर चित्र हैं । चित्र क्रिया-विधायक हैं, नव वधू के हृदय में छिपे उल्लास एव विदा लेती हुई कन्या की विछोह-पीड़ा से सम्मिलित अनुभावों का चित्र मुखर हो गया है :

आँखों में दे आँख हेरती
हैं उसको जब सखियाँ
सुरखी आ जाती मुख पर
हँस देती मीठी मीठी अखियाँ ।
पर समेट लेती शरमाकर
बिखरी-सी मुस्कान ।
मिट्टी उकसाने लगती है
अपराधिनी समान ।

प्रकृति के उपकरणों से भी दिनकर जी ने रूप-रंग लेकर नारी का रूप सँवारा है ।

ये नवनीत कपोल गुलाबों की जिनमें लाली खोई,
ये नलिनी से नयन जहाँ काजल की लघु अलिनी सोई,
कपोलों से अधरों को रंगकर है बसन्त भी धन्य हुआ !
किसी विरही ने तनु की यह धवलिमा आँसू से धोई ।

इन कोमल भावों के अतिरिक्त दिनकर जी ने संघर्षरत क्रियाशील और सामाजिक व्यक्ति के भी प्रभाव पूर्ण और सबल चित्र खींचे हैं ।

व्यंग्य-चित्र—किसी की धज्जियाँ उड़ाने के लिए दिनकर जी बड़े ही सजीव व्यंग्य-चित्र खींच देते हैं । इनमें शंकर के कार्टूनों से कम प्रभाव नहीं होता । गांधी के नाम पर अहिंसात्मकता का कृतिम ढोंग रचने वालों पर वे प्रहार करते हुए कहते हैं :

कुर्त्ता, टोपी, पहन कमर में भले बाँध लो,
पाँय हाथ की धोती घुटनों के ऊपर तक,
अथवा गांधी बनने के आकुल प्रयास में,
आगे के दो दाँत डाक्टरों से तुड़वा लो ।

चित्रों की सार्थकता इस दृष्टि से होती है कि वे भाव और विचार के चित्र बन कर हमारे मन एवं चक्षु के सामने साकार हो जायें। सार्थकता की इस कसौटी पर दिनकर जी के चित्र खरे उतरते हैं।

प्रश्न ५ — अलंकार-योजना (अप्रस्तुत विधान) की दृष्टि से दिनकर जी के काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—काव्य में अलंकारों का इतना ही महत्त्व है कि वे उसके आन्तरिक विकास और रसोद्रेक में सहायक हों। दिनकर जी के अनुसार :

"अलंकार शब्द से वैसे तो अनावश्यक बनाव श्रृंगार की भी ध्वनि निकलती है, किन्तु कविता में अलंकारों के प्रयोग का वास्तविक उद्देश्य अतिरंजन नहीं, वस्तुओं का अधिक से अधिक सुनिश्चित होना है।"

दिनकर जी की अप्रस्तुत-योजना में तीन रूप मिलते हैं।

१. सादृश्यक मूलक
२. अतिशयोक्तिमूलक
३. विरोधमूलक

दिनकर जी की सादृश्यमूलक अप्रस्तुत-योजना संश्लिष्ट चित्रात्मकता और सभी प्रकार की साम्य-योजनाओं पर आधारित है। उपमा और रूपक दिनकर जी के प्रिय अलङ्कार हैं। शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म के लिए निम्न उदाहरण कितनी सफल अप्रस्तुत योजना है :

शरों की नोंक पर लेटे हुए गजराज जैसे।
थके टूटे गरुड़ से स्रस्त पन्नग राज जैसे।

'थके', 'टूटे' तथा 'गरुड़ से सुस्त' शब्द भीष्म के गौरवपूर्ण पराभव को व्यंजित कर रहे हैं। 'रसवन्ती' की उपमाएँ एक ओर सहज, कोमल और मधुर हैं, दूसरी ओर उनमें छायावादी मानवीकरण-परम्परा का अवशेष भी मिलता है। छायावादी अलंकार-योजना के अवशेष का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख कविता संध्या' में मानवीकरण के सुन्दर, स्निग्ध और कोमल, उदाहरण मिलते हैं, परन्तु कहीं-कहीं, उनका रूप हास्यपूर्ण, वीभत्स और कठोर भी हो गया है। निम्न चित्र में संध्या में अभिसारिका का आरोप किया गया है :

षोड़सी तिमिराम्बरा सुकुमार।
भूलुंठित पुष्पित लता सी म्लान छिन्नाधार।

श्यामाभिसारिका के रूप में संध्या-सुन्दरी की उदासी और अनवरत प्रतीक्षा का नैराश्य यहाँ उपमानों में साकार हो उठा है।

'सामधेनी' और 'नीलकुसुम' में सादृश्यमूलक अप्रस्तुत योजनाओं में कहीं-कहीं नये प्रयोग हुए हैं :

वृद्ध सूर्य की आँखों पर,
माँडी-सी चढ़ी हुई है,
दम तोड़ती हुई बुढ़िया-सी,
दुखिया पड़ी हुई है।

'माँड़ी' प्रयोग के निकट सूर्य की निष्प्रभा होती हुई ज्योति का संकेत देती है। दम तोड़ती हुई बुढ़िया प्रलय के नाश से प्राप्त विश्व का चित्र उपस्थित कर देती है।

अप्रस्तुत-योजना के विकास की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान 'उर्वशी' की अप्रस्तुत-योजना को है। एक उदाहरण लीजिए। इसमें उपमानों की चमक उर्वशी का अलौकिक रूप हमारे नेत्रों के सामने ला देती है :

प्रगटी जब उर्वशी चाँदनी में द्रुम की छाया से,
लगा सर्प के मुख से जैसे मणि बाहर निकली हो।
या कि स्वयं चाँदनी स्वर्ण-प्रतिभा में आन ढली हो।
उतरी हो धर देह स्वप्न की विभा प्रथम उपवन की,
हिमकण सिक्त कुसुम सम उज्वल अंग-अंग झलमल था,
मानो अभी-अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।

सादृश्यमूलक अप्रस्तुत-विधान के अतिरिक्त विरोध मूलक अलंकारों के और भी दिनकरजी के काव्य में मिलते हैं। विरोध और अतिशयोक्ति में चमत्कार-नियोजन का प्रयोग दिखाई पड़ता है। कुछ अलंकारों के उदाहरण लीजिए।

व्याज-निन्दा—निम्न उदाहरण में व्याज, निन्दा अलंकार के अतिरिक्त व्यंग्य और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है :

मँहगी आजादी की यह पहली साल गिरह है,
रहने दो अब बापू की अर्थी दूर नहीं।
और धूमधाम से नहीं मनाओगे क्या तुम,
कुछ ही वर्षों में दशक चोर बाजारी का ?
चल छद्म कपट का राजनीति के तिकड़म का,
क्रम-क्रम से इनका भी उत्सव होना चाहिए।

व्यतिरेक—व्यतिरेक अलंकार में उपमेय में उपमान से अधिक गुण कहे जाते हैं। निम्न उदाहरण में इन्द्र कर्ण की कीर्ति को निष्कलंक चन्द्र कहते हैं :

किन्तु आपकी कीर्ति चांदनी कीर्ति हो जायगी।
निष्कलंक विधु कहाँ दूसरी फिर वसुधा पायेगी।

उल्लेख—व्यंग्यपूर्ण प्रतिपाद्य में उल्लेख अलंकार के प्रयोग से प्रभावोत्पादकता बहुत अधिक बढ़ गई है :

आजादी खादी के कुरते की एक बटन,
आजादी टोपी एक नुकीली तनी हुई,
फैशन वालों के लिए नया फैशन निकला,
मोटर में बाँधों तीन रंग वाला चिथड़ा।

अपन्हुति—अपन्हुति अलंकार में उपमेय को हटाकर उपमान की स्थापना की जाती है :

भरी सभा में लाज द्रौपदी की न गई थी लूटी।
वह तो वही कराल आग थी निर्भय होकर फूटी।

उपमेय द्रौपदी की लाज को हटाकर उपमान कराल 'आग' की स्थापना की गई है।

पर्यायोक्ति—इस अलंकार के अन्तर्गत अभिप्रेतार्थ की अभिव्यक्ति प्रकारान्तर से दी जाती है। 'रश्मिरथी' में इस अलंकार का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है :

एक बाज का पंख तोड़कर करना, अभय अपर को।
सुर को शोभे भले, नीति यह नहीं शोभती नर को।
यह तो निहत शरभ पर चढ़ आखेटक पद पाना है।
जहाँ मिला मृगपति को उस पर पौरुष दिखलाना है।

अतिशयोक्ति—इस अलंकार में किसी बात का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन का चमत्कार उत्पन्न किया जाता है :

मेरे अश्रु ओस बनकर कल्पद्रुम पर छायेंगे।
पारिजात वन के प्रसून आहों से कुम्हलायेंगे।

दृष्टान्त—इस अलकार में प्रथम वाक्य का दूसरे वाक्य को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करके उपमेय की सृष्टि होती है :

दीपक के जलते प्राण दीवाली तभी सुहानी होती है,
रोशनी जगत की देखने को अपनी अस्थियाँ जलाता चल।

मानवीकरण—इस अलंकार में प्रकृति के तत्वों और कार्यों का वर्णन मानवी क्रियाओं के रूप में होता है। निम्न उदाहरण में रजनी में बाला का मानवीकरण किया गया है :

पहन मुक्ता के युग अवतंस
रत्न गुम्फित खोले कच-जाल
बजाते मधुर-चरण-मंजीर
आ गये तम में रजनी बाल।

सन्देह, विशेषोक्ति, उत्तर-प्रश्न आदि अलंकारों का प्रयोग भी दिनकर जी ने यदा-कदा किया है। वैषम्य मूलक अलंकारों में विरोधाभास और विरोध अलंकार दिनकर जी को विशेष प्रिय हैं। कुछ उदाहरण लीजिए :

जागो रसिक वियोग लोक के, मधुवन के सन्यासी।
× × ×
नींद है वह जागरण जब फूल खिलते हों।
× × ×
मूक है प्रच्छन्न है सबसे बड़ी आवाज।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दिनकर जी ने अप्रस्तुत योजनाओं की अलंकार सामग्री विविध क्षेत्रों से जुटाई है। उन्होंने आवश्यकतानुसार

जीवन और प्रकृति के क्षेत्र से उपमानों का चयन किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार काव्य की रसाद्रता, प्रभविष्णुता में बहुत सहायक हुए हैं। अतिरंजन और चमत्कार-प्रदर्शन के लिए उन्होंने अलंकारों का कहीं भी प्रयोग नहीं किया है।

प्रश्न ६—दिनकर जी की छन्द-योजना का निरूपण कीजिए।

उत्तर—दिनकर जी की पूर्वकालीन रचनाओं में गीतों की प्रधानता है। प्रबन्धात्मक कृतियों में छन्दों का प्रयोग हुआ है। दिनकर जी का छन्दों पर पूरा अधिकार है। उनकी छन्द-योजना, प्रसंग, विषय-वस्तु और भाव को अपनी परिधि में बांधकर स्पष्ट कर देती है। 'रसवन्ती', 'सामधेनी,' 'इतिहास के आंसू,, 'कुरुक्षेत्र और 'रश्मिरथी, में सार नामक मात्रिक छन्द का बहुत प्रयोग हुआ है। इससे प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ और चरणांत में दो गुरु होते हैं :

चली पिया के गाँव उमर के सोलह सालों वाली।

यह छन्द श्रृंगार, करुण आदि कोमल रसों के लिऐ बहुत उपयुक्त है।

दिनकर जी ने 'रेणुका' में कई प्रकार के मात्रिक छन्दों का उपयोग किया है, इनमें पद्धरि, ताटंक, सरसी, श्रृंगार, लावनी और वीर छन्द प्रमुख हैं।

पद्धरि—पद्धरि छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं।

साकार द्रव्य गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल।
मेरी जननी के हिम किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल।

ताटंक—इसमें प्रत्येक चरण में ३० मात्रायें होती हैं। 'चरणान्त, में 'मगण' होता है :

चलो जहाँ निर्जन कानन में जहाँ कुसुम मुसकाते हैं।

सरसी—इस छन्द में मात्रायें होती हैं तथा अन्त में गुरु, लघु रहता है :

लहर-लहर पर लहराते हैं मधुर प्रभाती गान।
भुवन स्वर्ग बन रहा उड़े जाते ऊपर को प्रान॥

श्रृंगार—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं। चरण के अन्त में गुरु-लघु रहता है :

पुजारिन सी बन कंठ हिलोर।
भिगो देगी अग-जग का छोर॥

दिनकर छन्द—प्रसाद जी ने जिस प्रकार 'आँसू' छन्द की सृष्टि की, उसी प्रकार 'कस्मै देवाय:' शीर्षक कविता के छन्द को 'दिनकर' छन्द के नाम से पुकारा जा सकता है सोलह मात्रा वाले इस छन्द का दिनकर जी ने अपने काव्य में बहुत प्रयोग किया है :

न देख कलेजा फाड़ कृषक के,
बहें हृदय शोणित की धारें।
बनती ही उन पर जाती हैं,
वैभव की ऊँची दीवारें।

दिनकर जी के काव्य में मात्रिक छन्दों के साथ-साथ वर्णिक वृत्तों का भी प्रयोग हुआ है।

'कुरुक्षेत्र' में मनहरण कवित्त वर्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में १६, १५ पर यति देकर ३१ मात्रायें होती हैं :

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता।
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को,
जीत नई नींव इतिहास की मैं धरता॥
और कहीं बज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता।
तो भी हाय यह रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भी भीख माँग मरता।

ललित पद—इसके प्रत्येक चरण में २८ मात्रायें होती हैं :

समर निंद्य है धर्मराज पर
अहो शान्ति यह क्या है।
जो अनीति पर स्थिर होकर भी।
बनी हुई सबला है। —**कुरुक्षेत्र**

राधिका इसके प्रत्येक चरण में २२ मात्रायें होती हैं :

शारदे! विकल संक्रान्ति-काल का नर मैं।
कलिकाल माथ पर चढ़ा हुआ द्वापर मैं।
संतृप्त विश्व के लिए खोजते छाया।
आशा में था इतिहास-लेख तक आया। —**कुरुक्षेत्र**

सुमेरु—इस छन्द के प्रत्येक चरण में १९ मात्रायें होती हैं और १०-९ पर व्यक्ति के साथ अन्त का वर्ण लघु होता है। चरणांत में यगण रहता है :

इसी के त्रास में अन्तर पगा था
हमें बनवास में भी भय लगा था,
कभी निश्चिन्त भी क्या हो सका था। —**रश्मिरथी**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि दिनकर जी ने परम्परागत तथा नवीन दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। परम्परागत छन्द-योजना में आन्तरिक रागों और अनुभूतियों का स्पन्दन है तथा नई छन्द-योजना में बौद्धिक चिन्तन की सुस्थिरता और दृढ़ता व्यक्त करने की शक्ति है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में संकलित विचार प्रधान कवितायें अधिकतर तुक और लय से युक्त हैं।

प्रश्न ७—आधुनिक काव्य में राष्ट्रीय काव्यधारा की विवेचना करते हुए उसमें दिनकर का स्थान निश्चित कीजिए।

उत्तर—भारत में राष्ट्रीय-भावना विकासशील रही—भारत में राष्ट्रीयता की भावना सदैव विकासशील रही है। परन्तु जब से हिन्दी-काव्य का प्रारम्भ हुआ राष्ट्रीयता की धारा कभी विकसित हुई, तो कभी सकुंचित हो गई। रीतिकाल की

सामन्तीय व्यवस्था में राष्ट्रीय एकता का ध्यान प्राय: नरेशों को नहीं था किन्तु फिर भी शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीर हिन्दू-गौरव और हिन्दू-संस्कृति की रक्षा के लिए लगे हुए थे। भूषण ने इन्हीं वीरों को अपना काव्य-नायक बनाकर अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है।

भारतेन्दु-युग—भारतेन्दु-युग समाज-सुधार और राष्ट्रीय भावनाओं के शंखनाद का युग था। भारतेन्दु जी ही आधुनिक काव्यधारा के जनक हैं। सर्वप्रथम उन्हीं के काव्य में मातृ-भाषा-प्रेम, समाज-सुधार, देश-भक्ति और राष्ट्रीयता का प्रबल स्वर सुनाई पड़ा। भारतेन्दु जी का मातृ-भाषा-प्रेम उनके निम्न कथनों में स्पष्ट है :

अँग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होते प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन ॥

× × ×

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
पै निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥

भारतेन्दु की देश-भक्ति की भावना राज-भक्ति समन्वित थी। वे अँग्रेजी राज्य के सुख-साज से सन्तुष्ट थे, किन्तु भारत का धन विदेशों को जा रहा है, उसका उन्हें दुःख था :

अँग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।

'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी' आदि नाटकों में भारतेन्दु जी ने भारत की पराधीन दयनीय दशा का यथार्थ चित्र खींच दिया है। निम्न पंक्तियों में देखिए :

रोवहु सब मिलिके आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा सही नहिं जाई ॥

× × ×

कहँ करुणानिधि केशव सोए।
जागत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए ॥

भारतेन्दु ने विधवा-विवाह विदेश-यात्रा आदि का समर्थन करके अपने समाज-सुधार सम्बन्धी विचारों को अभिव्यक्त किया है :

विधवा, विवाह नहिं कियो विभिचार प्रकास्यौ।
रोकि विलायत गमन कूप मण्डूक बनायौ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह राष्ट्रीय-चेतना और समाज-सुधार की पावन भावना उनके समकालीन प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, पं० श्रीधर पाठक राय देवीप्रसाद पूर्ण आदि में भी मिलती है :

चाहहु जो सोचो निज कल्याण
तो सब मिलि भारत-सन्तान।
जपो निरन्तर एक जबान
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान।

—प्रतापनारायण मिश्र

जय जय भारत हे ।
जय भारत जय भारत जय जय भारत हे !

—पं० श्रीधर पाठक

गाढ़ा झीना जो उसकी ही पोशाक
कीजो अंगीकार तो रहे देश की लाज ।

—राय देवीप्रसाद पूर्ण

देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की जो भावना भारतेन्दु जी ने उद्‌भूत की थी; वही मैथिलीशरण गुप्त जी की कविता से होती हुई माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा', प० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान और गयाप्रसाद शुक्ल सनेही आदि की कविताओं में पल्लवित हुई ।

मैथिलीशरण गुप्त—गुप्त जी ने भारत के गौरवमय अतीत के चित्र खींच कर वर्तमान को प्रेरणा दी, उनकी 'भारत भारती' रचना राष्ट्रीयता का शखनाद है :

हम कौन थे, क्या हो गए हैं,
और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारें आज मिलकर,
ये समस्यायें सभी ।

गुप्तजी की यही राष्ट्रीय विचारधारा 'साकेत', 'पंचवटी' और 'गुरुकुल' में पल्लवित हुई । राम स्वदेश-प्रेम से परिपूर्ण होकर कहते हैं :

मैं हूं तेरा सुमन चाहे रहूँ कहीं,
मैं ही तेरा जलद बरसूं कहीं ।

वे अछूतों के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहते हैं :

इन्हें समाज नीच कहता है
पर हैं ये भी तो प्राणी ।
इनमें भी मन और भाव हैं,
किन्तु नहीं वैसी वाणी ।

'काबा और कर्बला' में गुप्तजी हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए कहते हैं :

हिन्दू मुसलमान दोनों अब
छोड़े यह विग्रह की नीति ।

एक भारतीय आत्मा—पं० माखनलाल चतुर्वेदी की कवितायें राष्ट्रीयता और देश-प्रेम से परिपूर्ण हैं । उनकी पुष्प की अभिलाषा' कविता राष्ट्र-प्रेम की वेगवती धारा प्रवाहित कर देती है :

चाह नहीं सुरवाला के गहनों में गूंजा जाऊँ ।
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ ।।
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ ।
चाह नहीं मैं चढ़ूँ देव सिर और भाग्य पर इठलाऊँ ।।

मुझे तोड़ लेना बनमाली
उस पथ में तुम देना फेंक ।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक !

पं० रामनरेश त्रिपाठी, नवीन आदि—त्रिपाठी जी के 'मिलन' 'पथिक' और 'स्वप्न' में स्वदेश-प्रेम के ऊँचे आदर्शों का निरूपण है। 'नवीन' जी की ओजस्विनी कविता में आँधी तूफान और सागर की हलचल है। उनके साधारण शब्दों में जैसे ज्वालामुखी का अग्नि-प्रवाह और वेगवती देश-प्रेम की धारा प्रवाहित हो रही है। सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में एक वीर क्षत्राणी की ललकार है। 'झांसी की रानी' 'विजयाशदमी', वीरों का कैसा हो बसन्त' आदि कविताएँ राष्ट्रीयता और देश-प्रेम का अनूठा आदर्श प्रस्तुत करती हैं।

अन्य राष्ट्रीय कवि—पं० रामचरित उपाध्याय के 'रामचरित चिन्तमणि' काव्य में राष्ट्रीयता का निखरा हुआ रूप मिलता है। पं० रूपनारायण पाण्डेय की कविता में देश-भक्ति, स्वदेशी वस्तु व्यवहार और अछूतोद्धार का स्वर ऊँचा है। कविरत्न सत्यनाराण के काव्य में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी है। उनका 'भ्रमर-दूत' काव्य स्वदेश-प्रेम से परिपूर्ण है :

कोमल जो नव फूल खिले
हिय बेधि के दुःख के तार पिरोये।
देश दरिद्र दुखी फिर है
तुम ताहू पै कौन सी नींद में सोये ॥
विप्र सुदामा को हेरि दशा
अपने जन जानि दयानिधि रोये।
भारत आरत हेरि कितै
करुना तजि कै करुना निधि सोये ॥

प्रसाद जी के नाटकों में प्रयुक्त गीतों में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की वेगवती धारा प्रवाहित हुई। सोहनलाल द्विवेदी की 'भारतवर्ष' शीर्षक कविता में भारत महिमा का निम्न कथन दृष्टव्य है :

वह महिमामय अपना भारत
वह महिमामय सुन्दर स्वदेश।
युग-युग जिसका उन्नत शिर
है किये खड़ा हिमगिरि नगेश।

दिनकर—दिनकर जी का समस्त काव्य राष्ट्रीय-उत्थान और जागरण की प्रेरणा है। 'कुरुक्षेत्र', 'हुंकार' 'रेणुका' आदि में दिनकर जी की राष्ट्रीय विचारधारा बड़े वेग से प्रवाहित हुई है। दिनकर जी सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कवि हैं। वे मूलतः जन-चेतना के गायक रहे हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पहले आपने एक वीर योद्धा की भाँति पूरी-पूरी शक्ति से ब्रिटिश साम्राज्यशाही का विरोध किया। आपकी रचनाओं में अतीत का गौरव-गान और देश की वर्तमान दुर्दशा का चित्रण है। स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् आशा के अनुरूप देश की प्रगति न देखकर आपके हृदय की आग

रह-रह कर भभक उठती थी। आप अनुभव करते थे कि जनता पिस रही है, अभी उसको सच्चा स्वराज्य नहीं मिला, इसलिए संघर्ष की आवश्यकता है।

दिनकर जी इन्कलाब के कवि रहे रहे हैं। वे जन-भावनाओं के गायक हैं। देश की प्रत्येक परिवर्तित परिस्थिति में उन्होंने यह ध्यान में रखा है कि इसका प्रभाव साधारण जनता पर क्या पड़ेगा ? वे राष्ट्रीयता और जनता दोनों ही के सहज प्रहरी रहे हैं।

दिनकर जी का 'कुरुक्षेत्र' आधुनिक युग की गीता और राष्ट्रीयता का शंखनाद है। युधिष्ठिर के समय समस्या वही थी जो आज के भारत की समस्या है। युधिष्ठिर उसी युद्ध को रोकने का उपाय पूछने पितामह के पास जाते हैं, जिसे रोकने के लिए 'लीग आफ नेशन्स, बनाई गई थी तथा जिसे रोकने को आज 'संयुक्तराष्ट्र-संघ' प्रयत्नशील है।

'कुरुक्षेत्र' की रचना के समय भारत की जो दयनीय दशा थी, वह इसमें ध्वनित हो उठती है। पितामह धर्मराज को समझाते हैं—तुम्हें सन्यास नहीं लेना चाहिए। सारा भारतवर्ष दुखी है, व्याकुल है, इसकी सेवा करनी चाहिए तथा भारतवासियों को सहारा देना चाहिए :

पोंछो अश्रु उठो, द्रुत आओ,
वन में नहीं भुवन में।
होओ खड़े असंख्य नरों के,
आशा बन जीवन में।

'कुरुक्षेत्र' में भीष्म ने जो राजतन्त्र की बुराई की है, उसे पढ़कर अँग्रेजी शासन के अत्याचार और दमन-नीतियों का स्मरण हो आता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय काव्यधारा के विकास में दिनकर और उनके 'काव्य का' महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान राष्ट्रीय कवियों में राष्ट्रीय कवि की दृष्टि से उनकी समता में मैथिलीशरण गुप्त ही ठहर सकते हैं। परन्तु उनके 'कुरुक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध शस्त्र उठाने तथा कर्मवाद की जो प्रेरणा है, वह उन्हें शीर्ष स्थान प्रदान करती है। 'परशुराम की प्रतीक्षा' में उनकी राष्ट्रीयता चीन के आक्रमण को विफल करने और शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए आपद्धर्म के रूप में युद्ध को उचित ठहरती है। इस काव्य में दिनकर जी का उग्र राष्ट्रीय कवि का रूप है।

* * *

अज्ञेय

प्रश्न १—प्रयोगवादी नवीन काव्यधारा में अज्ञेय जी का स्थान और महत्व निश्चित कीजिए।

उत्तर—नवीन प्रयोगवादी काव्यधारा की पृष्ठभूमि

द्विवेदी-युग में काव्य इतना अधिक इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक हो गया कि उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी काव्यधारा का जन्म हुआ। छायावादी काव्य की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं :

१. रहस्यवादी भावनाओं का उन्मेष।
२. भाषा में लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोग।
३. चित्रमयी भाषा।
४. दुरुह कल्पना।
५. ध्वन्यात्मकता।
६. उपचार-वक्रता।
७. स्वानुभूति की संवेदनात्मक विवृत्ति।
८. प्रकृति के रमणीय चित्रों का बाहुल्य।

छायावादी कविता में मानवता के पक्ष का समर्थन किया गया। शृंगार चित्रण में अतीन्द्रिय एवं मानसिक पक्ष का उद्घाटन किया गया। इस नूतन काव्यधारा को छायावाद नाम दिया गया।

आगे चलकर छायावादी काव्यधारा का विरोध हुआ। छायावादी काव्य में कल्पना के मनोजगत में नियन्त्रण करने की प्रधानता थी। इसमें कल्पनाशीलता के स्थान पर यथार्थ चित्रण को महत्व दिया जाने लगा। छायावाद के विरुद्ध उत्पन्न हिन्दी की इस नूतन काव्यधारा को प्रगतिवाद नाम दिया गया। प्रगतिवादी कवियों के लिए रूस और चीन की प्राप्तियाँ अपनी बन गईं। प्रगतिवादी काव्य शुष्कता और रुक्षता को लेकर आया। जैसे छायावादी काव्य का विरोध उसकी अविराम अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण हुआ था, उसी प्रकार प्रगतिवादी कविता का विरोध उसकी अविराम बहिर्मुख प्रकृति के कारण हुआ। प्रगतिवाद में साहित्यिक आन्दोलन का सर्वथा अभाव था और वह राजनैतिक आन्दोलन से ही प्रेरित था।

प्रयोगवादी काव्य-धारा का जन्म

सन् १९४०-४१ के आस-पास भारतीय जन-जीवन दमन; गतिरोध, मँहगाई, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय संघर्ष आदि से अस्त-व्यस्त हो उठा। उसके हृदय में असन्तोष

की तीव्र ज्वाला धधकने लगी। आन्दोलन की असफलता ने उसे नूतन क्रान्ति की ओर उन्मुख किया। ऐसी स्थिति में प्रयोगवादी नई कविता सामने आई। सन् १९४३ में 'तार सप्तक' प्रकाशित हुआ। इसी के साथ प्रयोगवादी नई कविता की धारा आरम्भ होती है। इसमें निम्नलिखित सात कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुईं।

१. गजानन माधव मुक्ति-बोध, २. नेमीचन्द जैन, ३. भारत-भूषण अग्रवाल, ४. प्रभाकर माचवे, ५. गिरिजाकुमार माथुर, ६. रामविलास शर्मा, ७ अज्ञेय। तार सप्तक के सम्पादक अज्ञेय जी हैं। इसके आठ वर्ष उपरान्त सन् १९५१ ई० में अज्ञेय जी के ही सम्पादकत्व में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। इसमें निम्नलिखित कवियों की कविताएँ संग्रहीत हैं :

१. भवानीप्रसाद मिश्र, २. शकुन्तला माथुर, ३. हरिनारायण व्यास, ४. शमशेर बहादुरसिंह, ५. नरेश मेहता, ६. रघुवीर सहाय।

इसके अन्तर आठ वर्ष के पश्चात् सन् १८५९ में 'तीसरा सप्तक' पुनः अज्ञेय जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इसमें निम्नलिखित कवियों की कविताएँ संग्रहीत हैं।

१. प्रयागनारायण त्रिपाठी, २. कीर्ति चौधरी, ३. मदन वात्स्यायन, ४. केदारनाथसिंह, ५. कुँवर नारायण, ६. सर्वेश्वर दयाल सक्सैना आदि।

उक्त तीन 'तार सप्तकों' के सम्पादक एवं प्रेरणा के स्रोत अज्ञेय जी ही हैं। उन्हीं की प्रेरणा और प्रोत्साहन से प्रयोगवादी नूतन काव्यधारा सन् १९४३ से लेकर अब तक प्रवाहित हो रही है। प्रयोगवादी काव्यधारा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

१. इसमें प्रयोग ही को एक काव्य-जीवन माना गया है।
२. पुरानी परम्पराओं को निष्क्रिय घोषित किया गया है।
३ काव्य की पुरानी उपलब्धियों को निरर्थक बतलाया गया है।
४. कविता को जन-जीवन से उत्पन्न माना गया है।
५. शब्द-कोष को बच्चा मात्र माना गया है।
६. साधारणीकरण के स्थान पर कविता में विशिष्टीकरण की प्रतिस्थापना की गई है।
७. शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा गया है और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।
८. नये प्रतीकों एवं बिम्बों की योजना की गई है।

प्रयोगवादी नवीन काव्यधारा को जन्म देने और विकसित करने का श्रेय अज्ञेय जी को है। उन्होंने ही प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रवृत्ति एवं चिन्तन पद्धति का सर्वाधिक विवेचन किया है। प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रायः सभी कवियों ने

इस कविता के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। परन्तु वे परस्पर मेल नहीं खाते। इस सन्दर्भ में अज्ञेय जी का निम्न कथन दृष्टव्य है :

"वे सब किसी एक शक्ल के नहीं हैं, किसी एक मंजिल पर पहुँचे नही हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहों के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है ……… तथापि इतनी विभिन्नता के होते हुए भी काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है।"

अज्ञेय जी एक नूतन विचारधारा ही को लेकर चलने वाले नहीं हैं। अपितु नूतन काव्यधारा को लेकर चलने वाले कतिपय अन्वेषी कवियों को हिन्दी-पाठकों के समक्ष लाकर खड़ा कर दिया है। इनको प्रकाश में लाने वाले अज्ञेय जी ही हैं। अज्ञेय जी ने लिखा है :

"स्मरण रहे कि मूल योजना यही थी कि 'सप्तक' ऐसे कवियों को सामने लायेगा जिनके स्वतन्त्र संग्रह प्रकाशित नहीं हुए हैं और जो इस प्रकार भी 'नये' हैं। यदि प्रस्तुत संकलन के भी दो एक कवियों के स्वतन्त्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, तो वह इसी बात का द्योतक है कि 'तीसरा सप्तक' की पांडुलिपि बनने और उसके प्रकाशन में एक लम्बा अन्तराल रहा है। यों हम तो चाहते हैं कि सभी कवियों के स्वतत्र संग्रह छपें —बल्कि उन्हें एक सप्तक में लाने के कारण ही वह बिश्वास है कि उनके अपने-अपने संग्रह छपने चाहिए।"

अज्ञेय जी प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रेरक रहे हैं, वे इस धारा के यशस्वी कवि हैं। वे छायावाद एवं प्रगतिबाद पर आक्रमण करके नूतन वस्तु एवं नूतन शिल्प-विधान से युक्त नवीन काव्यधारा का विकास करने वाले हैं। उनको इस काव्यधारा में शीर्ष स्थान मिलता है।

उपसंहार—अज्ञेय के कलापक्ष, छन्द-विधान, बिम्ब-विधान एवं प्रतीक विधान में बड़ा वैविध्य, ताजगी और सूक्ष्मता है। परम्परित उपमानों एवं प्रतीकों को उन्होंने नवीन रूप ही नहीं दिया है. बल्कि बौद्धिक आसग भी प्रदान किया है। डॉ० जगदीश गुप्त के शब्दों में, "वस्तुतः अज्ञेय प्रयोगवादी 'नयी कविता' धारा के पुरोहित एवं प्रवर्त्तक ही नहीं अपितु कवि; वकील और जज भी हैं।

प्रश्न २ अज्ञेय जी के काव्य का इस प्रकार परिचय दीजिए कि उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट हो जाएँ।

उत्तर—'अग्रदूत' अज्ञेय जी का पहला काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् १९३३ में हुआ। इसमें उनकी नूतन प्रयोगवादी काव्यधारा का ही उन्मेष है। इस संग्रह की कविताओं में प्रणय का स्वर मुखरित हुआ है। इस संकलन में 'दीपावली का एक दीप' जैसी कुछ प्रतीकात्मक कविताएँ भी हैं। 'बत्ती' और 'शिखा', 'हास्य', 'घट' आदि कविताएँ अन्योक्ति मूलक हैं। 'माँझी गीत' में कवि ने

कर्त्तव्य और प्रेम का संघर्ष चित्रित किया है और कर्मशील बनने की प्रेरणा दी है। 'कवि', 'अपना गान', 'अग्रदूत' आदि कविताओं में अज्ञेय जी ने अपने काव्य सम्बन्धी विचारों को अभिव्यक्त किया है। अज्ञेय जी का यह प्रथम काव्य-संग्रह भाव, विचार, एवं शैली आदि सभी दृष्टियों से नवीनता और मौलिकता लिए हुए हैं।

चिन्ता—इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् १९४२ में हुआ। यह संग्रह दो भागों में विभक्त है। प्रथम खण्ड का शीर्षक 'विश्व-प्रिया' है और दूसरे खण्ड का शीर्षक 'स्थापन' है। प्रथम में अज्ञेय जी ने मनुष्य को उस प्रेमानुभूति को चित्रित किया है, जिसके फलस्वरूप वह सहज एवं स्वाभाविक रूप में नारी की ओर आकृष्ट होता है। द्वितीय खण्ड 'स्थापन' में कवि ने नारी के उस एकमात्र मार्ग का चिन्तन किया है, जिसको अपनाकर वह अपने जीवन में सुख एवं सन्तोष की साँस लेती है। इस संग्रह के दोनों खण्डों में अज्ञेय जी ने क्रमशः पुरुष और स्त्री के दृष्टिकोण से मानवीय प्रेम के उद्‌भव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, ह्रास, अन्तर्दमन, पुनरुत्थान और परम सन्तुलन की कहानी कहने का यत्न किया है।

इत्यलम यह संग्रह सन् १९०६ में प्रकाशित हुआ। यह निम्नलिखित चार खण्डों मे विभक्त है :

१. बन्दी का स्वप्न।
२. हिय हारिल।
३. वंचना के दुर्ग।
४. मिट्टी की ईहा।

बन्दी का स्वप्न नामक खण्ड में कुछ कविताएँ बन्दी जीवन से सम्बन्धित हैं। कुछ कविताओं में तत्कालीन क्रान्ति का स्वर मुखरित हुआ है। 'हिय हारिल' की अधिकांश कविताएँ करुणानुभूति से ओत-प्रोत हैं। इसमें प्रतीकात्मक कविताएँ भी हैं। 'हिय हारिल' को कवि ने अपना प्रतीक बनाया है। तीसरे खण्ड बंचना के दुर्ग' में प्रयोगात्मक एवं व्यंग्य-प्रधान कविताएँ हैं। इनको प्रयोगवादी नई काव्यधारा की प्रारम्भिक रचनाएँ माना जा सकता है। यह खण्ड अज्ञेय जी की नवीन का० - पद्धति का उद्‌बोधक है। चौथे खण्ड में कवि ने अपने जीवन का आदर्श अंकित किया है।

हरी घास पर क्षण भर—यह संग्रह सन् १९४९ में प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ कविताएँ आत्मान्वेषण से सम्बन्धित हैं, कुछ कविताओं में प्रकृति के मार्मिक दृश्यों का चित्रण हुआ है और कुछ कविताओं में प्रेमानुभूति का निरूपण हुआ है। 'हरी घास पर क्षण भर' सबसे लम्बी और मार्मिक कविता है। इसमें प्रतीकात्मक शैली में जीवन का चित्रण हुआ है। हरी घास स्वतन्त्र जीवन के आमन्त्रण का प्रतीक है। इस संकलन की कुछ कविताओं में काव्य का मौलिक स्वर क्या है? नई

शैली एवं नूतन अप्रस्तुत योजना कैसी होती है ? नये कवि का कर्त्तव्य क्या है ? आदि प्रश्नों पर अज्ञेय जी ने स्वतन्त्र विचार व्यक्त किये हैं।

बावरा अहेरी—अज्ञेय जी का यह संग्रह सन् १९५५ में प्रकाशित हुआ। इसकी रचनाएं अधिक सजीव और सुन्दर हैं। इसमें बावरा अहेरी सूर्य का प्रतीक है। वह अपने किरण जाल में वृक्ष, पुष्प, लता, पक्षी आदि सभी को फँसाकर खींचता है। संकलन की कुछ कविताएँ जीवन-दर्शन और कुछ प्रकृति-परक हैं। कुछ कविताएँ प्रणय-सम्बन्धी भी हैं। यह संकलन अज्ञेय जी के विकसित विचारों और नूतन काव्य-शिल्प का द्योतक है।

इन्द्रधनु रौंदे हुए थे—अज्ञेय का यह काव्य संग्रह सन् ५७ में प्रकाशित हुआ। इसका आरम्भ मंगलाचरण से हुआ है, जिसमें कवि ने विराट से करुणाकण की याचना की है। इस संग्रह की कुछ कविताओं में कवि ने वास्तविक सत्य के रूप का निर्णय किया है। इस प्रकार की कविताओं में 'सत्य' तो बहुत मिला, कविता उल्लेखनीय है। कुछ कविताओं में कवि ने अपनी रचना-पद्धति का प्रतिपादन किया है। कुछ कविताओं में अज्ञेय जी ने कविता के शब्दों की अभिव्यंजना सम्बन्धी विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में 'शब्द', 'मुझे दो शब्द', साधुवाद', 'देना जीवन', 'सर्जना के क्षण' आदि कविताएँ द्रष्टव्य हैं। 'नई कविता एक संभाव्य भूमिका' नामक कविता में नई कविता का घोषणापत्र प्रस्तुत करते हुए प्रयोगवाद सम्बन्धी कविताओं का विरोध करने वाले आलोचकों पर व्यंग्य-प्रहार किया है।

अरी ओ करुणा प्रभामय—इस संग्रह का प्रकाशन सन् १९५९ में हुआ। यह संग्रह चार खण्डों में विभक्त है—१. रोपयित्री, २. रूप-फेरी, ३. एक चीज का खाका, ४ द्वार-हीन द्वार। इस संग्रह की प्रायः सभी कविताओं में नई प्रयागवादी कविता की विशेषताओं का उल्लेख हुआ है।

आंगन पार द्वार— अज्ञेय जी का यह संग्रह सन् १९६१ में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह निम्नलिखित तीन खण्डों में विभक्त है :

१ अन्तःसलिला।
२. चक्रान्त शिला।
३. असाध्य वीणा।

यहाँ तक आते-आते अज्ञेय जी वस्तुवादी से रहस्यवादी बन गये हैं। यह उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति के नवीनतम रूप को प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अज्ञेय जी ने अपने काव्य की रचना 'सगनारा प्रेमी' और 'क्रान्तिकारी' बन्दी के रूप में आरम्भ की ओर वे उत्तरोत्तर जीवन, प्रकृति एवं विराट का सहारा लेकर सर्वत्र व्याप्त सौन्दर्य का

साक्षात्कार करने लगे। वे जीवन में व्याप्त विषमताओं और कुंठाओं से द्वन्द्व करते हुए वास्तविक तथ्यों का उद्घाटन करने की ओर उन्मुख हुए। अन्त में रहस्यवादी विचारक की भाँति आत्मान्वेषण और सत्यान्वेषण मे लीन हो गये।

प्रश्न ३—प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—अज्ञेय जी ने प्रकृति के संश्लिष्ट और खण्डित अनुभूतियों से परिपूर्ण दोनों ही प्रकार के चित्र दिये हैं। निम्न उदाहरण में शत्-शत् लहरों से उद्वेलित सागर का गत्यात्मक संश्लिष्ट चित्र द्रष्टव्य है :

विस्तृत अपार नीला,
ऊपर हलचल से भरा।
पवन के थपेड़ो से आहत,
शत्-शत् तरंगों से उद्वेलित।
फेनोंमियों से टूटा हुआ,
किन्तु प्रत्येक टूटने में।
अपार शोभा लिए हुए,
चंचल उत्कृण्ट—जैसे जीवन॥

एक उदाहरण और लीजिए :

हरियाली बिछाई तराई पर,
घाटी की पगदण्डी।
लजाई और ओट हुई—
फिर चंचलता रह न सकी।
फिर उसकी ओर झाँक गई।

प्रकृति के आलम्बन रूप में ये संश्लिष्ट चित्र बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं।

नाम परिणात्मक शैली—इस शैली में प्राकृतिक वस्तुओं के नाम मात्र ही गिनाये गये हैं :

आकाश भी तुम्हें दिया,
यह बौर, यह अंकुर, ये रंग, ये फूल, ये कोपलें।
ये प्रविधा कनी से भरी बालियाँ,
ये मैंने तुम्हें दीं,
आँकी-बाँकी रोता यह
भेड़ों पर छाग-छौने ये किलोलते,
यह तलैया, गलियारा यह,
सरसों के जोड़े, मौन खड़े पर बीते।

उद्दीपन रूप में—अज्ञेय जी ने उद्दीपन रूप में भी प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति के भयंकर रूप का एक चित्र देखिये।

हाँ, मुझे स्मरण है ।
दूर पहाड़ों से काले मेघों की बाढ़,
हथियों का मानों चिंघाड़ रहा हो घूम ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की,
रेतीले कगार का गिरता छप-छड़ाप ।
झंझा की फुसकार, तप्त,
पेड़ों का अररा के टूट-टूट कर गिरना ।
ओलों की चपत ।

रहस्यात्मक रूप में प्रकृति—अज्ञेय जी ने प्रकृति के रहस्यात्मक रूप में भी सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । वह प्रकृति के विभिन्न उपकरणों से कुछ बातें पूछता है, जिनको उसका प्रिय नहीं बतलाता ।

तू नहीं कहेगा ?
मैं फिर भी सुन लूंगा ।
किरण भोर की पहली भोलेपन से बतलावेगा
झरना-शिशु-सा अनजान उसे दुहरावेगा ।
घोंघा गीली पीली रेती पर धीरे-धीरे आंकेगा,
पत्तों पर मर्मर कनबतियों में जहाँ-जहाँ न फैलावेगा ।

अज्ञेय जी प्रकृति के अगोचर, अप्रमेय, अतीन्द्रिय रूप के दर्शन करते हैं । वे रहस्यवादी कवियों की तरह निर्गुण निराकार का निरूपण करते हुए कहते हैं :

रूपों में एक अरूप सदा खिलता है,
गोचर में एक अगोचर, अप्रमेय ।
अनुभव में एक अतीन्द्रिय,
पुरुषों के हर वैभव में ओझल,
अपौरुषेय मिलता है ।

प्रकृति के साथ तादात्म्य—अज्ञेय जी के काव्य में उनकी प्रकृति के प्रति तादात्म्य की भावना मिलती है । वे झरनों के साथ बहते हैं और पक्षियों के साथ गाते हैं । प्रकृति के सम्पर्क में आकर वे एक नया जीवन प्राप्त करते हैं :

मैं सोते के साथ रहता हूँ,
पक्षी के साथ गाता हूँ ।
वृक्षों की कोंपलों के साथ घरघराता हूँ,
और इसी अदृश्य क्रम के भीतर ही भीतर ।
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूँ,
नये प्राण पाता हूँ ।

प्रकृति का मानवीकरण—प्रकृति का मानवीकरण के रूप में अज्ञेय जी ने

बड़े भव्य चित्र अंकित किये हैं। वह एक सचेतन प्राणी की तरह कभी चुपके से घर में प्रवेश करती है, कभी बाहर घूमती है और कभी मानवों की भाँति व्यवहार करती हुई दिखाई पड़ती है :

सूनी सी साँझ एक,
दबे पाँव मेरे कमरे में आई थी
मुझको वहाँ देख,
थोड़ा सकुचाई थी,
तभी मेरे मन में यह बात आई थी,
कि ठीक है, यह अच्छी है।
उदास है, पर सच्ची है।
इसी की साँवली छाँह में कुछ देर रहूँगा,
इसी की साँस को लहर पर बहूँगा,
चुपचाप इसी के नीरव तलुओं की
लाल छाप देखता,
कुछ नहीं कहूँगा।

अज्ञेय जी के काव्य में छायावादी कवियों की तरह ही मादक, मोहक और मनोरंजक चित्र उपस्थित हुए हैं। उनके काव्य में प्रकृति अपने विभिन्न रूपों में उपस्थित हुई है। प्रकृति के साथ कवि का पूर्ण तादात्म्य रहा है। प्रकृति के अनेक संश्लिष्ट चित्र उपस्थित हुए हैं, किन्तु कुछ प्रकृति-वर्णन में भारतीय परम्परा का सौन्दर्य है, उसमें सूक्ष्म-निरीक्षण के साथ कल्पना का भी लालित्य है। इतना अवश्य है कि अज्ञेय जी के प्रकृति-वर्णन में बौद्धिकता का कुहरा सर्वत्र छाया रहता है।

प्रश्न ४—भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए।

स्मृति-संकेत

१. अज्ञेय जी के काव्य में विविध भावों का गहराई के साथ निरूपण हुआ है।
२. अज्ञेय जी की कविताएँ विचारात्मक और बौद्धिक भी हैं।
३. उन्होंने प्रेम की उत्कृष्ट भावना, कुण्ठा और घुटन उत्कृष्ट भाव व्यक्त किये हैं।
४. अज्ञेय जी की रहस्यात्मक अनुभूतियाँ भी सुन्दर बन पड़ी हैं।
५. प्रणयानुभूति का भी मार्मिक निरूपण हुआ है।
६. भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से अज्ञेय जी एक सफल कवि हैं।

उत्तर—अज्ञेय जी के काव्य में विभिन्न भावों का मार्मिक निरूपण हुआ है,

परन्तु बहुत से स्थलों पर अनुभूति के ऊपर बौद्धिकता और विचारात्मकता का कुहरा छाया रहता है। कहीं-कहीं पर किसी विशेष अनुगति में व्याप्त एक ही विचार अभिव्यक्त हुआ है। 'पान और फूल' कविता में विचार की प्रधानता है, 'अन्धकार में नींद', 'पराई राहें', अनुभव परिजन्य', 'चिड़िया ने कहा', 'सांस का पुतला' आदि विचार प्रधान रचनाएँ हैं। इनमें किसी एक क्षणिक विचार का ही निरूपण हुआ है।

अज्ञेय जी ने विचारात्मक कविताएँ ही अधिक लिखी हैं, जिनमें बौद्धिकता की प्रधानता है। कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं जिनमें भावानुभूति का अथाह सागर हिलोरे ले रहा है। 'भीतर जागा दाता' भावानुभूति प्रधान कविता है। इसमें आत्म-समर्पण किया है। 'पहचान' शीर्षक कविता में अज्ञेय 'स्मृति' भाव का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं :

तुम नहीं थीं, किन्तु ढलती धूप का कुछ खेल था—
ढलती उमर के दाग उसने धो दिये थे।
भूल थी, पर बन गई पहचान—
मैं भी स्मरण से नहा आया।

प्रेम की उत्कट भावना—'पलकों का कँपना' शीर्षक कविता में प्रेम की उत्कट भावानुभूति व्यक्त हुई है। प्रिय के पलकों का कँपना देखकर कवि ऐसा अनुभव करता है, मानों प्रिय उसे सर्वस्व दे रहा है। जिस क्षण प्रिय के पलकों का कँपना देखता है, वह क्षण ही तो उसका है, सभी समय पराया है :

और सब समय पराया है,
बस उतना क्षण अपना;
तुम्हारी पलकों का कँपना।

कुंठा और घुटन के भाव का निरूपण—'अन्तःसलिला' कविता में अज्ञेय जी ने कुण्ठा और घुटन के भावों का अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। कोई भी उसकी परवाह नहीं करता; उसकी उदारता पर नहीं सोचता, उसके हृदय में भावों को नहीं देखता, वह अगणित पैरों के नीचे रौंदी जाती है और वह अपने घाव स्वयं भरती हुई धूल-धूसरित सज्जा-हीन दशा में पड़ी रहती है :

अरे अन्तः सलिला है रेत,
अनगिनत पैरों तले रौंदी हुई अविराम
फिर भी प्यार अपने आप करती,
पड़ी सज्जा-हीन।
धूसर, गौर,
निरीह और उदास।

रहस्यानुभूति—अज्ञेय जी ने विराट आत्मा में तादात्म्य स्थापित करने के लिए कहीं-कहीं रहस्यात्मक अनुभूतियों को भी अभिव्यक्त किया है :

मैं सोते के साथ बहता हूँ,
पक्षी के साथ गाता हूँ,
वृक्षों की कोंपलों के साथ चरचराता हूँ।
और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूँ।
नये आकार पाता हूँ।

एक स्थल पर अज्ञेय जी ने विराट-सत्ता से आत्म-साक्षात्कार करने की अनुभूति का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है :

पर सबसे अधिक मैं,
वन के सन्नाटे के साथ मौन हूँ,
क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूँ,
जोडता है मुझको विराट से—
जो मौन, अपरिवर्तन है, अपोरुषेय है
जो सबको समाना है।

प्रणयानुभूति—प्रणयानुभूति के अन्तर्गत अज्ञेय जी ने आत्मा और परमात्मा के पाणिग्रहण का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। महाशून्य से परिणय करते हुए वे कहते हैं :

जा आत्मा, जा
कन्या--वधू—का
उसकी अनुगा,
वह महाशून्य ही अब मेरा पद,
लक्ष्य अन्न-जल, पालक कौंप,
आलोक धर्म !
तुझको वह एक मात्र सरसायेगा।
ओ आत्मा की
तू गई दरी।
ओ सम्पृता।
ओ परिणीता।
महाशून्य के साथ भाँवरे तेरी रची, गयीं

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अज्ञेय जी ने अनुभूति पूर्ण काव्य की रचना की है, परन्तु उस पर बौद्धिकता और विचारात्मकता का कुहासा छाया हुआ है।

प्रश्न ५—भाषा में नवीनता की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रयोगवादी नई कविता की भाषा और अज्ञेय जी।

नई कविता के सभी अनुयायी कवि प्राचीन भाषा तथा प्राचीन अप्रस्तुत योजना के विरोधी हैं। वे पुराने शब्द-जाल को खोखला एवं शून्य बताते हैं। इसीलिए उनके स्थान पर 'नई भाषा' नये शब्द एवं नई अप्रस्तुत-योजना को सभी ने महत्व देने की कोशिश की है। नई कविता में नये प्रतीकों का अधिक प्रयोग हुआ है। नई कविता में प्रयुक्त शब्दावली के सम्बन्ध में अज्ञेय जी की मान्यता निम्न प्रकार है :

"जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने वाले कवि की कल्पना का किसी हद तक गूढ़, अलौकिक अथाह दीक्षा द्वारा गम्य हो जाना अनिवार्य है। किन्तु यह उनकी आशक्ति नहीं विवशता है, धर्म अपधर्म है।"

अज्ञेय जी की काव्य-साधना में प्रयोगवादी कविता की समस्त विशेषताएँ मिलती हैं। वे इस नूतन काव्य-धारा के जनक ही नहीं, अपितु उसके पोषक भी हैं।

भाषा में विविधता—अज्ञेय जी के काव्य में भाषा की विविधता है। एक ओर यदि क्लिष्ट संस्कृत शब्दावली का प्रयोग हुआ है, दूसरी ओर ग्राम्य एवं देशज शब्दों की भी भरमार है। पुरातन प्रयोगों के आधार पर शब्दावली चयन करने के साथ ही अज्ञेय जी ने नयी क्रियाओं का भी आविष्कार किया है। वैसे संस्कृत की तत्समता की ओर अज्ञेय जी की प्रवृत्ति अधिक है।

संस्कृत तत्सम शब्द—'अपलक', 'जिजीविषा', 'उदीच्य', 'उदग्र', 'गैरिक पुंज', 'परिणाम', 'स्यात्', 'आहूत', 'सम्पत्ति' 'ऋतु', नीरन्ध्र', 'निभृत' 'चक्रान्त', 'अवदात आदि।'

देशज या ग्राम्य—देशज शब्दों का प्रयोग अज्ञेय जी ने भावाभ्यक्ति को सर्वजन सुलभ बनाने के लिए किया है। ऐसे शब्द स्थान विशेष या प्रान्त में ही बोले जाते हैं। जैसे :

अंगूरी कलश, तिसूल, करो, कलौस, कीन्याँ, फिरकी, छीनी, छुअन, आटे कनबत्तियाँ, दहुँ, ओक, खुदबुद, अपने ताई आदि।

स्थानीय क्रियाओं का प्रयोग—गोड़े गये ढरकी, दिपता, झिपता, घूरते, अँगोरते, लखना, नितारा, विलमना आदि।

नूतन प्रयोग—अज्ञेय जी ने अपनी कविता को नूतन प्रयोगों से समृद्ध बनाने के लिए कितनी ही नई एवं स्वयं अविष्कृत क्रियाओं को काव्य में स्थान दिया है। जैसे :

बतियाना, मतियाना, रीताना, समीता निमूजती, डकेरूँगी, स्वीकारो आदि।

कतिपय नये विशेषणों का प्रयोग करके अज्ञेय जी ने अपनी प्रयोगशीलता का परिचय दिया है। जैसे 'बेटक', 'सूखी रेत', 'तपसी वासनायें' 'सर्वाकारी आँसू' शिथिल रोमांच आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अज्ञेय जी ने अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए नूतन शब्दावली का आविष्कार किया है। लोक-प्रचलित शब्दों को अपनाने की उनकी अधिक से अधिक प्रवृत्ति रही है। किन्तु इतना होने पर भी अज्ञेय जी की भाषा में तत्सम शब्दावली के अगाध मोह के कारण उनकी शब्दावली से अभिजात की गंध आती है।

प्रज्ञापरिमित्ता, अंगनद्ध जैसे पारिभाषित शब्दों के प्रयोग से कहीं-कहीं भाषा में अप्रतीतत्व दोष भी आ गया है। कहीं-कहीं संस्कृत के 'तरे और वंम्' अर्थहीन अवतरणों की यह हीन भीड़' आदि ऐसे प्रयोगों से भाषा में कृत्रिमता आ गई है।

प्रश्न ६—"अज्ञेय जी ने प्रकृति के नूतन एवं पुरातन उपकरणों को लेकर बड़े सुन्दर और संजीव बिम्बों की योजना की है।"— इस कथन की व्याख्या करते हुए अज्ञेय जी के काव्य में बिम्ब-विधान पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—बिम्ब-योजना की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए।

उत्तर- अज्ञेय जी ने प्रकृति के नये एवं पुराने उपकरणों को लेकर सुन्दर और संजीव बिम्बों की योजना की है। कुछ चित्र तो इतने अधिक सुन्दर बन पड़े हैं कि वस्तु अथवा भाव का चित्र ही साकार हो उठता है। 'बना दे चितेरे' कविता में कवि ने 'उछली हुई मछली' 'जिसकी मरोड़ी हुई देह'—बल्ली में जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है, कहकर मछली का जो बिम्ब हमारे सामने प्रस्तुत किया है, उसमें मानव की उस सनातन भावना का चित्र साकार हो उठा है, जिसके परिणाम स्वरूप वह दीर्घकाल तक जीवित रहने के लिए विविध प्रकार के साधन एकत्र करता है, वृहद भवन बनाता है और सतत् प्रयत्नशील रहता है।

'भीतर जागा दाता' कविता में मतियारे सागर के लहराने, तरंग की वीणा पर पवन के गाने, किरन अपसराओं के नाचने आदि का दृश्य पाठकों के समक्ष संगीत सभा का समाँ बाँध देता है। 'पहचान' कविता में अज्ञेय जी :

किन्तु ढलती धूप का कुछ खेल था,
ढलती उमर के दाग उसने धो दिये थे।

कहकर ऐसा सजीव बिम्ब-विधान किया है कि पाठकों के नेत्रों के समक्ष ऐसी प्रौढ़ा स्त्री का सुन्दर चित्र अंकित हो जाता है कि जो पहले तो पवित्र और शीलवती रही है, परन्तु युवावस्था में उसने शील और पवित्रता की चिन्ता नहीं की और प्रौढ़ होने पर उसने समस्त पाप धो डाले हैं और अब वह शील सम्मान युक्त और पवित्र जान पड़ती है।

'सूनी साँझ' शीर्षक कविता में अज्ञेय जी ने दबे पैर कमरे में आ जाने का बिम्ब प्रस्तुत करते हुए एक ऐसा बिम्ब प्रस्तुत किया है, जिसमें पाठक किसी अनायास साँवली सलोनी नवयुवती की साकार मूर्ति को देखने लगता है, जो चुपके से कमरे में शाम के समय आ गई है। जो ठीक अच्छी और सच्ची जान पड़ती है, किन्तु उदास है। इस बिम्ब-विधान में प्राचीन और नवीन उपकरणों के प्रयोग से सजीवता आ गई है।

'चक्रान्त-शिला' खण्ड की चौथी कविता में किरण के रूप में एक ऐसी प्रेरणामयी नारी का चित्र अज्ञेय जी ने प्रस्तुत किया है, जो अपनी प्रेरणा एवं अनुकम्पा से पत्थर जैसे अकर्मण्य एवं निष्क्रिय व्यक्ति को भी कर्मशील बनाने एवं उसके द्वारा नूतन मन्दिर का निर्माण करने तथा नये जागरण की भावना को भरने का संकल्प करती है तथा अनुराग प्रदान करके उसे कर्म पथ पर अग्रसर कर देती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अज्ञेय जी ने अपनी कविताओं में प्राचीन एवं नवीन अप्रस्तुतों के माध्याम से नये-नये बिम्बों का ऐसा सजीव विधान किया है कि जिससे पाठकों के सामने भावों एवं रूपों के सजीव चित्र अंकित हो जाते हैं। इस प्रकार अज्ञेय जी की अभिव्यक्ति में सरलता आ गई है और उनके काव्य में अभिव्यक्त भावों को समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। परन्तु इन बिम्बों में किसी दृश्य को संश्लिष्ट करने की उतनी शक्ति नहीं है, जितनी कि वे एक-एक वस्तु को तालिका देने में अधिक निपुण दिखाई देते हैं। अज्ञेय जी बिम्बों द्वारा खण्ड-चित्र प्रस्तुत करने में ही सफल हुए हैं। रूप-बोध अथवा सौन्दर्य-बोध की अधिक सामग्री लुटाने में उनको सफलता नहीं मिली है। अज्ञेय जी की कविताओं के बहुत से बिम्ब अस्पष्ट और अर्थहीन हैं। अज्ञेय जी की बिम्ब योजना में नूतनता एवं मौलिकता अवश्य है, परन्तु भाव-प्रणवता एवं भावानुरूप सौन्दर्य-बोध की मात्रा अधिक नहीं दिखाई देती।

प्रश्न ८—अप्रस्तुत-योजना (अलंकार विधान) की दृष्टि से अज्ञेय जी के काव्य की समीक्षा कीजिए।

स्मृति-संकेत

१, अज्ञेय जी ने नये उपमानों का प्रयोग किया है।
२. उपमानों को हमारे जीवन और जगत् से चुना गया है।
३. सादृश्य मूलक उपमा आदि अलंकारों का ही प्रयोग अधिक हुआ है।
४. रूपकों के द्वारा ही अज्ञेय जी ने सुन्दर अभिव्यक्ति की है।
५. माला रूपक एवं सांगरूपक भी प्रचुर बन पड़े हैं।
६ उत्प्रेक्षा अलंकारों के द्वारा अज्ञेय जी ने अपने मनोभावों को विविध रूप में अभिव्यक्त किया है।

७. मानवीकरण अज्ञेय जी का प्रिय अलंकार है ।

विरोधाभास अलकार के द्वारा अज्ञेय जी ने नूतन सौन्दर्य की सृष्टि की है ।

उत्तर—नये उपमान—अज्ञेय जी ने अभिव्यक्ति की स्पष्टता देने के लिए नये उपमानों का प्रयोग किया है। वे नूतन और नवीन लगते हुए भी जीवन और जगत् से परे की वस्तु नहीं हैं। अज्ञेय जा के अप्रस्तुत-विधान का सबस बड़ा विशेषता यह है कि उन्होंने जीवन और जगत से ही विविध पदार्थों का चयन करके अप्रस्तुत —उपमानों को रखा है। अज्ञेय जी ने प्रायः सादृश्य मूलक अलंकारों को ही स्थान दिया है।

उपमा

कटी सुँडों सी डालें ।

× × ×

स्फाटिक मुकुट सा निर्मल वादी का स्वर ।

× × ×

अरुणाली पर घुटन की एक रुपाली सी छा गई ।

कहीं-कहीं पूर्णोपमा का बड़ा ही सुन्दर और सजीव प्रयोग हुआ है। निम्न उदाहरणों में उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक उपमा के चारों अंग आ गये हैं।

१. शब्द गये बिखर, धटी धीमी से जैसे फटकर खो जाते हैं बीज ।
२. और मुक्त स्त्रोत-सा सभी ओर चला उजाला ।
३. वायु सी नद भरा में उड़ जाता हूँ ।
४. रोमांच बिजली-सा सबके तन में दौड़ गया ।
५. सभी पुराने लुगड़े से झर गये ।

उल्लेख—उल्लेख अलंकार के द्वारा ही अज्ञेय जी ने विशद् चित्रण किया। 'आध्य वीणा' में उन्होंने ध्वनि के विविध रूपों को अभिव्यक्त किया है।

रूपक—अज्ञेय जी की कविता में निरंग, माला और साँग रूपकों का प्रयोग हुआ है। जैसे :

निरंग रूपक

१. धरती सवत्सा कामधेनु ।
२. लोचन दो—
   सम्पृक्ति निविड़ के स्फटिक निर्मल वादियाँ ।
३, यादें ममताही बाहें ।
४. साँस का पुतला हूँ मैं
५. काल की मुष्ठि गदा ।

६. मैं बज्र कठोर हूँ।

माला रूपक :

माला रूपक में अज्ञेय जी ने एक ही उपमेय के लिए अनेकों उपमानों की योजना की है। निम्न उदाहरण में गौतम बुद्ध के लिए उपमानों की माला सी-बना दी गई है :

"ओ मूर्ति ! वासनाओं के विलय ! अदय अक्रोश के विश्राम ।
वस्तु तत्व के बंधन के छुटकारे के ओ शिलाभूत संकेत ।
ओ आत्मसाक्ष्य के मुकुर ! प्रतीकों के निहतार्थ ! प्रभा कारण ।
और उद्गतियों के आयाम ! ओ निश्छाप, अरूप अप्रतिम प्रतिभा ।
ओ निः कंपन ! स्वयं सिद्ध !"

सांग रूपक :

साँग रूपक के द्वारा अज्ञेय जी ने जिन सजीव चित्रों का निर्माण किया है, उनमें गयात्मकता। साँग रूपक के द्वारा वे सागर पर मचलती हुई लहरों का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं :

मतियाना सागर लहराया ।
तरंग पंखयुक्त वीणा पर पवन ने भर उमंग गाया ।
फेन झालदार मखमली चादर पर मचलती किरन-अप्सरायें भारहीन
पैरों से थिरकी-जल पर डालते ही छाप छोड़ पल-पल बदलती ।
दूर धुंधला किनारा झूम-झूम आपा डगमगाया दिया ।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा अज्ञेय जी ने अनेक सुन्दर चित्र अंकित किए हैं :

१. तुम्हारी पलकों का कँपना ।
मानो दीखा तुम्हें लजीला—
किसी की कली के खिलने का सपना ।
२. आँसू बूंद की ढरकन—
इतनी कोमल,
तरल कि झरते झरते—
मानो हरसिंगार का फूल बन गई ।
३. दूर पहाड़ों के काले मेघों की बाढ ।
हाथियों का मानो चिंघाड़ रहा हो यूथ ।
४. राज मुकुट सहसा हल्का हो गया ।
मानो हो फूल सिरस का ।

मानवीकरण

मानवीकरण अज्ञेय जी का सर्वप्रिय अलंकार है। इसके द्वारा उन्होंने बड़े संजीव चित्र अंकित किये हैं ;

१. हरियाली बिछ गई तराई पर,
घाटी की पगदण्डी लजाई और ओट गई—
पर चंचल रह न सकी,
फिर उसकी ओर झाँक गई ।

२. पथ सोया ही रहा,
किनारे के वृक्ष चौंके नहीं।
न काँपी डाल,
स पत्ती कोई दरकी।

विरोधाभास—विरोधाभास अलंकार का भी अज्ञेय जी के काव्य में सुन्दर प्रयोग हुआ :

१. जो पास कहे,
वे ही तो सबसे दूर रहे।
२. जैसे शीतल अनल शिखा न है।

दृष्टान्त

उसकी मरोड़ी हुई देह गली में,
उसकी जिजीविषा की उलट आतुरता प्रखर है
जैसे तड़िल्लता में दो बालकों के—
बीच के खिचान सब कौंध जाते हैं।

समासोक्ति

अरे अन्त:सलिला है रेत,
अनगिनत पैरों तक रौंदी हुई अविराम,
फिर भी घाव अपने आप भरती।
पड़ी सज्जा-हीन।
धूमर-गौर।
निरीह और उदार।

रूपकातिशयोक्ति

वासना को बाँधने को उमड़ी —
जो स्वर तार बिछाती है—
आह !
उसी में किसी एकान्त निविड़—
वासना थरथराती है।
तभी तो साप की कुण्डली हिलती नहीं।
फन डोलता है।

ध्वनि व्यंजना

१. पँक्तियों पर बूँदों की पटपट
२. रेतीले कगार पर गिरना छप छड़ाप
३. मेह से बहते जल की छुल-छुल
४. संध्या गो-धूली की लघु टुन-टुन

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अज्ञेय जी ने विविध पुरातन एक नवीन अलंकारों का प्रयोग करते हुए अनेक संजीव एवं मार्मिक चित्रों को अंकित किया है। इस अप्रस्तुत-योजना में परम्परा का अधिक पालन दिखाई देता है। साथ ही प्रयोगों में नूतनता और मौलिकता भी है। लाक्षणिकता, उपचार-वक्रता एवं प्रतीकात्मकता का महत्व है।

गजानन माधव मुक्तिबोध

प्रश्न १—मुक्तिबोध की कविताओं की सामान्य विशेषताएँ बताते हुए उनके काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—**शिल्प-विधान**—मुक्तिबोध ने लम्बे रूपकों के सहारे हृदय की बात कही है। इनके काव्य को हम रूपक-प्रधान कथात्मक-काव्य कह सकते हैं। मुक्तिबोध के इन लम्बे-लम्बे रूपकों के बारे में एक बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए कि वे 'रामचरित मानस' के सांग रूपकों की भाँति स्पष्ट नहीं है। इनके रूपक संकेत-प्रधान और चमकदार हैं। इनका लक्ष्य अलंकार-विधान न होकर अपने हृदय की बात कहना रहता है। इस कारण इनके कथ्य में वास्तविक अर्थ खोजने के लिए पाठक को पर्याप्त श्रम करना पड़ता है। विश्वभर 'मानव' ने ठीक ही लिखा है कि "इनका काव्य कुछ इस प्रकार का है कि उसकी टेकनीक को समझे बिना उसके सौन्दर्य का हृदयंगम नहीं किया जा सकता है।"

अनुभूति की सच्चाई—मुक्तिबोध की रचनाएँ किसी सीमा तक विवरणात्मक एवं विचार-प्रधान हैं और प्रथम पाठ में नीरस, अस्पष्ट और उबाने वाली लगती हैं, परन्तु पाठक यदि धैर्यपूर्वक पूरी रचना पढ़ लेता है, तो अन्त में अच्छा प्रभाव लेकर उठता है। प्रभावित होने के बाद वह एक के बाद दूसरी रचना पढ़ने लगता है। सही बात यह है कि मुक्तिबोध ने जो भी लिखा है, सशक्त ढंग से लिखा है। उनकी अभिव्यक्ति शैली सहृदय पाठक को नीचे से ऊपर तक झकझोर डालती है और उसे अपने सम्बन्ध में, देश और विदेश के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक सोचने को विवश कर देती है। इनकी रचना पाठक को दृष्टि देती है तथा उसको जीवन-मूल्यों के प्रति जागरूक बनाती है। सारांश यह है कि मुक्तिबोध की रचनाओं में अनुभूति की सच्चाई का गुण सर्वाधिक मुख्य दिखाई देता है। इसी कारण इनकी कविताओं की प्रदीर्घता अवांछनीय नहीं बन पाई है। इनकी लम्बी कविताएँ जिन विवरणों को लेकर चलती हैं, वे पाठक के अन्तःकरण में ऐसे अनेक मानस बिम्ब जगाती हैं, जिनसे जीवन की महत्त्वपूर्ण स्थिति का एक वृहद्‍ चित्र खड़ा हो जाता है। "वातावरण के चित्रण उस परिवेश का परिचायक है, जिसमें रुद्ध मानवता मरणासन्न स्थिति में पहुँचकर अन्तिम सांस ले रही है।"

प्रगतिवादी दृष्टि—अपनी रचनाओं में मुक्तिबोध ने जिस वातावरण की सृष्टि की है, वह छायावादी कोमलता से कोसों दूर है। उसमें आतंक और कठोरता का साम्राज्य है। उनका विश्वास था कि मानव-सभ्यता का संकट काल उपस्थित

है। मनुष्य को उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित करा देना चाहिए। ऐसा करते हुए उन्होंने मानव को आतंकित करने का प्रयास करके उसके भीतर आशा का संचार करके उसे आतंक से मुक्त करना चाहा है। मुक्तिबोध संघर्ष में विश्वास करते हैं, पराजय में नहीं था। इनकी दृष्टि आलोकमयी है :

समस्या एक—
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त।

यह तुलसी के 'रामराज्य' के समान कल्याणकारी राज्य का सुख-स्वप्न है। 'एक भूतपूर्व विद्रोही, का 'आत्म-कथन' के अन्तर्जन वह स्पष्टत: कहते हैं :

यही एक आशा है कि
मिट्टी के अँधेरे में उन
इतिहास स्तरों में तब
हमारा भी चिह्न रह जायगा।

फैंटेसी की कला– मुक्तिबोध बाह्य यथार्थ के द्वारा उत्पन्न अपने हृदय को प्रतिक्रिया की कल्पना के योग के साथ चित्रात्मक शैली में व्यक्त करते हैं। इन चित्रों में बिम्बों, प्रतीकों और रूपकों की भरमार रहती है। ये प्राय: अद्भुत और विलक्षण दिखाई देते हैं। कहीं एकालाप है, कहीं वार्तालाप है, कहीं कवि-कथन है। इनकी अनेक शब्द-ध्वनियाँ और भाव-ध्वनियाँ पाठक के हृदय में काफी समय तक गूँजती रहती हैं। सुन्दर की तुलना में असुन्दर उपमानों के प्रति इनका झुकाव अधिक रहता है—चांद की खोपड़ी इन्हें गंजी दिखाई देती है, ज्योत्सना को यह राख समझते हैं और बादल इनके लिए रजाई के चिथड़े हैं।

भाषा-नीति अत्यन्त उदार—मुक्तिबोध भाषा के प्रति अत्यन्त उदार दृष्टिकोण रखते हैं। अपने मन की बात कहने के लिए यह प्रत्येक शब्द को उपयुक्त समझते हैं। इन्होंने संस्कृत के अतिरिक्त फारसी, अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग नि:संकोच किया है। इन्होंने अनेक ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है—उन्होंने भूगोल, इतिहास, गणित, ज्यामिति, विज्ञान, व्याकरण, मनोविज्ञान, हठयोग के क्षेत्र से बहुत से शब्दों को उठाकर बेफिक्री के साथ प्रयुक्त किया है। इनकी भाषा में शब्दों के अशुद्ध प्रयोग भी पाए जाते हैं।

काव्य का विकास-क्रम—मुक्ति बोध ने नियमित रूप से काव्य-रचना सन् १९३५ से प्रारम्भ की थी। उनकी प्रारम्भिक रचनाएँ—सन् १९३५ से सन् १९५० तक के काल की रचनाएें—छायावादी प्रभाव से ओत-प्रोत हैं। इन कविताओं को छायावादी कविताओं की श्रेणी में सरलता से रखा जा सकता है।

सन् १९४० के उपरान्त उनकी कविताओं में प्रगतिवादी स्वर सुनाई देता है। मार्क्सवाद से प्रभावित मुक्तिबोध ने प्रगतिवादी रचनाएँ लिखीं। 'तारसप्तक' में ये ही रचनाएँ संकलित हैं। इस स्वर-परिवर्तन का कारण स्वयं इन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—"१९३५ से १९४२ तक पाँच-सात साल मानसिक संघर्ष, वर्ग-सघर्ष और व्यक्तिवाद के वर्ष थे। सन् १९४२ के प्रथम और अन्तिम चरण में एक ऐसी विरोधी शक्ति के सम्मुख आया, जिसकी प्रतिकूल आलोचना से मुझे बहुत कुछ सीखना था। क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ।" (तार सप्तक)

यहाँ इनकी जीवन-दृष्टि प्रायः बदल ही गई। उन्होंने जीवन में सुन्दर की अपेक्षा असुन्दर और कुरूप को अधिक देखा। इनका मुख्य कारण इनके जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियाँ थीं, यद्यपि कुछ आलोचकों का कहना यह है कि "इस प्रकार मुक्तिबोध का काव्य नूतन परिवेश में प्रकट हुआ। यह नूतन परिवेश समाज का परिवेश था।"

प्रश्न २—मुक्तिबोध के काव्य की विषयगत विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३—मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—आधुनिक जीवन-मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति—आधुनिक जीवन-मूल्यों को लेकर मुक्तिबोध ने बड़ी ही सशक्त अभिव्यक्ति की है। इसके लिए उन्होंने नये विषय, नये संदर्भ चुने हैं तथा आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्ति की है।

मुक्तिबोध ने आधुनिक समाज की विभिन्नता, विवशता और विसंगति को चित्रित करने के लिए ऐसे विषयों को लिया है जो जीवन के यथार्थ से अपना सम्बन्ध रखते हैं तथा जो बिल्कुल नये हैं। श्री शमशेर बहादुर के शब्दों में 'शिलाओं पर शिलाएँ, अनन्त पगडण्डियाँ, जैसे मालवा के पठार और मध्य प्रदेश की ऊबड़-खाबड़ धरती और आतंकमय, रहस्यमय इतिहास और इनके बीच लहू-लुहान मानव, यह मुक्तिबोध का विस्तृत कलंक है, जिसे कविता की भाषा में कहा गया है और जिस पर मुक्तिबोध ने अपनी कविता को उतारा है।"

मुक्तिबोध द्वारा गृहित नये सन्दर्भों के विषय में ओमप्रकाश अग्रवाल ने भी इसी प्रकार की बात कही है, "सामयिक जीवन में गतिमान द्वन्द्वात्मक विभेदों के चुभते हुए अस्तित्व को सहकर और संघर्ष के आघातों को पूर्णतया झेलकर गठित होने वाले प्रतिनिधिक व्यक्ति का समुचित आभास हमे मुक्तिबोध के काव्य में मिलता है।"

मुक्तिबोध ने निम्न मध्यमवर्ग की उस जीवन-दृष्टि का चित्रण किया है जो वर्ग-संघर्ष की आग में पड़ कर क्रान्ति की भावना को पनपाती है। उसके लिए उन्होंने विविध दृश्यों के सजीव चित्र उतारे हैं।

अनुभव जगत के अभ्यान्तर एवं बाह्य पक्षों के द्वन्द्वपूर्ण अन्तःसम्बन्धों की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध की कविता में बाह्य और अर्न्तद्वन्द्वों का सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है। जहाँ बाह्य जगत् अन्तर्मन में बिम्बित होता है; वहाँ वह मन की गुत्थियों को लेकर बाहर प्रकट होता है। इस प्रकार मुक्तिबोध में अन्तःकरण की गुत्थियों का चित्रण वस्तु जगत की विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से किया है—यह चित्रण प्रायः बौद्धिक स्तर पर किया गया है :

जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं का घटनाओं का
बाहरी दुनियाँ में
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनियाँ में
चलता है द्वन्द्व।

श्रमशील मानवता का चित्रण—मुक्तिबोध ने श्रमिक वर्ग तथा जन-साधारण के जीवन की घुटन के अनेकानेक वर्णन लिखे हैं। इनके प्रति मुक्तिबोध ने गहरी सहानुभूति व्यक्त की है :

झुलसी हुई आत्मा की अगनित लकीरें

यान्त्रिक यथार्थवाद की व्याख्या—आधुनिक यथार्थवाद, यान्त्रिक यथार्थवाद के स्वरूप की सीमाओं को सम्भवतः मुक्तिबोध ने ही सर्वप्रथम पहचाना था। उन्होंने यथार्थ के संसार के अन्तर्द्वन्द्व को लेकर अनेक चित्र उजागर किए हैं। लकड़ी का बना रावण, परित्यक्त सूनी बावड़ी, चाँद की आड़ी-तिरछी किरणें आदि अनेक चीजें उनकी कविता में एक साथ पाई जाती हैं। यह अदृश्यता एवं विशृंखलता प्रायः अचम्भे में डाल देती हैं।

परम्परा से विद्रोह—मुक्तिबोध का काव्य चिन्तन-परक है। परन्तु उसमें न तो दार्शनिकता का पुट है और न मार्क्सवादियों की निश्चित विवेचना ही है। उसमें है संत्रास, वेदना, आतंक एवं हा-हाकार। कतिपय समीक्षकों ने उनके काव्य की तुलना "जलते हुए अंगारे पर चलने वाले व्यक्ति की मनःस्थिति से की है।" यह ठीक ही है।

छायावादी कवि विद्रोही थे, परन्तु वे प्राचीन संस्कारों से अपने आपको मुक्त नहीं कर सके। मुक्तिबोध ने परम्परा एवं पूर्व संस्कारों से अपने आपको पूर्णतः मुक्त कर लिया। संवेदना और शिल्प दोनों ही स्तरों पर हमें उनके काव्य में परम्परा के पूर्ण विद्रोह दिखाई देता है।

फैन्टेसी-शैली का ग्रहण—इसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। उनकी फैन्टेसियाँ उनके अनुभवों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

काव्य-शिल्प के नये प्रयोग—मुक्तिबोध की भाषा अनगढ़ और ऊबड़-खाबड़ है। एक आलोचक ने लिखा है कि संत्रासता और स्वाभाविकता के कवि की भाषा तो अनगढ़ होनी ही चाहिए, यथा—"मुक्तिबोध की भाषा तो कभी संस्कृतनिष्ट

सामासिक पदावली की अलंकृत दीपिका से गुजरती है, कभी अरबी-फारसी तथा उर्दू के नाजुक लचीले हाथों को थाम कर चलती है, कभी अँग्रेजी-की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठकर जल्दो से खटाक-खटाक निकल जाती है और कभी विशाल जन-समूह के शोर गुल और धक्के-मुक्के के बीच एक-एक पर तीव्र दृष्टि डालती हुई रुक कर चलती है।"

मुक्तिबोध ने अनेक नवीन बिम्बों का प्रयोग किया है जिन्हें वे प्रतिदिन की वस्तुओं अथवा घटनाओं से लेते हैं। उनके बिम्ब भी अनगढ़ रहते हैं। उनके पीछे एक आन्तरिक कहानी रहती है, जो जीवन की विषमता को करुणात्मक ढंग पर व्यक्त करती है।

इनके प्रतीकों की भी यही स्थिति है। वे भी वस्तु जगत से गृहित हैं। मुक्तिबोध ने अधिकांशतः मशीनी युग की उपेक्षित वस्तुओं को ही अपने काव्य में प्रतीक द्वारा ग्रहण किया है।

मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन—मुक्तिबोध नन्ददास की भाँति न जड़िया है और न मध्यकालीन कवियों की भाँति गढ़िया है। वह तो एक लोहार हैं और सुनार की भाँति सौ ठुक-ठुक करके अपनी बात न कह कर लोहार की भाँति एक ही चोट में खटाक से अपनी बात कह देते हैं। उनका मूल्यांकन करते हुए डॉ० कान्ति कुमार ने ठीक ही लिखा हैं कि "मुक्तिबोध के कवि-कर्म की तुलना हम लुहार की उस लौहशाला से कर सकते हैं, जहाँ भट्टी में अंगारे दहक रहे हैं, चिनगारियाँ उड़ रही है, धौंकनी चल रही है निहाई पर दहकता हुआ लौहखण्ड सँड़ासी से पकड़ कर हथौड़ों से पीटा जा रहा है और निश्चित आकार में ढाला जा रहा है। मुक्तिबोध कविता के लुहार हैं और उनकी कविता संसार जीवन की लौहशाला है।"

प्रश्न ४—नयी कविता की विशेषताओं के आधार पर मुक्तिबोध के कविता-संसार का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५—नयी कविता में मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित कीजिए।

सामान्य परिचय—यद्यपि मुक्तिबोध ने सन् १९३५ में छायावाद के युग में कविता करना प्रारम्भ कर दिया था, तथापि उनकी ख्याति उस समय हुई जब हिन्दी में प्रयोगवाद का प्रवर्तन हो रहा था। अज्ञेय द्वारा सम्पादित तारसप्तक (सन् १९४३) में प्रकाशित रचनाओं के द्वारा हिन्दी-संसार ने मुक्तिबोध को प्रगति एव प्रयोग के कवि के रूप में जाना।

आज हिन्दी में जो कविता धारा चल रही है, वह नयी कविता के नाम से जानी जाती है। इसका बीजारोपण सन् १९४० में हुआ था, सन् १९५४ में उसका एक निश्चित रूप सामने आया तथा सन् १९६० से वह एक विकसित रूप ग्रहण करके अपने पथ पर अग्रसर है। 'नयी कविता' किस रूप में प्रयोगवाद के प्रति ऋणी है, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। हम तो केवल यह देखना चाहते है कि 'नयी

कविता' की मान्य प्रवृत्तियाँ मुक्तिबोध की कविता में किस रूप में तथा किस सीमा तक परिलक्षित होती हैं।

नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—नयी कविता की सामान्यतः मान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं :

१. पुरातन जीवन-मूल्यों एवं परम्परा की अस्वीकृति, २. वैयक्तिकता अर्थात् महम्वादी मनोवृत्ति, ३. मानववाद, ४. लघु मानव की प्रतिष्ठा, क्षण, ५. क्षण का महत्व तथा ६. शिल्प का नयापन।

"उन प्रवृत्तियों का श्री गणेश जिन कवियों में दिखाई देता है, उसमें मुक्तिबोध भी एक हैं। कुछ समालोचक तो शैलीगत नयेपन का शुभारम्भ मुक्तिबाध से हो मानते हैं', यथा, मुक्तिबाध ने हिन्दी-कविता में नये वस्तु का तथा नयी कथ्य-शैली का प्रयोग किया। नये काव्य की सामाजिक तथा तार्किक पृष्ठिभूमि को निर्मित किया। नयी कविता से काव्यशास्त्र और नये ललित बोध के सौन्दर्य-शास्त्र का प्रारम्भ मुक्तिबोध से होता है।

(डॉ० रामेश्वरदयाल सक्सेना)

नयी कविता और मुक्तिबोध—मुक्तिबोध के काव्य से हमको जिस आत्म-संघर्ष की अभिव्यक्ति मिलती है, वह वस्तुतः नयी कविता की आधारशिला है। यह आत्म-संघर्ष वस्तुतः ही नये मानव की कहानी है। मुक्तिबोध के काव्य में हमको आत्म चेतन सामंजस्य दिखाई देता है। यही वस्तुतः नयी कविता के मानववाद का द्वार है। मुक्तिबोध के काव्य में शिल्प की नवीन पद्धतियों के श्रीगणेश की चर्चा हम अभी-अभी कर ही चुके हैं। अतः यह निर्विवाद है कि मुक्तिबोध नयी कविता के कवि हैं।

'तार सप्तक' में मुक्तिबोध हमारे सामने समाजवादी यथार्थ में कवि के रूप में आते हैं। उनके काव्य में जिस विश्वशांति, निम्न मध्यवर्ग के प्रति सहानुभूति एवं पूंजीवादी समाज के प्रति आक्रोश का स्वर मुखरित पाते हैं, वह परवती कवियों में सुनने को मिलता है। इस प्रकार मुक्तिबोध को यदि सामाजिक ग्रथार्थवादी काव्यधारा का प्रवर्तक मान लिया जाए तो अनुप्रयुक्त नहीं होगा।

कई नए कवियों में काव्य की जिस बौद्धिक शैली के दर्शन होते हैं, वह भी किसी न किसी रूप में मुक्तिबोध में पाई जाती है। श्री अशोक बाजपेयी के शब्दों में, "यह आकस्मिक नहीं है कि आज के महत्त्वपूर्ण युवा कवि रघुवीर सहाय और श्रीकान्त वर्मा दोनों ने अपने ढंग से तुकों "व्यक्तिवादी नापों, चमत्कारी संयोगों आदि का जो इस्तेमाल किया है, इसका उद्गम कही न कहीं मुक्तिबोध में है।"

मानवता की अभिव्यक्ति—मानव के लिए कुछ कर गुजरने की छटपटाहट नई कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। यह छटपटाहट अत्यन्त सशक्त रूप में मुक्तिबोध के काव्य में अभिव्यक्त हुई है। यथा :

लेकिन, दबी धुकधुकियों
सोचो तो कि
अपनी ही आँखों के सामने
खूब हम खेत रहे।
खूब काम आए हमारा

लघु मानव की प्रतिष्ठा—मुक्तिबोध ने लघुमानव को खोजा भी है तथा उसके प्रति आस्था भी व्यक्त की है। 'ओ नागात्मक फणिधर' मानव कविता में लघु मानव की खोज के लिए वे अपनी संवेदना का आह्वान करते हैं। यहाँ 'फणिधर' कोई सर्प न होकर स्वयं कवि की संवेदना अथवा आत्मचेतना ही हैं :

जीवन में यथार्थ ज्वलनशील मूल्यों को
खोज लेने की छटपटाहट—
लहराओं लहराओं नागात्मक कविताओ

मुक्तिबोध निरूप बाह्य को स्वीकार करते हुए मानव के पौरुष के प्रति आस्था एवं विश्वास व्यक्त करते हैं, यथा :

मेरे इस साँवले चेहरे पर कीचड़ के धब्बे हैं,
दाग हैं
और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है,
अन्तिम विवेक की :
नहीं, नहीं वह वह जो ज्वलन्त सरसिज।

अतिशय बौद्धिकता एवं युगीन जीवन का चित्रण—नयी कविता की दो प्रमुख विशेषताएँ तो मानो मुक्तिबोध के काव्य के केन्द्र-बिन्दु ही हैं। मुक्तिबोध भावुक कम और चिंतनशील कवि अधिक हैं। इस बौद्धिकता ने ही तो उन्हें सदैव परम्परा विद्रोह की प्रेरणा प्रदान की है। बौद्धिकता के कारण ही मुक्तिबोध की कविता इतनी विवेचनात्मक एवं जीवन की परिस्थितियों का वर्णन इतना विश्लेषणात्मक हो गया है।

निष्कर्ष—मुक्तिबोध की कविता में हमको 'नयी कविता' का पूर्ण प्रतिनिधित्व उपलब्ध होता है। मुक्तिबोध की कविता में यन्त्र-कर्म की बौद्धिकता संस्कृति के प्रतीक मानव के दर्शन किये जा सकते हैं। मुक्तिबोध ने नयी कविता को अपने मार्ग पर अग्रसर होने के लिए ठोस आधार प्रदान किए। अन्य कवियों पर मुक्तिबोध का व्यापक प्रभाव देखकर 'नयी कविता' में उनके प्रवेश को सहज ही आंका जा सकता है।

प्रश्न ६—मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प का मूल्यांकन कीजिए।

काव्य-शिल्प के मूल में वैचारिक उद्वेलन—मुक्तिबोध के वैचारिक उद्वेलन ने उनके काव्य-शिल्प को भी प्रभावित किया है। उनके काव्य के शिल्प में जो

सपाटपन है, जटिलता है, कलात्मक काट-छाँट का अभाव है, उसका कारण शमशेर बहादुर के इस कथन के आधार पर समझा जा सकता है—"मुक्तिबोध की कविताओं में सदैव एक सादगीपन का भाव है। सबसे बड़ी बात उनमें यह है कि उनमें अन्दर मस्तिष्कहीन कोरी भावुकता नहीं है । उनके भावों के पीछे विचारों का दोहन है ।" इस वैचारिक दोहन के कई परिणाम उनके काव्य-शिल्प पर परिलक्षित होते हैं ।

प्रदीर्घता—मुक्तिबोध ने अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए फैंटेसी शैली को अपनाया है और उनकी कविताएँ क्रमशः दीर्घ होती गई हैं । उनकी आरम्भिक कविताएँ इतनी लम्बी नहीं थीं, परन्तु ज्यों-ज्यों उनका विचारक पक्ष प्रौढ़ एवं परिपक्व होता गया है, त्यों-त्यों उनकी रचनाओं की आकृति बढ़ती गई है । "चांद का मुँह टेढ़ा है" संकलन की अन्तिम कविता तो इतनी लम्बी है कि कुछ विद्वानों ने उसे लघु महाकाव्य की संज्ञा ही प्रदान कर दी है । कविताओं की प्रदीर्घता के कारण पर स्वयं मुक्तिबोध ने प्रकाश डाला है—"यथार्थ के तत्त्व परस्पर गुम्फित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है । अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है और उसके तत्व भी परम्परा गुम्फित हैं । यही कारण है कि मैं छोटी कविता लिख नहीं पाता और जो छोटी होती हैं वे छोटी न होकर अधूरी होती हैं ।"

इनके अतिरिक्त इनके वस्तु-चयन का कैन्वास भी वृहत् होता है ।

अनपढ़ भाषा—मुक्तिबोध की भाषा अनगढ़ और ऊबढ़-खाबड़ है, जो उनके संत्रास और उनकी भयावहता के सर्वथा अनुरूप है । वह संस्कृत के आंतरिक अरबी, फारसी और अँग्रेजी की शब्दावली का खुलकर प्रयोग करते हैं । उनकी कविता में देशी भाषाओं—विशेषकर मराठी के तथा ग्रामीण और भदेश शब्दों का भी निसंकोच प्रयोग किया गया है । कहीं-कहीं भाषा अशुद्ध भी हो जाती है ।

जटिलता—मुक्तिबोध की भाषा ऋजु सरल न होकर जटिल और चक्करदार है । इसका मुख्य कारण है उनका अस्पष्ट बिम्ब-विधान । डा० परमानन्द का कथन द्रष्टव्य है "मुक्तिबोध की कविताएँ तात्पर्य-वृत्ति से संयुक्त-संयुक्त होकर भी दुरूह हैं । वे कई बार पढ़ी जाकर ही अपना वास्तविक मर्म पाठक को सौंपती हैं और इससे अलग कोई सरल नुस्खा उनके काव्य मर्म को पहचानने का नहीं है, क्योंकि जो बिम्ब मुक्तिबोध अपनी कविताओं में लाते हैं, वे ठोस विचारों से प्रेरित, अर्थपूर्ण होते है और फिर वे अपने आप में पूरे नही होते । किसी अगले उतने ही सार्थक बिम्ब से जुड़े होते हैं और इसी तरह उनकी कविताएँ अपने आप में पूरी नहीं होतीं —अगली कविताओं से बराबर जुड़ी रहती हैं ।

इतिवृत्तात्मकता—मुक्तिबोध की कविताओं में कथात्मक शैली के दर्शन होते हैं । वह काव्य-नायक द्वारा भोगे गये अनुभवों की कहानी सी कहते दिखाई देते हैं, इसका भी कारण है, वह अनुभूति को काव्यात्मकता प्रदान करने के लिए कल्पना का

आश्रय ग्रहण नहीं करते। वह अपने स्वयं के भोगे हुए अनुभवों की यथार्थ कहानी कहने लगते हैं। कविताओं की प्रलम्बता इसका प्रमाण है।

परिच्छेद प्रणाली का अवलम्बन—अपनी लम्बी कविता में मुक्तिबोध ने ठीक नाटकों के अनुरूप दृश्य-परिवर्तन की योजना को स्थान दिया है। अतएव मुक्तिबाध की कविताओं में हमको कथात्मकता के साथ दृश्यों के अनुसार पट-परिवर्तन सा करने के लिए परिच्छेद प्रणाली के दर्शन होते हैं।

बिम्ब-विधान—मुक्तिबोध ने अपने काव्य-बिम्बों को अपने आस-पास की परिस्थितियों से ग्रहण किया है। उनके बिम्ब-विधान के विषय में आधुनिक आलोचकों ने बहुत कुछ लिखा है—यथा

"उनके बिम्ब उनके वैचारिक मन्थन में तैरकर आते हैं तथा सुन्दर और कुरूप दोनों ही प्रकार के होते हैं। उनके बिम्बों की एक अन्य विशेषता यह है आकाश बिजली, त्रिकाल, तम शून्य साँवली हवाओं के विश्व व्यापी रूप उनमें देखने को मिलते हैं। उनके बिम्बों की एक अन्य विशेषता यह है कि उनके बिम्बों की घनी मालिकाएँ एक-एक कविता में मिल जाती है।" (ज्ञानोदय) तथा—"वे अपने बिम्बों की अधिकांश दैनंदिन वस्तुओं से अथवा घटनाओं से लेते हैं। वह नयी कविता की तरह बिम्बों को गढ़ते नहीं हैं। उनकी अनगढ़ बिम्ब माला पर पालिश नहीं होती और न खराद पर ही चढ़ाई जाती है।" (राष्ट्रवाणी)।

मुक्तिबोध की रचना रंगों में सुलगी हुई एक सुनहली शनाख्त में उपलब्ध बिम्ब उपर्युक्त कथन का समर्थन करते हैं निम्नलिखित उदाहरण में लाक्षणिक स्पर्श विषयक एवं स्वादविधयक बिम्ब दृष्टव्य है :

> हम दिल के सुनहले तीर
> बाहर क्यों नहीं फेंक पाते
> तेज-तेज इत्यादि

डॉ० रणजीत वाजिद ने मुक्तिबोध के बिम्बों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उन्हें ६ वर्गों में विभक्त किया है :

१. **क्षेत्रीय बिम्ब**—जिनमें मानव-जीवन, वर्ग, समूह और सैन्य सम्बन्धी बिम्ब आते हैं। २. ऐन्द्रिय अथवा दृश्य-बिम्ब ३. विवृत बिम्ब ४. स्थिर बिम्ब ५. अप्रस्तुत बिम्ब ६. नवीन बिम्ब।

मुक्तिबोध के काव्य-बिम्बों में पीछे वस्तुतः एक आन्तरिक कहानी रहती है, जो जीवन की विषमता को एक दुखान्त रूप में समाप्त करती है। यथा :

> नफरत और नफासत
> बीबी के साथ भी सियासत !
> लेकिन, इन सब सफेद

चमचमाते शानदारों की धाक है—
मेरा दिल चाक है।

मुक्तिबोध के काव्य बिम्ब प्रायः जीवन के एक निराले रहस्य को प्रकट करते हैं, यथा :

पृथ्वी के पेट में घुसकर जब
पृथ्वी के हृदय की गरमी के द्वारा सब
मिट्टी के ढेर ये चट्टान बन जायेंगे
तो उन चट्टानों की
आन्तरिक परटों की सतहों में
चित्र उभर आएँगे
हमारे चेहरे के, तन बदन शरीर के,
अन्तर की तस्वीरें उभर आयेंगी।

(एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन)

प्रतीक-विधान—मुक्तिबोध के काव्य में प्रतीकों का बाहुल्य है। ये प्रतीक एकदम ताजे और नवीन हैं। इन्होंने आधुनिक परिवेश और यन्त्र-युग के सम्पूर्ण वस्तुजगत से प्रतीकों का चयन किया है। इनके प्रतीक जीवन्त हैं और रूढ़ प्रयोग से मुक्त हैं। अधिकांशतः वे मशीनी-युग की उपेक्षित वस्तुओं को ही अपने काव्य में प्रतीक द्वारा ग्रहण करते हैं। मुक्तिबोध ने रुचि और प्रभाव दोनों ही दृष्टियों से कलात्मक संयोजन किया है। ये प्रतीक कहीं एक शब्द में तथा कहीं एक वाक्य में सीमित रहते हैं और कहीं-कहीं पूरी कविता में व्याप्त रहते हैं। मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त प्रभावशाली प्रतीकों को प्रायः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) मिथिकल अतीत से ग्रहीत प्रतीक— जैसे ब्रह्म राक्षस, वट वृक्ष इत्यादि।

(२) समसामयिक इतिहास से गृहीत प्रतीक—जैसे तिलक, गाँधी, टाल्सटाय इत्यादि।

सारांश रूप में मुक्तिबोध के प्रतीक प्रखर बुद्धिमता एवं बौद्धिकता के विश्लेषण पर आधारित रहते हैं। इनके सम्बन्ध में यह कथन दृष्टव्य है :

"इनके प्रतीकों की अपील केवल भावात्मक ही नहीं, बल्कि इसे उस विश्लेषण द्वारा समर्थन मिलता है, जो यह चरित्र अक्सर प्रस्तुत करता है।" (फिलहाल)

कल्पनात्मक फैंटेसियाँ—मुक्तिबोध ने अपने काव्य में कल्पना तत्त्व का खुलकर प्रयोग किया है। इनके कल्पना-वैभव के सम्बन्ध में एक आलोचक ने कहा है कि वह एकांगिता से मुक्त है और वह अर्थ गाम्भीर्य के साथ मिलकर काव्य शिल्प की ऐसी उत्कृष्ट उपलब्धि करता है कि उसे देखकर चकित रह जाना पड़ता है।

मुक्तिबोध को फैंटेसियों के सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि उनकी

विचित्र फैंटेसियों से युक्त कविता पढ़ते-पढ़ते एक भयानक वातावरण खड़ा हो जाता है। अंधेरी सीढ़ियाँ, गुप्त तहखाने, अदृश्य कुएँ, गोल चक्करदार टीले, खण्डहर, सुनसान बरगद की छाँह इत्यादि।

टीले और खण्डहर मकान की यह कल्पना कितनी भयावह है ?
दुःख तुम्हें भी है,
दुःख मुझे भी।
हम एक ढहे हुए मकान के नीचे दबे हैं।
चीख निकलना भी मुश्किल है।
असम्भव हिलना भी।
भयानक हैं बड़े-बड़े ढेरों की पहाड़ियों नीचे दबे रहना और महसूस करते जाना।
भयंकर है छाती पर बजन टीलों का रखे हुए
ऊपर के जड़ीभूत दबाव से दबा हुआ अपना स्पन्दन अनुभूत करते जाना इत्यादि।
(एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन)

छन्द—मुक्तिबोध की कविता छन्दमुक्त है। परन्तु उसमें लय का निर्वाह हुआ है। छन्द का बन्धन तोड़ने की प्रेरणा उन्हें सम्भवतः निरालाजी से प्राप्त हुई थी। मुक्तिबोध के छन्द-विधान के सम्बन्ध में शमशेर बहादुरसिंह का यह कथन दृष्टव्य है—"और मुक्तिबोध का मुक्त छन्द कैसा है ? ऐसा जो निराशा के ठेठ मुक्तक छन्दों से हाथ मिलाकर आगे आता है। वही सीधी अभिव्यक्ति, तरल मानवीय व्यंजना, अगर उससे अधिक कुछ।" (चाँद का मुँह टेढ़ा है)

निष्कर्ष—मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प प्रखर एवं प्रभावशाली है। काव्य-शिल्प की दृष्टि से आधुनिक कविता-क्षेत्र में उनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने युवा-आक्रोश को एक नये ढंग की बौद्धिक शैली प्रदान की। उनके काव्य-शिल्प के सम्बन्ध में निम्नलिखित कथन महत्वपूर्ण हैं :

"शब्दावली से बिम्ब-योजना और बिम्ब-योजना से काव्य-संवेदना का जो क्रमिक उन्मीलन होता है, उसकी प्रभावशक्ति मुक्तिबोध के काव्य को हिन्दी-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कक्षा में प्रतिष्ठित करती है।" (डॉ० जगदीश शर्मा)

"इनके काव्य की दृश्यमान शक्ति भी अद्भुत है। बिम्ब प्रयोग लक्ष्य सम्पन्नता तथा प्रतीक योजना भी उल्लेखनीय है। इन सभी में आवेशपूर्ण संवेदनशीलता है। साथ ही प्रकरण-संगति और प्रसंग-संगीत का विचार क्रम भी देखने योग्य है। अतः मुक्तिबोध के काव्य में सार्थक शब्द-चयन क्षमता और प्रभावपूर्ण अर्थ सामंजस्य का सुन्दर उदाहरण मिलता है। मुक्तिबोध ने अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के

"भाषा चिन्तन में यथार्थ और मानवीय व्यवहारवाद को अनिवार्य रूप से जोड़ दिया है। इसीलिए मुक्तिबोध युवा-आक्रोश को नये युग की बौद्धिक शैली प्रदान कर सके हैं।" (डॉ० राजेश्वर दयाल सक्सैना) तथा :

"मुक्तिबोध के कवि-कर्म की तुलना हम लुहार की उस लौहशाला से कर सकते हैं जहाँ भट्टी में अंगारे दहक रहे हैं, चिनगारियाँ उड़ रही हैं, धौंकनी चल रही है, निहाई पर रखा हुआ लौहखण्ड सँड़ासी से पकड़ कर हथौडों से पीटा जा रहा है और निश्चित आकार में ढाला जा रहा है। मुक्तिबोध कविता के लुहार हैं और उनकी कविता संसार के जीवन की लौहशाला।"

प्रश्न ७—नयी कविता के क्षेत्र में मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिये।

अथवा

प्रश्न ८—नयी कविता की विशेषताएँ बतलाइये और उनके आधार या मुक्तिबोध का स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर—नयी कविता और उसकी विशेषतायें—यद्यपि नयी कविता के बीज बहुत पहले बो दिये गये थे, तथापि उसका पल्लवन काल सन् १९५८ के बाद ही माना जाता है। जो भी हो सन् १९६० के बाद की हिन्दी-कविता की धारा को 'नयी कविता' के नाम से अभिहित किया जाता है। 'नयी कविता' की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

१. परम्परा से विद्रोह २. नये विषय ; नये संदर्भ ३. मानववाद की प्रतिष्ठा ४. लघु मानव की प्रतिष्ठा ५. अहंवाद का विस्फोट ६. क्षणवाद ७. श्रमशील मानवता का चित्रण ८. बौद्धिकता का प्राधान्य ९. अभिव्यक्ति-शिल्प की नवीनता।

नयी कविता और मुक्तिबोध—मुक्तिबोध नयी कविता के अग्रणी कवि हैं। उनकी कविता में नयी कविता की उपर्युक्त विशेषताओं की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है, यथा :

परम्परा से विद्रोह—छायावादोत्तर अनेक कवियों ने परम्परा से विद्रोह किया है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती आदि अनेक कवियों ने परम्परा से विद्रोह किया, परन्तु वे छायावाद की रूमानी संवेदन और भाषा से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके। छायावादोत्तर कवियों में मुक्तिबोध प्रथम कवि थे जो छायावादी संस्कारों से पूर्णतः मुक्त होकर काव्य सर्जना कर सके थे। मुक्तिबोध ने ही सही अर्थों में सर्वप्रथम परम्परा और पूर्व संस्कारों से पूर्ण विद्रोह की स्थिति प्राप्त की थी।

नये विषय नये संदर्भ—मुक्तिबोध ने आधुनिक समाज को एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने आधुनिक समाज की विफलता, विवशता और विसंगति

को चित्रित करने के लिए जीवन के यथार्थ से सम्बन्धित ऐसे विषयों को चुना है, जो सर्वथा नवीन हैं। छोटी से छोटी चीज से लेकर बड़े से बड़े पदार्थ को मुक्तिबोध ने अपनी कविता का विषय बनाया है। शमशेर बहादुर ने ठीक ही लिखा है कि "शिलाओं पर शिलाएँ, अनन्त पगडंडियाँ जैसे मालवा के पठार और मध्य-प्रदेश की ऊबड़-खाबड़ धरती और धरती आतंकमय, रहस्यमय इतिहास और इनके लुहान मानव—यह मुक्तिबोध का विस्तृत कलंक है जिसे कविता की भाषा में कहा गया है और जिस पर मुक्तिबोध ने अपनी कविता को उतारा है।"

इसी संदर्भ के अन्तर्गत हम मुक्तिबोध की कविता में आधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति की चर्चा करना आवश्यक समझते हैं। मुक्तिबोध ने जन-साधारण के भावों को अनेक प्रकार से अपनी कविता में उतारा है। श्री ओमप्रकाश अग्रवाल के शब्दों में "सामयिक जीवन में गतिमान द्वन्द्वात्मक विभेदों के चुभते हुए अस्तित्व को सहकर और संघर्ष के आघातों को पूर्णतया झेलकर गठित होने वाले प्रतिनिधित्व व्यक्तित्व का समुचित भास हमें मुक्तिबोध के काव्य में मिलता है।"

मानववाद की प्रतिष्ठा—मुक्तिबोध ने मध्यवर्गीय दृष्टिकोण को त्रुटियों, भावों और सरलीकरणों से लगभग मुक्त करके अपने मानववाद की प्रतिष्ठा की है।

मुक्तिबोध के काव्य में जहाँ बाह्य जगत अभ्यन्तर-वृत्त होकर होता है, वहाँ अन्तःकरण की गुत्थियों का चित्रण वस्तुजगत की विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है :

जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं या घटनाओं का बाहरी दुनियाँ में
इतनी ही तेजी से भीतरी दुनियाँ में
चलता है द्वन्द्व

तभी तो मुक्तिबोध बार-बार इस प्रकार का कथन करते हैं कि :

हम दिल के सुनहले तीर
बाहर क्यों नहीं फेकने पाते
तेज-तेज
और बाहर की चीज
उसी तेजी से वापस क्यों नहीं फेंकती
अपने पूरे लहरीले रंग
कि जिनसे दिल
जरा-सा सुलगे और भभक जाए,
उस बाहर के भीतर की तस्वीर
उभर आय
कि जिसकी जलती हुई भाप

अपने-आप
हमें दे जाय
रंगों में सुलगी हुई सुनहली शनाख्त ।
(रंगों में सुलगी हुई एक सुनहली शनाख्त)

क्षणवाद—आज के कवि के लिए प्रत्येक क्षण महत्त्वपूर्ण है। नयी कविता की एक बहुत बड़ी विशेषता है लघुमानव की प्रतिष्ठा। मानव में मानव-जीवन के लिए कुछ करने और कर गुजरने की छटपटाहट दिखाई देती है। छटपटाहट मुक्तिबोध के काव्य में अत्यन्त सशक्त रूप में उपलब्ध होती है। यही कारण है कि मुक्तिबोध के काव्य में अनन्त सम्भावनाएँ झाँकती हुई दिखाई देती हैं :

नहीं होती, कहीं भी खत्म कविता नहीं होती
वह आवेगा त्वरित काल यामी है।

लघुमानव की प्रतिष्ठा—मुक्तिबोध ने ब्रह्म की अस्वीकृति एवं उसके अनास्था का प्रतिपादन करके मानव के पौरुष एवं पराक्रम को महत्व प्रदान करते हुए मानव के प्रयत्नों के प्रति विश्वास एवं आस्था का चित्रण किया है—मुक्तिबोध की कविता 'श्याम झुरमुट' में दिखाती है, लघु मानव के अन्ततम में उच्च जीवन-मूल्यों की अपार निधि संचित है :

खोजता पठार—पहाड़-समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मुझे वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म सम्भावना।

मुक्तिबोध के काव्य में लघु मानव की प्रतिष्ठा स्थान-स्थान पर पाई जाती है। कतिपय आलोचकों के मतानुसार मुक्तिबोध 'लघुमानव' के प्रतिष्ठा-परक कवि हैं, यथा :

"तन्त्रयुगीन पिण्डब्रह्म की धारणा से मिलती-जुलती तथा प्राणि-विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान सम्मत दृष्टि से मुक्तिबोध ने अपने रचना-मानव की लघु-विराट् जीवन-चेतना, इसके शक्ति व्यवहार का जो विद्युत-चित्र अंकित किया है, कहीं तो नया मानव बोध है—मुक्तिबोध में, यन्त्र-कर्म की बौद्धिक सस्कृति के प्रतीक मानव को देखा जा सकता है, उसे विज्ञान युग की ब्रह्म राक्षसी प्रतिभा की देन कहना चाहिए।" (डॉ० रामेश्वरदयाल सक्सैना)

अहंवाद का विस्फोट—प्रगतिवाद में अहं का समाजीकरण हो गया था। इसके विरुद्ध प्रयोगवादी कवि व्यक्तिवादी बन गये। छायावाद के कवि भी बहुत कुछ व्यक्तिवादी थे, परन्तु वे अन्तर्मुखी रहे। प्रयोगवाद के कवि का व्यक्ति बहुमुखी हो गया, अर्थात् प्रयोगवादी कवि के अहंकार का विस्फोट हुआ।

तार सप्तक के कवियों में दो काव्य उपधाराएँ दिखाई देती हैं, एक धारा समाजवादी यथार्थ को लेकर चलती हैं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचंद जैन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल और रामविलास शर्मा। दूसरी उपधारा वह है जिसमें गिरजा कुमार माथुर का स्वर सुनाई देता है, जिसे हम मध्यवर्गीय रोमानियत, मानसिक प्यास, चित्रमयता, भौतिक जीवन के प्रति रसमय पक्ष के प्रति लालसा मोह पर आधारित कह सकते हैं।

समाजवादी यथार्थ के कवियों में अज्ञेय की वाणी में व्यक्ति-विद्रोह के अहं और निराशावाद, काम-समस्याओं, आन्तरिक यौन संघर्ष एवं बाह्य वर्ग संघर्ष से उत्पन्न कुठाओं एवं वर्जनाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

आगे चलकर मुक्तिबोध ने अज्ञेय के स्वर में सहयोग देकर विश्व-शांति, मध्यवर्ग के प्रति सहानुभूति आदि के साथ व्यक्ति-विद्रोह के अहं और फास्ट्रेशन की सबल अभिव्यक्ति की। कतिपय आलोचकों के मतानुसार आज के युवक की खुरदरी और विचलित करने वाली कविता के लिए मुक्तिबोध की कविता उद्गम काव्य हो गई है।

श्रमशील मानव का चित्रण— नयी कविता के कवि को श्रमशील वर्ग तथा जन-साधारण के जीवन के प्रति विशेष मोह है। वह उसके जीवन की घुटन को महसूस करता भी है और उसको महसूस करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। इस श्रमशील मानवता ने मुक्तिबोध के काव्य को विशेष बल प्रदान किया है।

बौद्धिकता का प्राधान्य—अतिशय बौद्धिकता नयी कविता की प्रमुख विशेषता है। आज का नया कवि बुद्धिवादी वैज्ञानिक युग में चिन्तन परक हो गया है। मुक्तिबोध का काव्य भी अत्यधिक चिन्तन परक है। इसमें न तो दार्शनिक तटस्थता है और न एक निश्चित विवेचन है। इसमें भय व त्रासदी, आतंक एवं अपार हाहाकार के दर्शन होते हैं। मुक्तिबोध के काव्य में हमको युग के सामाजिक जीवन की विद्रुपता, असंगति, मानव-मूल्यों का ह्रास, यन्त्र-युग के कारण उद्भूत वर्ग-संघर्ष की स्पष्ट ध्वनि मुखरित सुनाई देती है।

मुक्तिबोध की भाषा प्रायः अनपढ़ एवं ऊबड़-खाबड़ है। वह विभिन्न भाषाओं के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग करते हैं। उनकी कविता ट्रेन के समान है जो विभिन्न प्रदेशों में होकर खटाखट चली जाती है।

"मुक्तिबोध की कवितायें बिम्ब और प्रतीकों का बाहुल्य हैं। उनके बिम्ब अधिकांशतः दैनंदिन की वस्तुओं अथवा घटनाओं से संकलित हैं। उनके बिम्बों और प्रतीकों के पीछे एक आन्तरिक कहानी है, जो जीवन की विषमता का एक दुःखान्त नाटक के रूप में समाप्त करती है।"

मुक्तिबोध ने अपने प्रतीकों का चयन आधुनिक परिवेश और यन्त्र-युग के सम्पूर्ण वस्तु-जगत से किया है। अधिकांशतः वह मशीनी युग की उपेक्षित वस्तुओं को ही अपने काव्य में प्रतीक द्वारा ग्रहण करते हैं।

निष्कर्ष—डॉ० रामेश्वरदयाल सक्सैना के मतानुसार मुक्तिबोध के साथ ही नयी कविता के शैलीगत नयेपन का शुभारम्भ होता है; यथा :

"मुक्तिबोध ने हिन्दी-किवता में नये वस्तु तत्त्व का तथा नयी काव्य-शैली का प्रयोग किया है, नये काव्य की सामाजिक तथा तार्किक पृष्ठभूमि को निर्मित किया है। नयी कविता के काव्यशास्त्र और नये ललितबोध के सौन्दर्यशास्त्र का प्रारम्भ मुक्तिबोध से होता है।

इसी प्रकार डॉ० कान्तिकुमार के शब्दों में "मुक्तिबोध कविता के लुहार हैं और उनका कविता संसार-जीवन की लौहशाला है।"

बंशीधर शुक्ल

प्रश्न १—बंशीधर शुक्ल के काव्य की विशेषताएँ बतलाइये ।

अथवा

प्रश्न २—बंशीधर शुक्ल के काव्य की इस प्रकार विवेचना कीजिए कि उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष की समस्त विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँ ।

अथवा

प्रश्न ३—भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से वंशीधर शुक्ल के काव्य के काव्य-सौन्दर्य की परीक्षा कीजिए ।

उत्तर— काव्य-विषय— शुक्ल जी अवध की ग्राम्य-संस्कृपि एवं किसानों के कवि हैं । उनकी कविताओं में कृषकों के सुख-दुख का सारा जीवन बोल उठा है । अवधी की ग्राम्म-अंचल का वातावरण उनकी कविताओं को बड़ा रोचक बना देता है । यद्यपि शुक्ल जी ने मजदूर, दहेज, श्रीकृष्ण चरित जैसे ध्वनि नाटकों की भी रचना की है, परन्तु आप मूल रूप से कवि हैं । अवधी की कविताओं में उनकी अन्तरात्मा रम गई है । आपका कवि-जीवन संघर्ष की कहानी रहा । सक्रिय राजनीतिक जीवन के साथ ही आपकी काव्य-रचना चलती रही । राजनीतिक संघर्ष के बिम्ब आपकी कविताओं में उभरे हुए मिलते हैं । कारावास में कागज के अभाव में दवा के छोटे से पर्चे पर ही आप चोरी छिपे कविता लिख डालते थे । बन्दीगृह की कठोर दीवारें आपकी लिखी कविताओं से रंग गई थीं । आप जेल में 'कवि जी' नाम से प्रसिद्ध रहे । विपक्ष में बैठकर उत्तर प्रदेश की विधान-सभा में यथा अवसर जो वे कविताएँ पढ देते थे, वे बड़ी महत्वपूर्ण होती थीं । शुक्ल जी को आधुनिक अवधी काव्य के सम्राट के रूप में सम्मानित किया जा सकता है । अवध के ग्रामों को लोक-संस्कृति, कृषकों और ग्रामों की करुण स्थिति, रहन-सहन, ग्राम की प्रकृति, पशु-पक्षियों की प्रकृति का यथार्थ वर्णन शुक्ल जी की रचनाओं में मिल जाता है । आकर्षण पूर्ण ग्राम के अंचल के स्वर्गीय सौन्दर्य की झांकी का यथार्थ बिम्ब 'राम मड़ैया' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है । किसान की राम मड़ैया जिस वातावरण में है उसका सजीव वर्णन देखिए ।

नदी किनारे सड़क न गल्ली, द्वारे भरी तलैया ।
हुवैं बनी है राम सहारे अपनी राम मड़ैया ।
जहाँ बयारि लगावैं बढ़नी, जुगनू दिया दिखावैं ।
सुअर, सियार, चील्ह, गिलहरियाँ कूरा सैंति उठावैं ।
चिरई कौवा का-का कहि-कहि जागि जगाय सोवावैं ।
उइ-उइ अथै-अथै के सविता दिनु और रति बतावैं ।

जहाँ बँदरवा डाका डारैं, चोरी करैं बिलैयाँ।
हुवैं बनी है राम सहारे, अपनी राम मड़ैया।

बसन्त में महुवा चूना, शरद में कमल और हेमन्त में गेंदों का सौन्दर्य, गायों के घण्टे ठनकना, भैंसों की हूँकार, घोड़ों का हींसना, बाघ का डहुँकना, गदहे का रेंकना, चौपाल पर रैदास की डफली बजना आदि सभी कुछ ग्राम्यांचल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देता है :

जहाँ बसन्त चुवावै महुआ
जेठ पियै जल बरसै।
सरद कमल, हेवंतु गेंदन पर
सिसिर कुसुम पर बिलसै।
जलचर वनचर करैं किलोलैं,
नाचैं सुआ चिरैया।
जहँ गाइन का घण्टा ठनके,
भैंसिन का हुंकारा।
घोड़वा हींसैं बघवा डहुंकैं,
गदहा देइ नगारा।
कूकुर उल्लू बने पहरुवा,
निहुकी निहुकि गावै।
पीपर बरम, नीम पर भुइयाँ,
जिन्द परेत पुजावैं।
जहाँ बजै रैदास की डफली, नाचै कुँवर कन्हैया।
हुवैं बनी निबियन के भीतर अपनी राम मड़ैया।

ग्रामों के पशु-पक्षियों, वनस्पतियों, रंग-बिरंगी फसलों और प्राकृतिक सौन्दर्य की सुषमा से शुक्ल जी का काव्य भरा हुआ है। शुक्ल जी ने ग्राम और शहर के जीवन पर तुलनात्मक दृष्टि भी डाली है। उन्होंने शहरी जीवन को हेय दृष्टि से देखा है। दोनों जीवनों की तुलना करते हुए ये अन्त में निष्कर्ष निकालते हैं कि वहाँ किस प्रकार निर्वाह हो सकता है :

जहाँ की दुनियै छायाभास, भेखु, भाखा, बखरी, व्योहारु,
पेट माँ कपटु, बात माँ दगा, जीभ मां झूठ, ओठ मां प्यारु,
आँखि मां नशा, चित्त मां छोभु, देह मां रोगु, रूप सुकुमार,
दोसु भरि काटैं सबके प्याट, यहै बैपारु, लच्छ व्यभिचार।
जहाँ पर कहैं चोर का साहु, हुवाँ कस-कस होई निरवाह॥

शुक्ल जी का ग्राम-चित्रण यथार्थवादी है। वे यहाँ की दयनीय और कारुणिक स्थिति से सर्वथा परिचित हैं। ग्राम की आंचलिक प्रकृति और वहाँ का रहन-सहन उनकी 'किसान की दुनिया' शीर्षक कविता में सजीव हो उठा है। सविता का उदय

होना, जोंधैया का अथहना, मन्द पुरवैया का चलना कोइली 'कू'-'कू', कुनवा की पों पों, चिरैयों की चों चों, गाय की पन्हानि, हुँकारें आदि सभी के चित्र सजीव हैं। वहाँ फूल-पलाई के कुछ छप्पर, माटी का घरोंदा, पिछवारे लहराता हुआ तिपतिया और आगे ककरौंदा का पौधा, सभी कुछ अपना सद्य सौन्दर्य लिए हुए हैं :

फूस-पताई के कुछ छप्पर, माटी क्यार घँरौंदा।
पिछवारे लहराय तिपतिया, अगुवारे कुकरौंदा।

× × ×

सविता उवैं जोंधैया अथवैं, चलै मन्द पुरवैया,
कोइली कों कों कुतवा पों पों चों चों करैं चिरैया।
वर्ध भैंसि पागुरि मां लागे गाय पन्हानि हुँकारें,
टटिया फारे बछरा झांके रहि-रहि मुड़ निकरै।

किसान की दुनिया कितनी मनोरम है, जिसमें बिटिया पैरों में सन की झुनझुनियाँ पहने थिरकती फिरती है। किसान की पत्नी पशुओं को चारा पहुँचाती है और घर का सारा काम-काज चलाती है। वह चक्की पीसती है, धान कूटती है, कण्डा-उपला थापती है

बिटिया थिरकै पायन पहिने, सनई की झुनझुनियाँ।
देखि करेजा बित्तन बाढ़ैं, यह किसान की दुनियाँ।

× × ×

गोरुन का चारा पहुँचावै, लरिकन का फुसलावै।
सगरे घर का काम चलावै, पति का अदब बजावै।
चकिया पीसे, धानु कुटावै, कण्डा उपरी पाथै।
टोला की दुइ चारि मिलें, तब बाहर निकरैं साथै।

ग्राम के इस सुखद वातावरण के साथ शुक्ल जी ग्रामों के किसानों का जो शोषण हो रहा है, उसका वर्णन करना भी नहीं भूलते। वे कहते हैं :

जमींदार कुनबा अस नोचैं,
देह कि बोटी-बोटी॥
नौकर, प्यादा और करिन्दा,
ताके रहै लगोंटी॥
पटवारी खुरचाल चलावै,
बेदखली स्तीफा।
राजइ कुड़की औ जुरमाना
छिन-छिन नवा लतीफा।
थाना-चौकी पुलिस कचहरी,
इसपट्टर और पासी॥

सब अपनी ससुरारि बनाये,
अफसर औ चपरासी ।
चाटि जांय सब जिनिस खानगी,
लोनु-तेलु, गुड़, धनिया ।
लाली पगड़ी देखे लरजै,
यह किसान की दुनिया ।।

ग्राम का किसान अथक परिश्रम करता है। उसके द्वारा उत्पन्न किये गये अन्न पर सृष्टि पलती है। इतने पर भी उसका जीवन नितान्त विपन्न और दयनीय बना रहता है। दोपहरी को चार पनेथी रोटी, एक बड़ा लोटा पानी और चबैना या शरबत ही मिल पाता है। उनको पेड़ा-गट्टा मेले में तथा तिथि, पर्व तथा विवाह के अवसर पर ही पूड़ियाँ मिल पाती हैं। चना, मिठाई, बहुरी मुरकी, तिलचौरी गुड़धानी ही सभी ऋतुओं में किसान की दुनियाँ की नसीब होती है :

दुपहरिया माँ चार चने की,
बड़की लोटिया पानी ।
कबौं चबैना मट्ठा, सरबत,
ऐसेहि गै जिन्दगी ।
पैंड़ा-गट्टा, मेले ठेले,
बेढई बरा फलौरी ।
तिथि, परबी य भये बियाहे,
पूरी, पुवा कचौरी ।
चना, मिठाई बहुरी, मुरकी,
तिलचौरी गुडधनिया ।
सबै ऋतुअन का यहै कलेवा,
यह किसान की दुनिया ।

शुक्ल जी ने ग्रामीण जीवन की विडंबना के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस प्रकार ग्राम-संस्कृति, रीति-नीति के वे सम्पूर्णतः के कवि के रूप में सामने आते हैं। ग्राम के सुन्दर और असुन्दर दोनों पक्षों का उद्घाटन उन्होंने सफलता से किया है।

क्रान्तिपरक राष्ट्रीय काव्य शुक्ल जी की रचनाओं में जहाँ लोक-संस्कृति एवं ग्रामीण अचल का सम्पूर्ण चित्रण हुआ है, वहाँ उन्होंने सामन्ती व्यवस्था, शोषकों तथा तानाशाही के विरुद्ध क्रान्ति का भी उद्घोष किया है : 'राजा की कोठी शीर्षक कविता में उनका यह आक्रोश और क्रान्ति का उद्घोष उभरकर सामने आ जाता है। राजा की कोठी में किसानों के हाड़ों की ईंटें और उनके खून का गारा लगा है। उसमें देश-भक्तों की चर्बी और जुल्मों की चिकनाई लगी हुई है। वहाँ राजा के पापों की कथा सुनाई पड़ती है। राजा के यहाँ अबलाओं का सतीत्व लुटता है

और गरीबों की लँगोटी छीनी जाती है। राजा की कोठी इस प्रकार वैतरणी हो रही है :

ईंट किसानन के हाड़न की,
    लगा खून का गारा ।
पाथरु अरु जियरा किसान का,
    चमक आँख का तारा ।
लगी देश भक्तन की चरबी,
    चिकनाई जुलमन की ।
घण्टा ठनकै अन्याइन का,
    कथा होइ पापन की ।
जहाँ सतीत्व लुटै अबलन का,
    छीनी जाइ लँगोटी ।
वहै बनी वैतरनी तट पर,
    महाराज की कोठी ।।

यहाँ शुक्ल जी ने यथार्थ का जैसा उद्घाटन किया है, वैसा कम कवि ही कर पाये हैं। शुक्ल जी का कथन प्रभावशाली है। वह हृदय पर सीधी चोट करता है। ऐसे वर्णनों में कवि की निर्भीकता देखते ही बनती है। शुक्ल जी ने पूँजीवादी, सामन्तवादी व्यवस्था के प्रति प्रभावशाली आवाज उठाई है। उन्होंने सदैव पाखण्ड, अव्यवस्था और शोषण का विरोध किया है।

प्रकृति-चित्रण— अवध के ग्रामीण अंचल की सारी प्रकृति शुक्ल जी की रचनाओं में आत्मसात हो गई है। उनकी सभी रचनाओं का प्रकृति परिवेश सशक्त है। वे मनोयोग से ऋतुओं का वर्णन करते हैं, परन्तु पावस के वर्णन में उनका उत्साह देखने को मिलता है। शुक्ल जी ने पावस ही को ऋतुराज माना है। 'दाता चौमास' शीर्षक कविता में शुक्ल जी ने पावस को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया है। पावास का वर्णन करते हुए शुक्लजी ने पावस के दृश्यों, जीव-जन्तुओं, तिथि-त्यौहारों का सजीव वर्णन किया है। पावस में बहती हुई जलधारा का शुक्ल जी ने शब्द-चित्र ही प्रस्तुत कर दिया है :

कहूँ जल साँपा रेंगनि जाय,
    कहुँ बुलबुले मरैं सन्नाय ।
कहूँ हहराय, कहूँ घहराय,
    कहुँ घरु गाँव रहा टकराय ।
मगर घड़ियाल मरि रहे साँस,
    कहै धनि-धनि दाता चौमास ।

पावस में अनेकों परवियाँ आती है और अनेकों देवता पूजे जाते हैं। दाता चौमास के वैभव को देखकर मधुमास भी ईर्ष्या करता है :

अनेक परबी आवैं जायें,
अनेकन देवता पूजे जायँ।
चिरैया हरहा घुड़कति फिरै,
कृष्ण पलना पर झूलति जायँ।
देखि खिसियाय रहा मधुमास,
कहै धनि-धनि दाता चौमास।

शुक्ल जी का काव्य ग्राम्य-अचल की प्रकृति की रमणीय स्थली है। आलम्बन रूप में प्रकृति-वर्णन के ऐसे सजीव चित्र कम ही मिलेंगे। प्रकृति-चित्रण, ग्राम्य-प्रकृति, 'लोक-संस्कृति' व्यवस्था-विद्रोह तथा हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से शुक्ल जी के काव्य का भावपक्ष सबल है।

कलापक्ष काव्य के भावपक्ष की तरह ही शुक्लजी के काव्य का कलापक्ष समुन्नत और पुष्ट है। उनकी भाषा में ग्रामीण अंचल की अवधी का सहज सौन्दर्य मिलता है। उनकी अवधी में वही सहज मिठास है, जो कि जायसी के 'पद्मावत' में है। शुक्ल जी के काव्य में अवधी के मुहावरों और लोक-संस्कृति की भाषा का सहज रूप देखा जा सकता है।

शुक्लजी भी भाषा में कहीं बोलचाल की सरल और सटीक शब्दावली मिलती है, तो कहीं ठठ देशज, अवधी की शब्दावली का प्रयोग हुआ है। 'पुतवा', गोरुन, टेंटे, बढ़नी, बिटिया, वित्तन, उबै जोधैया, कुतवा, पन्हानि, टटिया, चिरई, उड़-उड़ जैसे अवधी के स्थानीय प्रयोगों के कारण भाषा में मिठास आ गई है। निम्न उदाहरणों में शब्द-योजना माधुर्य दृष्टव्य है :

टेंटे पर लरिका का दावे,
मेहरी द्वार बुहारै।
बढ़का भैया गेंद बनाये,
सूखे बेल उछारै।।
बिटिया थिरकै, पायन पहिरे,
सनई की घुनझुनियाँ।
देखि करेजा वित्तन बाढ़ै,
यह किसान की दुनिया।।

× × ×

जहँ गाइन का घन्टा ठनकै,
मैंमिन का हुंकारा।
घोड़वा हींसैं बघवा डहूँकैं,
गदहा देय नगारा।।

कूकुर, उल्लू बह पहरुवा,
निहुकी, निहुकि जगावैं।
पीपर बरम, नीम पर भुइयाँ,
जिन्द परेत पुजावैं॥
जहाँ बजै रैदास की डफली, नाचै कुँवर कन्हैया।
हुवै बनी निबियन के भीतर मेरी राम मड़ैया॥

शुक्ल जी की रचनाओं में अवध की लोक-सस्कृति सजीव हो उठी है। उन्होंने स्वयं अवध के लोक-जीवन का अनुभव किया। यही कारण है कि अवधी भाषा का सहज सौन्दर्य वे अपनी रचनाओं में आत्म कर सके। लोक-जीवन में प्रचलित समस्त प्रौढोक्तियाँ उनकी रचनाओं में मिल जायँगी। शुक्ल जी ने गीत, मुक्तक, आख्यान, कुण्डलियाँ, बरवैं, प्रहेलिका, सूक्ति, शेर, गजल आदि अनेक छन्दों तथा लोक-सस्कृति में प्रचलित गीतों का प्रयोग किया है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुक्ल जी अवधी मूर्धन्य कवि हैं। उनकी रचनायें अवधी साहित्य का गौरव है। अवध के ग्राम्य-अंचल की प्रकृति एवं लोक-सस्कृति को उन्होंने सहज एव पुष्ट कलापक्ष में प्रकाशित किया है।

प्रश्न ४—प्रकृति-चित्रण की सफलता की दृष्टि से बंशीधर शुक्ल के काव्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५—"बंशीधर का काव्य प्रकृति की रमणीय स्थली है।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—"बंशीधर शुक्ल की रचनाओं में अवध के ग्रामीण अंचल की समस्त प्रकृति अपने सहज रूप में उपस्थित ई है।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

उत्तर—काव्य में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। वह काव्य की जहाँ पृष्ठभूमि बनती है, वहाँ अपने उपमानों से काव्य का शृङ्गार भी करती है। वहीं वह उपदेश देती, तो कहीं नयनाभिराम मधुर दृश्य उपस्थित करती है। वह अपना भयंकर रूप दिखाकर त्रास भी देती है।

हमारा सस्कृत काव्य प्रकृति से आलम्बन रूप में संश्लिष्ट चित्रों से भरा हुआ है। सस्कृति-कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति के मनोरम चित्र उपस्थित किये है। हिन्दी काव्य का जन्म जिन परिस्थितियों मे हुआ, उनमे प्रकृति-पर्यावेक्षण के लिए अवकाश ही नहीं था। कविता युद्धों की सीमा में सीमित हो गई थी। सन्तों ने भी अपने उपदेशात्मक काव्य मे प्रकृति को कोई स्थान नहीं दिया। सूर के काव्य में वृन्दावन और यमुना के चित्र जहाँ संयोग-वियोग के उद्दीपन के रूप मे जाते हैं वहाँ

तुलसी के काव्य में प्रकृति उपदेशात्मक बन कर रह गई है। रीतिकाल में प्रकृति उद्दीपन नारी के अंगों के उपमानों में ही सिमट कर रह गई।

प्रकृति के स्वतन्त्र रूप में सजीव वर्णन आधुनिक काल की कविता से पहले नहीं मिलते। श्रीधर पाठक, हरिऔध, प्रसाद, पन्त तथा अन्य आधुनिक कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

शुक्ल जी का प्रकृति-वर्णन—शुक्लजी अवध के ग्रामीण अंचल की संस्कृति के कवि हैं। उनके हृदय में अवध की ग्राम अचल की संस्कृति घर किए हुए हैं। उन्होंने अवध के ग्रामों की प्रकृति के एक से एक अनूठे चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं। अवध की प्राकृतिक सुषमा शुक्ल जी के काव्य में अपने समस्त वैभव के साथ उपस्थित हुई है।

आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण— शुक्ल जी के काव्य में आलम्बन रूप में प्रकृति कहीं तो अपनी नग्न माधुरी को लेकर आती है, कहीं वह वातावरण की सृष्टि करती है। जहाँ कहीं प्राकृतिक वस्तुओं, एवं पशु-पक्षियों के नाम गिनाये गये हैं, वहाँ भी शुष्क नाम परिगणात्मक प्रणाली का प्रकृति-चित्रण नहीं होने पाया है। वह भी ग्राम का आंचलिक वातावरण प्रस्तुत करने में सहायक होता है। नदी के किनारे जो राममड़ैया बनी हुई है, वहाँ का निम्न उदाहरण में यथार्थ शब्द-चित्र सामने आ जाता है :

जहाँ वयारि लगावै बढ़नी,
जुगुनू दिया दिखावैं।
सुअर, सियार, चील्ह,
गिलहरियाँ कूरा सेति उठावैं।
चिरई, कौवा का-का कहि-कहि,
जागि जगाय सोवावैं।
उइ-उइ, अथै-अथै कै सविता,
दिनु औ राति बतावै॥
जहाँ बँदरवा डाका डारै,
चोरी करैं बिलैयाँ।
हुवैं बनी है राम सहारे,
अपनी राममड़ैया॥

ग्राम के अंचल में बाँस के झुरमुटें नागफनी के चौघारा, मूँज,बेलझर, कांट-करौंदा, बसन्त में महुआ चूना, हेमन्त में गेंदों का खिलना तथा पशु-पक्षियों की किलोलें अपना निराला ही सौन्दर्य रखती हैं :

कहूँ-कहूँ बाँसन का झुरमुट,
नागफनी चौघारा।

मूँजा, बेलझर, कांट-करौंदा,
रुँधि रहे गलियारा ।।
जहाँ वसन्त चुवावै महुआ,
जेठ तपै जल बरषै ।
सरद कमल हेवन्तु गेंदन पर,
सिसिर कुसुम पर बिलसै ।।

बाग, बिरवा, टटिया, मेघ-मलार पग-पग हरी घास का फर्श, ताल, हाट, खलिहान लहलहाती फसलें आदि सभी कुछ प्रकृति की नग्न माधुरी को सामने ला देता है :

बाग झुड़िया बिरवन की छाँह,
हवा टटियन की मेघ-मलार ।

× × ×

ताल, खयातन, हाटन की मिलनि,
गली खरिहानन की बतुवानि ।
ओस के चाटि चाटि कै बूँद,
लहलही फसलन की लहरानि ।।
बिछे पत्तन पर फूलति जायँ,
पत्र फूलनि पर झूलति जायँ ।

ऋतु-वर्णन—शुक्ल जी ने समस्त ऋतुओं का उत्साहपूर्ण वर्णन किया है । किन्तु पावस के वर्णन में उनका मन विशेष रूप से रमा है । उन्होंने पावस को 'दाता चौमास' कहा है । निम्न उदाहरण में कहीं जल की धारा साँप की तरह रेंगती चलती है, कहीं कुलकुली भरकर सन्ना कर आगे बढ़ती है । मेंढक जैसे अपनी ध्वनि में इतिहास को पढ़ते हुए दाता चौमास के गुण गा रहे हैं । नदी-तालाबों मे होड़ पड़ गयी है, मछली जलधारा में सीधी जा रही है, मोरों और स्यारों मे होड़ लगी है :

कहूँ जलु सांपा रेंगनि जाय,
कहूँ कुलकुली भरै सन्नाय ।
कहूँ हहराय, कहूँ घहराय,
कहूँ घरु गाँव रहा कटुवाय ।
मगर घड़ियाल भरि रहे साँस,
कहैं धनि-धनि दाता चौमास ।
नदी तालन माँ परिगै होड़,
नाज धामन माँ परिगै होड़ ।
चली मछली धारन के सूध,
मोर-स्यारन माँ ठनिगै होड़ ।

कवि की दृष्टि पावस में होने वाले पर्व और त्योहारों पर जाती है ।

अनेक परवी आवैं जायँ,
अनेकन देउता पूजे जायँ।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है शुक्ल जी के काव्य में अवध की समस्त आंचलिक प्रकृतिक अपने पूर्ण वैभव के साथ उपस्थित हुई है। उन्होंने प्रकृति के एक-से-एक सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं।

प्रश्न ७—'राम-मड़ैया' कविता के काव्य-सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—'राम-मड़ैया' शुक्ल की ग्राम्य-पर्यावरण की प्रसिद्ध कविता है। इसमें जहाँ अवध जनपद के ग्राम्यांचल के यथार्थ प्राकृतिक दृश्य, रहन-सहन, लोक-विश्वास एवं लोक-संस्कृति के चित्र उभरे है, वहाँ ग्रामों की दुर्दशा-ग्रस्त अस्त-व्यस्त स्थिति की झाँकी भी सामने आ जाती है। इसमें ग्राम्यांचल के नैसर्गिक सौन्दर्य का आकर्षण है।

स्वर्गोपम ग्राम्यांचल की प्रकृति का भव्य चित्र निम्न उदाहरण में दृष्टव्य है:

जहाँ बसन्त चुवावै महुआ,
जेठु तपै जलु बरसै।
सरद कमल, हेबंत गेंदन पर,
सिसिर कुसुम पर बिलसै।
जलचर, बनचर करैं किलोलें,
नाचैं सुआ-चिरैया।
जहँ गाइन का घंटा ठनकै,
भैंसिन का हुकारा।
घोड़वा हींसें, बधवा डहुकैं,
गदहा देय नागरा।
जहाँ बजै रैदास की डफली,
नाचै कुँवर कन्हैया।

राम-मड़ैया नैसर्गिक पर्यावरण में बनी है। नदी का किनारा है, मड़ैया के द्वार पर तलैया भरी है, वायु वहाँ झाड़ू लगाती है, जुगनू अपने प्रकाश का दीपक जलाते हैं, सुअर, सियार, चीलें और गिलहरियाँ कूड़े को समेट कर सफाई करती हैं। पक्षियों का स्वर सबेरे जगाता है और रात को सुलाता है सूर्य का उदय और अस्त ही दिन और रात का होना बताता है।

चिरई-कोवा का-का कहि-कहि,
जागि जगाय सोवावैं।
उइ-उइ अथै-अथै के सविता,
दिन और राति बतावै।

सावन जहाँ अपनी छप्पक-छैया में रोता है, वहाँ चैत अपनी चाँदनी से हँसाता है।

“पीपर बरम, नीम-भुइयां जिन्दा, परेत” वहाँ की लोक-संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। बाँसों के झुरपुट, नागफनी चौधारा, नेवला, बोदर बर्रों, डिगारों, चूहों एवं चेंटों के उत्पात पूर्ण रूप से ग्राम का पर्यावरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

शुक्ल जी ग्राम्यांचल के नैसर्गिक सौन्दर्य का उद्घाटन करने के पश्चात् वहाँ के दूसरे पक्ष पर भी आते हैं। जहाँ राजा का निर्दय व्यवहार है, महाजनों के द्वारा किसानों का शोषण होता है। बीमारी में उनको दवा मिलना तो दूर की बात रही, उनको दुआ भी नहीं मिलती। ‘करिया अच्छर भैंस बराबर’ कहकर कवि ग्रामों में व्याप्त घोर अशिक्षा की ओर ध्यान ले जाता है। परन्तु उसे यह सन्तोष होता है कि ग्रामों में न तो सुलतानी का असर पड़ा और न वहाँ अँग्रेजी सभ्यता ही प्रवेश कर पाई। वहाँ घर-घर में पुरानी रीतियाँ ही प्रचलित हैं। परन्तु कितने दुःख की बात है कि जगत का पालन करने वाला किसान बया के घौंसले जैसे झोंपड़ों में रहकर जीवन व्यतीत करता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आलोच्य कविता ग्रामीण पर्यावरण की यथार्थ झांकी है। शुक्ल जी ने अवधि के स्थानीय और आंचलिक शब्दों का प्रयोग वातावरण को सजीवता प्रदान की है। साथ ही अभिव्यक्ति भी बहुत अधिक मधुर हो गई है।

प्रश्न ८—‘राजा की कोठी’ शीर्षक कविता के काव्य-सौन्दर्य को स्पष्ट करते हुए इसमें निहित कवि के क्रान्ति के उद्घोष को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—राजा की कोठी शीर्षक कविता में शुक्ल जी हमारे सामने क्रान्तिकारी कवि के रूप में सामने आते हैं। वे सामन्तीय व्यवस्था एवं ग्रामों के शोषण के विरुद्ध तीव्र स्वर उठाने वाले कवि रहे हैं। उन्होंने शोषक अफसरशाही और महाजनों को खुलकर चुनौती दी। राजा की कोठी शीर्षक कविता में उन्होंने शोषक सामन्त वर्ग के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है। उनका निर्भीकतापूर्ण व्यंग्य मर्माहत करने वाला है।

कविता के प्रारम्भ में शुक्ल जी ने ‘राजा की कोठी’ का वातावरण प्रस्तुत किया है। वहाँ तो सभी कैद हैं :

पंछी कैदी, पौधा कैदी,
देखतै काँपइ बोटी।
कैद किये जियरा किसान का,
यह राजा की कोठी ॥

राजा की कोठी का बडा वीभत्स और डरावना है। जहाँ पशुओं का मांस पकाया जाता है। बाघों की खाल बिछी है, घोड़े बंधे हैं, हाथी चिंघाड़ रहे हैं, देवताओं की तस्वीरें टँगी हैं, राम-कृष्ण के शीश और शंकर साँपों से घिरे टँगे हैं। राजा की यह कोठी ग्राम का शोषण करके जीवित है :

जहाँ मांसु चुरि रहे पसुन के,
खाल बिछी बघवन की ।
घोड़वा बांधे, हाथी चिंघरैं,
सकल टँगी देवतन की ।
राम कृष्ण के मूँड टँगे,
संकर पटके सापन माँ ।
जियै गाँव का खून चूसि कै,
यह राजा की कोठी ॥

राजा की कोठी भीषण शोषण का प्रतीक है । शुक्ल जी भाषा के माधुर्य और सफल आंचलिक शब्द-योजना मे शोषण का शब्द-चित्र अंकित करते हुए कहते हैं कि राजा की कोठी में किसानों के हाड़ों की ईंटें उनके खून का गारा और पत्थरों के स्थान पर किसान का हृदय और उनके नेत्रों के तारे पुत्र लगे हुए हैं। उसमें देश-भक्तों की चरबी और अत्याचारो की चिकनाई लगी हुई है । इस कोठी में अन्याय का घण्टा ठनकता है और पापों की कथा होती है। इस कोठी मे यमराज का साक्षात् भाई राजा निवास करता है, जो खून की रोटी खाता है । यह कोठी न होकर किसानों का बूचड़खाना है । बूचड़खाना राजा के शोषण की मार्मिक व्यंजना कर देता है :

इंट किसानन के हाड़न की,
लगा खून का गारा ।
पाथरु अरु जियरा किसान का,
चमक आंख का तारा ।
लगी देश भक्तन की चरबी,
चिकनाई जुलमन की।
घण्टा ठनकै अन्याइन का,
कथा होई पापन की ।
जहाँ बसै ऊ जम का भइया,
खाइ खून की रोटी ।
वह बनी बूचड़खाना असि,
महाराज की कोठी ।

राजा के दफ्तर के कर्मचारी साक्षात कसाई हैं। वे किसान की लज्जा और कमाई को लूटते है। वे रात-दिन लूट खसोट का षड्यन्त्र रचते रहते हैं। कविता के अन्त मे शुक्ल जी राजा की कोठी में हो रहे अत्याचार और अनाचार की मार्मिक व्यजना करते है अबलाओं का जहाँ सतीत्व लुटता है और किसान की लँगोटी छीन ली जाती है, यहाँ भाव व्यंजना बडी मार्मिक चोट करती है और राजा के अत्याचार एवं अन्याय के प्रति हृदय मे आक्रोश भर जाता है :

जहाँ सतीत्व लुटैं अबलन का,
छीनी जाय लँगोटी ।
वहै बनी वैतरनी तट पर,
महाराज की कोठी ॥

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य कविता में सामन्तीय शोषण-व्यवस्था के प्रति जहाँ तीव्र आक्रोश है, वहाँ स्थानीय एवं आंचलिक भाषा के आवरण अभिव्यक्ति मधुर एवं प्रभावशाली बन पड़ी है ।

प्रश्न ६—'हुवाँ कसकस होइ निरवाह' शीर्षक कविता में बंशीधर शुक्ल ने ग्राम और शहर की स्थिति पर दृष्टि डालते हुए जो निर्णय दिये हैं, उन पर विचार कीजिए ।

उत्तर—शुक्ल जी अवध की लोक-संस्कृति के कवि हैं । अवध के अंचल की प्रकृति उनके हृदय में पूर्ण रूप से बनी हुई है । इस ग्राम्य-संस्कृति से उनका इतना अधिक अनुराग है कि वे शहर में अपना निर्वाह असम्भव देखते हैं । ग्राम का रमणीय प्राकृतिक वातावरण रंग-विरंगे विभिन्न प्रकृति के पशु पक्षी, लहराते हुए खेत तथा नदी नालों का सौन्दर्य उनके कवि हृदय को आकर्षित करता है । ग्राम के स्त्री-पुरुषों के सरल जीवन और निष्कपट व्यवहार ने उनको विशेष रूप से प्रभावित किया है । ऐसे ग्रामों के स्थान पर शहरों मे जहाँ कि छल, कपट एवं धूर्तता का वातावरण है, तथा ग्राम्य-प्रकृति एवं ग्राम्य-लोक-संस्कृति का अभाव है, वहाँ निष्कपट कवि का निर्वाह होना कठिन है । निम्न उदाहरण दृष्टव्य है :

जहाँ न प्रकृति भरै उत्साह,
हुवाँ कस-कस होई निरवाह ।
जहाँ गोखुर की उड़ै न धूरि,
लँरुवा-लिचरन की पुड़ुकानि ॥
न छोटे लरिका अनिखा दिहे,
धूरि माँ लोटि-लोटि वेल्हरांय ।
न रिछवा, बधवा, नकवा लड़ैं,
न छुट्टा सांड़िनि साँड बँवाय ।
न उम्बी, ह्वारा गद्दर छियाँ,
न बाली भुट्टा ना अमल्तास ।
नहीं रितु-रितु का मिलै प्रसाद,
उठैं-उठैं का नहीं सुपास ॥

ऋतु के अनुकूल ग्राम की शहर में ये नियामतें कहाँ ? शुक्ल जी का ग्राम का यह चित्रण केवल कल्पना पर ही आधारित नहीं है, अपितु उन्होंने इसे बड़े समीप से एवं आत्मीयता से देखा है । शहरी जीवन को ग्राम के जीवन के समक्ष शुक्ल जी ने हेय कहा है । शुक्ल जी ग्राम-जीवन की सम्पूर्णता के कवि हैं । ग्राम-जीवन की विभीषिका और विपन्नता से शुक्ल जी भली प्रकार परिचित हैं । उनके यथार्थ चित्र उन्होंने अंकित किये हैं । शहर के जीवन में दिखावा, छल-कपट एवं स्वार्थ का व्यवहार, शहर की इस दशा का निम्न शब्द-चित्र दृष्टव्य है :

जहां की दुनियौ छायाभास,
भेखु, भाखा, बखरी, ब्योहारु।
पेट मा कपटु, बात मां दगा,
जीभ मां झूठ, ओठ मां प्यार।
आंखि मां नशा, चित्त मां छाभु,
देह मां रोगु, रूप सुकुमार।
दोसु भरि काटैं सबके प्याट,
यहै बैपारु, लच्छ व्यभिचार।
जहां पर कहै चोंर का साह,
हुवां कस-का होई निरवाह।।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुक्ल जी ने ग्राम और नगर के जीवन पर तुलनात्मक दृष्टि डालकर दोनों के रहन-सहन का यथार्थ वर्णन किया है और शहर के जीवन को हेय सिद्ध किया है।

प्रश्न १०—'दाता चौमास' शीर्षक कविता के काव्य-सौन्दर्य की परीक्षा कीजिए।

उत्तर—'दाता' शुक्ल जी की ऋतु-परिवर्तन से सम्बन्धित प्रसिद्ध कविता है। इसमें अवध के ग्रामों की वर्षाकालीन प्रकृति अपने सम्पूर्ण रूप में उपस्थित हुई है। चौमास का उल्लासपूर्ण वर्णन करते हुए उसकी शुक्लजी ने जयकार कराई है। शुक्लजी का पावस ऋतु में विशेष ममत्व इस कविता में झलकता है। उन्होंने 'पावस' को ही ऋतुराज माना है और ऋतुराज वर्णन में चौमासे की जयकार कराई है।

देखि खिसियाय रहा मधुमास,
कहै धनि-धनि दाता चौमास।

शुक्ल जी ने आलोच्य कविता में पावस-प्रकृति का चित्रण करते हुए जिन-जिन दृश्यों, जीव-जन्तुओं, तिथि, त्योहारों का उल्लेख किया है, उससे चौमास का दाता रूप स्पष्ट हो जाता है। चौमास यथार्थ में सभी का दाता है। किसान का तो वह दाता सर्व विदित ही है, तभी तो किसान उल्लास में भर कर उसकी जयकार करता है :

किसान ऊ फूले देखि आकाश,
कहे धनि-धनि दाता चौमास।

चौमासे में नदी नाले उमड़कर उल्लसित होते हैं और दाता चौमास की जयकार करते हैं :

नदी-नारा मिलि करैं हुलास,
कहैं धनि-धनि दाता चौमास।

चौमास में पृथ्वी पर घास का हरा फर्श बिछ जाता है। वृक्ष, वल्लरियां, और विरवे पल्लवित और पुष्पित हो उठते हैं मेढ़क तक अपनी टर्र-टर्र की समवेत ध्वनि में दाता चौमास की जयकार करते हैं :

मेढ़कउ बांचि उठे इतिहास,
कहैं धनि-धनि दाता चौमास।

चौमास में प्रवाहित जलधारा का शुक्ल जी ने जो शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहीं-कहीं जलधारा सांप की तरह रेंगती हुई चलती है, कहीं हहराकर घर एव ग्रामों को नष्ट कर देती है :

कहूँ जल सांपा रेंगनि जाय,
कहूँ कुलकुली मरैं सन्नाय ।
कहूँ हहराय, कहूँ घहराय,
कहूँ घरु, गांव रहा कटवाय।

नदी, तालाब उमड़कर दूसरे से होड़ कर रहे हैं। मोर और स्यारों ने एक दूसरे से अधिक ऊँची आवाज में बोलने की होड़ लगाई :

नदी तालाब मां परिगै होड़,
नाज-घासन मां परिगै होड़।
चली मछली धारन के सूध,
मोर-स्यारन मां ठनिगै होड़ ।

कवि की दृष्टि पावस में पडने वाले त्योहार और उत्सवों पर भी जाती है। चौमासे में अनेक देवताओं की पूजा होती है। जन्म-अष्टमी के पर्व पर कृष्ण पालने में झूलते हैं।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चौमास यथार्थ मे जगत-जीवन का दाता है। सारे प्राणी उल्लसित होकर उसकी जयकार करते हैं। कवि की भाषा में इतनी सजीवता है कि चौमास का यथार्थ चित्र अंकित हो जाता है।

प्रश्न ११—आप अपनी पाठ्य कविताओं के आधार पर सिद्ध कीजिए कि बंशीधर शुक्ल अवध की आंचलिक प्रकृति के सम्पूर्णता और ग्रामीण व्यवस्था के कवि हैं।

अथवा

प्रश्न १२—सिद्ध कीजिए कि शुक्ल जी अवध के ग्रामीण अंचल की प्रकृति तथा लोक-संस्कृति के कवि हैं। प्रकृति अपने सम्पूर्ण रूप में श्री बंशीधर शुक्ल के काव्य में उभरी है।

अथवा

प्रश्न १ —बंशीधर शुक्ल की रचनाओं में ग्राम्य-जीवन के सजीव चित्र उपलब्ध होते हैं। उपयुक्त उदाहरण देते हुए इस कथन को प्रतिपादित कीजिए।

उत्तर—आधुनिक अवधी भाषा के सम्राट श्री बंशीधर शुक्ल वर्तमान अवधी भाषा के कवियों में शीर्ष स्थान रखते हैं। वर्तमान किसान-जगत एवं अवध के गांवों का कोई भी विषय उनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा है। उन्होंने अवध के ग्रामीण अंचल की प्रकृति रहन-सहन एवं लोक-संस्कृति को समीप से देखा-परखा और वाणी दी। उन्होंने शहरी जीवन की अपेक्षा ग्रामों के सहज और सरल जीवन का प्रमुखता दी। 'राममड़ैया' का वातावरण नदी तट पर स्थित पर्यावरण का सजीव चित्र सामने ला देता है। 'राजा की कोठी' शीर्षक कविता किसानों पर अत्याचार का भीषण चित्र उपस्थित करती है। शुक्ल जी ने उसे किसानों का बूचड़खाना कहा है। 'हुवां कस-कस होई निरवाह' में शुक्ल जी ने ग्राम और शहर के जीवन की तुलना करके शहरी जीवन को हेय सिद्ध किया है। 'किसान की दुनियां' कृषक जीवन और रहन-सहन की प्रतिनिधि कविता है। 'दाता चौमास' में चौमास की प्रकृति और उसमें सड़ने वाले त्योहारों का उल्लेख है।

अवध के प्रकृति-परिवेश, वहाँ की लोक-संस्कृति से शुक्ल जी का अनन्य सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि अवध जनपद की दुर्दशा-ग्रस्त, अस्त-व्यस्त और विपन्न स्थिति, गांव वालों के आहार-विहार, उनके समस्त रहन-सहन का वर्णन शुक्ल जी की कविताओं मे हुआ है।

'रामम‌ड़ैया' शीर्षक कविता में ग्राम का नैसर्गिक पर्यावरण प्रतिबिम्बित हो उठा है। निम्न उदाहरण में ग्राम्यांचल का नैसर्गिक सौन्दर्य है :

जहाँ बसन्त चुवावै महुआ,
जेठु तापै जलु बरसै।
सरद कमल, हेंवंतु गेंदन पर,
सिसिर कुसुम पर विलसै।

× × ×

जहाँ वजै रैंदास की डफली,
नाचै कुँवर-कन्हैया।

शुक्ल जी ने ग्रामों के पशु-पक्षियों, वनस्पतियों, रंग-बिरंगी फसलों और प्रकृति का मुग्धकारी वर्णन किया है। शुक्ल जी ने ग्राम-जीवन की तुलना में शहर के जीवन को हेय कहा हैं।

ग्राम की दुनियां का कोई भी पक्ष शुक्ल जी से अछूता नहीं रहा है। ग्राम-जीवन की विभीषिका, उसकी नारकीय भावना का वर्णन भी उन्होंने किया है। 'किसान की दुनियां' शीर्षक कविता मे ग्राम का सारा परिवेश समा गया है। किसान की दुनिया में घासपूस के छप्पर से छाये हुए कुछ घरौंदों से घर बने हुए हैं। इन घरों के आगे-पीछे नाना प्रकार जंगली पेड़ हैं। अभाव-ग्रस्त जीवन में भी ग्राम के लोगों का उत्साह और उल्लास देखते ही बनता है। निम्न उदाहरण में देखिए :

टेंटे पर लरिका का दावे मेहरी द्वार बुहारै।
बिटिया थिरकै पाइन पहिरै सनई की झुनझुनिया।
देखि करेजा वित्तन राढै यह किसान की दुनिया।

पुलिस, इन्स्पेक्टर तथा जमींदार और उसके कारिन्दों द्वारा किसान की भीषण लूट तथा ग्राम में फैली हुई बीमारियों पर भी शुक्ल जी की दृष्टि जाती है। 'राजा की कोठी' को वे किसान के लिए बूचड़खाना कहते हैं। 'दाता-चौमास' कविता में वर्षा-ऋतु का उल्लासपूर्ण वर्णन करते हुए उसे ऋतुराज कहा है और बसन्त के द्वारा भी उसकी जयकार कराई है :

इस प्रकार शुक्ल जी जहाँ अवध के अंचल के सम्पूर्णता के कवि हैं, वहाँ अवधी भाषा की सम्पूर्णता भी उनकी रचनाओं में मिलती है।

व्याख्या-विश्लेषण

आँसू

जो घनीभूत पीड़ा थी ॥१॥

शब्दार्थ—घनीभूत=मेघ मयी, सघन । दुर्दिन=१. संकट का समय—यहाँ कवि के लिये प्रियतम का वियोग ही संकट का समय है । २. पानी-बादल का समय ।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि बरसात के समय का रूपक बाँधकर 'आँसू' काव्य की सर्जना के कारण का संकेत दे रहा है ।

भावार्थ—जिस प्रकार मेघाच्छन्न आकाश वर्षाकाल में जल-बिन्दुओं की वर्षा करता है, कवि (प्रेमी) कहता है कि उसी प्रकार मेरी चेतना के आकाश में विगत जीवन की स्मृतियाँ आकर घिर गई हैं । घनीभूत पीड़ा ने मन को व्यथित कर दिया है । आज प्रिय-वियोग के दुर्दिन में मेरी वेदना का यह मेघ आँसुओं की वर्षा कर रहा है ।

व्याख्या—कवि अब तक प्रश्न करता आया है कि उसके हृदय में हाहाकार के स्वरों में वेदना क्यों गरज रही है । अब वह इसका कारण समझ गया है । जिस प्रकार आकाश में मेघ सघन होकर बरसते हैं, उसी प्रकार उसके मस्तिष्क में संचित पीड़ा और तद्जनित अनुभूतियाँ स्मृतियों के रूप में घनीभूत हो गई हैं । जिस प्रकार वर्षाकाल में मेघ बरसते हैं, उसी प्रकार कवि को प्रियतम का वियोग दुर्दिन वर्षाकाल हो रहा है और मस्तक में स्मृति सी छायी घनीभूत पीड़ा ही आँसू बनकर बरस पड़ी है ।

विशेष—१. यह छन्द स्पष्ट करता है कि 'आँसू' की रचना के पीछे कवि की किसी असफल प्रेम-कथा की पृष्ठभूमि रही है । वियोग-वेदना के आधिक्य में ही कवि की भाव-धारा 'आँसू' के रूप में प्रवाहित हुई है । करुणा ही को काव्य की सृष्टि का मूल स्रोत माना गया है । आदि कवि बालमीकि के काव्य का स्रोत वेदना से ही फूटा है :

"मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौञ्च मिथनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

पन्तजी ने भी काव्य सृष्टि में वेदना को महत्त्व देते हुए कहा है कि पहला कवि वियोगी होगा, उसकी आह से गान निकला होगा और अनायास ही उसके नेत्रों से कविता की धारा प्रवाहित हो चली होगी :

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से निकला होगा गान।
उमड़कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान।

२. इस छन्द में प्रसाद जी ने वर्षा का बड़ा ही सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है। आकाश में मेघ एकत्र होकर जब बहुत गहरे हो जाते हैं, तभी वर्षा होती है, उसी प्रकार उनके मस्तिष्क में जब वेदना की अनुभूतियाँ स्मृतियों के रूप में एकत्र होकर घनीभूत हो गई, तभी 'आँसू' की वर्षा होने लगी, अर्थात् 'आँसू' काव्य का सृजन प्रारम्भ हो गया।

३. **प्रतीक-योजना**—(क) 'मस्तक' आकाश का प्रतीक है।
(ख) 'दुर्दिन' 'बरसात' का प्रतीक है।

४. **विप्रलंभ शृंगार**—विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत करुणा की व्यंजना हुई है।

५. **अलंकार**—(क) 'दुर्दिन' में श्लेष।
(ख) 'घनीभूत' में श्लेष।
(ग) 'पीड़ा' अमूर्त्त उपमेय के लिए 'स्मृति' अमूर्त्त उपमान की योजना होने से उपमा।
(घ) **रूपक**—बरसात का रूपक कवि ने प्रस्तुत किया है।

झंझा झकोर गर्जन था ॥२॥

शब्दार्थ—झंझा = आँधी। झकोर = झकझोरती हुई तेज़ हवा। नीरदमाला = मेघ-समूह। शून्य = १. आकाश, २. निराशा। डेरा डाला = स्थायी रूप से बस गई। झंझा झकोर, गर्जन बिजली और नीरद-माला = भावों की हलचल, वेदना और उदासी के प्रतीक हैं।

सन्दर्भ· प्रस्तुत छन्द में कवि स्पष्ट करता है कि प्रिय के वियोग में उसका हृदय भावों की हलचल, तीव्र वेदना और उदासी से भर गया है और उसके हृदय में प्रलय की सी हलचल मच रही है।

व्याख्या—जिस प्रकार शान्त और निर्मल आकाश में झंझावात से प्रताड़ित होकर मेघ-मालाएँ चारों ओर से घिर कर सघन हो जाती हैं, उनके टकराने से गम्भीर गर्जन होता है, बिजली चमककर वातावरण को अपनी चकाचौंध में भर देती है, तथा घनघोर वर्षा होने लगती है, उसी प्रकार मेरे हृदय के शून्य आकाश में प्रियतम की स्मृति का झंझावात और झकझोर उठकर हृदय में हलचल मचा देता है। प्रिय के सघन केशों की मेघमाला से उसके मन्द-मन्द हास्य की विद्युत मन में आकर कौंधने लगती है। मेरा शान्त हृदय प्रियतम की स्मृतियों की हलचल से भर जाता है और इन सबका हृदय में स्थायी निवास सा बन जाता है।

विशेष—१. 'डेरा डालना' मुहावरा है। डेरा डालने वाली नट, कंजर जातियाँ कुछ समय के लिए डेरा डालकर एक स्थान पर बस जाती हैं।

२. छायावादी प्रतीक शैली में नवीन प्रतीकों की योजना हुई है।

3. **रस**—विप्रलंभ शृंगार—स्मृति की वियोगावस्था है।

४. **अलंकार**—प्रस्तुत से अप्रतुत का संकेत होने से समासोक्ति, मुहावरे का प्रयोग होने से लोकोक्ति, 'शून्य' में 'श्लेष' 'झंझा झकोर' में छेकानुप्रास।

५. कुछ लोगों ने प्रथम पंक्ति से 'झंझा झकोर' और 'बिजली' और 'नीरद माला' को लेकर कल्पना की है कि यह सृष्टि में होने वाले प्रलय का वर्णन है, पर दूसरी ओर दूसरी पंक्ति "पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला" को सर्वथा विस्मृत कर दिया है। कवि यहाँ अपने वियोग से विह्वल हृदय की दशा का वर्णन कर रहा है। 'झंझा, 'बिजली' और 'नीरदमाला' भावों की हलचल, वेदना और उदासी के प्रतीक हैं।

तुम सत्य रहे चिर, सुन्दर ॥३॥

शब्दार्थ—चिर=शाश्वत, सदैव रहने वाला। तुम सत्य रहे=केवल तुम्हीं सत्य थे। मेरे इस मिथ्या जग के=मेरा यह संसार क्षण-क्षण परिवर्तनशील, असत्य और मिथ्या है। मिथ्या=झूठा, भ्रान्तिपूर्ण। कल्याण-कलित=कल्याण से युक्त।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि प्रिय के साथ अपना एकांन्त सम्बन्ध प्रस्तुत करता हुआ उसे सत्य और चिर सुन्दर कह रहा है।

व्याख्या—संसार के मिथ्या तथा भ्रामक होते हुए भी कवि का प्रियतम उसके लिए चिर सत्य और सुन्दर है। समस्त दृश्यमान पदार्थों में उसका प्रियतम ही चिरन्तन सत्य और रूपमान है और वह ही उसका एक मात्र सहचर है। उसका कहना हैं कि—

"यह संसार मिथ्या है, अर्थात् सत्य और असत्य दोनों से परे एक भ्रामक प्रतीति मात्र है, परन्तु फिर भी इसी भ्रामक प्रतीत रूप संसार में रहने वाला उसका प्रियतम उसके लिए चिन्तन सत्य तथा चिर रूप-सम्पत्ति है। यह उसका अटल विश्वास है कि वही उसके जीवन के कल्याण-पथ का एक मात्र साथी है।"

विशेष—१. यहाँ कवि के प्रेम में बालोचित भावुकता ही नहीं है, अपितु उसमें एक निष्ठा, गम्भीरता एवं स्वस्थ विचारशील परम्परा है। इसमें कुछ आध्यात्मिक संकेत भी मिलता है, परन्तु यह आध्यात्मिकता प्रसंगवस ही आ गई है, किसी अधिकारिक घटनावश नहीं। प्रेम की उच्चता के कारण कवि स्वयं आध्यात्मिकता की ओर झुक गया है, जिसका करण विचारों की परिपक्वता है।

२. प्रसाद जी ने अपने प्रिय को सत्य, शिवं और सुन्दरं से युक्त कहा है।

३. प्रसाद जी ने प्रेम को शाश्वत माना है।

४. कवि स्पष्ट कहता है कि जगत क्षण-क्षण में परिवर्तनशील है। उसका सौन्दर्य स्थायी नहीं है। प्रिय का सौन्दर्य सदा ही ताजगी लिये हुए है। इसीलिए उसे चिर सुन्दर कहा गया है।

५. **अलंकार**—(क) 'तुम सत्य·······जग के' में विरोधाभास।
(ख) 'कल्याण-कलित' में 'क' वर्ग की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

कितनी निर्जन रजनी में ॥४॥

शब्दार्थ—निर्जन=शून्य। रजनी=रात्रि। तारों के दीप जलाये=लक्षणा से अर्थ है, तारों को देखते हुए रात्रि व्यतीत की। स्वर्गङ्गा=आकाश-गंगा।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा का वर्णन कर रहा है।

भावार्थ—हे प्रिय! तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में मैंने कितनी रातें बिता दीं। सारे संसार के सो जाने पर अपलक नेत्रों से तारों को देखता हुआ मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा। रात में जो तारे चमकते हैं, वे ही मेरे द्वारा सजाए हुए दीप हैं, जो मैंने आकाश गंगा में बहाकर तुम्हारी भेंट चढ़ा दिए हैं।

व्याख्या—हे प्रिय! मैंने न जाने तुम्हारे आगमन की कितनी प्रतीक्षा की। नीरव तथा सूनी रात्रियों में स्वर्गङ्गा में चढ़ाये गये उपहारों की भाँति तुम्हारी प्रतीक्षा में ताराओं के दीपक जलाये। ये दीपक मेरे मन उज्ज्वल साधना के ही उपहार थे। विरही कवि रात्रि भर आकाश की ओर अनिमेष देखता हुआ प्रियतम की प्रतीक्षा करता है। वह आकाश-गंगा से तारों के उदित होने और विलीन होने की क्रिया को देखता है उसे लगता है, जैसे वह इनके रूप में प्रिय की प्रतीक्षा में मन की उज्ज्बल साधना के उपहार चढ़ा रहा हो।

विशेष—भारतीय सौभाग्यवती नारियाँ प्रायः नदी के तट पर जाकर दीपक जलाकर धारा में विसर्जित करती हैं। इस प्रकार वे अपने-अपने प्रवासी प्रियतम के कुशलपूर्वक प्रत्यागमन की मधुर आकांक्षा करती हैं।

काव्य-सौन्दर्य—१. रूपक अलंकार—'स्वर्गङ्गा' के उज्ज्वल उपहारों को प्रियतम के आगमन पक्ष पर लगे हुये नेत्रों (दीपकों) का उपमान बनाया गया है, 'उज्ज्वल उपहार' में छेकानुप्रास।

२. काल वैशिष्टगत व्यंजना।

३. भाव-साम्य :

"जब कामना सिंधु-तट आई, ले संध्या का तारा दीप।
फाड़ सुनहली साड़ी उसकी, तू हँसती क्यों अरी प्रतीप।
—कामायनी, आशा सर्ग।

मधु राका मुसक्याती थी ॥५॥

शब्दार्थ—मधु राका=बसन्त पूर्णिमा की रात्रि। परिचित से=पहचाने हुए से।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि प्रिय से प्रथम मिलन के आनन्दोल्लास का वर्णन कर रहा है :

व्याख्या—हे प्रियतम ! जब तुम मेरे जीवन में पहली बार आये थे, तब मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो निराशा के अन्धकार में कहीं से बसन्त की पूर्णिमा की मधुर-राशि की चाँदनी आकर अपना उज्ज्वल प्रकाश फैला गई हो। हे प्रिय ! यद्यपि तुमसे मेरा यह प्रथम मिलन था, किन्तु मुझे ऐसा लगता था कि मानों तुम मेरे जन्म-जन्मान्तर के परिचित हो।

विशेष—१. यहाँ 'प्रीति पुरातन लखै न कोइ' के सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है।

२. प्रियतम पहली झलक में ही प्रिय के इतने समीप आ गया मानो वह वर्षों का जाना पहचाना हो।

३. **अलंकार**—'मधु राका' के मुस्कराने में मानवीकरण, पूरे छन्द में उत्प्रेक्षा अलंकार।

शशिमुख पर घूँघट डाले ॥६॥

शब्दार्थ—गोधूलि=सांध्य बेला। कौतूहल=जिज्ञासा जनित आश्चर्य।

सन्दर्भ—प्रियतम के आगमन से कवि के जीवन में नया उल्लास छा गया था। प्रस्तुत छन्द में इसी को स्पष्ट करते हुए वह कहता है :

व्याख्या—जिस प्रकार संध्याकाल हो जाने पर चन्द्रमुखी नारी अपने अंचल की ओट में दीपक को लेकर वातावरण को प्रकाशमान बनाती है, उसी प्रकार प्रियतम के आ जाने से कवि के हृदय में फैला हुआ निराशारूपी अन्धकार दूर होकर आशा रूपी आकाश प्रदीप्त हो उठा है, परन्तु प्रियतम का यह आकस्मिक आगमन उसके लिए कौतूहल-वर्धक बन गया है।

विशेष—यहाँ कवि ने 'प्रियतम' का पुल्लिंग में प्रयोग किया है। यह फारसी काव्य-शैली का प्रभाव माना जा सकता है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि उस समय सामाजिक वातावरण ऐसा नहीं था कि कवि अपनी वैयक्तिक भावनाओं को स्पष्टता के साथ प्रकट करता। अतएव उसने पुल्लिंग का प्रयोग किया है।

अलंकार—शशिमुख' में रूपक, 'जीवन·······कौतूहल से तुम आये' में उपमा अलंकार है।

बाँधा था विधु को किसने ॥७॥

शब्दार्थ—बाँधा था=बाँध दिया था। विधु=चन्द्रमा। काली जंजीर=काले बाल। चन्द्रमा=चन्द्रमा मुख का प्रतीक है।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत है। यहाँ कवि प्रियतम के नख, केश और सिन्दूरी माँग का वर्णन कर रहा है :

व्याख्या—इन काले केशों रूपी जंजीरों में मुख रूपी चन्द्रमा को किसने बाँध लिया है। बँधे और गुँथे हुए काले केशों की लटें ऐसी लगती हैं मानो काली जंजीरों में चन्द्रमा को बाँध दिया गया हो। ये काले केशों वाली लटें साँप हैं। साँप को फणिधर कहा जाता है। प्रिय की मांग हीरों से सुशोभित हैं। माँग में सुशोभित हीरे एसे लगते हैं, मानो मणि वाले साँपों का मुख हीरों से भरा हुआ है।

विशेष—१. यहाँ कवि की बड़ी ही सुन्दर कल्पना है। यहाँ से केशों में माँग कढ़ी हुई है, वही साँपों के मुख हैं, जिन पर मणियाँ शोभायमान हैं।

२. माँग हीरों से भरी हुई हैं, अतः यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि का प्रिय विवाहित है। विवाहित और सधवा नारियाँ ही अपनी माँग को सिन्दूर और मोतियों से सजाती हैं।

२. ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की प्रेमिका उससे बिछुड़ गई और उसका विवाह अन्य से हो गया। कवि के हृदय में प्रिय को सजी हुई माँग तथा केशों की स्मृति शेष रह गई।

४. ये पंक्तियाँ स्पष्ट कद रेती हैं कि 'आँसू' आध्यात्मिक काव्य नहीं है। कवि के पेम का आलम्बन मानवी ही है।

५. यहाँ से नख-शिल-वर्णन प्रारम्भ होता है। जो पुस्तक के चौवीसवें पृष्ठ तक चलता है। वर्णन परम्पराग होते हुए भी कवि ने नई कल्पनाओं की उद्भावना की है।

अलंकार—उपमान विधु', 'काली जंजीरों', आदि से उपमेय मुख और केशों का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति, अन्तिम पंक्तियों में सन्देह है।

७. गौणी लक्षणा।

चंचल स्नान कर आवे ॥८॥

शब्दार्थ—चंचला=बिजली। चन्द्रिका-पर्व=पूर्णिमा की ज्योत्सना। आलोक मधुर=सौन्दर्य का मधुर आलोक।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि प्रिय के सम्पूर्ण सौन्दर्य के प्रभाव का चित्रण कर रहा है।

व्याख्या—प्रियतम के पवित्र तन की शोभा अपनी उज्ज्वल आभा को उसी प्रकार विकीर्ण कर रही थी, जैसे चंचल बिजली ज्योत्सना के सरोवर में स्नान करके अपना प्रकाश फैला रही हो।

विशेष—१. चंचल अपने सौन्दर्य के लिए अप्रतिम उपमान है, किन्तु वह ज्वालामयी है। अतः कवि उसे चन्द्रिका पर्व में स्थान कराके पहले शीतल

और पवित्र एकता है, तब उसको अपने प्रिया के सौन्दर्य का उपमान बनाता है ।

२. चंचला से कवि ने अपने प्रिय की चंचलता की ओर भी संकेत किया है । उसमें कांति और चंचलता के भाव पवित्रता और शीतलता भी है ।

३. यहाँ नायिका के भौतिक सौन्दर्य में 'पावन' शब्द के द्वारा अलौकिकता का समन्वय कर दिया है । प्रसाद भौतिक सौन्दर्य ही का वर्णन करते हैं, परन्तु ऐसे उपमानों का प्रयोग करते हैं, जिनके कारण भौतिक सौन्दर्य में अलौकिकता आ जाती है ।

४. **अलंकार**---शरीर के सौन्दर्य की समता चन्द्रिका पर्व में स्नान करके आई हुई, 'चंचला' से होने में उपमा, 'चंचला' के स्नान आदि करने की मानवीय क्रियाओं का वर्णन होने से मानवीकरण ।

५. **भाव-साम्य**---प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इसी प्रकार श्रद्धा का सौन्दर्य वर्णन किया है---

"और देखा वह सुन्दर दृश्य,
नयन का इन्द्रजाल अभिराम ।
कुसुम वैभव में लता-समान,
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम ।।"

× × ×

"नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अध खुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।।"

× × ×

"नित्य-यौवन-छवि से हो दीप्त,
विश्व की करुण-कामना मूर्ति ।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण,
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति ।"

टिप्पणी---यहाँ तक कवि ने सौन्दर्य-वर्णन और नख-शिख-वर्णन किया है । इस वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मांसल और स्थूल नहीं है । कवि का ध्यान अंग-प्रत्यंग में स्थूल वर्णन पर न जाकर उसके सरल-सौन्दर्य पर ही जाता है ।

विष प्याली जो पी ली थी ।।६।।

शब्दार्थ---विष प्याली=प्रिय के प्रेम और सौन्दर्य का विषैला प्रभाव । 'सौन्दर्य-पलक प्याले का' =प्रिय के सुन्दर पलक रूपी प्याले की सौन्दर्य-मदिरा ।

भावार्थ—विष का प्याला मनुष्य एक बार ही पीता है, किन्तु जब वह हलाहल का आदी हो जाता है, तो उसे बारम्बार पीता है। कवि के हृदय में प्रिय से प्रेम करने और उसके सौन्दर्य-दर्शन की अभिलाषा मदिरा बनकर सदैव बनी रहती है।

व्याख्या—मैंने एक बार प्रियतम के प्रेम और सौन्दर्य-दर्शन का विष-पान किया था, उसका प्रभाव मेरे नेत्रों में मदिरा बनकर छा गया है। जिस प्रकार मदिरा पीने वाला व्यक्ति बारम्बार मदिरा पीना चाहता है, उसी प्रकार मेरे नेत्र भी सदैव प्रिय का सौन्दर्य देखने के लिए लालायित रहते हैं। उसके सुन्दर पलक रूपी प्याली की मदिरा का आस्वादन करना ही अब मेरे जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन गया है और अब यही मेरा प्रेम है।

१. **अलंकार**—रूपक, अनुप्रास।
२. विप्रलम्भ शृंगार।
३. लाक्षणिक शब्दावली का प्रयोग।

कामना-सिन्धु लहराता छवि ।।१०।।

शब्दार्थ—कामना-सिन्धु लहराता=प्रिय के दर्शन और स्पर्श की कामना सागर बनकर तरंगित हो उठी है। छवि पूर्णिमा थी छाई=चारों ओर प्रिय का अतुल सौन्दर्य पूर्णिमा की ज्योत्सना बनकर फैल रहा था। रत्नाकर=समुद्र, यहाँ कवि के हृदय रूपी रत्नाकर से तात्पर्य है। शशि=चन्द्रमा, यहाँ प्रिय के मुख का अर्थ है।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि प्रिय के सौन्दर्य-दर्शन के समय उसे पाने की तीव्र कामना और अब वियोग में हृदय में उसे देखता हुआ अपनी दशा का वर्णन कर रहा है।

भावार्थ—प्रियतम की छवि पूर्ण विकसित होकर पूर्णिमा की चन्द्रिका के समान छा गई थी। उसे देखकर प्रेमी (कवि) के हृदय में प्रेम का समुद्र लहरा उठा था, परन्तु अब वियोग में वह हृदय में रत्नाकर में ही प्रिय के चन्द्र-मुख का प्रतिबिम्ब देख रहा है।

व्याख्या—हे प्रिय! मिलन के समय तुम्हारे सौन्दर्य की पूर्णिमा चारों ओर छा गई थी। पूर्णिमा की चन्द्रिका सदृश तुम्हारे विकसित सौन्दर्य को देखकर मेरे हृदय में कामना का सागर लहरा उठा था अर्थात् हृदय-सागर में प्रेम उसी प्रकार हिलोरें लेने लगा था, जिस प्रकार पूर्णिमा के विकसित वैभव में सागर की लहर ज्वार रूप में उठकर चन्द्रमा का आलिंगन करने को वेग से बढ़ती है, तुम्हारी छवि-चन्द्रिका ने भी मेरे मानस-सागर में इसी प्रकार वेगपूर्ण लहरें उठा दी थीं। तुम इसी बीच में अदृश्य हो गये। अब तुम्हारे वियोग में हृदय-रत्नाकर में ही तुम्हारा

आभामय मुख-चन्द्र प्रकाशित देखता हूँ। आज तुम्हारा अतुल छविमय मुख-चन्द्र मेरे हृदय के अथाह सागर में प्रतिबिम्बित हो उठा है।

विशेष—१. पूर्णिमा की रात्रि को जब चन्द्रमा अपने पूर्ण वैभव में होता है, तब समुद्र में ज्वार की ऊँची लहरें उठती हुई ऐसी लगती हैं, मानों वे चन्द्रमा का आलिंगन करने के लिए वेग से आगे बढ़ रही हों। प्रिय की छवि-पूर्णिमा का सम्पूर्ण वैभव-विकास देखकर कवि का हृदय-सागर भी इसी प्रकार उद्वेलित हो उठा था।

अलंकार—(क) पूरे छन्द में साँगरूपक अलंकार है। 'कामना में सिन्धु और 'छवि, में पूर्णिमा का आरोप है।

(ख) 'रत्नाकर, उपमान से उपमेय 'हृदय' और 'शशि' उपमान से प्रिय के चन्द्र-मुख का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति।

(ग) मानवीकरण।

छायानट छवि-परदे में ॥१॥

शब्दार्थ—छायानट = प्रियतम, परमात्मा। छवि परदे = रूप का आवरण। सम्मोहन = आकर्षण। कुहकिनि = अमावस की रात्रि। कौतुक = क्रीड़ा।

भावार्थ—प्रस्तुत छन्द में कवि सौन्दर्य के महत्त्व और प्रभाव का चित्रण कर रहा है। यहाँ विरह अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर लौकिक से अलौकिक हो जाता है। वह प्रिय के दर्शन करने लगता है और उसे परमात्मा सम्मोहन वेणु बजाकर रिझाता हुआ दिखाई पड़ता है।

व्याख्या—सौन्दर्य का आवरण डाले हुए ही प्रियतम (परमात्मा) अपने आकर्षण को मुरली बजाता हुआ आर्कषित करता है। संध्या के नील कुहर तथा अमावस की काली रात्रि में वही अपनी अद्भुत क्रीड़ाएँ करता दिखाई देता रहता है।

विशेष—१. सम्मोहन की अतिशयता दिखाने के लिये ही कवि ने अन्धकारमयी पृष्ठभूमि को चुना है।

२. इस छन्द में "सौन्दर्य ही परमात्मा है" की भावना व्यक्त हुई है।

३. **अलंकार**—सांगरूपक।

भाव-साम्य—

छन्द गीतरे आन्नदमय मधुर छायानटे
जागिएदित जीवन-वीणाय राग रागणी तार,
मर्म माझे मुखर पीडेर मूछना झंकार।
[बंगला कविता से]

"रूप का दे आवरण, हैं रूपधन मुस्करा रहे।
उनको बिना देखे हुए लोचन हुए हैरान है।" —राकेश

मादकता से आये तुम ।।१२।।

शब्दार्थ—मादकता=उन्माद। संज्ञा=चेतना।

सन्दर्भ—यहाँ प्रिय के आने और आकर चले जाने पर कवि आत्मगत प्रक्रिया का वर्णन प्रिय को सम्बोधन करता हुआ कह रहा है।

भावार्थ—प्रिय स्वप्न (हाल) की अवस्था में आये और मेरे होश में आने पर अदृश्य हो गये, उनके चले जाने पर मिलन की उत्कंठा उसी प्रकार व्याकुल बना देती है, जिस प्रकार शराबी को नशा उतरने के पश्चात् पुनः एक घूँट पीने से प्यास बेचैन कर देती है।

व्याख्या—हे प्रिय! तुम अपने अतुल और असीम सौन्दर्य की मादकता बिखेरते हुए मेरे समीप आये। मैं तुम्हारे सौन्दर्य की मदिरा पान कर नशे में संज्ञा-हीन हो गया। जब तुम्हारे मादक सौन्दर्य की सुरा का प्रभाव कम हुआ, तब मेरी चेतना, पुनः लौट आई। अपनी चैतन्य अवस्था में जब तुम्हें देखा तब तुम जा चुके थे। तुम्हें न पाकर मेरा हृदय हाहाकार कर उठा। जिस प्रकार शराबी सुरा पीकर संज्ञाहीन हो जाता है, किन्तु नशे के उतरते ही जब वह होश में आता है तब पुनः एक प्याला पीने की अभिलाषा करता है, उसी प्रकार तुम्हारी सोन्दर्य-सुरा को पीने के लिए मेरा मन भी व्याकुल हो रहा था।

विशेष—१. इस छन्द का आध्यात्मिक पक्ष सूफी साधना के अनुसार "हाल' की आवस्था है। और भारतीय साधना के अनुसार साधक 'निर्विकल्प समाधि' में ब्रह्म से साक्षात्कार करता है। ये दोनों ही स्थितियाँ मादकता-सी होती हैं। साधक इनमें लौकिक अनुभूतियों से परे हो जाता है। 'हाल' अथवा समाधि के टूटने पर उसकी ब्रह्मानन्द की स्थिति समाप्त हो जाती है और वह भौतिक सीमाओं में आ जाता है।

२. **भाव-साम्य**:

"वह सपना बन-बन आता, जागृत में जाता लौट।"

—**महादेवी वर्मा**

३. **अलंकार**—उपमा ('तुम' मूर्त्त उपमेय के लिए 'मादकता', 'संज्ञा', 'उतरा हुआ नशा', अमूर्त्त उपमान रखे गये हैं।)

४. **रस**—विप्रलम्भ श्रृंगार।

नाविक इस सूने तट पर ।।१३।।

शब्दार्थ—नाविक=मल्लाह यहाँ कवि हृदय को सम्बोधन कर रहा है। सूने तट=अज्ञात लोक। किन लहरों=किन उत्ताल तरंगों में। बीहड़=निर्जन। वेला=सिन्धु का तट।

संदर्भ—कवि की विरह जनित प्रेम की वेदना पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। वह अपने हृदय से प्रश्न करता हुआ करता है।

व्याख्या--हे मेरे हृदय रूपी नाविक ! तुम मेरी जीवन-नाव को किन उत्ताल लहरों से होकर इस शून्य तट पर लेकर आये हो ? इस शून्य सिन्धु-तट पर क्या आज तक कोई व्यक्ति आया है ? मुझे इस स्थान पर शून्यता की बीहड़ता ही दीख पड़ती है । हे मन ! तू मुझे यहाँ किन उमंगों में बहा लाया है। क्या मेरे समान मन की ऐसी स्थिति किसी की होगी ।

अलंकार--रूपकातिशयोक्ति---प्रेम के अज्ञात लोक का चित्रण यहाँ रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से हुआ है ।

अवकाश शून्य फैला है ।।१४।।

शब्दार्थ--अवकाश=व्यापक । अपदार्थ=बिना किसी वस्तु के सहारे के । कूल=तट ।

सन्दर्भ--कवि एक बार पुनः संसार की ओर मुड़ जाने की अभिलाषा करता है, किन्तु वह अपने को असमर्थ और असहाय पाता हुआ कहता है :

व्याख्या---मैं उन अश्रुओं के नद को पार कर एक बार पुनः संसार की ओर जाने की अभिलाषा करताहूँ किन्तु मुझे कोई सहारा नहीं दिखाई देता और मुझमें स्वयं की शक्ति नहीं है । प्रिय भी मुझे छोड़कर दूर जा चुके हैं । मेरे सिर के ऊपर व्यापक आकाश की शून्यता फैली हुई है और कहीं दूर तक मुझे कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता । मैंने अपने को ऐसे समुद्र में फेंक दिया है, जिसका कोई किनारा ही नहीं दीख पड़ता---मैं क्षुद्र व्यक्ति कैसे पार पाऊँगा, क्योंकि मुझे कोई सहारा भी प्राप्त नहीं है ।

विशेष--१. यहाँ कवि ने सागर का बिम्ब प्रस्तुत किया है ।

२. **अलंकार**---'कुछ कूल किनारा' में 'क' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास, शून्य में श्लेष, रूपकातिशयोक्ति ।

सूखे सिकता सागर में ।।१५।।

शब्दार्थ--सिकता=बालुका । 'सूखे...... सागर में'=प्रेम से रहित नीरस और शुष्क हृदय का प्रतीक है । नैया मेरे मन की=मेरे मन की नाव । बेगुन= बिना रस्सी की, गुण-हीन ।

सन्दर्भ--प्रस्तुत छन्द में कवि अपनी विरह-वेदना का वर्णन कर रहा है :

व्याख्या--प्रियतम के वियोग में मेरे जीवन में से प्रेम की सारी-सरसता चली गई । वेदना और निराशा के प्रचंड झोंकों ने चारों ओर से उड़कर बालुका का विस्तृत सागर ही मेरे सामने उपस्थित कर दिया है । इसमें मेरे मन की नाव फँस गई थी । परन्तु प्रियतम के वियोग में निकले हुए अश्रुओं ने इस मरुभूमि में वेगवती धारा बहा दी, जिसमें से होकर मैं इस बिना रस्सी की नौका को लेकर चला । इस

प्रकार प्रिय का वियोग भी मेरा सहायक बना; अन्यथा मेरी जीवन-नैया प्रेम-सिन्धु के तट तक न आ पाती।

१. रस -- विप्रलम्भ श्रृंगार।

२. **अलंकार**—'बेगुन' में श्लेष। 'सिकता-सागर', 'नैया मेरे मन की' 'आँसू की धारा' में रूपक।

३. यहाँ कवि ने सूखे सागर का बिम्ब प्रस्तुत किया है।

यदि दो घड़ियों का जीवन ॥१६॥

शब्दार्थ—वृन्तों=डण्ठलों। चू पड़ें=टपक पड़ें।

सन्दर्भ—यहाँ कवि ने नियति की इस निष्ठुरता को कोसा है कि वह असमय में ही जीवन का अन्त कर देती है।

व्याख्या—हे कवि! तुम्हारा यह क्षणिक जीवन कोमल वृन्तों पर ही व्यतीत हो, अर्थात् तुम खिली रहो, तो क्या इसमें तुम्हारी कोई हानि है। तुम क्यों विकसित अवस्था में ही चुपचाप चू पड़ती हो। मनुष्य का जीवन कली के समान खिलता है, किन्तु नियति उसे अधिक समय तक खिला नहीं रहने देती और उसकी इच्छाओं को पूरा होने से पहले ही उसे तोड़कर धूल में मिला देती है।

विशेष--१. कली के द्वारा मानव-जीवन का वर्णन होने से अन्योक्ति है।

२. कवि असमय में ही जीवन का अन्त करने वाली नियति को कोस रहा है।

३. कवि को प्रिय आह्लाद-पूर्ण मिलन-सुख मिला, परन्तु वह क्षणिक ही रहा। कवि यह कहता है कि उसका यह आल्हाद और बना रहता और इसी में उसका जीवज समाप्त हो जाता, तो क्या किसी की कुछ हानि थी?

३. **अलंकार**—कोमल वृन्तों में लाक्षणिकता के साथ रूपकतिशयोक्ति।

मानव जीवन-वेदी पर ॥१७॥

शब्दार्थ—वेदी=विवाह के समय की वेदी। परिणय=विवाह। 'मानव-जीवन……मिलन का'=मानव का जीवन विवाह की वेदी है, जिस पर सुख और दुख दोनों का मिलन होता रहता है। नाचेंगे=रहेंगे, नृत्य करते रहेंगे। "है खेल आँख का मन का"=देखने तथा समझने पर ही दोनों भिन्न प्रतीत होते हैं।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि ने मानव-जीवन में सुख-दुःख के समन्वय का महत्व दिखाया है।

भावार्थ—मनुष्य के जीवन में विरह और मिलन दोनों का समावेश है। उसमें कभी सुख आता है और कभी दुःख। वस्तुतः दोनों एक हैं। देखने तथा समझने में दोनों भिन्न लगते हैं। मनुष्य को सुख-दुख में समान भाव धारण करना चाहिए।

व्याख्या—मानव-जीवन में सुख-दुख का निरन्तर क्रम चलता रहा है; मनुष्य का जीवन विवाह, वेदी है, इस पर विरह औद मिलन का परिणय होता रहता है। जीवन में कभी सुख आता है और कभी दुःख। वस्तुतः दोनों एक ही हैं। देखने तथा समझने में ही दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। मनुष्य-जीवन के प्रांगण में सुख-दुख दोनों ही नृत्य करते रहते हैं। अतः उस सुख-दुख में समान भाव ग्रहण करना चाहिए।

विशेष—१. प्रसाद जी ने इसी प्रकार सुख-दुख का समन्वय छन्द संख्या ११५ में भी किया है :

"हो उदासीन दोनों से, दुख-दुख का मेल करायें।
ममता की हानि उठाकर दो रूठे हुए मनायें।"

२. पन्त ने अति सुख और अति दुख दोनों को पीड़त कहकर उनके सन्तुलित समन्वय को ही मंगलकारी कहा है :

"जग पीड़ित है अति दुख से, जग पीड़ित है अति सुख से,
मानव जग में बँट जायें, दुख-सुख से 'औ' सुख दुख से।"

३. **अलंकार**—सांग रूपक।

(क) मानव-जीवन में वेदी का आरोप है।
(ख) 'विरह-मिलन' में परिणय का आरोप है।

४. 'सुख-दुख दोनों नाचेंगे' में लाक्षणिकता।

नचती है नियति नटी सी ॥१८॥

शब्दार्थ—नचती है = नियन्तित करती है। नटी = नर्तकी। कन्दुक = गेंद। इस व्यथित……भरती = समस्त सृष्टि का संचालन और क्रिया-कलाप नियति नटी के अतृप्त मन की तृप्ति है।

सन्दर्भ प्रस्तुत छन्द में कवि ने नियति को सम्पूर्ण विश्व की नियन्तिका शक्ति के रूप में चित्रित किया है।

व्याख्या—नियति सर्वशक्तिमान और अखिल सृष्टि की नियन्तिका-शक्ति है। जिस प्रकार गेंद खेलने वाला व्यक्ति गेंद को उठाता-गिराता है, उसी प्रकार नियति रूपी नर्तकी इस अखिल सृष्टि को उठाती-गिराती है, अर्थात् नियति ही इस सृष्टि की रचना और विकास करती है तथा वही इसका विनास भी करती है। नियति के संकेतों पर ही सम्पूर्ण सृष्टि चलती रहती है तथा समस्त क्रिया-कलाप होते रहते हैं। सृष्टि की रचना, विकास, समस्त क्रिया-कलास, हलचल और विनास आदि वास्तव में नियति-नर्तकी के अतृप्त मन की तृप्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

विशेष—१. प्रसाद जी ने अपने नियतिवादी दर्शन को प्रत्येक काव्य और नाटकों में सर्वत स्थान दिया है। उनकी नियति न तो निष्क्रिय है और न भाग्यवादी ही, वह अखिल सृष्टि की नियन्तिका महाशक्ति है।

२. **अलंकार**—'नियति' में 'नटी' का अंगों-सहित आरोप होने से सांगरूपक, नियति नटी-सी' तथा 'कन्दुक क्रीड़ा-सी' में उपमा, 'कन्दुक-क्रीड़ा' में 'क' तथा 'व्यथित-विश्व' में 'व' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

३. **भाव-साम्य**—"इस नियति नटी के अति भीषण,
अभिनय की छाया नाच रही है।" —कामायनी

तुम स्पर्शहीन अनुभव-सी ॥१९॥

शब्दार्थ—नन्दन तमाल=तमाल के वृक्षों का वन। तमाल वृक्ष की शीतल, सघन और नीलम छाया विश्रामदायक होती है। तल=छाया। तन्द्रा-पल्लव=नींद के पत्ते।

सन्दर्भ और भावार्थ—यहाँ कवि रात्रि की तमाल-पल्लवों की सघन छाया से समानता करता हुआ कहता है कि वह अन्धकारमयी होकर जग को तन्द्रा भर दे जिससे दुखी मनुष्य अपनी वेदना भूल सकें।

व्याख्या—हे रजनी! जिस प्रकार सघन तमाल वृक्ष के घने पल्लवों की नीलम छाया मनुष्य को विश्राम देकर आनन्दित करती है, उसी प्रकार तुम अज्ञात रूप में अपने स्पर्शहीन करों से छूकर मुझे विश्राम और प्रसन्नता देती रहती हो। मैं चाहता हूँ कि तुम संसार की वेदनाओं के ऊपर निद्रा की नीली पत्र-लताओं को छा दो और अपनी श्यामल तन्द्रा में जगत की पीड़ाओं को सुला दो।

विशेष—१. कवि की वेदना चरमोत्कर्ष पर पहुंचकर विश्व-मंगल की ओर उन्मुख हो जाती है।

२. **अलंकार**—मानवीकरण, पूर्णोपमा।

३. रात को 'स्पर्श-हीन अनुभव' कहा गया है। 'तन्द्रा-पल्लव' में रूपक, 'नन्दन-तमाल' में रूपक।

सपनों की सोनजुही सब ॥२०॥

शब्दार्थ—सोनजुही=सुवर्ण-यूथिका, सुनहले रंग का एक पुष्प विशेष। सित सरसिज=श्वेत कमल।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि प्रकृति के सुरम्य अंचल में अपनी भावनाओं को तद्रूप करने और रात हो जाने की अभिलाषा कर रहा है।

भावार्थ—स्वप्न रूपी सोनजुही के फूल तारे बनकर आकाश में बिखर जावें और आकाश-गंगा की धारा श्वेत कमलों से भर जाय।

व्याख्या—एक बार फिर चाँदनी रात आ जाये, जिसमें ताराओं का समूह मेरे स्वप्नों की स्वर्ण-यूथिकाओं में रूपान्तरित हो उठे। मेरे प्रियतम का सौन्दर्य आकाश-गंगा में खिले हुए श्वेत कमलों के रूप में झलकता रहे।

अलंकार—'सपनों की सोनजुही' में रूपक, अनुप्रास।

विशेष—यहाँ प्रकृति को मानव-हृदय के तारात्म्य के रूप में उपस्थित किया गया है।

चेतना लहर न उठेगी ॥२१॥

शब्दार्थ—चेतना लहर न उठेगी=चेतना की तरंगे न उठेंगी। थिर होगा =कुछ समय के लिए स्थिर हो जायगा। सर्ग=सृष्टि। विच्छेद=विरह।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि कहता है कि विनाश और सृजन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विनाश के खण्डहरों पर ही सृजन का प्रासाद बनाता है।

व्याख्या—रात्रि अपनी नीलम छाया की वर्षा से समस्त मानवता को नींद के विश्राम-अंचल में सुला देगी। इसमें मानव जीवन रूपी समुद्र की गति कुछ समय के लिए स्थिर हो जायगी। उसमें चेतना रूपी तरंगे न उठेंगी कुछ समय स्थिर रहने के पश्चात् नवीन चेतना ग्रहण करके मानव-जीवन पुनः प्रबुद्ध होगा। इस प्रकार प्रलय की संध्या में जीवन की नवीन सृष्टि का सृजन प्रारम्भ हो जायगा और विरह का विषाद मिलन-सुख में परिवर्तित हो जायगा।

विशेष—१. प्रकृति को कवि ने सम्वेदनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

२. **अलंकार**—'चेतना' में 'लहर' का आरोप होने से रूपक, जीवन में 'समुद्र' का आरोप होने से रूपक। संध्या, स्वर्ग और प्रलय में लक्षण-लक्षणा के प्रयोग से रूपकातिशयोक्ति है।

३. प्रतीकात्मक शैली।

चुन-चुन ले रे कन-कन से ॥२२॥

शब्दार्थ—जगती की सजग व्यथायें=संसार सम्पूर्ण वेदनायें। जनरंजन-करी=संसार को आनन्द देनी वाली।

सन्दर्भ और भावार्थ—कवि वेदना अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर लोक-कल्याण की और उन्मुख हो जाती है। वह संसार से समस्त व्यथाओं को चुनकर नवीन आनन्द का प्रसार कर देना चाहता है। वह अपने मन से कहता है:

व्याख्या—हे मन! तुम संसार की वेदनाओं के एक-एक कण को चुनकर अपने जीवन के अंचल में भर ले, जिससे संसार से व्यथाओं और पड़ाओं का नाम ही मिट जाय। व्यथाओं और पीड़ाओं के हट जाने से संसार में नवीन आनन्द की सृष्टि हो जायगी, जिसमें दुखः नाम की कोई वस्तु न होगी,

विशेष—कवि की वेदना लोक-मंगल की ओर मुड़ जाती है, वह व्यष्टि के स्थान पर समष्टि का हित-चिन्तन करने लगता है। वह अपने मन से कहता है कि तू अपनी वेदना पर आँसू बहाना छोड़कर संसार की वेदना को अपना ले। संसार के दुःख को अपना दुःख बनाकर ही तू अपनी कीर्ति कथाएँ छोड़ जायगा, जिनको सुनकर लोक-रंजन होगा।

अलंकार—'चुन-चुन' में वीप्सा और 'कन-कन में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

जब नील निशा अंचल में ॥२३॥

शब्दार्थ—नील-निशा-अंचल=अन्धकार की गोद। हिमकर=चन्द्रमा। यहाँ 'नील-निशा अंचल' निराशा, और 'हिमकर, आशा का प्रतीक है,

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि अपनी वेदना को सम्बोधन करता हुआ कहता है कि वह उसके मन में ज्वाला की तरह निरन्तर जलती रहती है।

व्याख्या—जब रात्रि के अन्धकार-पूर्ण काले अंचल में थका हुआ चन्द्रमा विश्राम करने चला जाता है, तथा दिन की परिक्रमा करके सूर्य थककर अस्ताचल की गोद में मुंह छिपाकर अस्त हो जाता है, तब भी मेरे हृदय की ज्वाला संसार का अन्धकार दूर करने के लिए जलती रहती है।

अलंकार—मानवीकरण [हिमकर के थककर सोने—दिनकर के सोने में]

विशेष—कवि अपने व्यक्तित्व और वेदना को समष्टि के कल्याण में लगाने को अतुर है।

नक्षत्र डूब जाते हैं ॥२४॥

शब्दार्थ—स्वर्गङ्गा=आकाश-गंगा। कादम्बिनी=मेघ-माला। बिजली···· कारा में=जब बिजली मेघमालाओं में छिप जाती है।

सन्दर्भ—कवि अपने हृदय की ज्वाला के लिए कहता है कि वह निरन्तर जलकर अलौकिक प्रकाश देती रहती है।

व्याख्या—मेरे हृदय की वेदना-ज्वाला शाश्वत और चिरन्तन है। जब तारागण एक-एक करके आकाश-गंगा की धारा में विलीन हो जाते हैं और बिजली भी मेघ-घटाओं में अपने को छिपा लेती है, तब भी मेरे हृदय की ज्वाला निरन्तर जलती रहती है।

अलंकार—कादम्बिनी-कारा में रूपक 'नक्षत्रों की छाया में डूब जाने में मानवीकरण।

निर्मम जगती को तेरा ॥२५॥

शब्दार्थ—निर्मम जगती=ममता-हीन विश्व। मंगलमय=कल्याणकारी। कल्याणी=शुभे।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि अपनी वेदना के मंगलमय और कल्याणकारी स्वरूप का वर्णन कर रहा है।

व्याख्या—हे मेरे हृदय में निरन्तर जलने वाली वेदना रूपी ज्वाला! यह विश्व निर्मम और निष्ठुर है। इसमें ममता और प्रेम का अभाव है। विश्वकल्याण के लिए तुम इसे अपना मंगलमय प्रकाश प्रदान करो। हे कल्याणकारी! तुम्हारे इस मंगलमय और कल्याणमय प्रेम से विश्व की दग्ध मानवता पुनः सुख और शान्ति का अनुभव करेगी।

विशेष—कवि ने ज्वाला के मंगलमय रूप को ग्रहण किया है।

अलंकार—मानवीकरण, अनुप्रास, इस जलते·········ज्वाला में विरोधाभास, उजाला में रूपकातिशयोक्ति।

जिसके आगे पुलकित हो ॥२६॥

शब्दार्थ—सिसकी भरता = श्वास लेता है । अमरता = देवत्व ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि प्रेम के महत्व का वर्णन कर रहा है ।

व्याख्या—प्रेम अमर है, वह स्वर्गिक है । उसमें इतनी असीम आकर्षण शक्ति है, जिसके सामने संसार का जीवन दुखों से ऊपर उठकर अलौकिक आनन्द प्राप्त करता है तथा दुःख और व्यथाओं में सिसकी भरता हुआ मनुष्य भी आनन्दातिरेक में पुलकित हो उठता है । ऐसे प्रेम को पाकर मनुष्य मरकर भी अमर हो जाता है ।

अलंकार—मुहावरों का प्रयोग होने से लोकोक्ति, मानवीकरण विरोधाभास, 'मधुवन, और संलग्न रूपकातिशयोक्ति ।

वह प्रेम विहँसते ॥२७॥

शब्दार्थ—विहँसते = हँसते हुए । मधुवन = हृदय रूपी वन ।

सन्दर्भ—कवि अद्भुत आकर्षण वाले प्रेम को अपने हृदय में आने का निमंत्रण दे रहा है । वह कहता है :

व्याख्या—हे मेरे विहँसते हुए प्रेम ! तुम इस मेरे हृदय रूपी मधुवन में आओ, जब यह अद्वितीय प्रेम जाग्रत हो जायगा तो जीवन में स्वतः ही विश्व-प्रेम तथा ममत्व की भावना अपने आप उठने लगेगी । जिस प्रकार मधुवन में पुष्प व कलिकायें खिलती हैं और अपनी सुगन्ध फैलती हैं, उसी प्रकार आकर्षणमय प्रेम की भावनायें भी विकसित होकर अपनी सुगन्ध से विश्व को सुगन्धित बनायेंगी और फिर इस अनन्त कोलाहल वाले जीवन में प्रेम का मधुर संगीत गुंजरित होगा ।

विशेष—यहाँ कवि का प्रेम व्यक्तिपरक न होकर सामाजिक हो जाता है और समस्त संसार के प्रति कवि के हृदय में कोमल भावनायें जगा देता है :

अलंकार—मानवीकरण, मृत्यु के नाचने और अमरता के मुस्कराने में, 'मधुवन' में लक्षण लक्षणा से 'कलरव' में प्रयोजनवती लक्षणा से ।

सबका निचोड़ लेकर तुम ॥२८॥

शब्दार्थ—निचोड़ = सार । प्रभात हिमकन = सवेरे की ओस की बूंदें । विश्व-सदन = संसार रूपी घर । सुख से = सुख-हीन, दुःख से दग्ध ।

सन्दर्भ-काव्य के समापन के इस छन्द में कवि अपने जीवन की व्यक्तिगत पीड़ा पर बहने वाले आँसुओं से कहता है कि वे उसकी भाँति ही पीड़ित मानवता पर बरसते हुए अपने करुणा-जल से सींचकर शान्ति प्रदान करे ।

भावार्थ—दिन भर सूर्य का ताप सहती हुई पृथ्वी सूख जाती है । वह प्रातः कालीन ओस की वर्षा से आर्द्र होकर शीतलता प्राप्त करती है । कवि अनुभव करता है कि समस्त मानवता उसके सामने ही व्यथाओं एवं संघर्षों के

ताप से संतृप्त हो रही है। करुणा के अश्रु-जल से सिंचकर ही उसे शान्ति मिल सकती है।

व्याख्या—मेरी व्यक्तिगत वेदना से उठे हुए आँसुओं, अब तुम संतृप्त मानवता को रस-सिक्त कर दो। इस विश्व की समस्त मानवता मेरे समान ही व्यथाओं के भार से सन्तप्त है। मानवता का जीवन शुष्क और नीरस रहा है। जिस प्रकार प्रातः समय में ओस बरस करके सूखी और सन्तप्त वसुधा को आर्द्र करती रहती है, उसी प्रकार सबका सार लेकर तुम संसार के आंगन में वरसो और अपनी करुणा से आर्द्र कर सन्तप्त मानवता को शान्ति एवं शीतलता प्रदान करो।

विशेष—१. कवि की वेदना चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर उदात्त हो जाती है। वह अश्रुओं की वर्षा से विश्व-मंगल की कामना करता है। उसकी वेदना व्यष्टि से समष्टि का रूप ग्रहण कर लेती है।

२. मानवता के विकास के लिए करुणा का महत्व स्वीकार किया गया है। मानवता को करुणा की आवश्यकता सदैव रही है और रहेगी।

३. स्मृति में व्यक्तिगत वेदना घनीभूत पीड़ा बन कर छा गई थी और कवि के वियोग-दुर्दिन में बरसने को आकुल थी :—

"जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर,, वह आज बरसने आई।"

इस व्यक्तिगत वेदना की घुमड़न से ही 'आँसू' काव्य की कथा प्रारम्भ हुई थी। अन्ततः इस वेदना का उदात्तीकरण हो जाता है और वह व्यष्टि की सीमा से ऊपर उठकर समष्टि के कल्याण में बरसने की कामना करने लगती है। इसी कामना के साथ कवि 'आँसू' काव्य का समापन करता है :

"सबका निचोड़ लेकर तुम, सुख से सूखे जीवन में।
बरसो प्रभात हिमकन-सा, आँसू इस विश्व-सदन में।"

४. **अलंकार**—(क) 'आँसू की समानता 'प्रभात हिमकन' से होने में उपमा।

(ख) विश्व सदन में रूपक।

"आँसू मानवीय करुणा, व्यथा एवं वेदना का काव्य है।

आह वेदना मिली विदाई

मूल भाव—प्रस्तुत गीत में देवसेना की घोर निराशा प्रकट हुई है। यह गीत प्रसादजी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक 'स्कन्दगुप्त से उद्‌धृत किया गया है। देवसेना स्कन्द से प्रेम करती है, किन्तु स्कन्द विजया से प्रेम करता है। आरम्भ में विजया भी स्कन्द की ओर आकृष्ट होती है, पर बाद में वह भटार्क की ओर उन्मुख हो जाती है। अन्त में विजया से निराश स्कन्द देवसेना की ओर आता

है। किन्तु स्वाभिमानिनी देवसेना विवाह से इन्कार कर देती है। इस प्रकार देवसेना को अन्त में बड़ी वेदना के साथ स्कन्द से विदा होना पड़ता है। इसी वेदना की अभिव्यक्ति इस गीत में हुई है।

आह वेदना ....तान उठाई।

शब्दार्थ—मधुकरियों=भ्रमरियों। श्रम कण=पसीने की बूँद। श्रमित स्वप्न =थके हुए सपने। विपिन=जंगल। उनींदी=अलसाई; नींद भरी। श्रुति=कान।

संदर्भ—प्रस्तुत पद्यांश जयशंकर प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' नाटक में प्रमुख पात्री देवसेना द्वारा गाये गये 'आह वेदना मिली विदाई' से अवतरित किया गया है। अन्त में स्कन्द के प्रस्ताव को देवसेना अस्वीकार कर देती है। अपने जीवन की निरर्थकता या असफलता पर इस गीत में वेदना व्यक्त करती है।

व्याख्या—देवसेना कहती है—अन्त में मुझे वेदना ही प्राप्त हुई। इस भ्रम में पड़कर कि कभी मेरे स्वपन भी साकार होंगे मैं जीवन भर अपने जीवन, पराग को लुटाती रही। किन्तु परिणाम कुछ न हुआ। अब तक जीवन में जितनी भी साँझें आईं वे पसीने और थकान से भरी हुई थी (अर्थात् देवसेना को बहुत त्याग और श्रम करना पड़ा था) जीवन में कभी मुस्काने का अवसर नहीं आया। सदा ही आँखों में अश्रु प्रवाहित होते रहे। जीवन-यात्रा भी कलांत और चुप्पियों में डूबी हुई थी। आशय यह है कि उसका जीवन एकाकी और असहाय रहा।

देवसेना कहती है कि मैं तो थकी हुई-सी घने वन में एक पेड़ की छाया के नीचे थके हुए स्वप्नों के लोक में विचर रही थी अर्थात् जीवन में सुख और मधुर स्वप्नों की कल्पना शेष नहीं रही थी कि ऐसी तन्द्रिल अवस्था में किसी ने आकर विहाग राग छेड़ दिया। (स्कन्दगुप्त के उसके जीवन में आ जाने के कारण वह बहुत आशान्वित हो गई थी।)

लगी सतृष्ण ....मिली विदाई।

शब्दार्थ—दीठ=दृष्टि। हारी-होड़=प्रतिस्पर्धा।

व्याख्या—जब मेरे जीवन में स्कन्द आया तो सभी की आँखें इसी भाव में मुझे निहारती थीं कि अब इसका जीवन परम सुखमय हो जावेगा। दूसरों की क्या बात, मैं भी पागल होकर इसी आशा को हृदय में सँजोए बैठी थी। पर हाय ! आशा अन्त में निराशा में ही बदली और मैं अपने जीवन के संचित सपनों को खो बैठी। अब आशाएँ निष्फल हो गईं। मेरे तो भाग्य ही ऐसे रहे कि मेरी यात्रा में मेरे जीवन-रथ पर प्रलय आकर मेरा साथी बन गया। मैंने अपने कमजोर पाँवों से इस दुर्भाग्य का सामना करने का प्रयत्न भी किया। पर कहाँ मैं असहाय और कहाँ शक्तिशाली दुर्भाग्य से मेरी प्रतिस्पर्धा। सब व्यर्थ हो गया, अन्त में वेदना से भरी हुई यह विदा बेला आ पहुँची।

हिमालय के आँगन में

शब्दार्थ—व्योय तम-पुंज=आकाश में छाया हुआ घोर अन्धकार। अखिल= सम्पूर्ण। संसृति=संसार। अशोक=सुखी, जिसे किसी भी प्रकार का शोक न हो। विमल वाणी=शुद्ध सरस्वती। सप्त सिन्धु=सात समुद्र। अरुण केतन=लाल-पताका। वरुण पथ=जल मार्ग। अभीत=निर्भय। पुरन्दर=इन्द्र। अस्थियुग= वह युग जब हड्डी के हथियार बनते थे। रत्नाकर=समुद्र। धरा=धरती, पृथ्वी। समीर प्रचण्ड=आँधियाँ, तूफान! विपन्न=दुखी। परशु=कुठार, फरसा। विमाता =सौतेली माता। क्षम्य=क्षमा करने योग्य। अग्नितेज=अग्नि के समान तेज। छत्रछाया=संरक्षण। जर्जर=घायल।

सन्दर्भ—चन्द्रगुप्त नाटक के पाँचवे दृश्य का यह गीत राष्ट्रीय गौरवगान के रूप में है :

व्याख्या—भारत के अतीत गौरव का गुणगान कर वीरों को कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा-प्रदान करते हुए प्रस्तुत गीत में कहा गया है कि हिमालय के आँगन में भारत में ही सर्वप्रथम ज्ञान-रूपी सूर्य का प्रकाश प्रकट हुआ और स्वयं ज्ञान प्राप्त कर भारतीय विद्वान् विश्व के अन्य लोगों को ज्ञान देने लगे तथा समस्त संसार का अज्ञान उन्होंने दूर किया, अतः अज्ञान के कारण या मोहक निशा में मग्न होने के फलस्वरूप जो लोग भयभीत थे, उनका मार्ग अब प्रशस्त हो गया और वह लोग आगे बढ़ने में असमर्थ हो गये, साथ ही इसी भारत में अपने कमल से कोमल हाथों में देदी सरस्वती ने प्रेम-पूर्वक वीणा धारण करके उसकी मधुर झंकार से सम्पूर्ण विश्व को निनादित कर दिया, अतः सारे संसार में विद्या का प्रचार हो सका।

इसी प्रकार सामवेद जैसे उच्चकोटि के संगीत-शास्त्र की भी रचना हुई और प्रलयंकारी भयानक कष्टों को झेलते हुए; प्रकृति का आदिम रूप सुरक्षित रखते हुए हम लाल पताका लिए, समुद्री मार्ग से आगे बढ़े और दधीचि ने वृत्रासूर का वध करने के लिए अपनी हड्डियाँ दान में दी, अतः इससे स्पष्ट है कि हमारा देश हड्डियों के युग में भी पूर्ण सम्पन्न था। साथ ही राम ने चौदह वर्षों के लिए वनवास में जाते समय अपूर्व उत्साह दिखाया और समुद्र में पुल बाँधकर शत्रु को पराजित किया तथा उनके उत्साह की साक्षी आज भी सेतुबन्धु रामेश्वर दे रहा है। साथ ही धर्म के नाम पर होने वाली जीव हत्याओं को गौतम बुद्ध ने बन्द करवाकर सम्पूर्ण संसार को सर्वप्रथम शांति का सन्देश दिया और वह सम्राट होते हुए भी भिक्षु के समान सर्वत्र घूमते रहे।

हमारे देश ने कभी किसी देश पर आक्रमण कर पशु-बल द्वारा विजय नहीं प्राप्त की और धर्म का पाठ पढ़ाना ही भारतवासियों का उद्देश्य रहा तथा हमने आक्रमणकारी विदेशियों को पराजित कर उन्हें न जाने कितनी बार दयापूर्वक क्षमा कर दिया। साथ ही हमने चीन को धार्मिक दृष्टि प्रदान की और लंका को शीलवान

बना दिया तथा हमारे देश में हमेशा ही प्रकृति की कृपा रही है, अर्थात् हमारे यहाँ सभी खनिज पदार्थ उपलब्ध हैं ।

हम आर्य इसी भारत में उत्पन्न हुए थे और कहीं बाहर से नहीं आये थे तथा हमने न जाने कितनी जातियों के उत्थान-पतन देखे और न जाने कितनी बार प्रलयंकारी विप्लव एवं विद्रोह देखे, लेकिन हमने इन सभी विपदाओं को हँसते-हँसते झेला तथा सृष्टि की रक्षा भी प्रलय से संग्राम करके की । हम आर्य हमेशा वीर, बलवान, सच्चरित्र व विनयशील रहे और जात्याभिमान व दूसरों के दुःख में दुखी होना आदि गुण भी हमारे हैं ।

हमारा राजकोष दीन दुखी प्रजाजनों की सहायता के लिए हमेशा खुला रहता था और हम अतिथियों का देवता के समान सम्मान करते तथा हम सत्यवादी, तेज-सम्पन्न व दृढ़-प्रतिज्ञ भी रहे हैं । हमें अपना प्राचीन गौरव अपने पूर्व पुरुषों की आन-मान व शान को याद करते हुए आज यही प्रण करना चाहिए कि यह प्यारा भारत हमारा है और उनके सम्मान की रक्षा के लिए तन, मन, धन सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे तथा उसके लिए जीवित रहेंगे और उसके लिए ही मरेंगे ।

हे लाज भरे सौन्दर्य

तुम कनक किरण के ········ छिपते हो क्यों ?

शब्दार्थ—अन्तराल=भीतर । घन=बादल । कगार=किनारा ।

प्रसङ्ग एवं सन्दर्भ—प्रस्तुत गीत 'चन्द्रगुप्त' नाटक में सुवासिनी ने गाया है, जिसमें नारी-हृदय की यौवन के बारे में मधुर भावनाएँ व्यक्त की गई हैं ।

व्याख्या—कवि सुवासिनी के माध्यम से कहता है कि किशोरावस्था में नारी के हृदय में कलरव करने वाली मधुर भावनाओं के मध्य पोषित हे सौन्दर्य ? क्या तुम मुझे यह बताओगे कि तुम शरीर की क्यारी में चुपके-से क्यों प्रवेश करते हो ? इस प्रकार चुपचाप आने में तुम्हें क्या आनन्द आता है ? अपने आगमन से पूर्व तुम सन्देश क्यों नहीं भेज देते ? तुम्हारे आने से यद्यपि शरीर का महत्व बढ़ जाता और इसमें तुम्हें भी स्वयं पर गर्व होता है, किन्तु तुम शान से सीना तानकर नहीं चलते, अपितु मस्तक झुकाकर चलते हो । हे सौन्दर्य ! तुम्हारे आने से आनन्द की वृष्टि होने लगती है, अतः तुम यौवन के धन सदृश्य हो । (यौवन के प्रवेश करने से शरीर में एक विशेष मादकता तथा मधुरता का आभास होने लगता है । उसे ही 'आनन्द की वृष्टि' कहा गया है) ।

प्रसादजी सुवासिनी के शब्दों में आगे कहते हैं—यौवन की मुग्धावस्था में तुम्हारे ओठों पर जो मधुर हास्य बिखरता रहता है, उसे देखकर प्रतीत होता है, मानो शब्द रूपी कलकल नाद के रूप में ओठरूपी कगारों के मध्य से प्रवाहित होने वाली मधुरूपी नदी के रस का तुम पान किया करते हो । लेकिन अभी तक तुम्हारा संकोच तथा लज्जा नहीं छूटी । अब तो विमुग्धावस्था व्यतीत हो चुकी है, लजाने

का समय समाप्त हो चुका है तथा जीवन को सरस व आनन्दित बनाने का समय आ चुका है, अतः क्या ही अच्छा होता यदि तुम्हारी लज्जा छूट चुकी होती। अब तो रजनीगंधा का पुष्ट कली भी विकसित हो चुकी है, अर्थात् सब ओर प्रसन्नता तथा उन्मुक्तता का ही वातावण है। अतः हे सौन्दर्य ! तुम्हें भी अपने हृदय के सारे अवगुण्ठन हटाकर तथा समस्त संकोच छोड़कर बिहार करना चाहिए। तुम्हें अब संकुचित होने की आवश्यकता नहीं। अपने समस्त शील-संकोच को छोड़कर उन्मुक्त केलि-क्रीड़ा करो। दिन में जो तुमने अपना संकोच प्रर्दाशत किया था अब रात्रि में उसको छोड़कर केलि-क्रीड़ा करो।

विशेष—इस गीत में कामुक तथा विलासी नन्द की प्रवृत्तियों को सचेत करते हुए यौवनावस्था में नारी-हृदय की विशिष्ट भावनाओं का चित्रण किया गया है।

अरुण यह मधुमय देश हमारा

अरुण यह मधुमय देश ······ रजनी भर तारा।

शब्दार्थ—कुंकुम = रोली। नीड़ = घोंसला। हेम कुम्भ = स्वर्ण पट।

प्रसंग एवं सन्दर्भ—प्रस्तुत गीत महाकवि जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक से उद्धृत किया गया है। इस गीत में कवि ने भारतीय संस्कृति तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का भावपूर्ण चित्रण किया है। 'चन्द्रगुप्त' के द्वितीय अंक में इस गीत द्वारा प्रसाद ने कार्नेलिया को भारत की महिमा, ज्ञान तथा अलौकिक प्राकृतिक छटा से अभिभूत दिखाया है। वह यह स्वीकार करती है कि निश्चय ही भारत देश अत्यन्त विशाल, आकर्षक तथा सम्पन्न देश है तथा यह प्रत्येक दृष्टि से प्रशंसनीय है।

व्याख्या—कार्नेलिया कहती है कि हमारा देश, भारत अत्यन्त आकर्षक तथा आनन्दप्रद है। यह विशाल देश अपरिचित पथिकों को भी अपनी महानता तथा गरिमा से अभिभूत करता है। यहाँ आकर अपरिचितों का अजनवीपन दूर हो जाता है। यह देश अपरिचितों को अपनाता है और उन्हें स्वयं में अन्तर्हित कर लेता है।

कवि पृथ्वी और आकाश के मिलन-स्थल, क्षितिज को देखकर कल्पना करता है कि हमारा देश, भारत जिस प्रकार अनजान आकाश को पृथ्वी पर आश्रय देता है, उसी प्रकार बाह्य सभ्यता तथा संस्कृत को भी अपनाता है। प्रातःकालीन प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यहाँ के सरोवरों तथा नदियों में विकसित होने वाले कमल-पुष्प ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानो उषा अपनी किरणों से उन्हें प्रसन्नता प्रदान कर रही है। कमल-पुष्पों को देखकर हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित होता है तथा जीवन-सागर में आशा की कल्याणकारी लहरें तरंगित होने लगती हैं। उषा काल की स्वर्णिम आभा प्रस्फुटित होते ही चहुँ ओर चहल-पहल आरम्भ हो जाती है। प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कार्य में संलग्न हो जाता है। उषा के आगमन से अन्धकार लुप्त हो जाता है और संसार प्रकाशपूर्ण दिखाई देने लगता है।

आगे कवि प्रकृति-सौन्दर्य का अत्यन्त मोहक वर्णन करते हुए कहता है—प्रातःकालीन, शीतल मन्द सुगन्धित पवन से आकर्षित पक्षीगण अपने रंग-बिरंगे (सतरंगे धनुष की तरह) पंखों को फैलाये आकाश पर इधर-उधर दौड़ते तथा आनन्द से कलरव करते दिखाई पड़ते हैं। पक्षियों के इस स्वच्छन्द विचरण को देखकर लगता है कि वे इसे अपना सुखद नीड़ समझकर सुख-शान्ति की कामना से इस ओर चले आ रहे हैं।

भारत के निवासियों का हृदय अत्यन्त उदार तथा करुण है। वे दूसरों के दुःख को अपना समझकर कष्ट सहकर भी उसे दूर करने का यत्न करते हैं। यहाँ अनेक देशों की सभ्यता तथा संस्कृति मिश्रित है। यह देश अनेकानेक देशों की संस्कृतिर्यों को अपने में सँजोये हुए हैं। इस सागर में अत्यन्त अपरिचित लहरें टकराकर किनारा प्राप्त करती हैं, अर्थात् इस देश की यह विशेषता है कि इसका हृदय सागर से भी विशाल है। यहाँ के निवासी व्यष्टि और समष्टि में अद्भुत सामंजस्य स्थापित करते हैं।

जब दिगदिगन्त में सभी प्राणी निद्रा में निमग्न पड़े होते हैं तथा तारों का प्रकाश फीका पड़ने लगता है, उस समय इस देश के प्रांगण में उषा प्रवेश करती है, जिसके साथ ही यहाँ के निवासी कर्मरत हो जाते हैं। उषा अपनी आशा रूपी स्वर्णिम किरणें इस देश के मुख पर बिखेरती है, जिससे आलस्य में उनींदे सभी प्राणी उठकर अपने-अपने कामों में लग जाते हैं। उषा व्यक्तियों को कर्म की प्रेरणा देकर जीवन को आशा और उल्लासमय बनाती है।

विशेष—कवि ने इस गीत द्वारा एक विदेशी नारी, जो पाश्चात्य सभ्यता में पूर्णतया पोषित है, का भारत के प्रति अनन्य आकर्षण तथा अपने देश की प्रकृति-सुषमा एवं भारतीय सभ्यता व संस्कृति की गरिमा का रूपक द्वारा सुन्दर चित्रण किया है। कविता अत्यन्त भावपूर्ण है। यह प्रसाद का एक उत्कृष्ट गीत है, जिसमें गेयता, भाषा की मधुरता तथा शैली की प्रौढ़ता आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

ले चल वहाँ भुलाव देकर

शब्दार्थ--अंबर=आकाश। अवनी=पृथ्वी। विभुता=ऐश्वर्य। विभु=ईश्वर।

सन्दर्भ—संसार के संघर्षों से आकुल कवि का मन किसी नीरव स्थान में जाकर शान्ति पाने की आकांक्षा कर रहा है।

व्याख्या—हे मेरे नाविक ! मुझे भुलावा देकर उस निर्जन देश में चल, जहाँ सागर की शून्य लहरें आकाश के कानों में निश्छलता से भरी हुई गम्भीर प्रेम-कथा कहती हों और जहाँ कोलाहल की भूमि न हो।

जहाँ जीवन की छाया सन्ध्या के समय अपनी कोमल छाया डालती हो और ताराओं की घनी पंक्ति जहाँ अपने नीले नेत्रों में प्रेम को प्रवाहित करती हो।

जहाँ की गम्भीर और मधुर छाया में विश्व चित्रवत् सा लगे और दुःख एवं सुख से परे सारा ऐश्वर्य ईश्वर के समान ही एक दिखाई पड़े।

जिस क्षितिज बेला में श्रम को शमन करने के लिए विश्राम सृजन कर रहा हो और जहाँ ऊषा अपनी घनी ज्योति में अमर जागरण का प्रसार कर रही हो।

विशेष—कुछ लोग इस गीत के आधार पर प्रसादजी को पलायनवादी कहते हैं। परन्तु नहीं है। प्रसादजी ने जीवन के कोलाहल से ऊबकर यह गीत लिखा था।

बीती विभावरी

बीती विभावरी·······विहाग री।

शब्दार्थ—विभारी=रात्रि। अम्बर पनघट=आकाश रूपी पनघट। ताराघट=तारा रूपी गड़े। ऊषानागरी=उषा रूपी चतुर नायिका। किसलय=कोपलें। लतिका=बेल। मधु मुकुल=खिले हुए पुष्पों का रस। अमन्द=नवीन, तीव्र। अलकों=केश-राशि में। मलयज=चन्दन के वृक्षों से बहने वाली वायु। बन्द किये=छिपे हुए। आली=सखी। विहाग=आधी रात में गाया जाने वाला राग विशेष। खुमारी=आलस्य।

प्रसंग—कविता-संग्रह 'लहर' से लिया गया प्रसादजी का यह अति प्रसिद्ध गीत है इसमें कवि ने मानवीकरण के द्वारा ऊषा को एक सुन्दरी नायिका के रूप में व्यक्त किया है। ऊषा रूपी नायिका तारा रूपी घड़ों को अम्बर रूपी पनघट में एक पनिहारिन की भाँति डूबो रही है। पवन के मन्द झोकों से उसका किसलय रूपी अंचल डोल-डोल उठता है। कवि प्रश्न करता है कि भला क्या यह समय निद्रा में मग्न रहने का है।

भावार्थ और अर्थ—ऊषा के मधुप मादक वातावरण से प्रभावित होकर कोई अपनी सखी को जो अब तक शयन कर रही है, जगाती हुई कहती है कि हे सखी! देखो कैसा मनोरंजक समय है। ऊषा रूवी चतुर नायिका आकाश रूप पनघट में तारा रूपी घड़ों को डुबा रही है। अर्थात् ऊषाकाल हो गया है। तारे एक-एक करके आकाश में लीन होते जा रहे हैं। (अरुणिमा-रंजित ऊषा को सुन्दरी नायिका का रूप दिया है) विभिन्न जातियों के पक्षी अपनी मधुर ध्वनि से कलरव कर रहे है। नायिका का कोंपल रूपी अंचल मन्द वायु के कारण मन्द-मन्द लहरहा रहा है। हे सखी! देखो यह बेल रूपी दूसरी नायिका भी मधु से भरी हुई पुष्पों रूपी गगरिया भर कर आ गई हैं। हे सखी! तेरे अधरों की उस मादक मोहक अरुणिमा में रात्रि में गाये गये गीतों का प्रभाव अब तक शेष है। तेरी केशराशि की गन्ध के सम्मुख मलयज पवन भी लज्जित है। तेरे बालों की घनी श्यामता, इस स्निग्धता से मन को मोहित करने वाली है। हे सखी! विहाग राग की मदिरता अपनी पलकों में

छिपाये तू अब तक सो रही है, भला यह समय क्या सोने का है ? यह समय प्रकृति का सौन्दर्य लूटने का है। उससे स्वास्थ्य लाभ करने का, न कि इस प्रकार आनन्द में पड़े रहकर समय बर्बाद करने का है।

काव्य-सौन्दर्य—छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, सांगरूपक, मानवीकरण अलंकार। शृंगार-रस, उद्‌बोधन गीत ।

मैं हृदय की बात रे मन !

तुमुल कोलाहल ...... बात रे मन।

शब्दार्थ—तुमुल=भंयकर, घोर। कोलाहल=गर्जन, शोर। कलह=विरोध, झगड़ा। हृदय की बात=विश्वास एवं स्नेह की वाणी । विकल=व्याकुल, बैचैन। नींद के पल=विश्राम का समय। मलय की बात=मलय पर्वत से आने वाली सुगन्धित पवन।

सन्दर्भ—यह गीत कामायनी के निर्वेद सर्ग का है :

व्याख्या—श्रद्धा गा रही है कि जिस संसार में पारस्परिक झगड़ों के कारण अत्यधिक कोलाहल छा जाता है उस समय मैं शान्ति देने वाली विश्वास एवं स्नेह पूर्ण बातों का रूप धारण कर पारस्परिक झगड़ों को दूर करती हूँ, साथ ही जब चेतना नित्य दुःखी एवं चंचल होकर और थकी हुई सी नींद के क्षण खोजती है, अर्थात् जब चेतना थककर विश्राम के लिए उत्सुक हो उठती है, तब मैं मलय पर्वत से आने वाली सुगन्धित पवन के समान चलकर उसे, अर्थात् चेतना को विश्राम प्रदान करती हूँ।

टिप्पणी—यहाँ 'हृदय की बात' और 'मलय की बात' में निरंग रूपक तथा 'चेतना' में विशेषण विपर्यय अलंकार की योजना हुई है।

चिर विषाद ...... प्रात रे मन !

शब्दार्थ—चिर विषाद विलीन=हमेशा दुख में डूबा हुआ। व्यथा=वेदना। तिमिर=अंधकार। ज्योति रेखा=प्रकाश की किरण। कुसुम विकसित। प्रात=खिले हुए फूलों से युक्त प्रभात।

व्याख्या—श्रद्धा गा रही है कि हे मन; मैं हमेशा दुःख में डूबे हुए मन के लिए और वेदना के अन्धकारपूर्ण वन के लिए उषा की प्रकाश किरण तथा खिले हुए फूलों से युक्त प्रभात के समान हूँ।

टिप्पणी—यहाँ 'व्यथा के तिमिर वन' में रूपक, 'उषा सी' में उपमा और 'कुसुम विकसित प्रात' में वाचक लुप्तोपमा अलंकार की योजना हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—त्रिपुरा रहस्य के ज्ञान खण्ड में भी श्रद्धा का वर्णन करते हुए कहा गया है :—

श्रद्धा माता प्रपन्न स वत्सलेव सुते सदा ।
रक्षति प्रौढ़ भीतिभ्य: सर्वथा न हि संशय: ।।
श्रद्धा हि जगता धात्री श्रद्धा सर्वस्य जीवनम् ।
अश्रद्धो मातृ विषये वालो जीवेत् कथं वद् ।।

जहाँ मरु··· ······बरसात रे मन !

शब्दार्थ—मरु ज्वाला=रेगिस्तान की गर्मी। कन=पानी या जल की बूँद। जीवन घाटियों=जीवन रूपी पर्वत की घाटियों। सरस=रसमयी जल-सहित।

व्याख्या—श्रद्धा गा रही है कि हे मन; जिस प्रकार पर्वत की घाटियों में वर्षा न होने के कारण रेगिस्तान की सी गर्मी फैल जाती है तथा चातकी जल की एक-एक बूँद के लिए दिन रात तरसती है, उसी प्रकार प्राणियों के जीवन में वेदना की तीव्र ज्वाला भड़क उठती है और वे आनन्द के एक-एक कण के लिए तरस उठते हैं तब मैं उनके जीवन में उसी समय आनन्द की वर्षा करती हूँ, जिस तरह पर्वत की घाटियों में वर्षा ऋतु जल बरसाती है। कहने का अभिप्राय यह है कि श्रद्धा संसारिक तापों से दग्ध जीवन को शीतलता प्रदान करती है।

टिप्पणी—यहाँ रूपक, श्लेष एवं रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

पवन की प्राचीर··· ···········रात रे मन !

शब्दार्थ—प्राचीर=चहारदीवारी, दीवार, परकोटा। कुसुम ऋतु=बसन्त ऋतु।

व्याख्या—**श्रद्धा** गा रही कि यह जगत गर्मी में झुलसते हुए दिन के समान है और जिस प्रकार गर्मी के दिनों में भी सभी प्राणी लू से झुलसा कर व्याकुल हो उठते हैं, उसी प्रकार इस संसार में सभी व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों और संसारिक बंधनों के नियंत्रण में दबे हुए से जी रहे हैं। इस प्रकार जिस तरह वसंत की रात गर्मी से झुलसे हुए व्यक्तियों को शीतल कर देती है, उसी तरह मैं भी सांसारिक तापों से दग्ध मानव-जीवन को मधुर शीतलता प्रदान करती हूँ।

टिप्पणी—यहाँ रूपकातिशयोक्ति, विशेषण-विपर्यय एवं रूपक अलंकार की योजना हुई है।

तुलनात्मक दृष्टि—श्रद्धा की ऐसी प्रशंसा तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी की गई है—

श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते। श्रद्धा प्रतिष्ठा लोकस्य देवी।····विश्वस्य भर्जी जगतः प्रतिष्ठा।····सा नो लोकयमृतं दधातु।

चिर निराशा···········जलजात रे मन।

शब्दार्थ—चिर=हमेशा, स्थायी। नीरधर=बादल। प्रतिच्छायित=घिरे हुए आच्छादित। अश्रुसर=आँसुओं का तलाब। मधुप=भ्रमर, भौंरे। मुखर=

ध्वनियुक्त, गुंजार से युक्त मरंद=मकरंद, फूलों का रस। मुकुलित=खिला हुआ, विकसित। जलजात=कमल।

व्याख्या—श्रद्धा गा रही है कि हे मन! मैं स्थायी निराशा रूपी बादलों से आच्छादित आँसुओं के तालाब में एक ऐसे सरस कमल के समान हूँ जिस पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं और जो फूलों के रस अर्थात् मकरंद से पूर्ण है, साथ ही जिस प्रकार कमल तालाब की सुन्दरता बढ़ाता है, उसी प्रकार मैं भी दुखी व्यक्तियों को प्रेम और आनन्द से पूर्ण कर देती हूँ।

टिप्पणी यहाँ 'निराशा नीरधर' एवं 'अश्रुसर' में रूपक तथा 'मधुप मुखर' एवं 'सजल जलजात' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

● ●

व्याख्या (निराला)

१. भारति जय विजय करे

शब्दार्थ -- विजय करे = विजय प्राप्त करने वाली। कनक = सोना। शस्य = हरा-भरा। पद-दल = पैरों के नीचे। शतदल = सहस्र पंखुड़ियों वाला कमल। गर्जितोर्मि = गरजती हुई लहरें। (गर्जित + उर्मि)। स्तवन = प्रार्थना।

सन्दर्भ -- निराला जी भारत माँ की वन्दना करते हुए उसकी विशेषताओं का निरूपण कर रहे हैं :

व्याख्या -- हे विजयदायनी भारत माता। तुम्हारी जय हो ! तुम्हारा अंचल स्वर्ण रूपी खेती तथा कमलों से भरा हुआ है। तुम्हारे कमल स्वरूपी चरणों में लंका निवास करती है। तुम्हारे पावन चरणों को सागर अपनी उत्ताल तरंगों से प्रच्छालन करता रहता है। तुम्हारी वन्दना के छन्दों में अनेक गम्भीर अर्थ भरे रहते हैं, अर्थात् तुम्हारे भक्तजन अनेकों अर्थों से पूर्ण भावयुक्त वन्दना किया करते हैं।

अलंकार -- अनुप्रास, रूपक, मानवीकरण।

तरु-तृण ....हार गले।

शब्दार्थ -- तरु-तृण = वृक्ष तथा घास पात। खचित = चित्रित। धवल-धार = श्वेत-धारा।

सन्दर्भ -- इस छन्द में कविवर निराला भारत माता की वन्दना करते हुए कहते हैं :

व्याख्या -- हे माँ ? तुम्हारे अंचल से फैली विभिन्न जातियों की वनस्पतियाँ ही तुम्हारा हरित-भरित अंचल, अर्थात् वस्त्र हैं। वह पवित्र धानी अंचल रंग-बिरंगे फूलों के चित्रों से चित्रित है। तुम्हारे गले में गंगा की निर्मल धारा उज्ज्वल हीरक हार की तरह सुशोभित है।

अलंकार -- अनुप्राप, उपमा, रूपक, मानवीकरण।

मुकुट शुभ्र .... मुखरे।

शब्दार्थ -- शुभ्र = श्वेत। प्राण = जीवनीशक्ति।

सन्दर्भ -- कविवर निराला भारतमाता की वन्दना करते हुए कहते हैं :

व्याख्या -- हे माँ ! तुम्हारे शीश पर बर्फ का चमकीला श्वेत मुकुट नित्य सतत् शोभायमान रहता है। तुम्हारा प्राण हर समय ओंकार शब्द एवं गायत्री मन्त्र

से उच्चारित रहता है। तुम्हारी उदार दिशायें, वेदमन्त्रों से प्रतिक्षण गुंजायमान रहती हैं। तुम्हारी अनगिनत सन्तानों के मुख तुम्हारी वन्दना के स्वरों से मुखरित रहते हैं।

विशेष—इस छन्द में कविवर निराला, भारतीय जनता की धार्मिक-आध्यात्मिक भावना की ओर संकेत करते हैं। भजन-पूजन, आरती, वन्दन के जितने विविध प्रकार भारत में प्रचलित हैं—उतने अन्य किसी देश में नहीं। वन्दना के स्वरों से भारत माता की गोदी हर समय गुंजायमान रहती है।

अलंकार—अनुप्रास, रूपक, उपमा, मानवीकरण।

२. सखि बसन्त आया

शब्दार्थ - नवोत्कर्ष=नवीन विकास। किसलय=कोपलें। नव-वय=नई उम्र। पतिका=पति। मुकुल=पुष्प। आवृत्त=ढकी हुई। सरसी=सरोवर।

सन्दर्भ—प्रस्तुत गीत में निराला जी बसन्त की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—हे सखि, बसन्त आ गया है। वन के मन में हर्ष भर गया है। चारों ओर नया उत्कर्ष और नया विकास हो रहा है। नई लतायें कोपलों के वस्त्रों से सज रहीं हैं। वे वृक्ष रूपी प्रियतम के मधुर हृदय से मिल रही हैं। मधुप-वृन्द उन्मत्त होकर गुनगुना रहे हैं और आकाश में कोयल का कमनीय स्वर भर रहा है। लतायें फूलों के भार से लद गईं हैं। उनकी गन्ध को लेकर पवन मन्द-मन्द गति से बह रही है। जगत के नेत्रों में यौवन का उन्माद छा गया है।

कमलों से सरोवर भर गए हैं। कलियाँ जैसे मुग्धा नायिकाएँ हैं। उनके केशर के केश छिटक रहे हैं। पृथ्वी का स्वर्णिम हरा-भरा अंचल लहरा रहा है।

काव्य-सौन्दर्य— १. बसन्त की प्रकृति-रमणीयता का स्वाभाविक वर्णन है। **अलंकार**—२ 'तरु' में 'पति' का आरोप होने से,रूपक, 'बन्द·········मन्दतर में ध्वन्यात्मकता और अनुप्रास, पूरे गीत में मानवीकरण है।

३. बादल राग

प्रतिपाद्य विषय-वस्तु— 'परिमल' संग्रह में बादल-राग एक लम्बी कविता है। 'बादल राग' कविता छः खण्डों अथवा छः कविताओं में विभाजित है। प्रस्तुत संग्रह में 'बादल राग' की छठी कविता में चयन की गई है। यह कविता वीर-रस में है। इसमें उन्होंने अपने क्रान्तिकारी विचारों की व्यंजना उदात्त स्वर में की है। इसमें बादल समीर के सागर पर इस तरह तैरता हुआ दिखाया गया है जैसे अस्थिर सुख पर दुःख की छाया तैर रही हो। संसार दुःख-दग्ध हृदय पर वह निर्भय विप्लव की माया के समान है। उनके घन-गर्जन को सुनकर पृथ्वी के उर में सोते हुए अंकुर नव-जीवन की आशाओं से सिर ऊँचा कर विप्लव के प्रतीक उस बादल को ताक रहे हैं। उसकी मूसलाधार वर्षा और बार-बार के गर्जन को देख-सुन कर पृथ्वी का हृदय

सिहर उठता है। उसका वज्र-हार विशाल पर्वतों को क्षत-विक्षत कर देता है। परन्तु उसे देखकर 'अपार शस्य' के छोटे-छोटे पौधे 'खिल-खिल कर, हाथ हिलाते हुए, उसे बुलाते हैं। वे उसके भैरव रूप को देखकर भयभीत नहीं होते, क्योंकि वह विप्लव का वाहक है। उनके इस स्वागत करने का कारण यह है कि विप्लव में समाज का जो दलित एवं निम्न वर्ग है, उसी का कल्याण होता है। वही इसमें शोभा पाते हैं—"विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।" इसमें धनपतियों की विशाल अट्टालिकायें और आंतक की सृष्टि करने वाले साधन ध्वस्त हो जाते हैं। वह जल-सिंचित, पथ-मर्दित पंक में ही आशा के नये कमल खिलाता है।

बादल का यह विप्लवी रूप देखकर धनी लोग 'अंगना अंग' से लिपटे हुए भी आंतक से काँप रहे हैं। उनके कोष रिक्त हो चुके हैं, उनकी मानसिक शान्ति भंग हो गई है। परन्तु 'जीर्ण बाहु' वाले किसान उसे हाथ उठा-उठा कर बुलाते हैं, क्योंकि वह विप्लव लाने वाला वीर है, उनका सहायक है। इस कविता में निराला जी ने सन् १९४२ में उठने वाले जन-संघर्ष का अंकन सन् १९२३ में कर दिया था। वे स्पष्ट करते हैं कि विप्लव सदैव जन-कल्याणकारी होता है।

व्याख्या

शब्दार्थ—अम्बर=आकाश। तड़ित=बिजली। रव=शब्द। भैरव=भीषण। रोर=शोर।

सन्दर्भ—इस कविता में निराला जी वर्षा-ऋतु में बादलों के आगमन का सौन्दय वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—हे बादलो ! तुम झूम-झूमकर अपनी घनघोर गर्जना से आकाश को गुंजायमान कर दो, साथ ही आकाश से बूँदों के रूप में झर-झरकर झरनों, पर्वतों, तालाब, घर' वृक्ष, पौधे, समुद्र में अपना जल भर दो। बिजली चमकाकर अन्धाकर को भगा दो।

हे बादलो ! तुम वर्षा के हर्ष हो। भाव यह है कि बादलों के बरसने से चारों ओर प्रसन्नता छा जाती है। तुम बरस-बरसकर अपनी रसधार चारों ओर फैला दो और अपनी गर्जना के भीषण संसार में मुझे ले चलो। तुम अपनी आवाज से मेरे हृदय में उथल-पुथल मचा दो और अपने साथ-साथ ले चलो।

बादल, पृथ्वी पर तीव्र वर्षा करते हैं। इसके कारण पृथ्वी पर चारों ओर दलदल फैल जाता है, तथा नदियों में जल बढ़कर कल-कल ध्वनि करता है प्रकृति की सुषमा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसको देखकर मन नाच उठता है और हृदय भावभिव्यक्ति के लिए उमड़ पड़ता है। हे बादलो ! तुम मुझे आकाश का वह छोर दिखाओ, जहाँ पर तुम अपने अमर रूप में विद्यमान रहते हो।

विशेष—कवि बादलों को अमर एवं संसार में सुख का प्रसार करने वाला कहता है, साथ ही वर्षा के बादलों का यथार्थ-चित्र भी अंकित हो जाता है।

४. जागो फिर एक बार

[१]

कवि का यह स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व लिखा गया उद्‌बोधन गीत है। इसमें कवि आलस्य और प्रमाद में फँसे सुप्त दास भारतवासियों को भारतीय-संस्कृति तथा अतीत के गौरव का परिचय देकर, उनको सजग-सचेत करता हुआ कहता है। गीत में कवि की आत्मा से उठने वाली वह पुकार है, जो देशवासियों को ललकारती है तथा उनको स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है।

जागो फिर............एक बार ॥

शब्दार्थ—अरुण पंख=लाल रंग के पंखों वाली। तरुण किरणें=उषा की प्रभातकालीन किरणें।

संदर्भ—कवि अपने उद्‌बोधन गीत में भारतवासियों को सजग एवं सचेत करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे प्यारे देशवासियों ! देखो प्रकृति के यह प्यारे उपकरण तुम्हें कब से जगा रहे हैं। आकाश-मण्डल का तारकदल तुम्हें अपनी ज्योति से जगाता हुआ हार गया। उषा की अरुण रक्तिम किरणें अपने समस्त मोहक और प्रेरक सौन्दर्य को लेकर तुम्हारे द्वार पर खड़ी तुम्हें जगाने के लिए उसे खटखटा रही हैं। तुम एक बार केवल अपनी सम्पूर्ण अकर्मण्यता एवं प्रमाद छोड़कर उठ बैठो और दासता के अपने इस जुए को उतार फेंको।

विशेष एक बार शब्द इस कविता में विशेष महत्व का है। एक बार शब्द में क़वि ने कविता का समस्त सौन्दर्य केन्द्रीभूत कर दिया है। वह इस गीत में देशवासियों को उनके प्राचीन गौरव की ओर संकेत करता है। जब भारत पूर्ण स्वतन्त्र था, वह जगत गुरु के आसन पर समासीन **था**। आज देशवासी इतने अकर्मण्य हो गये हैं कि परतन्त्रता के जुए को उतारने की कोई चेष्टा नहीं करते। चारों ओर स्वार्थपरता का साम्राज्य स्थापित है।

काव्य-सौन्दर्य :

"अरुण पंख तरुण किरण खोल रही द्वार" में कवि ने उषा को एक सुन्दरी बाला के रूप में चित्रित किया है, अतः यहाँ मानवीकरण प्रमुख तथा अनुप्रास अलंकार है।

आँखें अलियों सी.... ......फिर एक बार।

शब्दार्थ—अलियों सी=भौरों के समान। मधु=शहद। मद=नशा। पाँखें=पंख। मौन=शान्त, चुपचाप। कमल कोर को=कमल पुष्पों अथवा कमल के पुष्प के समान नेत्रों की कोरों में, प्रेयसी के कटाक्षों में।

सन्दर्भ—निराला जी भारतवासियों का उद्‌बोधन करते हुए कहते हैं :

व्याख्या—हे वीरों ऋषियों की सन्तान भारतवासियों । बोलो आज तुम्हारा 'मातृवत् परदारेषु' का पावन सिद्धान्त कहाँ गया । भ्रमरों के समान तुम्हारे चंचल नेत्र किस प्रेयसी के कमल स्वरूपी नेत्रों के मधु का पान कर रहे है । तुम प्रेयसी के कमल-नेत्रों के सौन्दर्य से उन्मत्त होकर अपने नेत्रों को बन्दकर उनका मधुपान कर रहे हो, अर्थात् तुम्हारे नेत्र अथवा तुम्हारे भ्रमर रूपी नेत्र किसी के कमल नेत्रों में सदा के लिए उलझकर अपनी गुंजार बन्द कर बैठे हैं । इस कायरता में तुम्हारे वीरता पूर्ण गीत सो गये हैं । इस भोग-विलास और कायरता को छोड़कर ऐ वीरों ! दासता का बन्धन भोग रही मातृभूमि का उद्धार करने के लिए कटिबद्ध हो जाओ ।

विशेष—कवि यहां यह सिद्ध करना चाहता है कि मानव में कामवृत्ति की एक ऐसी भावना है, जिसके समक्ष वह अन्य सारी बातों को भूल जाता है । कामी मनुष्य को न तो अपने देश-जाति के गौरव का ध्यान रहता है तथा न वह अपने किसी सम्बन्धी परिवार आदि के व्यक्ति का ध्यान रखता है । काम-वासना ही उसके लिए सर्वोपरि रहती है ।

काव्य-सौन्दर्य

अनुप्रास, रूपक उत्प्रेक्षा ।
वीर-रस, उद्‌बोधन शैली ।

अस्ताचल ढले ………… जागो फिर एक बार ।

शब्दार्थ—शशि छबि विभावरी=शशि की छवि से युक्त रात्रि । यामिनी गन्धा=रजनी गन्धा का एक पौधा, जिस पर श्वेत रंग के छोटे-छोटे अति घने गुच्छों में फूल लगते हैं, यह रात्रि में ही फूलता है । इसकी गन्ध बड़ी मादक होती है । इसे लोग रात की रानी भी कहते हैं ।

सन्दर्भ—कवि ये पंक्तियाँ लिखते समय कुछ भावुक हो उठा है । प्रकृति के अमर दैवी सौन्दर्य की ओर संकेत करता हुआ वह देशवासियों को प्यार का सन्देश भी दे रहा है :

व्याख्या—हे वीरो ! देखो प्रकृति का आँगन कितने सौन्दर्य से भरा हुआ है । सूर्य अपनी अरुणिमा का दान करता हुआ अस्ताचल को जा चुका है । चन्द्र-ज्योत्सना ने रात्रि का श्रृंङ्गार किया हुआ है । रजनीगन्धा अपनी मादक सुवास को लेकर समस्त वातावरण को उत्फुल्लता प्रदान कर रही है । चकोर तृषित भूखी दृष्टि से अपने प्रियतम (चन्द्रदेव) को निर्निमेष पलकों से देखता हुआ मौन प्रेम-संलाप कर रहा है । युगल प्रेमी अपने में लीन एक-दूसरे के दर्शन में तन्मय हैं । यद्यपि उनके नेत्र आपस में एक-दूसरे को कुछ कह रहे हैं; किन्तु फिर भी उनकी भाषा मौन है । विकसित फूलों के दल शीत के भार से झुक गये हैं । उसी प्रकार फूलों के समान प्रेमियों के मन प्यार की चरम अनुभूति के कारण शिथिल हो

रहे हैं। कलियों में भी यौवन के चिन्ह उभर आये हैं। उनके मानस में यौवन की मादकता भरती जा रही है। हे वीरो! ऐसे प्यार भरे मोहक, मादक, उत्तेजनापूर्ण वातावरण में सोते ही मत रहो। प्यार ही करना चाहते हो तो अपने अन्तर की समस्त शक्तियों से तथा अनुभूतियों से करो।

विशेष—कवि मानव की आत्मा को अमर बनाने वाले प्यार का सन्देश देता है, ऐसे प्रेम का, जिसका आधार आत्मत्याग हो।

काव्य-सौन्दर्य :

अनुप्रास, दृष्टान्त अलंकार।

श्रृंङ्गार और वीर-रस। उद्‌बोधन शैली।

पिउ रव………… एक बार।

शब्दार्थ—पिउ रव = प्रियतम की पुकार। विरह-विदग्ध = वियोग की आग में जलती हुई।

सन्दर्भ—कवि यहाँ नायिका की व्यथित मनोदशा का वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—पपीहा पक्षी की पिउ-पिउ की रटन, वियोग की शैया पर विरह-व्यथा में दग्ध पड़ी छटपटाती नायिका के अन्तर-दाह को और भी बढ़ा रही है। प्रोषितपतिका नायिका संयोग काल की मधुर बातों को याद करके मन में संतृप्त हो रही है। उन स्मृतियों को मानस-पटल पर अधिक साकार रूप देने के लिए उसने अपने नेत्र बन्द कर लिये हैं। उसकी आँखों की कोर से आँसू झर रहे हैं। वह इन आँसुओं में अपनी आन्तरिक व्यथा को बहा देना चाहती है। कवि देशवासियों से कहता है कि हे वीरो! तुम उठो और उस भूखी तृषित विरह-दग्ध आत्माओं को, जो तुम्हारे वियोग में अपना सर्वस्व होम चुकी हैं, को शान्ति प्रदान करो।

विशेष—यहाँ कवि यह सिद्ध करना चाहता है कि वीर का प्रथम धर्म अपने स्वजनों के कष्ट दूर करना भी है। यह सब वह तभी कर सकता है, जब उसकी आत्मा बलवती होगी। बलवती उदार, संवेदन-शील विशाल आत्मा में ही, मानवता तथा देश-प्रेम के भाव जाग्रत हो सकते हैं।

काव्य-सौन्दर्य :

अनुप्रास, रूपक अलंकार।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार, उद्‌बोधन शैली।

सहृदय समीर………… एक बार।

शब्दार्थ—स्वप्निल = स्वप्न के। अलस = अलसाया हुआ। ऋजु-कुटिल = सीधे और लहरदार।

व्याख्या—हे प्रिय! उठो, जागो अपनी सहृदयता का परिचय देते हुए चिर-विरहिणी को मिलन-सुख की मादकता से उन्मादित कर दो। सहृदय समीर की

तरह उसके नेत्रों के अश्रु को पोंछ दो। तुम्हारी भुजाएँ जो आलस की निद्रा में शिथिल हो रही हैं, उनमें स्वप्निल आवेश भरकर आतुरता से विरहिणी के हृदय का वस्त्र उठाकर उसे मुक्त कर दो। समस्त सुप्ति और आलस्य को सुख के उन्माद में परिवर्तित कर दो। उसकी प्रसारकामी कल्पना से कोमल सीधे और लहरदार केश-गुच्छ छूट-छूट कर पीठ पर फैल जाने दो।

उस प्रणयोन्मादिनी चिर-विरहिणी की चिर-पिपासा को तृप्त करते हुए उसे अपने अस्तित्व में इस सीमा तक लीन कर लो कि दोनों के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की अनुभूति समरस होकर एक ही धारा में प्रवाहित हो उठे, तुम्हारी चिर-विरहिणी तुम्हें कब से पुकार रही है, तुम एक बार जागो।

अलंकार—'सहृदय ·······नीर' में उपमा, 'कल्पना ······गुच्छ' में उपमा, 'मृदु·······में' में उपमा, 'छूट-छूट', 'बुद्धि-बुद्धि' 'जी-जी' में पुनरुक्तिप्रकाश, यत्र-तत्र अनुप्रास।

उगे अरुणाचल··········एक बार।

शब्दार्थ—अरुणाचल=एक काल्पत पर्वत, जिसके पीछे से सूर्य के उदित होने की कल्पना की गई है। भारती-वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती। रति=प्रेम।

व्याख्या—हे प्रिय ! अरुणाचल में सूर्य उदय हो गया है। चारों ओर नव-चेतना का प्रसार हो रहा है। कविगण प्रेम में उन्मादित होकर सरस्वती की साधना कर रहे हैं। प्रकृति-पट में क्षण-क्षण में परिवर्तन हो रहे हैं। दिन गया, उसके पश्चात् रात आई, और रात भी व्ययतीत हो गई तथा दिन आ गया। इसी प्रकार संसार में दिन, पक्ष और मास होकर कितने ही हजार वर्ष व्यतीत हो गए। अब नवीन-चेतना का प्रसार हो रहा है। तुम एक बार जागो।

अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश।

जागो फिर एक बार

समीक्षात्मक पृष्ठभूमि—'जागो फिर एक बार' शीर्षक उद्बोधन गीत निराला' जी के 'परिमल' काव्य-संग्रह से उद्धृत है। इस कविता-संग्रह को निराला जी का सर्वोत्कृष्ट काव्य-संग्रह कहा जाता है। इसमें प्रकृति, नारी, देश-प्रेम आदि विविध विषयों से सम्बन्धित रचनाएँ संग्रहीत हैं। निराला जी का दार्शनिक चिन्तन भी इन गीतों में विकसित रूप में प्रस्फुटित हुआ है। 'जागो फिर एक बार' एक राष्ट्रीय कविता है। इस कविता में भारतीय युवकों को जागने का आह्वान किया गया है और प्रेरित किया गया है कि वे भारत माता को मुक्त करने के लिए संघर्ष करें।

निराला जी की राष्ट्रीयता और अन्य राष्ट्रीय कवियों की राष्ट्रीयता में

अन्तर है। अन्य लोगों की राष्ट्रीयता में आन्दोलन, क्रान्ति और आवेश का प्राधान्य है, किन्तु निराला जी की राष्ट्रीयता में सांस्कृतिक चेतना का प्राधान्य है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों के माध्यम से वे देशवासियों और विशेषकर युवकों में राष्ट्रीय चेतना की ज्वाला जगाना चाहते हैं। 'जागो फिर एक बार' कविता इसका सुन्दर उदाहरण है।

जागो ...... स्यार।

शब्दार्थ—सिन्धु नद-तीर वासी=सिन्धु नदी के तट पर रहने वाले आर्य। सैन्धव तुरंग=सिन्धु देश का घोड़ा। चतुरंग चमू=चतुरंगिणी सेना अर्थात् रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों से युक्त सेना। सवा एक=सिक्खों के गुरु गोविन्द सिंह का नारा=एक अकाली सवा लाख के बराबर है। वास्तव मे यहाँ सिक्खों के प्रति उस नारे की ओर संकेत है, जिसमें गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख जाति को जाँवाज लड़ाकू सैनिक बना दिया था। वीर-जन मोहन=वीरों को मोहित करने वाला। फाग का खेला रण ·· महीनों में=लोग तो केवल फागुन के महीने में होली खेलते हैं, किन्तु गुरु गोविन्द सिंह के अनुयायियों ने बारहों महीने रक्त की होली खेली। माँद=सिंह की गुफा।

सन्दर्भ—'जागो फिर एक बार' कविता में निरालाजी ने भारत के प्राचीन इतिहास के वीरों के कार्यों की स्मृति के माध्यम से भारत के युवकों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस गीत में युवकों का ध्यान भारत के सांस्कृतिक गौरव की ओर आकृष्ट कर उन्हें हीन-भावना त्यागकर राष्ट्रीय गौरव जागृत करने को कहा है।

व्याख्या—भारतवासी आर्य युवकों को सम्बोधित करते हुए महाकवि निराला उन्हें जागने का उद्‌बोधन देते हैं। वे उनको उनकी प्राचीन गौरव-गाथा की याद दिलाते हुए उन्हें प्रेरणा देते हैं और उन्हें जागने और अपनी जन्म-भूमि को गौरव पुनः स्थापित करने का कहते हैं। उनको सम्बोधित करते हुए निरालाजी कहते हैं—हे सिन्धु नदी के तट पर वास करने वाले आर्य पुत्रो! तुम सदैव महासिन्धु की भाँति गर्जनापूर्ण गीत गाते रहे हो। तुम्हारी शौर्य-गाथा संसार भर में व्याप्त है। तुम चतुरंगिणी सेना सजाकर, सिन्धु देश के घोणों पर सवार होकर, बराबर युद्ध में अपनी कीर्ति-पताका, फहराते रहे हो और शत्रुओं के दाँत खट्टे करते रहे हो।

गुरु गोविन्द तुम्हीं में से एक थे; जिन्होंने वीरों को मोहित करने वाला व अपराजेय युद्ध-राग सुनाया था कि शत्रु की सवा लाख सेना के मुकाबले में मेरा अपना एक बलिदानी वीर काफी है और यदि मैंने यह सिद्ध न कर दिया तो मेरा नाम ,गुरु गोविन्दसिंह' नहीं। निराला जी का कहने का तात्पर्य यही है कि शौर्यपूर्ण संगीत गुरु गोविन्दसिंह ने भारतवासियों के रूप में ही सुनाया था और उन्होंने

बारहों महीने खून की होली खेली थी। वास्तव में उन्होंने वीरतापूर्ण शब्द इसीलिए कहे थे, क्योंकि उनको आर्य-युवकों और उनकी वीरता पर विश्वास था। वास्तव में तुम शेर हो। वीरता में तुम्हारी कोई सानी नहीं है, किन्तु दुर्भाग्य! आज उसी शेर की माँद अर्थात् आर्यों के देश भारत में स्यार रूपी शत्रु घुस आया है। तुमको उस स्यार रूपी शत्रु को देश की सीमाओं के बाहर खदेड़ना है। हे आर्य वीर युवकों! आलस्य त्यागो और स्यार रूपी शत्रु के विरुद्ध, अभियान छेड़ दो और उसे देश से निकाल कर बाहर कर दो।

काव्य-सौन्दर्य—(१) इन पंक्तियों में उत्साह पर आधारित वीर रस की व्यंजना है।

(२) पद में संगीतात्मकता, ध्वनि एवं लय है।

(३) रूपक अलंकार है। भारतीयों को सिंह रूप में और अंग्रेजों को स्यार के रूप में अंकित किया गया है।

सत श्री अकाल .... सहस्त्रार।

शब्दार्थ--सत श्री अकाल=यह सिक्खों का धार्मिक नारा है। सिक्ख लोग इसके द्वारा परस्पर अभिवादन भी करते हैं और किसी अभियान पर जाते समय इस नारे के उच्चारण से प्रेरणा भी ग्रहण करते हैं। भाल अनल=अग्नि से धधकता हुआ मस्तक। तीनों गुण तापत्रय=तीनों गुण सत, रज और तम एवं तीनों प्रकार के ताप दैहिक, दैविक और भौतिक। मृत्युञ्जय व्योमकेश=मृत्यु को जय करने वाले भगवान शंकर। अमृतसंतान=अमरों की सन्तान अथवा देवताओं के पुत्र आर्यजन। सप्तावरण=सात लोक, भारत के लोगों की यह पुरानी कल्पना है कि स्वर्ग सात लोकों के भेदने के पश्चात् प्राप्त होता है। मरणलोक=पृथ्वी। सहस्रार=सहस्र दल कमल, ब्रह्मा का आसान, योग-साधना में ऐसी कल्पना की गई है सहस्रदल कमल पर जब कुण्डिलनी पहुँच जाती है मनुष्य को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। यह विचार धारा हठयोगिता की है।

सन्दर्भ—निराला जी ने इन पँक्तियों में आर्यों एवं उन्हीं के वंशज सिक्खों की वीरता का चित्रण किया है। इस वीरता के चित्रण में निराला जी ने पौराणिक गाथाओं का सहारा लिया है:

व्याख्या—इन पँक्तियों में निराला जी ने सिक्खों के युद्ध में शौर्य का चित्रण करते हुए उसे पौराणिक तथ्यों से जोड़ दिया है। यह सिक्ख भी आर्य-पुत्र थे और उनके पीछे भी देवताओं के कृत्यों की गाथा जुड़ी हुई है। इसीलिये निराला जी ने उनकों अमृत-सन्तान के रूप में सम्बोधित किया है। निराला जी कहते हैं कि हे वीर योद्धाओं, पुनः जाग जाओ। गुरु गोविन्द सिंह तुम्हीं में से थे और उनके अनुयायियों ने 'श्रत् श्री अकाल् बोलकर जब युद्ध-भूमि में पदार्पण किया था, तब स्वयं काल भस्म हो गया था, सभी प्रकार ताप—दैहिक, दैविक और भौतिक समाप्त हो

गये थे । सभी गुण विलुप्त हो गये थे और वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले शंकर की भाँति सर्वथा अभय हो गये थे । तुम उन्हीं की सन्तान हो । हे अमृत पुत्र, तुम उन्हीं वीरों की सन्तान हो, जो शिव की भाँति स्वयं मृत्यु को जीतकर अमर हो गये थे । वीरों, तुम्हारी नसों में वही आर्य-रक्त प्रवाहित हो रहा है, जिसने मृत्युलोक को छोड़ दिया था और इसके सभी कष्टों से मुक्ति प्राप्त कर ली थी । वह आठवाँ लोक ब्रह्म लोक है, जहाँ सृष्टि के आदि पुरुष का निवास स्थान है । हे वीरों ! हमारे पूर्वज यह पराक्रम दिखा गये हैं । आज हमें पुनः उन्नति के उन शिखर पर पहुँचना है, आलस्य छोड़ों और अपने पूर्व गौरव को पुनः प्राप्त करो ।

विशेष—(१) 'भाल अनल' में रूपक अलंकार ।

(२) भाल……काल—इन पंक्तियों में शंकर द्वारा कामदेव को भष्म करने की पौराणिक कथा की और संकेत है ।

(३) 'मृत्यंजय……समान' इसमें उपमा अलंकार है । आर्य-पुत्रों को इस छन्द में मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले शंकर की भाँति अंकित किया गया है ।

(४) शोकाहारी=सभी प्रकार के शोकों को दूर करने वाले ।

(५) 'भेद……सहस्रार'—इन पंक्तियों में हटयोगियों द्वारा कुण्डली शक्ति की साधना की और संकेत है । योगी जन जब मूलाधार में पड़ी कुण्डिलिनी को प्रणायाम द्वारा जागृत कर उर्द्ध मुख कर लेते हैं और शनैः शनैः विकास करते हुए जब वह ब्रह्म रंध्र में पहुँच जाती है तो ऐसा माना जाता है कि उसने सिद्धि प्राप्त कर ली है । इसी स्थान पर ऐसा माना जाता है कि सहस्र दल कमल का वास है और वहीं जाकर सिद्धि प्राप्त होती है ।

इस रूपक द्वारा कठिन साधना और आर्यों के पूर्व यश की चर्चा निराला जी ने की है ।

सिंही……………बार बार ।

शब्दार्थ—अजान=मूर्ख । मेषमाता=भेड़ । निर्निमेष=एकटक बिना नेत्रों को झपकाए हुए । अभिशप्त=अभिशाप से भरा हुआ ।

सन्दर्भ—इन पंक्तियों में निराला जी ने गीता के कर्म सिद्धान्त, वीरोचित सहासपूर्ण कृत्यों को अपनाने की ओर संकेत किया है । भारत की यह प्रसिद्ध उक्ति है "वीरभोग्या वसुन्धरा" और गीत में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि जो वीर ओर योग्य होता है वही जीवित रहता है । सिंहिनी और मेषमाता के रूपक के माध्यम से इन पंक्तियों में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए भारत के आर्यवीरों का जागृत होने, आलस्य छोड़ने और शत्रुओं को खदेड़ भगाने की बात कही है ।

व्याख्या—आर्य वीरों को जगाने, उद्बुद्ध होने, आलस्य त्याग करने और शत्रुओं को भगाने की प्रेरणा देते हुए, निराला जी कहते हैं कि क्या कभी कोई व्यक्ति सिंहनी की गोद से उसके शावक को छीनने का साहस कर सकता है। ऐसा सम्भव नहीं है। वह प्राण रहते मौन नहीं रहेगी और किसी को भी अपने शावक को ले जाने नहीं देगी। निराला जी कहते है कि यदि कोई यह मानता है कि वह ऐसा करने देगी तो वह उसकी निरी अज्ञान और मूर्खता है निराला जी का अभिमत है कि ऐसा केवल भेड़ करने दे सकती है कि उसके शावक को कोई उससे छीन ले जाय और वह एकटक मौन अपनी सन्तान का हरण देखती रहे। निराला जी का अभिमत है कि जब कोई भेड़ से उसकी सन्तान को छीनता है तो वह अपने उस सन्तति-हरण पर आँसु बहाती रहती है। उसकी उस वेदना का मूल कारण है उसकी दुर्बलता और इसीलिए वह अपने उस अभिशप्त जीवन को धिक्कारती हुई रोती है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने भारतीयों को गीता के उस सिद्धान्त का स्मरण दिलाया है कि योग्य जन ही जीवित रहने के योग्य है। निराला जी कहते हैं कि-यह उक्ति पश्चिमी की नहीं भारतीय गीता की उक्ति है और भारतीय युवकों को इस सिद्धान्त को बराबर स्मरण कर उसी के अनुरूप आचरण करना चाहिए और आलस्य छोड़कर शत्रुओं को दूर भगाकर पूर्व गौरव को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

काव्य-सौन्दर्य—इन पंक्तियों में गीता के उस सिद्धान्त का कि 'योग्य जन जीता है' प्रतिपादन किया गया है। दूसरे शब्दों में 'मत्स्य न्याय' का भी प्रतिपादन किया गया है। इसी के अनुरूप डारविन का सिद्धान्त आता है। किन्तु यह सिद्धान्त प्रकृति जगत् का सिद्धान्त है, गीता और वेदों में प्रतिपादित सिद्धान्तों के बहुत बाद और बहुत पीछे का है। निराला ने इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त को पश्चिमी का सिद्धान्त मानना बहुत अनुचित है। वस्तुतः इसमें भारतीय दर्शन के सिद्धान्त के तत्त्व विद्यमान हैं। बाद में प्रतिपादित होने के कारण यह भी कहा जा सकता है कि यह भारतीय विचारधारा से प्रेरित और प्रभावित है।

अलंकार—सिंही और मेषमाता के चरणों में दृष्टान्त अलंकार है। इसके अतिरिक्त छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश का भी सुन्दर उपयोग निराला जी ने किया है।

पशु नहीं………विश्व भार।

शब्दार्थ—समरसूर=युद्ध में शौर्य और कौशल दिखाने वाले। कायर नहीं=कायर नहीं अर्थात् ऐसा नहीं कि वीरता के नाम पर कायरतापूर्ण आचरण करते हों। काल-चक्र=समय का परिवर्तन समय के पहले। समरसरताज=वीरों के मुकुट अर्थात् युद्ध करने में सर्वोपरि एवं सर्वश्रेष्ठ। माया=नाशवान; जो अस्थिर,

अवास्तविक है। सच्चिदानन्द रूप=ब्रह्म का स्वरूप, ब्रह्म की कल्पना सत् चित्, आनन्द नाम के तीन गुणों से युक्त रूप में की गई है। बाधा विहीन=अबाध, जिस पर कोई बन्धन न हो, वो सदा मुक्त रहे, बिना किसी बाधा के हो। है नश्वर यह दीन भाव=यह वर्तमान दीन-भाव नाशवान है, क्षण भंगुर है और अस्थायी है। कायरता=दुर्बलता, पौरुषहीनता। कामपरता=विलासिता। पदरज=पैरों की धूलि। विश्वभार=सम्पूर्ण संसार का भार, दायित्व।

सन्दर्भ—'जागो फिर एक बार' कविता का यह अन्तिम छन्द है। इसमें भारत की सांस्कृतिक गरिमा और महत्ता का वर्णन कर नवयुवकों को उसका स्मरण दिलाया गया है। कवि का कथन है कि समय के फेर के फलस्वरूप, वह अपनी महत्ता को भुलाकर दीनता से दब गया है। किन्तु इस महान गौरवपूर्ण देश में सम्पूर्ण विश्व का भार सँभालने की क्षमता है। इसी बात की ओर स्पष्ट संकेत इस छन्द में महाकवि निरालाजी ने किया है :

व्याख्या—"जागो फिर एक बार" शीर्षक राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कविता के इस अन्तिम छन्द में महाकवि निराला ने भारतवर्ष और विशेषकर युवकों को, भारत की गरिमा और गौरव का स्मरण दिलाया है। देशवासियों को सम्बोधित करते हुए निरालाजी कहते हैं कि हे भारतवासी, तुम पशु नहीं हो जो क्रूरता, कायरता और अमानवीयता का आचरण करते हो। तुम शूरवीर हो, योद्धा हो। समर में एक सच्चे योद्धा जैसा आचरण करना, धैर्य से लड़ना और कभी भी पीठ न दिखाना, आदि भली प्रकार जानते हो, तुम क्रूर और कायर नहीं हो, जो ऐसा आचरण करते हो कि उसमें वीरता का अभाव है। यह समय का फेर है अथवा यह संयोग की बात है कि आज तुम दबे पड़े हुए हो और तुम दीनता के शिकार हो गये हो। वातविकता यह है कि तुम राजकुमार हो, इसी प्रकार से तेजस्वी और वीर योद्धाओं के राजमुकुट हो। तुममें युद्धस्थल में वीरों की अगुआई करने की पूरी क्षमता है।

यह दैन्य भाव और पराभाव जो आज तुमको घेरे हुए है, माया की भाँति क्षणभंगुर है। यह शीघ्र ही समाप्त हो जायगा और तुम्हारा पूर्व गौरव पुनः प्रतिष्ठित और स्थापित हो जायगा।

भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए निराला जी पुनः कहते हैं कि तुम साक्षात् ब्रह्म हो। सभी बन्धनों और बाधाओं से मुक्त हो। जिस प्रकार मुक्त छन्द सभी बन्धनों और बाधाओं से मुक्त होता है, उसी प्रकार तुम भी पूर्ण स्वतन्त्र हो। तुम सत्-चित्-आनन्द तीनों अलौकिक गुणों से युक्त साक्षात् ब्रह्म का स्वरूप हो और तुम्हारी रगों में प्राचीन ऋषियों का ज्ञान वह महामन्त्र है कि "तुम महान हो… तुम सदा-सर्वथा से महान रहे हो और सर्वदा रहोगे।" यदि हृदय में कभी हीन भाव का

अभ्युदय हो जाता है तो वह उसका नाश का कारण बन जाता है। वह स्वयं नश्वर है। दीन भाव स्वयं तो नष्ट होता ही है, साथ ही साथ उसको भी नष्ट कर देता है, जिसके भीतर उस दीन भाव का उदय हुआ है। कायरता, कामवासना आदि सभी नाशवान, अस्थिर और क्षणभंगुर है। सत्य,आत्मा और ब्रह्म है।

निराला जी कहते हैं कि हे भारतवासियों ! तुम्हारा तो शाश्वत मन्त्र है, 'अहम् ब्रह्मास्मि' अर्थात् तुम स्वयं ब्रह्म के साक्षात् स्वरूप हो। यह महत्त्वपूर्ण विश्व का भार, दायित्व और विश्व के क्रिया-कलाप तुम्हारे पैरों की धूल की भाँति हैं। हे भारतवासियो ! तुम इस महामन्त्र का स्मरण कर, एक बार पुनः आलस्य त्याग कर जाग जाओ और परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़कर पुनः अपने पूर्व गौरव को प्रतिष्ठित कर दो।

काव्य-सौन्दर्य—१. इस छन्द में शब्द-योजना इसके मूल भाव—ओज भाव—के सर्वथा अनुरूप है।

२. तुम हो विश्व भार—इन पँक्तियों में मन्त्रों जैसी लघु शब्दावली के द्वारा गरिमामय भावों की विवेचना की गयी है।

३. सम्पूर्ण छन्द में अनुप्रास, विशेषकर वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया गया है।

४. रूपक अलंकार द्वारा निराला जी ने प्राचीन गौरव और भारतीय वीरों की विशेषताओं का सुन्दर वर्णन किया है।

सन्ध्या-सुन्दरी

परिचय—प्रस्तुत कविता में निराला जी ने सन्ध्या-सुन्दरी का मनोहारी भाव-चित्र अंकित किया है। वे प्रकृति का सूक्ष्म, सजीव और भावमय चित्रण करते हैं।

दिवसावसान .... अभिषेक।

शब्दार्थ—दिवसावसान=दिवस का अन्त। परी-सी=परी के समान। तिमिराञ्चल=अन्धकार का अंचल।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियों में निराला जी संध्या-सुन्दरी के आगमन का वर्णन कर रहे हैं। दिवसावसान का समय है। अन्धकार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। आकाश में केवल एक तारा निकला है :

व्याख्या—दिवसावसान का समय है। आकाश मेघों से घिरा हुआ है। धीरे-धीरे संध्या का अन्धकार फैल रहा है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेघमय आसमान से संध्या-सुन्दरी का अंचल है। किन्तु उसमें चंचलता का आभास तक नहीं है। दिवस और रात्रि दोनों का मिलन ही संध्या-सुन्दरी के दो मधुर अधर हैं, किन्तु उनमें थोड़ी-सी गम्भीरता है। उसमें हास का विकास नहीं है। संध्या के समय

प्रकृति के वातावरण में गम्भीरता रहती है। आकाश में केवल एक तारा निकल आया है, जो हँसता हुआ सा दिखाई पड़ता है। फैला हुआ अन्धकार ही संध्या-सुन्दरी के घुँघराले और काले-काले केश हैं, जिनमें वह एकाकी तारा गुँथा हुआ ऐसा लगता है, मानो हृदय-राज्य की रानी संध्या-सुन्दरी का अभिषेक कर रही हो।

काव्य-सौन्दर्य—१. संध्या के आगमन का निराला जी ने बड़ा ही सूक्ष्म-निरीक्षण-पूर्ण वर्णन किया है। संध्या का धीरे-धीरे बढ़ता हुआ अन्धकार ऐसा लगता है, मानो कोई परी आकाश से उतर रही हो। संध्या के समय का वातावरण गम्भीर रहता है और पहले आकाश में एक तारा निकलता है। इसके पश्चात् अन्धकार बढ़ता जाता है और तारे निकलते आते हैं।

२. **अलंकार**—पूरे छन्द में मानवीकरण है, संध्या की समता परी से होने में उपमा, 'धीरे-धीरे' में पुनरुक्तिप्रकाश, 'तिमिर में अंचल' 'संध्या में सुन्दरी' का आरोप होने से रूपक, 'मधुर-मधुर' और 'काले-काले' में पुनरुक्तिप्रकाश, संध्या के आकाश में एक निकले हुए तारे में संध्या-सुन्दरी के केशों में गुँथे तारे की संभावना होने से उत्प्रेक्षा।

अलसता की सी लता………जगतीतल में।

शब्दार्थ—अलसता=अलसाई हुई। अम्बर-पथ=आकाश पथ। आलाप=संगीत-शास्त्र के अनुसार श्री, बसन्त, पंचम, भैरव, मेघ और नर-नारायण छः राग माने गये हैं।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियों में निराला जी ने संध्या के आगमन का सूक्ष्म-निरीक्षण-पूर्ण-वर्णन किया है, चारों ओर नीरवता और 'चुप-चुप-चुप' का गम्भीर वातावरण छाया हुआ है।

व्याख्या—संध्या-सुन्दरी आलस की लता के समान है, किन्तु कोमलता कली के समान है। वह छाया के समान आकाश-पथ से सखी नीरवता के कंधों पर बाँह डाले आ रही है। न तो उसके हाथों में बजती हुई वीणा है और न वह किसी प्रकार का अनुराग-व्यंजक राग ही अलाप रही है। उसके नूपुरों से भी रुनझुन की झंकार नहीं हो रही है। उसके आगमन से केवल 'चुप-चुप' का अस्फुट शब्द समस्त व्योम-मंडल एवं जगतीतल में व्याप्त हो रहा है।

काव्य-सौन्दर्य—अलंकार—'संध्या-सुन्दरी' की समता 'कोमलता की कली', 'अलसता की सी लता' से होने में उपमा, 'नीरवता' में 'सखी' का आरोप होने से रूपक, 'छाँह-सी' में उपमा, यत्र-तत्र पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास। समस्त छन्द में मानवीकरण है।

सोती शान्त…………कुछ नहीं ।

शब्दार्थ—उत्ताल=ऊँचा । तरंगाघात=तरंगों के उठने और पुनः शीघ्रता से गिरने के कारण होने वाला आघात । अनिल=वायु । अनल=अग्नि ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियों में निराला जी संध्या के आगमन के समय समस्त सृष्टि में छाई हुई नीरव-शांति का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—संध्या-सुन्दरी के आगमन से चारों ओर अन्धकार और नीरवता छा गई । चारों ओर चुप-चुप-चुप का अव्यक्त शब्द गूंज रहा है । शान्त सरोवर में सुन्दर कमलिनी-दल शोभित हो रहा है । उसके ऊपर भी नीरवता छाई हुई है । सौन्दर्य से गर्वित नदी के अत्यन्त विस्तृत वक्षस्थल पर भी नीरवता अपना आवरण डाले हुए है । अटल और अचल हिमगिर का शिखर जो अपनी धीरता, वीरता और गम्भीरता में उपमा-रहित है, उस पर भी चुप-चुप की अव्यक्त ध्वनि छाई हुई है । ऊँची-ऊँची लहरें उठकर प्रलय के समान गर्जना करते हुए समुद्र में, पृथ्वी में, जल में, आकाश में, पवन में और अग्नि में, जहाँ भी देखो सब कहीं केवल 'चुप-चुप-चुप' का अव्यक्त शब्द सा गूंज रहा है । इस नीरवता और चुप-चुप के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है ।

काव्य-सौन्दर्य—१. पूरे छन्द में मानवीकरण है ।

२. संध्या में सुन्दरी का आरोप होने से रूपक है ।

३. 'सोती……सरोवर' में 'स' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास ।

४. यत्र-तत्र छेकानुप्रास ।

५. शब्दावली में माधुर्य गुण और ध्वन्यात्मकता है ।

मदिरा की……………विहाग ।

शब्दार्थ—मदिरा=शराब । विस्मृति=भूले हुए । निश्चलता=स्थिरता और नीरवता । विरहाकुल=विरह से व्याकुल । विहाग=व्यथा और करुणा से युक्त गीत ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में कवि संध्या का वर्णन करता हुआ कहता है कि रात्रि की मादक मधुरिमा दिन के संघर्ष-रत विश्व को सुलाकर विश्राम प्रदान करती है :

व्याख्या—संध्या-सुन्दरी के अंक में दिन भर श्रम से थके हुए जगतीतल के जीव स्नेह की मदिरा का प्याला पीकर विस्मृति के मधुर स्वप्न देखते हुए सो जाते हैं । अर्द्ध-रात्रि की निश्चलता में संध्या-सुन्दरी के सुप्त सौन्दर्य को देखकर कवि के हृदय में अनुराग जाग्रत हो जाता है और उसके विरह से आकुल कण्ठ से स्वतः ही विहाग का मधुर राग फूट पड़ता है ।

संध्या-सुन्दरी विश्रामदायिनी है। दिन भर मनुष्य कार्यरत रहकर थक जाता है। संध्या अपने अंक में सुलाकर उसे विश्राम देती है। वह उसकी मादकता में विस्मृत के अगणित मीठे स्वप्न देखने लगता है। अर्द्ध-रात्रि को संध्या-सुन्दरी निश्चल हो जाती है। इस समय नीरवता छा जाती है और कहीं कोई हलचल नहीं रहती। ऐसे नीरव और शान्त वातावरण में कवि के विरहाकुल हृदय में अनुराग जग जाता है और उसके कण्ठ से स्वतः ही विहाग राग निकलने लगता है।

अलंकार—मानवीकरण, मदिरा की नदी में रूपक।

विशेष—चित्र और वातावरण की सूक्ष्म परन्तु कलात्मक सफल अभिव्यक्ति हुई है। संध्या-सुन्दरी के रूप का निर्माण संकेतों द्वारा किया गया है। **शब्द-योजना** में चित्रोपमता है।

वह तोड़ती पत्थर

समीक्षात्मक पृष्ठभूमि—निराला जी एक सामाजिक चेतना सम्पन्न विचारक और कवि थे। उनकी रचनाओं में प्रगतिवादी विचारधारा के दर्शन प्रायः होते हैं। किन्तु उनकी प्रगतिवादी विचारधारा मानवतावाद से प्रेरित और प्रभावित है। 'वह तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता एक प्रगतिवादी रचना कही जा सकती है। इसमें गर्मी की दोपहरी में सड़क पर पत्थर तोड़ती हुई एक मजदूर महिला का चित्र अंकित किया गया है। सामान्यतः महिला को कोमलता का प्रतीक माना जाता है और उसे शुकुमादपि सुकुमारी जैसी विशेषताओं से सम्बोन्धित किया जाता है। पत्थर कोमलता का सर्वथा विपरीत है, विलोम है। वह कठोरता, रसहीनता, हृदयहीनता और भाव-हीनता का प्रतीक है। पत्थर तोड़ना एक कठोर परिश्रमसाध्य कार्य है। इस कविता में निराला जी ने सामाजिक विषमताओं का चित्र अंकित करते हुए इस बात को उद्घाटित किया है कि हमारा समाज इतना विडम्बनापूर्ण है कि उसने एक महिला को पत्थर तोड़ने जैसा काम ग्रहण करने के लिए बाध्य किया। उसे यह कार्य इसलिए करना पड़ा कि उसे अपनी जीविका अर्जित करनी है। जीविकोपार्जन के लिए उसे नारी दृष्टि के अनुरूप कोई कार्य न मिल सका और इसी कारण उसे पत्थर तोड़ने का काम अपनाना पड़ा। इस गीत में निराला ने सामाजिक विषमताओं, धन के असम बँटवारे, श्रम के अनुचित विभाजन आदि समस्याओं का एक व्यंग्यपूर्ण चित्र अंकित किया है।

वह तोड़ती पत्थर ……… मैं तोड़ती पत्थर।

शब्दार्थ—श्यामतन=साँवला शरीर। भरा बँधा यौवन=भरी हुई जवानी जो संयम में बँधी हुई थी। गुरु=भारी। तरुमालिका=वृक्षों की पंक्ति। अट्टालिका=हवेली, महल। प्रकार=परकोटा, चहारदीवारी। तमतमाता रूप=लाल धूप से तपा हुआ। सुधर=सुन्दर। सीकर=बूंद।

सन्दर्भ—'वह तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता में निराला जी ने एक मजदूरनी का चित्र अंकित किया है। वह मजदूरनी ग्रीष्मकाल में तपती हुई दुपहरी में पत्थर तोड़ रही है। वही चित्र इन पंक्तियों में अंकित किया गया है।

व्याख्या—निराला जी ने इलाहाबाद नगर की सड़क पर एक यौवन सम्पन्न श्रमिक महिला को पत्थर तोड़ती हुई देखा। उसी चित्र को सामाजिक विषमताओं और भारतीय कर्मवाद की पृष्ठभूमि में महाकवि ने अंकित किया है। वह महिला सड़क पर पत्थर तोड़ रही थी। उसके लिए सिर पर छाया करने वाला कोई वृक्ष नहीं था जिससे गर्मी को झुलसाने वाली धूप से वह बच सके। शरीर उसका साँवला था, भरपूर जवानी ने उसे सर्वथा लावण्यपूर्ण बना दिया था, किन्तु वह यौवन और लावण्य संयम में बँधा हुआ था। इसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण यही था कि वहाँ आँखें झुकाये हुए अपने प्रिय कर्म अर्थात् पत्थर तोड़ने में मन लगाये हुए लीन थी।

भारी हथौड़ा उसके हाथ में था और बार-बार वह पत्थर पर प्रहार कर उसे तोड़ रही थी। उसकी दृष्टि के सामने वृक्षों की पंक्ति थी, ऊँचा महल था और उस महल के चारों ओर खिंची हुई चहारदीवारी थी, किन्तु उसके भाग्य में कुछ भी नहीं था। उसे चिलचिलाती धूप में दायित्व का निर्वाह करना था।

गर्मी के दिन थे, धूप बराबर बढ़ती जा रही थी और दिन का रूप तमतमा रहा था अर्थात् गर्मी की धूप बराबर तेजी से बढ़ रही थी, जिसके कारण चारों ओर का वातावरण असह्य हो रहा था। धूप बढ़ने के बाद झुलसाने वाली लू चलने लगी। पृथ्वी ऐसे तप्त और जलती हुई प्रतीत हो रही थी जैसे धधकती हुई रुई। गर्द चिनगारी की भाँति छा गई। दोपहरी का समय आ गया और सम्पूर्ण वातावरण गर्मी के कारण असह्य हो गया, किन्तु वह फिर भी पत्थर तोड़ने में लीन थी।

इस चित्र को अंकित करने के बाद निराला जी ने उसमें एक मानवीयता और संवेदना लाने का प्रयास किया है। निराला जी कहते हैं कि जब मैं बराबर उसको पत्थर तोड़ने के क्रम में लीन देखता रहा तो उसने एक बार उस भवन की ओर देखा जहाँ से मैं धूप और गर्मी से सुरक्षित उसे देख रहा था। जब उस श्रमिक यौवना ने देखा तो उसने दृष्टि उठाकर उस ओर देखा जहाँ से कवि उसे देख रहा था। उस पत्थर तोड़ने वाली यौवन सम्पन्न महिला की उस दृष्टि में एक चित्रित सी नीरवता का, वेदना का भाव छाया हुआ था। उसकी दृष्टि उस व्यक्ति की दृष्टि की भाँति थी जिस पर मार पड़ी हो, किन्तु जी रो न पाया हो। अर्थात् उस दृष्टि में एक नीरव, गहन वेदना छायी हुई थी। कवि को उस दृष्टि में सजे हुए सितार से एक ऐसी असाधारण ध्वनि सुनने को मिली जो आज तक उसने कभी नहीं सुनी थी। कहने का तात्पर्य यह है कि उस दृष्टि में एक असाधारण, अनुपम, गहन वेदना छाई हुई थी।

एक क्षण तो उस ओर उस श्रमिक योजना ने देखा, किन्तु उसके पश्चात् वह पुनः काँपी और काँपने के बाद पुनः अपने काम में लीन हो गई। गरमी और परिश्रम के कारण उसके माथे पर पसीने की कुछ बूँदें ढुलक गई और फिर वह अपने कर्म अर्थात् पत्थर तोड़ने में पूर्ववत् संलग्न हो गई। इस मुद्रा में भी कवि को स्पष्ट रूप से यह ध्वनि सुनाई दी—'मैं तोड़ती पत्थर'।

काव्य-सौन्दर्य—(१) नहीं छायादार ··· प्रकार—इन पंक्तियों में कवि ने दो परस्पर विरोधी चित्रों और परिस्थितियों को अंकित किया है। एक ओर वह श्रमिक महिला है जो खुली धूप में, बिना पेड़ की छाया के पत्थर तोड़ने जैसा श्रम-साध्य और कठोर कार्य कर रही है, दूसरी ओर, सामने वृक्षों की पंक्तियाँ हैं, विशाल अट्टालिकायें हैं और उसके चारों ओर चहार दीवारी है।

(२) **प्रिय कर्मरत मन**—इन शब्दों में कवि ने उस मजदूरी को कर्मयोगिनी के रूप में अंकित किया है।

(३) **रुई ज्यों झुलसी हुई धूप**—यहाँ उपमा अलंकार है। इसमें पृथ्वी को झुलसी हुई रुई की भाँति बताया गया है।

(४) **गर्द चिनगी**—रूपक अलंकार। गर्द को चिनगारी के रूप में अंकित किया गया है।

(५) **जो मारत खा रोई नहीं**—बड़ा व्यंजनापूर्ण और मर्मस्पर्शी कथन है। इसमें उस श्रमिक महिला की दृष्टि का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा गया है।

(६) **सजा ·· झंकार**—इन पंक्तियों में रूपक अलंकार है।

(७) इस सम्पूर्ण कविता में निराला जी ने बड़े ही सजीव, मोहक और मर्म-स्पर्शी चित्र अंकित किये हैं।

७. स्नेह निर्झर बह गया

शब्दार्थ पिक=कोयल। शिखी=मोर। अनश्वर=नाशवान। पुलिन=किनारा। निरुपमा=जिसकी कोई उपमा न हो। अमा=अमावस्या, निराशा। अलक्षित=दृष्टि में न आने वाला।

स्नेह निर्झर ·········· ·······वह गया।

सन्दर्भ—कवि की वाणी में घोर निराशा का स्वर मुखरित होता जा रहा है। वह अपने जीवन में व्यर्थता का अनुभव करता हुआ कर रहा है:

व्याख्या—मेरे हृदय में स्नेह को प्रवाहित होता हुआ झरना सूख गया है। अब यह शरीर रेत के समान शेष बचा है। मेरा शरीर अब आम की सूखी डाल बन गया है। इस पर अब विरमने के लिये न कोयल आती है और न मोर। कविता की एक पंक्ति जो युग की मान्यताओं के बदल जाने से अर्थहीन हो गई है। अब मेरा जीवन ही ढल गया है। अतः स्नेही भी छोड़कर चले गये हैं।

अलंकार — रूपक, प्रतीक शैली ।

दिये हैं···· ·········कह गया है ।

सन्दर्भ—कवि संसार के स्वार्थी चित्रों में अपने जीवन की प्रतिकृति देखता है । उसका जीवन स्नेह-हीन होकर जगत की प्रवंचनाओं में दग्ध हो चुका है । वह निराशा में भर रहा है :

व्याख्या—मैंने भी कभी जगत को कल्पना के पुष्प और अर्थ-गरिमा के फल दिये हैं । कभी मैंने भी अपनी प्रतिभा की प्रभा से सबको चमत्कृत कर दिया था । मुझे विश्वास है कि उल्लास, विकास और आत्मदान के वे क्षण अनश्वर हैं । उन क्षणों में ही जीवन का सौन्दर्य समाया हुआ था, जो आज नष्ट हो गया है ।

अब मेरी जीवन-सरिता सूनी है । उसके तट पर रस-कलश भरने के लिए न तो कोई प्रियतमा आती है और न हृदय की तृप्त कर देने वाली हरियाली का आनन्द लेने के लिए कोई उपमा रहित सुन्दरी ही जाती है । अब तो मेरे हृदय के आकाश में अमावस्या की अंधेरी रात का गहन अन्धकार व्याप्त हो गया है और मेरा सार्थक व्यक्तित्व अलक्षित हो चुका है ।

अलंकार –'फूल फल' में अनुप्रास, 'फूल' से 'कल्पना' और फल से 'अर्थ की गरिमा' का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति, 'चकित चल' में छेकानुप्रास, 'पुलिन' से जीवन-सरिता के पुलिन का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति, 'अमर' से 'निराशा' का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति ।

गीत

संक्षिप्त परिचय—प्रस्तुत गीत 'निराला' जी के प्रतीकात्मक शैली का मार्मिक एवं ज्वलन्त उदाहरण है । कवि नाव को आत्मा का प्रतीक मानकर जो सांसारिकता के मोह बन्धनों में बँधी हुई है—कहना चाहता है । यह विश्व अनेकानेक प्रकार के आकर्षणों से परिपूर्ण हैं किन्तु मनुष्य के जीवन का साध्य है कि वह इनमें ही न पड़ा रहे । इसलिए मानव को चाहिए कि वह अपने को भौतिकता की सीमा में सीमित न रखे बल्कि आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो । नाव का महत्त्व इसी में है कि वह उसके द्वारा नदी से पार उतर जाये । कहने का अभिप्राय है कि मानव-शरीर की सार्थकता इसी में है कि वह इसे पाकर मुक्ति प्राप्त करे । कवि ने इसी जीवन-दर्शन को इस महत्वपूर्ण गीत में प्रस्तुत किया है ।

बाँधो न नाव···· ·······बन्धु ।

शब्दार्थ—ठाँव=स्थान । धँसकर=धारा में घुसकर । दाँव=वदला । नाव =आत्मा का प्रतीक ।

प्रसङ्ग—प्रस्तुत महत्वपूर्ण गीत 'निराला' प्रणीत है। जिसमें जीवन की दार्शनिकता को अभिव्यक्त किया गया है।

सन्दर्भ—यहाँ पर कवि नाव को आत्मा को प्रतीकत्व प्रदान करते हुए कह रहा है :

व्याख्या—हे बन्धु ! नौका का इस स्थान पर बन्धन कदापि उचित नहीं है। तुमने अपनी आत्मा रूपी नौका को सांसारिक आकर्षणों तथा माया-मोह के बन्धनों में बाँधा है जो सर्वथा अनौचित्य का द्योतक है। तुम्हारी नौका रूपी आत्मा को इस प्रकार के बन्धनों में बँधा देखकर संसार तुम्हारे सम्मुख प्रश्न अवश्य रखेगा। उस क्षण तुम सांसारिक प्रश्नों का उत्तर देने में सर्वथा असमर्थ रहोगे।

यह वही विश्व रूपी घाट है, जिसके किनारे आत्मा रूपी नाव रहती थी और उसमें उठने वाली तरंगों के बीच गोते लगाया करती थी। इस संसार रूपी घाट के आकर्षण और सुन्दरता को देखते हुए नेत्रों में तन्मयता आ जाती थी। वह वहाँ से तनिक हटने (अलग होने) का नाम तक नहीं लेती थी। उसके पैर लड़खड़ा जाते थे आज वह सब कुछ काल के गर्त में जा चुका हैं। उस समय की हँसी न जाने किस माधुर्य और रहस्य को किये हुए थी, किन्तु कुछ भी समझ में नहीं आता था। अतः वहाँ निर्वासित होकर सभी के साथ निवास करती थी और तैसा उत्तर देती रहती थी।

अन्त में कवि कहता है कि बन्धु ! तुम्हें अब सब कुछ पूर्णतः ज्ञात हो गया होगा अतः मेरी यही विनती है कि तुम यहाँ से पलायन कर चलो।

साहित्यिक-सौन्दर्य :

(१) 'निराला' ने जीवन-दर्शन को अपनी महती प्रज्ञा से शाब्दिक परिवेश में प्रस्तुत किया है।

(२) जीवन रूपी नौका निरन्तर माया-मोह रूपी बन्धनों में बँधी हुई विश्व रूपी समुद्र में इधर-उधर डगमगाती रहती है।

(३) 'निराला' जी ने सन्देश दिया है कि मानव का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने को भौतिकता तक ही सीमिक न रखकर आध्यात्मिकता की ओर बढ़े तथा साथ ही नाव का महत्व इसमें है कि मनुष्य उसके द्वारा सांसारिक रूपी सागर को पार ले।

(४) वास्तव में मानव के शरीर की सार्थकता इसी में निहित है कि वह इस संसार से मुक्ति प्राप्त करे।

(५) **भाव साम्य**—तुलसीदास जी ने भी इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं :

"कबहुक करि करुना नर-देही ।
देत इस बिनु नेह सनेही ।।
साधन धाम कर द्वारा ।
पाइ न जेहि सुरलोक सँवारा ।।

× × ×

नर तन कर एकै फलु भाई ।
भजिय राम सब काम बिहाई ।।

(६) 'निराला' जी की प्रतीकात्मक शैली का चमत्कारिक सौन्दर्य दर्शनीय है ।

व्याख्या (पन्त)

मौन-निमन्त्रण

'मौन-निमन्त्रण' पन्त जी की रहस्यमयी कविता है जिसकी कला छायावादी और ध्वनि रहस्यवादी है । उस असीम अज्ञात सत्ता के प्रति जिज्ञासा और कौतूहल की भावना काव्य में रहस्यवाद को अवतारण का कारण बनती है । इस कविता में प्रकृति कण-कण अव्यक्त सत्ता का मौन-निमन्त्रण सा देता हुआ प्रतीत है होता । कवि को प्रकृति के साथ में विराट रहस्यमयी सत्ता का आभास होता है ।

इस गीत में प्रकृति के कोमल भयंकर दोनों ही रूप कवि को आकर्षित करते हैं । दोनों ही रूपों में वह उस असीम अज्ञात विराट सत्ता के संकेत पाता है ।

कलापक्ष की दृष्टि से अनुभूति की सघनता संक्षिप्त, सशक्त, एवं सरल भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति देखते ही बनती है ।

व्याख्या

स्तब्ध-ज्योतसना ……………… मौन ।

शब्दार्थ—स्तब्ध=शान्त । ज्योत्सना=चाँदनी । चकित रहना=आश्चर्य में डूबे रहना । स्वप्न अनजान=स्वप्न प्रायः अनजान ही रहते हैं । वे कभी पूरे नहीं होते ।

सन्दर्भ—संसार में बिखरे हुए असीम सौन्दर्य को देख कर पन्त जी के हृदय में जिज्ञासा जागृत हो जाती है । उन्हें कोई असीम शक्ति नक्षत्रों से होकर निमन्त्रण देती हुई दिखाई देती है । वे भावाभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं ।

व्याख्या—चारों ओर शान्त और स्तब्ध ज्योत्सना फैल जाती है, उसकी असीम माधुरी में खोकर संसार शिशु के समान नादान बना हुआ चकित सा रह जाता है । विश्व निद्रा में निमग्न हो जाता है । उसके सुकुमार पलकों पर अनजान स्वप्न विचरण करने लगते हैं । ऐसी शान्त प्रकृति माधुरी की पृष्ठभूमि में नक्षत्रों से होकर मुझे न जाने कौन मौन-निमन्त्रण देता है ।

विशेष—जिज्ञासामूलक रहस्यवाद है । कवि नक्षत्रों से विराट सत्ता का मौन-निमन्त्रण पा जहा है ।

अलकार संसार को समानता नादान शिशु से होने में उपमा, मानवीकरण ।

सघन मेघों……………… मौन ।

शब्दार्थ—सघन भीमाकाश=सघन मेघों से आवृत आकाश अत्यन्त विशाल

और भयंकर लगता है। तमसाकार=अन्धकार से भरा हुआ। निःश्वास=गहरी साँसें। प्रखर=तेज। तपक=अचानक तड़क कर या चमक कर। इङ्गित=संकेत।

सन्दर्भ—कवि सघन मेघों से भरे हुए भीमाकाश से बरसती हुई पावस-धारा और चमकतो हुई बिजली से किसी के मौन-इङ्गित देखता हुआ कहता है।

व्याख्या—सघन मेघों के घिरने से आकाश अत्यन्त भयंकर और भयावना हो जाता है। अन्धकार साकार होकर गरजने लगता है। बड़े वेग से चलता हुआ पवन निश्वासें भरता है और पावस में मूसलाधार वर्षा होती है। तब न जाने तड़ित में अचानक ही चमक कर मुझे कौन मौन संकेत करता है।

काव्य-सौन्दर्य—१. कवि के हृदय में रहस्यमूलक जिज्ञासा जागृत है।

२. शब्द चयन विषय-वस्तु का सजीव चित्र उपस्थित कर रहा है।

देख वसुधा ………………… मौन।

शब्दार्थ—वसुधा=पृथ्वी। मधुमास=बसन्त। विधुर=जिसकी पत्नी मर चुकी हो। सौरभ=सुगन्ध।

सन्दर्भ—बसन्त की माधुरी से सौरभ में कवि किसी का सन्देश पाता हुआ भावाभिव्यक्ति कर रहा है।

व्याख्या—यौवन में मधुमती वसुधा को देखकर जब मधुमास गूँज उठता है और कुसुम विधुर उर के मृदुर उद्गारों के समान खिल जाते हैं, तब सौरभ के बहाने न जाने मौन सन्देश कौन सुनाता है?

काव्य-सौन्दर्य—१. असीम सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना है।

२. कुसुम के खिलने की समानता विधुर उर के मृदुल उद्गार से होने के कारण उपमा। ३. 'सौरभ के मिस' में कैतवापन्हुति।

क्षुब्ध जल, शिखरों……………… बुलाता मौन।

शब्दार्थ—क्षुब्ध=अधीर, आकुल।

सन्दर्भ—प्रस्तुत प्रसंग में पन्त जी स्पष्ट कर रहे हैं कि वायु सब समुद्रों को मथकर बुलबुलों का व्याकुल संसार उत्पन्न कर देती है, तब लहरों के हाथ उठा कर मुझे कौन मौन सन्देश सुनाता है?

व्याख्या—पवन संसार के जल-समूह को मथकर फेनाकर बना देता है। इसके परिणामस्वरूप व्याकुल संसार बुलबुला बन जाता है। इन बुलबुलों को वायु विधुरा देती है। ऐसे समय में लहर रूपी हाथों को उठा कर मौन रूप में न जाने मुझे कौन बुलाता है?

काव्य-सौन्दर्य—१. कवि में विराट सत्ता के प्रति जिज्ञासा भाव जाग्रत है।

२. **अलंकार**—(अ) मानवीकरण।

(ब) लहरों की समानता हाथों के कारण उपमा के कारण उपमा।

स्वर्ण सुख.....................मौन।

शब्दार्थ—भोर=सबेरा। बोर=डुबो देना। अलस-पलक दल=अलसाए हुए पलकों से।

सन्दर्भ—कवि प्रायः की ऊषाकालीन माधुरी में किसी का संदेश पाता हुआ कहता है।

व्याख्या—प्रातःकाल की ऊषा स्वर्णिम से विश्व को रंग देती है। चारों ओर सुख और वैभव छा जाता है। पुष्प खिलकर सौरभ भी बिखेर देते हैं। विहंगों के समूह अपनी मधुर काकली से पृथ्वी-आकाश को एक कर देते हैं। इस समय अपने अलसाये हुए पलकों से न जाने कौन हमारी मौनता को दूर कर देता है और मैं गीत गाने लगता हूँ।

काव्य-सौन्दर्य—१. अलंकार—वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, रूपक।

२. रहस्यमूलक जिज्ञासा।

तुमुल तम .... मौन।

शब्दार्थ—तुमुल-तम=घनघोर अन्धकार। ऊँघता=निद्रावश होता है। भीरु=डरपोक, कायर। तन्द्रा=निद्रा। खद्योतों=जुगुनुओं।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि सघन अँधेरी रात्रि में जुगुनुओं के प्रकाश में। अव्यक्त सत्ता के संकेतों का अनुभव करता हुआ कहता है।

व्याख्या—जब सारा संसारा घोर अंधकारमयी रात्रि में उसी के समान एक रूप हो जाता है और ऊँघता रहता है और उस अंधकार से ग्रस्त हुए कायर झींगुरों की झनकार उस तन्द्रा को भंग कर देती है, अर्थात् संसार में हल्की सी चेतनता आ जाती है, तब न जाने कौन जुगुनुओं द्वारा मुझे चुपचाप मार्ग दिखलाता चलता है।

विशेष—१. 'तुमुल-तम' में छेकानुप्रास।

२. 'तन्द्रा के तार काँपना' में लाक्षणिकता है। इसका अर्थ है निद्रा भंग होकर कुछ चेतनता आना।

३. कवि के हृदय में अव्यक्त सत्ता के प्रति रहस्यात्मक जिज्ञासा जागृत है।

कनक छाया में.................... दृग मौन।

शब्दार्थ—कनक छाया=प्रभात कालीन सुनहली आभा। सुकाल=प्रभात, सुन्दर उपयुक्त समय। सुरभि पीड़ित=सुगन्धि से व्याकुल। मधुपों के बाल=भ्रमरों के बच्चे अर्थात् छोटे-छोटे भ्रमर।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि ऊषा-वेला में ओस की बूंदों में अव्यक्त सत्ता का आभास पाता हुआ कहता है।

व्याख्या—जब प्रभात की स्वर्णिम छाया में, ऊषा के सुनहले प्रकाश में कलियाँ अपने हृदय के द्वार खोलकर अर्थात् पुष्प रूप में खिलकर चारों ओर सुगन्धि

बिखरा देती है और उस सुगन्धि से व्याकुल होकर भौरों के छोटे-छोटे बच्चे गुंजार करने लगते हैं, तब न जाने कौन आँसू के रूप में ढुलक कर मौन रूप से मेरे नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कवि ने कली को नवयौवना वाला और भ्रमर कुमारों को प्रेमी किशोरी के रूप में चित्रित किया है।

२. अलंकार—मानवीकरण।

बिछा कार्यों का………………मौन।

शब्दार्थ—बिछा=समाप्त कर। स्वर्ण अवसान=सुनहला अन्त। श्रमित=थका हुआ। जुड़ाती=शीतल करती। छाया जग=स्वप्न-लोक।

सन्दर्भ—इस छन्द में कवि कहता है कि रात्रि में शैयागत निद्रा में भी अव्यक्त सत्ता उसे अपने संकेत देती हुई स्वप्न जगत में ले जाती है :

व्याख्या—जब सन्ध्या की सुनहली आभा दिवस का अन्त कर देती है। अर्थात् दिवस के समाप्त होने पर रात्रि आती है और मैं दिन भर के कार्य-कलाप को समाप्त कर बहुत अधिक थक कर अपनी सूनी शैया पर अपने व्याकुल प्राणों को शीतल करती हूँ, तब न जाने मुझे कौन चुपचाप छाया-जगत के समान अस्पष्ट स्वप्नों के संसार में घुमाने ले जाता है। भाव यह है कि कवि को स्वप्न में भी अव्यक्त सत्ता रहस्यमय संकेत देती है।

विशेष—१. लाक्षणिकता, २. अनुप्रास, १. मानवीकरण।

न जाने कौन………………हो कौन ?

शब्दार्थ—द्युतिमान=अत्यन्त सौन्दर्यशाली। सुझाते=बताते, दिखाते। छिद्रों=रोमों। सहचर=साथी।

व्याख्या—हे अनन्त सौन्दर्यशाली ! न जाने तुम कौन हो। जो मुझे अबोध और अज्ञान जानकर पथ दिखाते रहते हो और मेरे रोम-रोम में संगीत फूंक देते हो, अर्थात् तुम मेरा रोम-रोम अपने संगीत से पुलकायमान कर देते हो। हे मेरे सुख-दुख के मौन सहचर, मैं यह नहीं कह सकती कि तुम कौन हो।

विशेष—१. यहाँ कवि मानव को अल्पज्ञ और अबोध मानकर ब्रह्म को अनन्त सत्‌चित्त का अक्षय कोष मानता है। वह मनुष्य को प्रकृति के कण-कण के माध्यम से अपनी सत्ता का संकेत देता है। रहस्यात्मक जिज्ञासा मुखर है।

२. 'छिद्रों' में लाक्षणिकता है। छिद्रों का अर्थ 'रोम' है।

अलंकार—रूपक, प्रतीक शैली तथा मानवीकरण।

एक तारा

आलोचनात्मक दृष्टि—प्रस्तुत कविता में पन्त जी संध्या-कलीन ग्राम्य-वातावरंण में तारा का वर्णन करते हुए दार्शनिक सत्यों की ओर संकेत करते हैं। आरम्भ में ग्राम का सायंकालीन वातावरण सजीव हो उठा है। धीरे धीरे संध्या की स्वर्णिम-

आभा अन्धकार में विलीन हो जाती है। कवि को पश्चिमी आकाश में तारा दिखाई पड़ता है। कवि तारा को विवेक का मूर्मिमान रूप देखता है। उसे तारा में भी किसी आकांश और प्रेरणा का आभास मिलता है। कवि की विचारधारा विकसित होती चली जाती है, वह सोचता है कि प्रकृति के समस्त उपकरण किसी न किसी की इच्छा से गतिशील हो रहे हैं। कवि कुछ समय के उपरान्त सोचता है कि 'तारा' सभी बन्धनों से मुक्त है। वह मुक्तात्मा की तरह अपने स्वरूप में स्थिर है। कुछ समय के अनन्तर एकाकीपन दूर हो जाता है और समस्त आकाश असख्य तारों से भर जाता है। कवि एक तारे की तुलना आत्मदर्शन और असंख्य तारों की तुलना जगत्-दर्शन से करता है। अन्त । वह आत्म-दर्शन के स्थान पर जगत्-दर्शन को महत्व देता है और सामाजिक सम्बन्धों से अपने हृदय के व्यथा भार को हल्का करना चाहता है।

व्याख्या

नीरव संध्या………………आर पार।

शब्दार्थ—प्रशान्त=गम्भीर, शान्त। आनत=झुके हुए। निखिल=सम्पूर्ण। खग कूजन=पक्षियों के शब्द। जिह्म=टेढ़ा, कुटिल।

संदर्भ—प्रस्तुत छन्द में पन्त जी सायंकालीन ग्राम्य की नीरवता का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—चारों ओर संध्या की नीरव शांति व्यापकता से छाई हुई है। उसमें सम्पूर्ण ग्राम निमज्जित होता जा रहा है। वृक्षों के पत्ते जो मर्मर ध्वनि कर रहे थे, वे भी शांत हो गये हैं। वे झुके हुए नीरवता की साकार मूर्ति बन गये हैं। जिस प्रकार वीणा के स्वर उसी में सो जाते हैं, उसी प्रकार से मर्मर की ध्वनि भी विजन प्रान्तर पत्तों में ही सो गई है। पक्षियों की चहचहाहट भी बन्द हो गई है। गायों के आने से सन्ध्या के समय जो धूलि छा जाती है, वह भी अब नहीं रही है। ग्राम के रास्तों में भी नीरवता का प्रसार हो गया है। ग्राम का नीरव, संकीर्ण और टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग भुजंग के समान दिखाई दे रहा है। चारों ओर व्यापक शान्ति छा गई है। उनको कभी-कभी झींगुर की झंकार भंग कर देती है; परन्तु उससे सन्ध्या की शान्ति में अधिक गम्भीरता आ जाती है। इस महाशान्ति के उदार हृदय को आकाश की तीव्र धार बेध कर इस पार से उस पार जा रही है।

काव्य-सौन्दर्य

१. सान्ध्य-प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण है।

२. **अलंकार**—'नेत्रों के… …में स्वर' में दृष्टान्त, निर्जन गोपथ की समानता धूसर भुजंग के होने के कारण उपमा।

अब हुआ……………………श्यामल ।

शब्दार्थ—स्वर्णिम=सुनहरी रंग की आभा । रक्तोत्पल=लाल कमल । स्वर्ण-विहंग=सूर्य ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पँक्तियों में पन्त जी सांध्य-गगन में डूबते हुए सूर्य का आलम्बन रूप में स्वाभाविक वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—कुछ समय के अनन्तर सांध्य-गगन स्वर्णिम आभा से युक्त हो गया । संसार की समस्त वस्तुयें स्वर्णिम आभा में रंग गईं । सूर्य डूब रहा है । अन्धकार प्रसार करता हुआ बढ़ रहा है । अतः विश्व के मूर्त पदार्थ भी अब दिखाई नहीं पड़ते । लाल कमल के समान सूर्य अपनी किरणों को मूँदकर गंगा की चंचल लहरों से युक्त निर्मल जल में डूब गया । डूबते हुए सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता हुआ लाल कमल के समान लग रहा है । अब सूर्य की किरणें नहीं हैं । इसलिए उसको बन्द होता हुआ कमल कहा है । गंगा की लहरों पर डूबते हुए सूर्य की अरुणिमा स्वर्ण रेखा की तरह पड़ रही थी । वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो प्रखर शिशिर के कारण अधरों पर लालिमा छा गई हो ।

अब तक सूर्य की किरण पेड़ों के शिखिरों पर थी । अब वह अपनी किरणों को समेट कर अस्ताचल में शीघ्रता से डूबता हुआ ऐसा लग रहा है, मानों स्वर्ण-विहंग तरु शिखा से उड़कर किसी गुफा रूपी घोंसले में घुस गया हो । यह भी पता नहीं लगा कि वह किस मार्ग से उड़ गया । चारों ओर ग्राम में मौन वातावरण तथा बन में सघन अन्धकार छा गया; परन्तु उसका अंचल मृदुल और कोमल स्वप्नों से भरा हुआ था ।

काव्य-सौन्दर्य

१. सांध्य गगन में अस्त होते हुए सूर्य का स्वाभाविक वर्णन है । सूर्य डूबने का साकार चित्र-सा उपस्थित हो जाता है ।

२. **अलंकार**—'सांध्य-स्वर्णिम' में 'स' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास, 'वर्ण…… विरत' में 'व' की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास, 'चल-जल' में अनुप्रास, किरणों में रक्तोत्पल का आरोप होने से रूपक, 'मृदु-मृदु', 'नील-नील' तथा 'कोमल-कोमल' में पुनरुक्ति प्रकाश ।

पश्चिमी नभ………………से निर्धन ।

शब्दार्थ—अमन्द=स्वच्छ, कान्तिमान । मुक्तालोकित=मोती के शुभ्र आलोक से प्रकाशित ।

सन्दर्भ—सांध्य-गगन में सूर्य अस्त हो जाता है । कुछ समय के अनन्तर पश्चिम के आकाश से कवि को एक तारा दिखाई पड़ता है । वह उसे मूर्तिमान विवेक सा दिखाई पड़ता है । वह अपनी विचारधारा अभिव्यक्त करता हुआ कहता है :

व्याख्या—पश्चिम के आकाश में एक प्रकाशमान उज्ज्वल तारा निकल आया। वह अपनी अनिद्य कान्ति फैला रहा है। वह अपने अन्दर में अमरता लिए हुए ऐसी प्रतीत होती है, मानों उसके रूप में ज्योतिमान विवेक ही मूर्तिमान हो गया हो। वह न जाने अपने हृदय में कौन-सी स्वर्णाकांक्षा लिये हुए है। न जाने उसको किसका सामीप्य प्राप्त है। वह रजत सीप के समान अपना प्रकाश विकीर्ण कर रहा है।

तारा शान्त और एकाग्र हो रहा है। प्रतीत होता है कि अनिमेष नेत्रों से अपनत्व और अपनी आत्मा का अमर धन खोज रहा है। कवि की विचारधारा तारा को देखकर आगे बढ़ती है। वह सोचता है कि जिस प्रकार यह तारा अपना धन खोल रहा है, उसी प्रकार से प्रकृति के तारे किसी न किसी इच्छा से गतिशील हैं।

विशेष—पन्त जी तारा के माध्यम से मनुष्य के आतम दर्शन के रहस्य का उद्घाटन कर रहे हैं।

अलंकार—'अकलुष अनिद्य' में अ' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा।

आकांक्षा का ....न पार।

शब्दार्थ—अहरह = गर्जन करता हुआ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में पन्त जी तारा का वर्णन करते हुए उसे मुक्तात्मा का प्रतीक मान रहे हैं:

केन्द्रीय-भाव—प्रकृति के सारे उपकरण किसी न किसी इच्छा से गतिशील हैं; किन्तु अमन्द तारक सभी बन्धनों से परे है। वह सर्वथा मुक्त है। मुक्तात्मा की तरह वह भी अपने स्वरूप में स्थित हैं।

व्याख्या—प्रकृति के समस्त उपकरणों में आकांक्षाओं का तीव्र वेग है। वह वेक विवेक और बन्धन को स्वीकार नहीं करता। देखो, यह सागर भी चिर आकांक्षा को लिये हुए अपनी उत्ताल तरंगें उठाता हुआ गरज रहा है। इसमें निरन्तर उठती हुई लहरें इसकी आकांक्षा को अभिव्यक्त कर रही हैं। सूर्य, चन्द्र, और तारे भी आकांक्षा के बन्धन से बँधे हुए अविराम रूप से नर्तन करते रहते हैं।

हे तारक! क्या तेरे प्राण व्याकुल होकर जल रहे हैं? क्या तेरी नीरवता और एकांकीपन तेरे नेत्रों को सजल कर रहा है? वास्तविकता यह है कि एकांकी जीवन व्यर्थ और विफल है। एकांकीपन के अन्धकार का भार असहनीय है। इसके विषाद का कोई आर-पार नहीं है।

विशेष—तारा आतम-दर्शन का प्रतीक है। पन्त जी आत्मा को बन्धनों से परे मानते हैं। उनकी दृष्टि से आत्मोपलब्धि ही सब कुछ है, परन्तु सामाजिक बन्धनों में एकांकीपन व्यथा के भार के समान है।

अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, एकांकीपन में अन्धकार का आरोप होने से रूपक है।

चिर अविरल ··· ···········वह सम।

शब्दार्थ—छन्द = अभिलाषा, इच्छा। प्रसंग = अनासक्त।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में पन्त जी तारा का वर्णन करते हुए उसे मुक्तात्मा रूप में देख रहे हैं :

व्याख्या—यह अमन्द तारक समस्त बन्धनों से परे है। वह सर्वदा मुक्त है। मुक्तात्मा की तरह वह भी अपने स्वरूप में स्थित है। उसमें आकांक्षा नही है। वे अनासक्त परम हंस है। वह अनिमेषता लेकर अपने स्वरूप में लीन हो रहा है। वह दीपक की अटल शिखा के समान प्रकाशमान है। उसकी उपमा मिलना दुर्लभ है। वह आत्म-स्वरूप होकर शुक्र तारा की तरह जगत-जीवन के अन्धकार को हटा रहा है।

अलंकार—रूपक, छेकानुप्रास, उपमा।

गुञ्जित-अलि सा ······ ······ ····जग-दर्शन।

शब्दार्थ—मधुमय = मधुर सुख दायक। एकाकी = अकेला।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में पन्त जी स्पष्ट कह रहे हैं कि कुछ समय के अनन्तर आकाश तारों में भर गया और एकाकीपन दूर हो गया :

व्याख्या—कुछ समय व्यतीत होने पर आकाश का आँगन तारों से भरकर जगमगा उठा। बादल कुन्द कलियों की तरह सुशोभित हो गये। निर्जन भ्रमर के समान गुंजित हो उठा। अन्धकार भी मधुर लगने लगा। एकाकीपन की व्यथा का भार हल्का हो गया। आगे कवि कहता है कि एक तारा जहाँ आत्मदर्शन का प्रतीक है वहाँ असंख्य तारे जग-दर्शन के प्रतीक हैं।

समीक्षा—सांध्य गगन में अन्धकार छाने पर पहले एक तारा निकलता है। कुछ समय के अनन्तर समस्त आकाश तारों से जगमगा उठता है। तारों की जगमगाहट से एकाकीपन का बोझ हट जाता है। कवि की दृष्टि में यह एक तारा आत्म-दर्शन और अनेक तारे जग-दर्शन के प्रतीक हैं। मुक्त आत्मा सभी बन्धनों से दूर रहकर आत्म तत्व की प्राप्ति में ही सब कुछ समझती है, किन्तु यह भावना जग दर्शन के अनुकूल नहीं है। संसार में आकांक्षा का प्रबन्ध स्वाभाविक है। वह इसमें बँधा हुआ है। वह प्रत्येक के साथ अपनत्व की स्थापना करना चाहता है। वह सामाजिक बन्धनों में अपने को डालकर हृदय के एकांकीपन के व्यथा-भार को कम करने का अभिलाषी रहता है।

अलंकार—अन्धकार की समानता गुंजित अलि से होने के कारण उपमा, जगमग-जगमग में पुनरुक्तिप्रकाश।

भारत माता

पृष्ठभूमि—कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने जनवरी १९४८ में 'भारतमाता' शीर्षक एक कविता लिखी थी जो उनके 'ग्राम्या' नामक काव्य-संग्रह मे सग्रहीत है। कालान्तर में उन्होंने कुछ पंक्तियाँ तो उसी कविता की और शेष नई जोड़ दीं। इस कविता में भारतमाता को ग्राम्यवासिनी कहा गया है और उसके नव-निर्माण की ओर भी संकेत है, अतः इसमें भारत के विगत, वर्तमान व भविष्य की सुन्दर, पर संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत की गई है।

भारत माता ………………… प्रवासिनी !

शब्दार्थ शष्य = हरियाली, अनाज। नत = झुकी हुई।

व्याख्या—कवि कह रहा है कि हमारी भारतमाता गाँवों में निवास करने वाली है और खेतों में फैली हुए है और वह अनाज से पूर्ण जनजीवन का आँचल है तथा गंगा-यमुना का निर्मल जल पवित्र श्रम का जल है। साथ ही भारतमाता शील की साकार प्रतिमा है और सुख-दुःख में समत्व भाव से रहती है तथा उसके स्वप्न मौन हैं। कवि कहता है कि भारतमाता की चितवन छुपी हुई है, मानो कोई तपस्विनी भगवान के चरणों में नत मस्तक हो और वह दुःख के क्षण भी हँसते हुए बिता देती है तथा तप व संयम में धरती के मन की सी गम्भीरता लिए हुए है। साथ ही वह स्वर्ग की कला के समान अद्वितीय है, अर्थात् उसमें स्वर्गलोक की शोभा विद्यमान है पर वह इसी पृथ्वी पर निवास करती है।

भारतमाता की तीस करोड़ संतानें हैं लेकिन आर्थिक दशा संतोषजनक न होने से वे अन्न और वस्त्र के अभाव में पीड़ित हैं तथा अपढ़ भी हैं। इतना ही नहीं वे झाड़ फूस के मकानों में रहते हैं और गाँवों में निवास करने वाली यह भारतमाता सिर झुकाए वृक्ष के नीचे निवास करती है अर्थात् बहुत से लोग इतने अधिक दरिद्र हैं कि पेड़ों की छाया में ही दिन काटते हैं। कवि का कहना है कि भारतमाता विश्व की आधुनिकतम प्रगति से अपरिचित है और अर्धसभ्य है पर उसकी जीवन-रुचि शुद्ध व परिष्कृत है, अतः प्राचीन रीति-रिवाजों रूपी राहु से ग्रसित होने पर भी वह शरत्कालीन चन्द्र की भाँति हँसी की मधुरिमा बिखेरने वाली है, अर्थात् दुःख को भी हँसते हुए झेल लेती है। कवि कह रहा है कि यद्यपि यह भारतमाता शताब्दियों से खंडहर बनी हुई है अर्थात् किसी भी प्रकार की प्रगति से वंचित है, अतः उसके निवासियों में अकर्मण्यता सी आ गई है। उसका जीवन जर्जरित हो जाने से नव-निर्माण का कार्य असम्भव जान पड़ता है। आज भगवद्गीता जैसे कर्मयोग के ग्रन्थ का सृजन करने वाली भारतमाता स्वयं हतबुद्धि है। अर्थात् वह नहीं समझ पाती कि सर्वोपरि जीवन का नव-निर्माण कैसे किया जाय ?

कवि कह रहा है कि हमारी भारतमाता पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित व कई अनेक राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत सह अस्तित्व के पांच सिद्धान्तो जिन्हें

कि पंचशील भी कहते हैं—कोमल सफल बनाने में संलग्न है और उसने विश्व-शाँति स्थापना का व्रत भी लिया है पर स्वयं उसका आँगन कई युगों से शोभा रहित है अतः वह इसी चिन्ता में निमग्न है कि इस खोए हुए ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त करने के लिए जनता कष्ट उठा रही होगी। अन्त में कवि कहता है कि इस समय भारतमाता को सुदृढ संगठन की आवश्यकता है और उसे सुन्दर शरीर ही नहीं ऐसे मन की भी आवश्यकता है जो देश के प्रति श्रद्धा व ज्ञान के प्रकाश से पूर्ण हो। साथ ही भारतमाता को ऐसे देश-प्रेमियों की भी आवश्यकता है जो अपना जीवन देश की सेवा में अर्पित कर दें और सर्वोदयकारी जीवन-निर्माण के हेतु अर्थात् परिश्रम करने को तत्पर रहें। कवि का कहना है कि यह रस विलासिनी भारत माता लोक-कलामयी है अर्थात् वह कलाओं की रसात्मकता पर बल देते हुए भी लोक-कल्याण की भावन का पूर्ण ध्यान रखती है।

तीस कोटि सुत ……………… शरदेन्दु हासिनी।

शब्दार्थ—प्रणत=नीचे झुका हुआ। निपट=पूर्ण रूप से। शरदेन्दुहासिनी =शरद के चन्द्रमा की चाँदनी।

व्याख्या—इस भारत माता के तीस करोड़ बालक आधे नंगे शरीर वाले अन्न और वस्त्र के अभाव से पीड़ित और अशिक्षित हैं। इनके घर और आँगन बाँस, फूस और सरकण्डों के बने हैं। अपनी सन्तान की यह दीन दशा देख भारत माता दुख और लज्जा से सिर झुकाए रहती है। यह वृक्ष के नीचे रहने वाली है। अर्थात् इनकी असंख्य सन्तानों के पास रहने तक के लिए घर नहीं हैं। वे वृक्षों के नीचे रहते हैं। (यहाँ कवि आजादी के बाद भी अधिकांश भारतीय जनता की दीन दशा के प्रति अपना क्षोभ प्रकट कर रहा है।)

भारतमाता के ये बालक संसार में रात-दिन होने वाली प्रगति से सर्वथा अपरिचित हैं। अर्थात् इन्हें इस बात का पता नहीं है कि संसार कितनी प्रगति कर रहा है। (इसका कारण शिक्षा का अभाव है।) ये बालक आध सभ्य अवश्य हैं, परन्तु जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण संस्कृत अर्थात् उन्नत है। परन्दे पुरानी सड़ी-गली कुरीतियों के कारण इनके विकास की गति रुक गई है। ये प्राचीनता के मोह में ग्रस्त हैं, इसलिए प्रगति नहीं कर पाते। इनकी यह दीन-मलीन दशा वैसी ही है, मानो शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा को पकड़ कर राहु ने उसकी चाँदनी को मलीन कर दिया हो। (यहाँ रूढ़ियाँ राहु की तथा चांदनी प्रगति की प्रतीक है।)

सदियों का खंडहर ……… जीवन की विकासिनी !

शब्दार्थ—निष्क्रिय=गतिहीन। ज्ञान मूढ़=ज्ञान से वंचित। रत=निमग्न। श्रीहत=शोभाहीन। उद्यत=खड़े।

व्याख्या—इसका मन सदियों पुराने खण्डहर के समान गतिहीन और

निष्क्रिय बन गया है। अर्थात् सदियों गुलामी सहते रहने के कारण इसके जन की उमंग मारी गई है। इसी कारण यह लक्ष्यहीन व्यक्ति के समान इधर-उधर भटकती फिर रही है—कोई ठीक कार्य नहीं कर पाती। यहाँ की जनता का जीवन जर्जर हो रहा है। कवि जिज्ञासा करता है कि जब भारत की जनता ऐसी निष्क्रिय और लक्ष्यहीन बनकर भटक रही हो उसी स्थिति में नई धरती की रचना कैसे हो सकती है? अर्थात् यहाँ की जनता अपनी निष्क्रियता त्याग नए जीवन का कैसे निर्माण कर सकती है। सारे जगत् को गीता के कर्मयोग का ज्ञान प्रदान करने वाली भारत माता आज किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बनी हुई है। उसे ज्ञान नहीं कि आगे कैसा विकास करे।

यह एक ओर तो पंचशील के सिद्धान्तों के प्रतिपूर्ण रूप से अनुरक्त है, इसके विश्व-शान्ति का व्रत तो रखा है, परन्तु दूसरी तरफ स्वयं इसके घर आँगन शोभाहीन पड़े हुए हैं। (यहाँ कवि भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के विश्व शान्ति और पंचशील सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय अनेक प्रयत्नों पर व्यंग्य कर रहा है। इसका अभिप्राय यह है कि हमारे नेता अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर अधिक बल देते हैं, जबकि देश में अन्न-वस्त्र का अभाव है और अनेक भयंकर समस्यायें जन-जीवन को दुखी बनाए हुए हैं) इसी कारण भारतमाता जो सारे संसार की जीवन का निवास करने का सन्देश दे रही है, आज स्वयं दीन स्थिति को देख चिन्ता में डूबी हुई है।

उसे चाहिए ....रस विलासिनी।

सन्दर्भ—भारत की यह स्थिति कैसे सुधरे, इसके लिए कवि सुझाव दे रहा है:

व्याख्या—इसके लिए जनता में परस्पर लोहे के समान दृढ़ संगठन होना चाहिए। प्रत्येक भारतवासी का शरीर स्वस्थ और सुन्दर हो तथा हरेक के हृदय में अपने देश के प्रति अटूट श्रद्धा हो। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के मन में इस सांसारिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए अथक परिश्रम और सब कुछ न्यौछावर कर देने का दृढ़ संकल्प हो। ऐसा होने पर ही यह भारतमाता संसार को कला और आनन्द का दान देने वाली बन सकेगी। अथवा ऐसा होने पर ही भारतवासी कला और जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

अन्य विशेषताएँ—कवि ने भारत भूमि का चित्रण माता के रूप में कर यह स्पष्ट करना चाहा है कि वह माता की भाँति पालक व रक्षक है और चूंकि भारतवर्ष की अधिकांश जन-संख्या गाँवों में ही निवास करती है, अतः भारतमाता को ग्राम-वासिनी कहा गया है। साथ ही कवि ने अपनी युक्ति में रम्य मधुर शब्द-योजना के साथ चित्रात्मकता पर भी ध्यान रखा है।

अलंकार—अनुप्रास, उदाहरण और विरोधाभास।

तुलनात्मक दृष्टि— जिस प्रकार पन्त जी ने कला में लोक-कल्याण की भावना का ध्यान रखना आवश्यक कहा है, उसी प्रकार तुलसीदास ने भी कहा है :

कीरति भनित भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई ।।

संध्या के बाद

सिमटा पंख ………… गंगा जल।

शब्दार्थ—ताम्रपर्ण पीतल = संध्या के समय का अस्ताचल में डूबता हुआ सूर्य। शतमुख = सैकड़ों मुख वाले होकर। ओझल = अदृश्य। विश्लथ = शिथिल, उभरी हुई।

सन्दर्भ—इस छन्द में पन्तजी ने डूबते हुए सूर्य के समय के दृश्य का वर्णन किया है :

व्याख्या—संध्या की लालिमा अपने पंखों को समेटकर अब वृक्षों के शिखरों के ऊपर जा बैठी। सूय तांबे के पर्ण और पीतल के समान हो रहा है। उससे पृथ्वी के ऊपर जो स्वर्णिम प्रकाश आता है, वह ऐसा लगता है मानों शतमुख होकर चंचल स्वर्णिम ज्योति के झरन झड़ रहे हो। डूबते हुए सूर्य का सरिता में पड़ता हुआ प्रकाश ऐसा लग रहा है, मानो पृथ्वी मे ज्योति-स्तम्भ ही धँस रहा हो। सूर्य क्षितिज पर ओझल हो रहा है। उसका प्रकाश पड़ने से गगा-जल वृहत विकराल जिह्वा निकाले हुए केचुली को शिथिल किये सर्प के समान गंगा-जल चितकबरा लगता है।

विशेष—१. संध्या के समय डूबते हुए सूर्य का यथार्थ चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है।

२. भाव-साम्य।

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल-बल्लभ की प्रभा।
अचल के शिखरों पर जा चढ़ी,
किरण-पादप-शीश विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला,
गंगा-मण्डल-मध्य शनैः शनैः।

अलंकार—(क) डूबते हुए सूर्य का मानवीकरण है।
(ख) 'ताम्रपूर्ण निर्झर' में उपमा।
(ग) सम्पूर्ण छन्द में उपमा है। डूबते सूर्य में गंगा जल में केंचुल छोड़ता हुआ सर्प कहने में सुन्दर उपमान योजना है।

धूप-छांह ……………… लवोपल।

शब्दार्थ—अनिल = पवन। उर्मियों = लहरों। संपर्कित = सम्पर्क पाकर,

स्पर्श पाकर। लोड़ित=ऊपर ऊपर-नीचे उठती है। सिकता=नदी का रेत। सलिल=जल। समीर=पवन।

व्याख्या—अस्ताचल में डूबते हुए सूर्य की प्रभा से गंगा की रेती धूप-छाँह के रंग की हो जाती है। उसको जब हवा की लहरें स्पर्श करती हैं, तब नीली लहरों का आलोड़न-विलोड़न होने लगता है। इस समय गंगा का पीला जल रजत जलद से बिम्बित हो उठता है। उसको रेती, जल, पवन सदैव स्नेह के उज्ज्वल पाश में बाँधे हुए है। गंगा का नीला जल ऐसा लगता है, मानों पवन भी पिघल कर जल बन गया हो और जल ही अपनी द्रवता खो कर स्वर्ण-पटल बन गया हो।

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक।

शंख घंट ……………… रोदन।

शब्दार्थ—नीराजना=आरती, पूजा।

व्याख्या—सूर्यास्त पर संध्या होने के पश्चात् पन्तजी गंगा के तट के दृश्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उधर मन्दिर में शंख और घन्टे बजते हैं और इधर गंगा की लहरों में लय-कम्पन होता है। नीले आकाश दीप-शिखा के समान जलता हुआ चन्द्रमा रूपी कलश उठकर नीराजना करता है। गंगा के किनारे पर बगुलों के समान वृद्धाएँ बैठी हुई हैं। वे जल की ओर देखती हुई ध्यान में मग्न है। गंगा की मंथर गति से बहती हुई धारा में जिनके हृदय का रोदन प्रवाहित होता है।

अलंकार—(क) 'दीपशिखा सा……कलश' में उपमा।
(ख) 'बगुलों सी वृद्धाएँ' में उपमा।

दूर तमस ………………… कंठों का स्वर।

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार। मुखरित=शब्दायमान।

व्याख्या—कुछ दूरी पर अन्धकार की रेखाओं के समान अपने उड़ते हुए भावों की गति चित्रित करती हुई सोन-पक्षियों की पँक्तियाँ उड़ती हैं, जो अपनी आर्द्र ध्वनि से नीरव आकाश को शब्दायमान कर देती हैं। गोधूलि स्वर्ण-चूर्ण के समान उड़ रही है। वह किरणों का बादल-सा बन जाती है। उससे छनकर प्रकाशवान पक्षियों का स्वर सनसनाते हुए तीर के समान निकल जाता है।

अलंकार—उपमा।

लौटे खग ……………… अगोचर।

शब्दार्थ—श्रांत=थके हुए। श्लथ=शिथिल। अगोचर=अदृश्य।

व्याख्या—संध्या हो गई। पक्षी अपने घोंसलों को लौट आये। गाएँ घर लौट आयीं। सब थके हुए और शिथिल कृषक लम्बे डग भरते हुए घर को लौट आये। चराचर म्लान होकर अपने घरों में आकर छिप गये। छाया भी अदृश्य हो गई।

दो लड़के

मेरे आँगन…… ………मांसल।

सन्दर्भ—कवि ने प्रस्तुत कविता में अपने आँगन में खेलने के लिये आने वाले दो बहुत फुर्तीले पर मैले-कुचैले पासी के लड़कों का वर्णन किया है :

व्याख्या— कवि कहता है कि उसके आँगन में दो छोटे-से लड़के अक्सर खेलने आया करते हैं जिनके तन पर वस्त्र नहीं हैं लेकिन वे हृष्ट-पुष्ट, श्याम-वर्ण और सुन्दर अवश्य हैं तथा उन्हें देखने से ऐसा भास होता है कि वे बड़े ही प्रसन्नचित रहते हैं। वे मैले-कुचैले रहते हुए भी बड़े फुर्तीले हैं और शीघ्रता से टीले के नीचे उतर, इधर-उधर घूम, कूड़े-कर्कट के मध्य अपने कार्य की चीजें—सिगरेट के खाली डिब्बे, चमकीली पन्नी, कीलों के टुकड़े, मासिक पत्रों के कवर की नीली-पीली तस्वीरें आदि—लेकर बन्दर की भाँति अकृत्रिम हार्दिक प्रसन्नता से किलकारी भरते हैं तथा दौड़कर आँगन को पार करते हुए आँखों से ओझल हो जाते हैं। कवि कहता है कि उनकी अवस्था छः-सात वर्ष की है।

केन्द्रीय-भाव—कवि ने दो लड़कों के आने, कूड़े से चीजें बीनकर चले जाने का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

विशेष—भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। वर्णनात्मक शैली में यथार्थवादी संकेत है।

सुन्दर……………दुर्बलतर !

शब्दार्थ—अस्थि=हड्डी। अधिवास=निवास-स्थान। अनश्वर=अमर।

संदर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री सुमित्रानन्दन पन्त की प्रगतिवादी कविता 'दो लड़के' से उद्धृत हैं। कवि ने इसमें दो गरीब लड़कों के चित्रण के माध्यम से मानवता का उपदेश दिया है :

व्याख्या—कवि कहता है कि उन लड़कों की देह सुन्दर लगती है और मेरे नेत्रों और मन को मोह लेती है। मनुष्य होने के कारण मेरे मन में उनके लिए सहज रूप से अपनापन उभरता है। ये बालक पासी जाति के मानवों के ही बालक हैं। उनके रोम-रोम में मानवपन है।

कवि कहता है कि हड्डी और मांस से बने हुए जीवों के लिए यह संसार है। सूक्ष्म और अमर आत्मा के लिये यह संसार नहीं है। नष्ट होने वाले रक्त और मांस पर आत्मा को न्यौछावर किया जा सकता है क्योंकि संसार उन्हीं का है जो सबसे कमजोर है।

केन्द्रीय-भाव—कवि को वे बालक मानव होने के कारण पसन्द आते हैं। उसे संसार इन्हीं का लगता है क्योंकि संसार में दुर्बल अधिक हैं और उन्हीं के लिए सभी कुछ किया जाना चाहिए। अमर आत्मा के लिए यह संसार नहीं।

विशेष—भाषा सरल और प्रवाहवान है।

वह्नि………………घरा पर। (Imp.)

शब्दार्थ—वह्नि=आग। उलका=तारा विशेष जिसका उदय विध्वंसक होता है। कलेवर=करीर। भंगुर=नष्ट होने वाली। लोकोत्तर=अलौकिक। प्रासाद=महल।

सन्दर्भ—प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री सुमित्रानन्दत पन्त की कविता 'दो लड़के' से उद्घृत हैं। कवि ने इस कविता में दो गरीब लड़कों के अपने घर आने का चित्रण किया है और तत्पश्चात् मानवता का सन्देश दिया है :

व्याख्या—कवि कहता है कि इस पृथ्वी पर आग, बाढ़ और उल्कापात होता है, आँधी आती है, ऐसी परिस्थिति में कोमल शरीर वाला मनुष्य इस जीवन नष्ट होने वाला क्षणभंगुर है। तब यहाँ रहने के लिए मनुष्य को मनुष्योचित के उचित साधन चाहिए।

कवि कहता है कि जब मानवों को साधनों की आवश्यकता है, तो सभी को मिलकर अलौकिक मानवता का निर्माण करना चाहिये। इससे पृथ्वी पर मनुष्य गौरव से रह सकेगा और मानव साम्राज्य मानवता के लिए होगा।

कवि नव मानवता को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि क्षण-भंगुर शरीर जहाँ सुरक्षित रह सके, मनुष्य की इच्छाएँ पूरी हो सकें और मनुष्य प्रेम से रह सके वहीं मनुष्य ईश्वर के समान बन जायगा और वहीं स्वर्ग होगा।

केन्द्रीय-भाव—कवि कहता है कि पृथ्वी पर नष्ट करने वाली अनेक शक्तियाँ हैं और मानव शरीर क्षणभंगुर है। तब हमें मिलकर जीवन व्यतीत करना चाहिए और सभी की मानवोचित साधन उपलब्ध कराने चाहिए।

विशेष—कवि का मानवतावादी और मानव कल्याण का दृष्टिकोण स्पष्ट है।

सोनजुही

सोनजुही की बेल……………… … मुसकाई।

शब्दार्थ—दारु=लकड़ी। भुजगी=सर्पिणी।

सन्दर्भ—'सोनजुही' शीर्षक लम्बी कविता की इन पंक्तियों में पन्त जी ने गृह के आँगन में पल्लवित सोनजुही लता के सहज सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या—आँगन में पल्लवित सोनजुही की बेल नवेली सुषमा से युक्त है। यह एक ऐसी वनस्पति है, जो वर्ष भर खेलती, फूलती और पल्लवित रहती है। यह लकड़ी के खम्बे में गलबाहीं डालकर लिपटी हुई आँगन के बाड़े पर कढ़ गई है। वह भवन के कंगूरे पर जैसे कुहनी टेके हुए मुस्करा रही हो।

सोनजुही की बेल दुबली-पतली है उसकी लम्बाई लावण्यपूर्ण है। वह अपने सहज रूप में प्रेम की डोर ही लगती है। उसके फूले हुए गुच्छे के रूप में उसकी अंग-अंग की गोलाई और निखरे हुए अंगों का गोरापन प्रकट हो रहा है। इस सर्पिणी को अपार शोभा का यह सारा भंडार कहाँ मिल गया है।

सोनजुही सुगन्धि के पलने में झूलती हुई अपनी मौन मधुरिमा में भूली रहती है। यह सोनजुही ममता की मधुर लता बनकर मन के आँगन में छा गई है। सोनजुही की लचीली बेल अब पहली बार मुस्करा रही है।

अलंकार—१. मानवीकरण—दारु खंभ से गलबाहीं देना, कुहनी टेकना, मुस्कराना आदि मानवी क्रियाएँ हैं।

२. 'वर्ष-हर्ष', 'खेली-फूली फैली' में अनुप्रास और शब्द-मैत्री।

३. 'लोनी लम्बाई' में 'ल' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

४. सोनजुही में 'भुजंगी', 'सौरभ' में 'पालने', 'मन' में 'आँगन' का आरोप होने से रूपक।

एक टाँग पर ……………… अधर पर।

शब्दार्थ—उचककर=थोड़ा ऊपर उठकर। मांसल=पुष्ट। अंबर=आकाश। अधर=बीच में। सधी=रुकी हुई।

सन्दर्भ—'सोनजुही' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में पन्त जी ने सोनजुही लता की आकर्षक मुद्राओं का वर्णन किया है :

व्याख्या—सोनजुही की लता एक टाँग से उचककर खड़ी हुई अपनी मुग्धा वय से अधिक बड़ी लगती है। वह अपना पैर उठाकर अपनी कृश पिंडुली पर रख लेते हैं और घुटना मोड़कर त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हुई अति शोभा देती है। पल्लवों से भरी हुई होने के कारण इस कृशांगी की देह पुष्ठ लगती है। यह धूप-छाँह का अंचल खिसकाती हुई शोभा देती है।

सोनजुही पवन में सीप के समान अपने पंख खोलकर आँगन में वन की परी बनकर छा जाती है। यह अँगूठे के बल पर खडी होकर आकाश छूने को उठती सी दिखाई पड़ती है। सोनजुही की हठीली बेल लटकी हुई अधर में सधी हुई है।

काव्य-सौन्दर्य—१. कवि ने सोनजुही का मानवीकरण किया है। 'एक टाँग पर उचककर जड़ा होना', 'घुटना मोड़ना', 'अँगूठे के बल पर ऊपर उठना' आदि मानवीय क्रियाएँ हैं।

२. अलंकार—(१) समस्त पंक्तियों में मानवीकरण (सोनजुही मुग्धा नायिका है।)
(२) 'धूप छाँह का आँचल' में रूपक।
(३) 'पंख सीप से खोल पवन मैं' में उपमा।

झालरदार गरारा ……………… भू-जीवन।

शब्दार्थ—गरारा=लहँगा। भंगिमा=घुमाव और लहरें। छरहरी=इकहरे शरीर की। उद्भिज=वनस्पति।

सन्दर्भ—पन्त जी सोनजुही का वर्णन मुग्धा के रूप में करते हुए उसे भू-जीवन को विकास पथ पर लाने वाला कहते हैं :

व्याख्या—सोनजुही मुग्धा नायिका है, वह झालरदार लहँगा पर स्वर्णिम कलियों के गहने सजे हुए हैं। पुष्पों के रूप में उसके ऊपर बूटे कढ़ी हुई चुनरी फहरा रही है। वह साक्षात् शोभा की लहर के रूप में लहरा रही है। वह साँवली तारों की सी छाया है। वह अपने सौन्दर्य एवं यौवन में इतनी बावली बनी हुई है कि पृथ्वी के ऊपर सीधे पैर नहीं रखती। वह एकहरे बदन की है। उसका शरीर भंगिमा से युक्त है। वह कोमलता के भार से भरी हुई है। वह वनस्पति जगत के झरने के समान प्रवाहित हो रही है। वह हरित नीर बढ़ाती हुई टहनी-सी लगती है। सोनजुही की लता हिरनी के समान चौकड़ी भरती है।

वह आकांक्षा बनकर हृदय से लिपटी रहती है और प्राणों के रजतम पर सदैव चिपटी रहती है। वह पृथ्वी के यौवन की अँगड़ाई के समान है। वह मधुमय स्वप्नों की परछाईं है। वह रीढ़-स्तम्भ का अवलम्बन लेकर पृथ्वी की चेतना को ऊपर उठाती है और पृथ्वी के जीवन को विकास के पथ पर ले आती है।

काव्य-सौन्दर्य—१. सोनजुही को मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित करके उसका मानवीकरण किया गया है।

२. **अलंकार**—(१) 'बूटे कढ़े चूनरी फहरा' में रूपक।
(२) 'शोभा की लहरी से लहरा' में उपमा।
(३) 'तारों की सी छाँह साँवली' में उपमा।
(४) उद्भिज ……हिरनी' में उपमा।
(५) 'आकांक्षा सी …… चिपटी' में उपमा।
(६) 'भू-यौवन ……परछाईं' में उपमा।

सोनजुही की बेल…………सुवास को।

शब्दार्थ—भुज वृन्त=भुजा रूपी वृक्ष।

सन्दर्भ—यहाँ पन्त जी दार्शनिक हो जाते हैं और सोनजुही की अन्तर्मुखी सुवास का प्रसार पृथ्वी और आकाश में होते हुए देखते हैं :

व्याख्या—सोनजुही की बेल गंध बनकर उड़ी और उसने आकाश का मन भर दिया। पृथ्वी के भीतर जो मूल स्थूलता और अचेतना की अँधियारी भरी हुई थी, उसे खींच लिया और उसे अपने हृदय में स्थान देकर शान्तिध्वजा के समान मणि-सुमन बना दिया। भाव यह है कि सोनजुही पृथ्वी के भीतर से जड़ एवं अचेतन तत्व खींचकर अपना पोषण' करती है, जिसके परिणाम स्वरूप उसमें पुष्प खिलते हैं।

सोनजुही अपने इह शुभ्र मणि-सुमनों को अपनी काँपती हुई लता की भुजाओं की हथेलियों पर रखकर प्रकाश को अर्पित करती है। मानों पुष्पों के रूप में वह अपने अधरों के अमृत-हास एवं प्राणों के स्वर्णिम हुलास को ही अर्पित कर रही हो। इस प्रकार सोनजुही की लता अपने अन्तर्मुख विकास एवं सुवास को समर्पित करती है।

अलंकार—१. मानवीकरण ।
२. 'शान्ति-ध्वजा सा' में उपमा ।
३. 'मणि-सुमन' में रूपक ।
४. 'भुज वृन्त' में रूपक ।
५. अन्तिम पंक्तियों में उत्प्रेक्षा है ।

मानव-मन ……………… लथपथ ।

शब्दार्थ—इति अथ=आदि से अन्त तक। श्लथ=थका हुआ। कर्दम=कीचड़ ।

सन्दर्भ—'सोनजुही' शीर्षक कविता के अन्त में पन्त जी मानव की सद्वृत्तियों के विकास की शिक्षा देते हैं :

व्याख्या—हे सोनजुही ! मानव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। वह सोनजुही से नई शिक्षा ग्रहण कर अपने हृदय के अंग राग को निकाल दे। उसके प्राणों की हरिताभ अग्नि से चेतन की शुभ्र शिखा फूट पड़े। वह मानवता का पथ प्रदर्शन करे, जिससे मानवता का रथ आगे बढ़े। संसार में आदि से लेकर अन्त तक प्रेम का प्रसार हो जाय। मनुष्य स्वार्थ-भावना को त्याग दें। संघर्षों से थका हुआ तथा संसार के कीचड़ में फँसा हुआ मनुष्य सोनजुही को पृष्टान्त रूप में ग्रहण करे ।

विशेष—सोनजुही मानव को प्रेरणामय रूप में उपस्थित है ।

आः धरती कितना देती है

परिचय—प्रस्तुत कविता प्रतीकात्मक है। इसमें कवि ने बचपन की एक घटना का उल्लेख किया है। उसने धरती में रुपये पैसे बोये थे, परन्तु वे नहीं उगे। पचास वर्ष के बाद उसने सेम के बीज बोये, तो इतने उगे कि उनकी कलियों की कोई थाह नहीं रही। कवि इस कविता के द्वारा संदेश देता है कि यदि मनुष्य पृथ्वी का ठीक से उपयोग करे तो, वह बहुत कुछ दे सकती है। मनुष्य को चाहिए कि वह निजी स्वार्थ छोड़ कर मानवता के हित-चिन्तन को उद्देश्य बनाये ।

मैंने ………………… सेठ बनूंगा ।

शब्दार्थ—कलदार=रुपया ।

व्याख्या—अपने बचपन की एक नादानी पूर्ण घटना का उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि मैंने अपनी बाल्यवस्था में अपने समस्त घर वालों से छिपाकर कुछ पैसे जमीन में बोए थे और यह सोचा था कि बन पैसों से प्यारे पेड़ उत्पन्न होंगे, फिर रुपयों की मधुर फसलें उन पर उतरेंगी और मैं उन फसलों का व्यापार करके एक मोटा सेठ बन जाऊँगा : पर कवि की वह कल्पना साकार न हो सकी, उसके पैसों में से न कल्ले फूटे, न पेड़ बने और न फसल ही उगी। कवि गरीब ही रह गया ।

पर बंजर धरती..................... सींचा था।

शब्दार्थ—बंध्या=बाँझ, जिसके सन्तान न होती हो। धूल हो गये=नष्ट हो उये। हताश=निरास। वाट-जोहता रहा=प्रतीक्षा करता रहा। अपलक=टकटकी लगाकर। पाँवड़े=किसी के मान के आने पर उसके स्वागत में वस्त्र बिछाना। अबोध=अज्ञान। ममता=मोह। तृष्णा=प्यास।

व्याख्या—कविव पन्त अपनी बाल्यावस्था की एक घटना का उल्लेख करते हुए कह रहे हैं कि मैंने जो पैसे फसल उगाने की लालसा मै बोये थे, उनमें एक भी कल्ला न फूटा, कोई पौधा नहीं बना, मैंने समझा यह धरती बंजर है। मेरे जितने सपने थे सबके सब मिट्टी बनके रह गये। मैं निराश होकर बड़े दिनों तक रास्ता देखता रहा। अपने बचपन की नादामियों के पलक पाँवड़े बिछाकर मैं उन पैसों की फसल का इन्तजार करता रहा, पर वहाँ एक भी पौधा नहीं उगा। मैं तो लोगों की फसल उगाने की बात सुनकर इस परिणाम पर पहुँचा था कि पैधों की भी फसल उगेगी। पर यह मेरी बचपन की कल्पना मात्र थी, उसमें कोई अनुभव का आधार तो था नहीं। जब बीज ही गलत बोया जायगा तो फसल कैसे उग सकती थी। असल में पैसे नहीं बोये गये थे, बल्कि वहाँ स्वार्थ बोया गया था और उन्हें तृष्णा-माया के पानी से सींचा गया था। फिर पृथ्वी में से कल्ले निकलने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यहाँ कवि का यह भी संकेत है कि गलत काम का कभी भी शुभ परिणाम नहीं होता। किसी भी काम से शुभ परिणाम प्राप्त करने के लिए यह बड़ा आवश्यक है, कि पहले उसके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की जाय, उसके परिणाम को मालूम किया जाय, उसके बाद उसके ऊपर कदम उठाया जाय। अज्ञानता में किया गया कोई काम कभी भी फलदायक नहीं होता।

अर्धशती..................... बाँध दिये हों।

शब्दार्थ—अर्धशती=आधी शताब्दी, ५० वर्ष। हहराती=शोर करतीं। ऊदी=एक रंग का नाम। लालसा=इच्छा। अंचल=गोदी में।

व्याख्या—कवि कहता है कि मेरे उस नादानी के खेल को बीते ४० वर्ष हो गये। तब से न जाने कितनी बसन्त ऋतुएँ, कितने पतझर अनजान में ही बीत गये। गरमी अपनी पूरी प्रचण्डता के साथ तपी, वर्षा ने अपनी अनोखी शोभा का प्रदर्शन किया। शरद ऋतु ने मोहक चाँदनी बिखेरी। सी-सी कराता अर्थात् दाँत कट कटाने वाला जाड़ा पड़ा। वृक्षों पर पतझड़ छाया, फिर बसन्त ने आकर उस पतझड़ का सूनापन जीत लिया अर्थात् सारे के सारे वन हरे-भरे हो गये, उनमें नवीन कोपलें फूट निकालीं। कवि कहता है कि एक गहरी इच्छा से डूबकर घने काले बादलों की घटा घिरकर फिर पृथ्वी पर बरसने लगी। अर्थात् उस बाल्यावस्था की घटना के बाद ५० वर्ष तक ऋतुओं का क्रम चलता रहा। कवि ने जीवन-चक्र में उन पर कोई ध्यान नहीं दिया। एक दिन कवि ने अनायास ही बिना किसी कामना के यों ही खेल में अपने आँगन के एक कोने मे जमीन को उंगली से कुरेद कर सेम के बीज मिट्टी

ने नीचे दबा दिए। कवि का सेम के बीज मिट्टी में दबाना मानों पृथ्वी के अंचन में हीरे जवाहरातों का टाँक देना था।

विशेष—पैसे जो सेठ बनने की कल्पना से बोये थे, वे तो उगे नहीं, पर सेम के बीज जो केवल मनोरंजन के लिए यों ही बो दिए थे, वे हीरे जवाहरातों के समान मुल्यवान सिद्ध हुए अर्थात् सेम की फलियों को कवि के परिवार ने तो पेट भर खाया ही, मुहल्ले-पड़ोस में भी खूब जी भर कर बाँटा। भेंट देने का मन में बड़ा सन्तोष रहा।

मैं फिर भूल गया··················बच्चों से।

शब्दार्थ—सहसा=यकायक, अचानक। हर्ष-विमूढ़=आनन्द से पागल। विस्मय=आश्चर्य, ताज्जुब। नवागत=नये आये हुए। उल्लास=प्रसन्नता, खुशी। उत्सुक=लालायित। डिम्ब=अण्डे।

व्याख्या—कवि कहता है कि वह अपने आँगन में बीज बो देने की बात को बिल्कुल ही भूल गया, क्योंकि उसने उन बीजों को किसी कामना से याद रखने के लिए तो बोया नहीं था, उन्हें तो वैसे ही अपनी खेल की वृति से बो दिया था। लेकिन एक दिन सन्ध्या को कवि आँगन में ही चला गया, जब वह निरुद्देश्व टहल रहा था तब अचानक उसने देखा कि आँगन के कौने में कई नये आए मेहमान छाता सा लगाये खड़े हैं। उन अतिथियों को देखकर कवि का मन प्रसन्नता और आनन्द से भर उठा। वह खुशी से पागल हो उठा। उसने देखा कि, उसके बोये सेम के बीजों में नई-नई छतरियाँ सी निकल आई हैं। कवि कहता है कि उन अंकुरों को वह जोवन की विजय-पताका क्यों न माने। कवि उन्हें नन्हीं-नन्हीं कोमल हथेलियाँ भी मानता है, जिन्हें वे अंकुर रूपी बालक प्रसन्नता से आँगन में फैलाए खड़े हुए थे। कवि कहता है कि जो भी हो, पर इतना अवश्य था कि वे अंकुर रूप बालक प्रसन्नता से भरे दिखाई पड़ते थे। ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वे पंख फैलाकर आकाश में उड़ जाना चाहते हैं। वे अण्डे तोड़ कर निकले हुए चिड़ियों के बच्चों से मालूम पड़ते थे।

विशेष—कवि का मन उन अंकुरों को देखकर इतनी प्रसन्नता से भर गया है कि, वह उन सेम के अंकुरों को अनेक रूपों में देख रहा है, कभी उन्हें छाते के रूप में देखता है, तो कभी उसको जीवन की विजय-पताका मानता है, तो कभी उसके रूप में इन्हीं हथेलियाँ मानता है, तो साथ ही वे किल्ले उसे चिड़ियों के बच्चों से दिखाई पड़ते हैं। यह मन की प्रसन्नता है, जो इतने रूपों में फूट पड़ी है।

निर्निमेष ················ बढ़ती जाती है।

शब्दार्थ—निर्निमेष=टकटकी लगाकर देखना। सहसा=अचानक। नाटे=**छोटे-छोटे।**

व्याख्या—कवि कहता है कि मैं उन उगते हुए नये अंकुरों को टकटकी लगाकर बड़ी देर तक देखता रहा। अचानक कवि को कुछ दिन पूर्व अपने आप आंगन में बीज बोने की बात याद हो आई। उन्हीं बोये हुए बीजों से यह नन्हीं फौज तैयार खड़ी हो गई थी और अब गर्व से सिर ताने खड़ी थी। वह अपने छोटे-छोटे पैरों को पटकती हुई परेड सी करती आगे बढ़ रही थी। अर्थात् पौधे अबोध गति से बढ़ रहे थे। जीवन जो एक बार जड़ जमा चुका था, अब झुकना नहीं चहता था। वह आगे बढ़कर कुछ करके फल दिखाना चाहता था।

तब से उनको .... कैसे बढ़ता है।

शब्दार्थ—अवाक् = मौन, शान्त।

व्याख्या—कवि कहता है कि, उस दिन के बाद से मैं उन कल्लों की बराबर प्रतिदिन देखता रहा। वे कल्ले अब झाड़ियों का रूप धारण कर चुके थे, उनमें अनगिनत पत्तियाँ निकल आई थीं। वे ऊपर चढ़ने लगी। ऐसा मालूम पड़ता था, मानों हरियाली के झरने जमीन फोड़कर निकल पड़े हैं और वे ऊपर को ही बढ़ते जाते हैं। मैं (कवि) इस बात से बड़ा आश्चर्यान्वित था किसी भी वस्तु के वंश की वृद्धि कैसे होती है?

विशेष—कवि अपने आश्चर्य को व्यक्त करके यह सिद्ध करना चाहता है कि इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु जो इस संसार में जन्म लेती है अवाध गति से आगे बढ़ना चाहती है। जीवन किसी भी बन्धन को स्वीकार नहीं करता, वह कितनी ही कठिनाइयों में भी बाधाओं से लड़कर आगे और आगे बढ़ना चाहता है।

छोटे तारों से .... बूँटों से।

शब्दार्थ—श्यामल लतरों पर = हरी-भरी बेलों पर। मावस = अमाबस।

व्याख्या—सेम की इन हरी-भरी बेल पर खिले हुए फल आकाश-मण्डल पर बिखरे चमकते हुए तारों से मालूम पड़ते थे। वे ऐसे मालूम पड़ते ये मानो लताओं रूपी लहरों पर झाग रूपी छींटे चमक रहे हों। वे उन हरी-भरी बेलों पर लगे असंख्य फूल अमावस्या की रात में खिले हुए असंख्य तारे से दिख रहे थे। लताएँ मानो किसी नायिका की लहराती हुई चोटियाँ थीं, जिनमें मोती की झालर लगी हुई हो। कवि उन बेलों को किसी नायिका का बेल-बूटे से कढ़ा हुआ आँचल मानता है।

विशेष—वस छन्द में कवि 'मालोपमा' का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। एक ही उपमेय के लिए जहाँ उपमानों की पंक्ति सी उपस्थित की गई हो, उसे 'मालोपमा' कहते हैं।

ओह समय .... प्यारी फलियां।

शब्दार्थ—अभ्यागत = अतिथि, मेहमान। कचपचिया = अन्धाधुन्ध उगे हुए।

व्याख्या—सेम की फलियाँ जो कि कवि के बोए हुए उन पौधों पर असंख्य

रूप से उत्पन्न हुई थीं, का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि, समय आने पर जबकि पौधे फलियाँ देने लायक हुए तो उनमें कितनी फलियाँ फूटीं, यह कहा नहीं जा सकता, न उनको गिना जा सकता था न उनके प्यारे रूप का वर्णन किया जा सकता था। इन अनगिनत फलियों में कोई पतली थी, तो कोई काफी चौड़ी। कोई-कोई अँगुलियों की भाँति लम्बी तथा छोटी-छोटी थीं। कभी उनके टेढ़े रूप के लिए कवि के मन में तलवार सी उपमा आती है। कभी वह उन्हें हरे रंग के रत्न, पन्ना के बने हुए हारों के रूप में देखता है। कवि अपने पाठकों से कहता है कि आप असत्य न मानें, वे सेम की असंख्य फलियाँ चन्द्रमा की कला की भाँति बढ़ रही थीं। सच्चे मोतियों की भाँति वे ढेर की संख्या में खिल रही थीं। वे आकाश में टिमटिमाते सितारों की भाँति झुण्ड की झुण्ड चमक रही थीं। कवि आश्चर्यान्वित होकर कहता है कि अहा ! इतनी फलियाँ उगीं कि जाड़ों भर खायीं फिर भी वे समाप्त नहीं हुईं। कवि के घर में ही नहीं सवेरे शाम पास-पड़ौस के घरों में भी वे पकाई गयीं। जिन लोगों से जाने पहचान थी उनके घरों में तो खास-तौर से भेजी ही गयीं, जिनसे कोई परिचय नहीं था, उनके घरों में भेजकर भी उनसे परिचय पाने का लाभ उठाया गया। उन फलियों के सहारे अपरिचितों से नवीन परिचय जोड़ा गया। भाई-बान्धवों ने, कुटुम्बियों ने, मित्रों ने, अतिथियों ने, माँगने वालों ने यहाँ तक कि मुहल्ले के सभी घरों में उन फलियों का जी भर के साग पकाया गया। वे फलियाँ कितनी प्यारी और कितनी अधिक थीं कि उनके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता।

विशेष—इस छन्द में भी उपरोक्त छन्द की भाँति 'मालोपमा' अलंकार है। **'ओह'** शब्द से कवि के हृदय में उन फलियों को देखकर समाई हुई प्रसन्नता फूटी पड़ती है।

यह धरती कितना………………पैसे बोकर।

शब्दार्थ—महत्व=बड़प्पन, मूल्य।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि पृथ्वी माता की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है कि आह ! धरती माता अपनी प्रिय सन्तान को कितना देती है उसकी ममता और प्यार का अन्दाज लगाना नितान्त असम्भव ही है। एक चीज के बदले में उतना धान्य वह देती है, जिसकी कल्पना करना ही मानव को अतीव सुख से भर देता है। कवि कहता है कि वह बचपन में स्वार्थवश पैसों को बोकर और उनसे कोई फसल उगो न देखकर अपनी अज्ञानता के कारण पृथ्वी माता के महत्व और ममता का मूल्यांकन नहीं कर पाया था।

रत्न प्रसविनी ……………… वैसे ही पायेंगे।

शब्दार्थ—रत्न प्रसविनी=रत्न उत्पन्न करने वाली। वसुधा=पृथ्वी। समता=बराबरी। क्षमता=शक्ति। ममता=प्यार।

व्याख्या—कवि कहता है कि अपनी बाल्यावस्था की नादानी आज अपनी प्रौढ़ावस्था में मेरी समझ में आ गई है। आज में समझ गया हूँ कि स्वार्थवश बोए गई धातु के सिक्के फसल नहीं उगाते। पृथ्वी तो रत्न उगाने वाली माता है, उसमें ममता के दाने बोने हैं। पृथ्वी में जनता जनार्दन की सहन शक्ति और सामर्थ्य के दाने बोने पड़ेंगे। इस पृथ्वी के रत्न गर्भा आँचल में मानव के प्यार के बीज बोने पड़ेंगे, जिससे यह मिट्टी सुनहली फसलें उत्पन्न कर सके। मनुष्यता के श्रम से फिर यह दिशाएँ हँस सकें। हम जैसा बोयेंगे वैसा ही काटेंगे। यदि हम पृथ्वी में अपने अन्तस की घृणा, वैमनस्य, द्वेष, अनाचार, अत्याचार बोयेंगे तो हमें इसी की फसल काटनी पड़ेगी और अगर हम अपनी इन सर्वनाशी भावनाओं को त्यागकर प्यार, ममता, बराबरी, सहयोग और सहृदयता की खेती करेंगे तो हमारी धरती माता हमारे श्रम से उर्वरा बनकर हमें सुनहली फसल प्रदान करेगी, हमारा घर धन-धान्य से भर उठेगा। अगर मानव समता और ममता के मार्ग पर अग्रसर होगा तो उसे जीवन में सुख-शान्ति की प्राप्ति हो सकेगी, वह सहयोग की भावना से उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा।

विशेष—कवि कहता है कि पैसे की सार्थकता तभी है, जबकि उससे उत्पन्न सुख और आनन्द का समान वितरण और उपभोग हो।

व्याख्या (महादेवी)

१. निशा को धो देता राकेश

गीत की पृष्ठभूमि—महादेवी जी का यह गीत 'नीहार' काव्य-संग्रह का है। 'नीहार' में उनकी सन् ११२४ से १९२९ तक रचनाएँ संग्रहीत हैं। 'नीहार' का रचना काल महादेवी जी का तूफानी यौवन-काल था। श्रीमती शचीरानी गुर्टु ने इन कविताओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए लिखा है :

''माता-पिता की स्नेहच्छाया में अबोध शैशव बिताकर जीवन की कठोर वास्तविकता जब उनकी बुद्धि में सयानेपन से आ टकराई, तो उन अनमिल भावनाओं के कारण दो भिन्न हृदय प्रेम-सूत्र में न बँध सके और तभी से उनके मानस में नीरवता, बेचैनी और धुंधलेपन की छाया परिव्याप्त हो गई। यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत के लिए मचल रहा था और जीवन-गगन के रक्ताभ पर स्नेह-ज्योत्सना छिटकी पड़ी थी, तभी अकस्मात् विफलता की धूप खिल खिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ सी अंकित कर गई। आत्म संयम का व्रत लिये हुए उन्होंने जिस लौकिक प्रेम को ठुकरा कर पीड़ा को गले लगाया, वह कालान्तर में आन्तरिक शीतलता से स्नात होकर बहुत कुछ तो निखर गई।''

प्रसाद जी के आँसू की भी ऐसी पृष्ठभूमि है। सारे गीत में भूतकाल की घटना की स्मृति है। मधुमास की चाँदनी रात्रि मधु वर्षा कर रही थी। तभी कवियत्री के प्रिय उसे जीवन का मधुर संगीत सिखाने आये थे। उनकी मुस्कान ने मधुमय पीड़ा में डुबो दिया। स्पष्ट है कि वह मुस्कान मानवी ही है। इस घटना को युग बीत गये। कवियत्री प्रतीक्षा में कितने दीप संध्या को जलाकर प्रातः वेला में बुझा चुकी है। प्रिय ने उसे जीवन-संगीत सिखाया था। परन्तु वे सीखे राग भूलती जाती है। प्रिय को भूलों पर प्यार आता था, अब उनकी अँगुली थक चुकी हैं। तार शिथिल हो चुके हैं, अतः अब वह अपने को प्रिय में ही लीन कर देना चाहती है। लौकिकता आध्यात्मिकता में परिवर्तित हो जाती है और वे परमात्मा की अनुपम छवि को आत्मसात कर उसमें लय हो जाना चाहती है।

निशा......................का मोल।

शब्दार्थ—निशा = रात्रि। राकेश = चन्द्रमा। अलकें = केश। निशा खोल = राकेश निशारूपी रमणी को चाँदनी में धो रहा था। यहाँ रात्रि को नायिका और राकेश को नायक मानकर मानवीकरण किया गया है। मधुमास = बसन्त। मधु मदिरा = फूलों की रस रूपी मदिरा। कली से मोल = बसन्त कली से फूलों की रस-रूपी मदिरा का मोल पूछ रहा था।

केन्द्रीय-भाव—जिस समय चन्द्रमा चाँदनी से रात्रि रूपी रमणी के केशों को स्नान करा रहा था और मधुमास कली से मधु मदिरा का मूल्य पूछ रहा था तथा मतवाला पवन ओस-कणों की धूलि बिखेर रहा था, उस समय कवियत्री के आल्हादित यौवन में किसी ने आकर मधुर संगीत सुनाया और उनका जीवन मधुरता से भर गया।

व्याख्या—रात्रि रूपी नालिका अपने अन्धकार रूपी केशों को खोलकर बिखेर रही थी, अन्धकार बढ़ रहा था। परन्तु राकेश (चन्द्रमा) नायक की तरह रजनी-नायिका के खुले हुए अन्धकार रूपी केशों को अपनी चाँदनी से धो रहा था, अर्थात् चन्द्रमा की चाँदनी अन्धकार को प्रकाश में बदल रही थी। जब मधुमास कली से मदिरा के समान मादक मदिरा का मूल्य पूछकर अपना स्नेह प्रदर्शित कर रहा था, उस समय तुम करुणा करके मेरे पास जीवन-संगीत सिखाने आये। में नाना प्रकार के मधुर स्वप्नों में लीन थी।

१. **विशेष**—प्रसाद जी के आंसू की तरह यहाँ भी कवियत्री के समक्ष अतीत की सुखद स्मृति है ;

"बस गई एक बस्ती है,
स्मृतियों की इसी हृदय में ?
नक्षत्र लोक फैला है,
जैसे इस नील निलय में।"

महादेवी की प्रस्तुत पंक्तियाँ संकेत करती हैं कि तूफानी यौवन के प्रारम्भ में उनके जीवन में कोई मधुर आया, परन्तु परिस्थिति वश उसका साथ न हो सका। उनके कठोर संयम ने समष्टिगत करुणा का आंचल पकड़ा और वे विराट या विश्व-प्रेम में लीन हो गईं। उनकी इसी समष्टिगत या विराट की करुणा-पूर्ण प्रेम-साधना का उत्तरोत्तर विकास उनके काव्य में हुआ है।

२. **अलंकार**—यहाँ प्रतीक शैली और मानवीकरण है। राकेश नायक और निशा नायिका है। मधुमास नायक और कली नायिका की प्रतीक है। 'धो देना', 'अलकें खोलकर मधु मदिरा का मोल पूछना' मानवी क्रियाएँ हैं। अतः मानवीकरण अलंकार है।

३. मैंने इस गीत की जो पृष्ठभूमि दी है उसकी पुष्टि निम्न विद्वानों के कथनों से पुष्ट होती है।

"यौवन के तूफानी क्षणों में जब उनका अल्हड़ हृदय किसी प्रणयी के स्वागत को मचल रहा था और जीवन-गगन के ललाट पट पर स्नेह-ज्योत्सना छिटक पड़ी अकस्मात् विफल प्रेम की धूप खिल-खिला पड़ी और पुलकते प्राणों की धूमिलता में अस्पष्ट रेखाएँ सी अंकित कर गई।" **—शचीरानी गुर्टू**

"महादेवी वर्मा को जीवन की शुष्कता ने उन्हें लोक-विमुख वैराग्य देकर लोकोत्तर आलम्बन की ओर प्रेरित किया है, जिसके अनुसन्धान में कभी तृप्ति नहीं।" **—श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु**

"सारांश यह है कि उनकी वेदना का प्रश्न उनकी व्यक्तिगत कुण्ठाओं में ही है। हाँ, एक सफल कवियत्री की तरह उन्होंने उसका उदात्तीकरण कर लिया है।" **—डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त**

वस्तुतः महादेवी जी का विरह व्यक्तिगत होते हुए भी आध्यात्मिक है।

झटक जाता था .... इस पार।

शब्दार्थ—झटक जाता=झटका देकर तोड़ जाता। पागल=मतवाला, मस्त। वात=वायु। तुहिन-कणों के हार=ओस की बूदों की मालायें। धूलि में=धूलि में मिलाना। इस पार=मेरे समीप।

व्याख्या—कवियत्री प्रिय से मिलन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती हुई कहती है। बसन्त की चन्द्रिका निष्णात रात्रि थी। वायु पागलों की तरह मस्त होकर चल रही थी। जिस प्रकार पागल मोतियों का हार तोड़कर भूमि में बिखेर दे, उसी प्रकार मस्त वायु के झोंके आँख की बूदों के हार तोड़कर धूलि में मिला रहे थे अथात् पड़ती हुई ओस से चाँदनी रात भीग रही थी, ऐसे समय में हे अज्ञात ! तुम मुझको जीवन का वास्तविक संगीत सिखाने के लिये मेरे पास आये। भाव यह है कि प्रथम लौकिक-अलौकिक प्रेमानुभूति से कवियत्री ने अपने जीवन का वास्तविक मूल्य समझा।

विशेष—यहाँ का प्रकृति का **मानवीकरण** है। वायु को पागल कहना और

उसके द्वारा हार झटक कर बिखेर देना आदि मानवीय क्रियाएं हैं। अतः मानवीकरण अलंकार है।

बिछाती थी ………………… कोर।

शब्दार्थ—बिछाती थी सपनों के जाल = तुम्हारी करुणा पूर्ण दृष्टि मेरे समक्ष मनोहर स्वप्नों का जाल-सा फैला देती थी। कोर = दृष्टि। मधुमय = मधुर। मधुमय पीड़ा = मधुर पीड़ा।

सन्दर्भ—यहाँ कवियत्री की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति है। प्रिय की मुस्कान मधुर पीड़ा बनकर उसके हृदय में बसी हुई है।

व्याख्या—हे प्रिय! तुम्हारी करुणामयी दृष्टि मेरे समक्ष मनोहर स्वप्नों का जाल-सा फैला देती थी। अर्थात् तुम्हारी करुणा पूर्ण कृपादृष्टि को पाकर मेंरे हृदय में अनेक सुखद और रंगीन कल्पनाएँ उठा करती थी। मैं तुम्हारे अधरों की मधुर मुस्कान देखकर आल्हाद-निमग्न हो जाती थी। वह मुझे सदा के लिए मधुर पीड़ा में डुबो गई। उसकी स्मृति अब भी मेरे मानस में छाई हुई हे। उसकी मधुर पीड़ा मुझे विभोर बना देती है।

भाव-साम्य—इसी प्रकार अतीत की मधुर पीड़ामय स्मृति प्रसाद जी के 'आंसू' में भी है। यह मधुर पीड़ा जो कभी मादक और मोहमयी थी और मन को बहलाने वाली थी, उसकी स्मृति अब हृदय को हिला देती है:

"मादक थी मोहमयी थी,
मन बहलाने की क्रीड़ा।
अब हृदय हिला देती है।
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।"

१. **विशेष**—'मधुमय पीड़ा' बड़ा ही मार्मिक प्रयोग है। प्रिय की पीड़ा सदैव मधुर होती है। प्रेम-वियोग में जलता हुआ मनुष्य पीड़ा का अनुभव करता है। परन्तु वह पीडा प्रिय की दी हुई है, इस कारण उसे पीड़ा मधुर हो जाती है। मधुमय पीड़ा में 'विरोधाभास' अलकार है। 'सपनों का जाल' में रूपक अलंकार है।

भूलती थी……………… ……प्यार।

शब्दार्थ—बिछलते थे = फिसलते थे। करुणेश = करुणा पूर्ण भगवान।

व्याख्या—यहाँ प्रणयानुभूति और वह भी ईश्वर की प्रणयानुभूति का मार्मिक चित्रण हुआ है। सच्चे प्रणय की स्थिति में प्रेमी प्रेमपात्र को सामने पाकर आत्म-विस्मृत हो जाता है। वह सब कुछ भूल जाता है। प्रिय को प्रेमी की भुलों पर प्यार आता है। अर्थात् वह प्रेमी की भूलों को भी प्यार करता है। यहाँ कवियत्री की प्रेम साधना अलौकिक है। वह कहती है कि मैं बार-बार तुमसे सीखे राग भूल जाती थी। मेरे हाथों की उंगलियाँ बार-बार उस वीणा पर कांप जाती थी। मैं तुम्हारा गाया हुआ प्रेम-सगीत सीख न पाई थी। अतः जिस प्रकार सीखा हुआ संगीतज्ञ

संगीत-सम्बन्धी भूलें करता है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी नीराजना और आराधना में भूलें किया करती थीं। परन्तु हे करुणेश ! तुमको मेरी भूलों पर भी प्यार आता था, अर्थात् मेरी भूलों को देखकर भी तुम मुझसे प्यार करते थे।

१. **विशेष**—यहाँ अतीत की स्मृति है। आध्यात्मिक वियोग पुष्ट रूप में सामने आया है, परन्तु कवियत्री की अभिव्यक्ति में वैयक्तिकता अधिक है।

२. 'भूलों पर प्यार होना' विरोधाभास है। परन्तु प्रेम में ऐसा होता ही है।

गये तब से.................. गान।

शब्दार्थ—तब से = उस समय से जब कि प्रिय का मिलन हुआ था। निर्वाण = बुझ जाना। 'दीपक निर्वाण' = दीपकों का बुझना, प्रतीक्षा-जनित साधना की अभिव्यक्ति करता है। मन-मोहक = मन को मोहित करने वाला।

सन्दर्भ—साधक प्रिय (ब्रह्म) का एक बार साक्षात्कार पाकर उसमें अपने को लीन कर देना चाहता हैं। परन्तु प्रेम-साधना पूर्ण न होने के कारण उसकी आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती। यहाँ उसी भाव को अभिव्यक्त किया गया है।

व्याख्या—हे प्रिय ! बसन्त की चन्दिका धौत रजनी में तुम्हारी करुणा पूर्ण दृष्टि और अधरों की मुस्कान मुझे आल्हाद से भर देती थी। उसकी स्मृति अब भी मधुमय पीड़ा बनकर छाई हुई है। तुम्हारी करुणामयी दृष्टि और मधुर मुस्कान को देखे हुए युग व्यतीत हो गये। तब से लेकर अब तक रातों में मेंने न जाने कितने दीप जलाकर तुम्हारी प्रतीक्षा की। संध्या को जलाये हुए दीप प्रातः होने पर बुझते रहे, परन्तु तुम न आये और प्रतीक्षा सफल न हुई। तुमने उस मधुर-मिलन-बेला में जो मन को मोहित करने वाला मनमोहक गान सुनाया था मैं उसे सीखने का सतत् प्रयास करती रही, परन्तु उसे अब तक न सीख पायी।

विशेष—'दीपक निर्वाण' में प्रिय की प्रतीक्षा करते हुए प्रेमी का शब्द-चित्र सागने आ जाता है। 'दीपक-निर्वाण' प्रतीक्षा को अभिव्यंजित करता है :

"कितनी नीरव रजनी में
तारों का दीप जलाये।
स्वगंगा की धारा में,
उज्ज्वल उपहार चढ़ाये।
संध्या की मिलन प्रतीक्षा,
कह चलती कुछ मनमानी।
ऊषा की रक्त निराशा,
कर देती अन्त कहानी।"

नहीं अब गाया.................. झंकार :

शब्दार्थ—अस्फुट—धुँधली सी। हैं ढीले तार = मेरी जीवन-वीणा के तार ढीले हो गये हैं।

सन्दर्भ—यहाँ कवियत्री अपने को प्रिय मे लय कर देने की आकांक्षा करती हुई निवेवन कर रही है ।

व्याख्या—मधु-स्नान शरद् रजनी में प्रिय से मिलन हुआ था । प्रिय की करुणा की कोर और अधरों की मुस्कान मधुमय पीड़ा से सराबोर कर गई थी । परन्तु इस मिलन को युग व्यतीत हो चुके । कवियत्री उस जीवन के संगीत को सीखने का निरन्तर प्रयास करती रही जिसे कि अनन्त प्रियतम उसके पास सिखाने आये थे । परन्तु सतत् प्रयत्न करने पर भी वह इसे न सीख पायी । अब उसकी उंगलियाँ थक चुकी हैं और उसकी जीवन-वीणा के तार ढीले पड़ गये हैं, अतः उससे अब जीवन-संगीत नहीं गाया जाता । अतः वह प्रार्थना करती है कि उसके हृदय में प्रेम-संगीत की जो अस्पष्ट ध्वनि है, उसे प्रियतम विश्व-प्रेम की वीणा में मिला ले ।

विशेष—यहाँ कवियत्री की व्यक्तिगत करुणा और प्रेम विश्व-प्रेम की सीमा में प्रवेश कर समष्टिगत हो गया है । महादेवी की करुणा-विश्व-करुणा और विश्व-प्रेम का रूप धारण कर लेती है और वे विश्व में अपने को लीन कर प्रसादजी की तरह अपने जलते हुए हृदय की ज्वाला को विश्व के लिए मंगलमय कल्याणी शीतल ज्वाला का रूप दे देती हैं :

"निर्मम जगती को तेरा,
मंगलमय मिले उजाला ।
इस जलते हुए हृदय की,
कल्याणी शीतल ज्वाला ।"

२. रजनी ओढ़े जाती थी

परिचय—प्रस्तुत गीत में श्रीमती महादेवी वर्मा ने अपनी आत्म-वेदना का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । इस प्रकार वह संयोगवस्था, वियोभ भावना और वेदना की तीव्रता का रहस्यात्मक पद्धति से चित्रण करते हुए साधक के हृदय की निश्चिन्तता की उत्कृष्ठ व्यंजना कर रही हैं ।

रजनी ओढ़े ………………आलिंगन ।

शब्दार्थ—रजनी = रात्रि । शशि = चन्द्रमा । तरनी = नदी ।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि रात्रिरूपी रमणी सितारों से अलंकृत झिलमिल करती हुई जाली की चादर ओढ़े जा रही थी और उसके इस बिखरे हुए ऐश्वर्य पर चाँदनी ओसरूपी आँसू बहा रही थी । साथ ही नदी अपनी लहरों में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की छवि को वास्तविक चन्द्रमा समझ कर उसका स्पर्श करने की लालसा से अपनी लहरों के हाथों को चूम रही थी, पर उसे यह ज्ञात न था कि वह वास्तव में चन्द्रमा का स्पर्श न कर अंधकार में निर्मित छाया का ही आलिंगन कर रही है ।

विशेष—प्रस्तुत पद्यांश में मानवीकरण पद्धति से प्रकृति का चित्रण किया गया है, अतः इसमें प्रकृति की अनूठी रम्यता विद्यमान है ।

अपनी जब .... गलियों में

शब्दार्थ—मलयानिल=सुगन्धित वायु । अवनी=धरती । हिंडोला=झूला ।

व्याख्या—कवियत्री का कहना है कि जब मलय पवन अपनी करुण गाथा कहते हुए धरती पर प्रवाहित होता था तब शुष्क धरती का आंचल अश्रुओं से पूर्ण हो उठता था । इसका अर्थ यह है कि मलयानिल के प्रवाहित होते समय शुष्क ओस के बिन्दुओं से पूर्ण हो जाती थी । कवियत्री कह रही है कि सौरभ पल्लवरूपी झूले को डालकर कलियों के साथ आनन्दपूर्वक शयन कर रहा था और परागपूर्ण कलियों में चन्द्रकिरणें छिप-छिप कर प्रवेश कर रही थीं । इसका यह अभिप्राय है कि चन्द्र-किरणें अभिसार करने की लालसा से अपने को छिपाती हुई पुष्प-मधु से सींची गई वाटिकाओं में प्रविष्ट हो रही थीं ।

विशेष—यहाँ मानवीकरण पद्धति से प्रकृति-चित्रण करते हुए प्रकृति को संयोग सुख में लीन माना गया है और सरल, सुमधुर व सरस शब्दावली का प्रयोग भी पाठकों को आकृष्ट करने में समर्थ रहा है ।

आँखों में ....कर डाली ।

शब्दार्थ—विधु=चन्द्रमा । प्राची=पूर्व दिशा । चितेरा=चित्रकार । निर्धन =अकिंचन, गरीब ।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि जब जाग कर सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत करने वाला चन्द्रमा ने अपना उदास व पीला मुख पश्चिम की ओर किया, तब पूर्व में प्रातःकाल रूपी चित्रकार किसी नवीन चित्र को अंकित करने के लिए प्रविष्ट हुआ । साथ ही जब प्रकृति के प्रत्येक कण में नवयौवन की लालिमा के समान प्रातःकालीन लालिमा छाई हुई थी तब मैं—कवियत्री निर्धन के स्वप्नों को भेंट मात्र लेकर प्रस्तुत हुई ।

विशेष—यहाँ मानवीकरण की सहायता से अत्यन्त आकर्षक प्रकृति-चित्रण किया गया है और उक्तियों से स्वाभाविकता भी है । चूंकि चन्द्रमा को प्रेमी और रात्रि को प्रियतमा कहा जाता है, अतः चन्द्रमा के रात्रि-जागरण से कवियत्री का अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा सम्पूर्ण रात्रि संयोग-क्रीड़ा में लीन रहा, तथा उसका पीला मुख भी इस बात का साक्षी है कि उसे सारी रात श्रम करना पड़ा । स्वयं कवियत्री अपनी स्थिति का चित्रण करते हुए यहाँ यह स्पष्ट कर दे रही है कि वह तो अपने प्रिय से केवल स्वप्नों में ही भेंट कर सकी थी और इसीलिए स्वप्नों की भेंट लेकर ही अब वह प्रस्तुत हुई है ।

३. चुभते ही तेरा अरुण बाण

सन्दर्भ—इस गीत में महादेवी वर्मा ने प्रकृति प्रभाव का वर्णन करते हुए सृष्टि पर ईश्वरीय प्रभाव अंकित किया है ।

चुभते ही……………………कुहर-म्लान ।

शब्दार्थ—अरुण बाण=लाल तीर, सूर्य की सुनहली किरणें । सजल-गान=शोभा, आकर्षण । कनक रश्मियों=सुनहली किरणें । तम सिंधु=अन्धकार का समुद्र । बुद्‌बुद=बुलबुले । विहंग=पक्षी । प्रवाल=मूँगा । जिसका रंग लाल होता है । कुहर म्लान=कुहरे के कारण मुरझायी हुई या काली ।

व्याख्या--कवियत्री सूर्योदय का वर्णन करते हुए कह रही है कि प्रभात के समय सूर्य की पहली किरण का स्पर्श पाते ही प्रकृति के कण-कण से शोभा व आकर्षण रस-स्रोत की भाँति प्रवाहित हो उठता है, अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति सौन्दर्ययुक्त हो जाती है और सूर्य की सुनहली किरणों में अंधकाररूपी अथाह सागर हिलोरें लेने लगता है, अर्थात् अन्धकार का रूप परिवर्तित हो जाता है । साथ ही पक्षियों के मधुर स्वर अन्धकाररूपी सागर में बुलबुलों की भाँति प्रवाहित होने लगते हैं अर्थात् प्रातः-काल में विविध पक्षियों के मधुर राग ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे कि समुद्र में अनन्त बुद्‌बुद प्रवाहित हो रहे हों और कुहरे से आच्छादित होने के कारण काली दीख पड़ने वाली क्षितिज रेखा अब मूँगे की भाँति दिखाई पड़ती है, अर्थात् क्षितिज में लालिमा फैल जाती है ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवियत्री ने सूर्योदय का स्वाभाविक व मर्मस्पर्शी चित्रण किया है और अनूठी भाव-व्यंजना भी यहाँ प्रत्येक पंक्ति में दीख पड़ती है । उदाहरणार्थ, अंधकाररूपी सागर के जाग्रत हो और हिलोरें लेने में कवियत्री का अभिप्राय प्राणियों के जागरण और जीवन की ओर सक्रिय होने से है ।

नव कुन्द-कुसुम……………………तान ।

शब्दार्थ—कुन्द-कुसुम=कुन्द का भूल जो सफेद रंग का होता है । मेघ-पुंज=बादलों का समूह । इन्द्रधनुषी वितान=इन्द्रधनुष के समान सतरंगी शामियाना । हिमबिन्दु=ओस की बूँद । तिमिर गात=काला शरीर । निशिमूक तान=वह तान जो रात में बन्द थी अर्थात् सुनाई नहीं देती थी ।

व्याख्या—कवियत्री प्रभातकाल का वर्णन करते हुए कह रही है कि प्रातः-काल नवीन कुन्द के फूलों के समान सफेद बादलों के समूह सूर्य की किरणों का स्पर्श होने से इन्द्रधनुष जैसे विविध रंगों वाले शामियाने की भाँति दृष्टिगोचर हो रहे थे और कोमल कलियों के चटकने की ताल पर तरल ओस की बूँदें नृत्य कर रही थीं तथा प्रातःकालीन स्वर्णिम प्रकाश में अपने काले शरीर को स्वच्छ कर भ्रमर रात्रि में बन्द की हुई गुन्जार को पुनः दुहराने लगे हैं अर्थात् जो भँवरे रात्रि में चुप थे, वह अब प्रभात के समय पुनः मधुर ध्वनि सुना रहे हैं ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवियत्री ने चित्रमयी शैली में प्रभातकाल का अनूठा वर्णन किया है और वह सूर्य-रश्मियों की उज्ज्वलता में सम्पूर्ण प्रकृति को शृंगार करते हुए अंकित कर रही है ।

सौरभ का ………………… अजान ।

शब्दार्थ—सौरभ का फैला केश जाल=जिस प्रकार बाल बिखर कर चारों ओर फैल जाते हैं, उसी प्रकार सुगन्धि चारों तरफ लहरी रही है । समीर परियाँ=वायु रूपी परियाँ । मर्मर का मधु संगीत छेड़ देते हैं, हिल पल्लव अजान=वायु के झोकों से हिलने पर पल्लवों से मर्मर ध्वनि उत्पन्न होने लगती है ।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि प्रातःकाल होने पर सर्वत्र वायु इस रूप में फैल जाती है कि ऐसा प्रतीत होता हैं कि मानो वह परियों के रूप में विहार कर रही हो और उसमें वायु में फूलों की सुगन्धि का प्रसार होने से यह अनुमान होने लगता है कि सुगन्धि परियों की केश-राशि से प्रसारित हो रही है । साथ ही इस नूतन उल्लास से पूर्ण तितली के **छोटे-छोटे बच्चे** फूलों पर विहार करते हुए गीली केसर का स्वच्छन्दतापूर्वक मतवाले होकर पान कर रहे हैं और बायु के मन्द झोंकों से पल्लव अनजाउ में हिलकर एक मधुर मर्मर ध्वनि सुनाते हैं ।

विशेष—कवियत्री ने यहाँ प्रभात काल के साथ सम्पूर्ण प्रकृति को आनन्दमयी अंकित किया है और मानवीकरण की सहायता से प्रकृति का अनूठा चित्रण भी इन पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है ।

फैला अपने………… ……सुधि बिहान ।

शब्दार्थ—मृदु=कोमल । निशि-क्षितिज=रात्रि रूपी क्षितिज के पार । दृग=नेत्र । कंजकोष=कमल के समान नेत्र । खुमार=हलका नशा, शरीर की शिथिलता । चितेरा=चित्रकार । सुधि विहान=स्मृति को जाग्रत करने वाला प्रभात ।

व्याख्या—कवियत्री का कहना है कि प्रभात के समय निद्रा अपने मधुर स्वप्नरूपी पंखों को कोमलतापूर्वक फैलाकर रात्रि व्यतीत होते ही क्षितिज से दूसरी ओर चली गई अर्थात् प्रातःकाल होते ही प्राणियों में चेतना संचालित होने लगती है और मनुष्यों के अधखुले नेत्र-कमल पुष्प के कोष के समान जान पड़ते हैं तथा जिस प्रकार कमल में सुरभि विद्यमान रहती है उसी प्रकार नेत्रों में भी विस्मृति की मादकता स्पष्ट दीख पड़ती है, अर्थात् नेत्रों में स्वप्नों को विस्मृति करने की इच्छा स्पष्ट झलकती है । साथ ही प्रातःकाल एक कुशल चित्रकार की भाँति ओस रूपी अश्रुओं और सूर्य किरणों की उज्ज्वलता रूपी विशिष्ट हास्य लेकर अपने हृदय की रंग-वैभव में लीन रहता है ।

विशेष—कवियत्री ने प्रस्तुत पंक्तियों में प्रभात के समय प्रकृति के विविध क्षेत्रों में अनेक सौन्दर्यात्मक उपकरणों का प्रसार स्पष्ट किया है ।

२. जैसा कि समीक्षकों का कहना है "प्रस्तुत कविता में सूर्योदय होने पर सूर्य-रश्मियों के विविध प्राकृतिक तत्वों पर पड़ने वाले प्रभाव को चित्रित किया गया है । प्रातःकाल के समय सूर्योदय के कारण सर्वत्र एक विशिष्ट सजगता का प्रसार हो

जाता है। उस समय कमल-पुष्प जैसे कतिपय तत्वों को सूर्य से माध्यम से विकास की उपलब्धि होती है और समीर जैसे प्राकृतिक तत्व स्वतः सौन्दर्य विकास में सहायता प्रदान करने लगते हैं। वस्तुतः कविता में प्रातःकालीन प्रकृति की इसी विविधता सम्पन्न चेतना का कथन किया गया है। इसके लिए कवियत्री ने प्रकृति का मानवीकरण शैली के अनुसार कथन करने की प्रणाली को भी अपनाया है और कल्पना से यथास्थान उपयुक्त प्रेरणा ग्रहण की है। साथ ही यह गीत गीतकाव्य के तत्वों से भी पूर्ण है और इसमें भावात्मकता के साथ-साथ छायावाद की कला-सम्बन्धी सूक्ष्म विशिष्टताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। चित्रात्मकता एवं विशिष्ट सूक्ष्मता के फलस्वरूप यह प्रगति छायावाद की अनुपम निधि है।

४. बीन भी हूँ मैं तुम्हारी

परिचय—प्रस्तुत कविता में श्रीमती महादेवी वर्मा ने जीवात्मा व परमात्मा के मध्य चिरन्तन सम्बन्ध की स्थिति प्रतिपादित की है।

बीन भी………………प्रवाहिनी भी हूं !

शब्दार्थ—अचल = जड़। प्रवाहिनी = नदी।

व्याख्या—कवियत्री अपने आराध्य को सम्बोधित कर कहती है कि मैं तुम्हारी वीणा भी हूँ और उस वीणा से उत्पन्न होने वाले झंकार भी हूँ तथा जिस समय इस सृष्टि का प्रत्येक कण स्पन्दनहीन अवस्था में जड़ (अचल) पड़ा था उस समय मेरी निद्रा भी स्थिर थी अर्थात् मैं चेतनाहीन अवस्था में थी। साथ ही जिस समय संसार ने प्रथम बार चेतना की अनुभूति की उस समय मैंने—कवयित्री ने—भी पहली बार जागृति प्राप्त की ओर अपने जीवन में तुम्हारी कृपा से युक्त होने के फलस्वरूप जो पद-चिन्ह मैं छोड़ती चली जा रही हूँ, वे सर्वदा स्थिर रहेंगे तथा प्रलय के समय में भी वह मेरे अस्तित्व का ज्ञान कराते रहेंगे।

कवयित्री का कहना है कि मैं एक ऐसा शाप हूँ जो प्रेम के बन्धन में फँसकर वरदान बन गया हो अर्थात् मेरे जीवन में अनेक दुःख थे लेकिन प्रिय के प्रेम-बन्धन में बँधकर मुझे अमरता के वरदान को प्राप्ति हो गयी है। कवयित्री कहती है कि मैं नदी का किनारा भी हूँ और किनारों से उन्मुक्त होकर बहनेवाली नदी भी हूँ, अर्थात् मेरे जीवन की गति नियमबद्ध होते हुए भो मैं उस बेगवती नदी के समान हूँ जो किनारों के बन्धन में आबद्ध नहीं होती, अतः मेरे जीवन का प्रवाह स्वतन्त्र ही है।

विशेष—प्रस्तुत छन्द में कवयित्री ने व्यक्ति की विराट शक्ति की व्यंजना करते हुए विरोधी गुणों के समावेश द्वारा व्यक्तित्व की अलौकिकता प्रदर्शित की है। साथ ही इसमें प्रतीकात्मकता भी है और इस प्रकार वीणा निष्क्रिय प्रकृति की प्रतीक है तथा गीत सृजन की हलचल का :

नयन में.................. सुहागिनी भी हूँ !

शब्दार्थ—तृषित=प्यासा। चल=चंचल।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि मैं उस प्याले पपीहे के समान हूँ जो अपने नेत्रों में सर्वत्र बादलों को बसाये हुए आकाश की ओर सतृष्ण दृष्टि से देखता रहता है अर्थात् मैं चातक की भाँति अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती रहती हूँ और मैं उस दीपक के समान हूँ जो अपने प्रति प्रेम रखने वाले शलभ—पतंगे को अपनी ज्वाला में निष्ठुरतापूर्वक समाप्त कर देता है अर्थात् मैं अपने प्रति मोह रखने वाले संसार के प्रति वैसी ही उपेक्षा दिखाती हूँ जैसी शलभ के प्रति दीपक दिखाता है। कवियत्री का कहना है कि मैं उस बुलबुल के समान हूँ जो फूलों के प्रति विशेष प्रेम-भाव रखने के कारण उनसे वियुक्त होने पर हृदय में विशेष विरह का अनुभव करती हूँ, अर्थात् मैं बुलबुल की भाँति व्यवहार करते हुए अपने प्रिय को प्राप्त करने का प्रयास करती हूँ और मैं उस छाया के समान हूँ जो शरीर से सम्बन्ध रखते हुए भी अपनी चंचलता के कारण उससे पृथक् रहती है, अर्थात् मैं अपने प्रिय से उसी प्रकार भिन्न हूँ, जिस प्रकार शरीर को छाया शरीर से ही उत्पन्न होने पर भी उससे पृथक् रहती है। अन्त में कवियत्री प्रिय को सम्बोधित कर कहती है कि यद्यपि मैं तुम्हारे पास नहीं हूँ पर तुम्हारी स्मृति को अपने हृदय में सुरक्षित रखकर मैं अपने आपको सर्वदा सौभाग्यशालिनी समझती हूँ।

विशेष—कवियत्री ने यहाँ विरोधाभास अलंकार की सहायता से अपनी उक्ति में अनूठा चमत्कार भर दिया है और साथ ही प्रेम-भावना में अलौकिकता का समावेश भी किया है।

आग हूँ.................. दामिनी भी हूँ।

शब्दार्थ—हिमजल=ओस, करुणा। प्रस्तर=पत्थर। आधार=आश्रय, प्रिय। दामिनी=बिजली।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि मैं वह आग हूँ जो ओस की शीतल बूँदें बरसाती हैं और वियोगाग्नि में जलते हुए भी मैं संसार को करुणा का दान देती हूँ तथा मेरी आत्मा का विस्तार शून्य की भाँति मेरा जीवन समय की शून्यता के समान है जो पल-पल करके गतिशील हो रहा है।

कवयित्री का कहना है कि मैं कठोर पत्थर की पुलक हूँ और प्रिय के हृदय में मेरा ही प्रतिबिम्ब है तथा मैं नीला बादल और स्वर्णिम बिजली भी हूँ। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार नीलवर्ण से शोभित बादल और कांतिमान बिजली क्रमशः आधार व आधेय के रूप में होते हैं उसी प्रकार प्रिय या परमब्रह्म आधार है तथा कवियत्री या साधिका का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसकी कृपा-कोर पर ही आधारित है।

विशेष—इन पंक्तियों में विरोधाभास का चमत्कार स्पष्ट प्रतीत होता है और कवियत्री ने आग से ओस की शीतल बूंदों की वर्षा तथा पत्थर में पुलक की कल्पना भी की है।

नाश भी .... चाँदनी भी हूँ ?

शब्दार्थ—चरम आसक्ति=घोर मोह। मधुप=भ्रमर।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि मैं नाश भी हूँ और विकास की धारा भी हूँ अर्थात् मैं कभी भी नष्ट हो सकती हूँ और सतत् प्रगति भी करती रहती हूँ। कवियत्री कहती है कि मुझमें आत्मत्याग की शक्ति है और घोर मोह का अन्धकार भी है, अर्थात् जीवन में आत्मत्याग को मूल महत्व प्रदान करने के साथ साथ मैं आसक्ति से रहित नहीं हूँ तथा वीणा के तार, उसे झंकृत करने वाली आघात और उससे उत्पन्न होने वाली झंकार भी मैं हूँ अर्थात् जिस प्रकार आघात से वीणा के तार एक मधुर झंकार फैला देते हैं उसी प्रकार जीवन संघर्षों के प्रभाव से मैं भी परिश्रम में लीन हो जाती हूँ।

कवियत्री का कहना है कि मैं मदिरा पीने का प्याला भी हूँ, शराब भी हूँ, मदमत्त भ्रमर भी हूँ और विस्मृति भी हूँ अर्थात् मैं मदिरा पान कर अपनी चिन्ताओं को त्याग कर भँवरे की भाँति संसार के प्रति आकृष्ट हो अपने जीवन की विगत मधुर स्मृतियों को साकार करने लगती हूँ। कवियत्री कह रही है कि मैं अधर भी हूँ और अधरों पर मँडराने वाली चाँदनी के समान उज्ज्वल मुस्कराहट भी हूँ।

विशेष—१. इन पंक्तियो में कवियत्री ने व्यक्ति को विराट शक्तियों को स्वर प्रदान किए हैं।

२. प्रस्तुत कविता रहस्यवादी ही है और उसमें जीवात्मा व परमात्मा की तल्लीनावस्था का चित्रण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि जिस समय जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होता है उस समय वह—जीवात्मा—मुक्त हो जाती है और अपने में सर्वशक्तियों का अनुभव करती हैं।

इस प्रकार जीवात्मा की इस भाव स्थिति का रम्य चित्रण करने के साथ-साथ जीव की जड़ अवस्था की ओर संकेत करते हुए दैवी आलोक फैलने पर उसके चेतन होने की ओर संकेत किया गया है तथा चेतना प्राप्ति के पश्चात् जीव को ईश्वर की भाँति अमर होने का वरदान प्राप्त हो जाता है और उसे अपने जीवन के सभी शाप बरदानों में परिवर्तित होते जान पड़ते हैं। साथ ही इस कविता में श्रेष्ठ प्रतीकों की योजना भी है और विरोधाभास अलंकार का भी बहुत सुन्दर हुआ है।

५. पुलक-पुलक उर सिहर-सिहर तन

परिचय—शब्दार्थ—प्रस्तुत कविता में श्रीमती महादेवी वर्मा ने प्रिय-विरह

में अपनी मानसिक विह्वलता का वर्णन करते हुए मिलनेच्छा को मधुर रूप में प्रस्तुत किया है।

पुलक पुलक ……………… दृग इन्दीवर !

शब्दार्थ —शेफाली = नील सिंधुवार का पौधा। रजत = चाँदी, सफेद। मधु-पवन = बसन्त ऋतु का पवन। मधुकण = ओस की बूँदें। पिक = कोयल। अलिनी = भ्रमरी। तम = अंधकार। अंक = गोद। आंज रही = अंजन लगा रही है। इन्दीवर = नील कमल।

व्याख्या— कवियत्री कह रही है कि आज मेरा हृदय पुलकित क्यों हो रहा है और सारा शरीर क्यों सिहर रहा है तथा आँखों में अश्रु क्यों छलक उठते हैं ?

कवियत्री का कहना है कि शेफाली लज्जित होती सी व संकोच करती सी विकसित हो रही है और मौलश्री की प्रत्येक डाली अलसाई हुई है तथा कुन्जों में प्रवाल सफेद व काले तारों की जाली बुन रहे हैं। कवियत्री के कथनानुसार कुन्जों में जो चन्द्रमा की किरणें हैं, वह सफेद तार हैं और जो अन्धकार बिखरा हुआ है वह काले तार हैं तथा धरती पर प्रकाश व छाया की जाली सी बुनी हुई दृष्टिगोचर होती है।

कवियत्री कहती है कि बसन्त का पवन भी मन्द-मन्द प्रवाहित हो रहा है और हरसिंगार के फूल ओस बिन्दुओं को बिखेरते हुए झर रहे हैं।

कवियत्री कह रही है कि कोयल की बाँसुरी-सी रसीली ध्वनि सुनाई दे रही है और सरल हृदया भ्रमरी नाच रही है तथा स्निग्ध व लाल पाटल अन्धकार पर सुगन्ध की कोमल केसर बिखेर रहा है।

कवियत्री का कहना है कि रात्रि ने सरोवररूपी दर्पण को अपने कोमल अंक में धारण कर लिया है और उसमें अपने मुख का प्रतिबिम्ब देखते हुए अपने कमल-पुष्प के सदृश्य नेत्रों में अंजन लगा रही है :

विशेष—कवियत्री ने यहाँ एक ओर तो यह संकेत करना चाहा है कि प्रकृति के इस मादक वातावरण में प्रिय को अवश्य आना चाहिए और दूसरी ओर वह सम्पूर्ण प्रकृति को शोभा सम्पन्न भी मानती है तथा प्रतीक योजना में भी वह सतर्क रही है।

आँसू बन बन ………………मर मर।

शब्दार्थ —तारक = तारे। वानीर = बेंत। विहाग = एक प्रकार का राग। उन्मन = उदास।

व्याख्या —प्राकृतिक वैभव का वर्णन करने के पश्चात् कवियत्री अपनी हार्दिक व्यथा का प्रकृति के अञ्चल में अनुभव करते हुए कहती है कि तारे आसुओं का रूप धारण कर ओस-कणों के रूप में फूलों के हृदय पर अपनी शय्या बनाते हैं, अर्थात्

फूलों पर ओस कणों का कोमल रूप में प्रसार होता है और वायु के प्रवाहित होने से बेंत के वनों में चंचलता सी आ गयी है तथा उनमें से विहाग का करुण राग निःसृत हो रहा है।

कवियत्री का कहना है कि उदास निद्रा घूम-घूमकर स्वप्नों की रात्रि लेकर लौट रही है और देर तक नींद न आने पर पुनः चेतना स्वप्न जगत में खो गई अर्थात् धरती पर निद्रा व्याकुल भाव से विचरण कर रही, अतः प्राणियों पर उसका प्रभाव भी शिथिल हो चला है।

कवियत्री कह रही है कि जीवन ओस-कणों से निर्मित हुआ अत्यन्त क्षणभंगुर है और प्रेम इन्द्र धनुष के समान आकर्षक पर शीघ्र ही मिट जाने वाला है तथा ससार काली घटाओं सा धुँधला और बादलों के सदृश सर्वदा नवीन, करुणापूर्ण व पुलकित सा जान पड़ता है। कवियत्री के कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार बादलों में पुलक भाव और जल एक साथ व्याप्त रहता है, उसी प्रकार जीवन में पुलक व करुणा का साथ-साथ समावेश रहता है।

कविता के अन्त में कवियत्री प्रिय को सम्बोधित कर कह रही है हे मेरे अतिथि ! तुम बिजली बनकर मेरे नेत्रों में पाँव रखते हुए आओ अर्थात् मैंने तुम्हारे स्वागत के लिए पलकों रूपी पाँवड़े बिछाए हुए हैं और तुम इन पर चरण रखते हुए आओ। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि इन पक्तियों को ईश्वर के प्रति सम्बोधत भी कहा जा सकता है।

विशेष—१. प्रस्तुत पंक्तियों में वियोगिनी के हृदय का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

२. प्रस्तुत कविता में प्रकृति की रात्रिकालीन सुषमा का चित्रण करते हुए प्रातःकाल का सन्निकट होना स्वीकार किया गया है और प्रकृति को चेतन रूप प्रदान करते हुए उसके विविध तत्वों को सकोचशील पुलकित नृत्यरत व गीत गाने आदि विभिन्न स्थितियों में अंकित किया गया है, अतः बहुविधि भावों से प्रेरित होने के कारण प्रकृति-चित्रण को विशेष प्राप्त हुई है। साथ ही कलात्मकता की वृद्धि हेतु अलकार योजना पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है और उपमा, रूपक व श्लेष आदि अलंकारों की भी सफल अभिव्यक्ति हुई है।

६. रूपसि तेरा घन-केश-पास

परिचय—प्रस्तुत कविता में श्रीमती महादेवी वर्मा ने वर्षा की नारी के रूप में कल्पना कर वर्षाकालीन प्रकृति के अनेक रम्य दृश्य अंकित किए हैं।

रूपसि तेरा……………… चितवन-विलास !

शब्दार्थ—रूपसि = सुन्दरी। घन-केश-पाश = मेघरूपी बालों की राशि। नभगंगा = आकाशगंगा। रजत धार = सफेद धारा। सद्यस्नात = हाल ही में स्नान

की हुई । अलकों=बालों । लास=गति, नृत्य । सौरभ-भीना=सुगन्धित । चितवन-विलास=कटाक्ष-पात, बिजली ।

व्याख्या—कवियत्री वर्षा को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि हे सुन्दरी ! तेरे नीले, कोमल, सुगन्धित, मेघरूपी काले बाल लहरा रहे हैं और वह बिलकुल स्वच्छ हैं, अतः क्या तूने उन बालों को आकाशगंगा की सफेद धारा में स्वच्छ किया है ? कवियत्री वर्षा रूपी सुन्दरी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि तूने अभी-अभी स्नान किया है, क्योंकि तेरे अंग काँप रहे और शरीर में सिहरन है तथा तेरे भीगे हुए बालों से नृत्य-सा करती हुई बूँदें धरती पर गिर रही हैं । कवियत्री के कहने का अभिप्राय यह है कि मेघों से वर्षा हो रही है ।

कवियत्री वर्षा की नारी के रूप की कल्पना कर कहती है कि तूने बादलों रूपी श्यामवर्ण का दुपट्टा धारण किया है और तेरे आंचल से जुगनूओं के सुनहले फूल झड़ रहे हैं तथा तेरे निर्मल कटाक्ष से दीपक भी प्रज्वलित हो उठते हैं । इसका अर्थ यह है कि जब आकाश में बिजली चमकती है तो कई दीप एक साथ जल उठते हैं ।

विशेष—इन पंक्तियों में मानवीकरण प्रणाली से वर्षा का सुन्दर वर्णन किया गया है और कवि की चित्रात्मक कल्पना भी सराहनीय है ।

तुलनात्मक दृष्टि प्रायः सभी भाषा के काव्य-ग्रन्थों में वर्षा ऋतु का वर्णन करने की प्रवृत्ति पाई जाती है और आधुनिक काल के एक अन्य कवि श्री जगदम्बा-प्रसाद मिश्र 'हितैषी' ने भी वर्षा ऋतु को नर्तकी के रूप में अंकित करते हुए कहा भी है :

तान बितान दिया नभ में,
हरियाली ने चादर चारु बिछायी ।
हाथ ली चपला ने मशाल,
है झिल्लियों ने मिल बीन बजायी ॥
वारिदों ने है मृदंग पै थाप दी,
चातकियों ने मलार है गायी ।
विश्व के प्रांगण में सच के
ऋतु पावस नर्तकी नाचती आयी ॥

उच्छ्वासित……… ………जग है उदास !

शब्दार्थ—उच्छ्वासित=उभरे हुए । अरविन्द=कमल । मलयज बयार==मलय पवन । केकी-रव=मोर की कूक । लट=अलक, केश ।

व्याख्या—कवियत्री वर्षारूपी सुन्दरी को सम्बोधित कर कह रही है कि तेरे उभरे हुए वक्षस्थल पर बगुलों की पंक्तियों जैसा कमलों का हार है और तेरी साँसें

धरती को छूकर मलय पवन बन जाती हैं तथा मोर की कूकरूपी तेरे नूपुरों की ध्वनि सुनकर संसार के हृदय में वासना की प्यास उत्पन्न हो उठती है।

कविता की अन्तिम पंक्तियों में कवियत्री ने वर्षा ऋतु को संसार की माता मानते हुए कहा है कि तेरा संसाररूपी बालक उदास है, अतः तू उसे अपनी पुलकित गोद में बिठाकर अपने सजल केशों से उसके शरीर पर छाया कर उसे प्रसन्न कर दे और उसका कोमल माथा चूम ले।

विशेष—१. इन पंक्तियों में मानवीकरण प्रणाली से प्रकृति वर्णन करते हुए स्वाभाविकता को अक्षुण्ण रखने पर भी ध्यान दिया गया है।

२. **तुलनात्मक दृष्टि**—सुपरिचित कवि श्री रामेश्वर शुक्ल ने भी अपने 'वर्षा-गीत' में वर्षा की नारी के रूप में अंकित करते हुए कहा है :

हरी चूनर पहन कर आ गयी वर्षा सोहागिन फिर।
कहीं वन-बीच फूलों में पड़ी थी स्वप्न में सोयी,
उलझते बादलों की लट पिया छलका गया कोई।
तिमिर ने राह कर दी—राह कच्ची धूप की धोयी,
पवन की रागिन मोती-भरे आकाश में खोयी।
पहन धानी लहरिया आ रही वर्षा सोहागिन फिर।

× × ×

उभरती और खिलती सद्यस्नाता-सी चली आती,
नये सुकुमार रंगों में किरण-सा रूप छिटकाती।
अधर दाँतों तले दावे सभी को देखती भाती,
कमर में इन्द्रधनुषी करधनी सौं बार बल खाती!
हरी चूनर पहन कर आ रही वर्षा सोहागिन फिर।

३. प्रस्तुत कविता में वर्षा ऋतु को सुन्दरी नायिका के रूप में अंकित करते हुए प्रकृति सौन्दर्य की मनोमुग्धकारिणी छवि चित्रित की गई है और वर्षाकालीन घन, विद्युत, जुगनू, वन पंक्ति आदि विविध प्राकृतिक तत्वों का उपयुक्त उल्लेख भी हुआ है। साथ ही कविता के प्रारम्भिक अंश में शृंगार रस की और अन्तिम पंक्तियों में वात्सल्य की स्वाभाविक योजना भी है तथा शृंगार के अन्तर्गत वर्षा को सद्यःस्नाता नायिका के रूप में प्रस्तुत कर रूपवर्णन के मार्मिक चित्र भी प्रस्तुत किए गए हैं। उसी प्रकार अन्तिम पद में संसार को वर्षा ऋतु का बालक मानकर वर्षा से कहा गया है कि वह उसके प्रति स्नेह व्यक्त करे।

७. वसन्त रजनी

केन्द्रीय-भाव—प्रस्तुत कविता में श्रीमती महादेवी वर्मा ने वसन्त ऋतु की रात्रि की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर व स्वाभाविक चित्रण किया है।

धीरे धीरे…… ……… विहंसती आ बसन्त रजनी !

शब्दार्थ—रश्मि-वलय=किरण रूपी चूड़ियां। सित घन अवगुण्ठन=सफेद बादलों का पर्दा। मुक्ताहल=मोती। अभिराम=सुन्दर। पद्म=कमल। अलस-तरंगिणी=मन्द मन्द बढ़ती हुई नदी। तरल रजत=पिघली हुई चाँदी, चाँदनी।

व्याख्या—कवियत्री वसन्तकालीन रात्रि की अभिसारिका के रूप में कल्पना करते हुए कह रही है कि हे वसन्त की रात्रि ! तुम आकाश से पृथ्वी पर धीरे-धीरे उतरती हुई आओ। कवियत्री वसन्तकालीन रात्रि की सुषमा का वर्णन करते हुए कहती है कि तुम्हारी वेणी में तारों से मोती जड़े हैं, चन्द्रमा का अनुपम शीशफूल तुम्हें सुशोभित कर रहा है. किरणों की चूड़ियाँ तुमने धारण कर रखी हैं और साथ ही शुभ्र मेघों का वस्त्र धारण किया है. अतः तुमसे मेरा अनुरोध है कि तुम अपने नेत्रों से ओस के सुन्दर मोती बिखेरती हुई सबको पुलकित करती हुई आओ।

कवियत्री वसन्त-रजनी को सम्बोधित कर कहती है कि पत्तों की मर्मर ध्वनि ही तुम्हारे नूपुरों की मधुर ध्वनि है और तुमने भ्रमरों से गुंजित कमलों की किंकिणी धारण कर रखी है, अतः मन्द-मन्द बहती हुई सरिता की मन्द चाल अपने पैरों में धारण कर। हे वसन्त-रजनी ! तुम अपनी मधर मुस्कान से पिघलती हुई चाँदी के समान चाँदनी बिखेरती हुई और खिलखिलाती हुई आओ।

विशेष—१. इन पंक्तियों में वसन्तकालीन रात्रि का चित्रात्मक वर्णन किया गया है और पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम कोई चित्र अनुशीलन कर रहे हों।

२. भाव-साम्य—यों तो ऋतु-वर्णन के अन्तर्गत वसन्त का वर्णन करने की प्रथा प्राचीन ही है पर छायावादी कवियों ने वसन्त ऋतु का वर्णन करते समय मानवीकरण प्रणाली का आश्रय ले मधुर चित्र अंकित किए हैं। महादेवी जी की भाँति श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी वसन्त की नायिका के रूप में कल्पना की है और 'अनामिका' नामक काव्य-संग्रह में तो उन्होंने वसन्त की परी के प्रति कहा भी है :

आओ, आओ फिर, मेरे वसन्त की परी—
छवि-विभावरी :
सिहरो, स्वर से भर-भर, अम्बर की सुन्दरी—
छवि-विभावरी :
बहे फिर चपल ध्वनि कलकल तरंग,
तरल मुक्त नव-नव छल के प्रसंग,
पूरित-परिमल निर्मल सजल-अंग,
शीतल-सुख मेरे तट की निस्तल निर्झरी—
छवि-विभावरी :

अलंकार—'वसन्त-रजनी' में नायिका का अंगों सहित आरोप होने से सांग-रूपक, 'मानवीकरण', अनुप्रास ।

पुलकित स्वप्नों ………………सिहरती आ वसन्त रजनी ।

शब्दार्थ—पुलकित स्वप्न=पुलकित कर देने वाले स्वप्न । कर में हो स्मृतियों की अंजलि=हाथ स्मृतियों से भरे हुए हों । दुकूल=दुपट्टा । अभिसार बनी =सम्मिलन के लिए सुसज्जित । सरित-उर=नदी की छाती । सुधा=अमृत, मकरंद । अवनी=धरती ।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि हे वसन्त की रात्रि पुलकित कर देने वाले स्वप्न ही तुम्हारी रोमावलि है और हाथों के मधुर स्मृतियों को लिए हुए, मलय पवन के चंचल दुपट्टे को धारण कर तुम नीली छाया के समान फैलती हुई संसार से अभिसार के लिए सुसज्जित होकर आओ ।

कवियत्री प्रभातकालीन सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहती है कि नदी के हृदय में लहरों की सिहरन होने लगी है और मकरन्द पूर्ण पुष्प खिल रहे हैं तथा न केवल प्रत्येक क्षण आनन्द विभोर है अपितु धरती भी प्रिय के आगमन की आहट सुनकर पुलकित हो उठती है, अतः हे वसन्त रजनी ! तुम सिहरती हुई आओ ।

विशेष—१. प्रस्तुत पंक्तियों में मानवीकरण की सहायता से वसन्त-रजनी को अभिसारिका नायिका का रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है और लाक्षणिकता व विशेषण-विपर्यय आदि का उचित निर्वाह हुआ है ।

२. इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह गीत छायावादी शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है और कोमल, मधु व चित्रात्मक शब्दों के प्रयोग पर विशेष ध्यान देने से वह—गीत—अत्यधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है । वस्तुतः महादेवी जी ने वसन्त रजनी की अभिसारिका नायिका के रूप में कल्पना करते हुए उसे प्रकृति के विविध आभरणों से सुसज्जित भी किया है अतः इस गीत में वसन्त वैभव का उपयुक्त परिचय प्राप्त हो जाता है और प्रकृति-चित्रण की मानवीकरण प्रणाली के भी दर्शन होते हैं ।

३. **अलंकार**—सांगरूपक, मानवीकरण, अनुप्रास ।

८. मधुर मधुर मेरे दीपक जल

मधुर मधुर ………………तुझमें मिल !

शब्दार्थ—आलोकित=प्रकाशित । विपुल=अधिक । सिन्धु=सागर । अपरिमित=असीम । विश्व शलभ=संसाररूपी पतंगा ।

व्याख्या—कवियत्री ने यहाँ अपने जीवन को दीपक मान लिया है और वह उसे सम्बोधित कर कहती है कि हे मेरे जीवन के दीपक तू धीरे-धीरे निरन्तर जलता रह और प्रतिदिन, प्रत्येक क्षण व प्रत्येक पल जलकर मेरे प्रिय के मार्ग में प्रकाश

बिखेर दे। कवियत्री अपने जीवन रूपी दीपक को सम्बोधित करते हुए कहती है कि तुम धूप बनकर सुगन्धि फैला दो और तुम्हारा कोमल शरीर संसार को दुखी देख मोम की भाँति द्रवित हो उठे तथा अपने जीवन के प्रत्येक अणु को विनष्ट कर संसार को प्रकाश का असीम सागर प्रदान करो।

कवियत्री अपने जीवन दीप से कह रही है कि समस्त शीतल, कोमल व नवीन वस्तुएँ तुझसे आग के कण माँग रही हैं और संसार रूपी पतंगा भी दुःखी होकर यह कहता है कि मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मैं तुझमें जल न पाया अर्थात् तेरे प्रेम में आत्म-विसर्जन न कर सका।

विशेष—कवियत्री ने इन पंक्तियों में यह स्पष्ट किया है कि मैं अपने जीवन में निरन्तर यह स्थिति रखूँ कि मेरे प्रिय मेरे हृदय में प्रवेश कर सकें और मेरा जीवन-दीप अपने प्रत्येक अणु को विनष्ट कर संसार को प्रकाश का असीम सागर प्रदान करे तथा जिस प्रकार पतंगा दीपक की ज्योति के प्रति आकृष्ट हो अपने आपको उसमें भस्म कर देता है और ऐसा न हो पाने पर विशेष विकलता की अनुभूति करता है, उसी प्रकार संसार भी साधना के स्वरूप को सीख सकने के कारण व्यथित है।

सिहर सिहर…… ……………चंचल।

शब्दार्थ—असंख्यक=असंख्य। स्नेहहीन=तेल हीन यहाँ प्रेम विहीन से भी अभिप्राय है। विहँस=हँसकर। द्रुम=वृक्ष। वसुधा=धरती। द्रुततर=तीव्र, अत्यधिक तेज। सुभग=सुन्दर।

व्याख्या—कवियत्री अपने जीवन-द्वीप को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि हे मेरे दीपक! तू सिहरते हुए जल और मैं तुझे ही जलने के लिए नहीं बल्कि यह सम्पूर्ण प्रकृति ज्वाला को धारण किए है। कवियत्री का कहना है कि आकाश में अगणित तेल-रहित तारों के दीपक जल रहे हैं और जल से पूर्ण सागर का हृदय भी जलता है तथा पानी से पूर्ण बादल भी बिजली की ज्वाला लिए रहता है, अतः हे मेरे दीपक! तू भी हंसते हुए जल!

कवियत्री कहती है कि वृक्ष के हरे व कोमल अंगों के मध्य अग्नि विद्यमान रहती है और बाँसों की रगड़ से उत्पन्न होने वाली आग सारे वन में फैल जाती है तथा इस जड़ धरती के भीतर भी आग है, अतः हे मेरे दीप तू भी प्रकाश बिखेरता हुआ जल! कवियत्री कह रही है कि हे सुन्दर दीपक! तू मेरी तेज आहों से बुझने का भय न कर, क्योंकि मैंने अपनी कोमल पलकों के आंचल में तुझे छिपा रखा है।

विशेष—कवियत्री ने यहाँ यह स्पष्ट करना चाहा है कि जिस प्रकार प्रकृति के विविध तत्व साधनाशील रहते हैं, उसी प्रकार जीवन को भी साधना रत होना

चाहिए और चूंकि सम्पूर्ण धरती के अन्तर में ज्वाला का वास रहता है, अतः कवियत्री भी अपने हृदय रूपी अंचल में जीवन की सुरक्षा के लिए पूर्णतः प्रयत्नशील है।

सहज ……………… आलोकित कर।

शब्दार्थ—सहज-सहज=धीरे-धीरे। लघुता=क्षुद्रता। अक्षय=कभी न खाली होने वाला। चिर=अमर। मदिर-मदिर=धीरे-धीरे।

व्याख्या—कवियत्री ने अपने जीवन-दीप को सम्बोधित कर कह रही है कि तुझे बुझने की अवधि का ध्यान न करना चाहिए, क्योंकि तेरा जीवन अनन्त है और जीवन का अन्त तो क्षुद्रता का प्रतीक ही है और तू तो सर्वदा से जलता आ रहा। कवियत्री अपने जीवन-दीप से कहती है कि अपने जीवन के अन्त की राह न देख, क्योंकि मैं कभी न खाली होने वाले अपने नेत्रों के खजाने से तुझसे अश्रु की बूंदें भरती रहती हूँ, अतः हे मेरे सजल दीपक! तू निरन्तर जलता रहे।

कवियत्री जीवन-दीप से कह रही है कि यह अपार अन्धकार व तेरा अमर प्रकाश निरन्तर नवीन खेल खेलते रहेंगे और एक ओर तो अन्धकार तुझे डुबाना चाहेगा तथा दूसरी ओर तू अन्धकार को जीतना चाहेगा पर तू निरन्तर अन्धकार को विजय करते हुए जल। कवियत्री का कहना है कि मेरे दीपक! तू अन्धकार के प्रत्येक कण में बिजली सा चमत्कार चित्र बनाता हुआ चल और इस प्रकार तुझे शान्तिपूर्वक जलते रहना चाहिए।

कवियत्री अपने जीवन-दीप से कहती है तू जितना ही जल-जल कर मिटता जाता है वह छली प्रिय उतना ही मेरे समीप आता है और जब मेरा प्रिय से सुखद मिलन हो तो तू प्रिय की निर्मल हँसी में मिलकर प्रसन्नतापूर्वक बुझ जाना अर्थात् प्रिय मधुर मिलन-सुख में अपने पृथक अस्तित्व को विलीन कर देना। कवियत्री कह रही है कि मेरे दीपक! तू धीरे-धीरे जल और प्रिय के मार्ग को प्रकाशपूर्ण कर दे।

विशेष—१. प्रस्तुत पंक्तियों में कवियत्री ने अपने साधनामय जीवन को ही धीरे-धीरे जलता हुआ एक दीपक माना है और उसे हमेशा प्रज्ज्वलित रहकर प्रिय का पथ आलोकित करने के लिए कहा है।

२. प्रस्तुत कविता में कवियत्री ने रूपक अलंकार की सहायता से जीवन को दीपक के रूप में ग्रहण कर दीपक के सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार जीवन पर घटित किये हैं और उन्होंने यही प्रतिपादन किया है कि जिस प्रकार दीपक निरन्तर प्रज्वलित रह कर साधना में लीन रहता है, उसी प्रकार जीवन को भी साधना-रत रहना चाहिए। साथ ही चित्रात्मक कथन प्रणाली को ग्रहण करने से कविता का सौन्दर्य और भी अधिक बढ़ गया है। काव्य में संगीतात्मक व मनोज्ञता के साथ-साथ चित्र के सदृश्य

नेत्र-रजकता की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए लेम्बर्न (Lamborn) ने The Rudiments of Criticism में कहा भी है—

'Poetry is formal beauty. So far as words will take as we may call it an atmosphere, a glamour investing the verse a kind of dreamlight not created but proceding it still in us a sense of some mysterious meaning not expressed by the words themselves, not even consciously intended by poet.'

९. मैं नीर भरी दुख की बदली

मैं नीर-भरी ……………… मचली।

शब्दार्थ—चिर-निस्पद=सनातन तथा अचल। कुन्दन=सोना। दीपक=वियोग की ज्वाला, बिजली। निर्झरिणी=आँसू, जल की धारा। स्वास=साँस वायु। स्वप्न-पराग=स्वप्न रूपी सुगन्ध। दूकूल=दुपट्टा, रंगीन बादल। मलय बयार=मलय पवन। क्षितिज भृकुटि=क्षितिज रूपी भौं। अविरल=निरन्तर।

सन्दर्भ और केन्द्रीय-भाव—प्रस्तुत प्रसंग में कवियत्री अपने को बदली के रूप में चित्रित करके करुण विरह के अश्रु प्रवाहित कर रही है।

व्याख्या—महादेवी जी कहती हैं कि मेरे जीवन में दुख का इतने व्यापक रूप में प्रसार हुआ है कि इस विषय में सहज ही यह धारणा की जा सकती है कि मेरा जीवन जलपूर्ण बदली के समान है। घटा का स्वरूप स्पन्दों से युक्त होता है, किन्तु आकाश की स्थिति निस्पंदन होती है। इसी प्रकार मेरे स्पंदनशील जीवन में सम्पूर्ण जड़ प्रकृति समाई हुई है। जिस समय मेघ-गर्जन की ध्वनि होती है उस समय वर्षा के अभाव में व्याकुल सम्पूर्ण सृष्टि में प्रसन्नता व्याप्त हो जाती है। इसी प्रकार जब मैं संसार की वेदनामयी स्थिति को देख कर उसके दुख में सहानुभूति का अनुभव कर हृदय में क्रन्दन करने लगती हूँ, तब वह दुखों से पूरित सृष्टि मानों पुलकित हो जाती है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में वायु मण्डल में सर्वत्र जुगुनुओं की व्याप्ति रहती है, उसी प्रकार मेरे नयनों में भी आशा का सन्देश निहित है और जुगनु रूपी दीपकों की भाँति उनसे सृष्टि में सर्वत्र आलोक फैल जाता है। आकाश की घटाओं में सरिता का विशाल जल-प्रवाह अन्तर्हित रहता है और उसके समान ही मेरे नेत्रों के पलकों में भी संवेदना के प्रभाव स्वरूप संसार की पीड़ा पर अश्रु बहाने के लिए पर्याप्त जल है।

विशेष—प्रतीक शैली।

मेरा पग-पग ……………… बयार पली।

व्याख्या—मेरे प्रत्येक चरण की गति में संगीन भरा हुआ है और मेरे स्वप्नों के प्रेंरित श्वासों से मानों मधुर पराग की वृष्टि हो रही है। आकाश इन्द्र से प्रेरित

श्वासों से मानों मधुर पराग की वृष्टि कर रहा है। जिस प्रकार इन्द्रधनुषी आभा मेरे हृदय में विशिष्ट रंगमय वस्त्र बुन डालती है, जिस प्रकार मानव-तन के छाया की अनिवार्य स्थिति रहती है, उसी प्रकार मेरे जीवन में भी छाया रूपी सुखों का सन्देश प्रदान करने वाली मलयाचल पर्वत भी सुगन्धित पवन प्रवाहित होती है। तात्पर्य यह है कि पीड़ा की अनुभूति के साथ-साथ मैं अपने जीवन में सुख की प्राप्ति का भी अनुभव करती हूँ।

विशेष—प्रतीक शैली अनुप्रास, रूपक और ध्वन्यात्मकता।

मैं क्षितिज .... निकली।

व्याख्या—आकाश में मघ-माला का प्रसार दूरवर्ती क्षितिज से प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार वह क्षितिज में धूमिल आकार धारण कर आती है उसी प्रकार मेरी भौंहों रूपी क्षितिज पर इस समय चिन्ता का धूमल प्रसार होता जा रहा है। वर्षा के बिन्दु संसार की शुष्क धूलि की सरसता प्रदान कर जाते हैं और अनेक नये पौधों को विकास के लिए अंकुरित कर जाते हैं। उसी प्रकार मैं भी सृष्टि की शुष्कता का अपनी संवेदनाशील भावनाओं के योग से सरसता प्रदान करती हूँ और मानव जीवन मे नवीन सौन्दर्य को अंकुरित करती रहती हूँ।

अलंकार—रूपक, अनुप्रास।

पथ कौन ....मिट आज चली।

व्याख्या—संसार में वर्षा ऋतु का आगमन शान्त रूप से होता है और वह आगमन-मार्ग को मलिन नहीं करती।

जिस प्रकार आकाश में आकर बादलों की जल वर्षा से आकाश की धूमिलता नष्ट हो जाती है और उसका रूप निखर जाता है और उसके चले जाने के पश्चात् आकाश में कोई अस्वच्छता शेष नहीं रहती है, उसी प्रकार करुणा की भावना से काव्य साहित्य का रूप विकृत अथवा दूषित नहीं होता है। जिस प्रकार श्रृंगार रस की भावनाओं से काव्य-साहित्य का रूप दूषित हो जाता है, प्रस्तुत करुणा की भावना से काव्य साहित्य का रूप उज्ज्वल हो जाता है। करुणा की भावना हृदय में उस प्रकार वासना अथवा कुसंस्कार नहीं छोड़ जाती है, जिस प्रकार श्रृंगार रस की अनुभूति हृदय में कुवासनायें और वासना छोड़ जाती है।

जिस प्रकार बदली के आकाश में आने की आशा से हृदय में एक हर्ष की तरंग खिल जाती है, उसी प्रकार करुणा की भावना की जागृति से हृदय में एक सुख की लहर विकसित होती है।

जिस प्रकार बदली आकाश में एक ही कोने में नहीं रहती है वरन् आकाश में सर्वत्र विचरण करती है उसी प्रकार मेरे हृदय में करुण भावना किसी एक विशेष मानव वर्ग या राष्ट्र के प्रति नहीं है, प्रत्युत् विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति है।

करुणा की भावना रूपी बदली कहती है कि मेरा इतना ही परिचय और इतना ही इतिहास है कि कल मैं हृदय रूपी आकाश में उमड़ी और आज जन-मन-गण को हरा-भरा करके मिट चली हूँ।

विशेष—इस कविता में कवियत्री ने अपने को पानी से भरी करुणा की बदली बतलाया है। उपमा अलकार के सहारे उन्होने अपनी करुणा का उद्देश्य पल्लवित किया है।

१०. प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन

केन्द्रीय-भाव—इस कविता में महादेवी वर्मा ने अपने जीवन की सान्ध्य-कालीन आकाश से तुलना की है।

प्रिय सान्ध्य……………………चितवन।

शब्दार्थ—विराग=विरक्ति। वीतराग=संसार के पदार्थों से अनासक्ति। सुधि भीने=स्मृतियों से सुगन्धित। साध=अभिलाषा।

व्याख्या—हे प्रिय! मेरा जीवन सन्ध्या के आकाश की तरह है। सन्ध्या के आकाश में जिस प्रकार धुँआ, गहरी छाया और अरुणिमा दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार मेरे जीवन के आकाश में विरक्ति का धुँआ, सुहाग की लालिमा फैली है। मेरा शरीर छाया के समान आकर्षण रहित हो गया है तथा इस विराग के आकाश में स्मृतियों के रंगीन मेघ उठ रहे हैं।

कवियत्री का कहना है कि सन्ध्या के समान आकाश में सुनहरापन होता है और धीरे-धीरे सघन अन्धकार फैलने लगता है तथा उस शान्त वातावरण में संध्या व आकाश का मिलन होता है। कवियत्री कह रही है कि मेरी अभिलाषाओं का सुनहला प्रकाश सर्वत्र बिखरा हुआ है और मेरे दुःख का अंधकार चारों ओर घिर रहा है तथा मेरी अश्रु पूर्ण हँसती हुई दृष्टि में संध्या व आकाश का शान्त मिलन दृष्टिगोचर होता है।

विशेष—यहाँ संध्या गगन का मानवीकरण प्रणाली से सुन्दर चित्रण किया गया है।

लाता भर……………चल क्षण।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि संध्या के समय पवन नदी के किनारों से सुगन्धि भर कर लाता है और जल में कुमुदिनी खिलने लगती है तथा मेरी साँसों की वायु ही इस जगत् मे स्मृतियों की सुगन्धि भर कर ला रही है। कवयित्री का कहना है कि संध्या के इस सुन्दर उदय को देखकर मेरे हृदद में स्मृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं और इस संसाररूपी सरिता के जीवन व मृत्युरूपी किनारे सुरभित हैं तथा मेरे रोम-रोम में कमल से वन खिल रहे हैं।

कवियत्री कहती है कि आज रात्रि के आदि और दिवस के अन्त का मिलन हो रहा है तथा रात्रि व दिन के परिणय से आदि व अन्त अधिक रम्य हो उठे हैं। कवियत्री का कहना है कि आँसू के बहाने ओस की बूंदें गिर रही हैं और मेरी स्मृतियों के चंचल क्षण ने ही ध्रुव नक्षत्र का रूप धारणा कर लिया है।

विशेष—यहां प्रकृति का सुन्दर मनोमुग्धकारी वर्णन किया गया है प्रकृति-चित्रण की प्रत्यक्ष प्रणाली के साथ-साथ अलंकृत प्रणाली के भी दर्शन होते हैं।

इच्छाओं का .... पाहुन।

शब्दार्थ—शर=तीर। द्रुत=तेज। सुख-दुख विहग=सुख दुख रूपी पक्षी। पाहुन=अतिथि।

व्याख्या—कवियत्री कहती है जब किरणरूपी इच्छाओं के शीघ्रगामी व पतले बाण इस अनन्त आकाश में चुभते हैं, तो वह नक्षत्ररूपी फूलों के रूपों में प्रकट हो जाते हैं और संध्या के समय प्रकाश की किरणें आकाश में विलीन हो जाती हैं तथा नक्षत्र भी उदय हो जाते हैं। अतः अभिलाषायें मन में आशा के फूल खिलाती हैं, अर्थात् मन में नयी-नयी इच्छायें उत्पन्न होती हैं।

कवियत्री कह रही है कि सुख-दुःख रूपी पक्षी अपने निवास स्थान की ओर लौट चले हैं और मेरा सुख दुखमय जीवन समाप्त होने वाला ही है तथा जड़-चेतन दोनों प्रकार की बस्तुओं से रहित मेरा संसार रूपी पथ भी विलीन हो रहा है। कवियत्री का कहना है कि मेरे जीवन का अन्त निकट है। अतः हे मेरे प्रिय ! तुम मेरी पलकों में उतर आओ और नेत्रों में समा जाओ।

विशेष—१. प्रस्तुत पंक्तियों में कवियत्री की सूक्ष्म प्रकृति-पर्यवेक्षणी-शक्ति और नवीन उद्भावनाओं के दर्शन होते हैं।

२. अपनी अधिकांश काव्य-रचनाओं की भाँति इस कविता में कवियत्री ने प्रकृति को साधना के विकास में योग प्रदान करते हुए अंकित किया है और वह सांध्य प्रकृति के विविध उपकरणों का उल्लेख करते हुए उनका मानवीय साधना से सम्बन्ध भी स्थापित करती है, अतः साधना-पथ चित्रण की यह प्रवृत्ति कवियत्री की मौलिक देन ही है और हिन्दी के अन्य रहस्यवादी कवियत्री की उक्तियों में इस प्रकार के उदाहरण उपलब्ध नहीं होते। साथ ही रूपक अलंकार का भी इस कविता में बहुत ही सफल व सुन्दर प्रयोग किया गया है और जीवन को सान्ध्यगगन के तुल्य कह कर सम्पूर्ण कविता में रूपक-निर्वाह के लिए व्यापक पृष्ठभूमि की योजना भी की गई तथा अनुप्रास व अपन्हुति का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

११. पथ मेरा निर्माण बन गया

सन्दर्भ—प्रस्तुत कविता में श्रीमती महादेवी वर्मा ने स्वप्न में प्रिय मिलन की स्थिति का भावग्राही चित्रण किया है।

पथ मेरा ………………… लय सन्धान बन गया ।

शब्दार्थ—विद्युत लोक=बिजली का जगत, प्रसन्नता का संसार । रेणु=धूल । हिमतरल=शीतल व चंचल । उफान=तूफान । अंजन-वन्दना=काले मुख की, अन्धकार से घिरी हुई । चित्रित अवगुण्ठन=रंगीन वस्त्र, रंग-बिरंगे बादलों का वस्त्र । मरकत वीणा=नीलम की वीणा, अन्धकार की वीणा । संधान=खोज, युक्त ।

व्याख्या—कवियत्री कह रही है कि मेरा मार्ग ही मेरे लिए निर्वाण बन गया और मेरा प्रेम-पथ व विरह व्यथा मेरे लिए निर्वाण के सदृश सुखपूर्ण व रम्य है तथा इस रास्ते पर पड़ने वाला मेरा एक-एक पग सैकड़ों वरदान की भांति आनन्द-दायक है । कवियत्री कहती है कि आज मेरे थके हुए चरणों ने निराशा के शून्य अन्धकार में आशा व आनन्द के एक नवीन लोक का निर्माण किया है और मेरी धुंधली छाया से चाँदनी की धूल के सदृश शान्ति व करुणा बरस रही है तथा प्रलय के भयंकर बादल भी गलकर शीतल व चंचल अश्रुओं के रूप में बदल गये हैं, अर्थात् भयंकर आपदायें भी अब सरल हो गई हैं । कवियत्री का कहना है कि मेरे इस हर्ष-पूर्ण क्षणों में सम्पूर्ण प्रकृति भी प्रसन्नता से फूली नहीं समाती और अज्ञानता व निराशा की राशि बीत चुकी तथा आनन्द का वैभव सर्वत्र फैल रहा है ।

कवियत्री कह रही है कि आश्चर्यपूर्ण काली दिशाओं ने प्रभात के समय रंगीन मेघों का सुन्दर वस्त्र पहन रखा है और रात्रि ने अपनी नीलम की वीणा पर सुनहली किरणों के तार संभाल लिए हैं तथा प्रभात बेला में पक्षियों का संगीत भी गूँज रहा है । कवियत्री कहती है मेरे स्पन्दन से तूफान का भयंकर गर्जन मधु संगीत में परिवर्तित हो चुका है अर्थात् कवियत्री अपने हृदय के वेग से झंझावात का संचालन करती है ।

विशेष—इन पंक्तियों में प्रकृति मनोभावनाओं को साकार रूप प्रदान करने में समर्थ रही है ।

पारद ………………… समान बन गया ।

शब्दार्थ—पारद=पारा एक चंचल धातु जिसे हाथ में पकड़ सकना अति कठिन होता है । चंदन चर्चित=चन्दन छिड़का हुआ । घनसार=कपूर । आलेपन=लेप । मधुपर्क=स्नेहमय पराग, चरणामृत, जो घी मधु, दही तथा चीनी तुलसी दल आदि के साथ बनाया जाता है ।

सन्दर्भ और व्याख्या—महादेवी कहती हैं कि जब प्रियतम से मेरी भेंट हुई तो यह सम्पूर्ण सृष्टि ही परिवर्तित हो गई । पर्वतों की इन हिम रूप शिलाओं ने गल-गल

कर यानी पारा का रूप धारण कर लिया है और आकाश चन्दन की सुवास से परिपूरित होकर आँगन के समान बन गया है। पृथ्वी की रज मानो अंगों को शान्त करने के लिए विविध प्रकार के अंगराग एवं कपूर के समान ही शान्तिदायी बन गई है। सूर्य की धूप अब सुन्दर सुगन्धित लेप का काम देती है। जो काँटे (सांसारिक क्लेश) विष के दाहक प्रतीत होते थे, वे अब कलिकाओं के गर्भ में छिपे स्नेहमय मधुर पराग के समान सुखद बन गए हैं। इस प्रकार प्रकृति का सम्पूर्ण रूप ही आज मुझे बदला हुआ दिखाई देता है। अर्थात् आज प्रिय के दर्शन साक्षात्कार के कारण, मेरा अन्तर बाह्य सम्पूर्ण परिवर्तित हो गया।

विशेष—यहाँ पर यह भाव व्यक्त होता है कि प्राकृतिक सौन्दर्य को मानव अपनी आन्तरिक भावनाओं के अनुरूप ग्रहण करता है। जब उसके मानस में प्रसन्नता होती है तो उसकी सम्पूर्ण प्रकृति हँसती खिलखिलाती प्रतीत होती है, किन्तु जब उसे कष्ट होता है तो वह सारे पदार्थों को कष्टदायक रूपों में ग्रहण करता है, जैसा कि महादेवी जी के ही पूर्व गीतों में देखा गया है।

अलंकार—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा।

१२. पंथ होने दो अपरिचित

सन्दर्भ—यह गीत 'दीप शिखा' से संग्रहीत है। इसमें साधना-रत प्राणों को 'दीप शिखा' का प्रतीक माना गया है। जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर दूसरों को आलोक देता है, इसी प्रकार कवियत्री स्वयं वेदना में गलकर लोक-मंगल की कामना करती है। उसकी विरह-व्यथा विश्व-हित में समर्थ है, उसमें ओज, साहस और विराट धैर्य है। उसके लिए वेदना सम्बल है, अतः साधना-मार्ग निर्वाण बन गया है। प्रति पद पर शत-शत वरदान उसका स्वागत करते हैं।

पंथ होने दो .... स्वर्ण बेला।

शब्दार्थ—निर्माण-उन्माद=सृजन के आकांक्षी।

व्याख्या—यदि मेरा कार्य नया है, यदि इस मार्ग पर चलने वाली मैं अकेली ही हूँ तो भी कोई चिन्ता नहीं। वे कोई दूसरे पाँव होंगे जो पथ की विषमताओं से हार जाते हैं। वे दूसरे ही व्यक्ति हैं जो मार्ग की बाधाओं से भयभीत होकर अपना निश्चय तोड़कर वापिस आ जाते हैं। करुणा का व्रत लेने वाले और सृजन के आकांक्षी मेरे चरण तो अनन्त पथ को भी पार करने का साहस रखते हैं। निरन्तर अपने मार्ग पर चलकर ये चरण ही अन्धकार में डूबी हुई सृष्टि में उषाकाल का सुनहला प्रकाश फैला देंगे, कष्टों और व्यथाओं से भरे हुए जीवन में हर्ष का प्रकाश भर देंगे।

दिनकर

धर्मराज (कुरुक्षेत्र)

कथासार—इस अन्तिम सर्ग में कवि ने साम्यवाद, भाग्यवाद, पलायनवाद और कर्त्तव्य-परायणता का बहुत सुन्दर एवं तर्कपूर्ण विश्लेषण किया है। उसका कहना है कि मनुष्य ही से पाप बन जाते हैं और प्रयत्न करने पर पापी भी पुण्यात्मा बन सकते हैं। मनुष्य को जीवन से घबराना नहीं चाहिए। सूर्य और चन्द्रमा भी ग्रसित होते हैं और फिर भी आगे चलकर मुक्ति-लाभ कर फिर अपने कर्म में निरत होते हैं। यह जीवन-पथ बहुत लम्बा है। प्रत्येक के जीवन में कोई न कोई धब्बा लग ही जाता है। परन्तु मनुष्य को इससे निराश और अकर्मण्य नहीं हो जाना है। उसे तो जीवन-पथ को सुगम बनाने का सतत् प्रयत्न करना है।

केवल ज्ञानमयी निवृत्ति से,
दुविधा न मिट सकती है।
जगत छोड़ देने से मन की,
तृषा न घट सकती है॥

अतः हे धर्मराज ! तुम मन पर नियन्त्रण करके कर्त्तव्य करो और प्रजा को सुखी बनाओ इसी प्रकार से पृथ्वी पर स्वर्ग का उतारना सम्भव हो सकता है, अन्यथा नहीं।

धर्मराज…………भुवन की।

शब्दार्थ—प्रदाह=ज्वाला। समूह=समस्त।

व्याख्या—तप और पुण्य कार्य करने के लिए वन ही नहीं अपितु यह पृथ्वी भी बहुत बड़ी है। यहाँ असंख्य दीन और दुर्बल सहायता के लिए दीन पड़े हुए हैं, उन पर करुणा करो। उनको अन्य, वस्त्र, जल दो और सहानुभूति पूर्ण भाषा में उनसे बात करो। उनकी टूटी आशा को बँधाओ। इस प्रकार तुम जग का बहुत बड़ा उपकार कर सकते हो। इस विपन्न समाज को भी उस ज्ञान की आवश्यकता है जिसे तुम पा चुके हो। इनको जीवन का वह आदर्श बता देना है, जिसे तुम प्राप्त कर चुके हो। युधिष्ठर तुम संसार के दुखी प्राणियों के दुखों को देखो। फिर मिलान करो कि जिस दुःख से दुखी होकर तुम संसार त्याग रहे हो, उसी दुःख से ये भी दुखी हैं।

यदि सन्यास शोध…………असंख्य प्राणों से।

शब्दार्थ—शोध=उपाय। रागानल=विषय जन्य दाह। दग्ध=जले हुये। क्षत-विक्षत=घायल।

व्याख्या—यदि सन्यास लेने से दुःखों की निवृत्ति हो सकती है, तो अकेले ही

अकेले उसे स्वीकार मत करो । सभी तो तुम्हारी भाँति दुखी हैं । उन सबको दुःख से मोक्ष का मार्ग बताओ । युधिष्ठर ! विषयाग्नि से सारा संसार जल रहा है, उसको दुःखों से बचाओ । पृथ्वी के ऊपर अमृत बरसा कर उसे शीतल कर दो । तुम्हें सिंहासन पर बैठकर जन-सेवा योजना जन-सेवा करनी है । अतः वन में जाकर सिंहासन का अधिकार मत छीनो । अपने मन को थोड़ा नियन्त्रित करो और अपने कर्त्तव्य को समझो । इस युद्ध के परिणाम स्वरूप सारे भारतवर्ष में त्राहि-त्राहि मची हुई है । अतः तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है कि इस असंख्य प्राणियों को दुःख से निवृत करो ।

अलंकार—'रागानल' में रूपक, 'अंग-अंग' और 'त्राहि-त्राहि' में पुनरुक्ति प्रकाश ।

कोलाहल है, महा.......समर-संभीता ।

शब्दार्थ—विवर = मुख बिल । द्रुत = शीघ्र । संभीता = डरी हुई ।

व्याख्या—आज बड़ी भारी विपत्ति पड़ी हुई है । सारा विश्व त्राहि-त्राहि कर रहा है । जो स्त्री पुरुष इस नरमेघ मे जीवित नच रहे हैं, वे दुःखों से छट-पटा रहे हैं । इन तड़पते हुए चेतन प्राणियों को छोड़ कर तुम जड़ वन को कैसे अपनाओगे और ऐसा करके तुम्हें कौन सी शान्ति मिलेंगी ? अतः पश्चात्ताप और रोना छोड़कर शीघ्र राजभवन में जाओ । तुम असंख्य मनुष्यों के बीच में खड़े होकर उनको आशा बँधाओ । गीता का उपदेश तुम्हें याद ही होगा, अतः निष्काम कर्म करो । इस समय युद्ध से भयभीत पृथ्वी को तुम्हारी सहायता की बड़ी भारी आवश्यकता है ।

अलंकार—'मृत्यु-विवर' में रूपक, 'नरनारी' और 'समर संभीता' में अनुप्रास ।

इस विविक्त आहत..........भुवन का ?

शब्दार्थ—विविक्त = अकेली । आहत = दुखी । हतबंधु = जिनके बन्धु मारे गये हैं । विषण्ण = दुखी ।

व्याख्या—इस दुखिया और मृत प्रायः पृथ्वी को अमृत पिलाकर फिर सचेत करना चाहिए । तुम्हें दीन दुखियों के हृदय को फिर से आशा और हर्ष से भर देना होगा । जिन व्यक्तियों के बन्धु-बाँधव युद्ध में मर गये हैं, उनके आँसुओं को पोंछना तुम्हारा कर्त्तव्य है । दुखिया और मुरसाये हुये अधरों को फिर से हँसी से युक्त करना चाहिए । धर्मराज ! जो इस संसार से विदा हो चुके हैं, वे तो अब दुख मिटाने को आवेंगे ही नहीं । अब तो जीवन का भार जो जीवित रह गया है उसको ढोना पड़ेगा । दुर्योधन की मृत्यु हो चुकी है अतः अब प्रजा का भार तुम्हारे कन्धों पर आ पड़ा है यदि इसे तुम नहीं सँभालोगे तो फिर कौर सँभालेगा ?

मिट्टी का यह भार...............विलीन हो जाये ।

शब्दार्थ—व्योम-प्रवासी=आकाश में रहने वाला, कल्पना जगत् में रहने वाला। सम्यक्=भली प्रकार।

व्याख्या—हे युधिष्ठिर ! अब तुम कर्मठ बन कर इस उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार से संभालो। कल्पना का अनुसरण कर के मनुष्य कुछ भी प्राप्त प्राप्त नहीं कर सकता। आकाश में कुछ भी नहीं रक्खा है वह तो सब शून्य है। जो सार वस्तु है वह तो जीवन और पृथ्वी में निहित हैं। मनुष्य यदि प्रयत्न करे तो इसी पृथ्वी पर सब कुछ प्राप्त कर सकता है। जो लोग इस जीवन में विजयी होते हैं आकाश तो उनके पास स्वयं ही आ जाता है। अतः इसी पृथ्वी को तुम इस भाँति धर्म पूर्वक सँभालो जिससे कि तुम्हारे यश पर कोई धब्बा न लग जाय। यदि तुम इस प्रकार कार्य करोगे तो तुम्हारे यश शरीर का कभी भी नाश नहीं होगा।

अलंकार—'शून्य-शून्य' में पुनरुक्तिप्रकाश।

और सिखाओ भोगवाद..........से ऊपर है।

शब्दार्थ—आधिपत्य=अधिकार। साध्य=सब कुछ। बल्कल=छाल के वस्त्र। अन्तर्वासी=जीवात्मा।

व्याख्या—प्रजा को भी तुम अपने आदर्श से कर्तव्य-परायण बनाओ और उन्हें यह शिक्षा दो कि वे शरीर को मन पर न्यौछावर करदें, मन को देह पर नहीं। जिस दिन मन मनुष्य के वश में हो जावेगा उस दिन उसके जीवन से भोग-वासनाओं की आसक्ति निकल कर त्याग और तपस्या उसका स्थान ले लेंगी। जिस दिन मनुष्य यह समझने लगेगा कि धन-सम्पत्ति मनुष्य जीवन में साधन मात्र हैं, साध्य नहीं है। मनुष्य धन के लिए नहीं जीवे बल्कि जीने के लिए धन को एक साधन मात्र समझे। जिस दिन मनुष्य के बीच का व्यवधान दूर हो जायेगा सब मनुष्य उस परमात्मा के अंश समझे जाने लगेंगे। जिस दिन मनुष्य हानि, लाभ, दरिद्रता और सम्पन्नता से ऊपर उठ जायगा और जब वह ईश्वर परायण हो जायेगा तब उसके जीवन में कोई अभाव नहीं रहेगा। जीवन में पूर्ण शान्ति आ जायगी।

अलङ्कार—'जन-जन' में पुनरुक्तिप्रकाश।

जिस दिन देख उसे..........मानव की महा विजय का।

शब्दार्थ—ध्वनित=शब्दायमान।

व्याख्या—जिस दिन मानव अपने ज्ञान के बल पर अपने वास्तविक रूप को जान जायगा उस समय मुकुट और बल्कल के पचड़े में उसकी बुद्धि नहीं पड़ेगी। वह इनसे ऊपर उठ जाएगा। उस दिन उसके सौभाग्य उदय का सुन्दरतम प्रभात होगा। उसकी पूर्ण विजय उसी दिन होगी।

धर्मराज, गन्तव्य देश..........तप निर्मल से।

व्याख्या—धर्म राज अभी तुम्हारा गन्तव्य स्थान बहुत दूर है। अब देर मत करो। अभी कार्य बहुत करना है। अभी मनुष्य अपने कार्य में बहुत पिछड़ा हुआ

है। तुम अपने आदर्श के सहारे उसे प्रगति की ओर और अग्रसर करो। मनुष्य-मनुष्य की हत्या करता है यह एक महान् पाप की बात है, परन्तु इस बात को भी मत भूलो कि मनुष्य को लाभ पहुँचाने के लिए मरना भी पड़ता है। मनुष्य जीवन में लोभ, मोह, प्रतिहिंसा, शत्रुता आदि अनेक उलझनें हैं, परन्तु इनसे छुटकारा पाने के लिए मनुष्य के सामने तप, त्याग और बलिदान आदि अनेक उपाय भी हैं। मनुष्य इनका सहारा लेकर अपने जीवन को सुख सम्पन्न बना सकता है। तुम अपने आदर्शों के आधार पर जनता में तप, त्याग और बलिदान की भावना भर दो। अपने पुण्य चरित्र से जनता को भी पवित्र चरित्र वाली बना दो। प्रजा सदैव राजा का अनुकरण करती है।

मत सोचो दिन रात…………नपी तुली परिभाषा।

शब्दार्थ—निरत = संलग्न। क्रन्दन = करुणा पूर्ण रोना।

व्याख्या—यही मत सोचो कि मनुष्य सदैव पाप ही में फँसा रहता है। पाप के बाद जब मनुष्य को पश्चाताप होता है तो वही फूट-फूट कर रोता है। अपने कुकृत्यों पर पश्चाताप स्वरूप आँसू बहाना यह मानव की सब से बड़ी आशा है। मनुष्य के इस प्रकार के व्यवहार पर प्रतीत होता है कि अभी पृथ्वी तल से मानवता का अस्तित्व नहीं उठा है। मनुष्य का पाप ज्वाला में फँसकर यही जलना सत्य वस्तु नहीं है। पाप के बाद उसे बल पूर्वक अपने को शुद्ध करके आगे बढ़ना ही सत्य है।

जो लोग पुण्य-व्रत धारण करके संसार का उपकार करते हैं, वे अपना कल्याण तो करते ही हैं, साथ ही उनसे प्रेरित होकर पापी लोग भी अपने पापों का पश्चाताप करके शुद्ध होकर मानव-समाज के समाने एक बड़ी आशा प्रस्तुत करते हैं। पाप और पुण्य दोनों ही जीवन का सुधार करने वाले हैं। मनुष्य जीवन इन दोनों के बीच से होकर निखरता है। मनुष्य जीवन की प्रसन्नता में अवसाद छिपा हुआ है और अवसाद में प्रसन्नता की आशा झलकती है। इस नश्वर जीवन की यही नपी तुली परिभाषा है।

आशा के प्रदीप…………प्रीति से।

शब्दार्थ—भीति = भय। लिप्त = फँसी हुई। माप = मापदण्ड।

सन्दर्भ—प्रस्तुत कथन भीष्म का युधिष्ठिर के प्रति है। वे उनको आशा का संदेश देते हुए कह रहे हैं :

व्याख्या—हे धर्मराज! आज प्रजा युद्ध के परिणामों से भयभीत है। अतः तुम आशा का प्रदीप प्रज्वलित करो। इससे प्रजा युद्ध के भय से छूट जायगी। तुम्हारे तप-त्याग पूर्ण आदर्श से प्रजा भी विषमताओं से मुक्त होकर न्याय पूर्ण जीवन व्यतीत करने लगेगी। मनुष्य वास्तविकता को समझने के बाद जय और पराजय को एक समान समझकर सदैव कर्त्तव्य-परायण बना रहेगा। स्नेह और बलिदान ही

मनुष्यता को नापने वाले मापदण्ड होंगे। इस प्रकार मनुष्य प्रेम और शान्ति से जीवन व्यतीत करता हुआ पृथ्वी को स्वर्ग बना देता है।

विशेष—यहाँ कवि का यह सन्देश है कि—धर्म, तप और त्याग की रक्षा सदैव शक्ति से ही होती है। द्वापर में पाँडवों ने इन भावनाओं का सहारा लिया, किन्तु बिना युद्ध के अन्यायी दुर्योधन न झुका। भीष्म यही बात युधिष्ठर से कहते हैं :

क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल,
सब का लिया सहारा ?
पर नर व्साघ्र सुयोधन तुमसे,
कहो कहाँ कब हारा ?

यह दशा आज भी है, क्योंकि इन भावनाओं के कारण भारत का अस्तित्व आज संघर्ष के युग में सुरक्षित नहीं है। अतः शक्ति बल भी चाहिए। क्योंकि :

तप का परन्तु वश चलता नहीं सदैव,
पतित,समूह की कुवृत्तियों के सामने।

और :

हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे;
काम आता है बलिष्ठ शरीर ही।

शक्ति के अभाव में दया, क्षमा, मनोबल आदि की दुहाई देना कायरता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भीष्म ने युधिष्ठिर से स्पष्ट कहा है :

क्षमा, दया, तप, तेज, मनोबल,
की दे वृथा दुहाई।
धर्मराज व्यंजित करते तुम,
मानव की कदराई।

अतः कवि का उद्देश्य स्पष्ट है कि वह कोरी तपस्या, धर्म, त्याग आदि का पक्ष-पाती नहीं है। वह चाहता है कि इन दैवी भावों की रक्षा के लिये शक्ति भी होनी चाहिए।

कव्य-सौन्दर्य—१. 'आशा के प्रदीप' में रूपक अलंकार।
२. कवि ने भविष्य में युद्धों के शमन का आशामय सन्देश दिया है।

समर शेष है

विषयवस्तु का विश्लेषण—स्वतन्त्रता-संग्राम और भारतीय वीरों के बलिदान के स्वरूप भारत स्वतन्त्रता हुआ। परन्तु राजनैतिक स्वतन्त्रता से देश की सम्यक्

समृद्धि नहीं हो सकती । इस कविता की रचना दिनकर जी ने सन् १९५३ में की । भारत आर्थिक-सामाजिक विकास के क्षेत्र में इतना पिछड़ा हुआ था कि कवि की दृष्टि से राजनैतिक स्वतन्त्रता पा लेने मात्र से ही स्वतन्त्रता-संग्राम की समाप्ति नहीं होती है । अभी तो "समर शेष है" अभी युद्ध की बेला नहीं गई और न शान्ति से डोलने का ही समय आया है । अभी तो भूख से समर करके उससे देश को मुक्त करना है ।

अब भी संसार में गहन अन्धकार छाया हुआ है । वहाँ के दृश्य देखो । अब भी लज्जा ढकने के लिए वस्त्र और शिशुओं को पीने के लिए दूध नहीं मिलता । वहाँ का जन-जन व्याकुल होकर प्रश्न करता है कि सात वर्ष व्यतीत हो जाने पर स्वराज्य कहाँ अटका रह गया !

"देख जहाँ का दृश्य आज अन्तस्तल हिलता है ।
माँ को लज्जा-वसन और शिशु को न क्षीर मिलता है ।
पूछ रहा है जहाँ चकित जन-जन देख अकाज ।
सात वर्ष हो गये, राह में अटका कहाँ स्वराज ।"

स्वराज्य के पश्चात् दिल्ली की शान बदल गई । वह रानी बन गई, किन्तु जनता वेदना में तड़प रही है । सारा प्रकाश बन्दीगृह में बन्द हो गया है । इसे बन्धन-मुक्त करने के लिए अब भी समर शेष है । कवि दिल्ली को सम्बोधन करता हुआ कहता है :

"समर शेष है यह प्रकाश, बन्दीगृह से छूटेगा ।
और नहीं तो तुझ पर पापनि ! महांवज्र टूटेगा ।"

जो स्वराज्य हमको मिला है, उसको सत्य बनाने के लिए समर शेष हैं । हमारे प्रगति के मार्ग में अभी बहुत से पर्वत खड़े हुए हैं, जो जो सार्ग को रोक रहे हैं यदि वे हमारे सामने झुक गये, तो संसार में उनको यश मिलेगा, यदि ने डटे रहे, तो जन-रोष की धारा में पत्तों की तरह वह जायेंगे ।

"समर शेष है, इस—स्वराज्य को सत्य बनाना होगा ।

'जन-गंगा खुलकर लहराये, इसके लिए अभी समर शेष है । विषमता को खण्ड-खण्ड करने के लिए अभी समर शेष है :

"खण्ड-खण्ड हो गिरे विषमता की काली जंजीर ।"

अभी संसार में मनुष्य-भक्षी गर्जना कर रहे हैं । उनको नष्ट करने के लिए समर शेष है । वे गाँधी का रक्त पी चुके हैं और जवाहरलाल पर भी उनको क्रुद्ध दृष्टि है । इनका अहंकार नष्ट करके धर्म की स्थापना करने के लिए समर शेष है । इनके नष्ट होने पर ही देश में गाँधी और जवाहरलाल अभय होकर विचर सकेंगे ।

"समर शेष है, अभी मनुज-भक्षी हुँकर रहे हैं।
गाँधी का पी रुधिर जवाहर पर फुंकार रहे हैं।
समर शेष है, अहंकार इनका हरना बाकी है।
वृक को दंत-हीन अहि को निर्विष करना बाकी है।
समर शेष है, शपथ धर्म की, लाना है वह काल।
विचरे अभय देश में गाधी और जवाहरलाल।"

गाँधी की सेना को देश भर में सावधान रहना है, जिससे दस्यु कहीं दुष्काण्ड न रचने पायें। अभी मन्दिर और मस्जिद की एकता के लिए समर शेष है।

इस कविता में दिनकर जी ने बड़े ओजस्वी शब्दों में तत्कालीन स्थिति का चित्रण करते हुए देश-रक्षा के लिए सावधान रहने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या

ढीली करो..........हिन्दुस्तान।

शब्दार्थ—कश=मुँह बाँधे। वेला=समय। वन्हि=अग्नि। कुंकुम=रोली। श्रोता=सुनने वाला।

सन्दर्भ—यहाँ कवि भारत की व्यथा का वर्णन कर रहा है :

व्याख्या—तुमसे यह किसने कहा था कि युद्ध का समम समाप्त हो गया है और शान्ति आ गई है। अतः तुम धनुष-वाण उठाकर रख दो। तुमसे यह किसने कहा था कि हृदय को अग्नि-वाण से और अधिक बेधो और संसार को पुण्य, रोली और केशर से भर दो। मैं कुंकुम का लेप किस प्रकार करूँ और किसको कोमल गान सुनाऊँ, जब कि मेरी आँखों के सामने व्यथा से भरा हुआ भारत तड़प रहा है।

फूलों की रंगीन...........संसार।

शब्दर्थ—हलाहल=भयंकर।

व्याख्या—ओ धनियो और नेताओ! तुम फूलों की रंगीन लहर पर इतरा रहे हो। अर्थात् अपनी रंगरेलियों में डूबे हुए हो। हे रेशमी नगर दिल्ली के निवासियों! तुम अपनी शोभा में मतवाले हो रहे हो। सारा देश तो व्यथा के घोर-विष से भरा हुआ है, किन्तु तुम्हारी दिल्ली में हाला उड़ेली जा रही है। अब प्रकाश केवल दिल्ली में ही शेष रह गया है। शेष सारा भारत अन्धकार से परिपूर्ण है। तुम मखमल के पर्दों और फूलों में भूले हुए हो, किन्तु इनके उस पार मरघट का संसार बसा हुआ है।

वह संसार..............स्वराज्य।

शब्दार्थ—क्षितिज=वह स्थान जहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते हुए से दिखाई देते हैं। अम्बर=आकाश। तिमिर वरण=अन्धकार से भरा हुआ। क्षीर=दूध।

व्याख्या—यहाँ कवि स्वराज के पश्चात् भारत की गरीबी और दयनीय दशा

का वर्णन करता हुआ कह रहा है कि अभी इस देश में प्रकाश की किरण तक नहीं आई है। यहाँ क्षितिज अभी तक शून्य है और आकाश अन्धकार से भरा हुआ है। यहाँ की दयनीय दशा को देखकर अभी तक हृदय काँप उठता है। यहाँ माँ को अपनी लज्जा ढकने मात्र को वस्त्र नहीं मिल पाते और शिशु को दूध नही मिल पाता। यहाँ का प्रत्येक मनुष्य यह दुर्दशा देखकर कहता है कि सात वर्ष की अवधि व्यतीत हो जाने पर भी अभी स्वराज कहाँ अटका हुआ है।

अटका कहाँ स्वराज्य…………टूटेगा।

शब्दार्थ—अटका = रुका। विभा = प्रकाश।

व्याख्या—यहाँ कवि दिल्ली को सम्बोधन करता हुआ कह रहा है कि हे दिल्ली! तू ही बता कि आया हुआ स्वराज्य कहाँ अटक कर रह गया है। तू तो रानी बन गई। लेकिन जनता क्यों वेदना सहन कर रही है। ऐसा कौन है जिसने अपने हाथ में सभी के पाँव दबा रखे हैं: स्वराज्य का जो प्रकाश उतरा था। वह किस के घर में वन्दी हो गया। अभी युद्ध शेष है। यह आजादी का प्रकाश बन्दीगृह से मुक्त होगा। यदि यह न हो सका, तो हे महा डायिन दिल्ली! तेरे ऊपर भी बज्र टूट पड़ेगा और तू नष्ट हो आजगी।

समर शेष है…………जायेंगे।

शब्दार्थ—सत्वर = शीघ्र ही। ऐरावत = इद्र का हाथी।

व्याख्या—यहाँ कवि जन-क्रान्ति का आवाहरण करता हुआ कहता है कि अभी प्राप्त स्वराज्य को सत्य बनाने के लिए समर शेष है और न्याय-संगत जो यथार्थ स्वराज्य है, उस तक शीघ्र ही पहुँचाना होगा। इस स्वराज्य की प्रगतिधारा में जो विरोधों के पर्वत खड़े हो गये हैं और जो जन-गंगा का मार्ग रोक रहे हैं, उनसे कह दो कि वे स्वयं हट जायँ। इससे उनको यश मिलेगा। अन्यथा जन-गंगा की लहर में वे पत्तों की तरह प्रवाहित हो जायेंगे और राजमुकुटों का कहीं पता न लगेगा?

समर शेष है……………काली जंजीर।

शब्दार्थ—समतल = चौरस, बराबर।

व्याख्या—अभी स्वराज्य पूरा नहीं हुआ है। इसके लिए समर करना शेष है। तुम जन-शक्ति को पूरे वेग से प्रवाहित होने दो। इसके प्रवाह में बाधाओं के शिखर डूब जायेंगे और राजाओं के मुकुट नह जायेंगे।

हे मृतकों! तुम पथरीली जमीन को तोड़ने और उसे समतल बनाने का दृढ़ संकल्प कर लो। अभी समर शेष है, तुम प्रकाश के तीरों की वर्षा करते हुए चलो, जिससे विषमता की काली जंजीरें टूट कर गिर जायें।

समर शेष है……………जवाहरलाल।

शब्दार्थ—वृक = भेड़िया। निर्विष = विष से रहित।

व्याख्या—अभी देश में ऐसे बहुत से विरोधी व्यक्ति हैं, जिनसे समर करना

शेष है। अब भी नगपति हुंकार कर रहा है। वे गाँधी की हत्या करके, जवाहरलाल पर भी अपनी फुंकार छोड़ रहे हैं। इन लोगों का अहंकार दूर करने के लिए अभी युद्ध शेष है। भेड़ियों के समान दुष्टों के दाँतों को तोड़ना व सर्प के समान आतातायियों का विष दूर करना शेष है। अपने साहस से ऐसा समय लाना है, जिसमें गाँधी और लवाहरलाल निर्भय होकर विचरण कर सकें।

तिमिर पुत्र .... अपराध।

शब्दार्थ—दस्यु = डाकू, लुटेरे।

व्याख्या—देश भर में गांधी की सेना सावधान होकर खड़ी हो जाय, जिससे ये लुटेरे डाकु कोई बुरा कांड न करने पावें। हे वीरो! तुम अपना बलिदान देकर भी कोमलता का व्रत धारण करो। तथा आपस का भेद-भाव मिटाकर मन्दिर और मस्जिद को एक तार में बाँध वो। पाप का भागी केवल व्याध ही नही है, परन्तु व्याध को नष्ट करने में जो तटस्थ रहता है, वह भी अपराधी है।

पुरुरवा

कुसुम और कामिनी .... सवाक् सुमन हैं।

शब्दार्थ—कान्त = सुन्दर। सवाक् = मुखर, वाणी युक्त।

सन्दर्भ—उर्वशी स्वस्थ एवं विकृत काम-भाव के साथ-साथ प्रकृति और ईश्वर के सम्बन्ध में भी विस्तत रूप से अपने विचार प्रकट करती है। किन्तु पुरुरवा की द्वन्द्वग्रस्त चेतना इतने पर भी शान्त नहीं होती, अतः वह पुनः तर्क करता हुआ कहता है।

व्याख्या—फूल और युवती नारी दोनों ही वास्तव में बहुत ही सुन्दर तथा आकर्षक होते हैं, फिर भी सुन्दर पुष्पों की तुलना में सुन्दरी नारियों का महत्व कहीं अधिक है। क्योंकि सुन्दर होते हुए भी पुष्प बोल नहीं सकते, वे गूंगे होते हैं और रूपसी नारियाँ बोलकर अपना अभिप्रायः प्रकट कर सकती हैं। इस प्रकार फूलों का सौन्दर्य मौन होता है, जबकि नारियों का मुखर सुन्दर पुष्प कहा जा सकता है।

भाव यह है कि मुखरता के कारण नारी का महत्व सुन्दर पुष्पों की तुलना में अत्यधिक बढ़ जाता है। बोलने की क्षमता के कारण नारी का सौन्दर्य अधिक आकर्षक एवं ग्राह्य है।

विशेष—अलङ्कार—'कुसुम और कामिनी' तथा 'कहीं कान्त कुसुमों से' आदि पदों में अनुप्रास अलंकार है। 'सुमन मूक सौंदर्य' तथा 'सवाक् सुमन' में 'स' वर्ण की एक से अधिक बार आवृति होने से वृत्यानुप्रास है।

किन्तु कहीं यदि शब्द .... अभी हुई है।

शब्दार्थ—गहन = गूढ़, गहरा और गम्भीर। चिन्तन = विचार, सोच।

संदर्भ—पुरुरवा उर्वशी से कहते हैं कि सोचने-विचारने की शक्ति ही द्वन्द्व का मूल कारण है,

व्याख्या—यदि दैवयोग से कहीं सुन्दर एवं आकर्षक आकृति वाले फल बोलने भी लगें, साथ ही ये सन्दर पुष्प मानव के समान गम्भीर गहरा सोच-विचार भी करने लगें तो उनकी भी वही दशा होगी कि जो मेरी हुई या हो रही है। अर्थात् वे भी द्वन्द्वग्रस्त हो जायेंगे।

भाव यह है कि भाषा और वाणी चिन्तना के कारण हैं और चिन्तना ही चेतना को द्वन्द्वग्रस्त बना देती है।

अलंकार—मानवीकरण।

यह प्रपात रसमयी .... घूम आया हूँ।

शब्दार्थ—प्रपात=निर्भर, उत्स, झरना। रसमयी=रसीली। हिलोर=लहर। गुह्य=गुप्त, रहस्यमय।

सन्दर्भ—इस छन्द में पुरुरवा अपनी मन: चेतनाओं में विद्यमान रहस्य भावना को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

व्याख्या—रसीली बुद्धि और चिन्तना की लहरों में पड़कर, तुम्हें शायद मालूम ही है कि मैं पता नहीं किन-किन रहस्यमय लोकों और आकाशों—अर्थात् चिन्तना-चेतना के उच्च स्तरों पर चक्कर लगाकर आया हूँ।

अर्थात् चिन्तनामुक्त चेतना ही व्यक्ति को अनेक प्रकार के द्वन्द्वों से ग्रस्त करके व्यक्ति को जाने कहाँ-कहाँ भटकाती रहती है।

विशेष—द्वन्द्वग्रस्त चेतना का कवि ने यथार्थवादी दृष्टि से चित्रण एवं रूपायन किया है।

अलंकार—प्रतीकात्मकता।

२. रूपक अलंकार।

आदि अन्त कुछ नहीं .... छोर नहीं है।

शब्दार्थ—ग्रन्थि-जाल=रहस्यता, उलझन। काल-गह्वर=समय रूपी गुफा।

सन्दर्भ—उलझनें अन्तहीन हैं और वे सदा सर्वदा ही मानव-चेतना को आप्लावित रखती हैं :

व्याख्या—वास्तव में जीवन का आरम्भ क्या और कैसा है, इसका अन्त क्या और किस रूप में होगा, यह कभी भी अपने वास्तविक रूप में नहीं सूझ सकता। इसी कारण मानव-चेतना में जो अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ अर्थात् समस्याएँ हैं, काल की गुफा या परिवेश में, अनन्तता में उनका कोई किनारा नहीं है।

अर्थात् काल अनन्त है और मानव-जीवन की उलझने भी अनन्त है। उनसे छुटकारा पाने के लिए मानव की चेतना सदा चटपटाती रहती है।

अलङ्कार—रूपकात्मकता एवं प्रतीकात्मकता है।

विधि निषेध, सत्य............नहीं चलता है।

शब्दार्थ—स्यात्=शायद। अगम=अनन्त।

सन्दर्भ—पुरुरवा उर्वशी से कहते हैं कि जीवन के बाह्य-विधानों से अन्तश्चेतनाएँ हमेशा अप्रभावित ही रहा करती है।

व्याख्या—वास्तव में शायद जीवन के बाह्य विधि और निषेध पानी पर डाली जाने वाली रेखाओं के समान हैं। अर्थात् जिस प्रकार पानी पर रेखा स्थिर नहीं रह सकती उसी प्रकार ये विधि-विधान भी स्थिर नहीं होते। मानव के भीतर अन्तर सलिल पर—अर्थात् अन्तश्चेतसाओं पर इन विधि-निषेधों की कोई रेखा कतई नहीं ठहरती। इस प्रकार मानव की चेतना में जो बाह्य प्रभावों के कारण अनेक प्रकार के तूफान उठा करते हैं, उन पर भी इन बाह्य विधि निषेधों को कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा करता। अर्थात् वहाँ भी क्षणिक प्रभाव ही रहता है।

अर्थात् बाह्य परिवेशों से अन्तश्चेतनाओं की दुनिया सर्वथा भिन्न ही हुआ करती है। वह बाह्य प्रभावों से मूलतः सर्वथा अप्रभावित ही रहा करती है।

अलंकार—'सत्य ही स्यात जल पर की रेखाएँ, विरोधाभास है। 'सत्य ही स्यात्', 'अवचेतन-अतल' में अनुप्रास और समूचे पद में सांगरूपक अलंकार है।

स्यात् योग सायास…………किये रहने का।

शब्दार्थ—स्यत् = शायद। सायास = सप्रयत्न। निसर्ग = प्रकृति। प्रज्ञा = बुद्धि।

सन्दर्भ पुरुरवा का कथन उर्वशी के प्रति है। वे योग को प्रयत्न साध्य कहते हैं। तथा साधनाओं से थकी हुई बुद्धि को रमाए रखने का साधन बतलाते हैं।

व्याख्या—हम लोग प्रकृति के वन्द किवाड़ों—अर्थात् गुप्त रहस्यों को खोल पाने में असमर्थ हैं, शाथद योग-साधना उसी स्वीकृति की प्रयत्नपूर्वक उपेक्षा करने का एक साधना मात्र ही है। अर्थात् योग-मार्ग पर चलना प्रत्यक्ष व्यवहार जगत से पराजय स्वीकृति का एक उपकरण मात्र ही है। उसी प्रकार सब प्रकार की साधनाएँ भी शायद थकी हुई बुद्धि की ऐसी चेष्टाएँ मात्र हैं कि हम लोग सत्य की खोज में किसी प्रकार अपनी चेतना को अनवरत लगाए रखें।

अर्थात् योग-साधन आदि उपाय अपनी थकी-हारी चेतनाओं एवं प्रयासों को धोखा देना मात्र ही हैं।

अलंकार—'सन्देह' अलंकार है।

स्यात् केवल……   ……   ……झलक रही है।

शब्दार्थ—आत्मार्पण = आत्मसमर्पण। मूक = मौन। विकीर्ण = फली हुई।

संदर्भ—उर्वशी द्वारा प्रतिपादित तथ्यों से अवगत होकर चेतना-स्तर पर पुरुरवा अन्त में ईश्वरीय शरणागत की भावना को ही सत्य मान कर आत्मसमर्पण की भावना से आप्लावित होकर अनन्त सौंदर्य की अनुभूति से भर उठते हैं। वे उर्वशी से कहते हैं।

व्याख्या—मुझे लगता हैं कि चरम सत्य केवल मात्र उस अनन्त सत्ता के प्रति

आत्मसमर्पण एवं उसकी शरण में जाने में ही है। वह एक ही सत्ता है कि जिसे तुम प्रकृति और मैं ईश्वर के नाम से अभिहित करता हूँ। वही अन्तिम शरणस्थली प्रतीत होती है। उस अज्ञात सत्ता के अनजाने संकेतों का अनुभव करना मात्र ही ही कर्म है। जो सौंदर्य और शोभा तुम में केन्द्रित होकर झलक रही है और सृष्टि में सर्वत्र परिव्याप्त है, उसी का निरन्तर अनुभव करना ही मुझे एक मात्र धर्म प्रतीत होता है। अर्थात् द्वन्द्वग्रस्त चेतना का अन्तिम परिहार अपने आपको उस परम सत्ता के सर्वात्मभाव से समर्पण में ही है। द्वन्द्व के परिहार का अन्य कोई चारा नहीं है।

आह, रूप यह…………खेल रही हो।

शब्दार्थ—भुवन = संसार, लोक। इंगित = संकेत। द्रुमों = वृक्षों।

सन्दर्भ—उर्वशी के सौंदर्य की आधारभूत परिकल्पना से समस्त जड़-चेतन में उस अनन्त ईश्वरीय सत्ता का आभास पाकर पुरुरवा उर्वशी से कहते हैं।

व्याख्या—ओह प्रियतम! मैं अपनी कल्पना एवं चेतना में इस समय विश्व में उड़कर जहाँ कहीं भी जाता हूँ, वहीं तुम्हारा यह रूप सौंदर्य हँसता-मुस्कराता तथा प्रसन्नता से मन-भावन संकेत करता हुआ सा प्रतीत होता है। चाँद, सूर्य विविध नक्षत्रों, मुस्कराते फूलों, तिनकों एवं हरियाले वृक्ष में—सभी जगह यही स्वरूप उजागर, दिखाई देता है। यही रूप-सौंदर्य मेरे मन के गहरे सागर तथा प्रज्जवति सी लहराती लहरों में भी बार बार प्रकट होकर गहराई में अन्तर्निहित होता हुआ सा प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे तुम सागर की उन्मत्त लहरियों से बाहर नहीं निकली हो बल्कि अपनी सुखद-शीतल जन्म-भूमि की गोदी में अभी भी सप्रसन्न खेल-कूद रही हो अर्थात् पुरूरवा ईश्वरीय सौंदर्य की अनन्तता की सुखद- अनुभूति उर्वशी के रूपाकार में ही पाकर एक प्रकार की आत्म-तुष्टि की भावना से आप्लावित हो उठा है।

अलंकार १. 'उल्लेख' अलंकार [किसी में एक सत्ता का आभास] 'ज्वालामुखी लहर-सा' में उपमा और अन्तिम दो पँक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार।

देखा तुम्हें बहुत …. …. ….पलट हटा कर।

शब्दार्थ—कल्पलता = सब इच्छाएँ पूर्ण करने वाला नन्दन-कानन का कल्पवृक्ष। आकार = स्वरूप, देह।

सन्दर्भ—पुरुरवा अपनी पूर्व स्मृतियों के आधार पर उर्वशी के साथ अपनी सहसा भेंट के प्रति आश्चर्य प्रगट करते हुए कहता है:

व्याख्या—हे उर्वशी! मैंने तुम्हें अनेक बार अनेक प्रकार से देखा है। इतना होने पर भी मैं आज तक यह नहीं जान सका कि तुम किस तरह सब इच्छा पूरी करने वाले कल्पवृक्ष की किस डाली को चीरकर चिर विकसित फूल के समान खिल उठी थी। पता नहीं तुमने उस निराकार ब्रह्म के घर से निकल कर कहाँ रूपाकार में

सजीव आकार ग्रहण किया था। यह भी मैं नहीं जान सका कि कौन से बादलों के पर्दों को चीरकर तुम अरुणाभ उषा के समान अपने सौंदर्य का प्रकाश फैलाती हुए प्रगट की हुई थी। अर्थात् तुम्हारा सौदर्य एवं व्यक्तित्व आज भी मेरे लिए एक रहस्य बना हुआ है। किन्तु यह रहस्य भी अत्यधिक आकर्षक एवं ग्राह्य है।

अलंकार—१, 'प्रथम-प्रथम' में वीप्सा अलंकार है।
२. 'उषा सदृश' में उपमा अलंकार है।

कहते हैं मैं स्वयं..........तप को आभा सी ?

शब्दार्थ—कामेच्छा = कामना, काम की इच्छा मात्र। संचित = संकलित, एकत्रित

शब्दार्थ—उर्वशी तथा पुरुरवा के जन्म आदि के सम्बन्ध में जो विचित्र प्रकार की पौराणिक कथाएँ प्रचलित है, उन्हीं का यहाँ सांकेतिक वर्णन किया गया है :

व्याख्या—ऐसा मेरे बारे में कहा जाता है कि मेरा जन्म जगत के बिना पिता के ही हुआ है। तो क्या यह सत्य है कि तुम्हारा जन्म भी उसी प्रकार अर्थात् विना माता-पिता के ही हुआ है। तपस्या करने से नितान्त पावन मानव की समस्त तपस्याओं की संकलित ज्योति के समान माता के गर्भधारण के बिना नारायण नामक ऋषि की मानता या काम-भावना मात्र से ही तुम्हारा जन्म हुआ। अर्थात् हम दोनों में हम (पुरुरवा और उर्वशी) तपस्या और प्रबल कामनाओं का प्रसार है। अतः हम दोनों का मिलन भी यह विचित्र तथा आकल्पिक घटना है।

विशेष—कवि ने सांकेतिक रूप से उर्वली और पुरुरवा के जन्म की विचित्र कहानी कही है। उर्वशी को नारायण नामक ऋषि की उरु—अर्थात् जंघा पुत्री बताया है, जबकि पुरुरवा को भी यज्ञोतपन्न कन्या और बाद में वशिष्ठ ऋषि के बरदान से पुत्र रूप में परिवर्तित होने की पौराणिक कथाएँ मिलती हैं।

या समुद्र जब अन्तराग्नि से.... ....ज्वाला सी।

शब्दार्थ—अन्तराग्नि = भीतरी आग, बाड़वानल। अम्बुधि = समुद्र। सुरासुर = देवता तथा राक्षस। अभंग = निरन्तर, अटूट। कुतुक-विस्मय = कौतूहल तथा आश्चर्य।

संदर्भ—उर्वशी के जन्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की परिकल्पनाएँ करते हुए पुरुरवा कहते हैं :

व्याख्या—हे उर्वशी ! तुम अपनी ही भीतरी आग अर्थात् वाड़वाग्नि से व्याकुल, उष्ण और उद्वेलित समुद्र की तरंगायित लहरों से एक अनोखे पुष्प के समान उसी प्रकार प्रगट हो गई थी कि जिस प्रकार समुद्र की भीतरी आग से विनिर्मित होकर अन्य अनेक रत्न स्वयं ही प्रगट हो गये थे। या फिर देवता और

राक्षसों के निरन्तर तथा युग-युगों से व्याप्त आमन्त्रणों से दया द्रवित होकर के उसी प्रकार एक प्रातः काल अनुपम ज्योति-सी प्रगट हो गई थी कि जैसे कि अतल, वितल पाताल और तलातल आदि अनेक लोकों का अनवरत भजन करके सागर की लहरों में से पृथ्वी पर सहास उषा का उदय स्वयं ही हो जाया करता है। जब एक नृत्य करती हुई ज्वाला के समान धुंधली तरंगों पर सवार होकर नीली लहरों पर सूर्य की लालिमा के समान तुम्हें आकर सहसा ठहरी हुई देखा होगा, तो सारा साकाश कौतूहल एवं आश्चर्य में डूब गया होगा, और सभी लोग (देव-दानव) तुम्हें विस्मित भाव से देखते ही रह गये होंगे। अर्थात् तुम अनिंद्य सुन्दरी एवं स्वयं उत्पन्न हुई हो। वास्तव में तुम्हारा ज्योतित सौन्दर्य सभी को विस्मय-विमुग्ध करने वाला है, अद्‌भुत है।

विशेष—पुराणों में उर्वशी की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक आख्यान मिलते हैं। यहाँ कवि ने सांकेतिक रूप से उसके समुद्र से नवरत्नों के साथ उत्पन्न होने की अन्य गाथा कही है।

अलंकार—१. सम्पूर्ण छन्द में 'सन्देह' अलंकार।

२. 'सुमनों-सी, शिखा-सी, ज्वाला-सी, आदि में उपमा अलंकार।

३. प्रथम पँक्ति में········समुद्र जब अन्तराग्नि से आकुल, तप्त, विकल था, मानवीकरण।

४. 'अतल, वितल, पाताल, तलातल से ऊपर भूतल, पंक्ति में अनुप्रास, है।

(५) 'जैसे उषा निकल सागर'तल से ऊपर आती है, पंक्ति में उदाहरण अलंकार।

कैसा दीप रहा होगा···· ···· ····उत्सुकता से ?

शब्दार्थ—फेनों=झाग। शुभ्र=उज्ज्वल। वसन=वस्त्र। उद्‌ग्रीव=गर्दन उठाए।

सन्दर्भ—उर्वशी के समुद्र से उत्पन्न होने की पौराणिक कल्पना के अनुरूप उसके उत्पन्न होने के समय की कल्पित आभा एवं भाव-भंगिमा का वर्णन करते हुए पुरुरवा कहते हैं:

व्याख्या—जब समुद्र से तुम्हारा उद्‌भव हुआ होगा, उस समय नीली लहरों में झलमलाते झाग रूपी वस्त्रों से लिपटा तुम्हारा तेज से प्रदीप्त-अग्निमय स्वरूप कैसा जगमगा रहा होगा। सागर की काली-कली-सी आभसित होने वाली उन्नत लहरें मानों उस समय अपनी गर्दनें (फण) ऊपर उठाकर, चारों ओर से तुम्हें घेर कर बड़ी ही उत्सुकना से तुम्हारे इस अनुपम ज्योतिमय सौन्दर्य को निहार रही होंगी। अर्थात् तुम्हारे व्यक्तित्व के रूप में एक अनुपम सौन्दर्य के उद्‌भव ने जल-तरंगों एवं समस्त जड़ प्रकृति को भी विस्मय-विमुग्ध कर दिया होगा।

विशेष—१. सौन्दर्य में जड़ एवं निर्जीव कही जाने वाली प्रकृति को भी उद्वेलित तथा प्रभावित करने की शक्ति अन्तर्हित होती है, कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से यह तथ्य स्पष्ट किया है। दूसरे 'नील-तरंगों' शब्दों का प्रयोग कर के कवि ने समग्र सागरीय वातावरण में एक अजीव-सी रहस्यमयता का संचार भी कर दिया है।

२. फेनों के शुभ्र वसन' में रूपक अलंकार।

३. 'भुजंगनियों-सी' में उपमा।

४. 'देख रही होंगी काली कहरें किस उत्सुकता से' में मानवीकरण।

रुदन किया होगा .... देवों के जग में ?

शब्दार्थ—विरचे=विनिर्मित, बनाए हुए। विमुक्त=अलग। अप्रतिम= अनुपम, अद्भुत।

सन्दर्भ—उर्वशी की सागर से उत्पत्ति, सागर में रिक्तता और देव संसृति में आनन्द का संचार करने वाली प्रमाणित हुई होगी, इस भाव को स्पष्ट करते हुए पुरुरवा कह रहा है :

व्याख्या—हे उर्वशी ! जब तुम्हारी उत्पत्ति हुई थी, उस समय समुद्र भी तुम्हारे जैसे अपने अनुपम रत्न को खोकर सहसा रो पड़ा होगा। अनेक प्रकार के मणि-मुक्ताओं आदि से विरचित सागर के भीतर तुम्हारे निवास-भवन की सारी चमक-दमक तुमसे अलग होते ही सहसा समाप्त हो गई होगी। समुद्र का समग्र हृदय ही मानो शून्य सा, बुझा बुझा-सा होकर रह गया होगा। इसके विपरीत रक्तभाव से युक्त फूल जैसे कोमल एवं सुन्दर तुल्हारे व्यक्तित्व को प्राप्त करके देवताओं की सृष्टि तो जैसे प्रसन्नता के स्वरों से चहचहा उठी होगी। अर्थात् उर्वशी की (तथा कथित पौराणिक मान्यताओं के अनुसार सागर से) उत्पत्ति ने सागर को सूना कर दिया और देवों की सृष्टि को अपने सौन्दर्य से जगमगा दिया। सागर ने तो मानो अनुपम मोती ही खो गया।

विशेष—उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकार।

तुम अनन्त सौन्दर्य .... रह जाती है।

शब्दार्थ—अनन्त=असीम, अनुपम। निखिल=समस्त।

सन्दर्भ—उर्वशी के अनन्त सौन्दर्य की मुक्त कण्ठ में प्रशंसा करते हुए पुरुरवा कह रहा है :

व्याख्या—तुम अन्तम असीम सौन्दर्यशालिनी हो। यद्यपि सृष्टि का समस्त असीम सौन्दर्य तुम्हारे इस एक ही शरीर में समा गया है, फिर भी उसी की ज्योति विकीर्ण होकर चारों ओर सारे संसार में फैल कर परिव्याप्त हो रही है। तुम तो मेरे लिए एक अनन्त-असीम ऐसी कल्पना के समान हो कि चाहें मैं तुम्हें किसी प्रकार अपने आलिगन या गोदी में आबद्ध करने का प्रयत्न क्यों न करूँ, फिर भी तुम्हारे

सौन्दर्य की एक किरण मेरे बाहु पाशों से बाहर झांकती दिखाई दे जाती है। अर्थात् तुम्हारे अनन्त सौन्दर्य को अपने भुज-पाश में बाँध पाना मेरे लिए बड़ा ही कठिन कार्य है। तुम्हारे व्यापक सौन्दर्य ने ही जैसे सृष्टि को ढाँक रखा हैं।

अलंकार—२. 'उल्लेख स्वाभाविक।

यह रहस्य मय रूप ···· ···· जन्म लेते हैं ?

शब्दार्थ—मर्त्य-भुवन = मृत्युलोक। अपर = अन्य, दूसरे।

सन्दर्भ—उर्वशी के सौंदर्य एवं जन्म को अनुपम तथा अभूतपूर्व बताते हुए पुरुरवा कहते हैं।

व्याख्या—तुम्हारा सौंदर्य एवं आकार-प्रकार जिस तरह भेद-भरा है, वैसा संसार में अन्यत्र कहीं भी सुलभ नहीं है। नरलोक, किन्नर लोक, गन्धर्व लोक और मृत्यु लोक—कहीं भी ऐसा रूप मिल पाना असम्भव है। ऐसी स्थिति में तुम्हारा जन्म उसी प्रकार कैसे सम्भव हो सकता था कि जैसे संसार के अन्य सौन्दर्य जन्मते हैं। अर्थात् सौन्दर्य में नित्य तत्व हैं, जो कि रहस्यमयी ज्योति (ब्रह्म) का आभास देने वाले हैं। अतः तुम्हारा जन्म भी उसी के समान ही रहस्यमय है।

कहो, सत्य ही, तुम ···· ···· एकायन मन में ?

शब्दार्थ—रूपायित = रूप देना, साकार करना। तन्मय = तल्लीन, मन एकायन = एकान्त या एकाग्र।

सन्दर्भ—उर्वशी के समग्र सौन्दर्य का वर्णन करने के बाद पुरुरवा उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासु भाव से कहता है.

व्याख्या—सच बताओ, क्या वास्तव में तुम्हारा जन्म समुद्र से ही हुआ था ? अथवा तुम अचानक आकाश को चीरकर शून्य से प्रकट हुई थी। अथवा जब ऋषि अर्थात् ब्रह्मा रूप एवं आकार हीन सौंदर्य की छवि उतारने की चिन्ता में समाधि लगाये तल्लीन बैठे हुए थे, तभी तुम ब्रह्मा की महान् कल्पना की नारी बनकर उनके एकान्त मन से सहसा प्रगट हो गई थी। बताओ, तुम्हारा वास्तविक परिचय क्या है ? अर्थात् तुम सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की एकान्त क्षणों में सृजित एक ऐसी अद्भुत सर्जना हो कि जिसका अन्य कोई जोड़ नहीं।

अलंकार—सन्देह।

उर्वशी

मैं मानवी···· ···· ····नहीं चल सकता है।

शब्दार्थ—आवरण = परदा। ऋचाओं = वेद-मंत्रों। निरापद = संकट विहीन।

सन्दर्भ—यहाँ उर्वशी इस तथ्य पर बल देती है कि पुरुरवा उसके जन्म-वृत्तान्त पर पड़े परदे को हटाने की चेष्टा न करें :

व्याख्या—मैं साधारण स्त्री न होकर देवी हूँ और देवताओं के मुख पर सदैव एक झिलमिलाता हुए रहस्मय परदा पड़ा रहता है। पुरुरवा को उस परदे को हटाने का प्रयास नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस रहस्य के अनावृत हो जाने पर जिन्दगी में से कवित्व अर्थात् कल्पनात्मकता विलीन हो जाती है। हमें किसी बात पर तथ्य को स्पष्ट करने के लिए स्पष्ट अर्थ बोधक शब्दों के स्थान पर ऐसे शब्दों का चयन करना चाहिए जो अर्थ-वहन की दृष्टि से अस्पष्ट या धुंधियाले हों। ये अस्पष्ट अर्थ-बोधक शब्द जब वेदमंत्रों में गुँथ जाते हैं तो उनसे अनिश्चित अर्थ एक निश्चित अर्थ से जुड़ जाता है और तुम जहाँ कहीं भी छाया और अकाश का, काले और श्वेत का मिलन देखते हो, वही स्थान मानव-मन के लिए संकटविहीन और सुशीतल आश्रय भूमि होता है। तुम स्वयं ही सोचो कि यदि इन सघन निकुंजों, गोधूलि और चाँदनी का अस्तित्व न हो तो जीवन की खुली धूप में जीवन कितने समय तक चल सकता है। अभिप्राय यह है कि जीवन में रहस्यात्मकता की स्थिति बनी रहना उपयोगी रहता है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

द्वाभा का···· ···· ····कुतुहल को भी।

शब्दार्थ—द्वाभा=दुविधा। अर्थस्फुट=अस्पष्ट। भेद-विघटन=रहस्य का उद्घाटन होने का। अलम्=बस, पर्याप्त। स्यात्=शायद। शमन=शांत करना।

सन्दर्भ—यहाँ उर्वशी का कथन है। वह पुरुरवा के प्रति कहती है कि उसके रहस्य जानना सहज नहीं है।

व्याख्या—किसी वस्तु के विषय में द्विधा की स्थिति में उसकी अस्पष्टता और झिलमिलाहट तो हमारे लिए एक प्रकार का वरदान है जिसके प्रभाव स्वरूप हमारा हृदय दूसरे के हृदय से और स्वप्न अर्थात् कल्पनाएँ, दूसरों कल्पनाओं से मिलकर सुखानुभूति को प्राप्त होते हैं। यदि ज्ञान रूपी प्रकाश में उन सभी बातों का रहस्य खुल जाए जो अभी तक अर्ध ज्ञात है तो सभी का वास्तविक अथवा नग्न-रूप प्रकट हो जागया। तुम्हीं शोचो कि वास्तविकता का रहस्योद्घाटन हो जाने के भयंकर आघात को कोई कैसे सहन कर पायेगा।

इसलिए मैं यह कहती हूँ कि तुम मेरे विषय में जितना भी ज्ञान प्राप्त कर पाये हो बस उतना ही पर्याप्त है। यदि तुम इससे अधिक जानने का प्रयत्न करोगे तो कदाचित कौतूहल को शान्त करने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लग पायगा और मैं भी क्या कहकर तुम्हारे कौतूहल को शान्त करने का प्रयास करूँगी।

मैं अदेह····   ····   ····प्रकृति है ।

शब्दार्थ—आत्मजा=पुत्री । मानसिक तनया=मन से उत्पन्न हुई । ह्लादिनी=विद्युत ।

सन्दर्भ—उर्वशी अपने वृत्तांत को रहस्यमय और असीम बताती है । वह अपने को त्रिपुर सुन्दरी का प्रतिनिधि बताती है ।

व्याख्या—उर्वशी स्वयं के विषय में स्पष्ट करती है कि मेरा अस्तित्व तो अशरीरी और काल्पनिक है, जबकि तुम मुझे सशरीर समझ बैठे हो । मैं वास्तव में छाया सदृश्य हूँ अर्थात् देखी नहीं जा सकती जबकि तुम मुझको दृश्य समझ रहे हो और मुझको देखकर यह कल्पना कर रहे हो कि मैं सागर की पुत्री हूँ अथवा नारायण की मानस-पुत्री हूँ ।

स्वयं को सर्वकालिक और सर्वव्यापक बताते हुए उर्वशी आगे कहती है कि ऐसा कौन सा समय था जबकि मैं विद्यमान नहीं थी । इसी प्रकार ऐसा दिन कब आ सकता है जब मेरा अस्तित्व नहीं रहेगा । ऐसा कौन-सा पुरुष तपस्वी है, जिसकी समाधि में मेरी झलक नहीं मिलती ? ऐसी स्त्री कौन सी है जिसके यौवन में मैं शोभायमान नहीं रहती ? ऐसा कौन-सा लोक है जिसमें मेरे रूप की विद्युत नहीं कौंधती ? ऐसा कौन सा बादल है जिस पर मैं विहार नहीं कर चुकी हूँ ? मैं कौन सी बातें बताऊँ और कहाँ की बातों को छोड़ दूँ, क्योंकि मेरी कहानी तो प्रकृति की पूरी जीवन गाथा है—लर्थात् प्रकृति की भाँति ही मेरे आदि अन्त का पता नहीं है । मैं तो उसी प्रकार सीमा-विहीन और असीम हूँ जैसे कि स्वयं प्रकृति का अस्तित्व है ।

अलंकर—उपमा ।

अज्ञेय

मुक्त है आकाश

विषयवस्तु का परिचय—मुक्त आकाश स्वतन्त्रता का प्रतीक है । सत्य का प्रकाश बन्धनों को काटकर, रूढ़ियों, अज्ञान-तम आदि के द्वार खोल देता है । कवि स्वयं को बलिदान-यज्ञ की समिधा बनाकर मुक्ति का प्रकाश पाने का सन्देश देता है ।

शब्दार्थ—निमिष भर=एक क्षण । प्रहरी=पहरा देने वाला । तम=अन्धकार । शिंजिनी=धनुष की प्रत्यंचा । वंचना=छल । रुद्ध=रुँधे हुए, बन्द । कुहर=कुहरे से भरा अंधकार । प्रस्वास=मुख से बाहर निकलती हुई श्वास । आत्म-

संचय=आत्मा का केन्द्रीभूत होना। त्रास=भय। समिधा=यज्ञ में डाली जाने वाली लड़कियाँ। अनुक्षण=प्रत्येक क्षण।

व्याख्या—प्यार का पहरेदार एक क्षण के लिए सो गया था। उसी एक क्षण में कठिन अन्धकार को दुहरी प्रत्यंचा कट गई थी। सत्य का सनसनाता हुआ जो तीर हृदय को पार कर निकल गया उसने छल-कपट के दुर्ग के बन्द सिंहद्वार खोल दिये।

यह माया पाश जिससे कि जन-समान घिरा हुआ है, दशा क्षण के लिये ही खुल गया। वह मुक्त प्रश्वास चाहे अन्तिम ही क्यों न हों, लेकिन यह एक क्षण में बक्ष में भरे हुए सूने कुहरे को झनझना दे और चाहे वह शरीर को झुलसा कर ही चला जाय।

यह हृदय और यह जन-मानस, कब तक अपनी कृपणता में आत्म-केन्द्रित रहेगा और इसका हृदय भय से घुमड़ता रहेगा।

अन्धकार को दूर करने और मुक्त आकाश को आने के लिए हम खुले हाथों से, खुले हुए हृदय से अपने को यज्ञ की समिधा बनाकर दान कर दें।

यह आकाश चाहे अन्धकारमय ही क्यों न हो, किन्तु तुम इसको प्रत्येक क्षण मुक्त आकाश समझो।

विशेष—शैली में प्रतीकात्मकता है।

सम्राज्ञी का नैवेद्य-दान

शब्दार्थ—रीते=खाली। विलगा न सको=अलग न कर सको। अनाविल =अनासक्त भाव से। निमिष=क्षण।

सन्दर्भ—यह गीत जापान की सम्राज्ञी कोमियो के प्राचीन राजधानी नारा के बुद्ध मन्दिर में खाली हाथों जाने की घटना पर आधारित है :

व्याख्या—हे महाबुद्ध ! मैं आपके मन्दिर में खाली हाथों आयी हूँ। मैं अपने साथ में तुम्हें चढ़ाने के लिए पुष्प भी नहीं ला सकी। क्योंकि वे औरों के संग्रह किये हुए थे और दूसरों के द्वारा किया गया संग्रह तुम्हारे नैवेद्य-दान के लिए उपयुक्त न होता।

हे महाबुद्ध ! मुझे तेरी करुणा जीवन के विह्वल सुख-सागर के गीत सुनाती रहती है। वह रूप-जगत के द्वार खोल देती है और साथ ही संसार के स्वप्नों एवं क्षण के आनन्द का अविरल सूत्र बुन देती है। तुम अपनी उस भोली मुग्धा को कँपती हुई डाली से अलग न करो।

जो कली जहाँ खिलेगी, उसका फल भी वहीं होगा। जो पुष्प जिस डाली पर पुलकित और पल्लवित हुआ है, मैं उसे वहीं आदर भाव से तुम्हें नैवेद्य रूप में चढ़ा देना चाहती हूँ।

हे महाबुद्ध ! मैं अपने जीवन का प्रत्येक भरा प्याला तुम्हें अर्पित कर रही

हूँ । मैं अपने सुन्दर आनन्द के क्षणों का नैवेद्य चढ़ा रही हूँ । तुम विगत आगत और वर्तमान के पद्मकोष हो ।

विशेष—यहाँ पर स्पष्ट किया गया है कि ईश्वर की वास्तविक आराधना पवित्र भावों और उदात्त कर्मों से ही होती है ।

दूज का चाँद

शब्दार्थ—दूज का चाँद=दूँज का चांद गरीबों की उस जीवनपयोगी सम्पति का प्रतीक है, जिसे छीनकर पूँजीपतियों ने अपने महल में रख लिया है । सहसा= संकुचित ।

व्याख्या—'आँगन के पार द्वारा' संग्रह की इस कविता में अज्ञेय जी 'दूज के चाँद' के प्रतीक से पूंजीपतियों की शोषक प्रवृत्ति को स्पष्ट कर रहे हैं । दूँज का चाँद जो मेरे घर की कुटिया में छोटे दीपक के समान प्रकाश कर रहा था, तुम इसको अपने मन्दिर के विस्तृत आंगन में ले गये । वहाँ रखा हुआ यह सहमा हुआ है । भाव यह है कि पूँजीपतियों ने गरीबों की कुटियों को उजाड़कर अपने महलों के आंगन को सजाया है । उनके आंगन में गरीबों की कुटियों की सम्पदा सहमी हुई है ।

विशेष—प्रतीक शैली ।

नदी के दीप

हम नदी····   ····   ····नहीं हैं ।

शब्दार्थ—नदी के द्वीप=नदी का द्वीप-मनुष्य का प्रतीक है । स्रोतस्विनी= नदी, नदी परमात्मा या विराट सत्ता अथवा निरन्तर जीवन का प्रतीक है । सैकत =बालू । उभार=उठकर, निकलकर । कूल=किनारा ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश चिरपरिचित आधुनिक कवि 'अज्ञेय' प्रणीत 'हरी घास पर क्षण भर' नामक काव्य-संग्रह की प्रतीकात्मक कविता 'नदी के द्वीप' से अवतरित है ।

सन्दर्भ—कवि यहाँ पर नदी को माँ और स्वयं को द्वीप का प्रतीक मान कर कह रहा है :

व्याख्या—हम नदी के द्वाप हैं अर्थात् कहने का अभिप्राय है कि जीवन की जो यह निरन्तर प्रवाहित धारा है, उसमें हमरी स्थिति द्वीप के सदृश है । हम यह कदापि नहीं कहते कि नदी की धारा इसको छोड़कर आगे की ओर प्रवाह प्राप्त

करले, क्योंकि मुझे उससे ही आकार प्राप्त होता है। हमारे कोण गलियाँ, अन्तरीप बालू का तट और सारी गोलाइयाँ उसी के द्वारा गढ़ी हुई हैं। वह हमारी माँ है और हम उसी से निर्मित हैं।

साहित्य-सौन्दर्य—१. कवि ने प्रतीकात्मा के परिवेश में जीवन-धारा को मार्मिकता से प्रस्तुत किया है। नदी को निरन्तर स्रोतवाहिनी जीवन-धारा तथा ब्रह्म का प्रतीक माना है।

२. जीवन के लिए द्वीप को लेकर उसकी मार्मिक व्याख्या की है। जिस प्रकार द्वीप को नदी से आकार प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार जीव ब्रह्म से सजीवत्व प्राप्त करके आकार प्राप्त कर लेता है।

३. कवि ने प्रकृति-चित्रण के परिवेश में मानवीय जीवन-दर्शन को अति कुशलता से प्रस्तुत करके उसको सर्वग्राही बना दिया है।

४. भाषा में प्रतीकात्मकता होने पर भी किसी प्रकार की दुरूहता नहीं आने पाई है। भाव-बोधगम्यता, यत्र-तत्र दर्शनीय है।

५. **प्रतीकात्मकता**—शैली के अन्तर्गत जीवन का चित्रण कुशलतापूर्वक किया है। वास्तव में कवि का मौलिकत्व पूर्णतः दर्शनीय है।

किन्तु हम हैं···· ···· ····बनायेंगे।

शब्दार्थ—प्लावन=जल-प्रलय। ढहेंगे=गिर जायेंगे। सलिल=जल।

प्रसंग—प्रस्तुत गद्यांश चिरपरिचित कवि 'अज्ञेय' जी प्रणीत 'हरी घास पर क्षण भर' नामक काव्य-संग्रह 'नदी के द्वीप' नामक कविता से उद्धृत है।

सन्दर्भ—कवि यहाँ द्वीप को जीवन का प्रतीक मानकर अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए कह रहा है :

व्याख्या—हम द्वीप हैं न कि धारा। हममें स्थिर समर्पण है। हम इस नदी के सदैव स्रोत बने रहते हैं। हम में कदापि प्रवाह जन्म से नहीं होता है। क्योंकि प्रवाह होने से हम बहकर रेत बन जायेंगे। यदि हम में प्रवाह होगा तो हमारा अस्तित्व ही नहीं रहेगा। प्रवाह का विचार लाते ही हमारे पग (पैर) लड़खड़ा जायेंगे, जल-प्लावन हो जायगा, हम टूटकर धारा नहीं बन सकते। हम चूर्ण होकर भी धारा नहीं बन सकते। हम रेत का निर्माण कर कल को थोड़ा सा गदला ही कर सकते हैं। इस रूप में हमारी तनिक भी उपयोगिता नहीं रहेगी।

साहित्य-सौन्दर्य—१. द्वीप का महत्व नदी में स्थितरता धारण करने में ही है। धारा मे प्रवाहित होकर तो वह रेत के रूप में बह जायेगा और अपना प्रभुत्व, अस्तित्व ही खो बैठेगा।

२. मानव भी बहती हुई निरन्तर जीवन-धारा है। उसका अस्तित्व उसके

स्थिरत्व में है। प्रवाहित होकर वह उसके रूप और आकार को नष्ट ही कर देगा। वह नदी कदापि नहीं बन सकता।

३. कवि ने प्रतीकात्मकता के परिवेश में जीवन-दर्शन की मार्मिक अभिव्यक्ति की है।

४. विषय-प्रतिपादन को प्रतीकात्मक भाषा में कवि ने अति कुशलता से हमारे सम्मुख रखा है।

५. प्रतीकात्मक शैली में जीवन का चित्रण देखते ही बनता है।

द्वीप हैं···· ···· ····पितर है।

शब्दार्थ—नियति=भाग्य। क्रोड=गोद। पितर=पुरखा, पूर्वज।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्य-खण्ड 'अज्ञेय' जी प्रणीत 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य-संग्रह के 'नदी के द्वीप' नामक गीत से अवतरित हैं।

सन्दर्भ—जीवन का दार्शनिक अभिव्यक्ति को कवि प्रतीकात्मक परिवेश में प्रस्तुत करते हुए कहता है।

व्याख्या—द्वीप का कथन है कि हम नदी के द्वीप हैं। द्वीप होना मेरे लिए कोई शाप का विषय नहीं है। यह तो हमारा अहो भाग्य है कि उस सृष्टिकर्ता ने हमें द्वीप का रूप प्रदान किया है। हम इस नदी के पुत्र हैं, अतः उसकी गोद पर विराजमान रहते हैं। यह नदी हो हमको विशाल भू-खण्ड से मिला देती है और वह भू-खण्ड ही हमारा पिता बन जाता है।

साहित्य-सौन्दर्य—१. प्रस्तुत गीत-खण्ड में कवि की अभिव्यक्ति जन्य कल्पना की सजीवता दर्शनीय है।

२. द्वीप एक विशाल भू-खण्ड का ही एक अंश मात्र है। नदी के द्वारा ही वह पृथकत्व प्राप्त कर लेता है।

३. प्रस्तुत गीत में कवि ने द्वीप 'मनुष्य', 'भू-खण्ड', 'परमात्मा' और 'नदी' को अनवरत प्रवाहित जीवन का मार्मिक प्रतीक माना है।

४. जिस प्रकार नदी द्वीप को भू-खण्ड से पृथकत्व प्रदान कर देती है, ठीक उसी प्रकार माया भी जीव को ब्रह्म से पृथकत्व प्रदान कर देती है।

५. प्रकृति-चित्रणात्मक परिवेश में 'अज्ञेय' जी ने जीवन की दार्शनिक अभिव्यक्ति को अति कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया है।

६. भाषा में गद्यात्मकता सी आ गई है, परन्तु प्रतीकात्मकता ने काव्यत्व को स्थिरत्व प्रदान किया है।

नदी तुम···· ···· ····देना।

शब्दार्थ—दाय—देने वाला भाग, अधिकार । स्वेच्छाचार=स्वच्छन्दता । अतिचार=अत्याचार । कर्मनाशा=नरक की सरिता ।

प्रसंग—प्रस्तुत महत्वपूर्ण पद्यांश आधुनिकतम कविवर 'अज्ञेय' जी द्वारा प्रणीत 'हरी घास पर क्षण भर' नामक काव्य-संग्रह के 'नदी के द्वीप' नामक गीत से अवतरित है ।

सन्दर्भ—द्वीप का कथन है कि सरिता की वेगवती धारा में उसका विनाश हो गया, तो उसका पुनः निर्माण नदी के द्वारा ही सम्भव होगा :

व्याख्या—हे नदी ! तुम में विराम से प्रवाहशीलता आये और निरन्तर आगे बढ़ती चलो । भू-खण्ड ने जो तुमको देने दी हैं, उनको निरन्तर ध्यान में रखते हुए हममें निरन्तर संस्कार प्रदान करती रहो । कभी ऐसा भी सम्भव है कि तुम्हारे परम दुःख के कारण, दूसरों की स्वतन्त्रता के कारण और अत्याचार के कारण तुम्हारा रूप महादेव में परिणित हो जाये । तुम महा जलप्लावन का रूप धारण कर लो और कर्मनाशा एवं कीर्तिनाशा की तरह काल-प्रवाहिनी बन जाओ । मुझे तुम्हारा यह भीषण और विनाशकारी रूप भी स्वीकार है । हम तुम्हारी भीषण प्रवाहमयी धारा में रेत होकर मिल जायेंगे । परन्तु छनकर किसी स्थान पर अवश्य टिकेंगे और पैर टेक कर पुनः अपना अस्तित्व स्थिर कर लेंगे । इस प्रकार मेरा नवीन व्यक्तित्व साकार खड़ा हो उठेगा । हे स्रोतास्वनी माता ! तुम पुनः उसका संस्कार कर नवीन रूप प्रदान करना ।

काव्य-सौन्दर्य—१. जीवन के स्वरूप पर कवि ने अतिकुशलता से विचार प्रस्तुत किया है ।

२. 'अज्ञेय जी ने स्पष्ट किया है कि जीवन एक शाश्वत प्रवाहिनी धारा है । मानव इसमें मरण रूप में अपना अस्तित्व खो देता है, परन्तु जन्म प्राप्त कर अपना पुनः अस्तित्व प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार जीवन-चक्र निरन्तर चलता रहता है ।

३. कवि ने प्रतीकात्मक परिवेश में प्रकृति-चित्रण के माध्यम से विषय की वास्तविकता को प्रस्तुत किया है ।

४. प्रतीकात्मक शैली में कवि ने जीवन का मार्मिक चित्रण अति कुशलता पूर्वक किया है ।

५. भाषा में प्रतीकात्मकता होने से भी किसी प्रकार की दुरूहता नहीं आने पाई है । भाव-बोधगम्यता पूर्णतः दर्शनीय है ।

६. मानव का जीवन एक शाश्वत जीवन-धारा का द्वीप है । वह उसमें निर्मित होकर आकार प्राप्त करता है । वह मृत्यु के द्वारा कुछ समय को अदृश्य भी होता है, किन्तु पुनः जीवन धारण करता है—कवि ने यह तथ्य कुशलता से प्रतिपादित किया है ।

बावरा अहेरी

[**सामान्य परिचय**—यह 'बावरा अहेरी' कविता-संग्रह से संकलित है। इसमें बावरा अहेरी सूर्य का प्रतीक है। कविता की भाषा में सरल कोमल एवं व्यंजक शब्दों का प्रयोग है। इस कविता में अज्ञेय ने प्राकृति और यन्त्र-सभ्यता के द्वन्द्व को चित्रों के पारस्परिक तनाव द्वारा व्यंजित किया है। एक ओर पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोकमयी तान्वि रूप रेखा का संकेत है, दूसरी ओर कवि की कामना है कि बावरा अहेरी किरणों की तीखी नोंक से खण्डाहर की शिरा-शिरा को भेद दे—कि मँजी हुई आँखें अधिक कृतज्ञता से उसी के प्रति उमड़ आएँ]

भोर का······ ···· ···हरा देंगी।

शब्दार्थ—बावरा अहेरी=पागल शिकारी। कनियाँ=किरणें। परेवे=तेज उड़ने वाला पक्षी। डैना=पंख। डील=बनावट, गठन। बेडौल=बेतुका, जिसके शरीर, के अंगों की बनावट ठीक अनुपात में न हो। त्रिसूल=त्रिशूल। धुरसों=उनका भारी कम्बल। पुष्पिताग्र=जिनके सिरे पर फूल लगे हों। कर्णिकार =कनियार का पेड़। आलोक-खची=प्रकाश द्वारा निर्मित। तन्वि=पतली सुकुमार स्त्री। रूपरेखा=बनावट। कचरा=कूड़ा-करकट।

सन्दर्भ—प्रातः कालीन सूर्य के सर्वव्यापी स्वरूप का वर्णन है।

व्याख्या—प्रातः कालीन सूर्य अपने प्रकाश की लाल किरणों को चारों ओर फैलाता है। वे लाल किरणें माता की गोदी की तरह सुख शान्तिदायक प्रतीत होती हैं। परन्तु जब सूर्य ऊपर आसमान में चढ़ता है, उसके द्वारा फैलाया हुआ लाल किरणों का जाल समाप्त हो जाता है। सूर्य की किरणें सब का अपने अँचल में लेती हैं। धूप छोटी-छोटी छिड़िया, मध्य प्रकार के पक्षी, बड़े-बड़े तथा पंखों वाले बड़े और बेडौल उड़ने वाले पक्षी, कलश और त्रिशूल वाले मन्दिर की चोटियों, तार घर में काम करने की वाली सुन्दरी, मोटी, चपटी, गोल तथा ऊनी कम्बल धारण करने वाली एक सुन्दरी, लावारिस व्यक्ति (अनाथ बालक आदि) गायों के चलते समय उनके खुरों में उड़ने वाली धूल, मोटरों का धुआँ, पार्क के किनारे पर लगी हुई कनेर के पेड़ों पर लगे हुए फूलों के परछाई द्वारा बनाने वाली किसी कोमलांगी का चित्र, कूड़ा करकट जलाने वाली, दूर पर स्थित मशीन की ऊँची चिमनी आदि अनेक वस्तुओं को अपने अँचल में समेट लेती है यानी प्रत्येक दृश्यमान वस्तु, पदार्थ एवं व्यक्ति—उस प्रातःकालीन धूप द्वारा प्रभावित होता है। कचरा जलाने वाली मशीन की चिमनी से इतना अधिक धुआँ निकल रहा है कि ऐसा डर लगता और प्रतीत होता है कि धुँआ निकालने वाली चिमनी सूर्य को हरा देगी, अर्थात् चिमनी से इतना अधिक धुँआँ निकल रहा है कि मानो यह धुआँ सूर्य को ढाँककर समस्त संसार में अंधकार ही भर देगा।

अलंकार—(१) रूपक—आलोक की लाल कनियाँ।
(२) पुनरुक्तिप्रकाश—लाल-लाल, छोटी-छोटी, बड़े-बड़े।
(३) सभंग पद यमक—डौल-बेडौल।
(४) पदमैत्री—नाटी मोटी चिपटी।
(५) उत्प्रेक्षा—'मानो उसी मात्र से ही'
(६) मानवीकरण—चिमनी का।

विशेष—(१) सूर्य का प्रकाश छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का भेद भाव नहीं करता है, सबको समान रूप से आलोक प्रदान करता है। इससे एकत्व या अभेदत्व की प्रेरणा प्राप्त होती है। कवीन्द्र रवीन्द्र को भी विश्व-भावना की प्रेरणा प्रातःकालीन सूर्य की फैलती हुई धूप से ही प्राप्त हुई थी। कवि ने चिड़िया, मन्दिर, नारी, असहाय व्यक्ति, मोटर का धुआँ सबको एक ही छाते के नीचे लाकर खड़ा कर दिया है।

(२) नागरिक जीवन का एक सजीव दृश्य वर्णित है। दृश्य मन में वितृष्णा उत्पन्न करने वाला है।

(३) वर्णन में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण द्रष्टव्य है।

बावरा···· ···· ····बावरा अहेरी।

शब्दार्थ- अवध्य=जिसका वध न किया जा सके। आखेट=शिकार विबर =गुफा। दुबकी=छिपी हुई। कलौंस=कलंक, कालिमा। कपाट=किबाड़, आवरण। खंडर=खंडहर=ढहा हुआ मकान। शिरा=नाड़ी, नस। गढ़=किला। अनी=नोक। सिरोपा=सिरोपाव-सिर से पैर तक का पहनावा जो बादशाह की ओर से सम्मानार्थ मिलता था।

सन्दर्भ—कवि सूर्य से ज्ञान की याचना करता है।

व्याख्या—हे बावरे अहेरी! तुझमें सब कुछ नष्ट कर देने की सामर्थ्य है, तू प्रत्येक वस्तु एवं प्रत्येक प्राणी का शिकार कर सकता है। मेरे मन रूपी गुफा में कलंक छिपा हुआ है। क्या तू उसको नष्ट किए बिना यों ही छिपा हुआ छोड़कर चला जाएगा? ले मैं अपने हृदय के कपाट खोलकर उस कलंक कालिमा को प्रकट किये देता हूँ। मेरे इस भग्न शरीर या मन की प्रत्येक नाड़ी को अपने प्रकाश किरणों की नोक के द्वारा छेद दे अर्थात् मेरी नस-नस में अपने प्रकाश को भर दे। मेरे इस भग्न मन को गिरा कर मिट्टी का ढेर कर दे, अर्थात् मेरा जो आहत् अहंकार है, उसको बिल्कुल नष्ट कर दे। अपनी असफलताओं की जो कालिमा है उसको साफ कर दे और मुझको एक नवीन दृष्टि प्रदान कर दे, जिससे हे ज्ञान के दाता! तुझको मैं अच्छी तरह देख सकूँ और तेरे प्रति कृतज्ञता द्वारा अभिभूत हो जाएँ तथा तेरी सुनहरी किरणों के तारों से निर्मित इसे सिरोपाव को पहन सकूँ, जिससे मेरा शरीर नख से शिख तक इससे युक्त हो जाए। हे बावरे अहेरी! तू मुझे अपने ज्ञान-सागर में पूर्णतः निमग्न कर दे।

अलंकर—रूपक—मन-विवर, आलोक की अनी, कनक तार सिरोपा

वक्रोक्ति—क्या तू चला जाएगा ?

पुनरुक्तिप्रकाश—शिरा-शिरा

छेकानुप्रास—ढाह ढूह

विशेष—(१) शैली प्रतीकात्मक है । खंडहर व गढ अहंकार के प्रतीक हैं । सूर्य ज्ञान का प्रतीक है ।

(२) कवि सूर्य से ज्ञान की प्राप्ति की याचना करता है । यह भक्त कवियों की भक्ति की याचना का स्मरण करता है । कवि चाहता है कि उसका अहंकार रूपी किला एक दम मिट्टी का ढेर हो जाए । यही ज्ञान का चरम पक्ष है ।

(३) आहत अहंकार ही उसके मन की कालिमा है, जिसके कारण वह प्रतिशोध भावना तथा ईर्ष्या आदिक विकारों को मन में छिपाये हुए हैं ।

(४) 'दुबकी' दर्शन प्रयोग है ।

कलगी बाजरे की

हरी छिछली···· ···· ····छूट जाता है ।

शब्दार्थ—ललाती=ललचाती है । नीहार-न्हाई=ओस में डुबी हुई । कुई=कुमोदिनी । वासन=बर्तन । बिछली=बिछी हुई ।

व्याख्या—बाजरे की कलगी को सम्बोधन करता हुआ कवि कहता है कि हे बाजरे की कलगी ! तुम हरी-हरी बिछी हुई घास में अपने छरहरे बदन को लिये हुए डोल रही हो । परन्तु मैं तुम्हारे सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए अब यह नहीं कहता कि तुम सन्ध्या के आकाश की ललचाती हुई तारिका हो । मैं यह भी नहीं कहता कि तुम शरद ऋतु में प्रातःकाल की ओर से नहायी हुई कुमोदिनी ही अथवा चम्पा की ताजी कली हो । यदि मैं तुम्हारी समानता इन उपमानों से नहीं देता, तो इसका कारण मेरे हृदय का उथला या सूना होगा नहीं है और यह भी कारण नहीं है कि ये उपमान पुराने हो गये हैं और इन उपमानों से देवता कूच कर गये हैं अर्थात् इनमें से प्राण-तत्व निकल गया है । जिस प्रकार मुलम्मा छट जाता है, उसी प्रकार इन उपमानों के ऊपर से भी कलई उत्तर गयी है ।

मगर क्या तुम···· ···· ····बाजरे की ।

व्याख्या—हे बाजरे की कलगी ! क्या तुम इसे नहीं पहचान पाओगी कि तुम सौन्दर्य के जादू के निकट ही हो । मैं किसी अपने गहरे और सहज ज्ञान एवं प्यार से कह रही हूँ कि तुम बिछी हुई घास हो और हवा में लहराती हुई बाजरे की छरहरी कलगी हो ।

आज हम···· ···· ····कलगी अकेली ।

शब्दार्थ—औदार्य=उदारता ।

व्याख्या—हम जो शहरी लोग हैं, गमले में पाली हुई जुही के पुष्प में ही

तब कुछ समझते हैं। परन्तु सृष्टि के विस्तार में ऐश्वर्य की उदारता से कहीं सच्ची और प्यार की प्रतीक बिछी हुई घास ही है। यह शरद की सन्ध्या के सूने प्रकाश की पीठिका पर बाजरे की अकेली डोलती हुई कलगी है।

और सचमुच···· ···· ····कुछ नहीं है।

शब्दार्थ--ससमृति=संसार। मालंच=गमला।

व्याख्या—जब मैं बाजरे की कलगी देखता हूँ तब मेरे सामने संसार का खुला वीरान सिमट आता है और मैं एकान्त में इसके प्रति समर्पित हो जाता हूँ। मेरे शब्द अवश्य जादू से भरे हैं। परन्तु क्या मेरा समर्पण कोई महत्व नहीं रखता।

काव्य-सौन्दर्य—नये छन्द, नयी प्रतीक योजना, नयी उपमान-योजना एवं नया भाव विधान अज्ञेय जी के काव्य की विशेषता है। ये समस्त विशेषताएँ अज्ञेय जी की इस कविता में मिलती हैं। इसमें उन्होंने निर्बाध रूप से खेत में लम्बे पौधे पर लहराती हुई बाजरे की कलगी के सौन्दर्य का वर्णन किया है। उसके लिए सारे पुराने उपमान कवि को बासी और हीन लगते हैं। उसके लिए नभ की अकेली तारिका, शरद के मोद की नीहार से नहायी कमलिनी, ताजे चम्पा की कली जैसे उपमानों का भी औचित्य नहीं है। अब घिसे-पिटे उपमानों में सौन्दर्य नहीं रह गया है। इनका इतना प्रयोग हुआ है कि इनकी स्थिति मुलम्मा छूटे बर्तन के समान हो गय है।

अज्ञेय जी को बाजरे की कलगी सृष्टि के विस्तार, औदार्य, ऐश्वर्य और शान्तिदायी विशेष एकान्त का प्रतीक लगती है।

२. परिवेश की जटिलता और अस्तित्व संकट का अहसास कवि को अहं के केन्द्रित कर देता है। वह घुटन तथा कुण्ठा की कुढ़न से मुक्ति पा लेना चाहता है।

शरद-कतिकी पूनो

शब्दार्थ—मदपाती उन्मादिनी=मद और उन्माद में डूबी हुई। सजा वाले=सजावट वाले। कास=एक सींकों जैसी लम्बी घास होती है, जो वर्षा के अन्त में फूलती है—"फूली कास सकल महि छाई। जनु वर्षाकृत प्रगट बुढ़ाई। शशों=खरगोशों। फँलागती=उछालें लगाती हुई। बाँक=बाँकापना। अनुपम सौन्दर्य अकासनीम=आकाश की चाँदनी का अनुपम सौन्दर्य। सुन्दरतामय। हुलास=उल्लास, प्रसन्नता। बाट अगोरते=प्रतीक्षा करते हुए।

सन्दर्भ—इस कविता में अज्ञेय शरद-कार्तिक-पूर्णिमा के प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या—शरद-कार्तिक पूर्णिमा की चाँदनी मदपाती और उन्मादिनी होकर अपनी चाँदनी बिखेर रही है। काश फूल गई है। वह सफेदी की कलगी मौर से सजी हुई बावली हो रही है।

ज्वार के पके हुए खेत शोभा दे रहे हैं। उनसे छलाँगें लगाती हुई खरगोशों की जोडियाँ निकलती हैं। वे सन्नाटे में नदी के अनुपम सौन्दर्य को झाँककर देखती हैं।

झीना और महीन कुहरा आकाश रूपी नीम से झर-झर कर गिर रहा है। उज्ज्वल सुन्दरी मालती अपनी सुगन्ध के डोरे डाल रही है।

चोर की परछाईं की तरह मन में उल्लास छिपा हुआ है। हे प्रिय! तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई मेरी आँखें चकोर बन रही है।

काव्य-सौंदर्य—१. शरद-कार्तिक-पूर्णिमा के सौन्दर्य का कवि ने यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। छिटकी हुई चाँदनी, फूले कास, ज्वार के खेतों में कुलाँचें भरते हुए शावकों के जोड़े, झीना महीन कुहरा, झरना आदि शरद्-सुषमा को सजीव कर देता है।

२. 'अकासनीम' में रूपक।

३. 'मन में डुबकी············चोर की' में उत्प्रेक्षा।

४. 'तेरी बाट············चकोर की' में रूपक।

मुक्तिबोध (व्याख्या)

ब्रह्मराक्षस

विषयवस्तु और सन्दर्भ—ब्रह्मराक्षस बौद्धिक चेतना का प्रतीक है। यह रूढ़िग्रस्त नैतिक प्रतिमानों को तोड़ना चाहता है। एक ब्रह्मराक्षस निर्जन सूनी बावड़ी में रहता था। वह सदैव पागल की भाँति बड़बड़ाता रहता था। वह एक तत्वान्वेषी जिज्ञासु होकर गुरु की खोज में अनेक पण्डितों के पास भटकता रहा, परन्तु वह असफल रहा। सारी कविता में सफल प्रतीकात्मकता और बिम्बों का गुंफन है।

शहर के उस ओर···· ···· ····ताकता है।

शब्दार्थ—परित्यक्त=छोड़ी हुई। औदुम्बर=गूलर के वृक्ष। आभास=परिचय; संकेत। टगर—एक श्वेत पुष्पों वाला विशेष पौधा। अम्बर=आकाश।

सन्दर्भ—'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता के इस प्रारम्भिक भाग में मुक्तिबोध उस बावड़ी का वर्णन कर रहे हैं, जिसमें ब्रह्मराक्षस रहता था :

व्याख्या—शहर के दूसरे किनारे पर खण्डहर की तरफ परित्यक्त सूनी बावड़ी के भीतरी गहन अन्धकार एवं ठण्डक रहती है। उसके पुराने घिरे जल में अनेकों सीढ़ियाँ डूबी हुई हैं। उसकी गहराई आदि का समझना उसी प्रकार कठिन जान पड़ता है, जिस प्रकार गहरे आशय से पूर्ण किसी बात को समझना कठिन होता है।

बावड़ी को वृक्षों की उलझी डालें घेरे हुए हैं। उसके पास गूलर के वृक्ष

मौन खड़े हुए हैं। उनकी शाखाओं पर परित्यक्त भूरे गोल घुग्घुओं के घौंसले लटक रहे हैं।

बावड़ी के मुंडेरों पर टगर के उगे हुए सुन्दर वृक्ष कुहनी टेककर बैठे हुए से लगते हैं। उनमें ताराओं से सघन श्वेत पुष्प खिले हुए हैं। पास ही कनेर के वृक्ष में लाल फलों के चमकते हुए गुच्छे लटक रहे हैं। कनेर का यह पेड़ दर्शकों को उस खतरे की तरफ बुलाता है, जिस तरफ उस बावड़ी का खुला तिमिराच्छन्न मुँह है वह शून्य आकाश की ओर निहरता है।

विशेष—बावड़ी का यथार्थ परिवेश प्रस्तुत हुआ है।

अलङ्कार—१. 'उस पुराने·········गहरी हो' में उपमा।
२. 'अनजानी·········लगी रहती' में उपमा।
३. 'बावड़ी·········टगर' में उत्प्रेक्षा।
४. 'पुष्प·········तारे' में रूपक।

बावड़ी की उन घनी····   ····   ····संवेदना है स्याह।

शब्दार्थ—गहन अनुमानिता=गूढ़ अन्दाज। क्रुद्ध मंत्रोचार=गुस्से से भरे मंत्रों का उच्चारण। ज्वार=उठान। संवेदना=संवेग। स्याह=काली।

सन्दर्भ—'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता की इन पँक्तियों ने मुक्तिबोध में बावड़ी की घनी गहराइयों में बैठे ब्रह्मराक्षस की विक्षिप्तावस्था का वर्णन किया है :

व्याख्या—उस बावड़ी की शून्य अँधेरी गहराइयों में एक ब्रह्मराक्षस प्रवेश किये बैठा है। वह पागल की तरह बड़बड़ाता है, जिसकी गूँज बावड़ी में उठ रही है। ऐसा लगता है कि ब्रह्मराक्षस किसी गहरे तर्क में डूबा हुआ है। वह अपने शरीर की मलिनता दूर करने के लिए और शरीर को स्वच्छ करने के लिए शरीर और हाथ के पंजों को बराबर घिस रहा है। बावड़ीं के जल में धँस जाने से उसके हाथ, छाती और मुँह छपाछप करते हैं। किन्तु उसके अगों का मैल नहीं छूट रहा है। वह बावड़ी में स्नान करता हुआ ओठों में ईश्वर-वन्दना के विभिन्न छन्द पढ़ता जा रहा है। यह पता नहीं चलता कि वह मंत्र उच्चारण कर रहा है, अथवा शुद्ध परिमार्जित संस्कृत में गालियाँ बक रहा है। उसके मस्तक में तर्क की रेखाएँ उभर आई हैं, जो आलोचनाओं के चमकते तार सी लगती हैं। वह निरन्तर स्नान कर रहा है। किन्तु उसके अन्तःकरण में पाप की जो काली छाया है, वह स्नान से मिट नहीं पा रही है।

अलंकार—१. 'ओठों·········ज्वार' में सन्देह।
२. 'मस्तक·········चमकते तारे, में उपमा।

विशेष—ब्रह्मराक्षस की विज्ञप्ति स्थिति का यथार्थ बिम्ब प्रस्तत हुआ है।

किन्तु गहरी·········अड़ गई।

शब्दार्थ—रवि-रश्मि=सूर्य की किरणें। परमाणु एटम=सूक्ष्म कण। ओज=उत्साह। ऋचाओं=वैदिक मंत्रों। थियोरम=सिद्धान्त। प्रमेय=साध्य, अनुमेय समस्याएँ। मावर्स····सात्र=पश्चिम के प्रसिद्ध विचारक। थियरमों=स्थापित मान्यताओं, सिद्धान्तों। प्राक्तन=आदिम। उद्भ्रान्त=उलझे हुए। आवर्त=घेरा। विकृताकार=बेडौल। ट्रैजडी=दुखान्त गाथा।

सन्दर्भ—ब्रह्मराक्षस बावड़ी में शून्य गहराइयों में बैठा हुआ प्राक्षिप्त-सा चिन्तन करता है। वह समझता है कि सूर्य की किरणें आकर उसे ही नमस्कार कर कर रही हैं। चाँदनी उसे गुरू मानकर वन्दना कर रही है, वह सारें दार्शनिकों के सिद्धान्तों का नया व्याख्यान करता। उसकी दुखान्त गाथा सारी बावड़ी को गुंजा रही हैं:

व्याख्या—उस अन्धकारपूर्ण शून्य गहरी बावड़ी में दीवार पर तिरछी गिरकर रवि किरणों के जब उड़ते हुए परमाणु कभी पहुँच जाते हैं, तब ब्रह्मराक्षस यह समझता है कि सूर्य उसको झुककर नमस्कार कर रहा है। पथ भूलकर उसकी अिरणें बावड़ी की दीवारों से टकराती हैं, तब ब्रह्मराक्षस यह समझता है कि चाँदनी उसे ज्ञानी गुरू मानकर उसकी बन्दना कर रही हैं।

ऐसी दशा में ब्रह्मराक्षस अत्यधिक प्रसन्न होता है और अनुभव करता है कि आकाश ने भी झुककर उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली है।

वह ब्रह्मराक्षस सूत्रों एवं प्रमेयों की पूर्ण उत्साह के साथ व्याख्या करता है। उसकी वाणी बावड़ी की गहराइयों में ध्वनि हो उठती है। वह गूँजती हुई क्षोभ भरी लगती है। उसके मुख से जो नये आवेशपूर्ण शब्दों का प्रवाह निकलता है। उसकी भँवर में प्रत्येक शब्द अपने प्रतिशब्द को काट रहा है। अर्थात् ध्वनि अपनी प्रतिध्वनि से लड़ रही है। इस प्रकार वह अपने विम्ब से लड़कर अत्यधिक भयंकर आकृति वाला बन जाता है। बावड़ी की मुडेरों पर मानों के श्वेत पुष्प कोहनी टेककर उसकी गूँज को सुन रहे हैं।

बावड़ी से निकलने वाली ध्वनियों को वह करौंदी से कोमल पुष्प, पुराना गूलर का पेड़ तथा स्वयं में भी सुन रहा है। ध्वनियों के प्रतीक से मानों, वह दुःख पूर्ण घटना की जा रही है, जिसमें लोक-प्रसिद्ध प्रणय-प्रसंग की बदनामी से बचने के लिए ब्रह्मराक्षस से निर्जन में बावड़ी में कूदकर आत्म-हत्या करली थी।

अलंकार—१. 'किन्तु·······उसकी' में उत्प्रेक्षा। २. 'बावड़ी·······वे ध्वनियाँ' में मानवीकरण। ३. 'पुष्प-तारे' में रूपक। ४. 'सुनते हैं करौदी···अड़ गई' में मानवीकरण।

खूब ऊँचा एक जीना··········एक शोधक की।

शब्दार्थ—आभ्यन्तर=भीतरी। संगर=युद्ध। अतिरेकवादी=हद से बेहद होने वाली। ज्यामितिक, रेखागणित। संगति=औचित्य। रुधिर-सरिता=रक्त की नदी। व्रण=घाव। धौली=धवल, सफेद।

सन्दर्भ—मुक्तिबोध जी ब्रह्मराक्षस की बावड़ी का सघन शून्य स्थिति के सन्दर्भ में मानव की व्यथा का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—बावड़ी में एक सांवला जीना बहुत ऊँचा है। उसकी सीढ़ियाँ अंधकार से ढंकी हुई हैं। वे एक भीतरी संसार का सृजन करती है। ब्रह्मराक्षस उन सीढ़ियों पर बार-बार चढ़ता और उतरता है। इससे उनके पैरों पर मोच आ गई है और छाती में अनेकों घाव हो गये हैं। उसके हृदय में अच्छे और बुरे चिंतन का युद्ध के समान भीषण संघर्ष चल रहा है। इस संघर्ष में जहाँ किंचित सफलता दीखती है, वहाँ उसके सामने अति भव्य असफ़लता है।

ब्रह्मराक्षस की तरह जो भी पूर्ण अतिरेकवादी होता है, उसके लिए ऐसी व्यवस्थाएँ बहुत प्यारी होती हैं। वह रेखागणित और ज्योमेट्री के औचित्य से अपने भव्य नैतिक मान की स्थापना करता है। इसी आत्म-चेतन सूक्ष्म नैतिक मान से वह अपनी अतिरेकवादी पूर्णता की तुष्टि करता है। परन्तु ऐसा उनके लिए असमान नहीं होता।

यथार्थ यह है कि मानवी अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी होती हैं। निकलता हुआ सूर्य दीवारों पर लाल चिन्ता की रुधिर-सनिता प्रवाहित कर देता है और उदित होता हुआ चन्द्रमा वह घावों पर धवल पट्टियाँ बाँध देता है। मानव के उद्विग्न भालों पर आसमान के छोरों तक सितारे फैले हुए हैं। वह गणित के मैदान में असंख्य दशमलव बिन्दुओं से बिखरे लगते हैं और वह एक शोधक की तरह बाहें फैलाये पड़ा है।

अलंकार—१. 'खून ऊँचा·······संगर' में सांगरूपक।
२. 'लाल चिन्ता की रुधिर-सरिता' में रूपक।
३. 'उदित होता·······पट्टियाँ' में रूपक।
४. 'सितारे·······मैदान में' में उपमा।

व्यक्तित्व वह कोमल···· ···· ····है नीच।

शब्दार्थ—स्फफिक प्रासाद=संगमरमर का महल। समीकरण=मिलान। अभिभूति=कोमल। आत्म-चेतास=समष्टिमूलक। विषादाकुल=दुःख से व्याकुल।

सन्दर्भ—मुक्तिबोध कहते हैं कि ब्रह्मराक्षस का जीवन एक दुखान्त गाथा है।

व्याख्या—उस शोधक ब्रह्मराक्षस का व्यक्तित्व बिल्लौर के सुन्दर भवन के समान आकर्षक था। उस भवन की सीढ़ियों में चढ़ना बहुत कठिन था। जैसे गणित की एक शाखा अल्जबरा में विभिन्न राशियों में स्थापित समीकरण को हल

करना पड़ता है, उसी प्रकार उसने भाव, तर्क एवं कार्य में समन्वय स्थापित कर मूल्य को पकड़ने का प्रयास किया था। इसके प्रयास में वह विद्वानों एवं तत्वविदों के पास भटकता रहा था। उसने इनमें से किसी को अपना गुरु बनाना चाहा, परन्तु उसकी गहरी जिज्ञासा का समाधान कोई न कर सकता। अतः वह किसी को भी अपना गुरु न बना सका।

अब धन के द्वारा यश प्राप्त करने का युग आ गया है। लोग ऐसे लाभकारी कार्य करते हैं, जिनमें धन प्राप्त हो। धन-लोभ ने उसके हृदय की कोमल वृत्तियों को नष्ट कर दिया है। इस प्रकार उसके व्यक्तित्व में एक प्रकृत्रिम संघर्ष छिड़ गया है। उसका मन महत्व पाने के लिए आकुल है, परन्तु वह स्थिर नहीं रह पाता। कवि कहता है कि मानसिक संकट की उन घड़ियों में उसकी उस शोधक से भेंट हो जाय, तो वह उसके अन्तर्जीवन का महत्व बतलाये। भाव यह है कि मृतप्राय मान्यताओं के लिए मनुष्य के अन्तर्गत को बलिदान नहीं किया जा सकता।

कवि को गहरा दुख है कि सत्यान्वेषी ब्रह्मराक्षस आन्तरिक एवं बाहरी संघर्षों में पिसकर दुखान्त को प्राप्त हुआ।

अलंकार—१. 'व्यक्तित्व के·······रहा।' में उपमा २. पिस गया···नीच' में उपमा।

बावड़ी में, वह स्वयं····   ····   ····पहुँचा सकूँ।

शब्दार्थ—तम-विवर=अँधेरे विल। सजल उर=आद्र हृदय।

सन्दर्भ—कविता के अन्त में चिन्तक और शोधक ब्रह्मराक्षस का शिष्य बनने की कवि इच्छा करता है।

व्याख्या—कवि के अन्त में शोधक ब्रह्मराक्षस के प्रति संवेदना व्यक्त करता हुआ कहता है कि वह बावड़ी में पड़ा हुआ प्रतीकों के रूप में निरन्तर कह रहा है कि मैं अपनी जिज्ञासापूर्ण शोध के गणित में लगा हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ और सघन कटीली झाड़ी से युक्त इस अँधेरी सुनसान बावड़ी में पड़ा हुआ हूँ।

कवि शोधी ब्रह्मराक्षस के प्रति व्यथा व्यक्त करता हुआ कहता है कि वह मरे हुए पक्षी के समान विदा हो गया। उसकी अनजानी ज्योति सदा के लिए अप्रकाशित रह गयी। अन्त में कवि कहता है कि मैं उसी ब्रह्मराक्षस का शिष्य होना चाहता हूँ, जिससे उसके अधूरे कार्य को पूरा करके उसकी वेदना के स्रोत को तर्कसंगत निष्कर्षों तक पहुँचा सकूँ।

अलंकार—'मरे पक्षी सा·······हो गया' में उपमा।

बंशीधर शुक्ल

१. राममड़ैया

नदी किनारे .... बिलैयाँ ।

शब्दार्थ—गल्ली=गली । हुवैं=वहीं । बयारि=पवन । बढ़नी=झाड़ू । सैंति=समेटकर । सोवावैं=सुलाते हैं । उइ-उइ=उदित होकर । अथैं-अथैं=अस्त होकर । सविता=सूर्य ।

सन्दर्भ—कवि अपनी राम-मड़ैया के वातावरण का चित्रण करता हुआ कह रहा है :

व्याख्या—मेरी राममड़ैया नदी के किनारे है । यहाँ सड़क और गली भी नहीं है । दरवाजे पर तलैया भरी हुई है । इसी वातावरण में मेरी राममड़ैया बनी हुई है ।

यहाँ वायु झाड़ू लगाकर सफाई करती है और जुगनु दीपक दिखाकर प्रकाश करते हैं । सुअर, सियार, चीलें और गिलहरियाँ कूड़ा समेटकर ले जाती हैं । यहाँ चिडिया और कौवे का-का की ध्वनि करते हुए उठते हैं, अपनी ध्वनि से हमें जगाते और सुलाते हैं । यहाँ सूर्य उदित होकर और अस्त होकर दिन एवं रात का आगमन बतलाता है । यहाँ बन्दर आकर डाका सा डालते हैं और वस्तुएँ उठा ले जाते हैं और बिल्लियाँ चुराकर खाने की वस्तुएँ उठा ले जाती हैं । वहीं पर राम के सहारे मेरी राम-मड़ैया बनी हुई है ।

काव्य-सौन्दर्य—१. शब्द-योजना में अवधी भाषा की सहज मिठास दृष्टव्य है ।

२. नदी के किनारे बनी हुई झोपड़ी का यथार्थ वातावरण अंकित हो गया है ।

३. **अलंकार**—'सुअर सियार' में 'स' वर्ण की एक बार आवृत्ति से छेकानुप्रास । चिरई-कौवा ······ सोवावैं में अनुप्रास, 'उइ-उइ अथै-अथै' में पुनरुक्तिप्रकाश ।

जहाँ जाड़ु मुट्ठिन .... राम मड़ैया ।

शब्दार्थ—जाड़=जाड़ा पयार=धान के डंठलों का समूह जो बिछाया जाता है, पयार कहते हैं । झोंके=ल लपट के झोंके । छौंके=तेल और गर्म मसाले में सब्जी छौंकी जाती है । छप्पक छैया=पानी में छपाछप ।

सन्दर्भ—शुक्ल जी राम-मड़ैया के वातावरण में ऋतु-चक्र के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—यहाँ जाडा मुट्ठियों में बाँधकर व्यतीत किया जाता है और छप्परों के ऊपर बर्फ जम जाती है। शीताधिक्य के कारण रात-दिन पयार मे ही पड़े हुए व्यतीत होते हैं और खूँटियो पर सदैव मृत्यु टँगी रहती है। यहाँ ग्रीष्म की भीषणता भी कम नहीं होती। दसों दिशाएँ गर्म होकर पसीज-सी उठती हैं। जेठ में लू-लपट के तेज झौंके चलते हैं। सूर्य पृथ्वी का रस चूस-चूसकर उसे भिगा देता है। अर्थात् गर्मी और पसीने से सारी धरती पसीज उठती है। उठती हुई गर्म धूल आकाश को छौंकती है। यहाँ सावन वर्षा के रूप में रोता है, चैत की चाँदनी हँसाती है, शरद के आते ही वर्षा के पानी को छप्पक-छैंया दूर हो जाती है। इसी वातावरण में मेरी घास-फूस की राम मड़ैया बनी हुई है।

काव्य-सौन्दर्य—'जाड़े को मुट्ठी में बाँधना', 'छप्परों पर बर्फ जमना' 'जेठ की दोपहरी के झौंके', 'सावन की छप्पक-छैंया', 'चैत की चाँदनी' का हँसना सजीव वातावरण की सृष्टि करता है।

जहँ गाइन .... राममड़ैया।

शब्दार्थ—डहुँके=दहाड़ते हैं। पहरुवा=पहरेदार। निहुकी=एक अमांगलिक पक्षी विशेष। निहुकि=झुककर। बरम=बरमदेव, ब्रह्मदेव। भुइयाँ=भूमि के देवता।

सन्दर्भ—यहाँ शुक्ल जी राम-मड़ैया के लोक-सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण कर रहे हैं :

व्याख्या—यहाँ गायों को गर्दन मे बँधे हुए घन्टे ठनकते हैं और भैंसे हुँकार भरती हैं, घोड़े हींसते हैं, बाघ दहाड़ते हैं और गदहे अपनी रेंहक का नगाड़ा बजाते हैं। यहाँ कुत्ते और उलूक पहरेदार बने हुए हैं निहुकी पक्षी झुककर सभी को जगाती हैं। यहाँ पीपल पर ब्रह्मदेव, नीम पर भुइयाँ, जिन्द और प्रेतों की पूजा होती है।

जहाँ रैदास की डफली बजती है और कुँवर-कन्हैया नृत्य करते हैं, वहीं नीमों के बीच मे मेरी राम-मड़ैया बनी हुई है।

विशेष—ग्राम की लोक-संस्कृति का सजीव वातावरण प्रस्तुत हुआ है। गायों के घन्टे बजना, भैंसों का हुंकारना, घोड़ों का हींसना, बाघ का दहाड़ना, गदहे का रेंकना आदि ग्राम का सजीव वातावरण प्रस्तुत कर देता है।

कहूँ कहूँ बाँसन .... राममड़ैया।

शब्दार्थ—मूँज=कटीला घास। गलियारा=गाँव की छोटी गली। विलसैं=क्रीड़ा करते है। सुवा=तोता। बेलझर=कँटीली झाड़ी।

सन्दर्भ—शुक्ल जी ग्राम में नदी-तट पर स्थित राम-मड़ैया का वातावरण प्रस्तुत कर रहे हैं :

व्याख्या—इस राम-मड़ैया के चारों ओर कहीं-कहीं पर बाँसों के झुरमुट हैं, कहीं पर चौधारा नागफनी के पौधे हैं। कहीं मूँज, बेलझर, काँट-करौंदा के पौधे गलियारा को रूँध रहे हैं। जहाँ बसन्त महुआ चुवाता है। जेठ तपता है, जिससे वर्षा होती है। शरद्‌ऋतु में कमल और हेमन्त ऋतु में गेंदा तथा शिशिर ऋतु में अन्य अनेकों प्रकार के पुष्प खिलते हैं।

यहाँ जलचर और बनचर क्रीडाएँ करते हैं और सुवा-चिरैया नाचते हैं। वहीं सूनी दुनिया में मेरी राम-मड़ैया बनी हुई है।

विशेष—१. ग्राम के पौधों, पुष्पों और जलचर एवं नभचर के वर्णन में ग्राम का सजीव वातावरण प्रस्तुत हुआ है। २. **अलंकार**—अनुप्रास।

नेउरा, बीदर .... राममड़ैया।

शब्दार्थ—नेउरा=नेवला। बीदर=जन्तु विशेष। सुड़ग=खोदकर। सैंधि=छेद नकब। डिगरैं=बड़ी बर्रं। ब्योहर=महाजन। हिलकारा=हिलकार। बवदा=कीचड़। हापा-दैया=कातर-क्रन्दन।

सन्दर्भ—शुक्ल जी यहाँ नदी-तट पर स्थित मड़ैया के कष्टों और वातावरण का चित्रण कर रहे हैं:

व्याख्या—नेवला, बीदर, बर्र, डिगारें, साँप आदि जन्तु मेरी इस मड़ैया को अपना ही घर समझते हैं इसमे चूहे खोदकर बिल बनाते हैं। चेंटा नकब लगाते हैं और ये सभी इस झोपड़ी की खाद्य-सम्पत्ति को हड़पना चाहते हैं। यहाँ के लोगों को राजा और महाजन निगल-उगल रहे हैं, नदी हिलोरें मारती है। सूखा, कीचड़, पानी, पाला आदि क्षण-क्षण में प्राण निकालते हैं। यहाँ कोई दवा या दुवा का देने वाला नहीं है। घर-घर में करुण-क्रन्दन छाया हुआ है। मुसीबत की मारी हुई मेरी राम-मड़ैया यहीं बनी हुई।

विशेष—१. ग्राम की झोपड़ियों के संकटपूर्ण वातावरण का यथार्थ चित्रण हुआ है।

२. **अलंकार**—अनुप्रास, 'घर-घर', 'क्षण-क्षण' में पुनरुक्तिप्रकाश।

३. 'पाना-पथरा' में 'प' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

करिया अच्छर .... राममड़ैया।

शब्दार्थ करिया अच्छर भैंसि बराबर=सर्वथा अशिक्षित। सुलतानी=बादशाहत। बया=एक चिड़िया विशेष, जो अपना घोंसला बनाने के लिये प्रसिद्ध है।

सन्दर्भ—'राम मड़ैया' शीर्षक कविता में शुक्ल जी ग्राम के घोर अशिक्षा पूर्ण वातावरण का चित्रण कर रहे हैं:

व्याख्या—यहाँ के लोग इतने अधिक अशिक्षित हैं कि उनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है, उनकी उजड्डता को देखकर भगवान भी मूढ़ हो रहा है।

यहाँ अँधेर मचा हुआ है। सभी अपने स्वार्थ में लिप्त हैं। शत्रुओं का यहाँ सम्मान होता है। इन गाँवों में न अँग्रेजी का प्रसार हो सका और न सुलतानी ही अपने पैर जमा पाई। यहाँ घर-घर में पुरानी ही रीति है। नई सभ्यता यहाँ से भयभीत होकर भाग गई है।

जहाँ किसान जो अपने अन्न से संसार का पालन करने वाले हैं, बया के घोंसले के समान झोपड़ियों में रहते हैं। यहाँ वहीं पर बिना बसाये हुए मेरी राम-मड़ैया बस गई।

विशेष— १. 'करिया अच्छा भैंसि बराबर' कहकर ग्राम की घोर अशिक्षा पर प्रकाश डाला गया है।

२. अवध के भीतरी ग्रामों में सुलतानी सभ्यता अथवा अँग्रेजी सभ्यता प्रवेश नहीं कर पाई। यहाँ पुरानी ही रीति-नीति प्रचलित है।

---

२. राजा की कोठी

परिचय—शुक्ल जी क्रान्तिदृष्टा कवि रहे। सामन्ती-व्यवस्था, अफसर शाही और नेतागीरी को उन्होंने साहसपूर्ण चुनौती दी है। इस कविता में उन्होंने सामन्तों के वैभव-विलास के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त किया है।

ऊंची-ऊँची रंग बिरंगी .... कोठी ॥१॥

शब्दार्थ—माँ = में। चौगिर्दा = चारों ओर। थनिहान = बाँसों का झुरमुट। पनिहा सोती खाँवाँ = जलस्रोत तक गहरी खुदी हुई खाई। लखौरी = पक्की लाल ईंटें। चोरु = चामर। काँपइ = काँपती है।

सन्दर्भ—'राजा की कोठी' शीर्षक कविता के इस छन्द में शुक्ल जी राजा की कोठी के वातावरण का वर्णन करते हुए उसे कैदखाना कहते हैं, जिसमे किसानों का दिल बन्द है :

व्याख्या—वह राजा की कोठी बहुत दूर से चमक रही है। यह ऊँची नीची बनी हुई अपनी ऊँचाई में स्वर्ग का स्पर्श कर रही है। उसके चारों ओर बाँस के झुरमुटों की सेना खड़ी हुई है और उसके चारों और खाई इतनी गहरी है कि जल स्रोत तक खुदी हुई है। उस कोठी में फलों के भार से केला के पेड़ झुके हुए हैं। पपीते के फल लटक रहे हैं। सारी कोठी पक्की लाल और काली ईंटों की बनी हुई है, मेंहँदी की पँक्तियों को काट छाँट कर सँभारा गया है। उनके द्वारा बीच का सुन्दर मार्ग बनाया गया है। कोठी में खड़े हुए बिरवा चामर डुलाते हैं। पुष्प वहाँ बैठकर पछिताते हैं, क्योंकि उस कोठी की गलियारों में उनकी बरबस सुगन्धि लूटी जा रही है।

यहाँ पक्षी, पौदे आदि सभी कैद हैं। भय के कारण सभी की बोटी-बोटी

काँपतीं है । यह किसान की कोठी अपने अत्याचारों से किसानों के दिल को भी कैद किये हुए है ।

अलंकार—१. 'ऊँची नीची' में अनुप्रास । २. 'लगी सरग माँ चोटी' में असम्बन्धातिशयोक्ति । ३. 'कटि-कटि' मे पुनरुक्तिप्रकाश ।

विशेष—'राजा की कोठी' का चित्रण शोषण एवं अत्याचार के कारागार के रूप में किया गया है ।

जहाँ मांसु .... राजा की कोठी ॥२॥

शब्दार्थ—चुरि रह=पक रहे हैं ('चुरि' स्थानीय प्रयोग है) सकल=मूर्ति । साँपन माँ=साँपों से घिरे हुए । माँ=में । तार मुँह बवालें=टेलीफान से बातें हो रही हैं ।

सन्दर्भ—शुक्ल जो इस छन्द में राजा की कोठी के वीभत्स एवं भयानक वातावरण का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—राजा की कोठी में पशुओ के माँस पकाये जा रहे है और बाघों की खाल बिछी हुई है । घोड़े बँधे हुए हैं, हाथी चिघाड़ रहे हैं ओर देवताओं की मूर्नियाँ लटकी हुई हैं राम-कृष्ण के सिरों की मूर्तियाँ लटकी हुईं हैं और साँपों से लिपट शंकर की मूर्ति लटकी हुई है । राजा के सिर शीशों में मढ़े हुए टँगे हैं । सारा कमरा ऐसे चित्रों से भरा हुआ है । राजा की कोठी में बिजली के बल्ब जल रहे हैं । टेलोफून लगे हैं । टोंटियाँ पानीं उगल रही हैं । राजा की यह कोठी ग्रामों का रक्त चूसकर जीवित है ।

विशेष—कवि ने बड़ी निष्ठा से राजा की कोठी का वीभत्स, भयावह और शोषक दृश्य प्रस्तुत किया है ।

ईंट किसानन .... महराजा की कोठी ॥३॥

शब्दार्थ पाथरु=पत्थर । जुलमन=अत्याचार । ऊ=वह । आस=ऐसी । बूचड़खाना=कसाईखाना, जहाँ पशु काटे जाते हैं ।

सन्दर्भ—शुक्ल जी इस छन्द में किसान की हड्डियों और खून के गारे से बनी हुई राजा की कोठी को बूचडखाना कहते हैं ।

व्याख्या—राजा की इस कोठी मे किसानों के हाडों की ईंटे लगी हैं और उनके खून का गारा लगा हुआ है । किसान का हृदय और किसान के आँख के तारे किसान के पुत्रों के हाड एवं रक्त के ऊपर राजा की यह कोठी बनीं हुई हैं । इसमें देशभक्तों की चरबी और अत्याचारों की चिकनाई लगी हुई है इस कोठी में अन्याय का घण्टा ठनक रहा है और यहाँ पापों की कथा होती है । इसम जो राजा निवास करता है, वह यमराज का भाई ही है । यह खून की रोटी खाता है, अर्थात् किसानों का रक्त चूसता है । इस प्रकार महाराजा की यह कोठी बूचड़खाना बनी हुई है ।

अलंकार—'कोठी में बूचड़खाना' का आरोप होने से रूपक अलंकार ।

दफतर बना रजट्टर ···· ···· कोठी ॥४॥

शब्दार्थ—गाँज = खुले हुए हैं। प्याट = वस्त्र। तिकड़म = धोखाधड़ी।

सन्दर्भ—इस छन्द मे शुक्ल जी राजा की कोठी के अत्याचारों और शोषण की कहानी कह रहे हैं :

व्याख्या—राजा की कोठी में राजा का दफ्तर बना हुआ है, जिसमें रजिस्टर रखे हैं। वहाँ के नौकर राजा के गुलाम कसाई हैं, जो लिखा-पढ़ी करते हैं। किसान के सारे वस्त्र फटे हुए हैं। उसकी लज्जा की कमाई राजा और राजा के कसाई कर्मचारी लूटते हैं। यहाँ अफसरों की पूजा होती है और सीधों पर छुरी चलाई जाती है। ये राजा के कर्मचारी रात-दिन लूट का जाल रचते रहते हैं। यहाँ सदैव तिकड़म ही चलती रहती है। इस राजा की कोठी में अबलाओं का सतीत्व लूटा जाता है और गरीब किसानों की लँगोटी भी छीन ली जाती है। इस प्रकार वह जो छल-कपट और शोषण की वैतरणी प्रवाहित हो रही है, वहीं महाराजा की कोठी बनी हुई है।

विशेष—किसानों के शोषण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है।

---

३. हुवाँ कस-कस होई निरबाह

परिचय—इस कविता मे शुक्ल जी ने ग्राम और नगर की स्थिति का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। शहर मे ग्राम की सी सुरम्य प्रकृति कहाँ? शुक्ल जी ने ग्राम-जीवन की तुलना में शहर को हेय कहा है :

जहाँ न प्रकृति ···· ···· निरबाह ॥१॥

शब्दार्थ—हुवाँ = वहाँ। लेरुवा = घरेलू पशुओं—गाय-भैंस—के नवजात बच्चे। लिचरन = गाय-भैंस के दुर्बल बच्चे। पुड़कानि = उमंग, उमंग में उछलना—गाय-भैंस के छोटे बच्चे उमंग में भरकर फुदकते हुए लुभावने लगते हैं। बदकैं = बदक—यह सफेद रंग का बड़ा पक्षी होता है। पड़ुखा = पड़खुरिया। महरि, भुजइलि, कागा, कटनास = पक्षी विशेष।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी ग्राम के सहज प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसकी तुलना में शहर के जीवन को हेय कहते हैं :

व्याख्या—वहाँ शहर में ग्राम जैसी प्रकृति की उमंग और आनन्द नहीं मिलता, तब वहाँ किस प्रकार निर्वाह हो सकता है। वहाँ न गायों के खुरों की धूल उड़ती है और न गाय एवं भैंसे के नवजात बच्चे फुदकते हुए दिखाई पड़ते हैं। वहाँ कबूतर, बदकें, पड़खुरिया, तोता तथा अन्य रँगीली चिड़ियाँ भी किलोलें नहीं करतीं। वहाँ न तो मोर, स्यार और बिलार बोलते हैं और न वहाँ महरि, भुजइल, काग, कटनसा को पग-पग पर देखकर सगुन ही विचारा जाता है और न इनको

देखकर भविष्य की आशा ही बाँधी जाती है। वहाँ अर्थात् शहर में खुलकर आह भी नहीं निकल पाती, अतः वहाँ किस प्रकार निर्वाह हो सकता है।

विशेष महरि,भुजइलि काग और कटनसा को देखकर गाँव में मंगल और अमंगल के सगुण का निर्णय होता है। जैसे कटनसा को देखकर मंगल सूचक और कौवे की काँव-काँव अमंगल सूचक मानी जाती है।

२. ग्राम की सहज प्रकृति का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि शहर में प्रकृति का यह सहज सौन्दर्य कहाँ ?

न छोटे लरिका .... निरबाह ॥२॥

शब्दार्थ—अनखा=अनखुआ, नजरबिन्दी-ग्राम में माताएँ छोटे बच्चों के माथे में काजल की बिन्दी इसलिए लगा देती हैं, जिनसे उनको नजर न लगे। दिहे=लगाये हुए। बेल्हरांय=उल्लसित होते हैं। नकवा=नाका, मगर। बँबाय=वृषभ-नाद। मन्नावैं=उमेठते हैं। बटई=बटेर। चाह=चाय।

सन्दर्भ—शुक्ल जी ग्राम के सहज जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि शहर में यह जीवन नहीं मिलता। अतः वहाँ किस प्रकार निर्वाह हो सकता है :

व्याख्या—शहर में ग्राम की तरह छोटे बच्चे नजर-बिन्दी लगाये नहीं दीखते और न धूल में लोट-पोट कर उल्लसित होते दिखाई पड़ते हैं। शहर में रीछ, मगर बाघ भी लड़ते दिखाई नहीं पड़ते और न छुट्टा साँड़ ही बँबाते फिरते हैं। यहाँ लाठी तेल देकर लठैत युद्ध रोपते भी नहीं दिखाई पड़ते और न किसान मूछें उमेठकर खेत जोतते दिखाई पडते हैं। शहर म मेड़ा, तीतर, बटेर भी लड़ते नहीं मिलते। यहाँ पहाड़ी, जंगल और नदी व रेत का भी अभाव है। शहर में जहाँ गर्म करके चाय पिलाई जाती है, वहाँ मेरा निर्वाह किस प्रकार हो सकता है।

न उम्बी ... . निरबाह ॥३॥

शब्दार्थ—उम्बी=गेहूँ की भुनी हुई बाल। ह्वारा=होला—चने के भुने बूट। गदर छिमियाँ=अधपकी मटर की फलियाँ। अमलवास=अम्लताश। सुपास=सुभीता। बिरवन=छोटे पौदे। गुजरी=नदी। हिलवार=हिलोरें।

सन्दर्भ—शुक्ल जी ग्रामों में मिलने वाली फसली वस्तुएँ और ऋतु-सौन्दर्य का शहर में अभाव बतलाकर कहते हैं कि वहाँ निर्वाह नहीं हो सकता :

व्याख्या—वहाँ शहर में गेहूँ की भुनी हुई बालें, होला, मटर की अधपकी फलियाँ, बालें, भुट्टे और अम्लताश नहीं मिलते। वहाँ ग्राम में मिलने वाली मौसमी वस्तुओं का अभाव भी मिलता है और बैठने-उठने की सुविधा भी नहीं मिलती। बाग झाड़ी, बिरवों की छाया टटियों की हवा और सुनने को मेघ-मलारें भी नहीं मिलती। शहर मे ग्राम की तरह पग-पग पर हरी घास का फर्श नहीं मिलता, न पुरइन के पत्ते दिखाई पड़ते हैं और न नदी ही हिलोरें लेती है। यहाँ

कोई किसी की थाह नहीं पाता। अतः यहाँ शहर में निर्वाह किस प्रकार हो सकता है।

ताल ख्यातन .... निरबाह ॥४॥

शब्दार्थ—ख्यातन=खेत। हाटन=बजारों मे। बतुवानि=बात-चीत। फूलति=आनन्द-मग्न। दौसु=दिन।

व्याख्या—ग्राम के तालों, खेतों, बाजारों में जो स्नेह से लोग परस्पर मिलते हैं अथवा गली गलिहानों में वार्तालाप करते हैं, वह शहरों में नहीं होता। ग्राम में ओस की बूँदें चाट-चाटकर लहलटी फसलें लहरा उठती हैं। यह सुरम्य दृश्य शहर में नहीं मिलता। ग्राम में लोग भूमि पर बिछे हुए पत्तों पर उल्लसित होकर चलते हैं और पत्ते एवं फूलों पर चलते हुए प्रसन्नता में फूले नहीं समाते। यहाँ रात में यदि कोई भूला भटका आ जाता है, तो उसे अपने घर में छिपा लेते हैं, और दिन होने पर, उसे उसके घर का पथ बतला देते हैं। शहर में यह ममत्व नहीं मिलता। शहर में तो लोग अपने पुरखों के आचार को भी भूल गये हैं। यहाँ किस प्रकार निर्वाह हो सकता है।

जहाँ हो रेल .... निरबाह ॥५॥

शब्दार्थ—होरिल=हारिल, पक्षी विशेष। भुइँ=पृथ्वी। सुसुवार=उलूक। पूत=पुत्र, बच्चे। भारि=विल।

व्याख्या—ग्राम का वातावरण सुखद है। यहाँ हारिल पक्षी पृथ्वी की स्पर्श करता फिरता है। वीर चकवा अपने नियम का पालन करता हुआ रात्रि में चकवी से मिलता है और दिन में बिछुड जाता है। प्यासा चातक भ्रमित होता हुआ फिरता है। किन्तु वह स्वाति जल के अभाव में घड़े का जल पीकर प्यास नहीं बुझाता। यहाँ उलूक सूर्य को नहीं देखता। यहाँ काग कोयल के बच्चों को पालता है बैल दूसरों का अन्न उत्पन्न करके देते हैं, किन्तु स्वयं भूसा खाते हैं। यहाँ नाग कभी अपना बिल न बनाकर दूसरे के बनाये बिलों में रहते हैं। शहर में यह सब कुछ नहीं होता और न वहाँ कुआँ और बाग का व्याह होता है। अतः वहाँ शहर में मेरा निर्वाह किस प्रकार हो सकता है।

विशेष—१. लोक-संस्कृति में प्रसिद्ध है कि चकवा रात्रि में चकवी से मिलता है और सबेरा होते ही बिछुड़ जाता है। २. चातक स्वाति का ही जल पीता है। ३. उलूक सूर्य को नहीं देखता। ४. कोयल और काग के बच्चे समान होते हैं। कौवा अपने बच्चों को कोयल घोंसले में रखाता है। कोयल उनका पालन करती है। बड़े होकर वे कौओं में जाकर मिल जाते हैं।

५. सांप अपना बिल स्वयं नहीं बनाता, वह दूसरों के बनाये बिल में घुस जाता है।

जहाँ की दुनियै छायावाद .... निरबाह ॥६॥

शब्दार्थ—छायावाद=छायाभास, असत्य, धोखा । भेखु=भेष । बाखरी=घर । दगा=धोखा । प्याट=गाँठ । दौसु=दिन । लच्छ=लाखों । हुवाँ=वहाँ, शहर मे ।

संदर्भ—अन्त में शुक्ल जी शहरी जीवन के दोष बतलाकर कहते हैं कि वहाँ किस प्रकार निर्वाह हो सकता है :

व्याख्या—शहर में यथार्थ जीवन न मिलकर छायाभास भर मिलता है । यहाँ के भेष, भाषा, मकान और व्यवहार में बनावट है । शहरी लोगों के पेट में कपट, बातों में दगा, चित्त में क्षोभ और जिह्वा में झूठ भरा रहता है, जबकि ओठों में प्यार का ऊपरी दिखावा रहता है । इनकी आँखों मे नशा चढ़ा रहता है और चित्त में क्षोभ व्याप्त रहता है । शरीर से ये रोगी रहते हैं, किन्तु इनका शरीर ऊपर मे देखने में सुकुमार लगता है । ये दिन भर दूसरों की जेब काटते रहते हैं । उनका एक मात्र यही व्यापार रहता है और वे लाखों प्रकार के व्यभिचार और अत्याचार करते हैं । यहाँ चोर को शाह कहा जाता है । अतः ऐसे शहरों मे किस प्रकार निर्वाह हो सकता है ।

विशेष—कवि ने शहरी जीवन की विसंगतियों पर यथार्थ प्रकाश डाला है । वहाँ ग्राम सरल और सहज जीवन बिताने वाले लोगों का निर्वाह नहीं हो सकता ।

---

४. किसान की दुनिया

परिचय—इस कविता मे अवध के ग्रामों की प्रकृति का यथार्थ चित्रण है । ग्रामीण जीवन की सुन्दरता के साथ में शुक्ल जी ने वहाँ की विभीषिका को भी चित्रित किया है । ग्रामों का सारा पर्यावरण चित्रवत सामने आ जाता है । किसान की दुनिया में घास-फूस और मिट्टी के कुछ घर बने हुए हैं । ये घरौंदानुमा हैं । इन घरों के चारों ओर विभिन्न प्रकार के जंगली पेड़-पौधे लगे हुए हैं । ग्राम की जनता अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों से ग्रस्त है, राजा, जमींदार, अधिकारी, कर्मचारी आदि सभी उसका शोषण करते हैं । ग्राम के किसान परिश्रम करते हुए विपन्नता का जीवन व्यतीत करते हैं ।

फूसु पताई .... किसान की दुनिया ।

शब्दार्थ—पताई=गन्ने की पत्ती । क्यार=के । घरौंदा=देहात में मिट्टी के बने छोटे घर । अगवारे=आगे । दाहिनी वर=दाईं ओर की । महतो=चौधरी । बखरी=घरौंदे से कुछ बड़े घर । पकरिया=पीपल की तरह एक वृक्ष । छाहीं=छाया । विगहन=बीघों के क्षेत्र में । चिमगादरा=चिमगादड़ । जप्पे-थप्पे=जहाँ-तहाँ ।

सन्दर्भ—शुक्ल जी ने 'किसान की दुनियाँ' शीर्षक कविता में ग्राम का पर्यावरण प्रस्तुत किया है :

व्याख्या—ग्राम में मिट्टी के घरौंदे बने हुए हैं, जिनमें फूस और पताई के कुछ छप्पर पड़े हुए हैं। उस घरौंदानुमा घर के पीछे तिपतिया, आगे कुकरौंदा का पौधा लहराता है। ग्राम में दाहिनी ओर महतो का घर है। जिसका बहुत बड़ा ठाठ है। ग्राम में बाईं तरफ मैकिनिया नाम की धोबिन रहती है, जिसके घर में खाने के लिए दाना तक नहीं है। किसान की झोपड़ी के द्वार पर बरगद का पेड़ लगा हुआ है, जिसकी छाया बीघों क्षेत्र में फैलती है। चिमगादड़, उलूक, विसखपरा और चुड़ैलें बसती हैं। सारे ग्राम में एक भी बढ़ई नहीं है और न लोहार और धुनिया ही हैं। ग्राम में जहाँ-तहाँ दस-पाँच घर ही हैं। किसान की ऐसी दुनिया है।

विशेष—किसान की दुनिया के कवि ने सुन्दर और भीषण दोनों प्रकार के चित्र प्रस्तुत किये हैं।

सविता उवैं ···· ···· दुनिया।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी ग्राम की प्रकृति के सहज सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं :

व्याख्या—यहाँ सूर्य उदित होता है, चाँदनी (चन्द्रमा) अस्त होती है, मन्द-मन्द पुरवैया पवन चलती है, कोयल कोंकों करती है, कुत्ता पों-पों करता है, चिड़ियाँ चों-चों करती है, बैल और भैंसे जुगाली करने में लगे हुए हैं। गाय पन्हाकर दूध दुहे जाने के लिए हुँकार रही है। गाय की हुँकार को सुनकर बछड़ा टटिया को फाड़कर और उससे बारम्बार मूड़ निकालकर झाँकता है। कमर की टेंट पर लड़के को दाबे हुए मेहरी द्वार को बुहारती है। बड़ा भैया सुखे बेल की गेंद बनाये हुए ऊपर को उछालता है। लड़की पैरों में सनई के फलों की झुनझुनिया पहने हुए थिरक रही है। अपनी दुनिया के इस उल्लासपूर्ण जीवन को देखकर किसान का हृदय बालिस्तों बढ़ जाता है।

विशेष—ग्राम जीवन के उल्लास का सहज शब्द चित्र अंकित हुआ है।

गोरुन का चारा ···· ···· दुनिया।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी कार्यशीला ग्राम-युवतियों के चरित्र का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—किसान की गृहिणी पशुओं को चारा देती है। बच्चों को फुसलाकर रखती है और पति का सम्मान करती हुई सारे घर का काम करती है। वह चक्की पीसती है, धान कुटवाती है और उपले-कण्डे थापती है। जब टोला की दो-चार औरतें साथ में मिल जाती हैं, तब वह बाहर निकलती है। वह कपड़े धोती है, बर्तन माँजती है, घर की सफाई करती है, रोटी बना कर सबको खिलाती है। इस प्रकार वह इंजन बनी हुई घर के काम-काम में लगी रहती है। वह बड़ी सरल है। वह न हँसती है और न बोलती है। वह बच्चे को गोद में लेकर खिलाती है।

वह सदैव काम में लगी रहती है। विधाता ने किसान की यह कितनी सुन्दर दुनिया बनाई है।

बड़े सबेरे .... दुनिया।

सन्दर्भ इस छन्द में शुक्ल जी किसान के दैनिक जीवन एवं भोजन-व्यवस्था का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—किसान बड़े सबेरे हल जोतते हैं, खेत बोते हैं और खेत को बराबर करने को पटिया करते हैं। इसके पश्चात् घास रखने की जाली और हँसिया खुरपा लेकर चारा-घास लेने को चले जाते हैं। दोपहरी के समय उनके लिए पानी लगाकर हाथ से बनाई हुई चार रोटियाँ और बड़े लोटे में पानी आ जाता है। कभी तो चबेना, भठ्ठा, शरबत पर ही उनको जिन्दगी व्यतीत करनी पड़ती है। पेड़ा-लड्डू तो उनको मेले-ठेले में ही खाने को मिलते हैं। बेढ़ई, बरी, फुलौरी उनको तिथि-परवी पर ही मिलती हैं, तथा उनको पूरी, पुआ और कचौरी खाने को भये-बिहाहे ही मिलती हैं। चना, मिठाई, बहुरी, मुरकी, तिलचौरी, गुड़धानी ही उनकी सभी ऋतुओं में कलेवा के लिये मिलती है। यही किसान की दुनियाँ है।

पीर फकीर .... किसान की दुनियाँ।

शब्दार्थ — अध तुर्क=आधे हिन्दू आधे मुसलमान, वर्णशंकर। नन्दीसुर=नन्दीसुर के पूजक। हरजलिया=यजमानो द्वारा गंगाजल की शीशी पुजवाकर उनकी ओर से विश्वनाथ, रामेश्वर आदि मन्दिरों में जल चढ़ाने वाले पण्डे। बाँसु=एकतारा बाजा। बिति=वृत्ति, जीविका। खुनखुनिया=आभीर कुल-पूज्य कथावाचक।

सन्दर्भ इस छन्द में शुक्ल जी स्पष्ट कहते हैं कि सभी पीर-फकीर आदि किस प्रकार किसान को लूटते हैं और किसान उनको अन्न देता है :

व्याख्या पीर फकीर अघोरी, नागा, जोगी, ठग, वर्णशंकर, नन्दीसुर, हरजलिया, कुंजड़े, नंगा, भट, बेडिया, ब्रजवासी, पीर, महावत, साईं आदि दुनिया भर के लोग किसान के यहाँ नई फसल होने की राह देखते रहते हैं। ये छठे महीना आते हैं। भाँति-भाँति के बाना वेश रचकर उनसे अनाज माँग-माँग कर ले जाते हैं। गंगा पुत्री और खुनखुनिया एक तारा बजाकर अपनी वृत्ति माँगते हैं। किसान इन सबसे लुटता है और अपने को लुटाता है। किसान की दुनिया इस प्रकार अनूठी है।

जमीदार कुतवा .... किसान की दुनिया।

शब्दार्थ—कुतवा=कुत्ता। असु=समान। खुरचाल=खुराफात, षडयंत्र। लतीफा=किस्सा। पासी=चौकीदारी करने वाली जाति विशेष। जिनिस खानगी=खाने की वस्तुएं।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी ने जमींदार, नौकर, प्यादा तथा सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसान की खुली लूट का वर्णन किया है :

व्याख्या—जमींदार के कुत्ते, नौकर, प्यादा, कारिन्दा किसान की बोटी-बोटी नोचते रहते हैं और उनकी निगाह किसान की लँगोटी तक खोल लेने पर रहती है। पटवारी, उनके विरुद्ध षड्यंत्र चलाते रहते है। बेदखली, इस्तीफा, कुड़की, जुरमाना के रूप में किसान के सामने नये लिफाफे आते रहते हैं। थाना, चौकी, पुलिस, कचहरी, इन्स्पेक्टर आदि सभी किसान के घर को अपनी ससुराल बनाये रहते हैं। ये सभी मिलकर नमक, तेल, गुड़धानी आदि किसान के सारे भोज्य-पदार्थ चट कर जाते हैं। सिपाही की लाल पगड़ी देखते ही किसानों का हृदय दहल जाता है। ऐसी वह किसान की दुनिया है।

विशेष—१. किसान पर किये जा रहे शोषण और अत्याचारों का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है।

२. 'लाल पगड़ी' लाक्षणिक प्रयोग है, जिसका अर्थ पुलिस का सिपाही है।

सबै किस्तिहा ··· ···· दुनिया।

शब्दार्थ किस्तिहा=किस्तों पर रुपया बाँटने वाले। तूती=डंका, आतंक। गाँसि घेरि=घेर-फाँसकर। रोजहो=दैनिक ऋण। नौदानी=नौ का दस गुना भुगतान। उगाही=वसूलना। उचापति=लागू करना। मोहरे=दरवाजे। लटे लिहाढ़े=बुरे ढंग से। बहिनीं=बहन। बिटिया=पुत्री।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी ने किसानों पर महाजनों के शोषण का वर्णन किया है :

व्याख्या—किस्तों पर रुपया बाँटने वाले महाजन ग्राम के किसानों के घर-घर डोलते है। पहले उनको घेर फाँस कर वे ऋण दे देते हैं, फिर जूता फटकार कर उसे उनसे वसूल करते हैं। वे दैनिक उगाही करने वाले हैं और नौ के दसगुने वसूल करते हैं। वे उनसे पुरनोट और रुक्का लिखा लेते है। इसके बदले में उन पर दस्तक, भेंट और बेगार लागू करते हैं और रोज ही आकर थुक्का-फजीहत करते हैं। वे धन्ना देकर किसान के दरवाजे पर उलटी खटिया डालकर बैठ जाते हैं। वे किसान पर बहुत बुरे ढंग से तगादा करते है। उनकी बहन-बेटियों को बुरे ढंग से देखते हैं। यहाँ किसान पर रोब जमाने के लिये बौने और ठिगने तक लाठी बाँधकर सिपाही बन गये हैं इनको देखकर भयभीत होकर किसान कोने में छिप जाते हैं। यह किसान की ऐसी दुनिया है।

मोटें-झोंटे कपड़ा ···· ···· दुनिया।

शब्दार्थ—बागुर=घरलू पशुशाला, नोहरा। किमियागर=मिट्टी से सोना बनाने वाले शिल्पी। मेहरिन=स्त्रियों की। बिसाती=प्रसाधन की सामग्री। बेचने

वाले। पटवा=माला कण्ठी गूँथने वाले। पलझावै=फुसलाते हैं। दामन=मूल्य। हाट=बाजार। उइ=वह। घटितोला=कम तोलने वाला।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी स्पष्ट करते हैं कि सरल जीवन बिताने वाले किसान किस प्रकार ठग विद्या का शिकार होते हैं :

व्याख्या—किसान मोटे-झोटे कपड़े पहनते हैं और मोटा-झोटा खाना खाते हैं। उनकी दैनिक दिनचर्या घर से खेत जाना और खेत से घर की पशुशाला में काम करना है। ग्रामों मे नंगे और ठगिया सम्मान पाते हैं और मिट्टी से सोना बनाने वाले ठग-शिल्पी पूजे जाते हैं। बिसाती पटवा यहाँ फेरी लगाकर अपना सामान बेचने आते हैं, जो किसान की स्त्रियों को ठगते हैं। वे अपने सड़े गले माल को मनचाहे दामों में गले मढ़ जाते हैं। मानिहारिन चूडियाँ और कंगन लेकर आती है और किसान की भोली औरतों से दो के चार वसूल करती हैं। ग्राम में कम तोलने वाला बनिया बीच बाजार में बैठकर डंडी मारता है। किसान जहाँ भी जाता है, वहाँ ठगा जाता है किसान की यह ऐसी दयनीय दुनियाँ है।

जूड़ी हैजा .... किसान की दुनिया।

शब्दार्थ—जूडी=शीत ज्वर, निमोनिया। ताप=बुखार। तिजारी=तीसरे दिन आने वाला बुखार। जिन्दत-पगियन=भूत-प्रेतादि। डांडे घूरे=गाँव के किनारे वाले घूरे के ढेर पर। छैया=सुअर के छौने। बकरा वीर=लोक-देवता विशेष के लिए बकरे की बलि चढ़ाना। चिलम लैंय उड़वैया=प्रेत बाधा निवारण हेतु चिलम चढ़ाने की लोक-प्रथा। सुखनिदिया=एक प्रकार का रोग। त्रिफला=हर्र, बहेड़ा, आँवला को मिलाकर बनाई गई औषधि। त्रिकुटा=सौंफ, कासनी और सेंघा नमक का मिश्रण। अमलोनिया=विभिन्न प्रकार के अम्ल-चूर्ण, देशी दवाइयाँ।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी ने ग्राम में फैलने वाले विभिन्न रोगों तथा झाड़-फूँक, जादू-टोना तथा देशी दवाइयों से निदान का वर्णन किया :

व्याख्या—ग्रामों में निमोनिया, हैजा, तेज बुखार, तिजारी, हाथ-पैरों में बिवाईं, दाद, खाज की बीमारियाँ प्रायः होती रहती हैं। साथ ही अन्ध-विश्वास के कारण भूत-प्रेतों की फेरी भी लगती रहती है। इनको दूर करने के लिए ग्राम में देवताओं की मान-मनौती की जाती है। ग्राम के बाहर के घूरे पर प्रति वर्ष सुअर के छौने की बलि चढ़ाई जाती है। वीर देवता को बकरा की बलि और पीर को मुर्गा की बलि दी जाती है, तथा प्रेत बाधा के निवारण के लिए चिलम चढ़ाई जाती है। लडकों को सूखे का रोग होकर उनको सुखा देता है। इसका दूर करने के लिए धान का धुआँ दिया जाता है। वहाँ की दुनिया अंध-विश्वासों में इतनी अधिक अन्धी हो रही है कि बिरवा, वृक्ष, पत्थर ही नहीं, अपितु मुर्दों को भी पूजती है। यहाँ रोगों से बचने के लिए त्रिफला, सौंफ, कासनी, लाल नमक और विभिन्न

प्रकार की देशी दवाओं का प्रयोग होता है। यहाँ वैद्यों और गुसाइयों की पूछ होती है। किसान की यही दुनिया है।

विशेष ग्रामों की लोक-संस्कृति और अन्ध-विश्वासों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

५. दाता चौमास

परिचय—'दाता चौमास' शीर्षक कविता में शुक्ल जी ने चौमास की प्रकृति का यथार्थ वर्णन करते हुए उसे सभी ऋतुओं से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। सारी कविता मे 'धनि-धनि दाता' चौमास की जयकार है।

धूरि चढ़ि फैली ···· ···· दाता है चौमास ॥१॥

शब्दार्थ—लूह=शोभा। सूर्ज=सूर्य। प्याट=ग्रीष्म में जल के सूख जाने से ताल-तलैयों की मिट्टी चिटक जाती है, वर्षा उसे दूर कर देती है। हुलास=आनन्द।

सन्दर्भ—घास, ताल-तलैयों, नदी-नारों के द्वारा कवि ने चौमास की जयकार कराई है :

व्याख्या—अब तक जमीन पर जो धूल फैली हुई थी, वर्षा के होते ही उस पर चढ़कर घास फैल गई वह चिल्लाकर कहती है कि दाता चौमास धन्य है। प्रकाश की सुहानी रक्तिम शोभा, सूर्य की तपन और आकाश में मेघों का मिलन देखकर यह कहना पड़ता है कि दाता चौमास धन्य है। वर्षा के होते ही ताल और तलैयों की फटी दरारें भर जाती हैं। खिले हुए फूलों को देखकर हृदय पिघल जाता है। नदी नाले उमड़ कर एक हो जाते हैं। वे आनन्द में मग्न होकर कहते हैं कि दाता चौमास धन्य है।

अलंकार—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

भुम्मि पर बिछे ···· ···· चौमास ॥२॥

शब्दार्थ अंजुरी=अंजुलि। ब्वाले=किलोलें करत हैं। दरिद्र=दरिद्रता। दरे=नष्ट करती है। ख्यात=खत।

संदर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी पावस में चारों ओर फैली हुई उमंग का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—पृथ्वी के उपर घास एवं हरियाली के बिछौने बिछ गये हैं। वन से बिरवा अंजुलि भर कर उठ खड़े हुए हैं। सारे जीव पावस में उमंग से भरे दिखाई पड़त हैं. चलती हुए पुरवैया हवा दरिद्र का हरण करती है। सारे जीवो की आशा खेतों में जम गई है। सभी कहते है कि दाता पावस मास धन्य है।

सरगु ठंढान .... चौमास ॥३॥

शब्दार्थ—सरगु=स्वर्ग, आकाश। ठंढान=ठंढा हो गया। भुम्मि=पृथ्वी। सुधियानि=सीधी हो जाना। कटैया=कटसरैया। मुकैया=मकोई, छोटी रस भरी। ढाँख=पलाश। भौचक्कि=आश्चर्य चकित। करियानि=काली होने लगी।

संदर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी ने ग्राम की वनस्पतियों के सहज सौन्दर्य का वर्णन किया है :

व्याख्या—आकाश और भूमि में शीतलता छाई है। वन में बाँह के समान सीधी होकर बेलें फैल गई हैं। कटसरैया, मकोई, झरबेरी, पलाश, अपने सौन्दर्य का प्रसार कर रहे हैं। खलिहानों का सौन्दर्य भौचक्का कर देता है। मेढ़क अपने टर्र-टर्र के स्वर में इतिहास बाँचते हुए मानो कह रहे हों के चौमास सभी का दाता है।

कहूँ जलु सांपा .... चौमास ॥४।

शब्दार्थ—सांपा=रेंगनि=साँप समान रेंगत। घहराय=गरजता है।

सन्दर्भ—इस छन्द मे शुक्ल चौमासे में जल-धारा के प्रवाह का स्वाभाविक वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—चौमास मे कहीं जल साँप की तरह रेंगता हुआ चलता है और कहीं बुलबुले उठाकर सन्नाटा भरकर चलता है। कहीं वह हहराता है और कहीं गर्जना करता है और कहीं अपनी धारा के वेग से घर और गाँवों को काट देता है। मगर और घड़ियाल साँस भरते हुए कह रहे हैं कि दाता चौमास धन्य है।

अलंकार—'कहूँ जलु साँपा रेंगनि जाय' में उपमा।

मचलि गावै .... चौमास ॥५॥

शब्दार्थ—किरवा=कीड़ा। किसनउ=किसान भी।

सन्दर्भ—इस छन्द में शुक्ल जी चौमास में जल जन्तुओं और किसानों के उल्लास का वर्णन कर रहे हैं :

व्याख्या—बदली मचलकर युग-विजय के गीत गाती है। पर्वत अनाथ के समान रोता है। पृथ्वी के कमल बनकर कहीं बगुला बैठे हुए हैं और कहीं घास के कीड़ा अपने स्वरों में पावस के गीत गा रहे हैं। किसान भी हर्ष मे फूलकर आकाश को छू रहे हैं। वे कहते हैं कि दाता चौमास धन्य है।

अलंकार—१. 'मचलि... जीति' में मानवीकरण।
२. बगुला म थल के कमल का आरोप होने से रूपक।
३. 'गिरै ...अनाथ की भाँति' में उपमा।
४. 'घास के किरवा गावैं गीत' मे मानवीकरण।

नदी तालन .... चौमास ॥६॥

शब्दार्थ—होड़=स्पर्द्धा। नाज=अनाज। सूध=सीध में। ठनिगैं=रूप गई। जोक=भैंस आदि के चिपट कर उनका रक्त चूसने वाला पानी का जीव। गेंगटा=गेंसा, पावस में दीखने वाला एक जीव। खड़ैया=खरही, खरगाशिनी, जंगली पशु, खरगोश का स्त्रीलिंग।

सन्दर्भ—पावस की बहार में कवि नदी, तालाब, अन्न, घास तथा जंगली पशुओं के उत्साह की स्पर्द्धा का वर्णन कर रहा है :

व्याख्या—नदी-तालाबों में ऐसी होड़ पड़ गई है कि उफनकर एक दूसरे से आगे निकलना चाहते हैं। खेतों में अनाज के साथ जो घास उग आई है, वह अनाज के पौधों से ऊँचा उठने की होड़ कर रही है। मछली उत्साह में भरकर जल-धारा में सीधी बहती जा रही है। वर्षा के उल्लास में मोर और सियार में अधिक तेज बोलने की होड़ लग गयी है। खरही वन में उल्लसित होकर कहती है कि दाता चौमास धन्य है।

कठौता ओढ़े .... चौमास ॥७॥

शब्दार्थ—हियाँ=यहाँ। सुत्ती=सीप। घोंघी=घोंघा।

व्याख्या—कछुआ की जो कड़ी पीठ है, उसी का कठौता ओढ़े हुए कछुवा कहता है कि यहाँ तो हमारा राज्य है। यहीं कहीं पर सीपें और घांघियाँ भी रहती हैं। जौंक गेंगटों को मारकर उल्लसित होकर आगे बढ़ती है। मछली मुँह बन्द कर उल्लास में सीधी बही जा रही है। मदारी सन्यास लिये बैठे हैं। वे कहते हैं कि दाता चौमास धन्य है।

अनेकन परवी .... चौमास ॥८॥

शब्दार्थ—परवी=पर्व, उत्सव। देउता=देवता। हरहा=एक जानवर विशेष।

व्याख्या—चौमासे में अनेक पर्व त्योहार भी आते हैं। अनेक देवताओं की पूजा होती है। हरहा चिड़िया घुड़कती फिरती है। भादों में जन्म अष्टमी को कृष्ण जन्मोत्सव होता है, जिसमें कृष्ण पालने पर झूलते हैं। चौमासे के इस सौन्दर्य को देखकर बसन्त भी हार जाता है और खिसिया कर कहता है दाता चौमास धन्य है

विशेष—लोक-संस्कृति का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त

यशोधरा

प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये ॥१॥

सन्दर्भ—वियोगिनी यशोधरा प्रियतम के वियोग में आतुर होकर अपने प्रेम की दृढ़ता को व्यक्त करती हुई कहती है :

व्याख्या—हे प्रियतम ! मेरा तुमसे प्रथम मिलन श्रवण-मार्ग से हुआ, अर्थात तुम्हारी कीर्ति को कानों से सुनकर मैंने मिलन-सुख का अनुभव किया । कीर्ति श्रवण के पश्चात् मैंने तुम्हें अपने हृदय में स्थान दिया, अर्थात् तुम्हें अपना आराध्य देव बनाया । अधर-कपाट बन्द करके मैं तुम्हारी बन गई । अर्थात् तुमको हृदय में स्थान देकर मौन ही रही और किसी अन्य का नाम न लिया और इस डर से कि तुम कहीं मेरे हृदय-मन्दिर से निकल न जाओ और दूसरा कोई इसमें प्रवेश न कर जाये, मैंने अधरों के कपाट कभी नहीं खोले । किन्तु भाग्य पर किसका वश चला है । मेरे हास-विलास के केन्द्र होकर भी तुम दृष्टि-मार्ग से निकल गये, अर्थात् आँखों को धोखा देकर तुम चले गये । मैं अब तुमसे कह ही क्या सकती हूँ । तुम अब कहीं पर भी रहो, कहीं भी छाये रहो और बरसो । इतना मैं अवश्य कहती हूँ कि यदि मेरे विश्वास व्यर्थ हैं और इनमें शक्ति है, तो अवश्य ही तुमको एक बार खींचकर ले आयेंगे ।

अलंकार—रूपक, वीप्सा, अनुप्रास ।

निशि की ………… जो रही ॥२॥

सन्दर्भ—यशोधरा को आज अपने प्रियतम के वियोग में भविष्य अन्धकार-मय दिखाई पड़ रहा है, अतीत तो उसके हाथों से निकल ही चुका है, अतः वर्तमान को ही अपने अधिकार में रखने का प्रयत्न करती हुई कहती है :

व्याख्या—हे रजनी के काले पर्दे ! जब चेतना सो जाती है, तब न जाने तेरे पीछे क्या-क्या खेल होते रहते हैं । मेरे भाग्य तुझ पर अंकित नक्षत्रों से युक्त होकर अब भी (जब कि में अपने प्रियतम के वियोग में विदग्ध हूँ) नवीन बीज बोता जा रहा है, अर्थात् मेरा भाग्य तेरे नक्षत्रों के साथ बँधा हुआ है और नक्षत्रों की गति अस्थिर रहती है । अतः मेरा भाग्य भी अस्थिर है, भविष्य अन्धकारमय है । फिर भी मैं अपने भाग्य के सुन्दर फल की (आशा) के भार को व्यर्थ ही सहन कर रही हूँ । सम्पूर्ण सृष्टि के लोग हमें विषाद दोनों में रोते रहते हैं । सम्पूर्ण विश्व के लोग सुख-दुख दोनों में अपनी स्मरण और विवेक शक्ति को खो बैठते हैं और उन्हें सुख

और दुःख के अतिरेक में अपना कर्तव्य-पथ दिखलाई नहीं पड़ता, पर मैं जाग्रत हूँ, आवधान हूँ और अपनी दृष्टि को धोकर स्वच्छ कर रही हूँ ताकि अपने कर्त्तव्य-पथ को पहचान सकूँ। मेरे खेल के दिन (बचपन-सखियों के साथ खेलने का समय और यौवन – प्रियतम के साथ खेलने का समय) तो चले गये, अब जो समय (प्रियतम के वियोग का समय) मेरे हाथ में है, उसको तो न निकलने दूँ।

अस्थिर भविष्य तो भाग्य से बँधा है, उसका तो कोई भरोसा ही नहीं और अतीत तो नष्ट हो ही चुका है, उसके लिए पश्चाताप क्या ? अब तो मुझे वर्तमान पर ही दृष्टि रखनी चाहिए और प्रियतम के हित की रक्षा करनी चाहिए।

विशेष—सृष्टि के रहस्य मनुष्य के लिए अब तक अज्ञेय बने हुए हैं। मनुष्य का जीवन न जाने किन-किन शक्तियों द्वारा शासित हो रहा है। मनुष्य कुछ सोचता है और होता कुछ अन्य ही है। नियति (भाग्य) के हाथ का खिलौना मात्र है यह मनुष्य ! अतः जब मनचाहा नहीं होता, तो जो भी मनुष्य के सामने आए उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए और आशक्ति रहित होकर अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिए। मनुष्य व्यर्थ ही सुख-दुख में पड़कर अशान्त होता है। जब हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है तब विगत पर पश्चाताप और अनागत (भविष्य) की चिन्ता क्यों हो, अतः कर्त्तव्य ही श्रेष्ठ है।

अलंकार—'निशि····जवनके' में रूपक, अनुप्रास।

उलटा पड़ा····················पलक हहा ॥३॥

व्याख्या—यशोधरा रात्रि के समय आकाश व नक्षत्रों को देखकर विचार करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि आकाश समुद्र के समान है, समुद्र का नाम रत्नाकर भी है। आकाशरूपी रत्नाकर में नक्षत्र-रत्नों की राशि अवस्थित है। लगता है कि यह आकाश रूपी रत्नाकर उलट गया है और ओस बिन्दुओं के रूप में सारा जल नीचे गिर गया है और नक्षत्र रूपी रत्नों के हार आकाश के हृदय में शेष रह गए हैं। यशोधरा को आकाश एक ऐसे नायक के रूप में दिखाई पड़ता है जो अपने हृदय में रत्नों के हार डालकर रमणियों को लालायित करता है। यशोधरा कहती है कि हे सखि ! मैंने इस आकाश रूपीं नायक से पूछा कि तू तारकहारों से सज्जित तो है, सुन्दर भी है, परन्तु यह बता कि पुरुष जाति के समान निर्दय है या तेरे हृदय में उपयुक्त दया भी है। आकाश ने मानो हँसकर यह उत्तर दिया कि हे यशोधरे ! तू दया या निर्दया का प्रश्न क्यों करती है ? मैं न निर्दय हूँ न सदय। मुझमें, स्थित नक्षत्रों की गति देख। यदि वे तेरे अनुकूल है तो मैं भी दयावान हूँगा और यदि तेरे दुर्भाग्यवश नक्षत्रों की गति तेरे विपरीत है, तो मैं निर्दय प्रतीत हूँगा। इसमें व्यंग्य यह है कि यशोधरा का यह दुर्भाग्य था कि उसके पति ने सन्यास ले लिया। यदि नक्षत्रों की गति उसके अनुकूल होती तो उसका पति उसे छोड़कर वन-गमन न

कदता । अतएव पुरुष जाति पर किसी प्रकार का लांछन व्यर्थ है, यह तो समय की गति है जो पति, पुत्र, बन्धु, बान्धवों आदि को अनुकूल या प्रतिकूल कर देती है ।

अलंकार—'तारक-रत्नहार' में रूपक तथा पूरे पद में उत्प्रेक्षा अलंकार।

"रुदन का हँसना ही तो गान" ।।४।।

रुदन का हँसना..............भगवान

सन्दर्भ—राहुल अपनी वियोगिनी माँ से गीत गाने के लिए हठ करता है। यशोधरा उसकी प्रसन्नता के लिए गाने को किसी प्रकार तैयार हो जाती है। कला किस प्रकार उत्पन्न होती है, यह समझाना इस गीत का विषय है। साथ ही यह भी बताया गया है कि लोक-कल्याणकारी वस्तुएँ पीड़ा सहकर ही उत्पन्न होती हैं :

व्याख्या—हृदय की वेदना ही गीत के रूप में प्रकट होती है। जिस हृदय में दुःख नहीं है, टीस नहीं है, जिस पर कभी आघात नहीं लगा, जिससे कि उच्छ्वास नहीं छूटे, वह हृदय संगीत को जन्म नहीं दे सकता, वह हृदय कविता की सृष्टि नहीं कर सकता (कविवर पन्त ने लिखा है—"वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान। उमड़ कर आँखों में चुपचाप, वही होगी कविता अनजान।" आदि कवि वाल्मीकि के मुख से तभी सरस्वती प्रकट हुई थी, जब उनका हृदय क्रौंच पक्षी के दुःख को देखकर रो पड़ा था। अतः यशोधरा का कथन है कि हृदय में जब पीड़ा विद्यमान रहती है और जब उस पीड़ा की स्थिति में व्यक्ति मुस्कराने की क्षमता रखता है, तभी गान उत्पन्न होता है। कवि के उल्लास और आदेश के नीचे पीड़ा का होना अनिवार्य है, संगीत व काव्य में हृदय का क्षोभ प्रकट होता है, जहाँ क्षोभ नहीं है, वहाँ कला प्रकट नहीं हो सकती। अतः यशोधरा कहती है कि रोदन का हास्य ही संगीत है, अर्थात् पीड़ा की अवस्था में जब उमंग उत्पन्न होती है तब वही उमंग गीत की सृष्टि करती है।

यशोधरा पुनः कहती है कि संगीत की तान सुनकर यह सोचना चाहिए कि यह तान सुख की अवस्था से उत्पन्न हो रही है, वस्तुतः मेरा हृदय रूपी तन्त्री (एक बाजा) सुखद तानों को उत्पन्न कर रही है तथापि ये तानें मेरे हृदय के दुःख को ही प्रकट करने वाली हैं, मेरा रोदन तो इन तीनों में प्रकट हो रहा है (लोग कहते भी हैं कि इसके गायन में 'दर्द' है, बस यह 'दर्द' ही अच्छे संगीत का स्रोत हैं।)

यशोधरा अपने हृदय की अवस्था बताती हुई कहती है कि गाते समय जो ये मीड़ें मूर्च्छाएँ (स्वरों के आरोह-अवरोह स्वरों का उतार-चढ़ाव) प्रकट हो रही है, उसमें मेरी 'कसक' ही प्रकट हो रही है। या यों कहें कि मेरी वेदना ही स्वरों के आरोह-अवरोह का रूप धारण करती है। इसी प्रकार संगीत में ताल व लय भी मेरी हूक अर्थात् हार्दिक शोक प्रकट करते हैं।

कवि कहता है कि चातक की हूक (पुकार) जो इतनी मधुर होती है, वह

उसके—प्रेमाग्नि में आहुति, (हुत) हुए हृदय के कारण उत्पन्न होती है। कोयल की काकली के माधुर्य का भी यही कारण है। अतः मुझसे जो संगीत प्रकट हो रहा है, उसे मौन वेदना की अवस्था में निकली हुई आर्त पुकार समझना चाहिए। रोता हुआ जब किसी को पुकारता है, तभी संगीत का जन्म होता है।

मैं एक लता के समान हूँ, अपने प्रिय से (वृक्षरूपी प्रियतम से) बिछुड़ चुकी हूँ। मेरे हृदय से दुःख के वाण हैं, वे धूल से ढके हैं, समय रूपी धूलि के आवरण में छिपे दुःख के व्रणों को स्पर्श मत करो, मेरी वेदना को उत्तेजित मत करो, लता में जो पुष्प उत्पन्न होते हैं, वे भी उसके आन्तरिक दुःख के कारण ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार प्रिय के वियोग में मुझसे संगीत हो रहा है, इन पुष्पों को भगवान पर अर्पित कर दो, उसी प्रकार जिस प्रकार मेरे प्रभु को—अर्पित हो रहा है। जिस प्रकार फूलों का प्राण सुगन्धित है और पुष्प प्रभु पर अर्पित होकर अपना जीवन दे देते हैं, वैसे ही मैं अपने जीवन-संगीत का अर्पण कर रही हूँ।

यशोधरा फिर इसी भाव को प्रकट करने के लिए दूसरा उदाहरण देती है। आकाश में बदली (कादम्बिनी) आती है। उसे जब पुत्र उत्पन्न होते समय (प्रसवावस्था) की पीड़ा का अनुभव होता है और उस दुःख में जब वह मुस्करा उठती है, तभी बिजली का जन्म होता है। अतः जिसे बिजली कहते हैं वह वस्तुतः प्रसव-पीड़ा से धुली मेघ माला की मुस्कराहट मात्र है और चूँकि यह मुस्कराहट हृदय के दाह से उत्पन्न हुई (जलती) है अतः उसमें प्रकाश होता है, अतः सर्वत्र जो मधुर है, प्रकाशमय है, वह सब पीड़ा के कारण ही उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार पर्वत (आद्रि) के भीतर जो आन्तरिक दाह (जलन) भरा हुआ है और जब उसी अवस्था में पर्वत के मन में उमंग उत्पन्न होती है तभी स्वच्छ पानी के सोते कल-कल शब्द करते हुए फूट निकलते हैं और तभी उस जल में सबको स्नान आदि का सुअवसर मिलता है।

इस विवेचन से यशोधरा यह तात्पर्य निकालती है कि जहाँ-कहीं दुःख है वेदना है, वहीं-कहीं लोक-कल्याण की वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। लता वृक्ष से विरह के दुःख में जब मुस्कराती है तभी पुष्प उत्पन्न होते हैं, जिनमें लोक का और प्रभु का शृंगार होता है। मेघमाला प्रसव की यातना सहते हैं और उस अवस्था में उसकी हँसी बिजली बन जाती है, जो अन्धेरी रात में प्रकाश देती है। पर्वत के हृदय की वेदना स्रोत के रूप में फूट निकलती है, जिससे विश्व को स्वच्छ जल मिलता है, इस प्रकार पीड़ा से प्रकृति की सभी वस्तुओं को लोक-कल्याण का अवसर मिलता है। यशोधरा कहती है कि इस नियम के अनुसार मेरी वेदना से नेत्रों से अमृत के बिन्दु झरने चाहिए थे, परन्तु मेरा भाग्य रूपी चन्द्र मेरे विपरीत हो गया। अतः चन्द्र से अमृत झरने की जगह मेरे नेत्रों में खारे आँसू निकल रहे हैं। कितने दुःख और पश्चाताप का विषय है कि अपरिमित पीड़ा सहकर भी लोकहित-कारक कोई वस्तु

न दे सकी, मुझसे तो विश्व को ये खारे आँसू मिले अब इन्हें कौन स्वीकार करेगा ? मेरा प्रिय तो इनकी उपेक्षा करके वन को चला गया और संसार के लिए अमृत की आवश्यकता है, खारे पानी की नहीं । मुझे दुख भी सहना पड़ा और लोक का कल्याण भी न कर सकी ।

विशेष—यह गीत यशोधरा का सर्वश्रेष्ठ गीत माना जा सकता है । भाव, अर्थ और अभिव्यक्ति तीनों दृष्टियों से वह गीत अनूठा है । छायावादी पद्धति के प्रयोगों से इसमें एक अद्भुत चमत्कार उत्पन्न हो गया है । विरोधाभास जगह-जगह पर है । "रुदन का हँसना" "गा-गा कर रोना" "राग मूर्च्छित आह्वान है" "उजलती है जलती मुस्कान" आदि में विरोधाभास है और लक्षण-शक्ति का चमत्कार है । लक्षण-शक्ति में शब्द का प्रथम अर्थ ग्रहण करते समय बाधा पड़ती है, तब मुख्य अर्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ लिया जाता है यथा 'रुदन का हँसरा' इस प्रयोग में प्रथम अर्थ यह है कि रोदन हँसता है, परन्तु रोदन का हँसना असम्भव है, अतः दूसरा अर्थ यह होगा कि मन रो रहा हो, मन में कोई पीड़ा हो और उस समय यदि उमंग उत्पन्न हो जाय, आवेग उत्पन्न हो जायेगा । अतः यह कहने में विरोध नहीं है "रुदन का हँसना ही तो गान ।" इसी प्रकार "गा-गाकर रोना" में दूसरा अर्थ ही गृहणीय है । लक्षणा-शक्ति का ऐसा प्रयोग छायावादियों की विशेषता है । प्रथम अर्थ ही गृहणीय न होने से गीत कठिन हो जाते हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान सहसा दूसरे अर्थ की ओर नहीं जाता । इस गीत का आकर्षण भी यही है । इसमें अर्थ-गाम्भीर्य भी है । कवि ने प्रकृति के अनेक उपकरणों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है ।

अलंकार—१. "रुदन का···गान" विरोधाभास । २. 'हृतन्त्री' में रूपक । ३. 'मीड़ मसक···आह्वान' में सांगरूपक । ४. मानवीकरण । ५. यत्र-तत्र अनुप्रास ।

चित्रकूट में सीता॥५॥

निज··············भाया ।

सन्दर्भ—सीताजी अपने वनवासी जीवन की राजसी-जीवन से तुलना करती हुई कहती हैं :

व्याख्या—अपने निजी महल में मेरे पिता विदेहराज जनक ने पर्णकुटी बना ली थी (उस कुटी में वे तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे) और मैंने वन में अपनी कुटिया में राजभवन बना दिया है । अर्थात् मैं वन में रहकर भी महलों के समान सुखी और सम्पन्न हूँ ।

सम्राट··············भाया ।

व्याख्या—मेरी इस कुटिया में राजमहल के सम्राट मेरे स्वामी श्री राम हैं । मन्त्री देवर लक्ष्मणजी हैं । राजमहलों में जिस प्रकार अनेक ऋषि-मुनियों से मिलता रहता है । यहाँ भी ऋषि-मुनि पधारते रहते हैं और आशीर्वाद देते रहते हैं । यहाँ

धन आदि से युक्त असंख्य खानें हैं, किन्तु धन का कोई महत्व ही नहीं है। धन का कोई मूल्य नहीं है। जहाँ तक अनुशासन आदि की बात है, उस सम्बन्ध में इतना है कि सिंह और मृग एक घाट पानी पीते हैं। उनका स्वाभाविक वैमनस्य भी मिट गया है। इस राजमहल की रानी सीताजी स्वयं हैं, जिन्हें यहाँ लाभ ही लाभ हैं। वे कहती हैं कि मेरी कुटिया में तो राजमहल ही बना हुआ है और मेरे मन को बहुत अच्छा लगता है।

अलंकार रूपक।

देवर के शर..............मन भाया।

सन्दर्भ—श्री राम द्वारा इन वचनों को सुनकर श्री सीता पुनः उसी लय में गाकर हृदय के भावों को अभिव्यक्त करती हुई कहती हैं :

व्याख्या—मैंने अपने देवर के वाण की नोंक की टाँकी बना कर अपनी अनुजा (छोटी बहिन) उर्मिला की एक मूर्ति निर्मित की है। उस मूर्ति में दिखलाया गया है कि उसके नयनों में (विरह) के आँसू भरे हुए हैं, किन्तु कर्त्तव्य मार्ग पर चलने की प्रसन्नता से मुख पर हँसी झलक रही है। वह काँटों को एकत्रित कर रही है एवं फूलों को हटा देती है, अर्थात् वह दुःख को स्वागत करके सुख को छोड़ रही है। उनने भी अपना मन्दिर इसी कुटीर को मान लिया है।

विशेष—इन पंक्तियों से सीता की शिल्पकला-विज्ञता का पता चलता है।

गीत

वेदने तू भी भली बनी ॥६॥

सन्दर्भ—उर्मिला वेदना को अपने लिए हितकारक कहकर उसे सम्बोधन करती हुई कहती है :

व्याख्या—हे मेरी वेदने ! तू मेरे लिए बड़ी भली बन गई है। आज तेरे में ही मुझे अपनी घनी अभिलाषा मिली है। मेरे लिए हीरे की कणी बनकर तू ने आशा और प्रकाश की नई किरण छोड़ी है। तू वाण की नोक बनकर मेरे हृदय में सालती रह, जिससे मैं जीवन में सदैव सजग बना रहूँ। तू मेरे लिए वह तपन मणी है, जो आँसुओं से भीगी मेरी देह को ठण्डी नहीं होने देगी। तू उसे निरन्तर गर्म बनाये रखेगी।

अलंकार—अन्तिम पंक्ति में रूपक।

दोनों ओर प्रेम पलता है (७)

दोनों.............. जलता है।

व्याख्या—प्रेम के प्रतीक के रूप में पतंग को लेकर दीपक के ऊपर इसके उत्सर्ग की कहानी कही गई है। इन प्रतीकों के माध्यम से उर्मिला अपना विरह निवेदन करती है और स्पष्ट करना चाहती है कि पतंगे की तरह मैं भी अपने प्रिय वियोग में जली जा रही हूँ।

"हे सखी ! प्रेम उभयपक्षीय होता है । जहाँ दीपक पर पतंगा अपने प्राण न्यौछावर करता है, दीपक की लौ में गिर पड़ता है, वहाँ दीपक भी उसे जलाकर शान्त थोड़े ही रहता है । दीपक स्वयं भी जलता है और पतंगे को जलाकर स्वयं भी नष्ट हो जाता है ।"

दीपक के ऊपर गिरते हुए पतंगे से दीपक कहता है :

"हे भाई पतंगे ! तुम क्यों व्यर्थ ही जल रहे हो ?"

पतंगा उसकी यह बात नहीं सुनता, उस पर कोई ध्यान नहीं देता और दीपक के ऊपर अपने को उत्सर्ग कर देता है ।

शीश डुलाकर..............पलता है ।

व्याख्या—हे सखी ? जरा देखो तो सही कि पतंगे के मन में अपने प्रिय के लिए कितनी बेचैनी और त्यागमय प्रेम की तन्मयता है, यह तो देखो । दीपक और पतंगे का प्रेम दोनों ओर समान रूप से बढ़ता है । यह प्रेम एक पक्ष का नहीं है ।

विशेष—(१) इसमें रीतिकालीन एकांगी प्रेम को हेय और वर्तमान कालीन उभयपक्षीय प्रेम की मान्यता की ही महिमा गाई है । यह वह प्रेम है, जिसमें आग दोनों ओर बराबर लगी रहती है । 'दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई.......'

(२) 'शीश हिलाकर दीपक कहता.....'इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है । कल्पित हेतु का वर्णन है । दीपक की लौ हिलती है और उसको दीपक का मना करना कहा है ।

(३) शमा और परवाने की अनेक कहानियाँ फारसी काव्य में कही गई हैं ।

(४) प्रतीकात्मक शैली है । (५) छायावादी प्रगीतात्मक शैली का स्पष्ट प्रभाव है । (६) प्रेम-भावना फारसी न होकर शुद्ध भारतीय और उभयपक्षीय समानता को लेकर चलती है ।

बचकर.................पलता है ।

व्याख्या—विरोधाभास अलंकार के द्वारा बहुत ही सुन्दर भाव-व्यंजना यहाँ की गई है :

"पतंग यदि अपने को बचा ले और दीपक लौ पर अपने को न्यौछावर न करे तो क्या यह अपने को उसका बचा लेना मरण के समान कष्टकारक नहीं होगा ? यदि वह अपने प्रिय पर प्राण निछावर करके नहीं चलेगा तो जीवन भर उसे पश्चाताप बना रहेगा और पश्चाताप की आग में छटपटाता रहेगा । क्या इस प्रकार अपने प्राणों को न्योछावर करना असफलता मानी जायगी । नहीं—यह असफलता नहीं हो सकती—"यह तो उभयपक्षीय प्रेम का तकाजा है । इसे अनुचित नहीं माना जा सकता ।"

विशेष—(१) इस स्थल पर विरोधाभास अलंकार है । काकुवक्रोक्ति की

व्यंजना भी है। (२) डॉ० नगेन्द्र ने इन पंक्तियों को गम्भीर भावों से प्रेरित माना है और कहा है कि ऐसे स्थलों पर रस का परिपाक अच्छा हुआ है। (३) प्रेम की कसौटी त्याग और उत्सर्ग मानी जाती है। यहाँ भी इन्हीं भावों की व्यंजना है :

कहता है…………पलता है।

व्याख्या—दीपक और पतंगे की कहानी आगे चलती है :

पतंगा मन मारकर कहता है :

"हे प्यारे दीपक ! आप महान हैं और आपकी तुलना में हम बहुत ही सामान्य और तुच्छ हैं, किन्तु इसका यह तात्पर्य थोड़ ही है कि मरना भी हाथ में न हो। कम से कम मर तो हम अपनी इच्छा से सकते ही हैं।" क्या मृत्यु की शरण भी किसी को धोखा दे सकती है ? अर्थात मृत्यु की शरण पाने पर फिर जगत के प्रपंच और छलना से मुक्ति हो जाती है और आदमी को पूर्ण यश मिलता है। ऐसा उभयपक्षी प्रेम जो त्यागमय हो—"अपने तक को दूसरे पर न्यौछावर करने के लिए आगा-पीछा न सोचने दे—कितना अच्छा, स्पृहणी और मनोरम है।"

विशेष—(१) यहाँ दीपक पक्ष (इष्ट पक्ष या प्रियपक्ष) को महान और पतंग पक्ष (भक्त पक्ष, प्रेम पक्ष) को हीन बताया गया है। दूसरे को महत्व देकर अपने को तुच्छ मानना प्राचीन भारतीय भक्ति-पद्धति का एक बहुत मान्य सिद्धान्त है।

(२) 'शरण किसे छलता है'—इसमें यह अर्थ भी निहित है कि शरणागत पर कोई भी अपना अविश्वास प्रकट नहीं करता और न उसके साथ धोखा किया जाता है। भारतीय आदर्श सदैव शरणागत की रक्षा करने का रहा है—उसका विश्वास करने का रहा है। यहाँ दीपक की शरण में जाने वाला पतंगा क्या छला जायगा ? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसी विश्वास को अपने मन में पालकर पतंगा दीपक पर न्यौछावर हो जाता है। यह शब्द स्त्रीलिंग है, किन्तु इसका प्रयोग पुल्लिंग की तरह किया गया है। यह उचित नहीं है।

(३) मन मारना, हाथ धोना आदि मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है।

बरसो परसो घन बरसो ॥८॥

बरसो…………बरसो

व्याख्या—बादलों को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है :

हे बादलो ! तुम दर्शन, दो, फिर मेरे शरीर से अपना स्पर्श कराओ और सारे जगत के कल्याण के लिए बरस पड़ो। (बादलों का उपयोग उर्मिला केवल अपने लिए ही नहीं करती वरन् चाहती है कि इनसे सारे जगत का भी कल्याण हो।) जो पृथ्वी अब तक ग्रीष्म ऋतु की गर्मी के कारण जल-भुन गई है—परम दुखी और उत्तप्त है उसके नवीन यौवन को दिखाने के लिए पहले उसे सरसाओं और जगत में सबका कल्याण करने के लिए बरसो।

वहाँ उर्मिला भी वियोग के दुःख से जल रही है। वह भी पृथ्वी के समान

शीर्ण और उत्तप्त है। उसका भी यौवन सूख-सा रहा है। बादलों की ओर देखकर वह भी चाहती है कि वे उसका मन थोड़ी देर के लिए इस वियोग से दूर करदें—रस में उन्मत्त बना देने वाले भाव उत्पन्न हो जाय और अपना ही नहीं जगत का कल्याण भी हो, यह भाव भी उसके मन में है।

विशेष—(१) उर्मिला विरह से दुखी अवश्य है, किन्तु रीतिकाल-विरहिणी के समान उसका ध्यान केवल प्रियतम पर ही केन्द्रित नहीं और न केवल अपना आनन्द ही सर्वोत्कृष्ट मानती है। रीतिकाल की कविता को सन्दर्भ में रखकर ही उस वियोग-वर्णम की नवीन परम्परा का सम्यक् ज्ञान हो सकता है। रीतिकाल की विरहणी जिन प्रकृति के उपकरणों से बचना चाहती है, उर्मिला उनकी ओर आकर्षित होती है।

(२) बादलों का यहाँ मानवीकरण किया गया है। उन्हें नायक रूप में देखा गया है। बादलों के लोक-मंगलकारी रूप का वर्णन है।

(३) इन पंक्तियों की संगीतात्मकता कविता की शक्ति का स्रोत बन गई है।

घुमड़…………बरसो।

व्याख्या—इन पंक्तियों में आषाढ़, सावन, भादों और क्वार के महीनों की वर्षा का वर्णन है। वर्षा के यही चार महीने माने गये हैं और किसानों की खेती की रीढ़ यदि उन्हें कहा गया है तो दूसरी ओर सारी सृष्टि का वैभव भी यही है। सारी वनस्पति जो ग्रीष्म में सूख जाती है—पेड़ जो गर्मी से व्याकुल और दुःखी हो जाते हैं, वर्षा पाकर उनमें जीवन संचरित हो उठता है। वर्षा के महीनों में बादलों से बरसने वाला जल किस प्रकार कल्याणकारी और जगत को विकसित करने वाला होता है, इसका वर्णन करते हुए कहा गया है :

हे आषाढ़ के महीने, तुम चारों ओर से उठने वाले बादलों से घुमड़ कर घर जाओ। इस काल में सारा आकाश बादलों से भर जाय। गरजन के साथ पहली वर्षा हो।

हे पवित्र श्रावण के महीने! तुम भी अपनी शक्ति से खूब बरसो! हे भादों के महीने तुम खूब गरज के साथ संसार को जल से भर दो। हे क्वार के चित्रित हस्त और स्वाति के घन तुम खूब बरसो।

तुम सृष्टि की दृष्टि में मन रंजन अंजन लगाने वाले हो और ताप को दूर करने वाले हो। तू पय पिलाने को व्याकुल जगत्जननी के स्तन हो। तुम बरसो! तुम सुकाल को पुनः लौटाकर लाने वाले हो। मोरों के नृत्य करने का कारण हो। तुम जड़-चेतन में विद्युत प्रभा भरकर उद्बोधन करते हुए बरसो।

विशेष—(१) इसमें जिन नदियों का वर्णन है, उनमें जो जल बरसता वह पवित्र और खेतों के लिए अत्यन्त लाभकारी माना गया है।

(२) आषाढ़ के महीने के बादल का विशेष महत्व माना गया है और सभी

कवियों ने किसी न किसी रूप में इसका वर्णन किया है। कालिदास का मेघदूत इसी से प्रारम्भ होता है।

(३) महाकवि रवीन्द्र ने आषाढ़ के बरसते हुए बादलों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन 'भर्त्सना' में किया है :

"आषाढ़ के मेघ धारा-प्रवाह बरसने लगे थे, पवन के झोंके में झूमते हुए वेसुओं का नृत्य हो रहा था। आकाश में घन घटा ऐसी भाग रही थी जैसे पराजित सैन्यदल शिविर की ओर भागता है............ (मालाकार से)

चिन्मय.............. बरसो।

व्याख्या—बादल की सर्वजनप्रियता की बात कहती हुई उर्मिला बताती है कि तुम पुलक के अंकुर बनकर बरसो जिससे हमारे मृण्मय चिन्मय बन जायें। तुम्हारे मन्त्रों और बरसने के छीटों से सोया हुआ जीवन जग जाये।

हे बादल! तुम त्रैलोक्य-मानस रूपी घट को आनन्द के रस से भर दो। हे घन! तुम एक-एक कण छन-छन कर वरसो—[कण-कण छन-छन बरसो।] आज तुम इतने बरसो कि जन-जन के भी गाते हुए घर आ पहुँचे। (हे बादल! तुम सारे संसार के मनुष्यों के हृदय को आनन्द से भर दो। तुम्हारी कर्ण-मधुर वर्षा की ध्वनि से सबका मन प्रसन्न हो जाय। तुम्हारी वर्षा से आप्लावित होकर सबका मन सरस हो जाय और सभी प्रसन्न होकर अपने-अपने घर पहुँचे और घर वालों के साथ मिलकर आनन्द मनाएँ)

विशेष—(१) इसमें श्लेष, रूपक, पुनरुक्ति आदि अलंकार है।

(२) बादल के बरसने पर सारे तालाब और घड़े आदि बर्तन भर जाते हैं। यहाँ भी इसकी ओर संकेत है और उससे मनुष्य के हृदय भी खिल उठते हैं।

(३) बादल बरस कर तालाबों आदि को भर देते हैं। इसका वर्णन गोस्वामी जी ने किया है :

सिमिट-सिमिट जल भरहिं तलाब।

(रामचरितमानस)

मेरे चपल यौवन बाल ॥६॥

मेरे चपल यौवन बाल............एक तू ही लाल।

सन्दर्भ—वियोगिनी उर्मिला अपने यौवन को सम्बोधित करती हुई कहती है :

व्याख्या—अरे मेरे चपल यौवन रूपी बाल! तू मेरे अंचल में ही अचल होकर पड़ा रह। तू बच्चों की तरह मचलकर मुझे कष्ट प्रदान मत कर। यह रात्रि है और विरह का समय है। इसमें तेरा सोना ही उचित है। पति के आगमन पर सुप्रभात होगा, तू उस समय मणिमाला पहन कर मन के अनुसार खेलते

रहना। आपके मधुर एवं सरस मेरे भाग्यफल पक रहे हैं, जो कभी तो पूर्ण फल प्रदान करेंगे। अब दुःख का समय व्यतीत हो रहा है एवं सुख का समय आ रहा है। मेरा आराध्य देव मेरा प्रियतम है, उसकी आराधना करने के हेतु मेरा मन पुजारी है एवं दुःखिनी का तन थाल के सदृश है, किन्तु हे, यौवन ! उस प्रिय स्वामी को उपहार के रूप में अर्पण करने हेतु तू ही एक रत्न है।

विशेष—यहाँ पर 'यौवन बाल' में रूपक अलंकार है, जिसकी सहायता से सम्पूर्ण हार्दिक भावना व्यक्त की गई है। लाल में श्लेष है।

निरख सखी ये खंजन आये ॥१०॥

निरख सखी..........छाये।

सन्दर्भ—उर्मिला का कथन सखी के प्रति है, उर्मिला अपने प्रियतम के शरीर की शोभा शरद्-ऋतु में देखती हुई कह रही है :

व्याख्या—हे सखी ! देखो शरद् ऋतु आ गई है। ये खंजन पक्षी आ गये हैं मुझे तो ऐसा लगता है कि मानो इन खंजन पक्षियों के आने के माध्यम से प्रियतम ने ही अपने नेत्र इस ओर भेजे हैं।

चारों ओर आनन्द देने वाली धूप फैल गई है। यह धूप ऐसी लगती है, मानो मेरे प्रियतम के शरीर का प्रकाश और सौन्दर्य हो। सरोवर में जो कमल खिल उठे हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो मेरे प्रियतम का सरल और स्निग्ध मन हो। उनके मन की स्निग्धता से ही सरोवर फूलों से भर उठते हैं।

हे सखी ! मेरे प्रियतम जहाँ हैं, वहाँ से इस ओर घूमें होंगे। उन्होंने मेरा स्मरण किया होगा। इसी कारण ये हंस उड़कर यहाँ आ गये हैं।

विशेष—(१) यहाँ प्रकृति के माध्यम से उर्मिला प्रियतम का स्मरण कर रही है।

उर्मिला की मनोदशा की तल्लीनता का सुन्दर चित्रण हुआ है।

अलंकार—अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, मन..... सरसाएँ में उपमा।

करके ध्यान..........भर लाये।

व्याख्या—हे सखी ! मेरे प्रियतम आज अवश्य मेरा ध्यान करके मुस्कराए होंगे। इसी से ये कमल उठे हैं। हँसते समय उनके जो लाल ओष्ठ प्रस्फुटित हुए हैं, वही मानो दोपहरिया के पुष्प खिल उठे हैं। हे शरद् ऋतु ! मैं तुम्हारा स्वागत कर रही हूँ मेरा परम सौभाग्य है कि तुम्हारे माध्यम से मुझे प्रियतम के भी दर्शन मिल गये हैं। तुम्हारे आगमन से मेरे साथ आकाश भी प्रसन्न हो रहा है और प्रसन्नता में वह ओस की बूँदों रूपी मोतियों की न्योछावर कर रहा है। इधर मेरे नेत्रों में आंसू आ गये हैं। हे प्रियतम ! तुम्हारे शुभागमन के अवसर पर मैं अर्घ्य अर्पित कर रही हूँ। तुम इनको स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करो।

विशेष—(१) पद-मैत्री और संगीतात्मकता।

खंजन—रंजन, सर—सरसाए, अश्रु—अर्घ्य।

(२) शरद का मानवीकरण है। उसे नायक के रूप में दिखलाया गया है।

(३) शरद ऋतु की प्रकृति का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत हो गया है।

(४) शरदी प्रकृति सहानुभूति के रूप में उपस्थित की गई है।

अलंकार—'अधर' से उपमा, 'स्वागत'……में अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश अश्रु-अर्घ्य में रूपक, पूरी अन्तिम पंक्ति में रूपक है।

सखि निरख नदी की धारा ॥११॥

सखि निरखि……धारा।

शब्दार्थ—ढलमल-ढलमल=नदी की धारा से उत्पन्न होने वाला शब्द। झलमल-झलमल=झलमल चम-चम करता हुआ। छल-छल करके=छलक कर।

व्याख्या—नदी की धारा को देखकर उर्मिला कहती है हे सखी! नदी की धारा को देखो! ढलमल-ढलमल करती हुई उसकी जलधारा ही इस नदी रूपी नायिका का चंचल अंचल है। जो स्थिर नहीं रहता है वरन् प्रत्येक क्षण उसके वक्षस्थल से सरक जाता है। नदी की धारा में चाँद-तारों से युक्त प्रतिबिम्बित होने वाला नीले रंग का आसमान ही उसकी तारों वाली ओढ़नी है, जिसमें शोभा अधिक हो गई है। नदी के निर्मल जल अपने वक्षस्थल पर धारण कर रखा है, जैसे किसी सुयोग्य रमणी ने सुन्दर-सुन्दर भावों को अपने हृदय में स्थान दिया हो। नदी की धारा का जल बार-बार उछलता है और छल-छल ध्वनि करके आगे बढ़ता चला जाता है। यह ऐसा प्रतीत होता है, जैसे नदी कोई नायिका हो, जो आनन्द के कारण उछलती-कूदती क्रीड़ाएं कर रही हो, उसके हृदय का आनन्द छलछला कर उमड़ पड़ रहा हो। नदी की धारा का जल प्रत्येक स्थान को प्राप्त करके कल-कल ध्वनि कर रहा है। अपनी निर्मल जल-धारा के कारण वह ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहा है, जैसे किसी ने पारा बिखरा दिया हो। प्रथम जैसे नायिका के वक्षस्थल का उभार उमड़ता चला आ रहा हो और प्रतीत हो रहा हो कि जैसे उसकी छाती तड़क गई हो और उसमें से स्तन निकल आए हों। इस पर भी वह प्रसन्न हो और कल-कल ध्वनि जैसा उसका हास्य हो। जिसे वह चारों ओर पारे के समान बिखराती चली आ रही हो।

अलंकार—मानवीकरण, रूपक आदि।

लोल लहरियां ……धारा।

व्याख्या—हे सखी! इस नदी की धारा में चचल लहरें उठ रही हैं, जिनको देखने से ऐसा आनन्द मिलता है जैसे किसी नायिका के भ्रू-विलास से मिलता है। इन्हें देखकर ऐसा लगता है जैसे वह अपने प्रियतम से इशारे में बातचीत कर रही हो। लहरें जो किनारे तक आती हैं और किनारे पर आकर टकरा जाती हैं, उनसे जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे सुनकर ऐसा लगता है मानो वे बातचीत कर रही हों। इन लहरों की ध्वनि से नदी का किनारा ध्वनिपूर्ण बना रहता है। हे सखी, ऐसी नदी की धारा क्या ही आनन्द देती है।

अलंकार—मानवीकरण, रूपक, उत्प्रेक्षा ।

शिशिर, न फिर गिरिवन में········भाव भुवन में ।।१२।।

शब्दार्थ—शिशिर=सर्दी के दो महीने । नन्दन=स्वर्ग लोक का उद्यान । कंपन=कंपटपी । पांडुरता=पीलापन । अभाव=कमी । आनन=सुख । मानस=मन । भाजन=बर्तन । अकिंचता=निधना । उत्कण्ठा=इच्छा ।

सन्दर्भ—शिशिर ऋतु के आगमन पर उर्मिला को उसमें अपनी शारीरिक समानता का आभास मिलने के कारण अपनत्व की अनभूति तो होती ही है, साथ ही यह चिन्ता भी होती है कि पर्वतों और वनों में शिशिर की विशेषताओं के व्याप्त हो जाने से कहीं उसके प्रियपम की साधना में बाधा न पड़े । अतः वह शिशिर को सम्बोधित करते कह रही है :

व्याख्या—हे शिशिर ! तू पहाड़ों और वनों में क्यों फिरता है ? अपने शरीर रूपी उपवन में ही जो नन्दन वन के समान हरा भरा रहता था, मन चाहा पतझड़ तुम्हें दे दूँगी । (शिशिर ऋतु में पत्ते झड़ने लगते हैं' पत्ते ठण्डी हवा में कांप कर गिरने लगते हैं और पीले पड़ जाते हैं, अतः उर्मिला शिशिर से कहती है कि) प्रियतम के वियोग में अकेली होने के कारण मेरा शरीर भय से काँपता रहता है और उदासी से मेरा मुख पीला पड़ गया है, अतः मैं कम्पन और पीलापन तुझे मनमाना दे सकती हूँ शिशिर से पाला पड़ने लगता है । अतः उर्मिला शिशिर से कहती है तीर शिशिर तू मेरी आँखों के पानी के हृदय रूपी बर्तन में जमा दे तो मैं निर्धन के मोती की तरह उसे अपने मन में रखा मेरा हँसना समाप्त हो गया है । यदि तू मेरी आँखों के पानी को जमा दे तो मैं अपने जीवन में रो भी न सकूँगी । तब मेरी यह देखने की प्रवल इच्छा है कि मेरे भावों में क्या परिवर्तन होता है ।

अलंकार—(१) 'रस निज नन्दन' में रूपक ।

(२) 'मानस-भाजन' में श्लेष से पुष्ट रूपक ।

(३) 'मोती-सा' में उपमा ।

(४) अनुप्रास ।

मुझे फूल मत मारो ।।१३।।

मुझे फुल मत मारो··············धारो ।

सन्दर्भ—वियोगिनी उर्मिला कामदेव को सम्बोधन करती हुई कह रही है :

व्याख्या—हे कामदेव ! तुम मुझ जैसी वियोगिनी नारी को और अधिक कष्ट न दो । तुम मुझें अपने पुष्प वाणों से न वेधो । मैं तो एक अबला स्त्री हूँ और इसके साथ ही साथ मैं वियोगिनी भी हूँ । वियोगिनी होने के कारण मैं बहुत दु खी हूँ । मेरी इस करुण दशा पर तुम कुछ तो दया करो । हे कामदेव ! तुम बसन्त ऋतु के मित्र हो । कृपा करके अब तुम मुझे अधिक कष्ट न दो । अब तक ही मुझे बहुत कष्ट दे चुके हो । मैं वियोगिनी होने के कारण कामदेव को पीड़ा नहीं सहन कर

पाऊँगा मुझे यह काम पीड़ा ऐसी लगती है, मानो किसी ने कड़ुआ जहर घोल दिया हो। तुम जो मेरे ऊपर अपना प्रहार कर रहे हो, उससे मेरा मन क्षुब्ध हो उठा है। मेरे मन की शान्ति नष्ट हो गई है। इतनी विकलता को बढ़ाकर भी तुम मुझे निष्ठा से डिगा नहीं पाये हो। इसमें तुम्हें असफलता ही मिली है। इस सारे प्रयत्न में तुम्हें कष्ट हुआ है। तुम थोड़ी देर यहाँ रहकर विश्राम करलो और अपनी थकावट मिटा लो।

हे कामदेव ! मैं भोग करने वाली संयोगिनी नारी नहीं हूँ। तुम्हारा मुझे आकृष्ट करने एवं चंचल करने का प्रयास बिल्कुल व्यर्थ है, क्योंकि मैं संयोगिनी और भोगिनी नहीं हूँ। अतः मेरे ऊपर तुम्हारा जाल नहीं चल सकता है। यदि तुम अपने को शक्तिशाली समझते हो, तो मेरे इस सौभाग्य चिह्न सिन्दूर-बिन्दु की ओर जरा देखो। यह तुम्हारे लिए शिवजी के तीसरे नेत्र के समान है। यह तुम्हें भस्म करने में समर्थ है।

हे कामदेव ! यदि तुमको अपने रूप और सौन्दर्य का गर्व है तो इस गर्व के तुम पति के चरणों पर न्योछावर कर दो। (उर्मिला के लिए अपने पति के सौन्दर्य के सामने कामदेव का सौन्दर्य तुच्छ हैं।) तुम और तुम्हारी पत्नी रति सौन्दर्य में हम दोनों के चरण की धूल के समान भी नहीं है। तुम यदि मेरे पास आये हो. तो लो, यह मेरे पैरों की धूल ले जाओ और इसे रति के सिर ले जाकर रख दो, जिससे उसमें भी प्रेम-निष्ठा और पतिव्रत की भावना आ जाय।

विशेष (१) बसन्त में कम-उद्दीपन का सुन्दर निरूपण हुआ है।

(२) यहाँ उर्मिला की व्यथा साकार हो उठी है। उसकी व्यथा का मनोवैज्ञानिक निरूपण हुआ है।

(३) **अलंकार**--युक्ति द्वारा कथा का समर्थन होने से काव्यलिंग, यत्र-तत्र अनुप्रास, रूपक, प्रतीप।

सखे जाओ तुम……रोने में मोती ॥१४॥

सन्दर्भ—विरहिणी उर्मिला अपने रुदन को सुखद मानती हुई प्रियतम को सम्बोधित करती हुई कहती है :

व्याख्या—हे सखे ! चाहे तुम मुझे हँसकर भूल जाओ, किन्तु मैं तुम्हारा स्मरण करके रोती रहती हूँ। अरे तुम्हारे हँसने में पुष्प-वर्षा होती है तथा हमारे रोने में मोती की वृष्टि होती है। मैं यह मानती हूँ कि तुम मेरे साध्य हो, तुम्हीं रात-दिन रहने वाले मेरे आराध्य देव हो, किन्तु इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि मैं भी आपकी अवाध्य साधिका हूँ। मैं जागृत एवं सुषुप्त दोनों अवस्था में तुम्हारी आराधना करती हूँ। हे प्रियतम ! तुम्हारा सहज त्याग सफल हो जाय, किन्तु मेरा आपके प्रति प्रेम भी कम एवं निष्फल न हो। यदि व्यक्ति को भूख न हो, तो अमृत की भी आवश्यकतना नहीं होती है। सिद्धि स्वयं साधना का एक अंश होती है। चाहे काल का चक्र न रुके, किन्तु मिलन से बड़ा विरह का काल होता है। उससे व्यथित नारी मृत से भी अधिक दुःखी होती है। मिलन विरह में लय होती है, किन्तु यहाँ दीर्घकालीन लय होती है। इसीलिए तुम्हारे दर्शनों के लिए नाथ मैं अपनी दृष्टि धोकर उज्ज्वल कर रही हूँ। तुम्हारे हँसने में फूल झड़ते हैं और हमारे रोने में मोती हैं।

विशेष—प्रिय के प्रति उर्मिला के प्रेम और त्याग की भावना दृष्टव्य है।

राधा ॥१५॥

'द्वापर' की राधा अपने समस्त कर्म कृष्णार्पण कर चुकी है। वह अपने शरीर को वृन्दावन, बंशीवट, यमुना तट तथा कृष्ण के अंक में अपने को लीन करने के लिए उत्कंठित है। वह कृष्ण से इतना ही अनुरोध करती है कि वे क्रोध न कर बैठें। राधा चाहे उनका ध्यान भूल जाय, किन्तु वे उनकी शोध लेते रहें :

भूले तेरा ध्यान राधिका, तो लेना तू शोध हरे।

राधा का सहारा तो अब कृष्ण का उन्नत अंश ही है। कृष्ण के अथाह प्रेम सागर में उसका मानस-हंस निमग्न हो रहा है :

रहा सहारा इस अन्धी का, बस यह उन्नत अंश हरे।
मग्न अथाह प्रेम-सागर में, मेरा मानस हंस हरे।

शरण एक तेरे............सर्व कर्म हरे।

शब्दार्थ—धरे रहें=बने रहें, पड़े रहें। (धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव)। मर्म =कोमल स्थान। वर्म-कवच।

सन्दर्भ—राधा, कृष्ण की मुरली के उक्त स्वरों (सर्व धर्मों को त्याग कर, मेरी शरण में आओ···—·······) से आकर्षित होकर, उनकी शरण में जाती हुई कहती है :

व्याख्या—हे (मुरलीधर) हरि (कृष्ण)! मैं सब धर्मों को छोड़ कर आज तेरी शरण में आई हूँ, तेरे पास आई हूँ, आज तू अपनी मुरली को थोड़ा और बजा जिससे मेरा हृदय नृत्य करने लगे। इसके बदले में मैं तुम्हारे उन (शुष्क) वचन रूपी कवच नहीं चाहती। मैं तो तुम्हें, केवल तुम्हें ही, अपने सब कर्मों को समर्पित करती हूँ।

भावार्थ—मुरलीधर कृष्ण की सम्मोहन शक्ति-सम्पन्न मुरली की ध्वनि सुनकर राधा आत्मविभोर, प्रेम-विह्वल हो सम्पूर्ण धर्मों (लोक धर्मों, मर्यादाओं) को त्याग कर कृष्ण की शरण में जाती है और सभी कर्मों को उन्हें समर्पित कर देती है। उसका हृदय आनन्दमूल कृष्ण को पाकर नृत्य करने लगता है, अपने इस आनन्दपूर्ण नृत्य के बदले में वह कृष्ण से शुष्क उपदेश सुनना नहीं, चाहती है।

विशेष—पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुसार, राधा को पुष्टिपुष्ट जीव के रूप में उपस्थित किया गया है जो सम्पूर्ण लोक-मर्यादाओं का उल्लंघन कर, अपने इष्ट देव कृष्ण की शरण में जाता है, जिसका हृदय उसे पाकर, प्रेम-विह्वल होकर नृत्य करने लगता है और जो अपने जीवन के सभी कर्मों को अपने इष्ट को अर्पण कर देता है। मुक्ति का यही रहस्य बतलाया गया है।

यह वृन्दावन...........सुधि सुधा हरे।

शब्दार्थ—सित=श्वेत। त्रिविध समीर=तीन गुण से युक्त वायु, शीतल मन्द-सुगन्ध समीकरण। बुधा=विदुषी। मुधा=मुग्धा—अबोध बालिका, सरल स्वभाव वाली नायिका। सुधि=स्मृति, याद।

सन्दर्भ—जिस प्रकार जीव को अपनी छुद्रता और इष्ट की महत्ता का भास होता है, वैसे ही राधा को भी अपनी छुद्रता और कृष्ण की महत्ता का आभास होता

है। कवि ने अपनी प्रवृत्यानुकूल भारतीय आदर्श (पुरातनतावादी) नारी का यहाँ पर रूपांकन किया है। राधा उस स्थान पर पहुँचती है, जहाँ कृष्ण मुरली बजा रहे थे। उसस्थान से सम्बन्धि और अपने (इष्ट) कृष्ण से सम्बन्धित भावों को देखिये—राधा कहती है :

व्याख्या—यहाँ यह सौन्दर्यपूर्ण वृन्दावन, बंशीवट, यमुना-तट, यमुना के नीले-नीले नीर में प्रतिबिम्बित तारों से युक्त आकाश, शशि (चन्द्रिका) रंजित (युक्त) श्वेत घनों से परिचालित शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरण और तुम्हारी गोद और कहाँ मेरा क्षुद्र शरीर। मैं तुमको कैसे सन्तुष्ट कर सकती हूँ। मैं विदुषी नहीं हूँ, पर कुछ भी हो तेरी सरल हृदय और स्वभाव वाली (राधा) झूंठ नहीं बोलेगी। हो सकता है कि मेरे तृप्त प्रेम (उद्दामवासना रहित मुग्धा-प्रेम) से तुम्हारी वासना की भूख शान्त न हो सके, पर तुम अपने निश्चित पथ से विचलित मत होना, मुझे इसी से सन्तोष मिलेगा। मेरे लिए तुम्हारी स्मृति का अमृत पीना ही काफी होगा।

विशेष—(१) प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य की सीमा को देखकर राधा को अपनी छुद्रता का आभास होता है। सरला, अबोध बालिका, मुग्धा राधिका सोचती है कि वह किसी भी प्रकार से अपने इष्ट (प्रेमी) को सन्तुष्ट नहीं कर सकती, उसके कुछ काम नहीं आ सकती, अतः वह अपने इष्ट के मार्ग में बाधा भी नहीं बनना चाहती और स्वयं सुधि की सुधा पाकर अमर ही रहना चाहती है।

(२) यही जीव की दैन्य-दशा है, जिसका आभास होने पर वह अपने आराध्य की भक्ति की ओर अग्रसर होता हैं।

(३) नारी-चित्रण का पुरातनवादी दृष्टिकोण दर्शनीय है।

अलंकार—'नीला…………नीर' में 'न' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास, 'यह……………………हरे' में अनुप्रास, ध्वन्यात्मकता, सुध में सुधा आरोप होने से रूपक।

सब सह लूंगी ………मानव-हंस अरे।

शब्दार्थ—शोध=बादल, खोज। अवतंस=कान का एक आभूषण। लय=ध्वनि, मिलन, प्रलय। अंस=अंश, भाग, जीव। प्रेम-सागर=प्रेम का समुद्र (आनन्द-सागर कृष्ण)। मानस-हंस=मान सरोवर का हंस, हृदय।

संदर्भ—राधा आगे कहती है :

व्याख्या—मैं सब कुछ रो-रोकर सहन कर लूंगी पर तुम मुझे समझाना मत (उपदेश मत देना), यही तुमसे मैं प्रार्थना करती हूँ। मैं ज्ञान का अपमान नहीं करती, मुझ पर क्रोध न कर बैठना। मेरी इच्छा है कि मेरा दक्षिण कर्ण-भूषण तेरे बाम कपोल का स्पर्श करे—मैं तेरा आलिंगन करूं, मिलन-जन्य आनन्द मुझे प्राप्त हो। इसी प्रेम-मिलन में, मैं अपने संसार को लय कर देना चाहती हूँ—विलय कर देना चाहती हूं, जिससे उसका (अस्तित्व) नाश हो जाये। (मैं मैं न रहूँ तुम तुम न रहो) मुझ जैसी अन्धी का आश्रय तो तेरा स्कन्ध ही है। मेरे मानस का हंस (प्राण) आज प्रेम के सागर में विलीन होना चाहता है।

अलंकार—प्रेम में सागर, मानस में हंस का आरोप होने से रूपक।

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

[प्रवृत्ति परक]

प्रश्न १—हिन्दी के जन्म पर प्रकाश डालिए ?

उत्तर—हिन्दी-भाषा और उसका साहित्य भारतीय संस्कृति की आधार-शिला है। हिन्दी-साहित्य भारतीयों के युगों पुराने अनुभव और ज्ञान का संचित कोष है। इसमें भारत के उत्थान-पतन की कहानी है, इसमें उसकी गौरवपूर्ण उपलब्धियों का उल्लेख है, इसमें उसके सम्पूर्ण इतिहास की छाप है। प्रत्येक भाषा की यही कहानी है। उसमें बोलने वालों की सांस्कृतिक दशाओं उपलब्धियों आदि के साथ उसके इतिहास का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

हिन्दी-भाषा का वर्तमान रूप, उसकी वैज्ञानिकता, उसकी, सरलता, उसकी उदारता तथा उसके साहित्य का विशाल भण्डार, जिसमें राम हैं, कृष्ण हैं और महान् सन्देश व प्रेरणायें जो एक दिन जन-जीवन की धारा को मोड़ने में सफल हुई थी, जिसने इतिहास की धारा को मोड़ दिया था, जिनमें भक्ति-रस की पवित्र गंगा बह रही है, जिसके गीत-संगीत की स्वर लहरियों पर थिरकते हुए शृंगार की सृष्टि कर रहे हैं, उसमें उस महान् चेतना के दर्शन हैं, जिसने एक दिन करोड़ों भारतवासियों को स्वतन्त्रता-संग्राम के प्राणोत्सर्ग के लिए तैयार कर दिया था। उसमें तुलसी और सूर के सन्देश, गाँधी की वाणी, दयानन्द की सुदृढ़ता, रहीम के उपदेश, महादेवी के गीत, जयशंकर का प्रसाद और निराला की निराली छटा है। इसीलिए आज वह 'राष्ट्र-भाषा' के पवित्र सिंहासन पर सुदृढ़ता के साथ विराजमान है। उसका अपना गौरवशाली इतिहास है।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और उनकी इतिवृत्तात्मकता पर साहित्य मनीषियों ने बड़ा गहराई से चिन्तन. मनन एवं खोज की है और इतिहास के विशाल ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० गुलाबराय, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा आदि अनेक चिन्तकों ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है और खोजपूर्ण सामग्री एकत्रित की है।

हिन्दी का जन्म

विश्व का प्रत्येक स्वरूप और घटना किसी बीज का विकसित रूप है, जो किसी समय कारण रूप से विद्यमान था और अनुकूल जलवायु पाकर पल्लवित और पुष्पित होकर आज फल प्रदान करने लगा है।

राष्ट्र-भाषा, हिन्दी पवित्र भागीरथी गंगा की अजस्र प्रवाहिनी विशाल धारा के समान है, जिसका उद्‌गम स्थल, प्राचीनतम भाषा, जिसमें वेद लिखे गये, वैदिक भाषा है। वैदिक काल की अनेकों स्थापनाएँ आज भी किसी न किसी रूप में, भारतीय जन-जीवन में संस्कार रूप में विद्यमान हैं।

यह वैदिक भाषा जो जन साधारण की विचार-अभिव्यक्ति का साधन थी, आगे चलकर व्याकरण के जटिल नियमों में बाँध दी गई, जिसे संस्कृत के नाम से पुकारा गया। इस वर्ग के प्रमुख विद्वान थे महर्षि पाणिनि, जिन्होंने अष्टाध्यायो नामक प्रसिद्ध व्याकरण-शास्त्र की रचना की। इस प्रकार वैदिक भाषा जन-साधारण के लिए कठिन हो गई। भाषा का विकसित रूप विद्वानों की निधि बन गया। जन-समुदाय की भाषा स्वतन्त्र रूप से विकसित होती रही। जन-साधारण की विकसित होती हुई यह जन-भाषा पहले प्राकृत या पाला नाम से पुकारी जाने लगी। भाषा मनुष्यों के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। मनुष्य विचार अभिव्यक्ति के उस साधन (भाषा) को अपनाता है, जिसे वह सरलता से बोल सके और समझ सके। अतः प्राकृत लोक-प्रिय भाषा बन गई। महात्मा बुद्ध ने अपने विचारों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए प्राकृत को माध्यम रूप में अपनाया। फिर वही हुआ जो पहले हुआ था। प्राकृत ने भी साहित्यिक रूप धारण कर लिया। उसके लिए भी व्याकरण के नियमों की रचना हुई। जन-समुदाय अपना काम करता रहा। अगली विकसित भाषा अपभ्रंस के नाम से सामने आई। जैनियों ने इसे अपनाया। इसका भी वही हाल हुआ। जन-सामान्य अपना कार्य करता था। इसी जन-समुदाय की भाषा ने आगे चलकर धीरे-धीरे हिन्दी को जन्म दिया।

जन-भाषा के रूप में इसका जन्म हुआ और जन-जन ने इसे अपनाकर विकसित किया।

हिन्दी के पूर्व की भाषाओं का विकास क्रम

प्रश्न २—हिन्दी के पूर्व की भाषाओं का विकास बतलाइए।

उत्तर—

१. **प्रथम स्वरूप**—(१५०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक) प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा—इस काल में क्रमशः दो भाषाओं का स्वरूप उभरा, जो इस प्रकार है—

१—वैदिक भाषा, २—संस्कृत भाषा।

२. **दूसरा स्वरूप**—(५०० ई० पू० से १००० ई० तक) यह मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं के उत्पादन का काल माना जाता है। इसका विकास-क्रम इस प्रकार है—

(अ) **प्रथम चरण**—(५०० ई० पू० से १ ई० तक) इसमें पूर्वी, पश्चिमी तथा पश्मिोत्तर की भाषाएँ हैं। प्राकृत, पाली तथा अशोक की धर्म-लिपियाँ इसके अन्तर्गत मानी जाती हैं।

(ब) **द्वितीय चरण**—(१ ई० से ५०० ई० तक) इसके दो खण्ड हैं—
१—पूर्वी—मागधी, प्राकृत,
२—पश्चिमी—शौरसेनी प्राकृत ।

(स) **तृतीय चरण**—(५०० ई० से १००० ई० तक) यह अपभ्रंश भाषाओं का काल माना जाता है ।
इसमें निम्नानुसार भाषाओं के स्वरूप की रचना हुई—
१—मागधी अपभ्रंश ।
१—शौरसेनी अपभ्रंश ।

हिन्दी काव्य का प्रारम्भ

प्रश्न ३— हिन्दी-काव्य का प्रारम्भ समझाइए ।

उत्तर—हिन्दी का प्रारम्भ कब से हुआ, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । सामान्यतः सर्वमान्य सिद्धान्त के अनुसार हिन्दी का प्रारम्भ १००० ई० के लगभग माना है । कुछ अन्य खोजों के अनुसार हिन्दी का प्रथम कवि पुष्य माना जाता है । कहा जाता है कि वि० सं० ७७० के लगभग उसने संस्कृत के एक रीति-ग्रन्थ का अनुवाद दोहा-चौपाई में किया था, परन्तु इसकी कोई रचना वर्तमान में उपलब्ध नहीं है ।

प्राकृत के अन्तिम व्याकरणार्थ हेमचन्द्र, जिनका कार्यकाल १२वीं शताब्दी माना जाता है, ने व्याकरण की रचना की थी । इसमें नगर अपभ्रंश के उदाहरणों में हिन्दी-कविता का प्रारम्भ रूप देखने को मिलता है । विद्वानों का मत है कि इस रचना से लगभग २०० वर्षों पूर्व ही हिन्दी-कविता का उदय हो चुका था । तब से जनसाधारण की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में इसका विकास होता चला गया । यह क्रम सतत् प्रवाहित रहा । हिन्दी के विकास ने अपभ्रंश के विकास की गति को अवरुद्ध कर दिया । विचारकों ने अपने उपदेश इसी के माध्यम से जन-साधारण तक पहुँचाना प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार जन-जन की भाषा के रूप में हिन्दी प्राकृत को पीछे छोड़कर अनेक धाराओं में प्रवाहित होने लगी । अवधी, ब्रजभाषा, मैथिली, राजस्थानी एवं खड़ी बोली के माध्यम से हिन्दी अपना अलग रूप धारण करने लगी ।

हिन्दी-साहित्य का काल-विभाजन

प्रश्न ४—हिन्दी-साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन कीजिए ।

उत्तर—हिन्दी-साहित्य, अपने जन्मकाल (लगभग १०५० वि० सं०) से वर्तमान काल तक अनेक काल-चक्रों के टेढ़े-मेढ़े रास्तों से होता हुआ चला आ रहा है । इस मध्यान्तर में अनेकों प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं और सैकड़ों लेखक तथा कवियों ने विविध विषयों के हजारों ग्रन्थों की रचना करके हिन्दी-साहित्य के भण्डार

की श्रीवृद्धि की है। दीर्घकालीन संचित साहित्य-कोष में हमें मनुष्य की अनेकरूपी मनोवृत्तियों के दर्शन होते हैं। अलग-अलग समय से अलग-अलग प्रवृत्तियों की प्रधानता रही है। इन प्रमुख प्रवृत्तियों और जनता की मनोदशाओं के आधार पर हिन्दी-साहित्य के आलोचकों ने विषय विशेष की प्रधानता के आधार पर हिन्दी के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया है। जिस काल में जिस विषय की प्रधानता रही उस विषय के आधार पर उस काल का नाम रखा गया है। हिन्दी-काव्य-साहित्य के इतिहास का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है :

काल	समय
१. अपभ्रंश या सिद्धकाल	७वी शताब्दी से १०५० वि० सं० तक।
२. आदि काल (वीर गाथा या चारणकाल)	संवत् १०५० से १३७५ वि० सं० तक।
३. पूर्व मध्य काल— (भक्ति काल)	संवत् १३७५ से १७०० वि० सं० तक।
४. उत्तर मध्य काल— (रीति काल)	संवत् १७०० से १९०० वि० सं० तक।
५. आधुनिक काल— (स्वातन्त्र्य काल)	संवत् १९०० से अब तक।

प्रश्न ५—हिन्दी-भाषा के क्षेत्र और प्रमुख इतिहास लेखकों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—हिन्दी-भाषा का क्षेत्र—हिन्दी भाषा भारत के विशाल क्षेत्रों में बसने वाले करोड़ों नागरिकों की भाषा है। इस दृष्टि से इसे दो भागों में बाँटा गया है :

(१) **पश्चिमी हिन्दी**—उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की हिन्दी।

(२) **पूर्वी हिन्दी**—बघेली, बुन्देली तथा छत्तीसगढ़ी।

हिन्दी की उप-बोलियाँ—भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कई बोलियाँ बोली जाती हैं, जैसे—खड़ी बोली, माँगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मालवी आदि।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास लेखक

(१) फ्रान्सीसी विद्वान् गर्सेदता के द्वारा लिखित 'इत्सस्वत्वार दला लितेरात्यूर हिन्दुस्तानी' संवत् १८९९ में पहला भाग और संवत् १९०३ में दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। इसका हिन्दी अनुवाद भी हुआ है।

(२) शिवसिंह सरोज, रचना काल संवत् १९४० है।

(३) जार्ज ग्रियर्सन ने 'माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' संवत् १९४६ में छापा।

(४) मिश्रबन्धु विनोद—संवत् १९०० में तीन भागों में प्रकाशित हुआ।

(५) एडविन ग्रीव्ज—'ए स्केच ऑफ हिन्दी लिटरेचर' संवत् १९५५ में निकाला।

(६) एफ० सी० के का 'ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर' संवत् १९७७ में प्रकाशित हुआ।

(७) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सबसे महत्वपूर्ण प्रयास किया गया। 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' नाम से उनका इतिहास संवत् १९१६ में प्रकाशित हुआ।

(८) रायबहादुर श्यामसुन्दर दास द्वारा लिखित 'हिन्दी-भाषा और साहित्य' संवत् १९१७ में प्रकाशित हुआ। बाद की प्रमुख रचनाएं :

(९) सूर्यकान्त शास्त्री—'हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास'

(१०) रमाशंकर शुक्ल—'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'

(११) कृष्णशंकर शुक्ल—'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'

(१२) श्री वर्माजी का अभी तक पहला ही भाग प्रकाशित हुआ है

(१३) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी-साहित्य'

(१४) केन्द्रीय सरकार की सहायता से काशी नागरी प्रचारिणी सभा हिन्दी-साहित्य का एक 'वृहत इतिहास' प्रकाशित कर रही है। यह १६ भागों में होगा।

हिन्दी में शब्दों का आगमन—हिन्दी की वर्तमान-स्वरूप रचना में विदेशी भाषा, संस्कृत तथा अन्य बोलियों के शब्दों का योगदान रहा है। हिन्दी में निम्नलिखित विभाषाओं से सामान्य रूप में शब्दों का आगमन हुआ है :

(१) संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के शब्द।

(२) देशज शब्द।

(३) विदेशी भाषाओं के शब्द।

(४) अनार्य भाषाओं तथा अन्य भाषाओं के शब्द।

अपभ्रंश और सिद्ध काव्य

प्रश्न ६—अपभ्रंश और सिद्ध काव्य का उल्लेख कीजिये।

उत्तर—अपभ्रंश भाषाओं का काल ७वीं शताब्दी से माना जाता है। यहाँ इस काल के वर्णन का उद्देश्य यही है कि इस काल के नाथों और सिद्धों की रचनाओं में अपभ्रंश से भी पूर्व हिन्दी किस प्रकार बीज रूप से जन्म धारण कर रही थी। उदाहरणार्थ—सरहपा सिद्धाचार्य जिनका काल सं० ८०० वि० माना जाता है—उस काल में कुछ कविता लिखी, जिसमें कि हिन्दी की ध्वनि सुनाई देने लगी थी। जैसे :

जहि घट पवन न संचरइ,
रवि ससि नाहिं पवेश।
तहि घट चित विस्राम करु,
सरहे कहिअ उवेश॥

तात्पर्य यह है कि जहाँ मन और पवन संचार नहीं करता, जहाँ रवि-शशि का प्रवेश नहीं है, उसी घट में हे चित्त ! तू विश्राम कर। सरह ने यह उपदेश कहा।

दोहा, जिसे उस काल में दूहा कहा जाता था, हिन्दी का ही छन्द है। अपभ्रंश का एक उदाहरण जिसमें हिन्दी के दर्शन होते हैं, महापंडित ताडपाड (११ वीं शताब्दी) की एक रचना इस प्रकार है :

अपणों नाहिं सों कोहरि शंका।
ता महा मूँदेरी टूटी गेली कंखा॥

अर्थात् अपना मन जल नहीं रहा, तब शंका किस बात की। उस महामुद्रा की कांक्षी भी टूट गई।

आदिकाल (वीरगाथा काल)

(१०५० ई० से १३७५ ई०)

प्रश्न ७—वीरगाथा काल का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी विशेषताएँ बतलाइए।

उत्तर—वीरगाथा काल—हिन्दी-साहित्य का यह प्रारम्भिक काल जिसे वीरगाथा काल के नाम से पुकारा जाता है, सन् १०५० से १३७५ के बीच का समय माना गया है। इसके पूर्व समय को 'सन्धिकाल' कहा जाता है। सन् १०५० के लगभग देशी भाषाओं का स्वरूप सामने आने लगा। इस समय की रचनाओं में दो प्रकार मुख्य हैं :

(१) शृंगार एवं नीति विषयक रचनायें।
(२) वीर रस प्रधान रचनाएँ।

कुछ इतिहासकार इस काल को 'चारण काल' के नाम से भी पुकारते हैं। इसका कारण यह है कि इस युग के प्रमुख रचनाकार चारण अथवा भाट होते थे, जो राज दरबारों में रहकर अपने आश्रयदाताओं का यशोगान किया करते थे।

ऐतिहासिक परिस्थिति एवं प्रभाव

यह काल भारतीय इतिहास का संक्रमण काल कहा जाता है। सारा देश खण्ड-खण्ड होकर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था। सम्राट हर्ष के पश्चात् कोई शक्तिशाली योद्धा ऐसा नहीं हुआ, जो सारे देश को एकता के सूत्र में बाँधता। तोमर, चौहान, चालुक्य, राठौर, चँदेले, आदि राजपूत वंश पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष के कारण आपस में युद्ध किया करते थे। मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ

हो चुके थे। देश में अराजकता की स्थिति बन चुकी थी। इतना सब कुछ होने पर भी हिन्दू राजा विलास और युद्ध में मस्त थे। उनमें संगठन और एकता का अभाव था।

चारण कवि अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने तथा उनमें युद्धोन्माद जगाने के लिए रचनाएँ करने लगे। इस काल की रचनाओं में तत्कालीन समय की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। ये कविगण विजय के पश्चात् विजयोन्माद में विलास की कविताएँ लिखकर अपने आश्रयदाता का मनोरंजन करते और युद्ध के समय स्वयं साथ जाकर अपनी वीर रस प्रधान रचनाओं से योद्धाओं मे साहस का संचार करते थे।

ये युद्ध भी विशेषकर कोई राजकुमारी या सुन्दरी को लेकर हो जाया करते थे।

'जेहि की बिटिया सुन्दर देखी, तेहि पर धाइ धरे हथियार'

राजपूत समाज की यह प्रवृत्ति बन गई थी यही कारण है कि इस काल की रचनाओं में वीर-रस की प्रधानता है।

रासो—इस काल के वीर-गाथात्मक काव्य को 'रासो' नाम से कहा जाता है। वह शब्द 'रसायन' अथवा रसयुक्त शब्द से बना है। यह किसी रस विशेष का बोध कराता है। रासो ग्रन्थ उस काल के भाट कवियों की रचनाएँ हैं, जो उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में रचे हैं।

भाषा-परिचय—इस काल की ऐतिहासिक परिस्थिति पर मुसलमानों के आक्रमण का भारी प्रभाव हुआ। इन आक्रमणों के कारण देश की संस्कृति पर भारी आघात हुआ। जिन राज्यों पर यवनों के आक्रमण हुए थे, उन राज्यों के दरबारों में चारणों की संख्या अत्यधिक हो गई थी। जन-वाणी और जन-काव्य का देश में आदर होने जगा था। हिन्दी का विकास इस काल में हुआ। यह प्रारम्भिक जन-भाषा डिंगल भाषा कहलाई। एक अन्य भाषा पिंगल भी थी। डिंगल का प्रचार राजस्थान में था, जो कि नागर अपभ्रंश का ही एक रूप थी। पिंगल भाषा मध्य प्रदेश की भाषा थी। ब्रज में भी इसका प्रयोग होता था।

रचनाएँ—वीर गाथा काल के सम्पूर्ण साहित्य को दो काव्य रूपों में विभक्त किया जा सकता है:

१. **प्रबन्ध-काव्य**—दलपति विजय का खुमान रासो (८७०-९०० वि०) वीर-काव्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त हम्मीर रासो, 'पृथ्वीराज रासो' प्रबन्धात्मक वीर काव्य के उदाहरण हैं।

२. **वीर गीत**—नरपति नाल्ह का बीसलदेव-रासो और जगनिक का 'आल्हा-खण्ड' गीत-काव्य का उदाहरण है। इस काल में जिन प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्यों की रचना की गई, उनमें कुछ इस प्रकार हैं:

खुमान रासो—यह ग्रन्थ वीर गाथा काल का प्रथम प्रबन्ध-काव्य माना जाता है। इसके रचनाकर हैं दलपति विजय। इस ग्रन्थ का रचनाकाल संवत् ८७० से ९०० के बीच माना जाता है। इसमें चित्तौड़ के द्वितीय खुम्माण की वीरता का वर्णन है। इसकी भाषा डिंगल है।

पृथ्वीराज रासो—इस काल का यह दूसरा प्रमुख ग्रन्थ है। इसकी भाषा भी डिंगल है। इसके रचियता का नाम चन्दबरदाई माना जाता है। यह काफी बड़ा ग्रन्थ है। इससे पृथ्वीराज चौहान का सम्पूर्ण जीवन बृतान्त लिया गया है। वीर रस की इस प्रधान रचना में भी बीच-बीच में श्रृङ्गार का पुट है। इस ग्रन्थ का रचना काल संवत् १२२५ माना जाता है। एक उदाहरण :

पूरब दिसि गढ़-गढ़नपति, समुद्र सिखर अति दुग्ग।
सहजु विजय सुरराजपति, जादो कुलह अभग्ग।।

हम्मीर रासो—यह भी इस काल की प्रसिद्ध रचना है। हम्मीर एक प्रसिद्ध राजपूत योद्धा थे। इस वीर की वीरता का वर्णन इस ग्रन्थ का प्रमुख वर्ण्य-विषय है।

अन्य----इस काल के कुछ अन्य प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य के रचयिता भी हैं। प्रमुख रूप से भट्ट केदार, मधुकर, शारंगधर तथा नल्हसिंह का नाम लिया जाता है। विद्वानों के मतानुसार शारंगधर ने 'हम्मीर काव्य' तथा नल्हसिंह ने 'विजयपाल रासो' की रचना की थी।

वीर गाथाकाल में वीर राजाओं की विशेषताओं को लेकर वीर-गीतों की रचना हुई। ये भी डिंगल भाषा में ही लिखे गये थे। प्रमुख वीर-गीत-काव्य इस प्रकार हैं :

बीसलदेव रासो—इस ग्रन्थ की 'वीरगाथा' काल का प्रथम गीत-ग्रन्थ माना जाता है। इसका रचना काल सं० १२१२ माना गया है और इनके रचियता नरपति नाल्ह माने जाते हैं। चूंकि यह कवि राजा बीसलदेव का समकालीन था, अतः उसने राजा बीसलदेव के ही जीवन को वीर गीतों में गाया है। यह ग्रन्थ कई खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड 'समय' के नाम में पुकारा गया है। ग्रन्थ की रचना राजस्थानी भाषा में हुई है। इस ग्रन्थ की ऐतिहासिकता में लोगों को अविश्वास है तथा इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध मानी जाती है।

आल्हा खण्ड—कवि जगनिक ने महोवा के दो वीर आल्हा और ऊदल के वीरतापूर्ण कार्यों के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ आज अपने रूप में प्राप्त नहीं है। आल्हा-खण्ड का उत्तर भारत में खूब प्रचार है। गाँव के लोग इस ग्रन्थ के गीतों को बड़े चाव से गाते हैं।

एक उदाहरण

गुस्सा हुइके पृथ्वीराज तब, तुरतै हुक्म दियौ करवाय।।
बत्ती दे देउ सब तोपन में, इन पाजिन को देउ उड़ाय।।

झुके खलासी तब तोपन पर, तरतै बत्ती दई लगाय ।।
दगी सलामी दोनों दल में, धुअना रह्यौ सरग मंडराय ।।

इस काल में प्रबन्ध काव्य की रचना के साथ फुटकर गीतों की भी बहुत बडी मात्रा में रचना हुई । दोहे, पहेलियाँ और मुकरियाँ भी बोलचाल की भाषा में लिखी गईं । इनका जन-भाषा में होने के कारण प्रचार भी खूब हुआ । इस प्रकार के साहित्य के प्रधान कवि अमीर खुसरों माने गये ।

अमीर खुसरों और उनकी रचनायें—दिल्ली निवासी अमीर खुसरों फारसी के विद्वान थे । इन्होने अपनी अधिकांश रचनाएँ जन-भाषा में कीं । जिनमें दोहे पहेलियाँ और मुकरियाँ मुख्य हैं । इनका प्रचार भी खूब हुआ । इनका काल संवत् १३४० के आस-पास माना जाता है ।

एक उदाहरण :

मुकरी— जब मेरे मन्दिर में आवे ।
सोते मुझको आन जगावे ।।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर ।
एक सखि साजन ! ना सखि मच्छर ।।

पहेली— एक थाल मोती से भरा,
सब के सिर पर औंधा धरा ।
चारों ओर वह थाली फिरे,
मोती उससे एक न गिरे ।।

उत्तर—**'आकाश'**

विद्यापति ठाकुर—इस काल के गीत-काव्य रचना करने वालों में विद्यापति ठाकुर का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है । जयदेव के गीत गोविन्द की परम्परा में विद्यापति ने राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर शृङ्गारिक काव्य-रचना जन भाषा मैथिली में की । इसके काव्य में अद्‌भुत, माधुर्य और काव्य-तत्वों की विद्यमानता है । इनकी प्रसिद्ध रचना 'पदावली' आज तक प्रसिद्ध है । विद्यापति 'मैथिली कोकिल' कहलाते हैं ।

उदाहरण :

तातल सैकत बारि बिन्दु सम,
सुत मित रमनि समाज ।
तोहे बिसार मन ताहे समरपितु,
अब मझुहब कोन काज ।।
माधव हम परिनाम निराशा,
दुहु जग तारिन दीन दयामय,
अतए तोहर विसवासा ।।

वीरगाथा काल के प्रमुख कवि एवं उनकी रचनायें :

कवि	रचनायें
दलपति विजय	खुमान रासो
चन्दबरदाई	पृथ्वीराज रासो
नरपति नाल्ह	बीसलदेव रासो
जगनिक	आल्हा-खण्ड
शारंगधर	हमीर-काव्य
नल्हसिंह	विजयपाल रासो
अमीर खुसरो	दोहे, पहेलियाँ, मुकरियाँ
विद्यापति ठाकुर	कीर्तिलता, कीर्तिपताका, पदावली
अन्य कवि —भट्ट, केदार, मधुकर आदि ।	फुटकर रचनाएँ

वीरगाथा काव्य की विशेषताएँ

(१) वीर काव्य में कवियों द्वारा अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की गई ।

(२) इस काव्य में वीर रस के साथ शृङ्गार रस का भी समावेश हुआ है ।

(३) युद्ध-दृश्यों का सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया गया है ।

(४) 'रासो' तथा 'वीर गीतों' की रचना हुई है ।

(५) इतिहास की अपेक्षा काव्य की मात्रा अधिक, कल्पना का प्राचुर्य ।

(६) नाथ-साहित्य सिद्ध-साहित्य और जैन-साहित्य का प्रभाव ।

(७) विषय के अनुकूल ओजमयी भाषा । अपभ्रंश मिश्रित डिंगल भाषा का प्रयोग ।

पूर्व मध्यकाल—(भक्तिकाल)

(सं १३७५ से १७००)

प्रश्न ८—भक्तिकाल का सामान्य परिचय दीजिए और उसकी विशेषताएँ बतलाते हुए सिद्ध कीजिए कि वह हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-काल है ।

उत्तर—मध्यकाल का पूर्ववर्ती समय भक्तिकाल के नाम से पुकारा जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल का संवत् १३७५ से १७०० तक माना है । इस काल में पराजित हिन्दू-जाति का ध्यान वीर भावना से ईश्वरोपासना की ओर लग गया था । आदिकाल के अन्तिम चरण में जब हिन्दू राजा लगभग पराजित हो गये तो युग की धारा भी बदलने लगी । कवियों ने ईश्वर के प्रभाव और गुरु-महिमा का गायन प्रारम्भ कर दिया । एक नई काव्यधारा, भक्ति धारा के रूप में प्रभावित होने लगी ।

ऐतिहासिक परिस्थिति एवं प्रभाव

आदिकाल की अशान्ति, लड़ाई-झगड़े और राजनीतिक आँधी धीरे-धीरे शान्त

हो गई। लोगों को दम लेने का अवकाश मिला। राजपूतों की शक्ति का लगभग ह्रास हो चुका था। मुसलमानों को जीत पर जीत ने उनमें निराशा का भाव पैदा कर दिया था। वे अब नवीन परिस्थिति में जीवित रहने और अपने स्वाभिमान की रक्षा के साथ परम्परा को बचाने के लिए चिन्तित थे। दूसरी ओर मुसलमान कठिन संघर्षों के बाद अपने पैर जमा चुके थे। अब वे भी विजित देश के लोगों से सम्पर्क चाहते थे और राज्य-संचालन के लिए स्थाई शक्ति चाहते थे। दोनों ओर शांति की लालसा थी। ऐसे समय में वीरगाथाओं का कोई महत्व नहीं होता। नई परिस्थितियों में हिन्दुओं की चिन्तन दिशा भी बदलने लगी। वह अब देश की सांस्कृतिक परम्परा की ओर विचार करने लगा। वे सोचने लगे कि उनका धर्म ऐसा स्वरूप धारण करे जिसका विधर्मी खंडन न कर सकें। दोनों ओर मिलन और नई चेतना के भाव विकसित हो रहे थे।

यहाँ यह समझा न जाय कि हिन्दी का भक्तिकाल मुसलमानों से प्रभावित था, हमारे कवियों के पास अपनी ही सामग्री पर्याप्त थी। वेदान्तों के गूढ़तम रहस्य एकेश्वरवाद की स्थापना में सक्षम थे। उन्हें दूसरों से कुछ लेना-देना नहीं था। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि मुसलमानों के आगमन ने हिन्दुओं को सोचने-समझने और नई दिशा लेने के लिये उत्तेजित किया।

ऐसी परिस्थिति में हिन्दू-जनता की भावना करुणामय भगवान की ओर झुकी। दक्षिण भारत से भक्ति की एक प्रबल धारा फूट पड़ी। इसके साथ ही इस काल के चिन्तकों में जो मूल विचारधाराएँ काम कर रहीं थीं, उनमें प्रमुख थीं—भारतीय संस्कृति की ज्ञान-धारा का पुर्नजागरण, एकेश्वरवाद की पुनः स्थापना और अन्यों के साथ समन्वय की आकांक्षा। इस प्रकार इन प्रवृत्तियों के अनुसार काव्यों में भी नवीन धाराएँ प्रवाहित होने लगीं।

हिन्दू-समाज की सामाजिक दशा भी ठीक नहीं थी। छूत-अछूत के भाव बहुत ज्यादा थे। धार्मिक दशा भी ठीक न थी। निम्न वर्ग पर सिद्धों व नाथों का प्रभाव बहुत ज्यादा था। द्वैत-अद्वैत-दर्शन के कारण जब शक्ति का जागरण हुआ तो अछूत जातियों में ही प्रारम्भ में भक्त कवि हुए। इन्हीं कवियों ने तत्कालीन समाज को भक्ति का सन्देश दिया। वज्रयानियों के कारण निर्गुण पंथ पहले से था ही। इस्लाम धर्म भी निर्गुणवादी ही था। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप निर्गुण पंथके जन्म और विकास में सफलता मिली। समाज की दशा का साहित्य पर अवश्यम्भावी प्रभाव हुआ। कवियों ने भी इन समस्त धारणाओं के अनुसार रचना प्रारम्भ कर दी। कवि भी ईश्वर आराधना में तल्लीन हो गया।

तत्कालीन समाज की इन प्रवृत्तियों के अनुसार काव्यों में भी अनेक धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। ये धारायें इस प्रकार हैं :

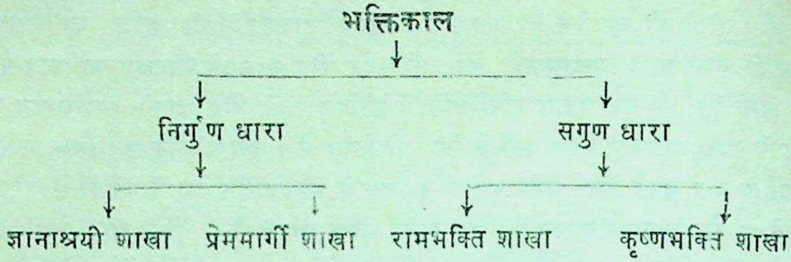

काव्य की निर्गुण धारा और उसकी विशेषताएँ

काव्य की निर्गुण धारा भक्तिकाल की प्रवृत्ति का अभिव्यक्तिकरण है, जो हिन्दुओं मे हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने की इच्छा के रूप में विद्यमान थी। निगु ण पंथी कवियों का ध्येय निराकार की साधना से मुक्ति प्राप्त करना था। यह बात मुसलमानों के बहुत निकट बैठती थी। इस धारा के कवियों ने योग-साधना और ब्रह्म-ज्ञान को अपनी कृतियों में प्रधानता दी।

भक्तिकाल का पूर्वार्द्ध सगुण उपासना के अधिक अनुकूल था। दक्षिण के प्रसिद्ध संत नामदेव जिनका काल सवत् १३२८ से १४०८ तक माना जाता है—पहले सगुण उपासना की ओर बढ़े किन्तु इस समय की सामाजिक स्थिति के कारण उन्हें निर्गुण उपासना ही अपनानी पडी। इसका कारण यह था कि जब सगुण उपासकों पर आपत्तियाँ आईं, तब साकार भगवान ने उनकी कोई प्रत्यक्ष सहायता नहीं की। इसलिए भक्त कवि नामदेव को निर्गुण धारणा माननी पड़ी। उनके पश्चात् इस शाखा को आगे बढ़ाने वाले सन्त कबीर हुए। कबीर भी ज्ञानाश्रयी शाखा के थे।

निर्गुण धारा की दूसरी शाखा प्रेमाश्रयी कहलाती है। प्रेममार्गी कवियों ने प्रेम गाथाओं को ही आधार मानकर अपने मत का प्रचार किया।

ज्ञानाश्रयी शाखा और उसकी विशेषताएँ

यह बात तो पहले ही बताई जा चुकी है कि उस समय समाज पर नाथ पन्थी हठयोगियों का बहुत प्रभाव रहा है। ये एकेश्वरवादी थे। ज्ञान और योग इनकी साधना के आधार थे। ज्ञानमार्गी भक्त कवियों पर इनका प्रभाव स्वाभाविक था। योग साधना और ब्रह्मज्ञान इनकी रचनाओं में प्रमुख स्थान रखते हैं। ये झूंठे धार्मिक उन्माद के विरोधी थे और आडम्बर से उन्हें घृणा थी। इन कवियों ने मन की पवित्रता, सदाचार और समानता को विशेष बल दिया। ये सन्त निम्न वर्ग के थे, अतः जाति-पाँति का भेद छोड़कर भक्ति का मार्ग सभी के लिए प्रशस्त कर दिया।

सन्त कवियों का यह निर्गुणवाद हिन्दू और मुसलमानों को एक दूसरे के निकट लाने का साधन माना गया। मुसलमान एकेश्वरवाद के मानने वाले थे। उनका विश्वास है कि मुहम्मद रसूल अल्लाह के सिवाय दूसरा अल्लाह नहीं। मुहम्मद खुदा का रसूल या दूत है। हिन्दू भी ईश्वरवादी नहीं थे। सभी को एक ही

का रूप मानते थे । **'एशो शत् विप्राः बहुधा गवन्ति'** अतः निर्गुणवाद का जन्म समय की माँग थी । सन्त कवियों ने निर्गुणवाद के आधार पर राम और रहीम की एकता और दोनों की व्यर्थ की रूढ़ियों की निरर्थकता सिद्ध की । सन्त कबीर इस धारा के प्रमुख प्रवर्त्तक माने जाते हैं ।

ज्ञानाश्रयी शाखा की विशेषताएँ

(१) इस्लाम का एकेश्वरवाद, वेदान्त का ब्रह्मवाद, सूफी और वैष्णवों का अहिंसावाद से मिलकर सन्त-सम्प्रदाय का निर्माण हुआ ।

(२) इस शाखा के सभी कवि सन्त कहलाये । सभी ने ज्ञान को महत्व दिया ।

(३) निर्गुणवादी सभी सन्त नाम की उपासना पर अधिक जोर देते थे ।

(४) इन्होंने गुरु को भगवान से अधिक महत्व दिया ।

(५) आडम्बरों का खण्डन करते थे । धर्म को सर्वजन-साधारण के लिए और सामान्य जन धर्म को मानते थे ।

(६) ये अहिंसा, सदाचार और साधना के अनुयायी थे ।

(७) जाति-पाँति का बन्धन ये स्वीकार नहीं करते थे ।

(८) इनकी भाषा सधुक्कड़ी थी । इसमें साहित्यिकता का अभाव था ।

(९) ये घुमक्कड़ थे तथा प्रचार इनका लक्ष्य था ।

प्रसिद्ध कवि—यहाँ प्रसंगानुसार संक्षेप में कवियों एवं उनके ग्रन्थों की जानकारी यहाँ दी जा रही है ।

महात्मा कबीर—कबीरदास जी ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्त्तक एवं गति देने वाले सन्त कवि माने जाते हैं । आपका काव्य भी उच्चकोटि का है । रहस्यवाद के सर्व-प्रथम दर्शन कबीरदास जी के काव्य में ही होते हैं । आप कबीर-पन्थ के प्रवर्त्तक माने जाते हैं । इनके जन्म एव मृत्यु के सम्बन्ध में निश्चित जानकारी का अभाव है । किंवदतियों के अनुसार इनका जन्म संवत् १४५५ वि० माना जाता है । आप किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ऐसा कहा जाता है । ब्राह्मणी ने उन्हें लोक-लाज के डर से किसी तालाव के किनारे छोड़ दिया था, जिसे एक जुलाहा दम्पत्ति ने उठा लिया और पालन-पोषण किया । इनकी विधिवत् शिक्षा नहीं हो पाई थी । कबीर कवि होने के साथ-साथ उच्चकोटि के दार्शनिक भी थे । इनकी कविता के तीन भाग हैं—रमैनी, सबद और सखी । रमैनी और सबद की रचना पदों में हुई है तथा साखी दोहा छन्द में लिखी गई ।

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है, जिसमें कई भाषाओं का मेल है । मात्राओं आदि के दोष भी उसमें कहीं कहीं हैं । उनका लक्ष्य था उनके भाव जन-जन तक पहुँचे । इनके 'कबीर पंथ' में रामानन्द की अहिंसा व भक्ति-भावना, शंकराचार्य का

मायावाद और अद्वैतवाद, नाथक पन्थियों का हठयोग और सूफी कवियों के प्रेम का उचित समन्वय है :

महात्मा रैदास—इन्हें रविदास भी कहते हैं। रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से ये एक थे। ये भी निर्गुणधारा के सन्त कवि थे। इनका जन्म काशी में हुआ था, ये जाति के चमार थे। द्वैत वेदान्त के विरोध में इन्होंने इस तरह लिखा है :

जब हम होते, तब तू नहीं।
अब तू ही, में नहीं॥
अतल अगम जैसे, लहरिमई उदधि।
जल केवल जल माहीं॥

उनका विश्वास आत्मा की लीनता में था। जब आत्मा परमात्मा में मिल जाती है, तब आत्मा एवं देह का कोई अस्तित्व नहीं रहता। इनका काव्य निर्गुण उपासना का आगार है। कहते हैं ये भक्तिमणि मीरा के गुरु थे।

धरमदास—ये कबीर के शिष्य थे और बाँधोगढ़ के धनी आदमी थे। कबीरदास जी के सम्पर्क मे आने पर इन्होंने सगुण उपासना छोड़कर निर्गुण पंथ स्वीकार किया। इन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति लुटा दी। ये कबीरदास की गद्दी के उत्तराधिकारी थे। जीवन भर कबीर-पंथ का प्रचार करते रहे। इनकी रचना सरल एवं विरह-भावना से युक्त है। धरमदास की अन्योक्तियाँ अधिक मार्मिक हैं। इनके पद्यों का संग्रह-ग्रन्थ 'सुख-निधान' है।

गुरु नानक—इन्हें नानकदेव भी कहते हैं। इनका जन्म १५२६ माना जाता है। गुरु नानकदेव सिक्ख सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। बाल्याकाल से ही वे सन्त प्रवृत्ति के थे। मना करने पर भी उन्होंने सन्तों का सत्संग नहीं छोड़ा। इनका अवसान सवत् १५९५ में माना जाता है गुरुनानक भी निराकार ईश्वर के उपासक थे। उनके दोहे, पद और साखियाँ—'गुरु ग्रन्थसाहब में सग्रहित हैं। इनके पदों की भाषा सरल पंजाबी है। इनमें हिन्दी का भी प्रयोग किया गया। ये पद जन-साधारण के लिए अति सुगम हैं। कबीर के निर्गुणमत का प्रचार सम्पूर्णी पंजाब में किया था। इनके भजनों में निराकार ब्रह्म की उपासना का स्वर सुनाई देता है। इस धारा को विकसित करने और फैलाने का कार्य गुरुनानक ने किया। उनकी वाणी धर्म वाणी मानी जाती है।

एक उदाहरण

जिसके अन्तर साचु बसावै। जोग जुगति की कीमत पावै।
रवि ससि एकौ गृह उहि आने। करणी कीरति करम समानै॥

मलूकदास—निर्गुण मत के ये भी एक श्रेष्ठ सन्त एवं कवि हुए हैं। इनका जन्म सं० १६३१ वि० में माना जाता है। इलाहाबाद के पास कड़ा नामक गाँव इनकी जन्म-भूमि थी। बचपन से ही ये ईश्वर के अनन्य उपासक थे। इनके पिता का

नाम सुन्दरदास था। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—'ज्ञान बोध' और 'रत्नावली' इनकी भाषा बोल-चाल की है, जिसमें फारसी, अरबी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनकी रचनाओं में प्रेम, आत्म-ज्ञान और विराग की प्रधानता है। आलसियों को फटकराते हुए इन्होंने एक बार कहा था :

अजगर करै न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कहि गये. सबके दाता राम॥

एकेश्वरवाद का उदाहरण :

तीनों लोक हमारो माया। अन्त कतहुँ सो कोइ नहि पाया॥
छतिस पवन हमारी जाति। हमहीं दिनऔ हमहीं राति॥
हमहीं तरवर कीट पतंगा। हमहीं दुर्गा हमहीं गंगा॥
हमहीं मुल्ला हमहीं काजी। तीरथ बरत हमारी बाजी॥

दादूदयाल—दादूदयाल जी निर्गुण धारा के सन्त और कवि थे। इनका जन्म अहमदाबाद में संवत् १६०१ में माना जाता है। इनका चलाया हुआ सम्प्रदाय 'दादू पन्थ' कहलाता है। निराकार की उपासना भावना से युक्त इन्होंने भी साखियों की रचना की। कबीर के समान इन्होंने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं :

रोम-रोम में रमि रहया, तू जानै दूर।
दादू देख दयाल को, सकल रहा भरपूर॥
केते पारखि पचि मुये कीमति कही न जाय।
दादू सब हैरान हैं, गूँगे का गुड़ खाइ॥

सुन्दरदास—जयपुर के पास द्योसा नामक स्थान में इनका जन्म सं० १६५३ माना जाता है। ये दादू के शिष्य थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे। संस्कृत और फारसी पर इनका अधिकार था। इनका काव्य श्रेष्ठ एवं उच्चकोटि का है। कई बोलियों का इन्हें ज्ञान था। इन्होंने धर्म की विशुद्धता के साथ रस और अलंकारों का भी ध्यान रखा है। इन्होंने नारी के रूप की भी निन्दा की है। ये विद्वान कवि थे।

इन कवियों के अतिरिक्त **अक्षर अनन्य**, यारी साहब, चरनदास, जगजीवनदास, सहजोबाई, तुलसी साहब, पलटू साहब आदि कुछ अन्य कवि भी हुए हैं।

ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रचार समय के साथ खूब हुआ। नीची जाति के लोग बड़ी संख्या में इसके अनुयायी बने। आगे चलकर लोगों का ध्यान सगुण उपासना की ओर बढ़ने लगा, जिसके कारण निर्गुण उपासना की लोकप्रियता भी कम होती गयी।

ज्ञानमार्गी कवि भक्ति को सर्वोपरि मानते थे, किन्तु इसके साथ ही एक धारा और चल पड़ी, इसे प्रेमाश्रयी नाम से पुकारा जाने लगा। यह भी निर्गुण

धारा एक रूप है। इसमें प्रेम की प्रधानता है, अतः उसे प्रेम-मार्गी शाखा भी कहा जाता है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि एवं उनकी रचनायें

कवि	रचनायें
कबीर	बीजक (रमैनी, सबद और साखी)
धरमदास	सुख निधान
रैदास	पद गुरु ग्रन्थ साहब में संग्रहित है। जन सुलभ पद।
गुरु नानक	इनकी वाणी गुरु ग्रन्थसाहब में संग्रहित है।
दादूदयाल	पद
सुन्दरदास	सुन्दर विलास
मलूकदास	रत्नावली और ज्ञान-बोध।
अक्षर अनन्य	राजयोग, सिद्धान्त बोध, विवेक दीपिका, अनन्य प्रकाशयोग, वेदान्त पर आधारित कुछ अन्य ग्रन्थ
निश्चलदास	विचार सागर
अन्य कविगण	फुटकर पद आदि

प्रेमाश्रयी शाखा और उसकी विशेषताएँ निर्गुण धारा की यह दूसरी शाखा है। ज्ञानाश्रयी शाखा के सन्त-कवि निराकार परमात्मा की अनुभूति 'ज्ञान' बतलाते थे, अतः वे ज्ञानाश्रमी कहलाये और प्रेमाश्रयी पन्थ के प्रवर्तक एवं अनुयायियों का विश्वास था कि भगवान की अनुभूति प्रेम के द्वारा हो सकती है। उनके अनुसार प्रेम की साधना के लिए गुरु का सहयोग अनिवार्य है।

प्रेमाश्रयी शाखा के कवि 'सूफी' थे, जिसका अर्थ होता है सफेद ऊन के वस्त्र-धारण करने वाले। ये सन्त सर्वेश्वरवाद के पोषक थे ' वे 'अनलहक' (सोऽहं) में विश्वास रखते थे। उनकी मान्यता थी कि मुक्ति प्रेम द्वारा मिल सकती है। ईश्वर और जीव का सम्बन्ध भय का नहीं वरन् प्रेम का है। सूफी लोग पीर (गुरु) को अधिक महत्व देते थे। वे संगीत के भी प्रेमी थे। ये लोग कट्टर मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू धर्म के अधिक निकट थे।

प्रेम-पन्थ में खण्डन-मण्डन की अपेक्षा हृदय को स्पर्श करने वाली सरसता थी। प्रेम-काव्य सांसारिक प्रेम से प्रारम्भ होकर ईश्वरोन्मुख प्रेम की ओर अग्रसर होता है। प्रेममार्गी कवि प्रायः मुसलमान थे। इन्होंने धार्मिक एकता के प्रयत्न किये। इन्होंने हिन्दुओं की बोली में उन्हीं के कथानकों पर प्रबन्धात्मक दोहा, चौपाइयाँ लिखीं। कहानी के पात्र आध्यात्मिक रूप से आत्मा और माया के प्रतीक होते थे।

प्रेमाश्रयी शाखा का प्रारम्भ

वैसे सूफी मत का प्रारम्भ मुहम्मद साहब के दो सौ वर्ष बाद हुआ। भारत में वैसे मुसलमानों के आगमन से पूर्व इस धारा का अस्तित्व मिलता है, परन्तु ज्ञान-

मार्गियों के कारण वह उभर नहीं सका। इस पन्थ का उदय चारण काल में हो गया था, किन्तु वास्तविक विकास तो भक्तिकाल में ही आकर हुआ। इस पन्थ का प्रथम काव्य 'चन्द्रावत' माना जाता है। इसकी रचना मुल्ला दाऊद ने की थी। इसके बाद इसके सबके समर्थ कवि मलिक मुहम्मद जायसी माने जाते हैं। इनके पूर्व भी अनेक कवियों ने बहुत कुछ लिखा था। परन्तु प्रेमधारा का प्रधान कवि जायसी को ही माना जाता है। प्रेम-काव्य हिन्दू और मुसलमान दोनों में समान रूप में लोकप्रिय हो गया।

प्रेमाश्रयी धारा की विशेषतायें

(१) प्रेम काव्य के कथानक भारतीय थे।

(२) इसकी रचना सर्गबद्ध शैली न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर रची गई है। इसमें ईश्वर-बन्दना, पैगम्बर की स्तुति, तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा के साथ कथानक आरम्भ किया गया है।

(३) इन काव्यों की भाषा अवधी है।

(४) इनकी रचना दोहा, चौपाई छन्द में हुई है।

(५) इनके लिखने वाले प्रायः मुसलमान थे, जिन्हें हिन्दू धर्म का थोड़ा सा ज्ञान था।

(६) ये लोग किसी धर्म का खण्डन-मण्डन नहीं करते थे, फिर भी इनका झुकाव मुसलमान धर्म की ओर अधिक रहा।

प्रेमाश्रयी धारा के कवियों में निम्नलिखित रचनाकार अधिक प्रसिद्ध हुए हैं:

कुतुबन—इनका जन्म सम्वत् १५५० के आस-पास माना जाता है। ये चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। इनका काव्य मृगावती माना जाता है। इस ग्रन्थ में विरह की प्रधानता है। इनकी भाषा अवधी है। यह दोहे, चौपाई छन्दों में लिखी गई है।

मंझन—इनका जन्म-स्थल और काल संदिग्ध है। इनकी लिखी हुई मधुमालती मानी जाती है। इसमें अलौकिक कृत्यों की कल्पना है। प्रेममार्गी धारा का श्रेष्ठ निर्वाह हुआ है।

मलिक मुहम्मद जायसी- प्रेमाश्रयी धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये शेख मोहिदी के शिष्य थे। आपका निवास-स्थान जायस था। आपका जन्म सन् १५२८ के आस-पास माना जाता है। आपकी इक्कीस रखनायें मानी जाती हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध 'पद्मावत' है। 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' भी उपलब्ध हो गये हैं। पद्मावत जायसी की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें सूफी मत का पूरा विकास मिलता है।

उसमान—ये गाजीपुर के निवासी थे, तथा बादशाह जहाँगीर के समय में रहते थे। इन्होंने 'चित्रावली' नामक काव्य की रचना की है। उसमान की चित्रावली' में भी सूफी मत का ही आभास मिलता है।

अन्य कविगण—शेखनबी, कासिमशाह, फाजिलशाह नूरमुहम्मद आदि कवि हुए हैं।

प्रेमाश्रयी शाखा के कवि एवं रचनायें :

कवि	रचनायें
कुतुबन	मृगावती
मझन	मधुमालती
मलिक मुहम्मद जायसी	मद्‌मावत अखरावट, आखरी कलाम, कुल इक्कीस रचनायें मानी गई हैं (तीन के अतिरिक्त शेष अनुपलब्ध)
उसमान	चित्रावली
शेखनबी	ज्ञानद्वीप
कासिमशाह	हंस जवाहर (कहानी)
नूर मुहम्माद	रोजतुल इकायत, इन्द्रावती, अनुराग बाँसुरी।

भक्तिकाल—सगुण-धारा और उसकी विशेषतायें

निर्गुणवाद की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों और सन्तों के अद्वैतवाद और एकेश्वरवाद का प्रतिपादन अवश्य किया, किन्तु आगे चलकर भक्ति के व्यावहारिक रूप में सगुण भक्ति को जन्म दिया।

बौद्धों के बाद शंकराचार्य का वेदान्तवाद प्रचलित हो गया था, किन्तु उसमें ज्ञानवाद की शुष्कता थी। अतः वह सामान्य जनता को आकर्षित नहीं कर पाया। प्रेममार्गियों ने प्रेम के द्वारा सरसता अवश्य उत्पन्न की, उसमें विदेशीपन और इस्लाम का प्रभाव अधिक था। दूसरी ओर शंकराचार्य ने वेदान्त के विरोध में विशिष्टाद्वैत और वैष्णव सम्प्रदायों का उदय होने लगा था। स्वामी रामानुजाचार्य ने सगुण-भक्ति धारा का निरूपण किया। यह धारा व्यापक होते हुए उत्तर भरत में भी सर्वत्र फैल गयी।

सगुण धारा के अन्तर्गत ईश्वर की साकारोपासना पर विश्वास किया जाता है। इसके मानने वाले अवतारवाद पर भी विश्वास करते थे। सगुणोपासकों का मत था कि ईश्वर लीलायें करता है। इस लीला का विस्तार ही सगुणधारा का मूल आदर्श था। इन सन्त कवियों ने लीलाओं का ही वर्णन किया है। उन्होंने इसे ही भक्ति की आत्मा स्वीकार किया। ये सन्त भगवान की माधुर्य भाव से उपासना करते हैं। यह माधुर्य चार धाराओं में विभाजित है—(१) ऐश्वर्य-माधुरी, (२) क्रीड़ा माधुरी, (३) वेण-माधुरी और (४) विग्रह-माधुरी। कृष्ण-काव्य इसी भावना

पर आधारित है। सगुण उपासना की दो धारायें मुख्य रूप से प्रचलित हुईं—(१) रामाश्रयी शाखा और (२) कृष्णाश्रयी शाखा।

तुलसी ने ब्रह्म को दोनों रूपों में देखा। इस युग की भक्ति भावना की यह विशेषता रही है कि इस काल में सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं का समान रूप से आदर किया जाता रहा।

भक्त-कविगणों की विशेषताएँ

(१) भक्ति कवि भगवान विष्णु के सगुण और साकार रूप की राम और कृष्ण आदि अवतारों के रूप में आराधना करते थे। मुसलमान और ईसाइयों का खुदा सगुण है, किन्तु राम और कृष्ण की भाँति साकार नहीं है।

(२) भगवान की लीलाओं का वर्णन करना वे अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे। इसमें उनकी हार्दिक प्रसन्नता और आत्मनिवेदन के भाव भी निहित थे।

(३) इनकी कविता कविता के लिए न होकर अभिव्यक्ति का साधन मात्र थी।

(४) ये सन्त राज्याश्रय की परवाह नहीं करते थे। इनकी रचना स्वान्तः सुखाय और लोक हिताय होती थी। वैष्णव व भक्त कवि जनता के कवि थे।

(५) इन्होंने ब्रह्म के लोक रक्षक और लोकरंजक रूप की स्थापना की।

(६) ब्रह्म और अवधी दोनों भाषाओं की रचना की गयी। दोहा और चौपाई छन्दों का विशेष प्रयोग हुआ।

(७) व्यक्तिगत साधना आध्यात्मिकता और सदाचार की प्रेरणा दी।

(८) प्रबन्धमुक्तक तथा खण्ड-काव्य की रचना की। इन काव्यों में समस्त काव्य शैलियों का प्रयोग हुआ।

भक्तिकाल की विविध धारायें

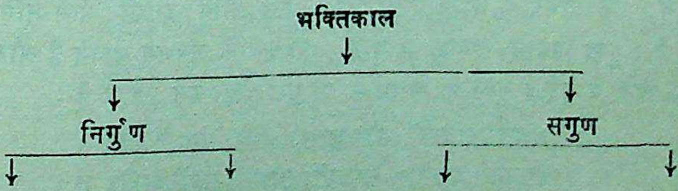

रामाश्रयी धारा और उसकी विशेषतायें

हिन्दू धर्म में वेदान्त के विरोध में विशिष्टाद्वैत एवं वैष्णव सम्प्रदायों के जन्म ने सगुण उपासना का मार्ग प्रचलित किया। दक्षिण में विशिष्टाद्वैतवाद के प्रवर्त्तक स्वामी रामानुजाचार्य थे। इनके अनुयायी स्वामी रामानन्द ने इस भक्ति

को उत्तर भारत में सर्वत्र व्यापक बना दिया। इन्होंने अपनी उपासना का आधार राम सगुण आराधना को बना दिया। राम-भक्ति का यह सम्प्रदाय उत्तर भारत में रामानन्दी सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित हो गया था। उसके आराध्य देव राम हैं। वैष्णव सम्प्रदाय में ईश्वर को जिन सीमाओं में बाँधा गया है, रामोपासना में उन सीमाओं को कोई स्थान नहीं है। स्वामी रामानन्द 'राम' तो विश्वास करते थे, किन्तु उसे निर्गुण दृष्टि से भी देखते थे। सगुण रूप में रामानन्द के राम सगुण और निर्गुण से परे थे। जनसाधारण का ध्यान सगुण-भक्ति की ओर अधिक आकर्षित हुआ।

स्वामी रामानन्द ने मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम की भक्ति का अधिकार सभी को प्रदान कर दिया। शूद्र, नारी, द्विज सभी उनके अनुयायी थे। राम-भक्ति साखी के प्रसिद्ध सन्त कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के राम-काव्य ने इस उपासना का विशेष रूप से विकास किया है।

इस काल की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैं :

(१) भक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया गया।

(२) दास भाव को लेकर भगवान की भक्ति की गई।

(३) लोक-मर्यादा और वर्ग-व्यस्था को मान्यता दी गई।

(४) मुक्तक और प्रबन्ध दोनों की रचनायें की गयीं। अनेक तरह की शैलियों को अपनाया गया।

(५) वेद और अन्य शास्त्रों के विचारों की प्रधानता दी गई।

(६) धर्म-रक्षा और लोक-कल्याण की भावना का ध्यान रखा गया।

(७) सामाजिक मर्यादा की स्थापना हुई।

रामाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि इस प्रकार हैं :

गोस्वामी तुलसीदास—गोस्वामी रामाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका जन्म सं० १५८९ के आस-पास उत्तर प्रदेश के राजापुर में हुआ, ऐसा माना जाता है। इस विषय में भारी मतभेद हैं। कुछ लोग इनकी जन्म-भूमि सोरों भी मानते हैं। कुछ विद्वान इनका जन्म सं० १५५४ के लगभग मानते हैं और मृत्यु स० १६८० वि० में हुई। मृत्यु के विषय में तो एक दोहा इस प्रकार है :

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर॥

गोस्वामीजी का विवाह भी हुआ था, किन्तु किसी साधारण सी घटना ने इसमें वैराग्य भाव जाग्रत कर दिया। तुलसीदास ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है हिन्दी में तुलसी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह हिन्दी के सुहाग को बिन्दी माने जाते हैं। उनके साहित्य में 'रामचरितमानस' विशाल रचना है। यही एकमात्र

ग्रन्थ उनके महत्व को स्थापित करने में पर्याप्त है। तुलसी ने ब्रज को अवधी दोनों भाषाओं में रचना की है। उन्होंने उस समय की प्रचलित सभी काव्य-शैशियों को अपनाया। आपने अपने काव्य में सभी रसों का सुन्दर चित्रण किया है। भक्ति, ज्ञान, कर्म सभी का समावेश है उनके साहित्य में। यही कारण है कि तुलसीदासजी कला, भाव सभी दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। तुलसीदासजी के सम्बन्ध में आगे बिस्तार से लिखा गया है। आपकी अन्य रचनाओं में रामलला नहछू वैराग्य संदीपनी, बरवै, रामायण, रामाज्ञा प्रश्न, पावती-मंगल, जानकी मंगल, गीतावली, कृष्ण गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका आदि प्रसिद्ध हैं।

केशवदास—रामाश्रयी शाखा के वे दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं। आपका जन्म सं० १६१२ में ओरछा नामक स्थान में हुआ। ये प्रकाण्ड पण्डित थे। पहले ये संस्कृत में काव्य-रचना करते थे। फिर ये हिन्दी में लिखने लगे। सं० १६७६ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। रामचन्द्रिका, रसिकप्रिया, कवि-प्रिया, विज्ञान-गीता, जहाँगीर जस चन्द्रिका, वीरसिंहदेव चरित्र और रतन बावनी आदि उनके ग्रन्थ हैं। इनमें 'रामचन्द्रिका' सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसके कारण उनका नाम अमर हो गया। तुलसी के राम सर्व व्यापक हैं, किन्तु केशव के राम एक मनुष्य के सभी गुणों को लिए हुए हैं। वे जनसाधारण के समान हैं। कुछ समीक्षकों ने केशवदास जी को रीतिकाल का कवि माना है। यह सही है कि उनका काव्य रीतिकाल के अनुरूप है, किन्तु काव्यकाल के नाम में वे भक्तिकाल के कवि ही माने जावेंगे। वे रामाश्रयी शाखा के कवि तो है ही। केशवदास को आचार्य कहा जाता है, क्योंकि आपके काव्य में अपार्यत्व अधिक है। अलंकार-योजना व छन्दों का चमत्कार उनकी विशेषता है। वे काव्य के आन्तरिक गुणों के प्रति अधिक सजग नहीं थे। यही कारण है कि उनका काव्य अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया। केशव की भाषा में ब्रजभाषा की प्रचुरता है। आपकी शैली भी भक्तिकाल के अन्य कवियों की तरह नहीं है। उनके काव्य में युग-परिवर्तन के संकेत मिलते हैं। वह संकेत करता है कि अगला समय चमत्कारपूर्ण रीतिबद्ध रचना के काल के रूप में आता है।

एक उदाहरण

अरुण गात अतिप्रात पद्मिनी प्राणनाथ भए।
मानहूँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय।।
परिपूरन सिन्दूरपूर कैधों मंगल घट।
किधौं शक्र को छत्र भढ़यो मानिक मयूखपट।।
कै सौनित-कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित याल कैधों लसत दिग-भामिनि के भाल को।।

इस पद में अलंकार-योजना तो श्रेष्ठ है, किन्तु इसमें भाव जाग्रत करने की क्षमता का अभाव है।

स्वामी अग्रदास—ये भी रामानन्द की शिष्य-परम्परा में आते हैं। सम्भवतः सं० १६३२ के आस-पास उनका समय माना जाता है। उनकी चार पुस्तकों का पता चला है—ध्यान मंजरी, कुण्डलियाँ, राम ध्यान मंजरी, हितोपदेश और उपख्यान बावनी ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए हैं।

नाभादास—नाभादासजी सं० १६५७ के आस-पास माने जाते हैं। आपने 'भक्तिमाल' की रचना की है। आपका काव्य राम-भक्ति से सम्बन्धित है। छप्पयों में जैसा सुन्दर चित्रण आपने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। दोहा चौपाइयों में आपने अष्टयामों की रचना की है। पहला अष्टयाम ब्रजभाषा में है। दूसरा रामचरितमानस के समान है। रामाश्रयी धारा के ये श्रेष्ठ कवि हैं।

प्राणचन्द चौहान—ये रामाश्रयी शाखा के श्रेष्ठ कवि थे। आपने राम के चरित्र को लेकर अनेक नाटकों की रचना की है। सभी काव्य भाषा में हैं।

हृदयराम—इस कवि का रचनाकाल सं० १६८० माना जाता है। ये पंजाब के निवासी थे तथा आपने हिन्दी में 'हनुमन्नाटक' लिखा है इस काव्य की शैली नई है, तथा सुन्दर काव्य-भाषा में लिखा गया है।

अन्य—रीवा के नरेश विश्वनाथ सिंह और रघुराजसिंह ने भी राम-भक्ति का गुण गान किया है।रामचरणदास जी का नाम भी इसी धारा में गिना जाता है। ये सख्यभाव के उपासक थे।

रामाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि और उनकी रचनायें

गोस्वामी तुलसीदास—(१) रामलला नहछू, (२) वैराग्य सन्दीपनी, (३) बरवै रामायण, (४) रामाज्ञा प्रश्न, (५) पार्वती मंगल, (६) जानकी मंगल, (७) रामचरित मानस, (८) गीतावली, (९) कृष्ण-गीतावली, (१०) कवितावली, (११) विनय पत्रिका।

केशवदास—(१) रामचन्द्रिका, (२) रसिक-प्रिया, (३) कवि-प्रिया, (४) विज्ञान-गीता, (५) जहाँगीर जस-चन्द्रिका, (६) वीरसिंह देव चरित्र, (७) रतन बावनी।

स्वामी अग्रदास—ध्यानमंजरी, कुण्डलियाँ, रामध्यान मंजरी, हितोपदेश और उपख्यान बावनी।

नाभादास—भक्तिमाल और अष्टयाम।

प्राणचन्द चौहन—रामायण महानाटक।

हृदयराम—हनुमन्नाटक।

रामचरणदास, विश्वनाथ सिंह और रघुराज सिंह ने फुटकर पदों की रचना की हैं।

कृष्णाश्रयी धारा और उसकी विशेषताएँ

भक्तिकाल की सगुण उपासना के अन्तर्गत कृष्णभक्ति शाखा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। निर्गुण भक्ति चाहे वह ज्ञान-प्रधान हो अथवा प्रेम-प्रधान भारत की हिन्दू जनता में आशा, उत्साह और आनन्द का संचार न कर सकी। इसीलिये आगे चलकर सन्त कवियों ने भगवान की सगुण उपासना के अन्तर्गत राम और कृष्ण को लेकर जिस रस-धारा को हिन्दी-साहित्य में प्रवाहित किया, उसका रसास्वादन आज तक भारतीय कर रहा है। जिस तरह स्वामी रामानुज के मत को लेकर स्वामी रामानन्द जी ने राम-भक्ति का प्रचार किया, उसकी तरह स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति का प्रचार किया। वैसे कृष्ण-भक्ति का विकास वल्लभाचार्य के पश्चात् अधिक हुआ, किन्तु कृष्ण भक्ति का आभास जयदेव की वाणी में मिलता है।

विक्रम की १५ वीं और १६ शती में कृष्ण-काव्य का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। बल्लभाचार्य जी ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म तथा पुरुषोत्तम का रूप माना है। दक्षिण में कृष्णाश्रयी शाखा के अन्तर्गत 'देवदासी' की प्रथा भी चल पड़ी थी। 'अन्दाल' नामक एक अविवाहित देवदासी ने माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना की थी। कृष्णाश्रयी शाखा के अनेक कवि मुसलमान भी हुई हैं। इन्होंने श्रीकृष्ण के देवत्व और मानवीय लीला का सुन्दर वर्णन किया है। अन्य धर्मावलम्बियों ने भी कृष्ण काव्य लिखा है।

संस्कृति कवियों तथा विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण के गीत लिखे थे। विद्यापति की रचना श्रृंगार रस की दृष्टि से अद्वितीय हैं।

कृष्ण-भक्ति के प्रारम्भ में चार आचार्यों के दर्शन होते हैं। ये चार सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है:

१. **माध्वाचार्य**—ये ब्रह्म सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इनका मत द्वैतवाद का पोषक था। इसमें कृष्ण को ब्रह्म माना गया है।

२. **विष्णु स्वामी**—ये रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। इनका मत शुद्ध द्वैतवाद का समर्थक था।

३. **निम्बकाचार्य**—ये सनिकादि सम्प्रदाय के संस्थापक थे और द्वैताद्वैत सिद्धान्त को मानते थे।

४. **स्वामी बल्लभाचार्य**—ये पुष्टिमार्ग के संस्थापक थे। इन पर विष्णु स्वामी का प्रभाव था। इस सम्प्रदाय ने कृष्ण के वात्सल्य भाव और साख्य भाव पर अधिक ध्यान दिया। इसी में आगे चलकर इतिहास प्रसिद्ध अष्टछाप के कवि हुए।

अष्ट छाप के कवि गण—(१) सूरदास, (२) कुम्भनदास, (३) परमानन्द, (४) कृष्णदास, (५) छीत स्वामी, (६) गोविन्द स्वामी, (७) चतुर्भुजदास, (८) नन्ददास।

कृष्णाश्रयी शाखा के कवियों की विशेषतायें :

(१) इन कवियों ने भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं को ही अपना वर्ण्य-विषय बनाया।

(२) इनके काव्य में वात्सल्य और शृंगार रस की प्रधानता रही।

(३) कृष्ण-काव्य मुक्तक एवं गीत-काव्य है।

(४) काव्य-रचना ब्रजभाषा में हुई।

(५) इन कवियों ने कृष्ण की भक्ति-सख्य भाव से की।

(६) कृष्ण-भक्ति के आवेशपूर्ण गीतों में भावों की गहराई है, साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

(७) वात्सल्य रस का ऐसा उदाहरण अन्यत्र कहीं भी तथा किसी भी भाषा में देखने को नहीं मिलता।

(८) कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास हैं।

कृष्णाश्रयी शाखा के कवि इस प्रकार हैं :

सूरदास—बल्लभाचार्य की शिष्य-परम्परा के तथा अष्ट के कवियों में सूरदास जी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे, किन्तु ऊँच-नीच भेदभाव नहीं रखते थे। ऊनके अंधे होने के सम्बन्ध में भी बहुत विवाद हैं।

सूरदास जी ईश्वर को प्रेममय दृष्टि से देखते थे। भक्ति के आवेश में वीणा बजाते हुए अपनी भक्ति भावना प्रकट करते थे। जब ये बल्लभाचार्य के शिष्य बने तो उनके निर्देशानुसार वे कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करने लगे। सूरदास की भाव धारा के सम्बन्ध में कतिपय विद्वान ने अपने भाव इस तरह प्रकट किये हैं—

इस अन्धे कवि ने भक्ति की जो धारा बहायी है, वह केवल इस युग में सीमित होकर आज भी अबाध गति से बह रही है। जितना लालित्य और माधुर्य सूर के पदों में है, उतना सम्भवतः साहित्य के अन्य किसी कवि में नहीं है।

सूरदास का संयोग और वियोग दोनों पर समान अधिकार था। उनके सम्पूर्ण पदों का संग्रह 'सूरसागर' में हुआ है। यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य की अनमोल निधि है। इन्हें 'साहित्य-लहरी' का रचयिता भी मानते हैं। सूरदास की भक्ति भावना अत्यन्त मधुर थी। वे वात्सल्य, भक्ति, प्रेम और सख्य भाव के कवि थे। सूर वात्सल्य रस के सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। गीतों की परम्परा में भी सूरदास की देन हिन्दी में स्थायी निधि के समान है।

नन्ददास—ये भी अष्ट छाप के कवियों में से हैं। इनके प्राप्य ग्रन्थों में प्रमुख हैं—रस मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूपमंजरी, मानमंजरी, विरह मजरी, श्याम सगाई रास पंचाध्यायी, रुक्मणिमंगल, भंवरगीत, सिद्धान्त, पंचाध्यायी, सुदामाचरित और दशम स्कन्ध हैं। इन्हें प्रकृति का सिद्ध कवि कहा जाताहै। इनके काव्य में उत्तम

तत्व पाये जाते हैं। इनकी कोमल कान्त पदावली सुनने वालों के हृदय को सहज ही आकर्षित कर लेती है। सूरदास के बाद इन्हीं का नाम आता है।

कृष्णदास—ये बल्लभाचार्य जी की मत धारा के कवि हैं। शूद्र होते हुए भी इनकी गिनती अष्टछाप के कवियों में की गई है। इन्होंने कृष्ण-भक्ति में डूबकर कई पदों की रचना की है। इनके दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं भँवरगीत और प्रेमतत्व निरूपण। इन ग्रन्थों में कृष्ण-भक्ति के पद संकलित हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों में **परमानन्द दास** ने 'परमानन्द सागर' की रचना की। **कुम्भनदास** ने कुछ फुटकर छन्दों की रचना की थी। **चतुर्भुजदास** कुंभनदास के पुत्र थे। इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं जो क्रमशः इस प्रकार हैं—द्वादश यश, भक्ति प्रताप तथा हितजू को मगल हैं। **छीतस्वामी** के फुटकर पदों का महत्वपूर्ण स्थान है। **गोविन्द स्वामी**—ये श्रेष्ठ कवि हैं एवं प्रकृति के प्रति इनका अनन्य प्रेम था। इन्होंने भी फुटकर पदों की रचना की थी।

हित हरिवंश—इनको राधाबल्लभ सम्प्रदाय का कवि माना जाता है। इन्होंने 'राधा सुधा निधि' तथा 'हितचौरासी' नामक ग्रन्थों की रचना की। प्रथम ग्रन्थ में श्लोक तथा दूसरी में पद संग्रह किये गये हैं। इनकी भाषा ब्रज थी।

गदाधर भट्ट—कृष्णाश्रयी शाखा के ये सरस कवि थे। इनके पदों में अत्यन्त ही मनोरमता पायी जाती है।

मीराबाई—मीराबाई का जन्म सं० १५६० के आस-पास माना जाता है। जोधपुर के पास कड़की इनकी जन्म-भूमि मानी जाती है। इनका विवाह उदयपुर के राजकुमार भोजराज के साथ हुआ था। थोड़े ही समय बाद ये विधवा हो गईं। शेष जीवन इन्होंने भक्ति में ही व्यतीत किया। अनेक बाधाओं के आने पर भी इन्होंने अपने पथ का त्याग नहीं किया। ये अधिकाधिक कृष्ण-भक्ति में लीन होती चली गईं। इन्होंने किसी विशेष ग्रन्थ की रचना नहीं की। किन्तु पदों की रचना की है, जिनका हिन्दी में महत्वपूर्ण स्थान है। तथा जिन्हें जन-साधारण बड़े चाव से गाते हैं। मीरा में आन्तरिक चेतना बड़ी तीव्र थी। अनुभूतियों से कारण मीराबाई के पदों में बड़ी ही मार्मिकता है। उनमें वेदना की मात्रा अत्यधिक थी। उनके पदों में विरह वेदना अधिक है। मीरा कृष्ण को ही अपना पति मानती थी और उन्हीं के प्रेम में पदों की रचना किया करती थीं। भारत के नर-नारियों में इनके पद अभी भी अत्यन्त प्रिय हैं। इनके नरसी का मायरा, गीत गोविन्द की टीका, रासगोविन्द और राग-सोरठ आदि चार ग्रन्थ हैं।

स्वामी हरिदास—ये अकबर के समकालीन थे। इन्होंने छन्दों और अलंकारों की ओर अधिक ध्यान दिया। इनके अनेक पद संग्रह हैं। इनमें से कुछ ही उपलब्ध हैं। 'हरिदास का ग्रन्थ', 'हरिदासजी के पद' तथा हरिदास की बानी' आदि ग्रन्थों में इनके पदों का संकलन है।

रसखान—ये पठान वंश के मुसलमान थे। 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'

में इस भक्त कवि का नाम आया है। इन्होंने वृन्दावन की यात्रा की थी। इनके पदों में भावों का प्रवाह अत्यधिक है तथा बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है।

अन्य कवि इन कवि गणों के अतिरिक्त मनमोहन, श्री भट्ट, व्यास जी ने भी कृष्ण भक्ति के पद लिखे हैं। ध्रुवदास भी एक कवि थे।

कृष्णाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों की रचनाएँ

सूरदास—सूरसागर, साहित्य लहरी।

नन्ददास—रस मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूप मंजरी, मान मंजरी, विरह मंजरी, श्याम सतसई, राम पंचाध्यायी, रुक्मणी मंगल, भँवर गीत सिद्धान्त, पंचाध्यायी, सुदामा चरित्र, दशम स्कंध।

कृष्णदास—भँवरगीत और प्रेम तत्व निरूपण।

परमानन्ददास—'परमानन्द सागर' इसमें ८३५ पद संग्रहित हैं।

चतुर्भुजदास—द्वादश यश, भक्ति प्रताप और हितजू को मंगल।

कुम्भनदास—
छीतस्वामी
गोविन्द स्वामी } —फुटकर पदों की रचना

हित हरिवंश—राधा सुधानिधि तथा हितचौरासी।

गदाधर भट्ट—फुटकर पदों की रचना।

मीराबाई—'नरसी का मायरा' गीत गोविन्द की टीका, रासगोविन्द और सोरठ के पद प्रसिद्ध हैं।

स्वामी हरिदास—हरिदास का ग्रन्थ, हरिदास जी के पद तथा हरिदास जी की बानी में पदों का संग्रह।

रसखान—प्रेम वाटिका और सुजान रसखान।

निरोत्तमदास—सुदामा चरित्र।

सगुणोपासक अन्य कवि

अब्दुल रहीम खानखाना—ये बादशाह के दरबारी कवि थे। इनके पिता का नाम बैरामखाँ था। इनके लिखे बरबै हिन्दी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये बड़े दानी पुरुष थे। रहीम का अनुभव बहुत गहरा था। उनके लिखे दोहे आज भी प्रत्येक की जिह्वा पर अंकित हैं।

उदाहरण :

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर॥

कवि गंग—ये अकबर के दरबारी कवि थे। अकबर ने इनको किसी दोहे पर

प्रसन्न होकर छत्तीस लाख रुपये का पुरस्कार दिया था। किसी कवि ने इनको तुलसी के बराबर माना है :

तुलसी गंग दुवौ भये, सुकविन के सरदार ।
जिनकें काव्यन में मिलै, भाषा विविध प्रकार ।

सेनापति—ये रीतिकालीन कवियों से टक्कर लेते हुए भक्तिकाल के कवि माने जाते हैं। इनके बारे में कहा जाता है कि इनका सम्बन्ध भी अकबर के दरबार से था। राम-भक्ति का वर्णन अति सुन्दर है। प्रकृति-चित्रण में तो कोई इनकी बराबरी में नहीं ठहरता।

अन्य कवि—नरहरि, बन्दीजन बीरवल और टोडरमल भी कवि थे। कुछ अन्यों में कवि छीहल, मनोहर, होरीलाल, बनारसीदास-पुहकर आदि भी कवि हुए हैं।

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

(सं० १७०० से १९०० तक)

प्रश्न ९—रीतिकाल का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी विशेषताएँ बतलाइए। या रीतिकाल किसे कहते हैं ?

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उत्तर मध्यकाल-रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। काल का नाम उस समय की मूल्य प्रवृत्ति के आधार पर काल रखा जाता है। जिस तरह वीर-भावना की प्रधानता के कारण आदि युग वीरगाथा काल कहलाता है और भक्ति की प्रधानता के कारण पूर्व मध्यकाल भक्ति नाम से जाना जाता है। उसी तरह उत्तर मध्यकाल के काव्य के रीतिबद्ध हो जाने अर्थात् लक्षण ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों और नियमों के आबद्ध रचनाओं के समय की रीतिकाल का नाम दिया गया। यह काल सं० १७०० से १९०० के मध्य माना जाता है, जबकि काव्य-रीति अर्थात् छन्द रस, अलंकार आदि की ओर उन्मुख होने वाली युग प्रवृत्ति के कारण इस साहित्य युग को 'रीतिकाल' कहा गया।

सामाजिक परिस्थिति एवं प्रभाव

मुसलमानों के आक्रमण समाप्त हो चुके थे। इस काल का प्रारम्भिक समय जहाँगीर और शाहाजहाँ का शासन काल रहा जबकि उत्तरार्ध औरंगजेब के कट्टरपन और कठोर शासन का समय रहा है। इन दोनों परिस्थितियों ने दो धाराओं को जन्म दिया। प्रथम शृंगार-प्रधान रचनाओं की धारा तथा दूसरी वीर रस से ओत-प्रोत काव्य-धारा।

जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में काल एवं साहित्य को विशेष प्रोत्साहन मिला। देशी राजा अपने सीमित दायरों में रहकर विलास का जीवन व्यतीत करने लगे थे। मुगल राज्य दरबारों का विलास सभी को प्रेरणा देने लगा था। चूंकि

यह काल शांति का था, अतः सभी का ध्यान काव्य और संगीत की ओर हो चला था। मुगल दरबारों में कवियों, कलाकारों और संगीतज्ञों का बड़ा आदर होता था। शृंगारी भावना अपनी चरम सीमा पर थी। राज्याश्रय पाकर कला और संगीत की उन्मादिनी धारा सारे देश में प्रवाहित होने लगी।

रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में औरंगजेब के क्रूर एवं अत्याचार शासन के नीचे हिन्दू जनता कराह उठी। उसके अमानवीय व्यवहार ने हिन्दुओं के मन में आत्म-गौरव के भाव पुनः जागृत कर दिये। कवियों ने युग की इस प्रवृत्ति को हृदय के नेत्रों से पहिचान लिया। उन्होंने जनता के आक्रोश को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। काव्य की यह दूसरी धारा-वीररस प्रधान थी।

संवत् १७०० से १६०० के बीच का समय एक ऐसा समय रहा जबकि मुख्य रूप से शृंगार रस की ही कवितायें की जाती रहीं। इस युग का कवि राज्याश्रय पाकर स्वयं भी विलास में डूब गया और अपने आश्रयदाता के लिए कामोत्तेजक रचनायें करता रहा। शारीरिक सौंदर्य और नख-शिख वर्णन ही मुख्य वर्ण्य विषय रहे। दूसरे प्रकार की प्रवृत्ति के अन्तर्गत वीरतापूर्ण कवितायें लिखी गईं।

इस काल की कविताओं में भावनाओं की अपेक्षा अलकारों की प्रधानता है। केशवदास जी का सम्पूर्ण काव्य अलंकार-प्रधान काव्य माना जाता है। चिन्तामणि त्रिपाठी द्वारा लिखित 'काव्य प्रकाश' और 'काव्य विवेक' पुस्तकों के बाद रीति-साहित्य और भी तीव्र गति से बढ़ने लगा। अलंकार और शृंगार के आधार पर काव्य रचना की बाढ़ सी आ गई। युग की कवितायें आचार्यत्व और अलंकार के बोझ से लदी सी जान पड़ती है। इस काल के कवियों के सवैया और कवित्त का अधिक प्रयोग किया है।

रीति काल की प्रमुख विशेषताएँ

(१) इस काल के कवियों ने शृंगार को रसराज कहा और उसको वैसी प्रधानता भी दी। काव्य मे शृंगार की प्रधानता रही।

(२) साहित्य-निर्माण के साथ-साथ रस, अलंकार आदि काव्यांगों पर विस्तार से लिखा गया। इस काल की कविताओं में लक्षण और उदाहरण देने वाली कवितायें अधिक लिखी गयीं।

(३) इस काल में शृंगार के साथ वीररस की भी कुछ श्रेष्ठ रचनाएँ हुई हैं।

(४) कवित्त, सवैया और दोहा छन्दों का खूब प्रयोग हुआ। कवित्त विशेषकर वीररस से लिए प्रयोग में लाए गये, जबकि सवैया शृंगार और अरुण दोनों में प्रयुक्त हुए। बिहारी ने दोहे की कला का चरम विकास कर दि९लाया।

(५) इस काल की भाषा में ब्रज और अवधी का मिश्रण पाया जाता है। मुसलमानी दरबारों में फारसी शब्दों का अधिक प्रयोग दिखाई देता है। कवियों में कला के प्रति विशेष रुचि दिखलाई देती है।

(६) यह काल भाव की अपेक्षा कला-प्रधान रहा।

(७) इस काल के अधिकतर कवि राज्याश्रित होते थे, अतः वे आश्रयदाता की मनोदशा को पहिचानकर लिखते थे, अतः उस काल में कौलिकता का अभाव रहा।

रीतिकाल के प्रवर्त्तक कवि

रीतिकाल के प्रवर्त्तक कवि को लेकर एक विवाद है। अलग-अलग विद्वान रीतिकाल के प्रवर्त्तक कवि के रूप में भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। बहुत लोग केशव दास को इस काल का प्रथम आचार्य मानते हैं। वैसे तो केशव से पूर्व कृपाराम, गोप करनेस, आदि ने अलंकारों पर छोटी-छोटी रचनाएँ की थीं, किन्तु काव्यांगों का वास्तविक निरूपण केशव ने अपनी रचना 'कवि-प्रिया' और 'रसिक-प्रिया' में ही किया। केशव अलंकारवादी थे। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने रतन बावनी, जहाँगीर जस चन्द्रिका, वीरसिंहदेव चरित, रसिक-प्रिया, रामचन्द्रिका आदि ग्रन्थों की रचना की। रामचन्द्रिका में अलंकारों का चमत्कार और छन्दों की छटा दर्शनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मताधिकार रीतिकाल के प्रथम कवि केशव नहीं बल्कि चिन्तामणि ठहरते हैं। वे रसवादी थे और इनका प्रभाव रीतिकाल के अन्य कवियों पर होना स्वाभाविक था।

रीतिकाल के प्रमुख कवियों का जीवन परिचय-एवं साहित्य-साधना अगले पृष्ठों में दी जाती है।

चिन्तामणि त्रिपाठी—कानपुर जिले के अन्तर्गत तिकवाँ ग्राय के निवासी थे। ये चार भाई थे और चारों काव्य-रचना किया करते थे। चारों भाइयों के नाम इस प्रकार थे—१. चिन्तामणि त्रिपाठी, २. भूषण, ३. मतिराम, ४. जटाशंकर। चन्तामणि का कार्यकाल सं० १७०० के आस-पास माना जाता है। प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार प्रकार हैं—

१. काव्य-विवेक,
२. काव्य-प्रकाश,
३. कविकुल कल्पतरु
४. रामायण,
५. छन्द-विचार।

महाराजा जसवन्तसिंह—मारवाड़ के महाराणा जसवन्तसिंह का जन्म सं० १६८३ माना जाता है। इनके साहित्य में रीतिकाल के समस्त गुण विद्यमान हैं। छन्द एवं काव्य पर इन्होंने विस्तार से अध्ययन किया है। 'भाषा-भूषण' इनका प्रमुख ग्रन्थ है। अन्य उपलब्ध ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—अपरोक्ष सिद्धान्त, आनन्द विलास,

सिद्धान्त बोध, अनुभव प्रकाश और प्रबोध चन्द्रोदेय उल्लेखनीय हैं। इन्हें लक्षण ग्रन्थ माना जा सकता है। 'भाषा भूषण' इस दृष्टि से विवेचनापूर्ण रचना है। यह ग्रन्थ अलंकारों का भण्डार है। इनमें सच्चे कतित्व का अभाव था, परन्तु ये काव्य-रीति के पण्डित थे।

बिहारी—रीतिकालीन कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। बिहारी का जन्म स्थान ग्वालियर के पास वसुआ गोविन्दपुर और जन्म सं० १६६० माना जाता है। इनकी रचनाओं में शृंगार का श्रेष्ठ रूप निखर सका है। 'बिहारी सतसई' नामक ग्रन्थ में इनके ७०० दोहे संकलित हैं। हिन्दी-साहित्य का यह बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनके बारे में एक दोहा प्रसिद्ध है।

सतसइया से दोह , ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

मंझन—इनका कार्यकाल संवत् १७१६ माना जाता है। ये जैतपुर निवासी थे। अभी तक इनके ५ ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इन्होंने शब्दाडम्बर के स्थान पर भाव सौन्दर्य पर अधिक ध्यान दिया है। इनके प्रमुख ग्रन्थ हैं—'रसरत्नावली', रस-विलास जनक पचीसी, जानकी जू को ब्याह और नैन पचासा।

मतिराम—इनका जन्म संवत् १६७४ माना जाता है। ये 'चिन्तामणि' और भूषण के भाई थे। इनके लिखे हुए कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इनमें प्रमुख और प्रसिद्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं—रसराज, ललित-ललाम, छन्दसार, साहित्यसार, लक्षण, शृंगार अलंकार पञ्चाशिका और मतिराम सतसई। इनकी रचनाएँ चमत्कार से परे हैं। भाव और कला का समान निर्वाह हुआ है। ये कवि और आचार्य दोनों थे। इनकी भाषा गतिशील और मधुर भाव से युक्त है।

भूषण—भूषण को वीररस का कवि माना जाता है। रीतिकालीन कवियों में इनका श्रेष्ठ स्थान है। इनकी रचनाओं में भाव सौंदर्य के साथ रस और अलंकार का निरूपण भी हुआ है। इनकी रचनाएँ पाठकों को प्रभावित करने में पूर्ण समर्थ हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' माना जाता है। इस ग्रन्थ में अर्थालंकार का समान क्रम से प्रयोग किया है। इन्होंने ब्रजभाषा में वीर शिवाजी और छत्रसाल का ओजस्वी चित्रण किया हैं।

कुलपति मिश्र—कुलपति मिश्र मथुरा के चौबे थे और रीलिकाल के प्रमुख कवियों में से थे। ये बिहारी कवि के भानजे थे। संस्कृत के पण्डित थे। इन्होंने मम्मट के काव्य-शास्त्र का भाषानुवाद किया है। इनकी पुस्तकों में रसरहस्य, द्रोण-पर्व, युक्ति तरंगिनी तथा संग्राम-सार रहस्य प्रमुख हैं।

सुखदेव मिश्र—इनका काव्य-काल सं० १७२० से १७६० तक का माना जाता है। जन्म-स्थान कपिला था। इनके कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें वृत्त विचार छन्द विचार फाजिल अली प्रकाश, रसार्णन, शृङ्गार, लता, अध्यात्म प्रकाश, तथा दशरथराय

अधिक प्रसिद्ध है। इनकी भाषा में माधुर्य है तथा रीति ग्रन्थों की परम्परा ही मानी जाती है।

देव—देव का पूरा नाम देवदत्त था। इनका जन्म संवत् १७३० माना जाता है। जब इनकी अवस्था सोलह वर्ष की थी, इन्होंने 'भाव-विलास' ग्रन्थ की रचना की 'अष्टयाम' भी इसी काल में रच गया। ये अपने राज्याश्रय बदलते रहे हैं। भवानी दत्त के नाम पर 'भवासी विलास' राजा कुशलसिंह के नाम पर 'कुशल विलास' की रचना की। राजा द्वैतसिंह के नाम पर 'प्रेम चन्द्रिका' और भोगीलाल के आश्रय में "रस-विलास" ग्रन्थ लिखे। यहाँ से अलग होकर उन्होंने 'शब्द-रसायन' ग्रन्थ लिखा। इसके पश्चात् अकबर अलीखाँ के आश्रय में आपने 'सुख-सागर-तरंग की रचना की। इस कवि के कई ग्रंथ उपलब्ध हैं। आपके प्रमुख उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं—भाव विलास, अष्टयाम, भवानी विलास, सुजान विनोद, प्रेम-तरंग, राग रत्नाकर, कुशल विलास, देव चरित्र. प्रेम चन्द्रिका, जाति विलास, पावस विलास, रस विलास, काव्य रसायन (शब्द-रसायन) सुखसागर, तरंग वृक्ष-विलास, ब्रह्मदर्शन, पचीसी, तत्वदर्शन पचीसी, आत्मदर्शन पचीसी, जगद्दर्शन पचीसी, रसानन्द लहरी, प्रेम-दीपिका, सुमिल-विनोद, राधिका विलास, नीति शतक और नख-शिख, प्रेम-दर्शन।

देव की रचनाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है—एक भाग में विरुद्ध श्रृंगार की भावना है दूसरे में वैराग्य। देव प्रमुख रूप से श्रृंगार के ही कवि माने जाते हैं। देव कवि के साथ उच्चकोटि के आचार्य भी थे। इनकी भाषा अत्यन्त उत्कृष्ट और प्रभावकारी है।

रसलीन—रसलीन रीतिकाल के प्रमुख कवि माने जाते हैं। इनका अधिक साहित्य तो उपलब्ध नहीं है, किन्तु अंग दर्पण और रस प्रबोध इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। इनके कुछ दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें कवि ने श्रृंगार-भावना का निरूपण किया है।

पद्माकर भट्ट—इस काल के कवियों में पद्माकर का बहुत श्रेष्ठ स्थान है। इनका जन्म संवत् १८१० और जन्म-स्थान बाँदा माना जाता है। इन्हें काव्य-रचना की प्रेरणा अपने पिता से मिली थी। इन्होंने तन्त्र-साधना भी की थी। ये अपना राज्याश्रय हमेशा बदलते रहे हैं।

इनकी कविता में अद्भुत ओज और प्रसाद गुण हैं। इस प्रकार जनसाधारण में भी उनकी पहुँच हो सकी थी। इनके ग्रंथों में प्रमुख एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ इस प्रकार हैं—जगद्विनोद, पद्माभरण, प्रबोध पचासा, गंगा लहरी- हिम्मत बहादुर विरुदावली और भाषा हितोपदेश। पद्माकर को रससिद्ध कवि कहा जाता है। इन्होंने श्रृङ्गार के साथ वीर रस की भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। ये आचार्य भी थे। इनकी भाषा मंजी हुई और प्रवाहमयी है। अलंकारों का प्रयोग बहुत अधिक किया है।

घनानन्द—रीतिकालीन कवियो में इनका श्रेष्ठ स्थान है। इनका जन्म १७४६ के आस-पास माना जाता है। ये जाति के कायस्थ और पूर्ण वैष्णव थे।

दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के यहाँ रहते थे। इनके प्रमुख ग्रन्थों में सुजान सागर, कोकसार, विरहलीला, कृष्णकाण्ड और रस केलि बल्लरि आदि हैं। इनके अतिरिक्त कृष्ण-भक्ति का एक ग्रन्थ और उपलब्ध हुआ है। प्रिया प्रसाद, ब्रज व्यवहार, वियोगवेलि, कृपाकन्द निबन्ध, गिरिगाथा, भावना प्रकाश, गोकुल विनोद, धाम-चमत्कार, कृष्ण कौमुदी, नाम माधुरी वृन्दावन मुद्रा प्रेम पत्रिका तथा रस वसन्त आदि कविताएं कृष्ण भक्ति के इस ग्रन्थ में हैं। इनकी ब्रजभाषा शुद्ध तथा परिमार्जित थी। इन्होंने शृंगार के वियोग पक्ष पर अधिक लिखा है। 'सुजान' को सम्बोधित कर लिखी गई कविताएँ अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी हैं। इनके काव्य में विरह की सच्ची पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। इनके जैसा भाव गाम्भीर्य अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

गिरधर कविराय—रीतिकाल के इस कवि का जन्म संवत् १७७० के आस-पास माना जाता है। इस कवि ने गीतों की कुण्डलियाँ अधिक लिखी हैं। ये कुण्डलियाँ बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी हैं।

अन्य कवि—रीतिकाल के अन्य कवियों के नाम इस प्रकार हैं—राम, नेवा, लालकवि, आलम्. बैताल, गुरुगोविन्दसिह, श्रीधर, सुरति मिश्र, कवीन्द्र, उदयनाथ, श्रीपति, वीर कृष्ण कवि, रसिक सुमति, रांजन अली मुहिबखाँ (प्रीतम). भिखारीदास, भूपति राजा, गुरुदत्तसिह, तोषनिधि; दलपतिराय। बंशीधर, सोमनाथ, रघुनाथ, दुलह, कुमारमणि भट्ट, शम्भूनाथ मिश्र बैताल, सबलसिंह चौहान, बनवारी, सिवसहायदास, ऋषिनाथ, बैरीसालदत्त, रतन कवि, हरिनाथ, मनीराम मिश्र, चन्दन-देवकीनन्दन, महाराजा रामसिंह, मानकवि, थानकवि, बन्दीजन, बेनी प्रवीन, राजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) यशोदानन्द, करन कवि, गुरदीन पांडे, ब्रह्मदत्त, ग्वालकवि, प्रलय साही रसिक गोविन्द तथा कुछ अन्य भी रीतिकाल में ही माने जाते हैं। इन सभी को उतनी प्रसिद्धि नहीं मिल सकी जितनी पूर्व उल्लेखित कवियों को मिली है। इन कवियों का स्थानाभाव के कारक परिचय देना सम्भव नहीं है।

प्रश्न १०—भक्तिकाल और रीतिकाल की तुलना कीजिए।

भक्तिकाल यथा रीतिकाल का तुलनात्मक अध्ययन

भक्तिकाल	रीतिकाल
१. भक्ति काव्य में प्रबन्धात्मकता की प्रधानता है।	१. रीति काव्य पूर्णता मुक्तक है।
२. भक्ति काव्य का नायक भगवान है। राम और कृष्ण भगवान के रूप में मान्य हैं।	२ इस काल का नायक मनुष्य के रूप में माना गया है। कृष्ण को मानवीय माना गया है।
३. भक्ति काव्य धार्मिक साहित्य है। उसमें सम्प्रदाय भावना का पोषण किया गया है।	३. रीति कालीन काव्य साम्प्रदायिक नहीं है। उसमें स्वाभाविकता है।

४. भक्ति-काव्य का प्रेम ईश्वर के चरणों में समर्पण है। वह अलौकिक माना गया है।	४. रीति-काव्य में प्रेम की भौतिक अर्थात् प्रेम को स्त्री-पुरुष के साधारण प्रेम के रूप में स्वीकार किया गया है।
५. भक्ति काव्यों में प्रेम को ईश्वर के प्रति दिव्य भावावेश माना गया है।	५. रीति-ग्रन्थों में प्रेम को भोग्य और स्वतन्त्र विषय स्वीकार किया है।
६. इसमें दिव्य भावों की प्रधानता है।	६. इसमें काम-वासना और विलास-भावना प्रमुख है।
७. इन काव्यों का आधार सिद्धान्त तथा दर्शन है।	७. यह लौकिक आधार को मानता है तथा दर्शन आदि से मुक्त है।
८. भक्ति-काव्य में भावों और विचारों की प्रधानता है। विषय भक्ति है।	८. यह शैली और रूप-प्रधान काव्य है। कला का महत्व है।
९. भक्ति-काव्य ईश्वरोन्मुख है।	९. रीति-काव्य आश्रयदाताओं की कीर्ति गाथा है।
१०. यह काव्य भक्ति-प्रसार और आत्म निवेदन का साधन है।	१०. काव्य-कला का निरूपण और आश्रयदाता को प्रसन्न करने का साधन है।

रीतिकाल के साहित्य की प्रवृत्तियां :

रीतिकालीन साहित्य अध्ययन की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। यह विभाजन इस प्रकार है।

प्रथम—कथात्मक—किसी राजा के जीवन वृत्त के आधार पर काव्य-रचना। जैसे—छत्रसाल, शिवाजी, आदि पर कविताओं की रचना।

द्वितीय—कलात्मक काव्य—इस काव्य की रचनाओं में रस, छन्द और अलंकारों को प्रधानता दी गयी है। इस विभाग के कवियों ने लौकिक शृंगार भावना के आधार पर रीति-काव्यों की रचना की है।

तृतीय—वर्णन प्रमुख—इसमें नायिका भेद, नख-शिख-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि का समावेश है।

चतुर्थ—नीति विषयक रचनाएं—इसमें धर्म का विशद रूप से निरूपण किया गया है।

आधुनिक काल

(संवत् १८०० से आगे)

प्रश्न ११—अधुनिक काल का संक्षिप्त परिचय देकर उसकी विशेषताएं बतलाइए।

उत्तर—ऐतिहासिक परिस्थिति—

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ संवत् १८०० के पश्चात् माना जाता है। यह वह समय था जब यूरोपीय संस्कृति के प्रवेश ने भारतीय जीवन में उथल-पुथल मचाना प्रारम्भ कर दिया था। अंग्रेजों की शक्ति के सामने देशी राजा और नबाव क्रमशः परास्त होते चले गये। सन् १८५७ में स्वाधीनता के लिए राजाओं और नबावों ने अंग्रेजों के विरुद्ध खुला विद्रोह कर दिया। अंग्रेज इस क्रान्ति को दबाने में सफल रहे। जनता की शक्ति क्षीण हो गयी। अब उसमें और टक्कर लेने की शक्ति न रही। इसलिए देश में वैचारिक क्रान्ति का जन्म हुआ।

इस वैचारिक क्रान्ति को बल प्रदान किया मुद्रण-कला के विकास ने। अंग्रेज अपने साथ छपाई की मशीन भी लाए। उन्हें भी ईसाई धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए साहित्य-प्रकाशन की आवश्यकता की अनुभूति हुई। मुसलमानों ने अपने धर्म का प्रचार बुद्धिवाद के आधार पर न करके तलवार के जोर से करना पसन्द किया। अंग्रेजों ने अपने धर्म का प्रचार बुद्धिवाद के माध्यम से करना चाहा। इस बात ने नवीन साहित्य-निर्माण की दिशा को प्रेरित किया।

दूसरी ओर हिन्दू-समाज में भूषण और लाल ने हिन्दुत्व के रूप में जातीय जीवन का बीजारोपण कर दिया था, फिर भी जाति में नवीन चेतना का संचार नहीं हुआ था। भूषण के समय में हिन्दुओं को लाज रखने की दुहाई दी जाने लगी थी।

अँग्रेजों के आगमन और उनके संघर्षों के परिणामस्वरूप देश भर में एक व्यापक जागृति के दर्शन होने लगे। लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता आई और उनमें राष्ट्रीय चेतना का संचार हुआ। साथ ही उनमें नये विचारों और भावों को प्रकट करने की लालसा भी जाग्रत हुई।

ऐसे समय में महान् आत्माओं ने जन्म लिया। इन्होंने अपने प्रेरणात्मक उपदेशों से जन जीवन में नवीन चेतना का संचार कर दिया। राजा राममोहनराय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद ने अपने युग परिवर्तनकारी ओजस्वी विचार सबके सामने प्रकट किये। जनजागरण में इन महान् पुरुषों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा।

इसी समय में राष्ट्रीय आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ। तिलक, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषों ने इस आन्दोलन को दिशा और नेतृत्व दिया। इन्होंने समाज में व्याप्त अज्ञान, कुरितियों और निराशा दूर कर नये ढंग से सोचने, समझने और करने की प्रेरणा दी। इन समस्त परिस्थितियों ने रीतकालीन शृंङ्गार प्रधान कविता भावना को दबा दिया। कविता ने भी अपना नये ढंग से शृङ्गार किया। नवीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति में नवीन काव्यधारा का फूटना स्वाभाविक था। सर्व प्रथम यह चेतना भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र की नयी कविता के रूप में दिखलाई दी। राष्ट्र की पीड़ा और वेदना सर्व प्रथम इन्हीं के काव्य में प्रकट हुई।

आधुनिक काल की नवीन कविता के साथ ही खड़ी बोली का भी विकास होने लगा। वैसे खड़ी बोली का जन्म भारतेन्दुजी के पूर्व ही हो चुका था।

खड़ी बोली का विकास

रीतिकाल तक ब्रज और अवधी भाषा का प्रयोग ही किया जाता था। जब भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया तो एक बोली जो मेरठ के आस-पास बोली जाती थी, यवनों को अच्छी लगी, उन्होंने उसे अपना लिया। यह बोली वतमान खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप है। यह बोली उन दिनों में यवन सैनिकों द्वारा बोली जाने लगी। ये सैनिक इसे बड़ी सरलता से बोल लेते थे। इन यवन सैनिकों के कारण इस बोली में अरबी और फारसी के शब्द भी मिलने गये। इसने एक नया रूप धारण कर लिया, जिसे हिन्दवी के नाम से पुकारा जाने लगा। (उर्दू भाषा का रूप अरबी, फारसी और हिन्दवी का मिश्रित रूप है।) आगे चलकर जब इस हिन्दी में संस्कृत भाषा के तत्सम और कठिन शब्दों का समावेश हो गया तो इसे हिन्दुस्तानी कहा जाने लगा। इस हिन्दुस्तानी के अरबी, फारसी हिन्दुवी और संस्कृत भाषा के शब्दों का समावेश था। यही भाषा आगे चलकर हिन्दी खड़ीबोली के रूप में विकसित हुई। मेरठ के आस-पास बोली जाने वाली उस बोली का विकास तीन रूपों में हुआ—एक तो उर्दू के रूप में, दूसरी हिन्दी के रूप में और तीसरी हिन्दुस्तानी के रूप में।

रीतिकाल के अन्तिम चरण में काव्य में तो ब्रजभाषा का प्रयोग होता था, किन्तु धीरे-धीरे कम हो चला था। उसका स्थान मिश्रित खड़ी बोली लेती जा रही थी, जिसमें ब्रज और अवधी का मिश्रण था। गद्य के साथ ही खड़ी बोली का प्रारम्भिक विकास हुआ। इस गद्य भाषा को रूप देने वाले प्रारम्भिक चार लेखक माने जाते हैं। इन्होंने अपनी रचना में ठेठ हिन्दी' का प्रयोग किया है।

(१) **मुन्शी सदासुखलाल**—ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८०३ में हुआ था। ये उर्दू और फारसी के विद्वान थे। इन्होंने 'विष्णुपुराण' के आधार पर 'सुख सागर' की रचना है। इनकी भाषा काफी परिष्कृत और शुद्ध थी। इन्होने अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग नहीं किया।

(२) **इंशा अल्लाखाँ** -इनका रचनाकाल सं० १८५५ और १८७५ के बीच का माना जाता है। इनकी लिखी हुई 'रानी केतकी की कहानी' अधिक प्रसिद्ध है। वे चाहते थे कि हिन्दी में और किसी अन्य भाषा का समावेश नहीं किया जाय। उन्होंने हिन्दी को अरबी, फारसी, संस्कृत तथा गँवारू भाषा के प्रभाव से बचाया। कुछ संस्कृत शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है। इनकी भाषा में प्रवाह अधिक था। इसी कारण आगे चलकर हिन्दी के प्रयोग की सम्भावनाएँ बढ़ीं।

(३) **लल्लूलालजी 'लाल कवि'** इनका जन्म स० १८२० माना जाता है। सं० १८६० से फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता के अध्यापक गिल क्राइस्ट की इच्छा

पर इन्होंने 'प्रेमसागर' की रचना की थी। ये भी अरबी-फारसी और तुर्की भाषा के शब्द प्रयोग के विपरीत थे। फिर भी कुछ शब्द आ ही गये हैं। ये संस्कृत शब्दों का प्रयोग गद्य में करते थे।

इन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग गद्य में किया है। उन्होंने आगरे में 'संस्कृत प्रेस' के नाम से एक प्रेस भी खोला था। खड़ी-बोली के प्रारम्भिक निर्माताओं में लल्लूलाल जी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(४) **सदल मिश्र**—गद्य-लेखकों में इनका स्थान महत्वपूर्ण है। वे भी लल्लूलाल जी के साथ फोर्ट विलियम कालेज में अध्यापक थे। अपने मित्रों से प्रेरणा पाकर इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की।

अन्य प्रयत्न—ईसाई मिशनरियों ने भी अपना प्रचार लोक-बोली में प्रारम्भ कर दिया था। इस समय ईसाई धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद भी प्रारम्भ हो गया था। इनकी भाषा में जहाँ तक बन सका अरबी और फारसी के शब्दों से बचाया गया है। इन्होंने तथा अन्य लोगों ने प्रेस की भी स्थापना की। इन सबका परिणाम यह हुआ कि खड़ी-बोली का स्वतन्त्र रूप दिखाई देने लगा। सं० १८८४ में पं० जुगलकिशोर ने कानपुर से एक पत्र 'उदंत मार्त्तण्ड' नाम से निकाला। यह हिंदी का प्रथम पत्र माना जाता है।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द—हिंदी के विकास-मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए उन्होने एक पत्र निकाला। इसका नाम 'बनारस अखबार' था। आगे चलकर इन्होंने इसे उर्दू में तो बदल दिया, परन्तु इसकी लिपि देवनागरी ही रखी। इस युग के समय में अनुवाद बड़े लोकप्रिय रहे हैं। कालीदास लिखित मेघदूत, शकुन्तला और रघुवंश को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इनके ही समय में दूसरा पत्र 'सुधाकर' भी निकला।

राजा लक्ष्मणसिंह—ये 'सितारे हिन्द' के समकालीन थे। इनके प्रमुख अनुवाद ग्रन्थों में शकुन्तला और रघुवंश प्रमुख हैं।

नवीनचन्द्र राय—इन्होंने पंजाब में रहकर हिन्दी की अपूर्व सेवा की है। ये हिंदी के कट्टर सकर्थक थे। इन्होंने 'ज्ञान प्रदायिनी' समाचार पत्र भी निकाला था।

पं० श्रद्धाराम फुल्लौरी—इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। आत्म-चिकित्सा, तत्व दीपक, धर्मरक्षा, उपदेश संग्रह, शतोपदेश आदि धार्मिक ग्रंथ प्रमुख हैं। इन्होंने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास भी लिखा था। इसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास माना जाता है।

इस प्रकार हिंदी अनेक अवरोधों और बाधाओं को पार करती हुई विकास की ओर बढ़ रही थी। गद्य-साहित्य के माध्यम से हिंदी का परिमार्जन हो रहा था। हिंदी का प्रचार भी व्यापक रूप से बढ़ गया था। यह हिंदी का संक्रमण काल था। इसी समय उत्तरी भाग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं ठाकुर जगमोहनसिंह का आविर्भाव

हुआ। इन्होंने गद्य को वास्तविक रूप दिया, पद्य को वास्तविक रूप दिया। पद्य रचना में भी खड़ी-बोली का कुछ प्रयोग किया। आधुनिक काल के इस समय में हिन्दी भाषा और साहित्य का तीव्रगति से विकास हुआ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती – आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का हिन्दी के विकास में भारी योगदान रहा है। यह समय जागरण का था। हिन्दू भी अपने कार्य को नवीन चेतना और बुद्धिवाद के आधार पर खड़ा करना चाहते थे। स्वामी दयानन्द ने (सं० १८८१) हिन्दी में अपने ग्रन्थ लिखे। उनके प्रमुख ग्रन्ध सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेयादिभाष्य भूमिका, संस्कार-विधि हैं। इन्होंने हिन्दी एवं संस्कृत का बहुत प्रचार किया। पण्डित श्रद्धानन्द जी ने हिन्दी में जीवनी और उपन्यास लिखने की नींव डाली।

इस काल में गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ। किसी एक प्रवृत्ति को इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति नहीं कहा जा सकता। अध्ययन की दृष्टि से इस काल को नियमानुसार उप-विभागों में विभाजित किया जा सकता है।

आधुनिक-काल

(१) पूर्व भारतेन्दु युग—सन् १८७५ से पूर्व।
(२) भारतेन्दु-काल—सन १८७५ से १९०० तक।
(३) द्विवेदी युग—सन् १९०० से १९२५ तक।
(४) शुक्ल या विकास युग—सन् १९२५ से १९४७ तक।
(५) नवीन युग—स्वतन्त्र्योत्तर साहित्य काल सन् १९४७ से……।

भारतेन्दुकाल से साहित्य की अनेक विधाओं का लगातार विकास होता गया। गद्य-पद्य, उपन्यास-कहानी, लघु-कथा, निबन्ध, आलोचना, काव्य, नाटक, एकांकी आदि सभी का विकास हुआ।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से हिन्दी-साहित्य के नये युग का श्रीगणेश होता है। अँग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण समाज में जिस नवीन चेतना का विकास हुआ था, उसे भारतेन्दु जी ने अच्छी तरह समझ लिया था। उसी के अनुरूप उन्होंने हिन्दी को विचार-अभिव्यक्ति का सबल माध्यम बनाने का प्रयत्न किया। काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा ही चल रही थी, परन्तु उसमें नवीन विचारों की झलक आने लगी थी। भारतेन्दु जी ने समाज-सुधार और देश-भक्ति की प्रेरणा दी। भारतेन्दु जी तथा उनकी मण्डली के कवियों की वाणी अकाल, भुखमरी, टैक्स, अदालत की लूट-खसोट, मातृ-भाषा का महत्व, कुरीतियाँ, अन्ध विकास आदि की ध्वनि सुनाई देने लगी थी। उन लोगों ने राष्ट्रीय और देश-प्रेम की भावना का संचार किया था। इस युग के प्रमुख कवियों में अम्बिकादत्त व्यास, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन हैं।

द्विवेदी युग

देश का इतिहास तीव्र गति से बदला जा रहा था। समाज में नवीन चेतना मुखरित होने लगी। राष्ट्रीयता और सामाजिकता की प्रवृत्ति तेज गति से बढ़ रही थी। साहित्य भी इतिहास की गति का अनुगमन कर रहा था। ब्रजभाषा के स्थान पर काव्य में खड़ी बोली का प्रवेश हो गया। इसी काल में हिन्दी के प्रथम आचार्य के रूप में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और श्रीधर पाठक हैं। हिन्दी-विकास मार्ग पर गतिशील रही। द्विवेदी जी ने हिन्दी में सस्कृत छन्दों का प्रयोग किया। इस युग की कविता पर स्वतन्त्रता-संग्राम और गांधीजी की विचारधारा का विशेष प्रभाव हुआ। इस युग के प्रमुख महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' और 'साकेत' हैं। इस काल के प्रथम कवि मैथिलीशरण गुप्त, राष्ट्रीय कवि माने गये। गुप्त जी के अतिरिक्त पं० श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लोचनप्रसाद, पांडेय, ठाकुर गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के प्रमुख कवियों में हैं।

वर्तमान युग

हिन्दी का विकसित होता हुआ स्वरूप इस काल में विशेष सुन्दरता ग्रहण करने लगा। उसमें विविध प्रवृत्तियों और विधाओं के दर्शन होने लगे। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर काव्य-क्षेत्र में छायावाद और रहस्यवाद ने प्रवेश किया। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा के नाम विशेष महत्वपूर्ण हैं। छायावाद में प्रकृति को आलम्बन रूप में ग्रहण किया गया, इस काल में गीतिकाव्य का चरम उत्कर्ष हुआ। इनके बाद कवियों ने कविता को छन्द के नियमों से मुक्त कर दिया। छायावादी विचारधारा का प्रमुख महाकाव्य 'कामायनी' इसी समय लिखा गया। इस काल में भी ब्रज-भाषा में सरस काव्य की रचनाएँ हुईं। इन कवियों में थे—सत्यनारायण कविरत्न, जगन्नाथदास रत्नाकर और वियोगी हरि।

आधुनिक काल की काव्य-धारा में हमें अनेक प्रवृत्तियों, वादों और भावधाराओं के दर्शन होते हैं। राजनीति और सामाजिक क्षेत्र में जिस तरह क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे और अनेक तरह के वादों और प्रवृत्तियों का विकास हो रहा था उसी तरह साहित्य भी अनेक स्वरूप धारण करने लगा। समाज और राजनीति का स्पष्ट प्रभाव साहित्य पर उभरने लगा। राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, आत्माभिमान, समाजवाद, छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और प्रवृत्तियों का भी साहित्य पर प्रभाव पड़ा। मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव होना भी स्वाभाविक था। प्रगति और मजदूर समस्याओं को लेकर हिन्दी में रूसी साहित्य का प्रभाव बढ़ने लगा। राजनीति का साम्यवाद ही साहित्य में प्रगतिवाद कहलाया। प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख रूप से नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', रामेश्वर शुक्ल अंचल आदि के गाम

उल्लेखनीय हैं। काव्य-क्षेत्र में एक नवीन धारा का प्रवेश हुआ जिसे प्रयोगवाद कहा गया। इस धारा का नेतृत्व किया अज्ञेय ने। इसके अन्य प्रमुख कवि हैं गिरजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र आदि। रामधारीसिंह दिनकर, पं० दिनकर, पं० माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आरि राष्ट्रीय विचारधारा के कवि हैं।

आधुनिक युग की नवीन धारायें

प्रश्न १२—आधुनिक काल की नवीन धारा की विशेषतायें बतलाइये।

अथवा

प्रश्न १३—यथार्थवाद, छायावाद, रहस्यवाद प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, हालावाद की विशेषतायें बतलाइए।

उत्तर—भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी का काल आधुनिक काल का सूर्योदय माना जाता है। नये युग के नये संकेत उभरने लग गये थे। फिर भी प्राचीनता की झलक तो थी ही। कविता अपने बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द हो जाने को अकुला रही थी। इस युग के बारे में गुप्तजी का मत है :

सूर्य का यद्यपि नहीं आना हुआ,
किन्तु देखो रात्रि का जाना हुआ।

इसके पश्चात् प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी आदि प्रमुख विभूतियों के माध्यम से नवयुग की नवीन चेतनाओं, विधाओं और प्रवृत्तियों ने हिन्दी-साहित्य में प्रवेश पाकर उच्च स्थान ग्रहण कर लिया। साहित्य की धारा स्वातन्त्र्योन्मुखी हो गयी। स्वतन्त्रता की यह प्रवृत्ति छन्द और भावों दोनों में ही दिखायी दी। निराला जी ने तो छन्द को पूर्ण मुक्त कर दिया।

छन्द और कला के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन के साथ ही विषय के क्षेत्रों में भी नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ। इन नवीन प्रवृत्तियों में दुःखवाद, मानव गौरव और व्यक्तिवाद, स्वदेश प्रेम, बन्धन से मुक्ति, प्रकृति के प्रति नया दृष्टिकोण, आत्माभिव्यंजना आदि हैं, जो आधुनिक युग की विषयगत विशेषतायें हैं।

आज का हिन्दी-साहित्य विभिन्न काव्य-धाराओं के साथ अविराम गति से विकास कर रहा है। आधुनिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार हैं :

यथार्थवाद

हिन्दी-साहित्य में इस वाद का उदय भारतेन्दुजी के समय से ही है। यथार्थ चित्रण इसकी विशेषता है। वर्तमान काव्य में इस वाद की प्रधानता है। भारतेन्दु जी ने भारत की दयनीय दशा का कितना मार्मिक यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है :

"रोवहु सब मिलि भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

इन्होंने अपनी वाणी में लोकतन्त्र का लक्ष्य प्रकट किया और समाज में नवीन चेतना का संचार किया। हिन्दी-भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का क्रमशः विकास हुआ। व्यक्तिवाद, गीत-तत्व, प्रबन्ध एवं अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव से प्रकृति, में मानवीकरण आदि का प्रयोग होने लगा।

आधुनिक काव्य ने रूढ़ियों और परम्परागत अन्ध-विश्वासों का विरोध किया और जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया। वेदना, निराशा, सर्वोदय आदि काव्य के दार्शनिक आधार बने। कलात्मक चित्रण, संगीत, रंग और ध्वनि का नये रूप में उभरकर काव्य की शोभा बढ़ाने लगा।

लौकिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण इसकी विशेषता रही। प्रिय-प्रवास के कृष्ण और राधिका क्रमशः महापुरुष और लोक-सेविका के रूप में चित्रित किये गये। साधारण देवी देवताओं के प्रति तो इस समय कवि कोई ध्यान नहीं देते। स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले क्रांतिकारियों और सत्याग्रही वीरों पर कविता की रचनाएँ हुईं। मध्ययुगीन वीरों को भी काव्य का विषय बनाया गया, शोषित मानवता के प्रति तीव्र संवेदना का भाव प्रकट हुआ।

छायावाद

राजनीतिक क्षेत्र में निराशा का वातावरण छा गया। अँग्रेजी शासन की सुदृढ़ता, आतंकवादियों की असफलता और प्रथम महायुद्ध के परिणाम इस निराशा के कारण थे। मन में कसक थी और देश के प्रति करुणा का भाव था। आधुनिक कविता नये आदर्शों की खोज में छायावाद और रहस्यवाद की ओर मुड़ गई।

परिस्थितिवश राजनीति में आध्यात्मिकता को महत्व दिया जाने लगा। अतः कविता भी अन्तर्मुखी होकर भग्न मन को अभिव्यक्त करने लगी। कवि इस काल्पनिक जगत में खो गये। छायावाद और रहस्यवाद का मूल आधार यही है। आगे चलकर इन भावनाओं पर दार्शनिकता का आवरण चढ़ाया गया, जिससे कविता कलात्मक रूप धारण कर सकी।

छायावाद कवि इन्द्रियगोचर जगत का भाव जगत के साथ समन्वय करता है। वह प्रकृति के तत्वों में प्राणों की छाया देखता है। आशा-निराशा पीड़ा आदि उनकी कविताओं में रहते हैं। इन कविताओं में कवि का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से अभिव्यक्त होता है। छायावादी कविता में जड़ पदार्थ भी आत्मीय भाव धारण कर लेते हैं, इस तरह प्रकृति मनुष्य की सहचर बन जाती है। वह प्रकृति में भी मानवीय भावों की छाया देखता है। जैसे :

सौरभ का फैला केश जाल,
करती समीर परियाँ बिहार,
गीली केसर मद झुम-झूम,
पीते तितली के नवकुमार,

मर्मर का मधुर संगीत छेड़,
देते हैं हिल पल्लव अजान । —पन्त

आचार्य शुक्ल जी ने छायावाद शब्द छाया, अर्थात् छायाभास से निकला हुआ बतलाया है । प्रसाद जी का मत है कि संस्कृत काव्य में 'छाया' शब्द मोती की आभा के रूप में प्रयुक्त हुआ है । उनका कहना है कि—"अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतन्त्र लावण्य रखता है ।"

'छाया' स्त्रियों के गुणों में से एक है, जिसका अर्थ है—सौम्यता सूचक सूक्ष्म भंगिया, जिससे उसके लावण्य में वृद्धि होती है—आकर्षण बढ़ जाता है, यहाँ छाया का वही अर्थ है, जो उसके महत्व् में वृद्धि कर दे । छायावाद में पलायनवाद के दर्शन तो होते हैं, किन्तु प्रसाद कामायनी, महादेवी के गीत, पंतजी का सारा साहित्य आशावाद की प्रेरणा देता है । इस वाद पर अन्य भाषाओं के साथ पाश्चात्य कविता का प्रभाव भी पड़ा, किन्तु हिन्दी-भाषा में उनकी मौलिकता भी है ।

रहस्यवाद

रहस्यवाद छायावाद से आगे का विषय है, जबकि छायावादी प्रकृति में मानवी भावों की छाया देखना है । रहस्यवादी प्रकृति और मनुष्य के भीतर निहित सत्ता के साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है । रहस्यवाद में विषय की प्रधानता होती है, जबकि छायावाद में शैली की । दोनों ही भाव-प्रधान हैं, किन्तु रहस्यवाद छायावाद से आगे है । रहस्यवाद नया नाम है । प्राचीन शास्त्रों में पराविद्या को रहस्य और गुप्त कहा गया है । जैसे :

जो दीखे सो तो है नहीं, है सो कहा न जाई ।
सैना बैना कर समझाऊँ गूँगे का गुड़ भाई ॥ —कबीर

चूँकि रहस्यवाद भाव-प्रधान है, अतः उसकी अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से ही हुई है । इसमें सर्व व्याप्त के साथ तादात्म्य की भावना मुख्य होती है । यहाँ व्यक्त में अव्यक्त की ओर संकेत होता है । इसके प्रति जिज्ञासा अद्वैत भावना, उत्सुकता आदि का समावेश होता है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी,
प्रिय के अनन्त अनुराग भरी ।

प्रगतिवाद

जब समाज में शोषण और उत्पीड़न हो, श्रम कौड़ियों के मोल बिकता हो, लाचार मनुष्य रोटी के अभाव में मर रहा हो, प्रकृति अविरुद्ध हो, तब उस दशा में कवि चुप कैसे बैठ सकता है । वह उत्पीडन के गीत गायेगा और राष्ट्र को नई चेतना देकर शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने को ललकारेगा । यही प्रवृत्ति प्रगतिवाद का मूल आधार है ।

आचार्य शुक्ल जी ने कवियों का ध्यान आकर्षित करते हुए काव्य का जीवन

से सम्बन्ध स्थापित किया। कवियों ने अपना कर्त्तव्य कर दिखाया। पन्त जी जैसे छायावादी कवि भी इस साहित्य की ओर झुके। महादेवी जी ने बंगाल के अकाल पर कविता लिखी। उनके गद्य-साहित्य में लोक-हित की भावना है। वतमान प्रगतिवाद इसी प्रेरणा का परिणाम है। इन वाद के कवियों ने शोषित वर्ग की ओर विशेष ध्यान दिया।

प्रगतिवाद जीवन की यातनाओं को भुलाकर सौन्दर्योपासना को ठीक नहीं मानता। वह शोषित-पीडित श्रमिक वर्ग को काव्य का आलम्बन बनाता है। इसके विपरीत विचार रखने वालों को प्रतिक्रियावादी कहा जाता है।

प्रगतिवाद वर्ग विहीन समाज के सिद्धान्त का पक्ष लेता है। इसे दूसरे शब्दों में मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप कहा जा सकता है। इसमें सौन्दर्य और कला का विरोध नहीं है बल्कि वह समाज के दुःख-दारिद्र को दूर करना चाहता है।

प्रगतिवादी साहित्य मुख्य रूप से रूसी एवं मार्क्सवादी साहित्य से प्रभावित है। एक उदाहरण :

जहाँ लहलहाती खेती पर करिन्दे मंडराते ना,
सजी रास की ढेरी पर लालाजी घात लगाते ना।
ब्याज चुकाते ही न जवानी गई व्यतीत जवानों की,
लाल रूस का दुश्मन साथी दुश्मन सब इन्सानों का।

—शिवमंगलसिंह 'सुमन'

इसके अतिरिक्त अंचल, गिरजाकुमार माथुर, नरेन्द्र शर्मा, महेन्द्र भटनागर त्रिलोचन, वीरेन्द्र जैन आदि प्रगतिवादी कवि हैं।

प्रगतिवादी चाहते हैं कि समाज से शोषण समाप्त हो और पूँजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन हो। इसके लिए वे वर्ग संघर्ष और मानवतावाद का समर्थन करते हैं। इन कवियों ने जन-साधारण की भाषा और शैली में रचना की। वे मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर समाज की नई रचना चाहते हैं।

प्रसादजी ने 'कंकाल' उपन्यास लिखकर प्रगतिवादी विचारधारा का पोषण किया। महाकवि निरालाजी ने कहानी, कविता उपन्यास आदि लिखकर इसे सुदृढ़ बनाया। पंतजी ने 'रूपाभ' नामक प्रगतिवादी मासिक पत्र निकाला। प्रेमचंद जयशंकर प्रसाद, पंत निराला आदि ने प्रगतिवाद को आगे बढ़ाया। आगे के नये और युवकों कवियों में नरेन्द्र, सुमन, रांगेयराघव, दिनकर, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० दिनेश, नागार्जुन, यशपाल आदि प्रमुख हैं।

प्रगतिवादी काव्य में मुख्य रूप से प्रगतिवादी वर्ग के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग से घृणा, मार्क्सवादी विचारों का गुणगान, परम्परावाद का विरोध, क्रांति की प्रेरणा, नारी स्वातन्त्र्य आदि की भावनाओं का समावेश है।

कुछ उदाहरण : (१) धन्य मार्क्स चिरतिमिराच्छन्न,
पृथ्वी के उदय शिखर पर।

तुम त्रिनेत्र ज्ञानचक्षु—
से प्रकट हुए प्रलयंकर ॥
(२) वह नस्ल जिसे कहते मानव—
कीड़ों से आज गई बीती ।
बुझ जाती तो आश्चर्य न था,
हैरत है पर कैसे जाती ।
(३) उठ समय से मोरचा ले,
धूल धूसर वस्त्र मानव,
देह पर फबते नहीं हैं,
देह के ही रक्त से तू, देह के कपड़े रंगाले ॥

प्रयोगवाद

हिन्दी-साहित्य में प्रयोगवाद काव्य का नया रचना-विधान है । इसका रूप अभी निखर नहीं पाया है । प्रयोगवादी कवि की भाषा सरल और अँग्रेजी शब्दों से युक्त होती है ।

प्रयोगवादियों की मान्यता है कि कविता के लिए विषय समाप्त नहीं हो गये हैं । नई परिस्थिति में नये विषयों का विधान होना चाहिए । नई परिस्थितियों ने नये विषय उपस्थित किये हैं । ऐसी स्थिति में प्रयोगवाद हिन्दी का एक नया रूप, नया विधान और नई शैली लेकर उपस्थित हुआ । नये प्रयोगों का समावेश हुआ । इस नई प्रवृत्ति को प्रयोगवाद कहते हैं ।

नये युग की तीन विचार शक्तियाँ हैं । इन तीनों के प्रवर्तक हैं—मार्क्स डर्विन और फ्रायड । मार्क्स ने जहाँ नये सामाजिक मूल्यों की स्थापना की, वहीं फ्रायड ने कामवासना जन्य कुण्ठाओं का रहस्य खोला । डर्बिन ने विकासवाद के सिद्धांत की स्थापना की । ये विचार भौतिक विज्ञान और युद्धों ने, नई समस्याओं और नये भावों को जन्म दिया है । ऐसी स्थिति में उनकी अभिव्यक्ति के लिये नये साधन अथवा माध्यम की आवश्यकता है । प्रयोगवाद इन सबको अपनी विषयवस्तु बनाता है । वह हर क्षेत्र में नवीनता चाहता है । कविता के क्षेत्र में बहुत विस्तार हो गया है ।

प्रयोगवाद में पुराने अलंकारवादियों की तरह कौतुक का स्थान है । ये नये प्रयोगों द्वारा विस्मय की सृष्टि करते हैं । इनकी भाषा में अँग्रेजी शब्दों और मुहावरों का प्रयोग भी दिखलाई देता है ।

इस वाद के प्रमुख कवि हैं श्री अज्ञेय । अन्य कवियों में प्रभाकर माचवे, गजानन माधव, मुक्तिबोध, भारतभूषण अग्रवाल, गिरजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेशकुमार, रघुवीर सहाय, शकुन्तला माथुर, शमशेर बहादुर आदि प्रमुख हैं । एक नवीन धारा और उभरी है, जिसे 'नई कविता' कहते हैं । प्रयोगवाद की यह नई धारा धर्मवीर भारती के नेतृत्व में विकसित हो रही है । जनपदीय शब्दों के व्यवहार के कारण इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है ।

एक उदाहरण— जिसके बालों में बनावटी कर्ल्स नहीं हैं,
जिसकी आँखों में सुनहरी चटख चोखी है,
थर्मामीटर के पारे सी अनायास भावनाएँ जिसमें चढ़ती-उतरती हैं।

हालावाद

हिन्दी-साहित्य में हालावाद का आगमन फारसी से हुआ। फारसी के हालावादी-साहित्य के प्रसिद्ध कवि उमर खैयाम हुए हैं। जिनकी रुबाइयों का अँग्रेजी अनुवाद बहुत लोकप्रिय हुआ। हिन्दी में इसका अनुवाद मैथिलीशरण गुप्त और बच्चनजी ने किया।

इस्लाम के सूफी साम्प्रदायवादी अपने को शरीयत मानने वाले कट्टर मुसलमानों से भिन्न समझते हैं। उनके मतानुसार शरीयत वालों के विचार संकुचित होते हैं। अत: वे इनकी अपेक्षा रिन्दों (मजहब को न मानने वाले फक्कड़ लोग) की भावना को अधिक महत्व देते हैं। ये लोग हाला (शराब) को आध्यात्मिक मस्ती का संकेत समझते हैं।

हरिवंशराय वच्चन जी हिन्दी में हालावाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने उमर खैयाम की मधुशाला और स्वतन्त्र रूप से अपनी मधुशाला की रचना की। उन्होंने मधुशाला, मधु कलश, निशा-निमन्त्रण, एकान्त सगीत और आकुल अन्तर नामक कई पुस्तकें लिखीं। वच्चन जी के काव्य में एक विशेष आकर्षण है। इनके बाद श्रीकृष्ण चन्द्र की मदशाला और श्री रंजनी की टीशाला की रचना की। पं० हृषीकेश चतुर्वेदी ने भारतीय संस्कृति के अनुकूल 'विजया वाटिका' नामक रचना लिखी। 'सप्त-तरंगिनी' बच्चन जी की कविताओं का नवीन संग्रह है।

कुछ उदाहरण (१) मधुवाला का राग नहीं अब
अंगूरों का बाग नहीं अब,
अब लाहे के चने मिलेंगे,
दाँतों को अजमाओ,
आगे हिम्मत करके आओ।
—**बच्चनजी**

(२) प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर,
युद्ध-क्षेत्र में दिखला भुजबल,
रहकर अविजित अविचल प्रतिपल,
मनुज पराजय के स्मारक हैं मठ, मस्जिद, गिरजाघर,
प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर।

प्रश्न १४—नई कविता, नवगीत और आज की कविता की विवेचना कीजिए।

उत्तर—'तीसरे सप्तक' (१९५९) का प्रकाशन प्रयोगवाद की नई कविता में विकास और विस्तार के अन्तर्गत आता है। नई कविता रूपवाद (फ़ार्मलिज्म) से मुक्ति का प्रयत्न है। 'धुरी की खोज' 'लघुमानव पर बहस' और आधुनिकता—'बोध

की पहचान' के साथ 'नई कविता' (१९५४) पत्रिका के प्रकाशन से नई कविता का 'नई' विशेषण, विशेषण मात्र न रहकर संज्ञा बन जाता है। आधुनिकता और सम-सामयिकता में विशेषण और विवेचन से नई कविता में मानव-मूल्यों की वाद-मुक्त तलाश है। प्रयोगवाद की सायास नवीनता के परे कविता में सहजता और खुलापन है। व्यक्तिवादी घुटन के स्थान पर जीवन और मनुष्य के प्रति एक नया यथार्थवादी दृष्टिकोण है। भाषा और शिल्प में भी परिवर्तन हुआ। नई कविता में ताजगी के साथ ही भाषा अभिव्यक्ति का भी अकृत्रिम और स्वाभाविक, किन्तु सामान्य जीवन के यथार्थ से जुड़ा रूप उजगार होता है। डॉ० जगदीश गुप्त, कुँवरनारायण, विजय देवनारायण राही, लक्ष्मीकान्त वर्मा, बालकृष्ण राव, नरेश महेता गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर बहादुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सैना, रघुवीरसहाय, केदारनाथसिंह आदि नई कविता के प्रमुख कवि गण हैं।

नवगीत—नई कविता के समानान्तर अनुभूति और संवेदना की भूमि में नवगीत की शुरुआत परम्परागत गीत के विकास की घटना है। प्रेम और सौन्दर्य का समकालीन यथार्थ के सम्पर्क गीत-रूप परम्परागत ढर्रे से हटकर नितान्त नये और ताजा रूप में सामने आया पिष्टपेषित रूमानी और कल्पना-प्रधान अभिव्यक्ति के स्थान पर नवगीत आधुनिक संवेदना का रूप अनौपचारिक लय में प्रकट हुआ। नवगीत में ऊब और अकेलेपन की कारुणिक चेतना भी मार्मिक ढंग से उजागार हुई है। लोक-गीतों की लयात्मकता से प्रभावित ये नवगीत सामाजिक चेतना के अधिक निकट है। सर्वश्री वीरेन्द्रमिश्र, सोम ठाकुर, शम्भूनाथसिंह, ठाकुर प्रसादसिंह, माहेश्वर सुलभ, नरेश सक्सैना, नईम आदि प्रमुख नवगीतकार हैं!

आज की कविता-सातवें दशक के प्रारम्भ में ही मोह-भंग का सिलसिला शुरू होता है। आश्वासनों की भाषा और व्यवस्था से उत्पन्न असन्तोष, युवा कविता का आक्रोश, विद्रोह और निषेध के नये तेवरों से जोड़ देता है। 'तारसप्तक' के कवि मुक्तिबोध युवकों के लिए 'सहसा ही नहीं सकारण महत्वपूर्ण हो जाते हैं। राजनीतिक व्यवस्था की विडम्बना तथा सामाजिक जीवन की वंचना का उद्घाटन करते हुए आज की कविता आम आदमी की जमीन पर आ गई है। शालीनता और रूढ़ सौन्दर्भ बोध के स्थान पर आक्रमण और व्यंग्यात्मक भगिमा इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। राजकमल चौधरी का 'मुक्ति-प्रसंग' इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। सातवें दशक की कविता एक दशक में कालावधि ही में अनेक आन्दोलन और संज्ञाओं के दौर से गुजरी है। राजकमल चौधरी के अतिरिक्त श्रीकान्त वर्मा, कैलाश बाजपेयी, अशोक बाजपेयी, धूमिल, लीलाधर भागुड़ी, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, कुमार विकल, दूधनाथसिंह, चन्द्रकान्त देवताले, विष्णु खरे, सौमित्र, मोहन, कमलेश, देवेन्द्रकुमार आदि समकालीन युवा कवि हैं। महिला लेखिकाओं में इन्दु जैन, नीलमसिंह, मणिका मोहिनी, कान्ता, ममता आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार हिन्दी-कविता ने भारतेन्दु-युग से लेकर आज तक समय और परिस्थितियों, दबावों और परिवर्तनों के साथ अनेक मोड़ देखे हैं। कविता आज

त्रासदी की घटना बन चुकी है। सभ्यता और जीवन-निष्ठा के बदलावों के साथ आगे भी कविता के काव्य और रूप परिवर्तन होते रहेंगे। पहले कविता विशेष कर्म और कवि गौरवशाली व्यक्ति होता था। आज कविता सामान्य आदमी के उत्पीड़न का आख्यान बन गई।

नई कविता, प्रयोगवाद, अकविता

प्रश्न १५—नई कविता, प्रयोगवाद और अकविता का स्वरूप एवं अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—आधुनिक जीवन के संत्रास, संकट, उन्माद, तनाव आदि की अभिव्यक्ति करने वाली नवीन काव्य-धारा का युग विगत महायुद्ध काल के समय से आरम्भ होता है। सन् १९४३ से 'तार सप्तक' के प्रकाशन तक इसकी बीजावस्था थी। दूसरा सप्तक और 'प्रतीक' के प्रकाशन तक उसकी पल्लवनावस्था रही। सन् १९५३ के पश्चात् हम इसकी विकासावस्था का युग मान सकते हैं। यहीं से वस्तुतः 'नयी कविता' अपनी आँखें खोलती है। निराला से आरम्भ होकर दुष्यन्त कुमार, अजीत, केदारनाथसिंह, कीर्ति चौधरी, नागार्जुन और सिद्धनाथ कुमार तक नवीन काव्य-धारा का सीधा रास्ता है। प्रयोगवाद इसी की एक बलवती धारा है।

'नयी कविता' और प्रयोगवाद दो पृथक काव्य प्रवृत्तियाँ हैं। 'नयी कविता' जीवन के कतिपय मूल्यों में विश्वास करनी है और इन्हें लेकर चलती भी है। इसके विपरीत प्रयोगवाद समस्त काव्यमय मूल्यों को अस्वीकार करता है। एतद्शतत्व अस्वीकार करना ही उसका आग्रह है। वह नित्य नवीन का समर्थक है। हिन्दी-साहित्य का वर्तमान युग, 'नयी कविता' का युग, 'प्रयोग वाद' का युग सन् १९६० के साथ समाप्त हो जाता है।

'प्रयोगवाद' का कवि कविता को केवल एक हुनर मानता है। उसके अनुसार जो भी व्यक्ति तेजस्वी तथा अध्यवसायी है, वह मजे में कविता कर सकता है। वह कवि को अवितारी न मानकर एक अतिवाद को स्वीकार कर बैठा। वह कवि को केवल अभ्यासी मानकर चलता है। परन्तु वह यह भूल गया कि अभ्यास का फल भी उन्हें ही मिलता है जो जन्म से ही कुछ होते हैं।

'नयी कविता' प्रयोगवाद का विकास है या नहीं. यह विवाद का विषय है। परन्तु 'नयी कविता' प्रयोग का आरम्भ है, यह निर्विवाद है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ 'प्रयोगवाद' का आरम्भ माना जा सकता है। यद्यपि 'तार सप्तक' की भूमिका मे उसके सम्पादक अज्ञेय ने यह सफाई दी है कि 'तार सप्तक' किसी साहित्यिक आन्दोलन अथवा प्रवृत्ति विशेष द्वारा प्रेरित नहीं था और न उसके कवि प्रयोववादी ही थे, तथापि 'सप्तकों' के आधार पर 'प्रयोगवाद' नामक काव्यात्मक आन्दोलन एक वास्तविक तथ्य के रूप में उजागर है और एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप से प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके प्रवर्त्तक अज्ञेय हैं। 'प्रयोगवाद' हिन्दी-कविता के आधुनिक इतिहास की एक वास्तविकता है, जिसकी प्रवृत्तियाँ, उपलब्धियाँ और

सीमायें सहज ही पहचानी जा सकती हैं। यह कथन सर्वथा सत्य है कि प्रयोगवाद हिन्दी कविता की वह धारा है जिसमें अज्ञेय के अनुसार नये सत्यों या नयी यथार्थताओं का बोध भी है, उन सत्यों के साथ नये रागात्मक सम्बन्ध भी।

कवि और कविता का स्वभाव और परिवर्तन अथवा प्रयोगवाद की प्रवृत्ति का प्रारम्भ सन् १९३८ में प्रकाशित 'रूपाभ' में प्रत्यक्ष हो गया था। 'दिशान्तर' के सम्पादकों का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि 'तार सप्तक' में उपलब्ध व्यंग्य-विद्रुप की प्रवृत्ति और अनुभूतियों के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति का सम्बन्ध 'यदि तार सप्तक' की पूर्व प्रवृत्तियों से जोड़ लिया जाय, तो इसमें असंगत कुछ नहीं है।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों ही छायावाद की प्रतिक्रिया में विकसित हुए। प्रयोगवाद में छायावाद के अन्तर्विरोध अधिक गहरे हैं। ये अन्तर्विरोध 'प्रगतिवाद' में भी थे। प्रगतिवाद की अपनी सीमाएँ थीं। अतएव इन अन्तर्विरोधों के होते हुए भी सन् १९३८ में कविता के स्मभाव में एक परिवर्तन आया। 'तार सप्तक' ने उसे एक पूर्ण रूप प्रधान कर दिया। डॉ० नामवरसिंह ने ठीक ही लिखा कि—"समकालीन संकट की स्वीकृति, मानसिक विभाजन का प्रतिरोध और यथार्थवाद यथातथ्य काव्य-भाषा का निर्माण—ये तीनों कार्य सन् १९३८ के आस-पास शुरू हो गये थे। सिद्धान्त के स्तर पर छायावादी भावुकता, काल्पनिकता और आदर्शवादी बेफिक्री से भरी अल्हडता की निस्सारता सिद्ध हो चुकी थी। आवश्यकता थी तो उसे सामूहिक प्रभाव शाली रूप देने की। १९४८ में 'तार सप्तक' का प्रकाशन इसी आवश्यकता की पूर्ति है।'

अज्ञेय ने सीधे संवेदन को किशोर कविता का लक्षण माना है, जबकि सीधा संवेदन काव्य का प्रयोजन है। इस प्रकार प्रयोगवाद की असंगतियों को अज्ञेय की देन बहुत कुछ उपयुक्त ही है। हाँ, एक बात द्रष्टव्य है। सन् १९४३ में प्रकाशित 'तार सप्तक' में राहों के आत्मान्वेषण की बात कहीं जाने लगी। बस यहीं से 'नयी कविता' का आरम्भ हो जाता है। इसी समय अज्ञेय ने नई कविता संज्ञा का प्रयोग किया, यथा—"मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि नयी कविता की—जिसके लिए कुछ 'प्रयोगवादी' शब्द अपूर्ण और पूर्वग्रह युक्त जान पड़ता है। मूल प्रवृत्तियाँ इसी देश की हैं।" (प्रयोगशील कविता, परिसंवाद, 'प्रतीक' जून १९५१)

इस प्रकार 'दूसरे सप्तक' के साथ नयी कविता का आरम्भ हुआ और डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित नयी कविता पत्रिका के जन्म के साथ इसको प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

'नयी कविता विकासशील धारा है—लोकरंजन काव्य का प्राण है। हिन्दी की आदिकालीन कविता श्रेष्ठ सामन्त वर्ग तक सीमित थी और भक्तिकाल में कबीर आदि की निर्गुण काव्यधारा शूद्र-वर्ग तक व्याप्त रही। परन्तु हिन्दी की सगुण काव्यधारा ने जन-मानस को आप्लवित कर दिया और इसका श्रेय पक्ष समस्त समाज के कल्याण को अपने अंक में लेकर चला। रीतिकाल में आकर लोक-कल्याण की धारा फिर कुछ क्षीणकाय हो गई और वह राजदरबारों की प्रवृत्ति व्यक्त करने लगी। आधुनिक

काल में भारतेन्दु युग में फिर वह विस्तार को प्राप्त हो गयी, परन्तु प्रगतिवाद तक आते-आते वह सर्वहारा वर्ग में सीमित होकर रह गई। इसके पश्चात् प्रयोगवाद के युग में कविता का विषय बाबू-वर्ग एवं नगरों की गन्दगी हो गया, परन्तु लोक कल्याण वाले पक्ष को उसने प्रयोगशीलता के नाम पर अस्वीकार कर दिया। 'मानववाद' की आवाज उठाकर 'नई कविता' ने काव्य के श्रेय पक्ष का पुनरुद्धार किया। इस प्रकार जो काव्यधारा प्रगतिवाद के युग के पश्चात् अवरुद्ध हो गयी थी, वह 'नई कविता' के रूप में पुनः प्रवाहमान् हो उठी है। 'प्रयोगवाद' हिन्दी काव्यधारा से निकल भागने वाली एक उप-धारा थी। वह आकर्षित तो करती थी, किन्तु आश्वस्त नहीं। 'नई कविता' हिन्दी की कविता को स्वाभाविक विकास की ओर अग्रसर करती है। प्रयोगवादी कवि बहुत कुछ इस प्रकार की बातें कहने लगे थे कि मैं अजनबी हूँ, संसार से निर्वासित, अतीत से निर्वासित, अपने आपसे निर्वासित। स्वतन्त्रता निर्वासन है। मुझे स्वतन्त्र होकर भी जीने का दण्ड मिला है।

प्रयोगवाद के अन्तर्गत वस्तु और शैली दोनों ही क्षेत्रों में प्रयोगशीलता को आग्रह के साथ ग्रहण किया गया। नवीन के आकर्षण एवं राहों के अन्वेषण के मोह के कारण 'प्रयोगवाद' सैद्धान्तिकता में उलझकर रह गया और रागात्मकता से उसका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। क्षणवाद, संशयवाद, लघुमानववाद, अस्तित्ववाद, युद्धों की विभीषिका और स्वयं कविता के अनेक छोटे-छोटे खेमे और सम्प्रदाय प्रयोगवाद के ही परिणाम हैं। इन समस्त विसंगतियों के निराकरण के संकल्प को लेकर 'नयी कविता' का जन्म हुआ, परन्तु वह कविता नई न होते हुए भी नयी कविता' ही बनी रही।

अकविता

नई कविता की रूढ़ियों और विषयवस्तु से ऊबकर बीसवीं शती के सातवें शतक में अकविता का आन्दोलन सामने आया। उसने कविता के समस्त परम्परागत बन्धन तोड़ दिये। एक प्रकार नई कविता कथ्य, फार्म, संगीत, ध्वनि तथा बिम्बों की अवहेलना कर नये प्रयोगों की ओर बढ़ रही है। इसका निषेध यहाँ तक बढ़ गया है कि इसे **अकविता, ताजी कविता तथा एब्सर्ड** कविता के नाम से पुकारा जाने लगा। एब्सर्ड कविता या अकविता का निम्न उदाहरण दृष्टव्य है :

बिब्रोध, प्रतीपात्म्य, अन्त्य, वीयायन, लोनक्त।
(मुद्राराक्षस)

इस कविता के सम्बन्ध में कवि का निम्न वक्तव्य भी अकविता के ही समान है :

"लोग अब तक ऐसी कृतियों के आदी रहे हैं, जो कहीं न कहीं उनके अनुभव या संकल्प से आये हुए तत्व-जगत की प्रतिकृति लगें। ऐसी कृतियों पर रचनायें क्यों नहीं हो सकतीं, जो इनसे बाहर की हों? और एक बार और समझ में आने का मतलब किसी ने सोचा है। समझ, ना समझी की एक मात्रा के अलावा कुछ नहीं।"

इस अकविता के **लिग्वातलपोतवाद, अन्यथावाद**, युयुत्सावाद आदि नाम भी सुनाई पड़ते हैं। इनके पीछे कोई ठोस आधार और मान्यता नहीं है। ये सब ऐसे प्रयोग हैं, जो एब्सीडिटी को भी मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयास हैं।

प्रमुख विधाएँ

निबन्ध

प्रश्न १—हिन्दी-साहित्य में 'निबन्ध का इतिहास प्रस्तुत कीजिये ।

अथवा

प्रश्न २—हिन्दी-निबन्ध के विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।

उत्तर—यद्यपि प्राचीन संस्कृत और प्राकृत साहित्य में निबन्ध तथा प्रबन्ध शब्दों का प्रयोग चिरकाल से मिलता है. पर जिस अर्थ में आजकल इन शब्दों का प्रयोग हो रहा है, उस अर्थ में पहले कभी न था, इसलिए **डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'** ने निबन्ध लेखन की परम्परा का आरम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से मानने पर ही जोर दिया है और **डॉ. रामविलास शर्मा** ने भी स्पष्ट: कहा है—"भारतेन्दु-युग में पत्र-साहित्य ने जो उन्नति की उससे निबंध-रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला ।'

प्रारम्भिक निबन्ध—वास्तव में प्रारम्भिक निबंध अधिकांशतः मासिक या साप्ताहिक पत्रों के लिए लिखे गये थे, अत: वे न केवल आकार में संक्षिप्त थे अपितु तत्कालीन और सामाजिक और धार्मिक समस्याएँ ही उनमें अंकित की गयी हैं, यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि विचारकों ने हिन्दी-निबन्ध साहित्य के इतिहास को स्थूल रूप में भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग तथा आधुनिक युग नामक तीन कालों में विभाजित करने का प्रयास किया है परन्तु इस दिशा में यह कभी न विस्मरण करना चाहिए कि इस प्रकार का विभाजन केवल सुविधा की दृष्टि से ही किया गया है अन्यथा न तो सभी लेखक युग-निर्माताओं का अनुसरण करते हैं और न एक प्रवृत्ति ही किसी निश्चित काल तक चलती है । हाँ, इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि भारतेन्दु-युग निबंध के आविर्भाव का युग है, द्विवेदी-गुग में इसका परिमार्जन हुआ और आधुनिक-युग में उसमें प्रौढ़ता आ गई है तथा वह अपने चरम उत्कर्ष के निकट पहुँचने में सक्षम भी हो पा रहा है । सुविधा की दृष्टि से हम भी हिन्दी-निबंध-साहित्य के इन्हीं तीन युगों—भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग और आधुनिक युग—को स्वीकार कर हिन्दी-निबंध-साहित्य के विकास पर विचार करेंगे ।

भारतेन्दु युगीन निबन्ध साहित्य—यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि भारतेन्दु से कुछ पूर्व ही राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'राजा भोज का सपना' नामक निबंध लिखा था और वह निबंध चार्ल्स लैम्ब के निबंधों की भाँति है, जिसमें एक कल्पित कथा लेकर मनुष्य के मिथ्या दंभ व कीर्ति-लिप्सा का अत्यन्त रोचक ढंग से उद्घाटन किया गया है, फिर भी सृष्ठ रूप से हिन्दी-निबंध-

साहित्य के प्रवर्त्तक भारतेन्दु जी ही माने जाते हैं। चूँकि भारतेन्दु-युग गद्य का प्रारम्भिक काल था अतएव इस युग में स्वाभाविक ही प्रौढ़ता व गांभीर्य की अपेक्षा निबंधों में जिन्दादिली, मनोरंजन एवं चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही विशेष रूप से झलक उठती है, पर इतना अवश्य है कि सारहीन कोरी तड़क-भड़क की अपेक्षा निबंधकारों ने सजीवता पर अधिक ध्यान दिया है और निबंधों में वैयक्तिक विशिष्टताओं, हास्य-विनोद व व्यंग्य का समावेश भी कुशलतापूर्वक किया गया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि वैयक्तिकता का अर्थ केवल इतना ही है कि निबंधों में लेखक के व्यक्तित्व की पूर्ण छाप थी पर वह व्यक्ति सम्बन्धी न थे।

निबन्ध-साहित्य के इस प्रारम्भिक युग के निबंधकारों में भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', लाला श्री निवासदास, केशवराम भट्ट, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी और बाबू बालमुकुंद गुप्त आदि की गणना की जाती है तथा डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों में "जहाँ तक निबंधों की रोचकता और काव्य-गुण-सम्पन्नता का प्रश्न है, वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युगीन निबंध-साहित्य अति उत्तम है। कहा गया है कि 'गद्य कवियों की कसौटी है' यह सत्य है और इसी प्रकार यह भी सत्य है कि 'निबंध गद्य-लेखकों की कसौटी है।' एक अच्छे निबंध-लेखक की गद्य-शैली में कुछ विलक्षण और विशिष्ट गुण रहते हैं। भारतेन्दु-युग के निबंध लेखकों में ऐसे गुण स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं।

द्विवेदी युग का निबंध-साहित्य—यह तो सर्वविदित ही है कि आधुनिक हिन्दी के उन्नायक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ ही हिन्दी-गद्य का परिमार्जन प्रारम्भ हुआ और गद्य के विविध अंगों की समृद्धि के अनेक प्रयत्न किए जाने लगे। अतः स्वाभाविक ही इस युग में निबंध-साहित्य का भी अत्यन्त व्यापक विस्तार हुआ तथा विचारात्मक, भावात्मक, एवं वर्णनात्मक सभी प्रकार के निबंधों का प्रचलन हुआ। इस प्रकार द्विवेदी युग में प्रायः उन सभी भावनाओं, विचारों, शैलियों व साहित्य-विधाओं का विकास और प्रचार हुआ, जिनका सूत्रपात भारतेन्दु-युग में हो गया था, अतः स्वाभाविक ही इस युग में हिंदी निबंध-साहित्य में विषय, शैली व विचारधारा की दृष्टि से विकास परिलक्षित होता है।

विचारकों ने द्विवेदी-युग को निबंध-रचना की दृष्टि से हिंदी-साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण माना है और इसका मूल कारण यह है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा गंभीर साहित्यिक निबंधों की परम्परा का उद्घाटन हुआ है। यों तो अब तक निबंधों में देश की परम्परागत भावनाओं, एवं त्यौहार आदि विषय तो रहते थे पर द्विवेदी युग में नवीन विषयों की ओर निबंधकारों का ध्यान गया है।

कदाचित् यही कारण है कि गंगाबख्श सिंह ने द्विवेदी युगीन निबंध-साहित्य का मूल्यांकन करते हुए यह मत व्यक्त किया है—"द्विवेदी-युग में हिंदी निबंधों का

क्रमिक विकास देखने को मिलता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के साधारण पाठक के लिए लिखे गए निबंधों से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल के उच्चकोटि के विचारात्मक निबंध देखने को मिलते हैं। यदि द्विवेदीजी के निबंध बातों के संग्रह के रूप में देखने को मिलते हैं तो आचार्य शुक्ल के निबंधों में दार्शनिक की भाँति गूढ़ एवं सूक्ष्म विश्लेषण की प्रवृत्ति मिलती है। पंडित माधवप्रसाद मिश्र के सामान्य भावात्मक निबंधों की यदि एक ओर रचना हुई है तो दूसरी ओर वियोगीहरि, रायकृष्णदास के भावात्मक निबंधों के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं....।''

द्विवेदी-युग के लेखकों ने जीवन और साहित्य के सभी क्षेत्रों से निबन्धों के विषय चुने। यदि एक ओर राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक भावनाओं को निबन्धों में प्रश्रय मिला तो दूसरी ओर साहित्य के विभिन्न अंगों की विवेचना उपस्थित करने के लिए भी निबन्धों की रचना हुई।......'लेखकों ने कभी भौतिक जगत के मूर्त्त पदार्थों को निबंध का विषय बनाया तो कभी मनोविज्ञान सम्बंधी सूक्ष्म भावों पर निबंध प्रस्तुत किए गये। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक विषयों पर लिखे गए निबंध हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है। वास्तव में स्थायी और सामाजिक तथा सामान्य और विशेष सभी प्रकार के विषयों पर निबंधों की रचनाएँ प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति इस युग के निबंधकारों में मिलती है.......।'

द्विवेदी-युग के निबंधों का उद्देश्य केवल मनोरंजन अथवा चमत्कार-प्रदर्शन न होकर, पाठक वर्ग का ज्ञान-सम्बर्द्धन तथा रुचि परिष्कार भी रहा है। ज्ञान-विस्तार की प्रेरणा के वशीभूत होकर ऐतिहासिक, पुरातत्व विषयक, आलोचनात्मक निबंधों का श्री गणेश इसी युग में हुआ। रुचि परिष्कार की दिशा अत्यधिक अपनाने से लेखकों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रबल हो उठी, जिससे इन निबंधों में कहीं-कहीं हृदय को उत्तेजित करने वाली सजीवता का अभाव-सा मिलता है। परंतु उस युग के निबंधकारों को अपने उद्देश्य में अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई अतएव महत्ता उसी में है।

द्विवेदी युगीन उल्लेखनीय निबंधकारों के नाम इस प्रकार हैं—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, सरदार पूर्णसिंह, मिश्रबंधु, गोपाल राम गहमरी, चंद्रधर शर्मा, गुलेरी, बदरीनाथ भट्ट, कृष्णबिहारी मिश्र, श्यामसुन्दरदास, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, रामदास गौड़, गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, मन्नन द्विवेदी, वेंकटेश नारायण तिवारी, आयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध,' रामचंद्र शुक्ल, डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, माधवराय सप्रे, पद्मसिंह शर्मा आदि इनमें से कई ऐसे हैं जिन्होंने लिखना तो इसी युग में प्रारम्भ किया पर वास्तव में वे द्विवेदी-युग और आधुनिक युग के मध्य एक कड़ी का कार्य करते हैं, अतः उनकी प्रतिभा का परिष्कार आधुनिक युग में हुआ। वस्तुतः ''आचार्य शुक्ल ऐसी महान् प्रतिभाओं में से हैं जिनके कि हिंदी-निबंध जगत में पदार्पण करने से निबंध-साहित्य में एक प्रकार का

नव-जीवन-सा आ गया और जो आधुनिक युग का निबंध-साहित्य बिषय तथा शैली की दृष्टि से अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया हैं, उसका बहुत कुछ श्रेय उन्हें ही है।'

आधुनिक निबन्ध-साहित्य— हमारा आधुनिक निबंध-साहित्य विचार प्रधान है और 'जिस प्रकार भारतेन्दु-युग के निबंधों में एक उल्लास और भावात्मक विशेषता पाई जाती है तथा द्विवेदी युगीन निबंधों में सूचनात्मक ज्ञानवर्द्धकता एवं उपदेशात्मकता का पुट है, उसी प्रकार वर्तमान निबंध मुख्यतया आलोचनात्मक हो हैं और साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समालोचना ही इन निबंधों में विशेष दृष्टिगोचर होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य रूपों के निबंध नहीं देख पड़ते या उनका लिखना बंद हो गया है परन्तु बात यह है कि आजकल विचारात्मक और समालोचनात्मक निबंधों की अधिकता है।' साथ ही डॉ० गुलाबराय का यह भी कहना है—'भाषा और शैलियों की दृष्टि से भी वर्तमान युग पिछले दोनों युगों से अधिक सम्पन्न है। विषयों के अनुकूल भाषा के अनेक रूप इस युग में देखे जा सकते हैं, किंतु अधिकांश लेखकों का झुकाव संस्कृतनिष्ठ भाषा लिखने की ओर विशेष रहा है, प्रगतिशील लेखक भी इसका अपवाद नहीं हैं, यद्यपि उनकी भाषा में उर्दू का मेल बहुत मिलाया गया है फिर भी संस्कृतनिष्ठता बनी रही है ; एक दो लेखकों को छोड़कर। भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का भी पहले से अधिक विकास हुआ, शब्द जैसे नई शक्ति लेकर भाषा में आये। भाषा को एकरूपता देने का प्रयत्न और अधिक हुआ लेकिन उसे द्विवेदी-युग की शिथिलता, रुक्षता, प्रभावहीनता तथा प्रभावहीनता से बचाकर। भाषा के ही साथ अनेक शैलियों का भी विकास हुआ, विषय की विवधता से भी इसमें योग मिला। विश्लेषण, विवेचन, तार्किकता, विलक्षण वचन-भंगी हृदय के योग के साथ शैली की प्रधान विशेषताएँ बनीं।

आधुनिक काल के प्रमुख निबंधकारों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, माखनलाल चतुर्वेदी, डॉ० गुलाबराय, प्रेमचंद, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, जयशंकर प्रसाद, पदुमलाल बख्शी, वियोगी हरि, रायकृष्ण दास, डॉ० रघुबीर सिंह, शिवपूजन सहाय, चतुरसेन शास्त्री, सियारामशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', हरिशंकर शर्मा, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी, डॉ० वीरेन्द्र, वर्मा, जैनेन्द्र, नन्ददुलारे वायपेयी, डॉ० नगेन्द्र, वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, इलाचंद्र जोशी, डॉ० सत्येन्द्र, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, राहुल सांकृत्यायन, परशुराम चतुर्वेदी, यशपाल, डॉ० भगीरथ मिश्र, डॉ० रांगेय राघव, डॉ० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चोहान, श्रीराम शर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० विनयमोहन शर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी का निबंध-साहित्य दिन-प्रति-दिन प्रगति के

पथ पर अग्रसर होता जा रहा है पर यहाँ यह भी स्मरण रखना होगा कि उनकी सम्पन्नता के हेतु हमारे निबंधकार को सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों को ओर भी प्रतिभा गतिशील करनी चाहिए।

उपन्यास

प्रश्न ३—हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का विकास प्रस्तुत कीजिए ?

उत्तर—'निबन्ध लेखन' भाग में पढ़िये।

प्रश्न ४—हिन्दी-साहित्य में कहानी का विकास बतलाइये।

उत्तर—'निबन्ध-लेखन' भाग में पढ़िये।

एकांकी

प्रश्न ५—हिन्दी एकांकी के क्रमिक विकास का परिचय दीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—एकांकी नाटक की उत्पत्ति, विकास एवं विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—अंग्रेजी-साहित्य में एकांकी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो कथा प्रचलित है, उससे भी यह बात सिद्ध होती है। देखिए "अंग्रेजी में एकांकी की रोचक कहानी है। जिन दिनों वहाँ लम्बे-लम्बे नाटकों का प्रचलन था और दर्शक रात्रि में भोजन के उपरान्त नाटकघरों में रात-रात भर नाटक देखने के लिए तैयार होकर आते थे, उन दिनों नाट्यशाला के प्रबन्धकों को प्रबन्ध-सम्बन्धी एक बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती थी। जो लोग रात को बड़ी देर में भोजन करने के अभ्यासी थे, वे नाटक प्रारम्भ होने के उपरान्त आते। नाटकघर के प्रबन्धक सबको सन्तुष्ट रखना चाहते थे। अतः जो लोग ठीक समय पर आ जाते थे उनको संतुष्ट रखने के लिए कुछ ऐसे खेलों की व्यवस्था की गई जिनका मूल नाटक से कोई सम्बन्ध न हो। अतः दर्शकों की प्रतीक्षाकाल में जो अतिसाधारण कोटि का अभिनय दिखाया जाता था, उसे पटोत्तोलक (curtain-raisers) कहते थे। ये ही छोटे-छोटे अभिनय आधुनिक एकांकी के पूर्वज हैं।"

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये त्यों-त्यों छोटे-छोटे पटोत्तोलक अधिकाधिक रोचक बनते गए। ये लघुनाटक इतने मनोरंजक होते गये कि बड़े नाटकों की अपेक्षा इन लघु नाटकों की ओर लोगों की रुचि बढ़ती गई। अक्टूबर सन् १९०३ ई० की बात है, जब लुई एन० पार्कर्स ने डब्ल्यू-डब्ल्यू जेम्स की छोटी कहानी 'मंकीज पॉ' को पटोत्तोलक के रूप में उपस्थित किया तो दर्शकों में अपार आनन्द छा गया। उस दिन भीड़ ने प्रसन्नता के वेग में मूल नाटक देखने के लिए समय नष्ट करना उचित नहीं समझा। सारी भीड़ नाटकघर को छोड़कर चल पड़ी। इससे नाटकघर के प्रबन्धों को बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने बड़े नाटकों की रक्षा के लिए कर्टनरेजर का बहिष्कार किया। इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा। एक तो इन लघु नाटकों की कला स्वतन्त्र रूप से विक-

सित होने लगी, दूसरे बड़े नाटकों के आश्रय पर इनका निर्भर न रहा। इस प्रकार आज का युग उसी अर्थ में एकांकी नाटकों का युग माना जा सकता है, जिस अर्थ में वह कहानी, गीतिकाव्य और मुक्तकों का युग है।

वस्तुत: हिन्दी एकांकी के उद्भव के सम्बन्ध में विचारकों में बड़ा भारी मतभेद है और डॉ० नगेन्द्र की दृष्टि में "हिन्दी एकांकी का इतिहास गत दस वर्षों में सिमटा हुआ है, पर डॉ० सत्येन्द्र ने एकांकी का सूत्रपात भारतेन्दु से माना है और प्रो० रामचन्द्र शर्मा ने भी भारतेन्दु को ही एकांकी का जन्मदाता कहा है लेकिन डॉ० सोमनाथ गुप्त, जयशंकर प्रसाद के 'एक घूँट' से एकांकी नाटकों का प्रारम्भ मानते हैं, परन्तु श्रीरामनाथ 'सुमन' ने डॉ० राम कुमार वर्मा के एकांकी संग्रह 'चारुमित्रा' की भूमिका में डॉ० रामकुमार वर्मा को ही हिन्दी एकांकी का जन्मदाता कहा है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि डॉ० सरनाम सिंह शर्मा, स्व० ललिताप्रसाद सुकुल व श्री सद्गुरुशरण अवस्थी एकांकी नाटक का उद्गम संस्कृत नाट्य-साहित्य से मानते हैं और डॉ० रामचरण 'महेन्द्र' ने भी अपने शोधप्रबन्ध 'हिन्दी एकांकी : उदभव और विकास में वैदिक अभिनयों को हिन्दी-एकांकी का पूर्वज माना है पर प्रो० शिवनाथ का स्पष्टतया यही मत है कि "वर्तमान युग के एकांकी नाटकों का मूल भारत में प्राचीन काल में ढूँढ़ना ठीक नहीं है।"

स्मरण रहे; डॉ० कोतमिरे ने हिन्दी एकांकी की समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा है—"हिन्दी साहित्य के लिए एकांकी नाटक कोई एक नया साहित्य प्रकाश नहीं है। एकांकी नाटक की परम्परा संस्कृत के नाटक साहित्य में भी पायी जा सकती है।" देशकाल के अनुसार उस समय एकांकी नाटक का आदर्श दूसरा था। संस्कृत में अनेक अंक वाले नाटक मिलते हैं वैसे ही एक अंक वाले भास का 'उरुभंग', नीलकंठ का 'कल्याण सौगन्धिक' आदि एक अंक वाले नाटक आधुनिक एकांकी नाटक की विशेषताओं की ओर इशारा करते हैं। हिन्दी में भारतेन्दुकालीन कुछ नाटक ऐसे भी मिलते हैं कि जिनकी परम्परा का सम्बन्ध आधुनिक एकांकी नाटकों की परम्परा से जोड़ा जा सकता है। परन्तु भारतेन्दुकालीन कुछ नाटक एकांकी रूप में मिलते हैं, उनका निर्माण बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि तत्कालीन समस्याओं को एक कहानी में न कहकर संवाद तत्त्वों के आधार पर एक प्रहसन के रूप में कहने की परम्परा दिखायी देती है। भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि तत्कालीन छोटे-बड़े नाटककारों ने एकांकी रूप में अपनी कई नाट्य-रचनाएँ उपस्थित की हैं।

आधुनिक एकांकी का आरम्भ सन् १९३० के बाद माना जा सकता है। आधुनिक एकांकी नाटक-साहित्य की प्रथम कृति के रूप में प्रसाद के 'एक घूँट' की ओर इशारा किया जा सकता सकता है और उसमें आधुनिक एकांकी के कुछ तत्त्व भी ढूँढ़े जा सकते हैं। परन्तु प्रसाद ने जिस नाट्य-परम्परा का रूप लोगों के सामने रखा है

उसमें आधुनिक एकांकी परम्परा को स्थान नहीं मिल सकता। प्रसादजी के नाटकों में भारतीय तथा पाश्चात्य नाट्य परम्परा का समन्वय मिलता है, अतः 'एक घूँट' के कथानक, संवाद, भाषा रूप आदि को देखकर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि 'एक घूँट' को पुरानी नाट्य-परम्परा से बिल्कुल अलग नहीं किया जा सकता। पुरानी नाट्य-परम्परा के आदर्श पर एक घूँट एकांकी की नव्यत्तर प्रवृत्तियाँ मिलती हैं और उनके आधार पर उसको आधुनिक एकांकी के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा। हिन्दी एकांकी की एक परम्परा हँस के एकांकी विशेषांक (१९३८) में प्रकाशित होने तक मिलती है। सन् १८३५ में भुवनेश्वरप्रसाद का 'कारवाँ' शीर्षक एकांकी परम्परा में यह एक प्रथम प्रयोग है।'

इस प्रकार डॉ० कोतमिरे भारतेन्दु काल में हिंदी एकांकी का उदगम मानते हुए भी सन् १९३५ में प्रकाशित भुवनेश्वरप्रसाद के एकांकियों को आधुनिक हिन्दी एकांकी के इतिहास के प्रथम प्रयोग मानते हैं। इतना ही नहीं, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त भी भारतेन्दु को एकांकियों का प्रारम्भकर्त्ता मानते हुए भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में हिन्दी एकांकी से स्वरूप-विकास की चर्चा करते हुए यही कहते हैं—'हिन्दी में प्राचीन ढंग से गद्यबद्ध एकांकियों का आरम्भ भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा हुआ। उन्होंने प्राचीन संस्कृत-नाट्य साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए नाटक व एकांकी के विभिन्न रूपों के विकास का प्रयत्न किया। उन्होंने 'धनंजय-विजय' (व्यायोग अनूदित), प्रेमयोगिनी (अपूर्ण, मौलिक), पाखंड बिडम्बना (अनूदित), अँधेर नगरी (प्रहसन), विषय विषमौषधम् (भाण) वैदिकी हिंसा न भवति (प्रहसन) आदि की रचना की जिनमें प्राचीन ढंग के एकांकियों के लक्षणों का निर्वाह हुआ है। अपने इन एकांकियों में जहाँ उनका एक लक्ष्य कला का विकास करना है, वहाँ दूसरी ओर जनता का ध्यान तत्कालीन समस्याओं की ओर आकर्षित करना भी है। उनके प्रहसनों में विभिन्न रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, सामाजिक एवं राष्ट्रीय बुराइयों पर तीखा व्यंग्य किया गया है।

भारतेंदु के अतिरिक्त उनके युग में अन्य लेखकों ने शताधिक रूपकों व प्रहसनों आदि की रचना की जिन्हें प्राचीन ढंग से एकांकी कह सकते हैं। इनमें से कुछ का नाम यहाँ उद्धृत किया जाता है, तन मन धन गुसाईं जी को अर्पण, (राधाचरण गोस्वामी), कलियुगी जनेऊ (देवकीनन्द त्रिपाठी), शिक्षा-दान (बालकृष्ण भट्ट), दुःखिनी बाला (राधाकृष्णदास), रेल का बिकट खेल (कार्तिकाप्रसाद), वैदिक मिथ्या न भवति (ज० एल उपाध्याय), हिन्दी, उर्दू नाटक (रतनचंद्र), चौपट चपेट (किशोरीलाल गोस्वामी) आदि। इकांकियों में वे सभी विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं जो पीछे भारतेंदु के एकांकियों में बताई गई हैं। वस्तुतः इन्हें इनके लेखकों ने नाटक को संज्ञा दी है, जिससे इनकी गणना नाटक के अन्तर्गत ही होती रही है। किन्तु इनके लक्षणों एवं शैली को देखते हुए एकांकी के अन्तर्गत ही स्थान दिया जाना उचित है।

द्विवेदी युग में हिन्दी-एकांकी के स्वरूप पर पाश्चात्य एकांकी का प्रभाव पड़ने लगा, जिससे उनके बाह्य रूप में क्रमश; थोड़ा-थोड़ा अन्तर आने लगा, किंतु उनकी मूल आत्मा भारतेन्दु युग के अनुरूप ही रही। उनका प्रमुख उद्देश्य समाज-सुधार एवं राष्ट्रोन्नति ही रहा। इस युग के प्रमुख एकांकियों में मंगलप्रसाद विश्वकर्मा का शेरसिंह, सियारामशरण गुप्त का कृष्णा, ब्रजलाल शास्त्री के भारती में प्रकाशित अनेक एकांकी —नीला, दुर्गावती, पन्ना, तारा आदि रामसिंह वर्मा के दो प्रहसन—रेशमी रूमाल और क्रिसमिस, सरयूप्रसाद बिन्दु का भयंकर भूत, शिवरामदास गुप्त का नाक में दम, बदरीनाथ भटट का रेगड़ समाचार के एडीटर की धूल-दच्छिना, रूपनारायण पाण्डेय का 'मूर्खा-मंडली' पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'चार बेचारे' श्री सुदर्शन का आनरेरी मजिस्ट्रेट आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग के एकांकियों को विषय-वस्तु की दृष्टि से चार वर्गों में विभाजित किया गया है—(१) सामाजिक व्यंग्यात्मक, (२) राष्ट्रीय ऐतिहासिक, (३) धार्मिक पौराणिक और (४) अनुवादित।

शिल्प की दृष्टि से भी द्विवेदी युग के एकांकियों में पूर्व युग से विकास दृष्टिगोचर होता है। भारतेंदु युग में कहीं-कहीं नांदी, प्रस्तावना, भरत-वाक्य आदि की प्रवृत्ति दीख पड़ती थी, जो इस युग में आकर लुप्तप्राय हो गई। कथानक को तीव्रगति से चरमसीमा तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाने लगा। पद्य का पूर्ण बहिष्कार होने लगा। परन्तु वास्तविकता यही है कि हिंदी एकांकियों में कला की विविधता सम्बन्धी जो नवीनताएँ हमें देखने को मिलती हैं, वह निश्चय ही एक बड़ी सीमा तक पाश्चात्य, विशेषकर अंग्रेजी एकांकी कला से प्रभावित है। कला देशी-विदेशी सभी प्रभावों से अपना रूप सँवारा करती है। उसे प्रभाव की किसी सीमा में बाँधकर नहीं रखा जा सकता और अगर किसी सीमा में बाँध कर रखे जाने का प्रयास किया जाता है, तो वह सीमा के बन्धनों को तोड़ देती है और अपने को सीमा में बाँधने के समस्त प्रयासों को विफल कर देती है, या फिर सीमा में बँधकर मृत हो जाती है। हमारे ही देश में कला को जब-जब शास्त्रीय लक्षणों की सीमा में बाँधने का प्रयास किया गया तब-तब उसने उसे तोड़ डाला और जिस कलाकार ने उन सीमाओं को मानकर अपनी कला का निर्णय किया उसकी कला अपनी मौत आप मर गई। तो यह सत्य है कि हिन्दी की एकांकी-कला ने अपने रूप को विदेशी प्रभावों से सँवारा है। इब्सन, चेखव, गाल्सवर्दी, बर्नार्ड शॉ आदि जैसे अनेक विश्वविख्यात कलाकारों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव ग्रहण कर हमारे हिन्दी के एकांकीकारों ने अपनी कला-क्षमता को निखारा और विकसित किया है।

इस प्रकार हम संस्कृत एकांकी को हिन्दी-एकांकी का पूर्वज भले ही मान लें, परन्तु आधुनिक हिन्दी-एकांकी का मूल-स्रोत उनमें खोजना उचित नहीं समझते, क्योंकि शिल्प विधान की दृष्टि से आधुनिक एकांकी कला न केवल प्राचीन एकांकियों से भी सर्वथा भिन्न है और जैसा कि डॉ॰ पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का मत है कि हिन्दी

में सबसे पहले आधुनिक ढंग के एकांकीकार भुवनेश्वर हैं। उनके कारवाँ में १—श्यामा : एक विवाह-विडम्बना, २—एक साम्यहीन साम्यवादी, ३—शैतान, ४—प्रतिमा का विवाह, ५—रोमांच-रोमांस, और ६—लाटरी, ये छैः एकांकी हैं। इनके सभी नाटक—दूसरे को छोड़कर—प्रेम के त्रिकोण पर आधारित हैं और यह प्रेम का त्रिकोण विवाहिता युवती के लिए बना है। यह त्रिकोण हमारे यहाँ नहीं है, आज ऐसा कहना तो कठिन है, पर यहाँ पाश्चात्य प्रभाव ही अधिक है। लेखक समस्यायें उठाकर रह जाता है, कोई समाधान नहीं देता। भुवनेश्वर के नाटक अभिजात्य वर्ग की समस्याओं से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। उन्होंने कुछ प्रतीकात्मक एकांकी भी लिखे हैं जिनमें 'कठपुतलियाँ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यथार्थवादी चित्र देकर समाज की वीभत्सता को लक्ष्य करना उनके नाटकों का ध्येय है, व्यंग्य और कटुता उनकी कथा में तीखापन लाने वाले अस्त्र हैं।

भुवनेश्वर के पश्चात् दूसरे प्रमुख एकांकीकार डाक्टर रामकुमार वर्मा हैं और उनका पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' कहा जाता है तथा उन्होंने अभी तक लगभग सो एकांकी लिखे हैं। डाक्टर वर्मा के पृथ्वीराज की आँखों, रेशमी टाई, चारुमित्रा, विभूति, सप्तकिरण, रूपरंग, कौमुदीमहोत्सव, ध्रुवतारिका, ऋतुराज, रजत रश्मि, दीपदान, कामकंदला, बापू, इन्द्र धनुष और रिमझिम आदि एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं तथा डॉ० **रामचरण** 'महेन्द्र' के शब्दों में आधुनिक हिन्दी-साहित्य में युगान्तर करने वाले नाटकों में डॉ० रामकुमार वर्मा प्रमुख हैं। इनके पाश्चात्य टेकनीक तथा विचारों से प्रभावित नये ढङ्ग के एकांकियों द्वारा हिन्दी में नये युग का प्रारम्भ होता है। डॉ० वर्मा ने अनेक सामाजिक, समस्या प्रधान, पौराणिक, भौतिक, हास्य-व्यंग्य तथा भावात्मक एकांकी प्रस्तुत करके नाट्य क्षेत्र में विविधता का संचार किया है। किन्तु ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में इनकी प्रतिभा सबसे अधिक प्रकाशित हुई है। नाट्यकारों में ये सबमें बड़े टेक्नीशियन हैं।

साथ ही उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर और जगदीशचन्द्र माथुर ने भी आधुनिक हिन्दी एकांकी को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। विष्णु प्रभाकर और जगदीशचन्द्र माथुर ने एकांकी की अपेक्षा रेडियो रूपक ही अधिक परिमाण में लिखे हैं, परन्तु उनकी लेखनी से जो भी रचनाएँ निर्मित हुईं व कला-सम्पन्न अवश्य हैं। माथुरजी का 'भोर का तारा' और विष्णु प्रभाकर का इन्सान उल्लेखनीय एकांकी-संग्रह हैं। उदयशंकर भट्ट भी हिन्दी के प्रमुख एकांकीकार हैं और उनका पहला एकांकी संग्रह अभिनव एकांकी सन् १९४० में प्रकाशित हुआ था, तब से वे बराबर एकांकी लिखते रहे हैं और स्त्री का हृदय, समस्या का अन्त, कालिदास, आदिम युग व धूम शिखा उनके उल्लेखनीय एकांकी-संग्रह हैं। डॉ० रामचरण 'महेन्द्र-के शब्दों में भट्टजी ने जहाँ एक ओर तर्कपूर्ण अनु-

सन्धान के बल पर काल के बन्धन को तोड़कर मानव-सृष्टि के आदि पुरुष स्वयंभू, मनु और शतरूपा द्वारा आदिम युग की झाँकी दी है, वहाँ दूसरी ओर कालिदास, शशिलेखा, सौदामिनी आदि रचनाओं द्वारा मध्ययुग के भी धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक चित्र उपस्थित किए हैं और आज की सभी समस्याओं पर यथार्थवादी व्यंग्यात्मक एकांकी लिखे हैं।

सेठ गोविन्ददासजी भी हिन्दी के प्रमुख एकांकीकार हैं और उन्होंने अभी तक सौ से अधिक एकांकी लिखे हैं तथा सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक व पौराणिक सभी क्षेत्रों को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। स्पर्द्धा, मानव-मन, निर्माण का आनन्द, मैत्री, धोखेबाज, ईद की होली, बूढ़े की जीभ, जाति उत्थान, वह मरा क्यों अधिकार-लिप्सा, प्रलय और सृष्टि, शाप और वर, सच्चा सुख उनके उल्लेखनीय सामाजिक एकांकी हैं। इसी प्रकार उनके बुद्ध की एक शिष्या, बुद्ध के सच्चे सनेही कौन, जालोक और भिखारिणी, चन्द्रपीड़ और चर्मकार, सहित या रहित, अपरिग्रह की पराकाष्ठा, चैतन्य का सन्यास, नायक की नमाज, शिवाजी का सच्चा स्वरूप, तेग बहादुर की भविष्यवाणी, निर्दोष की रक्षा, सच्चा धर्म, प्रायश्चित, महर्षि की महत्ता आदि एकांकी ऐतिहासिक व पौराणिक श्रेणी में रखे जायेंगे। यू० नो०, आई० सी०, भूख हड़ताल और सुदामा के तन्दुल उनमें राजनैतिक एकांकी हैं, इन एकांकियों के साथ-साथ सेठजी ने कुछ वैदेशिक कथाओं में रचित भी हिन्दी-साहित्य को प्रदान किये हैं और बहुत से प्रहसन व मोनोलॉग भी लिखे हैं।

हिन्दी-एकांकी समृद्ध करने में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है और रंगमंच तथा रेडियो नाटक की दृष्टि से 'अश्क' जी के एकांकी आधुनिक नाटक साहित्य की एक विशेष देन है। रंगमंच की सुविधाओं को सामने रखकर अपने एकांकी नाटकों का निर्माण करने वाले नाटककारों में 'अश्क' के समान बहुत कम नाटककार मिलेंगे। मनुष्य के साधारण जीवन की समस्याओं को लेकर पात्रों के मानसिक संघर्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में 'अश्क' जी सिद्धहस्त हैं। १९३६ से उन्होंने अनेक नाटक लिखे और एकांकी नाट्यकला में आधुनिकता लाने का प्रयत्न किया। समाज की विविध समस्याओं को लेकर उनका विश्लेषण करना उनका नाट्यकला का आदर्श है। आधुनिक एकांकी कला का आगे बढ़ाने का कार्य 'अश्क' जी के एकांकी नाटक कर रहे हैं। पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ, प्रतिनिधि एकांकी और देवताओं की छाया में उनके उल्लेखनीय एकांकी-संग्रह हैं।

उपर्युक्त एकांकीकारों के अतिरिक्त गणेशप्रसाद द्विवेदी, सद्गुरुशरण अवस्थी, हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावनलाल वर्मा, गोविन्दवल्लभ पंथ, पृथ्वीनाथ शर्मा, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विनोद रस्तोगी, डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल, जनार्दन मुक्तिदूत, जयनाथ नलिन, महेन्द्र भटनागर, विमला लूथरा, धर्मवीर भारती, विश्वम्भर

मानव, चिरंजीत आदि एकांकी लेखकों ने भी हिन्दी-एकांकी की समृद्धि में अपना योग दिया है। इन दिनों एकांकी बहुत अधिक संख्या में लिखे जा रहे हैं और एकांकी इस प्रगति को देखकर यही आभास होता है कि मानो यह युग एकांकी का ही है।

आलोचना

प्रश्न ७—हिन्दी-आलोचना के विकास पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

उत्तर—इसमें संदेह नहीं कि गद्य की अन्य विधाओं की भाँति हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास आधुनिक काल में ही हुआ है, परन्तु डॉ० भगीरथ मिश्र का कहना है कि "आधुनिक युग के पूर्व भी हिन्दी आलोचना के कुछ रूप प्रचलित थे, जिनका सम्बन्ध संस्कृत-काव्यालोचना से था। संस्कृत काव्यालोचना विशेष प्रकार से काव्य-सिद्धांत के निरूपण में व्यक्त हुई है। कवि-शिक्षा और काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त भाष्य, टीका, वार्तिक, तिलका, वृत्ति आदि रूप है। प्रधानतया इसी प्रकार के आलोचना के रूप में हिन्दी-साहित्य में भी मिलते हैं।

हिन्दी-साहित्य के आदि काल और भक्तिकाल में आलोचनात्मक साहित्य अधिक नहीं मिलता है। अधिकांशत: रचनात्मक साहित्य की ही सृष्टि हुई। आलोचनात्मक साहित्य का प्रारम्भ रीतियुग से ही माना जा सकता है। रीति-युग में हिन्दी आलोचना के प्रधानत: दो रूप देखने को मिलते हैं। एक तो लक्षण ग्रन्थों में—जिनमें काव्य-निरूपण किया गया है—सैद्धान्तिक आलोचना मिलती है और दूसरे प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथों और लक्षणों की व्याख्या करने वाले ग्रन्थों में टीका, वचनिका, तिलका आदि रूपों में व्याख्यात्मक आलोचना। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रीतिकालीन अनेक लक्षण ग्रंथ जैसे—कविप्रिया, कवि-कुल-कल्पतरु, काव्य-सरोज, काव्य-निर्णय आदि सैद्धान्तिक आलोचना के ही रूप हैं। दूसरे प्रकार के रूपों में रामचरित-मानस और बिहारी सतसई की टीकाएँ तथा कुलपति, श्रीपति, चिन्तामणि और सोमनाथ के द्वारा लिखी गई वचनिका वार्ता, तिलका आदि हैं। इस प्रकार, यद्यपि उपर्युक्त कोटि का साहित्य बहुत बड़ी संख्या में है फिर भी समीक्षा के वास्तविक रूप का विकास उनमें नहीं देखा जाता। रीतिकालीन समीक्षा अधिकांश शास्त्रीय कोटि की है, जिसमें विभिन्न काव्य के सिद्धान्तों के आधार पर किसी कृति या सामान्य काव्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट किया गया है।

पूर्ववर्ती युगों मे कहीं-कहीं हमें सूक्ति के रूप में भी समीक्षात्मक कथन मिलते हैं। जैसे—'तुलसी गंगा दुओ भये सुकबिन के सरदार, इनके काव्यन में मिलैं भाषा विविध प्रकार' तथा भक्तिकाल में सूरदास आदि कवियों के सम्बन्ध में कहे गये छप्पय :

उक्ति चोज अनुप्रास बरन अस्थिर अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी॥

प्रतिबिम्बित त्रिधि दृष्टि हृदय हरिलीला भासी ।
जनम करम गुन रूप सरस रसना जु प्रकासी ।।
विमल बुद्धि गुन और की जो वह गुन स्रवननि धरै ।
श्री सूर कवित सुन कौन कवि जो नहि सिर चालन करै ।।

आदि इस प्रकार की उक्तियाँ सेनापति, देव, ठाकुर आदि की भी सामान्य काव्य के सम्बन्ध में मिलती हैं ।

जैसा कि डॉ० पद्मसिंह 'कमलेश' का कहना है—"भक्तिकालीन और रीतिकालीन और रीतिकालीन आलोचनाएँ अपने युग की काव्य-रचनाओं के अनुशीलनार्थं हुई, थीं । भारतेंदु के आगमन से हिंदी में जो नवयुग का सूत्रपात हुआ, उसमें पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति के सम्पर्क के नवीन विचारों का उदय और उनके प्रकाशन के माध्यम के रूप में गद्य का आविर्भाव हुआ । गद्य में नाटक, उपन्यास, कहानी; निबन्ध आदि की रचना होने लगीं तो उनके अध्ययन के लिये आलोचना का भी प्रारम्भ हुआ । भारतेन्दु युगीन आलोचना साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं से प्रकाश में आई । आलोचना का सूत्रपात करने वाले प्रमुख पत्रों में कवि वचन-सुधा (१८६८), हरिश्चन्द्र चन्द्रिका (१८७३) हिन्दी प्रदीप (१८८१) आनन्द कादम्बिनी (१८९१), कवि व चित्रकार (१८९१) नागरी प्रचारणी पत्रिका (१८९७) उल्लेखनीय हैं । 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के मुखपृष्ठ पर जहाँ 'अन्य' कितने ही विषयों का उल्लेख है, वहाँ 'समालोचना संभूषिता' भी लिखा हुआ है; जिससे यह प्रकट है कि भारतेन्दु ने ही समालोचना का प्रारम्भ किया । 'कवि वचन सुधा' (१८७२) में 'हिन्दी कविता' नाम ने पहला आलोचनात्मक लेख भी उन्होंने ही लिखा था । भारतेंदु के इन पत्रों और आनंद कादम्बिनी तथा 'प्रदीप' आदि उनके सहयोगियों के पत्रों में जो आलोचनाएं छपती थीं वे 'पुस्तक परिचय' मात्र थीं । होता यह था कि पुस्तक प्राप्त होने की सूचना छापने के साथ कुछ टिप्पणियाँ भी छाप दी जाती थीं ।"

भारतेंदु के पश्चात् परिचयात्मक आलोचना का अपेक्षाकृत गम्भीर रूप बालकृष्ण भट्ट तथा बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की आलोचना में मिलता है । इन दोनों ने सन् १८८० में लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयम्बर' की आलोचना क्रमशः हिन्दी प्रदीप और आनन्दकादम्बिनी में की । आनंद-कादम्बिनी की आलोचना में आलोच्य कृति की त्रुटियों की ओर संकेत के साथ-साथ स्वाभाविकता और गंभीरता की रक्षा करने का प्रयत्न परिलक्षित होता है । अन्य पत्रकार भी भट्ट जी और 'प्रेमघन' जी के अनुसरण पर ही आलोचनाएँ लिखा करते थे । इस व्यावहारिक आलोचना के परिचयात्मक रूप के अतिरिक्त सैद्धांतिक आलोचना का सूत्रपात भारतेंदु ने अपने 'नाटक' निबंध से किया, जिसका उद्देश्य युगानुकूल नाटक-रचना के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके तत्कालीन नाटककारों को श्रेष्ठ नाटक लिखने के लिए प्रेरित करना

था । भारतेंदु युग पर रीतिकाल का प्रभाव होने से इस काल की आलोचना में पांडित्य-प्रदर्शन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । इतना होने पर भी आलोचना का निश्चित आदर्श भारतेंदु युग के लेखकों के सामने नहीं था । सन् १८९७ में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन से भारतेंदु-युगीन परिचयात्मक आलोचना से अनुसंधान और अनुशीलन का गम्भीर रूप ग्रहण किया ।

'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में पहले ही वर्ष में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने समालोचना, बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने समालोचनादर्श और अम्बिकादत्त व्यास ने 'गद्य-काव्य-मीसांसा' जैसे सैद्धांतिक आलोचना के गम्भीर निबन्ध लिखे । इसमें से रत्नाकरजी का निबन्ध पोपकृत 'ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' का पद्यबद्ध अनुवाद है । इनमें सर्वाधिक महत्व का निबन्ध गंगाप्रसाद अग्निहोत्री द्वारा लिखित 'समालोचना' है । इन लेखकों के अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' द्वारा महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु आदि के आलोचनात्मक निबन्ध भी प्रकाश में आये । यों नागरी प्रचारिणी पत्रिका का हिन्दी आलोचना के निर्माण में विशेष हाथ है । नागरी प्रचारिणी पत्रिका के अतिरिक्त सुदर्शन (१९००), सरस्वती (१९००) और समालोचना (१९०२) ने आधुनिक आलोचना को सँवारने का कार्य किया । इनकी 'सरस्वती' की सेवाएँ सर्वाधिक महत्व की हैं ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी में हिन्दी-आलोचना निस्संदेह अपने विकसित रूप में दीख पड़ती है और हम देखते हैं कि इस शताब्दी में समीक्षा-जगत में मिश्रबन्धु, डॉ० श्यामसुन्दरदास, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन, कृष्णबिहारी मिश्र तथा रामचन्द्र शुक्ल जैसी उल्लेखनीय प्रतिभाएँ प्रविष्ट हुईं और उनके योगदान से हिंदी समीक्षा को विकसित होने का सुअवसर मिला । मिश्रबन्धु ने स्फुट आलोचनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त मिश्रबन्धु-विनोद और हिन्दी नवरत्न जैसी उल्लेखनीय आलोचनात्मक कृतियाँ हिन्दी-जगत् को प्रदान की हैं और रीतिकालीन काव्यादर्शों के आधार पर कवियों का गुण-दोष-विवेचन करते समय अपनी निजी विचारधारा भी व्यक्त की है । पद्मसिंह शर्मा, लाला भगवानदीन और कृष्णबिहारी मिश्र की तुलनात्मक समीक्षा को प्रारम्भ करने व विकसित करने का श्रेय दिया जाता है और यहाँ यह स्मरणीय है कि 'तुलनात्मक समालोचना' का प्रारम्भ पद्मसिंह शर्मा की बिहारी और फारसी कवि 'सादी' की तुलनात्मक आलोचना से माना जाता है । यह आलोचना १९०० की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी । आगे चलकर 'हिन्दी नवरत्न' में, मिश्रबन्धुओं में रीतिकालीन काव्यादर्शों के आधार पर हिन्दी के नौ सर्वोत्तम कवियों की तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की । पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी सतसई की तुलना आर्या सप्तशती, अमरुक शतक, गाथा, सप्तशती तथा हिन्दी, उर्दू और फारसी के अन्य कवियों से की और बिहारी को शृंगार रस का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया ।

संभवतः इनकी प्रतिक्रिया स्वरूप कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' ग्रन्थ में बड़ी ही विद्वता के साथ यथा-साध्य तटस्थ रहते हुए देव को बिहारी से बड़ा बताया। लाला भगवानदीन ने 'बिहारी और देव' लिखकर किसी प्रकार बिहारी को बड़ा सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इस खींचतान से निश्चय ही हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का पृथक् साहित्य ही बन गया।

इन समीक्षकों में से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, डॉ० श्यामसुन्दरदास और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी समीक्षा-जगत में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ० कोतमिरे के शब्दों में "हिन्दी में पुस्तक रूप में समालोचना का सूत्रपात द्विवेदीजी द्वारा ही हुआ। उनकी कृतियों के निर्माण में किसी एक भाषा या संस्कृति का प्रदर्शन नहीं मिलता। द्विवेदीजी अँग्रेजी, संस्कृत, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के साहित्य से परिचित थे, इसलिए उनकी रचनाओं पर हर एक भाषा के साहित्य का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। सरस्वती द्वारा उन्होंने कई आलोचनात्मक लेख हिन्दी-पाठकों के सामने रखे तथा संस्कृत साहित्य के कवियों पर आलोचनात्मक लेख लिखकर देश, काल और परिस्थितियों के आधार पर उनकी रचनाओं पर प्रकाश डाला। नैषध चरित-चर्चा, हिन्दी कालिदास की आलोचना, विक्रमांक देव चरित चर्चा, कालिदास की निरंकुशता आदि आलोचनात्मक लेखों द्वारा संस्कृत-साहित्य सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें उन्होंने अपने काल के कवियों के सामने रखीं कि जिनके कारण नव-साहित्य के निर्माण के लिए एक विशेष प्रेरणा मिलती गई।"

द्विवेदीजी का उद्देश्य हिन्दी-भाषा का उत्थान और हिन्दी में सत्साहित्य का निर्माण करना था। हिन्दी के व्याकरण के बारे में जो कुछ लेख मिलते हैं, उनमें उनकी आलोचनात्मक तथा सुधारवादी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। हिन्दी के सत्साहित्य के निर्माण के बारे में भी उनका कार्य महत्वपूर्ण है। तत्कालीन हिन्दी-साहित्य की कल्पना देने वाले व्यंग्य चित्र प्रकाशित किए गए और हिन्दी साहित्य के यथार्थ रूप को लोगों के सामने रखा गया। परन्तु इस प्रकार के व्यंग्यात्मक चित्र पाठकों में एक प्रकार का क्षोभ निर्माण करने में सहायक हुये; लेकिन उस काल के हिन्दी-साहित्य की वस्तुस्थिति का वास्तविक रूप सामने रखने वाले ये चित्र हिन्दी-आलोचना के क्षेत्र में अपना स्थायी महत्व रखते हैं।

यद्यपि डॉ० श्यामसुन्दर दास ने व्याख्यात्मक आलोचनाएँ भी लिखी हैं, परन्तु हिन्दी-समीक्षा-जगत् में उनका विशेष महत्व उनकी 'साहित्यालोचन' नामक कृति के फलस्वरूप है और उनके इस ग्रंथ में साहित्य-सम्बन्धी कुछ सैद्धांतिक व्याख्याएँ की गई थीं और नाटक, उपन्यास तथा कहानी आदि साहित्यांगों का स्वरूप निर्देश करते हुए निबंध लिखे गये थे, जिनका बड़ा ही मार्मिक प्रभाव हिन्दी आलोचना पर पड़ा। पश्चिमी और भारतीय साहित्य तत्वों की आरम्भिक तुलना 'साहित्यालोचन' में सुन्दर ढंग से की गई है।

इस बीसवीं शताब्दी में ही हिन्दी-आलोचना जगत् में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पदार्पण हुआ और जैसा कि डॉ० इन्द्रनाथ मदान का कहना है—"आचार्य शुक्ल ने आलोचना के निश्चित मानदंडों को स्थापित कर समीक्षा को व्यवस्थित रूप दिया था। इससे पहले आलोचना में गुण-दोष शैली के आधार पर वैयक्तिक रुचि का प्राधान्य था। शुक्ल ने प्रयोगात्मक एवं सैद्धांतिक आलोचना का समन्वय कर निश्चित मानदण्डों को तुलसी, सूर तथा जायसी के मूल्यांकन से स्थापित किया। आलोचना के सिद्धांतों का निरूपण करने के लिए प्रधानतः भारतीय काव्यशास्त्र और गौणतः पाश्चात्य काव्यशास्त्र का आधार बनाया। पाश्चात्य सिद्धान्तों का उपयोग अपने मत की व्याख्या के लिए किया।"

उनके आलोचना सम्बन्धी सिद्धांतों के मूल में उनकी समाज-मंगल की भावना है, जिसके आधार पर उनका रस-सिद्धांत, काव्य का उद्देश्य उक्ति वैचित्र्य का विरोध, प्रबन्ध काल की श्रेष्ठता, छायावादी काव्य की उपेक्षा, तुलसी के प्रति आग्रह, सूर के प्रति उदासीनता, संत काव्य का विवेचन, साधारणीकरण का महत्व, मनोविकारों के प्रति दृष्टिकोण आदि स्पष्ट हो जाते हैं।""शुक्लजी काव्य-उद्देश्य को एक शब्द—'शील विकास' में व्यक्त करते हैं। काव्य मानव के शील विकास का साधन है, जिसके द्वारा बुद्धि, हृदय और कर्मशक्ति तीनों का विकास होता है। तीनों का सामंजस्य ही शील विकास होता है। तीनों का सामंजस्य ही शील विकास की चरम अवस्था है।

शुक्लजी ने हिन्दी आलोचना को व्यवस्थित रूप देकर काव्य की सत्ता को सामाजिक पृष्ठ भूमि पर स्थापित किया और स्थायी प्रतिमानों की उद्भावना की। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने समीक्षा-पद्धति की जिस नयी रूप-रेखा को प्रस्तुत किया आचार्य शुक्ल ने उसे शास्त्रीय पथ पर प्रशस्त किया, जिसे शुक्ल पद्धति का नाम दिया जाता है और""जो काव्यात्मक लोकवाद के मुख्य साहित्यिक सिद्धांत पर आधारित है, जिसे सामाजिक आलोचना की संज्ञा देना अधिक उचित है। हिन्दी की आलोचना परम्परा की ऐतिहासिक घटना एवं महत्वपूर्ण कड़ी है। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के श्रेष्ठतम समीक्षक हैं और उनकी हिन्दी-साहित्य का इतिहास, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनवाद, रसमीमांसा, चिंतामणि, सूरदास, जायसी ग्रंथावली, गोस्वामी तुलसीदास व भ्रमरगीत सार आदि कृतियाँ हिन्दी-समीक्षा जगत् में स्थाई महत्व रखती हैं।

स्मरण रहे, शुक्लोत्तर काल में हिन्दी-समीक्षा-क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और जैसा कि डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने निबन्ध में कहा है—"शुक्लोत्तर हिन्दी-समीक्षा का विकास प्रमुख रूप से तीन धाराओं में हुआ। पहली धारा तो उन आलोचकों की थी जो शुक्लजी की समीक्षा-पद्धति का अनुगमन करके प्राचीन और नवीन कवियों का काव्यकृतियों की व्याख्यात्मक आलोचना लिखने में प्रवृत्त हुए। उन्होंने आलोचना के प्रयोग पक्ष को ही पल्लवित किया। इनमें सर्वश्री विश्वनाथप्रसाद

मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, लक्ष्मी नारायनसिंह 'सुधांशु', जनार्दन मिश्र, 'पंकज' आदि का नाम लिया जा सकता है। इन आलोचकों को हम शुक्ल सम्प्रदाय (स्कूल) के आलोचक कह सकते हैं। दूसरी धारा में हम उन छायावादी आलोचकों को रखते हैं, जिन्होंने आत्मपरक (सब्जेक्टिव) शैली से काव्य-मीमांसा का बीड़ा उठाया और आलोचना के प्रभाववादी ढंग को प्रचलित किया। शान्तिप्रिय द्विवेदी, मोहनलाल महतो, 'वियोगी हरि' आदि कतिपय आलोचक इस कोटि में आते हैं। काव्य के सौंदर्य पक्ष को इन लोगों ने काव्यमयी भाषा में व्यक्त किया और पाठक की चेतना विस्मय विमुग्ध होकर रह गई। तीसरी धारा में वे प्रगतिशील आलोचक हैं, जो मार्क्सवाद के आधार पर सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों की तुला पर साहित्य को तौलने में समीक्षा की उपादेयता स्वीकार करते हैं। भौतिक जीवन-दर्शन को साहित्यिक जीवन-दर्शन से मिलाकर देखने की अभिनव दृष्टि इन आलोचकों से मिली। रूढ़ सिद्धांतों से पीछा छुड़ाने का भी इस कोटि की समीक्षा में आग्रह रहा है। रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहन प्रभृति लेखकों को उसका उन्नायक कहा जाता है।"

इन तीन धाराओं के साथ ही, किन्तु इन सबसे अधिक प्राणवान् कुछ स्वतन्त्र कोटि के विचारक भी समीक्षा-क्षेत्र में अवतरित हुये। यथार्थ में शुक्लोत्तर समीक्षा को इन्हीं आलोचकों ने आगे बढ़ाया। युग की संवेदनाओं को ग्रहण करके तथा रचयिता की मनस्थिति की वैज्ञानिक ऊहापोह द्वारा इन समीक्षकों ने आलोचना में नवीन चेतना का संचार किया। इनमें हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे बाजपेयी, बाबू गुलाबराय, रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', डॉ॰ नगेन्द्र, डॉ॰ सत्येंद्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन आलोचकों की विशेषता यही है कि इन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की आधारभूत मान्यताओं को पृष्ठभूमि में रखकर वस्तुपरक विवेचन किये। अपनी अभिरुचि या पूर्वाग्रह इनकी दृष्टि का विरोध नहीं कर सकीं और वैयक्तिक आदर्शों को भी सार्वभौम सिद्धांत बनाने का आग्रह प्रकट नहीं किया गया।

इतना ही नहीं वैज्ञानिक अनुसंधान एवं अध्ययन, स्वच्छन्दतावादी आलोचना, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना व चरितमूलक समीक्षा आदि आलोचना के अन्य प्रकार भी आधुनिक समीक्षा जगत् में दीख पड़ते हैं। वैज्ञानिक अनुसंधान एवं अध्ययन का सूत्रपात विश्वविद्यालयों में पी॰ एच॰ डी॰, डी॰ फिल्॰ और डी॰ लिट्॰ के लिए प्रस्तुत होने वाले शोध-प्रबन्धों (थीसिस) के साथ हुआ तथा इस दिशा में डॉ॰ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ॰ जगन्नाथप्रसाद शर्मा, डॉ॰ बल्देवप्रसाद मिश्र, डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, माताप्रसाद गुप्त, डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ॰ श्रीकृष्णलाल, डॉ॰ उदयभानु सिंह, डॉ॰ भागीरथ मिश्र, डॉ॰ ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ॰ विपिन बिहारी त्रिवेदी, डॉ॰ भगवतस्वरूप मिश्र, डॉ॰ जगदीश गुप्त, डॉ॰ ओमप्रकाश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वच्छन्दतावादी आलोचना हिन्दी-साहित्य में छायावादी कृतियों के मूल्यांकन के प्रयत्न में प्रस्तुत हुई और प्रसाद पंत, निराला व महादेवी ने स्वयं अपनी रचनाओं की भूमिका में काव्य की स्वतन्त्र सत्ता व उसमें अन्तर्निहित सौंदर्य की ओर संकेत किया है। इन कवियों के अतिरिक्त गंगाप्रसाद पाण्डेय, इलाचन्द जोशी, रामनाथ 'सुमन' और विश्वम्भर 'मानव' उल्लेखनीय हैं। यहाँ स्मरणीय है कि डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने जिसे प्रभाववादी समीक्षा कहा है, यह वास्तव में सौष्ठववादी समीक्षा ही जान पड़ती है। डॉ० नगेन्द्र, इलाचन्द जोशी और अज्ञेय मनोविश्लेषणात्मक समीक्षक कहलाते हैं तथा विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डॉ० हजारी द्विवेदी, डॉ० नामवरसिंह की कतिपय कृतियों व निबन्धों में ऐतिहासिक समीक्षा-पद्धति के भी सुन्दर उदाहरण दीख पड़ते हैं। इसी प्रकार गंगाप्रसाद पाण्डेय की कृति महाप्राण निराला चरित्रमूलक आलोचना-पद्धति की रचना है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी आलोचना विकासोन्मुख है और वह शनैः शनैः प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रही हैं तथा उपयुक्त समीक्षकों के साथ-साथ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, डॉ० राम चरण 'महेन्द्र', डॉ० धर्मवीर भारती, डॉ० विनयमोहन शर्मा, डॉ० गोपीनाथ तिवारी, अमृतराय, डॉ० रामरतन भटनागर, डॉ० सरनाम सिंह शर्मा आदि समालोचक इसके विकास में अपना योग दे रहे हैं और इससे स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी समीक्षा का भविष्य निर्विवाद रूप से उज्ज्वल है।

नाटक

प्रश्न ८—हिन्दी में नाटक का क्रमिक इतिहास बतलाइये।

उत्तर—निबन्ध-लेखन भाग में पढ़िए।

प्रश्न ६—हिन्दी में रेखाचित्रों का उद्भव और विकास प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०—"हिन्दी के वर्तमान रेखाचित्र किसी पूर्व भारतीय परम्परा की देन न होकर आधुनिक युग की सृष्टि है।" —इस कथन की व्याख्या करते हुए हिन्दी के रेखाचित्र का उद्भव और विकास प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—रेखाचित्र क्या भारतीय परम्परा की देन है ?

कुछ लोग आधुनिक साहित्य की प्रत्येक विधा का मूल स्रोत प्राचीन संस्कृत साहित्य और हिंदी-साहित्य में खोजने का प्रयास करते हैं। इनके अनुसार 'पृथ्वीराज रासो', 'पद्मावत', 'रामचरित मानस' में पात्रों का जो रूप वर्णन हुआ है, वह आधुनिक रेखाचित्रों का पूर्व रूप है। रेखाचित्रों के जन्म के सम्बंध में महादेवी जी ने लिखा है :

'रेखाचित्र शब्द का जन्म और अर्थ-विस्तार चित्रकला के क्षेत्र में हुआ है, जहाँ कुछ रेखाओं में अंकित चित्र द्वारा हमें रंग और छायालोक से रहित किसी वस्तु या

व्यक्ति की उसे दूसरों से भिन्न करने वाली विशेषताओं का प्रत्यभिज्ञान प्राप्त होता है।
महादेवी वर्मा (स्मारिका-कुछ विचार)

सबसे पहले किसी भावना को आकार प्रदान करने के लिए रेखाओं का प्रयोग किया जाता था। चित्र में इनके प्रयोग आरम्भिक काल से ही प्राप्त होते हैं। भारतीय चित्रों में तो रेखाओं के प्रयोग की प्रधानता ही रही है। अजंता के सम्पूर्ण चित्रों में रेखाओं का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण और बौद्धकला के चित्र रेखाओं के ही माध्यम से बने। चित्र शब्द का नाम सुनते ही एक आकार खिंच उठता है। किसी जीव, वस्तु या पदार्थ को हम अपने सामने देखने लगते हैं। 'रेखाचित्र' निश्चित ही चित्रकला का काव्य है। यह ऐसी चित्रकला है, जिसमें रंगों का प्रयोग नहीं होता और न मोटाई ही होती है। रेखाओं द्वारा ही अपने अभिप्रेत भाव को सांकेतिक रूप में व्यक्त कर दिया जाता है। इसमें रेखाएँ सजीव होकर अभिप्रेत भाव को मुखर बना देती हैं। रेखाचित्र अपनी इन्हीं विशेषताओं के साथ साहित्य में अवतरित हुआ है। साहित्यिक विधा हो जाने पर भी चित्रकला की विशेषताएँ उसमें यथावत् बनी रहीं। रेखाचित्र की साहित्यिक विधा में चित्र का उद्घाटन रेखाओं के स्थान पर शब्दों द्वारा किया जाने लगा। शब्दों से जीव, पदार्थ या वस्तु के चित्र बनाये जाने लगे। शब्दों द्वारा रूप, व्यक्तित्व और बीती हुई घटनाओं का चित्रण होने लगा। 'रेखाचित्र' हमारे सामने अपने अनुभव में आए किसी चरित्र की विशेषताओं का मार्मिक रूप उपस्थित करता है :

'लेखन में जब यह विधा अपनाई गई तब वही संक्षिप्तता में विशिष्ट चित्रण शब्दों के माध्यम से प्राप्त होने लगा। वस्तुतः काव्य, कथा आदि साहित्य की; अन्य विधाओं में रूप, प्रकृति, परिवेश आदि के वर्णन में रेखांकन का उपयोग होता ही रहता है, किन्तु रेखाचित्र के स्वतंत्र विधान का श्रेय आधुनिक युग को ही दिया जायगा।'
महादेवी [कुछ-विचार : स्मारिका]

प्रश्न यह है कि क्या प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित रूप-वर्णनों का रेखाचित्र का आरम्भिक रूप माना जा सकता है। इन रूप-वर्णनों में सौंदर्य ही का वर्णन रहता था, चरित्र का उद्घाटन तभी सफल कहा जायगा, जबकि व्यक्ति के शरीर की रूपरेखा का वर्णन, अंग-चेष्टाओं तथा विभिन्न परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरूप अभिव्यक्त होने वाली विभिन्न प्रकार की मुख-मुद्राओं तथा अंग-चेष्टाओं का वर्णन हो, परन्तु प्राचीन ग्रन्थों में पाये जाने वाले रूप-वर्णनों में ये विशेषताएँ नहीं मिलतीं। यही कारण है कि उनको वर्तमान रेखाचित्रों का पूर्वरूप नहीं माना जा सकता। रीति-कालीन काव्य में नायक-नायिकाओं के रूप-वर्णन तथा शारीरिक चेष्टाओं के खण्डचित्र बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं, परंतु इन खण्ड-चित्रों से पात्रों के चरित्र का कोई स्पष्ट रेखाचित्र सामने नहीं आता। वे व्यक्ति विशेष का वर्णन न होकर वर्ग विशेष के चित्र मात्र होते थे। ये रूप-वर्णन के खण्ड-चित्र शृंगार-रस से ही सम्बन्धित हैं। इन खण्ड चित्रों में जीवन के अन्य पक्षों का चित्रण नहीं है। ऐसे खण्ड-चित्रों को वर्तमान रेखाचित्रों का पूर्वरूप नहीं

माना जा सकता । रेखाचित्र सम्पूर्ण चरित्र का विश्लेषण करता है । निष्कर्ष यह निकलता है कि हिन्दी के वर्तमान रेखाचित्र आधुनिक युग की देन हैं, इनको प्राचीन हिन्दी काव्य की परम्परा में नहीं माना जा सकता ।

हिन्दी में रेखाचित्र का प्रारम्भ और विकास—हिन्दी-साहित्य में आधुनिक गद्य की प्रायः प्रत्येक विधा का प्रारम्भ भारतेन्दु-युग से हुआ । इस युग में जो निबंध लिखे गये, उनमें यत्र-तत्र रेखाचित्र की झलक भर मिल जाती है, परंतु उनको रेखाचित्र नहीं कहा जा सकता । वे निबंधात्मक जीवन-चरित्र प्रायः उन्हीं व्यक्तियों पर लिखे जाते हैं, जिनसे लेखक स्वयं परिचित हो । भारतेन्दु-युग के अंत में पाश्चात्य गद्य-साहित्य हिन्दी-साहित्य को प्रभावित करने लगा । पाश्चात्य गद्य-साहित्य में रेखाचित्रों (स्केचों) का पर्याप्त विकास हो चुका था । चार्ल्स डिकेन्स के 'स्केचेज बाइ बाज', गाल्सवर्दी के 'पोर्ट्रेट' तथा गोर्की, चेखब, स्पिडिल, बरीज एवं बालजक के स्केचेज को बहुत प्रसिद्धि मिली । इन स्केचों के प्रभाव से हिन्दी-साहित्य में रेखाचित्रों का उद्भव हुआ ।

हिन्दी के प्रथम-रेखाचित्र—हिन्दी में रेखाचित्र का सूत्रपात सन् १९२९ में प्रकाशित पं० पद्मसिंह शर्मा के 'पद्मपराग' निबंधों से होता है । इन निबंधों को यद्यपि आधुनिक रेखाचित्र नहीं कहा जा सकता, परंतु इनमें वर्तमान रेखाचित्रों के पर्याप्त तत्व हैं और ये रेखाचित्रों की पृष्ठभूमि का कार्य करते हैं ।

हिन्दी-रेखाचित्रों का विकास—सन् १९३६-३७ ई० से हिन्दी-रेखाचित्र में विकास की रेखाएँ क्रमिक मिलने लगती हैं । पं० श्रीराम शर्मा का रेखाचित्रों का एक संग्रह 'बोलती प्रतिमा' के नाम से प्रकाशित हुआ । इसमें रेखाचित्रों के साथ में कहानियाँ भी संगृहीत हैं । इस संग्रह की 'ठाकुर का आन', 'बरदान', 'हरनामदास', 'पीताम्बर', 'अपराधी', 'रतना की अम्मा' आदि को सफल रेखाचित्र माना जा सकता है । पं० श्रीराम शर्मा ने रेखाचित्र-निर्माण में पथ-प्रदर्शन किया, अतः उन्हीं को रेखाचित्रों का प्रथम लेखक स्वीकार किया जाना चाहिए ।

निराला के रेखाचित्र—सन् १९३९ में निराला जी का 'कुल्लीभाट' प्रकाशित हुआ, जिसमें कुल्लीभाट की चारित्रिक रेखाएँ उभरी हैं, इसे विस्तृत रेखाचित्र कहा जा सकता है । यह 'लाइफ स्केच' है । 'बिल्लेसुर बकरिहा' निराला जी की रेखाचित्र की दूसरी कृति है । यह सन् १९४१ में प्रकाशित हुई । ८४ पृष्ठों के इस 'लाइफ-स्केच' में तरी के मुकुल की गाथाएं एक ही तार में गुँथी हुई हैं । निराला जी की इन दोनों पुस्तकों में रेखाचित्र की बहुत सा विशेषताएँ मिल जाती हैं, परन्तु एकाग्रता और संक्षिप्तता रेखाचित्र की जो दो प्रमुख विशेषताएँ हैं, वे इनमें नहीं मिलतीं । इनमें एक विशाल सामाजिक परिपेक्ष्य के कारण ये 'लघु आंचलिक उपन्यास, के अधिक समीप पहुँच जाती हैं। अतः इनको 'लघु-उपन्यास-रेखाचित्र' कहना अधिक समीचीन होगा ।

महादेवी के रेखाचित्र—सन् १९४१ में महादेवी की 'अतीत के चलचित्र' कृति प्रकाशित हुई। इसमें प्रथम बार रेखाचित्र की समस्त विशेषताएँ सामने आईं। 'रामा' के रेखाचित्र में उन्होंने अपनी बाल्यावस्था के रामा की भूमिका से सम्बन्धित अनेक घटनाओं के चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'घीसा' का चित्र 'गुदड़ी में लाल' का होना चरितार्थ करता है। समाज द्वारा उपेक्षित बालक घीसा के मन में अपने गुरु साहब (महादेवी) के प्रति सरल ममता और अटल श्रद्धा की भावना व्याप्त थी। सन् १९४० में 'स्मृति की रेखाएँ' कृति प्रकाशित हुई। इसमें 'भक्तिन' का रेखाचित्र सेवक-धर्म में हनुमान का आदर्श उपस्थित करता है। 'चीनी फेरी वाला' रेखाचित्र कभी भी धूमिल होने वाला नहीं है। सन् १९५६ में प्रकाशित 'पथ के साथी' संकलन में रवीन्द्र मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, निराला, प्रसाद सुमित्रानन्दन पंत और सियारामशरण गुप्त की संस्मरण-कथाएँ संग्रहीत हैं। ये रेखाचित्र संस्मरण प्रधान हैं। सन् १९७१ में महादेवी जी की 'स्मारिका' प्रकाशित हुई। इस संग्रह के भी रेखाचित्र संस्मरण प्रधान हैं। 'स्मारिका' की भूमिका में महादेवी ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनके संस्मरण और रेखाचित्र मिले जुले हैं :

"मेरे संस्मरणों में रेखाचित्र भी सम्मिलित हैं, जिसका स्पष्ट कारण मेरा रेखांकन प्रेम ही कहा जायगा। किसी भी प्रत्यक्ष या कल्पनाश्रित व्यक्ति या वस्तु को कुछ रेखाओं में आँकना मेरे लिए स्वाभाविक हो जाता है। यदि ऐसा रेखाँकन सम्भव नहीं होता, तो शब्दांकन अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है। मेरे विचार से शब्दांकन के साथ यदि पूर्ण मनोयोग हो तो वह रेखांकन से अधिक प्रभावशाली हो सकता है। रेखांकन को इच्छानुसार परिवर्तित कर लेना देखने वाले के लिए सम्भव नहीं है, किन्तु शब्दांकन को प्रत्येक पाठक अपने मनोजगत के अनुकूल ढालता-बनाता रहता है।"

"स्मृति की रेखायें' में मैंने दोनों का उपयोग किया था, किन्तु आज भी मुझे उसके शब्दांकन ही प्रिय हैं' महादेवी [कुछ विचार—स्मारिका]

महादेवी ने संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में अपने जीवन की उन अनेक कटु-मधुर करुणा-विगलित स्मृतियों को सँजोकर रखा है, जिन्होंने उनके जीवन में एक स्थायी स्थान बना लिया है।

बख्शी जी के रेखाचित्र—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का 'कुछ' नाम का निबन्धों का संग्रह जो सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था, उसके कुछ निबन्ध रेखाचित्र शैली से अत्यधिक प्रभावित हैं। 'रामलाल पंडित' 'कुंज बिहारी' 'चक्करदार मोरी' आदि सफल रेखाचित्र हैं। शेष रचनाओं को रेखात्मक निबन्ध ही कहा जा सकता है। इनमें हास्य-व्यंग्य और चमत्कार की प्रवृत्ति अधिक है। लेखक की अनुभूति की गहराई अधिक नहीं है।

रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र—बेनीपुरी के 'लाल तारा', 'माटी की मूरतें'

'गेहूँ और गुलाब' और 'मील के पत्थर' रेखाचित्रों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'लाल तारा' में विद्रोहात्मक उच्छवासों के चित्र हैं, 'माटी की मूरतें' में ग्राम-रत्नों के चरित्रों की रेखाओं को उभारा गया है। 'गेहूँ और गुलाब' के रेखाचित्रों में अधिक मार्मिकता और भाव-संकुलता है। 'मील के पत्थर' में रेखाचित्र के साथ में संस्मरण भी हैं। बेनीपुरी के रेखाचित्रों में विविधता है। उन्होंने प्रचुर संख्या में रेखाचित्र लिखे भी हैं। प्रायः अपने सभी रेखाचित्रों में बेनीपुरी जी ने सामाजिक और राजनैतिक विषमताओं के प्रति आक्रोश तथा समाज के दीन-दलित वर्ग के प्रति ममता अभिव्यक्त की है। इनके पात्र अपनी सम्पूर्ण सबलताओं को लिए हुए हमारे सामने अपने स्वाभाविक रूप में आते हैं। बेनीपुरी के रेखाचित्रों में राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, क्रान्ति, स्नेह एवं करुणा की धाराएँ एक साथ प्रवाहित हुई हैं। बेनीपुरी जी के अधिकांश रेखाचित्र प्रतीकात्मक हैं।

प्रकाशचन्द्र गुप्त के रेखाचित्र—प्रकाशचन्द्र गुप्त ने अपने रेखाचित्रों का संग्रह 'पुरानी स्मृतियाँ' और, नये स्केच' मे सबसे पहले मानव-चरित्र के स्थान पर स्मृति के सहारे खण्डहरों, तालाबों, सड़कों आदि के भावपूर्ण चित्र अंकित करने का प्रयास किया है। इनके रेखाचित्रों में मानवता की प्रेरणा को प्रमुख स्थान मिला है। गुप्तजी का यह प्रयास रेखाचित्र-साहित्य के क्षेत्र में सर्वथा मौलिक और नवीन प्रयास है। इस सम्बन्ध में 'बंगाल का अकाल' 'सोमान्त पूर्व', अमलतास आदि रेखात्मक निबन्ध भी हैं। गुप्तजी के रेखाचित्रों में महादेवी वर्मा या बेनीपुरी के रेखाचित्रों की तरह स्वानुभूति की गहराई नहीं मिलती।

बनारसीदास चतुर्वेदी के रेखाचित्र— चतुर्वेदी जी की 'रेखाचित्र' पुस्तक में देश-विदेश के साहित्यकारों, पत्रकारों, राजनीतिज्ञों समाज-सेवकों के जीवन को अंकित किया गया है। इन रेखाचित्रों में राष्ट्रीय भावना के साथ विश्व-प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीयता की झलक भी मिलती है। चतुर्वेदी जी के रेखाचित्रों को संस्मरणात्मक रेखाचित्र ही कहना अधिक उपयुक्त होगा।

डॉ० विनय मोहन शर्मा के रेखाचित्र—शर्माजी के 'रेखा-रंग' संग्रह के अनेक रेखाचित्र सरलता एवं रेखाओं की स्पष्टता की दृष्टि से बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। 'डबली बाबू का अक्स' में उनके सीधे-सादे रहन-सहन तथा स्वभाव की सादगी पाठकों के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालती है। 'नजर बसाय गई मालिक' एक ऐसे नौकर का रेखाचित्र है जो अपनी ईमानदारी और सज्जनता के कारण लेखक की आँखों में स्थायी रेखाचित्र बनकर रह जाता है। 'वकील साहब' रेखाचित्र में 'गंगाधर' के माध्यम से इस पेशे के लोगों का सजीव रेखाचित्र अंकित हो गया है।

देवेन्द्र सत्यार्थी के रेखाचित्र—सत्यार्थी जी का 'रेखाएँ बोल उठीं' शीर्षक रेखाचित्र संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह के 'दादा-दादी के चित्र', 'चिर नूतन चित्र',

'अच्छे भले आदमी की बात' आदि में जहाँ तथ्य-निरूपण अधिक है वहाँ 'रेखाएँ बोल उठीं' 'सौंदर्य-बोध', 'आज मेरा जन्म दिन है' में भावात्मकता अधिक है। ये रेखाचित्र भावात्मक शैली में होने के कारण गद्य-काव्य का सौंदर्य उपस्थित करते हैं, परन्तु भावों के क्रम का निर्वाह नहीं हो पाया है, यह इनका एक दोष है। तथ्य-निरूपण प्रधान रेखाचित्रों में महादेवी और बेनीपुरी के रेखाचित्रों की तरह मार्मिकता नहीं मिलती।

अन्य रेखाचित्रकारों में कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर, सत्यवती मलिक, डॉ० प्रेमनारायण टंडन आदि उल्लेखनीय हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी-रेखाचित्र की स्थिति और विकास—सन् १९४७ के पश्चात् राम बिहारीलाल का 'वैशाली' रेखाचित्र सामने आया, इसमें वैशाली को स्त्री प्रतीक मानकर वैशाली के अतीत-वैभव और इतिहास का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। वैशाली अपने अतीत जीवन के संस्मरण कहती-कहती वर्तमान में आ जाती है। 'वैशाली का शिल्प' रेखाचित्रात्मक है, किन्तु शैली संस्मरणात्मक हैं। भगवतशरण उपाध्याय के 'वो दुनियाँ' उनके अमेरिका यात्रा के रेखाचित्रों का संग्रह है। वहाँ उनको विश्व के अनेक राजनीतिज्ञों को समीप से देखने का अवसर मिला। उनके इन रेखाचित्रों में जहाँ चित्रित व्यक्तियों की आकृतियाँ उभरती हैं, वहाँ उनके चरित्र की विशेषताएँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। पाकिस्तान के विदेश मंत्री सर जफरउल्लाखाँ की आकृति और चारित्रिक विशेषता निम्न रेखाचित्र में उभर आई है।

"चहरा बादामी, बाल लम्बे, पीछे उलटे हुए, जिनके बीच में कुछ-कुछ गंजी चाँद रह-रहकर चमक जाती है। लम्बी, दाढ़ी, जिसके काफी बाल सफेद हो चुके हैं; गहरा बादामी सूट और प्रायः स्याह टाई····।"

इधर कुछ ऐसे रेखाचित्र भी लिखे गये, जिनमें मानव-मन के अनेक रहस्यों का उद्घाटन हुआ है।

प्रोफेसर सुरेन्द्रनाथ दीक्षित के 'पंडितजी' रेखाचित्र में एक ऐसे बालक के मनोभावों का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है जिसकी माँ की मृत्यु हो चुकी है और पिता दूसरा विवाह करना चाहता है—"उसकी सौतेली माँ आयेगी, सजी सजाई लाल चुनरी में, उसकी माँ के गहने पहनकर, लेकिन वह उसकी माँ न होगी। वह कौन होगी? उसकी सौतेली माँ। लेकिन माँ की वह ममता, पुत्र स्नेह से लबालब हृदय यह नवविवाहिता बधू कहाँ से पायेगी?····वह माँ तो युवती का रंगीन हृदय लिये हुए आयेगी, माँ नहीं। बच्चा मचलेगा, रूठेगा, रोयेगा—माँ से मनाने के लिये, लेकिन वह तो स्वयं मानवती होगी। उसे कौन मनायेगा? थपकियाँ देगा और माता का स्नेह से गीला सुखद उष्ण चुम्बन।" श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने स्वामिभक्त नौकर 'हलकू' (नई धारा मार्च सन् १९५४) के मनोभावों, उसकी निष्कपटता और उसकी स्वामिभक्ति का मार्मिक रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। बनारसीदास चतुर्वेदी का रेखाचित्र 'बन्धुवर नवीनजी'

(मध्यप्रदेश संदेश ८ दिसम्बर १९५६) तथा रामवृक्ष बेनीपुरी का रेखाचित्र 'बलदेव' बहुत सफल बन पड़े हैं। बलदेवसिंह की आकृति का रेखाचित्र लेखक ने निम्न प्रकार प्रस्तुत किया है :

"लम्बा कुर्त्ता, गर्दन की बगल में जिसमें एकी ही घुण्डी। कुर्त्ता काफी घेरदार, बाँह का घेरा इतना बड़ा कि हाथी का पैर समा जाय, गले में सोने की छोटी-छोटी ठोस ताबीजों की पंक्ति, जिसमें कुछ चौकोर, कुछ चन्द्राकार।"

× × ×

"सिर चूर-चूर—जैसे भुर्ता बना दिया गया हो। खून और धूल से सराबोर। जिस ललाट से तेज बरसता, उसी पर मक्खियाँ भिन्ना रहीं। एक आँख नीचे धँस गई, तो दूसरी बाहर निकल आई। होंठ को छेदकर दाँत बाहर निकल रहे हैं।"

स्वतन्त्रता के पश्चात् की अनेक समस्याओं को लेकर भी अनेक रेखाचित्र लिखे गये। इनमें प्राचीन और नवीन मूल्यों का संघर्ष उभर कर आ गया। मठिचन्द्रनाथ की 'घासवाली' (नई धारा—मार्च १९५६) रेखाचित्र में दो पात्रों के चित्रण के द्वारा इसी समस्या को उभारा गया है।

राहुलजी ने 'रूपी' ('नई धारा'—जनवरी १९५४) रेखाचित्र में वेश्यावृत्ति की समस्या को उठाया है। रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र 'गेहुँ और गुलाब' में अनेक सामाजिक समस्याओं को उभारा गया है। हर्षदेव मालवीय के रेखाचित्र 'पंडित पाते प्रसाद' ('मध्य प्रदेश सन्देश'—२३ मार्च, १९५५) सामाजिक समस्याओं पर एक व्यंग्यात्मक रेखाचित्र है।

इधर के रेखाचित्रकारों में, प्रकाशचन्द्र गुप्त का विशिष्ट स्थान रहा। आपके 'लैटर बक्स', तोता का ताल', 'दिल्ली दरवाजा' आदि रेखाचित्र मानवीय रूप के प्रस्तुतीकरण सजीव और प्राणवान हो उठे हैं। इनमें मानव के मनोभावों का निर्जीव वस्तुओं में प्रसार दिखाया गया है। चित्रण शैली में अनुपम सजीवता है :

"यहीं से सुकुमार मुगल राजकुमार अपनी बेगमों को साथ लिये विलास और वैभव की अतृप्त प्यास बुझाने निकलते होंगे। दूर देशों से धन के लोलुप व्यापारी तब भी आते होंगे और पलभर यहाँ रुककर उस सुविशाल आगरे की मन ही मन कल्पना करते होंगे।" (देहली दरवाजा)

'विशाल भारत' के 'शहीद' अंक में शहीदों के रेखाचित्र प्रकाशित हुए। ये रेखाचित्र टेकनीक की दृष्टि से बहुत सफल हैं। इनमें चित्रित व्यक्तियों की आकृतिगत विशेषताएँ स्पष्ट होने के साथ ही उनका स्वभाव और चरित्र भी प्रकाशित होता है :

"गणेशजी बहुत दुबले-पतले व्यक्ति थे। बड़े मिताहारी थे।····उनकी मुखाकृति सुन्दर थी। अत्यन्त सवेदनशील, अत्यन्त तेजपूर्ण नेत्र सत्याग्रही, चेतनावान अधर, दृढ़ चिबुक स्थिर सकल्पपूर्ण जबड़े····खद्दर की धोती, कभी गले में दुपट्टा, अधिकतर नहीं।

आकर्षणयुक्त मुस्कान नेत्र से झाँकती हुई करुणा····जल्दी-जल्दी निर्भीक डग भरते हुए चलना, आडम्बर की अत्यधिक शून्यता युक्त हास—कुछ ऐसा था गणेशजी का स्वरूप ।"

सेठ गोविन्ददास ने इसी प्रकार तिलक, गाँधी, मालवीय, नेहरू, पटेल, बोस, जिन्ना, आजाद, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, राधा कृष्णनन, विनोबा भावे, राज गोपालाचार्य, प्रेमचन्द, गुप्तजी आदि के संस्मरणात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं ।

इधर के अनेक रेखाचित्रकार उल्लेखनीय हैं । चन्द्रमौलि बख्शी का 'संयासी बाबा', प्रकाश कुमार का 'सीता दीदी', रामप्रकाश कपूर का 'अंजो दीदी', कृष्णप्रसाद गौड़ 'बेढव बनारसी' का रेखाचित्र संग्रह 'उपसंहार', बनारसीदास चतुर्वेदी का ४० रेखाचित्रों का संग्राह, एवं माखनलाल चतुर्वेदी और कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर के रेखाचित्र महत्वपूर्ण हैं । चतुरसेन शास्त्री के रेखाचित्र 'वे हिस्दुतान का दिल हर ले गये', तथा 'भारत के ट्राटस्की राजा महेन्द्रप्रताप' प्रसिद्ध रेखाचित्र हैं । इनमें रिपोर्ताज की टेकनीक का पुट है । सन् १९७१ में महादेवी का संस्मरणात्मक रेखाचित्र संग्रह 'स्मारिका' प्रकाशित हुआ । इनके सभी रेखाचित्र बहुत सफल बन पड़े हैं ।

निष्कर्ष—हिन्दी-साहित्य की रेखाचित्र विधा अन्य विधाओं की अपेक्षा अपने विकास में अभी बहुत पीछे हैं । अभी इस साहित्य-विधा की विशेष प्रगति नहीं हुई है; परन्तु इसका भविष्य उज्ज्वल है । महादेवी जी जैसी प्रतिमाएँ तक इस विधा में सृजन कर रही हैं ।

हिन्दी-भाषा एवं नागरी लिपि

हिन्दी का उद्भव और विकास

प्रश्न १—हिन्दी-भाषा के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—सन् १००० तक हिन्दी साहित्यिक रूप धारण कर चुकी थी। १००० ई० के बाद मध्यकालीन आर्य-भाषा के अन्तिम रूप अपभ्रंश भाषाओं ने धीरे-धीरे बदलकर आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया था और गंगा की घाटी में प्रयाग या काशी तक बोली जाने वाली शौरसेनी तथा अर्द्ध मागधी की अपभ्रंशों ने हिन्दी-भाषा के समस्त प्रधान रूपों को जन्म दिया।

परन्तु विचारणीय यह है कि हिन्दी ने एकाएक साहित्यिक रूप धारण नहीं कर लिया होगा। पहले वह साधारण बोलचाल की भाषा रही होगी फिर धीरे-धीरे उसका साहित्य में प्रयोग हुआ होगा और तब कालान्तर में यथासमय वह एक साहित्य की भाषा बन गई होगी।

हिन्दी का बोलचाल का रूप क्या था, इसका कोई निश्चित या लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के मतानुसार हिन्दी "सम्भवतः ईसवी सन् ७८२ से पहले बोली जाती रही होगी।" इसके समर्थन में उन्होंने 'कुवलयमाला कथा' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इसी ग्रन्थ में हमको बोलचाल की हिन्दी का सर्वप्रथम रूप उपलब्ध होता है।

कुछ इतिहासकारों ने ७वीं शताब्दी के पुण्य नामक एक कवि की चर्चा की है और उसको हिन्दी का प्रथम कवि माना गया है, परन्तु इसकी भाषा का नमूना उपलब्ध नहीं है। ९वीं और १०वीं शताब्दी के धर्म-प्रचारकों में हिन्दी को धार्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इससे हिन्दी पनपने लगी। आचार्य शुक्ल के अनुसार "पश्चिम के जैन लोगों और पूरब में वज्रयानियों की अपभ्रंश की रचनाओं में जहाँ-तहाँ हिन्दी बोली झलकने रगी।" इस समय के एक कवि सरहपा की रचना मिलती है जिनका समय सन् ९९० के आस-पास पाया जाता है।

विभिन्न विद्वानों ने घुमा-फिरा कर हिन्दी के आरम्भ-काल को प्रायः यही माना है। अतः हम कह सकते हैं कि सन् १००० ई० के लगभग हिन्दी-साहित्यिक रूप धारण कर रही थी। इस अनुमान की संगति आचार्य रामचद्र शुक्ल की मान्यता के साथ बैठ जाती है, जो हिन्दी-साहित्य का प्रारम्भ संवत् ७५० से मानते हैं।

डॉ० श्यामसुन्दर दास ने ठीक ही कहा है कि, "हेमचन्द्र के समय से पूर्व हिन्दी का विकास होने लगा था और चन्द्र के समय तक उसका रूप कुछ स्थिर हो गया था। अतएव हिन्दी का आदिकाल हम संवत् १०१५ के लगभग मान सकते हैं। हिन्दी का आरम्भ काल अब सामान्यतः यही मान लिया गया है।

हिन्दी-भाषा के इतिहास का काल-विभाजन—हिन्दी-भाषा और हिन्दी साहित्य का विकास-क्रम प्रायः समानान्तर चलता है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी-भाषा के इतिहास को तीन मुख्य कालों में विभक्त किया है। यथा—

(क) प्राचीन काल (सन् ३००० ई० पू० से १५०० ई० तक)—जब अपभ्रंश तथा प्राकृतों का प्रभाव हिन्दी-भाषा पर मौजूद था तथा साथ ही हिन्दी की बोलियों के निश्चित स्पष्ट रूप विकसित नहीं हुए थे।

(ख) मध्यकाल (सन् १५०० ई० से १८०० ई० तक)—जब हिन्दी उक्त प्रभाव से मुक्त हो गई थी और हिन्दी की बोलियाँ—विशेषकर ब्रजभाषा और अवधी अपने पैरों पर खड़ी हो गयी थीं।

(ग) आधुनिक काल (सन् १८०० ई० से अब तक)—जब से हिन्दी की बोलियों का मध्यकाल के रूपों में परिवर्तन आरम्भ हो गया है तथा साहित्यिक प्रयोगों की दृष्टि से खड़ी बोली से हिन्दी की अन्य बोलियों को दबा लिया है।

हिन्दी-भाषा के विभिन्न कालों का संक्षिप्त परिचय

(क) प्राचीन काल—दशवीं शब्तादी से पूर्व रचित कई ग्रन्थों से उल्लेख मात्र तो मिलते हैं, परन्तु उनके नमूने उपलब्ध नहीं हैं। हिन्दी का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ चन्द्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो है। इस ग्रन्थ में हमको हिन्दी-भाषा के सर्वप्रथम दर्शन होते हैं, परन्तु उक्त ग्रन्थ की प्रामाणिकता एवं भाषा के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। इस ग्रन्थ की भाषा का स्वरूप इतना मिश्रित एवं वैविध्यपूर्ण है कि उसके मूलरूप का पता लगाना अत्यन्त कठिन हो रहा है।

जिस समय हिन्दी-भाषा का इतिहास आरम्भ होता है, उस समय हिन्दी प्रदेश तीन राज्यों में विभक्त था—(i) दिल्ली अजमेर का चौहान वंश, (ii) कन्नौज का राठौर वंश (iii) महोबा का परमार वंश। ये राज्य सन् ११९१ तक बने हुए थे। उसके बाद १७-१८ वर्ष के भीतर नष्ट हो गये। ये तीनों ही हिन्दू राज्य थे। इनके संरक्षण में हिन्दी पनप रही थी। कन्नौज के अंतिम सम्राट जयचन्द्र का दरबार साहित्य-चर्चा का मुख्य केन्द्र था, परन्तु वहाँ हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत और प्राकृत का अधिक बोलबाला था। संस्कृत के अन्तिम महाकाव्य 'नैषध' के रचयिता हर्ष जयचन्द्र के दरबार के राजकवि थे। महोबा के राजकवि जगनिक का नाम अपने आल्हा-खण्ड के कारण सर्व विदित है। दिल्ली के किसी प्रसिद्ध राजकवि का नाम विदित नहीं है।

१३वीं शताब्दी के आरम्भ तक समस्त हिन्दी-प्रदेश पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया था। विदेशी शासकों की रुचि हिन्दी के प्रति बिल्कुल नहीं थी। तीन सौ वर्षों से अधिक विदेशी शासन की कालावधि से दिल्ली के राजनीतिक केन्द्र से हिन्दी-भाषा की उन्नति में बिल्कुल सहायता प्राप्त नहीं हुई। इस कालावधि में दिल्ली में केवल अमीर खुसरो के मनोरंजन के लिए भाषा के प्रति कुछ रुचि दिखाई। इसके अतिरिक्त उक्त कालावधि के अन्तिम दिनों में पूर्वी भारत में धार्मिक आन्दोलनों के कारण भाषा में कुछ काम हुआ। इस प्रकार के आन्दोलन में गोरखानाथ, रामानन्द तथा इनके प्रमुख शिष्य कबीर आदि उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-भाषा के इस प्राचीन काल की सामग्री प्रायः चार श्रेणीयों में विभिक्त की जा सकती है :

(i) शिलालेख, ताम्रपत्र, प्राचीन पत्र आदि।

(ii) अपभ्रंश काल।

(iii) चारण काव्य, जिनका आरम्भ गंगा की घाटी में हुआ था, किन्तु विकास राजस्थान में हुआ था। कारण राजनीतिक उथल-पुथल थी। तथा

(iv) धार्मिक ग्रन्थ तथा अन्य काव्य-ग्रन्थ।

इस युग के सम्बन्ध में ये बातें विशेष रूप से दृष्टव्य हैं—(i) यह काल वस्तुतः विदेशी शासन का युग था तथा (ii) इसमें हिन्दू राजाओं द्वारा खुदाये गये शिलालेखों की संख्या अत्यन्त स्वल्प है, (iii) इस युग में नाथ-पंथ एवं वज्रयानी सिद्ध-साहित्य की रचना हुई, जिसके अनेक ग्रन्थों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। (iv) इस युग के ग्रन्थों में किसी भी ग्रन्थ की प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं है। सम्भवतः ये ग्रन्थ बहुत दिनों से मौखिक रूप में रहे हों। इसी कारण यह अनुमान किया जाता है कि इन ग्रन्थों की भाषा में पर्याप्त परिवर्तन हो गया होगा।

इस काल के साहित्यकारों में विद्यापति का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। 'पदावली' में इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। परन्तु 'पदावली' की भाषा विवादास्पद है। कुछ विद्वान 'पादावली' की भाषा को हिन्दी न मानकर मैथिली मानते हैं।

कबीर आदि संत कवियों की रचनाएँ भी प्राचीन काल के अन्तर्गत आती हैं। इनकी भाषा पंचमेल खिचड़ी है। अतः उसका स्वरूप भी अस्थिर है।

इस काल में केवल अमीर खुसरो की भाषा को हम हिन्दी का प्रारम्भिक साहित्यिक रूप मान सकते हैं। इनकी कविता की भाषा मूल रूप से यही है जिसे हम आज हिन्दी कहते हैं, तथा :

स्याम बरन की एक है नारी। माथे ऊपर लागे प्यारी।
या का अरथ जो कोई खोलै। कुत्ते की वह बोली बोले।

प्राचीन हिन्दी के ऊपर मुसलमानों की भाषाओं—अरबी, तुर्की और फारसी का खूब प्रभाव पड़ा।

सारांश यह है कि (क) आदि काल में हिन्दी-भाषा विभिन्न प्रषायों से शक्ति ग्रहण करके विकसित हो रही थी। संस्कृत के समान वह व्याकरण के कठोर नियमों द्वारा जकड़ी न थी। आदान-प्रदान के द्वारा वह निरन्तर विकास को प्राप्त हो रही थी। (ख) खड़ी बोली, ब्रजभाषा और अवधी अपने-अपने क्षेत्र की बोलचाल की भाषा रही होगी। धीरे-धीरे इनका प्रयोग साहित्यिक रचनाओं के लिए होने लगा। (ग) इस काल के उल्लेखनीय कवि हैं—नरपति नाल्ह, चंद बरदाई, जगनिक, गोरखनाथ, अमीर खुसरों, विद्यापति तथा कबीर।

(ख) मध्यकाल (सन १५०० ई० से १८०० ई० तक)—मध्यकाल तक आते-आते तुर्कों का महत्व समाप्त हो गया था और मुगलों का साम्राज्य स्थापति होने लगा था। इस संक्राति-काल में कुछ समय तक राजपूतों का भी प्रभुत्व रहा। इन राजपूत राजाओं की हिन्दी के प्रति सहानुभुति थी। जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए मुगल शासकों ने भी जनता की भाषा हिन्दी को अपनाया।

आदिकाल में हिन्दी का सर्वमान्य साहित्यिक रूप बन चुका था। इस काल में ब्रजभाषा और अवधी साहित्यिक भाषाएँ बन चुकी थीं तथा खड़ी बोली साधारण नागरिक व्यवहार, व्यापार, शासन आदि की भाषा थी।

ब्रजभाषा और अवधी के प्रचार का कारण धार्मिक आन्दोलन थे। अवधी में सूफियों ने ग्रन्थ-रचना करके सूफी धर्म का प्रचार किया। 'रामचरितमानस' की रचना भी अवधी में ही हुई। कृष्ण-भक्त कवियों ने ब्रजभाषा' को अपनाया। 'रामचरितमानस' सदृश ग्रन्थ की रचना के होने पर भी अवधी का विशेष प्रचार नहीं हुआ और न उसके किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना ही हुई। ब्रजभाषा समस्त हिन्दी प्रदेश की साहित्यिक भाषा हो गई थी। १७वीं शताब्दी में प्रायः समस्त हिन्दी-साहित्य ब्रजभाषा में लिखा गया। ब्रजभाषा का रूप दिन पर दिन साहित्यिक, परिष्कृत तथा सुसंस्कृत होता गया। बुन्देलखण्ड तथा राजस्थान के देशी राज्यों के सम्पर्क में आने के कारण इस कालावधि के बहुत से कवियों की भाषा में जहाँ-तहाँ बुन्देली तथा राजस्थानी बोलियों का प्रभाव आ गया है।

इस युग में खड़ी बोली मुसलमानों की बोली समझी जाने लगी थी। उन दिनों खड़ी बोली का का अस्तित्व तो था, परन्तु कवि गण एवं लेखक उसका प्रयोग नहीं करते थे। मुसलमान कवि भी कविता करने के लिए ब्रज-भाषा और अवधी का प्रयोग करते थे। इस युग में खड़ी बोली का प्रयोग दक्षिण में हुआ। १९वीं शताब्दी के उत्तर भारत में भी कई मुसलमान कवि हुए जिन्होंने खड़ी बोली उर्दू को परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। इनमें मीर, शैदा, इंशा, गालिब, जोक और दाग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सारांश यह है कि मध्यकाल के प्रथम भाग में हिन्दी की पुरानी बोलियों ने विकसित होकर ब्रज, अवधी और खड़ी बोली का रूप धारण कर लिया। ब्रज और अवधी धार्मिक आश्रय प्राप्त करके साहित्यक बन गई और आगे बढ़ीं। खड़ी बोली आंशिक रूप से राजनीतिक आश्रय प्राप्त करके विकसित होती रही। उसकी विकास-गति बहुत धीमी रही। कहने का तात्पर्य यह है कि मध्यकाल में ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली के अनेक हिन्दू-मुसलमान कवि हुए। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि "वास्तव में यह काल हिन्दी-साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।"

(ग) आधुनिक काल (सन् १८०० ई० से अब तक)—सन् १८०० ई० के लगभग आगरा उपप्रान्त तथा सन् १८५६ में अवध पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। नवीन राजनीतिक परिस्थितियों ने खड़ी बोली को प्रोत्साहन प्रदान किया और खड़ी बोली उर्दू के रूप में चारों ओर फैल गई।

१९वीं शताब्दी तक कविता की भाषा ब्रजभाषा रही और गद्य की भाषा खड़ी बोली रही। बीसवीं शताब्दी के आते-आते खड़ी बोली गद्य पद्य दोनों की साहित्यिक भाषा बन गई। धीरे-धीरे खड़ी बोली के ऊपर से ब्रजभाषा का प्रभाव कम होता गया है।

खड़ी बोली का साहित्य बहुत तेजी के साथ पनपा है। अवधी और ब्रजभाषा से उसको बहुत सहायता प्राप्त हुई है, क्योंकि थोड़े से रूप भेद के साथ तीनों की शब्द-सम्पत्ति एक ही है। संस्कृत के अतिरिक्त उसने अरबी, फारसी अँग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं से भी बहुत कुछ ग्रहण किया है। नवीन युग की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु इसमें अनेकानेक नवीन शब्दों का निर्माण हो रहा है। उसमें वैज्ञानिक एवं आधुनिक विषय से सम्बन्धित शताब्दी का निर्माण बहुत तेजी के सांथ हो रहा है।

एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है। खड़ी बोली के इतने व्यापक प्रभाव के होते हुए भी हिन्दी की अन्य प्रादेशिक बोलियाँ अपने-अपने प्रदेशों में विकसित हो रही हैं। बोलचाल में भी ग्रामीण जनता स्थानीय बोलियों का प्रयोग करती है, नगर निवासी शिक्षित लोग प्रायः खड़ी बोली का प्रयोग करते हैं। नवीन परिस्थितियों में ग्रामीण बोलियों के रूप में काफी परिवर्तन हो गया है। जायसी के 'पद्मावत' की अवधी और आजकल अवध में बोली जाने वाली अवधी में पर्याप्त अन्तर है। सूरदास की ब्रज भाषा से वह ब्रज भाषा एकदम भिन्न है जो ब्रज प्रदेश में आजकल बोली जाती है।

निष्कर्ष—हिन्दी एक प्रवाहमान एवं सशक्त भाषा है वह आन्तरिक शक्ति को विकसित करने के लिए बाह्य प्रभावों एवं परिस्थियों से शक्ति संजय करती हुई निरन्तर विकासशील रही है। वह बाहर से उपयुक्त शब्द ग्रहण करने में

संकोच नहीं करती है। उसका व्याकरण भी विशेष जटिल नहीं है। हिन्दी-जीवनी शक्ति से ओत-प्रोत है।

हिन्दी के प्रचलित विविध-रूप

प्रश्न २—हिन्दी-शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा स्पष्ट करते हुए, उसके प्रचलित विभिन्न रूपों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति—'हिन्दी' शब्द की व्युत्पत्ति पर विभिन्न भाषा-विज्ञानियों ने विचार किया है। प्रमुख भाषाशास्त्री **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा** प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से **'हिन्दवी या 'हिन्दी'** शब्द को फारसी मानते हैं। यदि हम प्राचीन एवं मध्यकालीन आर्य भाषाओं की प्राप्त सामग्री का सूक्ष्म अध्ययन करें तो हमें हिन्दी शब्द का व्यवहार नहीं भी कहीं मिलेगा। फारसी में 'हिन्दी' शब्द का अर्थ हिन्द से सम्बन्ध रखने वाला है, किन्तु हिन्दी का प्रयोग 'हिन्द के वासो' या 'हिन्दी की भाषा' के अर्थ में भी होता रहा है। इकबाल साहब के प्रस्तुत जुमले में कि 'हिन्दी है हम वतन हैं- हिन्दोस्तां हमारा' के अन्तर्गत हिन्दी का प्रयोग हिन्द के वासी के रूप में हुआ है। पर अमीर खुसरों के समय में हिन्दी से तात्पर्य भारतीय मुसलमानों से था। खुसरो ने हिन्दी तथा हिन्दू में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है। बादशाह ने हिन्दुओं को हाथी से कुचलवा डाला, किन्तु मुसलमान जो हिन्दी थे, सुरक्षित रहे। **(Why ever linc, Hindu full inte the King,s hand was pounded into bits under thc faet cf the elephants 'The muslims who were Hindis (Gountry born had their Lines spared)—"Amir Khosru in Elliet 539—Holeson Jabson Page 315."**

इसके अतिरिक्त इस शब्द की व्युत्पत्ति पर दूसरी प्रकार से भी विचार किया जा सकता है। हमारे देश का 'हिन्द' नाम वस्तुतः 'सिधु' का प्रतिरूप है। ईरान अथवा फारस के निवासी सिन्धु नदी के तट के प्रदेश को 'हिन्द' तथा वहाँ के निवासियों को हिन्दू कहते थे (भारसी में स, ह में परिवर्तित हो जाता है।) ग्रीक लोगों ने सिन्धु नदी को 'इन्दोस' यहाँ के निवासियों को 'इन्दोई' तथा प्रदेश को 'इन्दोके' तथा 'इन्दिका' नाम से सम्बोधित किया है। यही आगे चलकर लैटिन रूप में 'इण्डिया' बना और इस प्रकार इण्डिया का अर्थविस्तार हो गया और इसका प्रयोग सम्पूर्ण भारत के लिये होने लगा। पर हिन्दी,भाषा-विज्ञान के मान्य विद्वान डॉ० उदयनारायण तिवारी हिन्ही-शब्द को मुसलमानों की देन मानते हैं।

भाषा के अर्थ में 'हिन्दी', 'हिन्दुई', 'हिन्दवी', 'दक्खिनी', 'दखमी', या 'दखनी', 'हिस्दुस्तानी' या हिन्दोस्तानी, या हिन्दुस्तानी, 'खड़ी बोली,' 'रेख्ता', रेख्ती, 'उर्दू' आदि नामों से अभिहित की जाती है।

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्द या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य, द्रविड़ तथा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है, किन्तु आजकल इसका व्यवहार उत्तर भारत के मध्यप्रदेश के हिन्दुओं की वर्तमान साहित्यिक भाषा के अर्थ में मुख्यतया तथा साथ ही साथ इसी भूमि-भाग की उप-भाषाओं और उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतया होता है। पर ग्रिअर्सन आदि भाषा वैज्ञानिक पूर्वी तथा पश्चिमी हिन्दी रूपों के क्षेत्र को ही हिन्दी प्रदेश मानते हैं।

"सर्वेक्षण" (Linguistic Survey of India—Giurson) के अनुसार हिन्दी-भाषा क्षेत्र की सीमाएँ पश्चिमी में जैसलमेर, उत्तर पश्चिमी में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नैपाल के पूर्वी ओर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचाते हैं। भाषा शास्त्र की दृष्टि से ऊपर दिये हुए भूमि भाग में पाँच भाषा वर्ग माने जाते हैं। यथा :

१—राजस्थानी वर्ग, २—बिहारी वर्ग, ३—पहाड़ी वर्ग ४—पश्चिमी हिन्दी वर्ग, ५—पूर्वी हिन्दी वर्ग।

उर्दू—आधुनिक खड़ी बोली, साहित्यिक हिन्दी के उस दूसरे रूप का नाम उर्दू है, जिसका व्यवहार पाकिस्तान तथा उत्तर भारत के पढ़े-लिखे मुसलमानों तथा उनसे अधिक सम्पर्क में आने वाले कुछ हिन्दुओं में पाया जाता है। व्याकरण के रूपों की दृष्टि से यदि दोनों भाषाओं का अध्ययन किया जाय तो दोनों भाषाओं का मूलाधारा एक ही प्राप्त होता है। डॉ० एहतमाश हुसैन भी हिन्दी और उर्दू का मूलाधार एक ही मानते हैं। पर दोनों भाषाओं के साहित्यिक वातावरण, शब्द-समूह एवं लिपि में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसका मुख्य कारण यह है कि जहाँ साहित्यिक हिन्दी अपनी जननी संस्कृत में पूर्णतया प्रभावित है वहाँ उर्दू पर फारसी और अरबी का प्रभाव पड़ा। पर साथ ही उर्दू में फारसी जितनी खप गयी है उतनी अरबी नहीं।

नहेर यूल तथा आर्थर कोक बर्नेल के सन् १८८६ में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध कोश डॉ० हाब्सन जान्सन के पृ० ४८८ में उर्दू के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवरण दिया है—संज्ञा हिस्दुस्तानी भाषा। उर्दू (तुर्की) शब्द के तातारखान के पड़ाव अथवा खेम से तात्पर्य है : ··· ··· उर्दू का अर्थ है किला। ············ दरबार तथा शिविर में एक मिश्रित भाषा का आविर्भाव हुआ जो 'जवाने उर्दू' कहलाई।

उर्दू का व्यवहार सबसे प्रथम उर्दू—ए—मुअल्ला, अर्थात् देहली के महलों

के बाहर किले के शाही फौजी बाजारों में होता था, अतः इसी से दिल्ली के पड़ौस की बोली के इस विदेशी शब्द से मिश्रित रूप का नाम उर्दू पड़ा। तुर्की भाषा में उर्दू शब्द का अर्थ है बाजार, वास्तविक रूप में उर्दू पहले बाजार की भाषा थी। चूँकि फारसी और अरबी के कब्द इस भाषा में मिले हुए थे। इसलिए राजकाज से सम्बन्ध रखने वाले लोगों ने इस भाषा को अपनी सुविधा के लिए अपनाना आरम्भ किया। पर अंग्रेज विद्वान डॉ० ग्रेहम बेली उर्दू का आधार पंजाबी को मानते हैं, जिसमें खड़ी बोली के प्रभाव से परिवर्तन हुए। डॉ० बेली का तर्क है कि दिल्ली को शासन केन्द्र बनाने के पूर्व १००० से २१०० ई० तक लगभग दो सौ वर्ष यवन आक्रमणकारी पंजाब में रहे। उस समय विचारों के आदा-प्रदान के लिये जो भाषा सीखी होगी वह भाषा तत्कालीन पंजाबी होगी और इस प्रकार आगे बढ़ने पर भी इसी भाषा का प्रयोग करते रहे होंगे। उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विचार किया, जिनमें पं० चन्द्रवली पांडेय, मुहम्मद हुसैन आजाद- ग्रिअर्सन, श्री ब्रज मोहन दत्तात्रेय एवं डॉ० जाकिर हुसैन आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं।

उर्दू भाषा का साहित्य में प्रयोग सर्वप्रथम दक्षिण में हुआ। उस समय दिल्ली-आगरा के दरबार में साहित्यिक भाषा का प्रथम फारसी को मिला हुआ था, तब उर्दू साधारण भाषा समझी जाती थी। औरंगाबाद के वली उर्दू प्रथम प्रख्यात कवि हैं। वली के पश्चात् उर्दू भाषा-साहित्य का बडी तीव्र गति से विकास हुआ और दिल्ली तथा लखनऊ केन्द्रों में उर्दू विकास की चरमसीमा पर पहुँचा गयो। उर्दू के दो रूप हैं—पहले को 'रेख्ता' (मिश्रित) कहते हैं, क्योंकि फारसी शब्द अधिक मिले हैं। स्त्रियों की भाषा को रेख्ता कहते हैं। उर्द् का एक उदाहरण प्रस्तुत करना उचित ही होगा :

बूये गुल नालये दिल दूदे चिराग महफिल।
जो तेरी वजम से निकला परेशां निकला।

हिन्दुस्तानी—यह बोलचाल की भाषा है पर इसका झुकाव फारसी की ओर अधिक है। इसका आधार भी खड़ी बोली ही है। इसमें किस्से, गजलें आदि लिखी भी गई हैं। अधिकतर बाजारू किताबें-इसी भाषा में लिखी हैं। 'भाषा सर्वे' में ग्रियर्सन ने खड़ी बोली को 'वर्नाक्यूलर हिदुस्तानी' नाम दिया है। पर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसके लिए (खड़ी बोली के लिये) खड़ी बोली अथवा सिरहिन्दी नाम अधिक उपयुक्त समझते हैं। केलाग इत्यादि योरोपीय विद्वानों ने भी अवधी। ब्रजभाषा से आधुनिक साहित्यिक हिन्दी को अलग करने के लिए 'हाई हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया है।

हिन्दी की बोलियाँ

प्रश्न ३—हिन्दी की बोलियों का संक्षिप्त वर्गीकरण कीजिए ।

उत्तर—व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र हिमालय से लेकर नर्मदा तक है और इसमें ये प्रदेश आते हैं—बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली । इस विशाल भू-भूमि में बोली जाने वाली समस्त बोलियाँ हिन्दी की बोलियाँ कही जाती हैं । इस क्षेत्र की मुख्यतः चार विभाषायें मानी जाती हैं । यथा—(i) राजस्थान, की राजधानी, (ii) वनारस गोरखपुर कमिश्नरी की बिहारी, (iii) उत्तर में स्थिति पहाड़ों की पहाड़ी तथा, (iv) अवध एवं छत्तीगढ की पूर्वी हिन्दी ।

उक्त क्षेत्र में मुख्यतः १८ बोलियाँ वोली जाती हैं, जिनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है—

(क) पश्चिमी वर्ग--(i) खड़ी बोली, (ii) ब्रज, (iii) कन्नौजी, (iv) बाँगरू तथा (v) बुन्देली ।

(ख) पूर्वी वर्ग—(i) अवधी, (ii) बघेली, (iii) छत्तीसगढ़ी ।

(ग) बिहारी वर्ग—(i) भोजपुरी, (ii) मैथिली, (iii) मगही ।

(घ) राजस्थानी वर्ग—(i) मारवाड़ी, (ii) मायवी, (iii) जयपुरी तथा (iv) मेवाती ।

(ङ) पहाड़ी वर्ग—(i) कुमाऊँनी, (ii) गढ़वाली, (iil) पश्चिमी पहाड़ी (अनेक बोलियाँ) ।

उक्त १८ बोलियों के अन्तर्गत ७५ उपबोलियाँ वोली जाती हैं ।

ग्रियर्सन आदि भाषा वैज्ञानिकों ने हिन्दी के उक्त भू-भाग को दो क्षेत्रों में पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्रों में विभाजित किया है । उनके मतानुसार पश्चिमी हिन्दी ही वस्तुतः वास्तविक हिन्दी है । इसको केन्द्रीय हिन्दी या आर्य भाषा भी कहते हैं । इसकी प्रधान पाँच विभाषाएँ हैं—खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बाँगरू और बुन्देली । इस प्रकार भाषा विज्ञान के विद्वानों के एक महत्वपूर्ण वर्ग के अनुसार राजस्थानी, मैथली, मगही, भोजपुरी एवं अवधी हिन्दी-क्षेत्र के बाहर की बोलियाँ हैं । अस्तु ।

पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी

प्रश्न ४ – हिन्दी की प्रमुख बोलियों के नाम बतलाइये तथा उनकी विशेषतायें एवं उनके साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालिए ।

उत्तर—हिन्दी के दो रूप और उनकी बोलियाँ—भाषाशास्त्री हिन्दी के दो रूप मानते हैं—(क) पश्चिमी हिन्दी और (ख) पूर्वी हिन्दी ।

(क) पश्चिमी हिन्दी ही भाषाशास्त्री की दृष्टि से 'हिन्दी' कही जाती है। इसके अन्तर्गत पाँच बोलियाँ हैं—(i) खड़ी बोली, (ii) ब्रजभाषा, (iii) कन्नौज, (iv) बाँगरू तथा बुन्देली।

(ख) पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत तीन बोलियाँ आती हैं—(i) अवधी, (ii) बघेली और (iii) छत्तीगढ़ी। कुछ विद्वान 'भोजपुरी' को भी अवधी की एक बोली मानते हैं।

बोलियों का संक्षिप्त परिचय

खड़ी बोली अथवा हिन्दोस्तानी—खड़ी बोली उस बोली को कहते हैं जो रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून अम्बाला तथा कलसिया और पटियाल के पूर्वी भागों में बोली जाती है।

देहरादून के पहाड़ी भाग में पहाड़ी वर्ग की जौनपुरी बोली जाती। ऊपरी दोआब के आगे उस पार पंजाबी का क्षेत्र आरम्भ हो जाता है।

खड़ी बोली में अरबी-फारसी के शब्दों का व्यवहार अधिक होता है, परन्तु वे शब्द अर्द्धतत्सम या सद्भाव होते हैं। खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है। उस पर पंजाबी का भी कुछ प्रभाव दिखाई देता है।

यह खड़ी बोली ही हिन्दी, उर्दू और हिदुस्तानी तीनों का मूलाधार है। खड़ी बोली शुद्ध रूप में केवल एक बोली है। वह जब साहित्यिक रूप धारण कर लेता है तब वह कभी हिन्दी और कभी उर्दू कहलाती है। जिस खड़ी बोली में संस्कृत के शब्द अधिक होते हैं, उसे हिन्दी कहा जाता है। इसी हिन्दी में वर्तमान युग का अधिकांश साहित्य निर्मित हो रहा है। खड़ी बोली का यह साहित्यिक रूप हिन्दी के नाम से राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित है।

जब खड़ी बोली में अरबी फारसी शब्दों का अधिक प्रयोग होता है और उसकी वाक्य रचना पर भी कुछ विदेशी रंग चढ़ जाता है तब वह उर्दू कहलाती है।

खड़ी बोली का एक तीसरा रूप है हिन्दुस्तानी। इसको न तो साहित्यिक ही कहते हैं और न बोलचाल की बोली ही कह सकते हैं। विद्वानों ने हिन्दुस्तानी का स्वरूप-विवेचन विभिन्न प्रकार से किया है, परन्तु सारांश की बात यह है कि पुरानी हिन्दू, उर्दू और अँग्रेजी के मिश्रण में जो एक नई जबान अपने आप बन गई है, वह हिन्दुस्तानी के नाम से मशहूर है।

ब्रज-भाषा—ब्रजभाषा को 'ब्रज भाखा' या चतुर्वेदी' भी कहते हैं। यह ब्रजमण्डल की भाषा है। यह गंगा-यमुना के दोआब-अन्तर्वेद की भाषा होने के कारण 'अन्तर्वेदी' भी कही जाती है।

ब्रजभाषा अपने शुद्ध रूप में मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धोलपुर में बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या १ करोड़ है।

इस भाषा में कृष्ण सम्बन्धी विपुल साहित्य की रचना हुई है। तमाम कृष्ण काव्य तथा रीतिकाव्य की रचना ब्रजभाषा में ही हुई है। इसमें इतनी सुन्दर एवं

पुष्कल काव्य लिखा गया कि उसे बोली या विभाषा मात्र न कह कर भाषा का पद प्राप्त हो गया।

यदि मथुरा को केन्द्र माना जाये तो ब्रजभाषा का क्षेत्र इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है। दक्षिण में ब्रजभाषा, आगरा, भरतपुर के अधिकांश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिमी भाग तथा जयपुर के पूर्वी भाग में बोली जाती हैं। उत्तर में यह गुणगाँव के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर-पूर्व में दोआब में यह बुलन्दशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी तथा गंगापार के बदायूँ, बरेली, नैनीताल में बोली जाती है।

कन्नौजी—कन्नौजी का नामकरण कन्नौज के नाम पर हुआ है। कन्नौज फर्रुखाबाद जिले में गंगातट पर स्थित है।

कन्नौजी में भी अच्छा साहित्य उपलब्ध है और वह ब्रजभाषा का ही साहित्य माना जाता है।

कन्नौजी को ब्रजभाषा और अवधी के बीच की बोली कहा जा सकता है। आजकल शुद्ध कन्नौजी इटावा और फर्रुखाबाद एवं गंगा के उत्तर शाहजहाँपुर जिले में बोली जाती है। कानपुर और हरदोई जिलों में भी कन्नौजी बोली जाती है। हरदोई में इसके साथ अवधी का सम्मिश्रण होने लगता है।

बाँगरू—यह बाँगर देश की भाषा है। पंजाब के दक्षिणी-पूर्वी भाग को 'बाँगर' कहते हैं। बाँगर का तात्पर्य उस उच्च एवं शुष्क भूमि से होता है: जहाँ नदी की बाढ़ नहीं पहुँच पाती है। बाँगरू बोली दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, नाभा और झींद जिलों में बोली जाती है। बाँगरू वस्तुतः पंजाबी राजस्थानी और खड़ी बोली की खिचड़ी है।

बाँगरू के कई स्थानीय नाम हैं- हरियाणा के पड़ौस में यह हरियानी, वैसवाली या देसड़ी कहलाती है। रोहतक तथा दिल्ली के आस-पास जाटों की अधिक आबादी के कारण इसे जाटू कहते हैं, तथा दिल्ली में चमारों के मध्य इसे चमरवा बोली कहते हैं। परुषता इस बोली की मुख्य विशेषता है।

बुन्देली—बुन्देली या बुन्देलखण्डी वस्तुतः बुन्देलखण्ड की बोली है। शुद्ध रूप में यह झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी और होशंगाबाद में बोली जाती है।

बुन्देली के बोलने वालों की संख्या लगभग ब्रजभाषा को बोलने वालों के बराबर है।

मध्यकाल में बुन्देलखण्ड में केशवदास प्रभृति कई अच्छे कवि हुए, परन्तु उनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा ही रही, जिस पर बुन्देली की छाप रही।

अवधी—उत्तर प्रदेश में हरदोई जिले को छोड़कर शेष अवध में अवधी बोली जाती है। इसके क्षेत्र में लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, खीरी, फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुलतानपुर, प्रतापगढ़ और बाराबंकी जिले आते हैं। इसके अलावा इलाहाबाद, फतहपुर और मिर्जापुर तथा जौनपुर के कुछ भागों में भी

अवधी बोली जाती है। बिहार के मुसलमान भी अवधी बोलते हैं। इस प्रकार इसका मिश्रित रूप मुजफ्फरपुर तक पाया जाता है।

अवधी भाषा में श्रेष्ठ साहित्य की रचना हुई है। जायसी का 'पद्मावत' और तुलसी का रामचरितमानस जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थ अवधी के ही है।

ब्रजभाषा की भाँति अवधी भी एक मीठी बोली है। विशेष कर पूर्वी अवधी।

बघेली—अवधी के दक्षिण में बघेली का क्षेत्र है यह मध्य प्रदेश के दमोह, जबलपुर, मांडला तथा बालाघाट के जिलों में बोली जाती हैं।

नई खोजों के अनुसार बघेली एक स्वतन्त्र भाषा न होकर अवधी का ही एक रूप है।

बघेली में बहुत कम साहित्य की रचना हुई है। बघेली खण्ड में रीवाँ दरबार के कवियों ने साहित्य रचना के लिए अवधी अपनायी है।

छत्तीसगढ़ी—छत्तीसगढ़ी को लरिया खल्ताही भी कहते हैं। यह मध्य प्रदेश के रायपुर और बिलासपुर जिलों में तथा कांकेर, नन्दगाँव, कोरिया के आस-पास विभिन्न रूपों में बोली जाती है। इसमें साहित्य रचना नहीं के बराबर है।

भोजपुरी—कुछ विद्वान भोजपुर को पूर्वी हिन्दी की ही बोली मानते हैं। इसमें डॉ० धीरेन्द्र वर्मा मुख्य हैं।

भोजपुरी बोली बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर बस्ती, आजमगढ़, शाहाबाद, चम्पारन, सारन जिलों के अतिरिक्त छोटा नागपुर तक बोली जाती है।

बिहार के शाहाबाद जिले में भोजपुर नामक एक छोटा-सा कस्बा और परगना है। इसी के नाम पर इस बोली का नाम पड़ा है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग २ करोड़ है।

भोजपुरी में बहुत ही कम साहित्य की रचना हुई है। इस क्षेत्र के कविगण मध्यकाल में ब्रजभाषा और अवधी में तथा आधुनिक काल में खड़ी बोली में लिखते रहे हैं। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि, "भाषा सम्बन्धी कुछ साम्यों को छोड़कर शेष सब बातों में भोजपुरी बिहार की अपेक्षा हिन्दी प्रदेश के अधिक निकट है।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमारे सामने निम्नलिखित निष्कर्ष आते हैं :

(i) हिन्दी का क्षेत्र बाँगरू, खड़ी बोली, ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी और भोजपुरी तक मान लिया जाता है। परन्तु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी के अन्तर्गत केवल ५ बोलियाँ आती हैं—खड़ी बोली, ब्रज, कन्नौजी, बाँगरू और बुन्देली।

(ii) कुछ लोगों के मतानुसार कि उपर्युक्त नौ भाषाएँ हिन्दी की बोलियाँ हैं तथा राजस्थानी एवं बिहारी हिन्दी की विभाषाएँ हैं ।

(iii) उर्दू हिन्दी की एक शैली है जो काल-क्रमानुसार एक पृथक् साहित्यिक भाषा बन गई है ।

(iv) विस्तार और व्यापकता की दृष्टि से हिन्दी भारत की सर्वाधिक समृद्ध एवं महत्वपूर्ण भाषा है । इसका समस्त साहित्य ब्रज, अवधी और खड़ी बोली में उपलब्ध है ।

(v) काव्य-रचना की दृष्टि से ब्रजभाषा हिन्दी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बोली है ।

(vi) हिन्दी के विभिन्न रूपों को चन्दबरदाई, कबीरदास, सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी, केशव, बिहारी, रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पन्त, महादेवी वर्मा, दिनकर आदि कवियों ने समृद्ध बनाया है ।

(vii) हिन्दी की विभिन्न बोलियों पर 'खड़ी बोली' का प्रभाव क्रमशः बढ़ रहा है और इन बोलियों के बोलसे वाले कवि खड़ी बोली में ही काव्य-रचना करने लगे हैं ।

(viii) उत्तर प्रदेश में चार प्रमुख बोलियाँ बोली जाती हैं—(i) मेरठ बिजनौर की खड़ी बोली, (ii) मथुरा-आगरा की ब्रजभाषा, (iii) लखनऊ-फैजाबाद की अवधी तथा (ix) बनारस-गोरखपुर की भोजपुरी ।

यद्यपि हिन्दी-क्षेत्र का विस्तार पश्चिम में राजस्थान तथा पूर्व में बिहार तक है, तथापि राजस्थानी और बिहारी भाषाओं को हिन्दी के अन्तर्गत मानना विवादास्पद है ।

दक्खिनी हिन्दी

प्रश्न ५—दक्खिनी हिन्दी पर प्रकाश डालिये ।

अथवा

प्रश्न ६—दक्खिनी हिन्दी की उत्पत्ति, उसमें विकास एवं उसकी शैली पर पड़ने वाले प्रभाव का संक्षिप्त परिचय दीजिये ।

उत्तर—दखिनी हिन्दी का सामन्य परिचय—दक्खिनी हिन्दी वर्तमान खड़ी खोली का ही एक रूप है । दक्षिण के मुसलमान जिस हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं उसे दक्खिनी हिन्दी या केवल दक्खिनी अथवा दखिनी नाम दिया गया है । कुछ विद्वान इसको सरल दक्खिनी उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी भी कहते हैं ।

दक्खिनी का क्षेत्र—दक्खिनी हिन्दी बड़ौदा, बरार, कोचीन, कुग, हैदराबाद, (आन्ध्र प्रदेश), मद्रास, मैसूर, ट्रावनकौर और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में बोली जाती है ।

दक्खिनी का नामकरण—पारिवारिक दृष्टि से दक्खिनी उत्तर भारत की आर्य-भाषाओं और विशेष रूप से सम्बन्धित है । किसी भी दक्षिणी आर्य या द्रविड़ी

भाषा से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। तब विचारणीय प्रश्न यह है कि इनका नाम 'दक्खिनी' क्यों कर पड़ा। इसका कारण ऐतिहासिक है।

अलाउद्दीन खिलजी से लेकर मोहम्मद तुगलक तक दिल्ली के बादशाहों ने किसी न किसी रूप में दक्षिण पर अधिकार रखा। परन्तु दक्षिण इस प्रभाव से मुक्त हो गया और वहाँ छोटे-छोटे अनेक राज्य स्थापित हो गये। इन राज्यों के संस्थापक अधिकांशतः उत्तर भारत के मुसलमान सरदार थे। दक्षिण की भाषाएँ उनके लिए अपरिचित थीं। वे उत्तर भारत की अपनी हिन्दी का ही प्रयोग करते थे। इन राज्यों में साहित्यकारों को संरक्षण भी प्राप्त होना था। इन साहित्यकारों की भाषा का सम्बन्ध दक्षिणी राज्यों से था, इसलिए उनकी भाषा 'दक्खिनी' कही जाने लगी। दक्षिण में इस भाषा के प्रचार का एक अन्य कारण भी था। उस समय यह भाषा धर्म-प्रचार एवं व्यापार की भाषा बन गई थी। अतः यह एक प्रकार से उत्तर भारतीयों और दक्षिण भारतीयों की सम्पर्क भाषा बन गई। डॉ० बाबूराम सक्सेना ने लिखा है कि, "खड़ी बोली के विकास और संवर्धन में दक्षिणी रियासतों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योग देकर उसे मुगल साम्राज्यकालीन राष्ट्रभाषा का रूप देने का प्रयत्न किया था।"

दक्खिनी हिन्दी खड़ी बोली का पूर्व रूप है—आधुनिक काल के आरम्भ तक "हिन्दवी" का अर्थ जनसाधारण की बहुत समय तक भाषा थी। हिन्दी का अर्थ हिन्दुओं की भाषा थी। मुसलमानी लेखकों ने इसी को दक्खिनी कहा। तात्पर्य यह है कि हिन्दवी और दक्खिनी तीनों शब्दों का तात्पर्य एक ही भाषा से था।

इंशाअल्ला ने अपनी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है कि "यह नहीं होने का कि "हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।" वस्तुतः हिन्दवी या दक्खिनी खड़ी बोली के रूप में विकसित हुई और हिन्दी-साहित्य की प्रधान-भाषा बनी।

दक्खिनी का विकास—मुसलमान शासकों ने जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए दिल्ली प्रदेश की भाषा शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारी भाषा को अपनाया। मुस्लिम सन्त और फकीर भी अपने धर्म-प्रचार का कार्य इसी भाषा में कर रहे थे। अमीर खुसरो का नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है उनका समय १२५३—१३१५ ई० तक था अर्थात् यह क्रम १३ वीं से १५ वीं शताब्दी तक चलता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि इन दिनों में जो ग्रन्थ लिखे गये, वे इन विदेशी साहित्यकारों द्वारा ही लिखे गये। हिन्दू अपनी साहित्यिक भाषाओं—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में साहित्य रचना करते थे।

यह विदेशी परम्परा खड़ी बोली को अपने साथ लेकर चौदहवीं शताब्दी में दक्षिण गई। वहाँ मुसलमान भौजों, सन्तों और दरवेशों के माध्यम से यह पनपी। मुसलमान शासकों की मातृ-भाषा तुर्की थी। इस कारण तुर्की का प्रयोग तो मुसलमान के लिए आवश्यक ही था। दक्षिण प्रदेशों में रहने वाले मुसलमानों के

लिए हिन्दी उत्तर भारत के साथ परम्परा सम्बन्ध स्थापित करने का एक मात्र साधन थी। इसी कारण दक्षिण के सभी राज्यों ने इसके विकास में योग दिया। नयी सल्तनत में वह सरकारी जबान थी। दफ्तरों में हिन्दी का ही प्रयोग होता था।

अठारहवीं शताब्दी तक दक्खिनी के सभी कलाकार मुसलमान हुए थे। परन्तु सन् १७२३ के आस-पास आसफजाही के राज्य में मोहनलाल मेहताब, लाला लक्ष्मीनारायण शफीक आदि कुछ हिन्दुओं ने भी दक्खिनी में रचनायें कीं। बीसवीं शताब्दी तक हैदराबाद ही इस भाषा का एकमात्र पोषक रह गया और इस समय यह भाषा अपना स्वाभाविक रूप छोड़ कर उर्दू का रूप धारण कर चुकी थी। इस प्रकार दक्खिनी पर फारसी का गहरा रंग चढ़ने के पश्चात् साहित्यकार उर्दू में रचनायें लिखने लगे। परन्तु फिर भी कुछ कवि गण दक्खिनी को अपनाते रहे और अभी भी अपना रहे हैं। इन कवियों में हलभ और अजमत के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'दक्खिनी के फारसीकरण की प्रक्रिया का मुख्य कारण है, वली साहब की दिल्ली यात्रा। आसफजाही के समाप्त होने के बाद वली औरंगाबादी एक बार दिल्ली गये। उनकी इस दिल्ली यात्रा का परिणाम दो प्रभावों के रूप में दिखाई पड़ा। दिल्ली के साहित्यकारों ने फारसी को छोड़कर रेखता या हिन्दी को अपनाना शुरू कर दिया और दक्खिनी के साहित्यकारों ने 'दक्खिनी' में स्वदेशी शब्दों के स्थान पर अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग किया। क्योंकि वे इस भाषा के स्वरूप को प्रामाणिकता प्रदान करना चाहते थे। दिल्ली से दक्षिण सम्पर्क टूटता गया। दक्खिनी की अपनी विशेषतायें लुप्त होने लगी और उसका फारसीकरण होकर उसका रूप 'उर्दू' हो गया।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए। यद्यपि दक्खिनी का साहित्य और राजभाषा का रूप नष्ट हो गया है, तथापि हैदराबाद के ऊँचे से ऊँचे अधिकारी अब भी बोलचाल में दक्खिनी का ही व्यवहार करते हैं।

हम शैली की दृष्टि से दक्खिनी के साहित्य को दो भागों में विभक्त कर सकते है :

(i) दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि वली औरंगाबादी की दिल्ली यात्रा के पूर्व का साहित्य तथा (ii) वली साहब की दिल्लीयात्रा के बाद का साहित्य। स्पष्टतः वली की यात्रा के पूर्व की शैली सरल-शुद्ध है—जिसमें हमें खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप दिखाई देता हैं। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग बहुत ही सीमित रूप में हुआ है। संस्कृत के शब्दों की बहुलता है और देशज शब्दों का प्रयोग खुलकर किया गया है। सारांश यह है कि शैली पूर्णतः भारतीय परम्परा और संस्कृत से प्रभावित है।

वली साहब की दिल्ली-यात्रा के बाद के साहित्य की शैली एकदम बदली हुई है। वह अरबी-फारसी के रंग में रंगी हुई है। उसकी स्वतन्त्रता नष्ट दिखाई देती है। उसमें विदेशी शब्दों की बहुलता है। इस प्रकार दक्खिनी कालान्तर में उर्दू का रूप धारण कर लेती है।

ग्वासी के समय तक रचित ग्रन्थों में हिन्दी के शब्दों की भरमार दिखाई देती है। वली साहब ने सरल भाषा दक्खिनी पर फारसी का रंग चढ़ा दिया। उनकी कविता प्रारम्भ तो होती है, पुराने सरल स्वाभाविक ढंग से, परन्तु वह तुरन्त ही फारसी के प्रति उन्मुख हो जाती है। एक उदाहरण देखिये :

तुझ मुख की झलक देख गई जोत चन्द्र सों।
तुझ मुख पै अर्क देख गई अरब गहर सों।

निष्कर्ष—दक्खिनी हिन्दी वस्तुतः हिन्दी या हिन्दवी ही थी। उसकी शैली भारतीय परम्परा से प्रभावित थी। वली की यात्रा के पूर्व वह सरल, स्वाभाविक हिन्दी के एकदम निकट थी। उसके बाद उसके ऊपर विदेशी रंग चढ़ा और वह उर्दू के रूप में सामने आ गई, यथा 'उर्दू के बाबा आदम' वली साहब ने जनसाधारण की भाषा 'रेखता' हिन्दी की फारसी गर्भित करके उर्दू के रूप में प्रतिष्ठित किया।

हिन्दी-हिन्दवी-हिन्दोस्तानी

प्रश्न ७—'विभाषा' शब्द की स्पष्ट व्याख्या करते हुए हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी रेखता, उर्दू तथा खड़ी बोली के रूप पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—विभाषा की परिभाषा—विद्वानों ने विभाषा के स्वरूप पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है। समस्त मतों का निष्कर्ष यह है कि विभाषा किसी प्रदेश विशेष में व्यवहृत होती है। वह अपने व्यावहारिक रूप से अन्य विभाषाओं से भिन्न होती हैं। किन्तु इतनी भिन्न नहीं कि उसे पृथक भाषा मान लिया जाय। इसलिए अनेक विभाषाओं के होते हुए भी मध्य प्रदेश की भाषा का गौरव हिन्दी को ही प्राप्त है।

अनेक धार्मिक, राजनीतिक तथा उसका व्यवहार करने वालों के प्रभाव के कारण कोई बोली कभी-कभी विभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाती है। सूर ने ब्रज बोली को और जायसी ने अवधी को विभाषा का गौरव प्रदान किया।

पाठकों के ज्ञान-बर्धन हेतु भाषा विज्ञान कोष के अनुसार विभाषा की परिभाषा यहाँ उद्धृत की जाती है—"Dialect ia a specifie form of a given language, spoken in a certain locality or gecgraphical area, showing sufficient differnces form the standard or literay form of that language....yet not sufficiently distinct form othei dialects of the language to be regarded as a differnt language."

हिन्दी—हिन्दी-शब्द मुसलमानों की देन है। इस भाषा को हिन्दी नाम तब प्राप्त हुआ जब मुसलमानों ने इस देश के लिए हिन्द-शब्द बहुप्रचलित बना दिया तथा यहाँ के रहने वाले हिन्दू कहे जाने लगे। भाषा के नामकरण की आवश्यकता पड़ने पर हिन्द देश के रहने वाले अर्थात् हिन्दुओं की भाषा को हिन्दी नाम दिया गया। अतः 'हिन्दी' शब्द भाषा के एक बहुत बड़े स्वरूप का द्योतन करता है। हम इस शब्द को उस भाषा का मान सकते हैं, जो समस्त हिन्दवासियों की भाषा है।

संस्कृत, पालि तथा शौरशेनी-प्राकृत मध्य देश में विभिन्न युगों की भाषायें थीं। कालक्रम से इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश ही कालान्तर में हिन्दी के रूप में मध्य देश की बोलचाल की भाषा बनी। यह हिन्दू और मुसलमानों में समानरूप से प्रयुक्त होती है। चूँकि हिन्दी का केन्द्र आर्यावर्त है, इसी कारण आर्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसे 'आर्य भाषा' नाम दिया।

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्दी या भारत में बोली जाने वाली किसी भी आर्य अथवा अनार्य भाषा के लिए किया जा सकता है। परन्तु व्यावहारिक रूप में हिन्दी उस बड़े भू-भाग की भाषा है, जिसकी सीमा पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खण्डवा तक पहुँचती है। इस भाग के निवासियों के साहित्य पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, बोलचाल आदि की भाषा हिन्दी है। यह उक्त भाग की बोलचाल की एवं साहित्य की भाषा है। स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि जिसे पहले खड़ी बोली कहते थे, वही हिन्दी-भाषा बन गई है। इस अर्थ में बिहारी (भोजपुरी, मगही और मैथिली), राजस्थानी (मारवाड़ी, मेवाती, मालवी तथा जयपुरी) तथा पूर्वी हिन्दी (अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी)।

भाषा-शास्त्र की दृष्टि से हिन्दी के दो रूप हैं—पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी। केवल पश्चिमी हिन्दी ही वास्तविक अर्थ में हिन्दी कही जानी चाहिए। इस प्रकार "पूर्वी हिन्दी" हिन्दी से पृथक हो जाती है। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी की वंशज है और पूर्वी हिन्दी अर्द्धमागधी से विकसित हुई है। अर्द्धमागधी का क्षेत्र हिन्दी-क्षेत्र के बाहर पड़ता है। इस प्रकार यदि आगरा को केन्द्र मानें तो उत्तर में हिमालय की तराई तक, दक्षिण में नर्मदा की घाटी तक, पूर्व में कानपुर तक और पश्चिम में दिल्ली के कुछ आगे तक, हिन्दी का क्षेत्र माना जाता है इसके पश्चिम में पंजाबी राजस्थानी और पूर्व में पूर्वी हिन्दी बोली जाती है। हिन्दी भाषा बोलने वालों की संख्या १५ करोड़ से ऊपर है।

भाषा शास्त्र की दृष्टि से हिन्दी की पाँच बोलियाँ हैं—ब्रज, खड़ी बोली, कन्नौजी, बाँगरू और बुन्देली। व्यवहार की दृष्टि से अवधी, बघेली; छत्तीसगढ़ी तथा भोजपुरी में चार बोलियाँ भी हिन्दी के अन्तर्गत आती हैं।

हिन्दवी—विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार हिन्दुई या हिन्दवी दिल्ली के आस-पास की वह बोली अथवा भाषा थी, जो हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत होती थी तथा जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का अभाव था।

विद्वानों का दूसरा वर्ग यह मानता है हिन्दवी को केवल हिन्दुओं की भाषा मानना तर्क संगत नहीं है। उनके विचार से 'हिन्दवी' हिन्दी की भाँति शिक्षित मुसलमानों की भाषा थी। प्रमाण स्वरूप इंशाअल्ला द्वारा लिखित 'रानी केतकी की कहानी' का यह उद्धरण देते हैं—"हिन्दवी छुट और इसमें किसी बोली का पुट नहीं।"

सैयद इंशा की भाषा की विशेषताओं का विश्लेषण करते हुए चन्द्राबली पाण्डेय ने लिखा है कि "अन्य भाषाओं से इशा का तात्पर्य 'बाहर की बोली, है, जिसका अर्थ है हिन्दी के बाहर की बोली अर्थात् अरबी, फारसी, तुर्की आदि। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इंशा ने इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। इसी प्रकार 'भाषापन' से इंशा का तात्पर्य उन गँवारू बोलियों से है, जो उस समय प्रचलित थीं।"

पाण्डेय जी ने 'दरियाए लताफत' से उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि इंशा क अनुसार दिल्ली के चुने हुए आदमियों की भाषा ही प्रामाणिक है और ये चुने हुए व्यक्ति प्रायः मुसलमान ही थे। इस प्रकार सैयद इंशाअल्ला जिस भाषा के प्रयोग का संकल्प लेकर चले थे, वह वस्तुतः शिष्ट मुसलमानों की भाषा थी। अतः हिन्दुई अथवा हिन्दुओं की भाषा मानना ठीक नहीं है। यह वस्तुतः वह भाषा थी जिसका प्रयोग दिल्ली के आस-पास रहने वाले शिष्ट हिन्दू और मुसलमान प्रयुक्त करते थे।

हिन्दुस्तानी या हिन्दोस्तानी—'हिन्दुस्तानी' शब्द की व्याख्या एक जटिल समस्या है। सामान्य धारणा यह है कि यह नाम अँग्रेजों की देन है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह नाम बाबर के समय में प्रचलित था। बाबर के आत्मचरित का यह उद्धरण दृष्टव्य है—"I have mode him sit down befor me and desired a man who understood the Hindustani language to explain to him what I said sentence by sentence in order to reassure him." स्पष्ट है कि बाबर ने दौलत खाँ लोदी को विश्वास दिलाने के लिए एक दुभाषिये की सहायता से हिन्दुस्तानी भाषा में बातचीत की थी। बाद में अँग्रेज शासकों ने इसको राजनीतिक रंग दे दिया और इसको विशेष प्रचारित किया। पहले यह नाम 'हिन्दी' का वाचक था। बाद में १९वीं शताब्दी में 'उर्दू' का वाचक बन गया।

जिस प्रकार उर्दू के रूप में खड़ी बोली ने मुसलमानों की माँग पूरी की, इसी प्रकार हिन्दुस्तानी के रूप में खड़ी बोली ने अँग्रेजों को माँग पूरी की। यह तो निश्चित है कि हिन्दुस्तानी खड़ी बोली का वह रूप है, जिसमें अरबी-फारसी के अतिरिक्त अँग्रेजी के शब्दों का भी खुलकर प्रयोग किया जाता है।

जार्ज ग्रियर्सन ने इसे वर्नाक्युलर हिन्दुस्तान के नाम से संशोधित किया है। वर्नाक्युलर का अर्थ होता गुलामों की भाषा। इस दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' पूरे हिन्दुस्तान की भाषा ठहरती है। इस प्रकार इनको हिन्दी का पर्याय मानना ही उचित है।

ग्रियर्सन ने ग्राउज कृत हिन्दुस्तानी की परिभाषा को आधार मान कर अपना जो मत व्यक्त किया है उसके अनुसार "हिन्दुस्तानी मुख्य रूप से गंगा के ऊपरी दोआब की भाषा है। यह हिन्दुस्तान के अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार का माध्यम है। यह फारसी तथा देबनागरी दोनों लिपियों में लिखी जाती हैं।"

कालान्तर में काँग्रेस ने राष्ट्रीय एकता को ध्यान में रखते हुए इसे अपने व्यवहार का माध्यम घोषित किया। महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तानी के व्यवहार पर विशेष बल दिया। सारांश रूप में यह समझ लेना चाहिए कि हिन्दुस्तानी हिन्दी उर्दू से एक पृथक भाषा है। यह हिन्दी खड़ी बोली का ही एक सरल एवं व्यावहारिक रूप है।

दक्खिनी—दखनी, देकनी इस भाषा के अन्य नाम हैं। कुछ मुसलमान विद्वानों ने इसे हिन्दवी ही कहा है।

डॉ० उदयनारायण तिवारी के अनुसार दक्खिनी हिन्दी की एक शैली है। उस समय हिन्दी या हिन्दबी ही देश की भाषा थी। विद्रानों ने हिन्दवी को देश की स्वाभाविक भाषा कहा—"The Deccan language which is the natural language of the country."

'दक्खिनी' किसी भाषा से किसी प्रकार सम्बन्धित नहीं रही है। पारस्परिक दृष्टि से यह उत्तर भारत की भाषा हिन्दी से सम्बद्ध है। इसके नामकरण का कारण ऐतिहासिक है। उत्तर के मुसलमान विजेताओं ने जब दक्षिण भारत पर अधिकार प्राप्त किया तो वे अपने साथ दिल्ली की भाषा भी लेते गये। समयानुसार इसको राजकीय संरक्षण भी प्राप्त हुआ और वह क्रमशः साहित्यिक रूप में विकसित होती गई। यही दक्खिनी कहलाई।

इसमें रचना करने वाले प्रायः मुसलमान ही रहे। यह उन दिनों उत्तर और दक्षिण भारत की सम्पर्क भाषा थी। पहले इसका रूप अधिक मौलिक एवं स्वाभाविक था। वली साहब की दिल्ली यात्रा के बाद इस पर फारसी का रंग चढ़ता गया और उसने उर्दू का रूप धारण कर लिया।

दक्षिण के राज्यों से सम्बद्ध होने के कारण ही इसका नाम दक्खिनी पड़ा। इसको यदि दक्खिनी हिन्दी कह दें, तो सम्भवतः इसका रूप अधिक बोधगम्य हो जायगा।

रेखता—प्रायः लोग उर्दू और रेखता को पर्यायवाची मान लेते हैं। परन्तु यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। रेखता वस्तुतः उर्दू की विशिष्ट शैली है। उर्दू के

बाजारू रूप का परिस्कृत स्वरूप 'रेखता' है, जिसके मूल में उर्दू के पृथक समुदाय के कवियों का प्रयास निहित है। भाषा के अर्थ में 'रेवती' तथा पुरुषों की भाषा को 'रेखता' कहा गया है। यह भेद इस कारण है कि स्त्रियों की भाषा में अशुद्धि की सम्भावना अधिक रहती है।

'रेखता' शब्द का अर्थ कई प्रकार से किया गया है—गिरना, पड़ना, छितराना, फैलना इत्यादि ! सबके मूल में भाव एक ही है। खड़ी बोली में फारसी के वाक्यों का समावेश रेखता की उत्पत्ति का कारण है। 'गिनना' या 'छितराना' अर्थ के सन्दर्भ में कुछ विचारकों का कहना है कि 'रेखता' से हीनत्व भाव का बोध होने के कारण ही दिल्ली के आस-पास की भाषा को श्रेष्ठतर सिद्ध करने के लिए ही 'खड़ी बोली' नाम दे दिया गया था। बाबा फरीद 'रेखता' के आदि कवि माने जाते हैं। इनका रचना-काल १२वीं शताब्दी माना जाता है। १८वीं शताब्दी में सिद्ध कवि वली साहब ने पुनः रेखता को काव्य-रचना का माध्यम बनाया।

उर्दू —'उर्दू' शब्द तुर्की भाषा का है जिसका अर्थ होता है– पड़ाव, लश्कर, अथवा बाजार। इस प्रकार शब्दार्थ की दृष्टि में उर्दू द्वारा इस भाषा का बोध होता है जिसका सम्बन्ध शिविर, सेना अथवा बाजार से है। इन विभिन्न शाब्दिक, अर्थों को लेकर विद्वानों ने कई प्रकार से उर्दू की उत्पत्ति पर विचार किया है। यथा—

(i) इतनी बात पर शख्स जानता है कि हमारी जबान ब्रजभाषा से निकली है और ब्रजभाषा खास हिन्दुस्तानी जबान है। (मुहम्मद हसन, आजाद)

(ii) "उर्दू बाजारी और लश्करी भाषा है।" (मीर हसन देहलवी)

(iii) सैयद इंशाअल्ला प्रभृति विद्रानों के मतानुसार दिल्ली के किले में जिस भाषा का निर्माण हुआ उसका नाम 'जबाने-उर्दू मुअल्ला' अर्थात् महान शिविर की भाषा। इंशाअल्लाखाँ के वर्ग के विचारकों का मत सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उसका सारांश यह है कि, शाहजहानाबाद के साधु वक्ताओं ने एक मत होकर परिगणत भाषाओं से अच्छे-अच्छे वर्ण निकाले और कतिपय वाक्यों और शब्दों में परिवर्तन करके और भाषाओं से पृथक् एवं नवीन भाषा को जन्म दिया जिसका नाम उर्दू पड़ा।

इस मत के अनुसार उर्दू की उत्पत्ति शाहजहानाबाद में हुई तथा इस भाषा में विभिन्न भाषाओं की शब्दावलियाँ तथा वाक्य लिये गये। उन दिनों दिल्ली में विभिन्न भाषा-भाषी लोग निवास करते थे। एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता थी। उर्दू ने इस आवश्यकता की पूर्ति की। उर्दू में अरबी-फारसी के शब्दों की अधिकता रही।

पं० चन्द्रावली पांडेय तथा हेनरी मूल एवं कोक बर्नेल के मतानुसार भी उर्दू वास्तव में दरबारी भाषा है और जन-साधारण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। 'हाब्सन जाब्सन' ने स्पष्ट लिखा है कि "दरबार तथा शिविर में एक मिश्रित भाषा

का आविर्भाव हुआ जो जबाने उर्दू कहलाई। इसी का संक्षिप्त रूप आगे चलकर उर्दू हुआ।

देश में जनसत्तात्मक शासन-प्रणाली का सूत्रपात होने की स्थित में आज यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि उर्दू, जन-साधारण की भाषा है और उसके निर्माण में साधुओं, सन्यासियों एवं देश-भक्ति का हाथ रहा है। परन्तु उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू **लाल किले के बादशाही शहजादों तथा आस-पास के अन्य लोगों की जबान है।**

डॉ० बेली के अनुसार भाषा के अर्थ में उर्दू का प्रयोग अनुमानतः सर्वप्रथम सम् १८२४ से आरम्भ हुआ है। डॉ० बेली ने यह निष्कर्ष मसहफी के इस आधार पर प्रस्तुत किया है।

खुदा रक्खे जबाँ हमने सुनो है मीर मीर वो मिरजा की।
कहें किस मुँह से हम ए 'महसफी' उर्दू हमारी है॥

बेली के अनुसार मीर की मृत्यु सन् १७७६ में हुई। महसफी ने यह रचना सन् १८०० के बाद किसी समय की होगी।

खड़ी बोली—'खड़ी बोली' आज राष्ट्र-भाषा है। साहित्य और व्यवहार के क्षेत्र में उस का सर्वत्र बोल बोला है। सामान्य अर्थ में उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। हिदुस्तान, उर्दू, हिन्दी शब्दों को भी खड़ी बोली के अर्थ में ही प्रयुक्त कर देते हैं। मूल अर्थ में खड़ी बोली उस बोली को कहते हैं जो रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून- अम्बाला तथा कलसिया एवं पटियाला के पूर्वी भागों में बोली जातो है।

खड़ी बोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य रहता है। इसमें अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग खुल कर होता है, परन्तु वे शब्द प्रायः अर्द्ध तत्सम या तद्भव होते हैं। खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी गई है। इसके ऊपर पंजाबी का भी कुछ प्रभाव है।

यह खड़ी बोली ही हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्ताती तीनों का मूलाधार है। खड़ी बोली शुद्ध रूप में हिन्दी की एक बोली मात्र है। वह जब साहित्यिक रूप धारण कर लेती है, तब वह कभी हिन्दी कहलाती है और कभी उर्दू। जिस खड़ी बोली में संस्कृत ने तत्सम और अर्द्ध-तत्सम शब्दों का व्यवहार होता है, वह हिन्दी या उच्च हिन्दी कही जाती है। इसी उच्च हिन्दी में वर्तमाम युग का साहित्य निर्मित हो रहा है। खड़ी बोली का यही साहित्यिक रूप हिन्दी के नाम से राष्ट्र भाषा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित है।

जब यही खड़ी बोली फारसी-अरबी के तत्सम और अर्द्ध तत्सम शब्दों को इतना अपना लेती है कि कभी-कभी इसकी वाक्य-रचना पर भी कुछ विदेशी रंग चढ़ जाता है, तब इसे उर्दू कहते हैं।

खड़ी बोली का एक तीसरा रूप भी है । वह है हिन्दुस्तानी । उसको न तो शुद्ध साहित्यिक भाषा ही कह सकते हैं और न ठेठ बोलचाल की बोली ही कह सकते हैं । डॉ० उदयनारयण तिवारी के शब्दों में "पुरानी, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के मिश्रण से जो नई जवान आपसे आप बन गई है, वह हिन्दुस्ताती के नाम से मसहूर है ।"

निष्कर्ष—रेखती खड़ी बोली का पूर्व रूप है । दक्खिनी उत्तर भारत और दक्षिण भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में व्यवहृत हिन्दी का नाम था । दक्षिण की किसी बोली के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

ही हिन्दू, ऊर्दू और हिन्दुस्तानी तीनों का मूलाधर है ।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू खड़ी बोली के दो साहित्यिक रूप मात्र हैं । एक का स्वरूप भारतीय परम्परागत प्राप्त हैं और दूसरी का विकास फारसी के आधार पर हुआ है ।

डॉ० उदयनारायण तिवारी का यह कथन दृश्यव्य है कि, "आज नागरी हिन्दी देश की राष्ट्र-भाषा घोषित हो चुकी है । उसकी अपनी निश्चित शैली है । उर्दू को समन्वय की दृष्टि से धीरे-धीरे उसी ओर अग्रसर होना चाहिए । इस समवन्य की दो आधार शिलाएँ हैं—(i) नागरी लिप और, (ii) राष्ट्रीय भावना । इन्हीं दो बातों के द्वारा हिन्दी और उर्दू का समवन्य सम्भव हो सकेगा ।"

हिन्दी-शब्द-समूह

प्रश्न ८—हिन्दी-भाषा में जिन भाषाओं के शब्दों का उपयोग पाया जाता है, उनका उल्लेख कीजिए तथा उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ९—हिन्दी शब्द-समूह के मूल-स्रोतों का संक्षिप्त परिचय दीजिये ।

अथवा

प्रश्न १०—हिन्दी शब्द-समूह के उद्गम पर प्रकाश डालिए ।

अथवा

प्रश्न ११—"हिन्दी-शब्द-समूह में संस्कृत के अतिरिक्त अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का समाहार है" उपयुक्त उदाहरण देकर इस कथन की सार्थकता को प्रमाणित कीजिए

अथवा

प्रश्न १२—"शब्द-समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक खिचड़ी होती है ।" हिन्दी के शब्द-समूह को दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए ।

उत्तर—**भाषा के शब्द-समूह का मिश्रित होना स्वाभाविक है** भाषा विचार विनियम का माध्यम है। भाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अथवा समाज अपनी भावनाओं, अपनी मान्यताओं एवं अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।

जब कोई जाति किसी अन्य जाति के सम्पर्क में आती है तो वह अपने साथ अपनी भाषा को भी लाती है तथा अपने सम्पर्क में आने वाली जाति की भाषा को अपनी भाषा द्वारा प्रभावित करती है और उसकी भाषा द्वारा अपनी भाषा को प्रभावित होने का अवसर प्रदान करती है। अतएव किसी भी सभ्य भाषा के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह आज तक अपने आदि विशुद्ध रूप को अक्षुण्ण बनाए हुए है डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में "भाषा के सम्बन्ध में विशुद्ध शब्द से केवल इतना ही तात्पर्य हो जाता है कि किसी विशेष काल अथवा देश में उसका वह विशेष रूप प्रचलित था या नहीं बस उन्हीं अवस्थाओं में वह भाषा विशुद्ध कहला सकती है। दूसरे देश काल के उसी भाषा का रूप बदल जाएगा और तब इस परिवर्तित रूप को ही 'विशुद्ध' की उपाधि मिल सकेगी।" कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द-समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार की खिचड़ी होती है।

हिन्दी का शब्द-समूह—अन्य समस्त भाषाओं के समान हिन्दी-भाषा के शब्द-समूह में भी अनेक देशी, विदेशी, जीवित और मृत भाषाओं के शब्द का समाहार पाया जाता है। हिन्दी एक संचरचात्मक भाषा है। इसमें संस्कृत, विभिन्न देशी भाषाओं एवं बोलियों तथा विदेशी भाषाओं के शब्द पर्याप्त मात्रा में समाहित हैं।

संक्षेप में हिन्दी-शब्दों के प्रेरणा स्रोत या मूल स्रोत इस प्रकार हैं :

(१) संस्कृत भाषा शब्द
(२) अन्य भारतीय भाषाओं के शब्द
(३) अनार्य भाषाओं के शब्द
(४) हिन्दी-प्रदेश की बोलियाँ एवं उपभाषाओं के शब्द।
(५) विदेशी लाषाओं से आऐ हुए शब्द तथा
(६) दो भाषाओं के योग से बने हुए शब्द।

हिन्दी शब्दावली का निर्माण करने वाले शब्दों का परिचय निम्नलिखित प्रकार है—

(१) संस्कृत भाषा के शब्द—हिन्दी वस्तुतः संस्कृत की बेटी है। इसमें संस्कृत के शब्द की संख्या सदा से अधिक रही है। अब तो नवीन आवश्यकताओं के कारण उनकी संख्या में नित्य निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। ये शब्द प्रायः तीन रूपों में पाये जाते हैं—(i) तत्सम (ii) अर्द्ध तत्सम तथा (iii) तद्भव। यथा—

(i) **तत्सम शब्द**—तत्सम् शब्द दो शब्दों के योग से बना है—तत् + सम। 'तत्' का अर्थ है। उसके और 'सम' का अर्थ होता है 'समान'। उसके 'समान' अर्थात् संस्कृत में प्रयुक्त रूप के समान। संस्कृत में प्रयुक्त जब कोई शब्द अविकृत रूप में ज्यों के त्यों रूप में—हिन्दी में प्रयुक्त होता है, तब वह 'तत्सम' कहा जाता है। हिन्दी-भाषा ऐसे शब्दों से भरी पड़ी है; जैसे परिवेश, परिप्रेक्ष्य, विदित, कृष्ण, यात्रा इत्यादि।

अर्द्ध-तत्सम—जो संस्कृत शब्द विकृत रूप में प्रयुक्त होने लगे हैं, उन्हें 'अर्द्ध तत्सम' शब्द कहते हैं। जैसे 'कृष्ण' का 'किशन' अर्द्ध तत्सम है। 'कोइल' 'कोकिक' का अर्द्ध तत्सम रूप है।

(iii) **तद्भव**—'तद्भव' शब्द दो शब्दों के योग से बना है—तत्—भव। 'तत्' का अर्थ है उससे और 'भव' का अर्थ है 'उत्पन्न', अर्थात् उससे उत्पन्न अर्थात् वे शब्द जो संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार संस्कृत भाषा प्रसूत शब्द 'तद्भव' कह सकते हैं। ये शब्द प्राकृत से होकर हिन्दी में आये हैं। काम और क्रमशः कार्य और सौभाग्य के अर्द्ध तत्सम रूप हैं। 'कृष्ण' का तद्भव रूप है—'कन्हैया' और 'कान्हा'।

हिन्दी के शब्द समूह में सर्वाधिक संख्या तद्भव शब्दों की है। कुछ लोगों का कहना है कि 'तद्भव का अर्थ संस्कृत से उत्पन्न अथवा परम्परा से प्राप्त संस्कृत का शब्द। कुछ लोगों के मतानुसार उक्त कथन भ्रमपूर्ण है। उनके मतानुसार 'तद्भव' शब्द प्रायः मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से आए हैं, उनका संस्कृत से सम्बन्धित होना आवश्यक नहीं है। जो भी हो—ये विकृत शब्द हैं और अब परिनिष्ठत भाषा में इनका प्रयोग दिनों दिन कम होता जा रहा है।

(२) **भारतीय आर्य भावनाओं के शब्द**—भारतवर्ष एक विशाल देश है। इस देश में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। इन विभिन्न भाषाओं के प्रयोक्ता एक-दूसरे से सम्पर्क में आते रहते हैं। यद्यपि प्राय भाषा-भाषी हिन्दी का प्रयोग करते हैं तथापि हिन्दी-भाषा-भाषी अन्य भाषाओं के प्रचलित एवं सुगाह्य शब्दों को ग्रहण कर लेते हैं। यथा—

गुजराती—हड़ताल, गरवा।
बंगाल—उपन्यास, गल्प, रसगुल्ला।
मराठी—चालू, बाजू।
पंजाबी—सिक्ख, सरदार, तन्दूर।

(३) **भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्द**—समय के प्रवाह के साथ हिन्दी में अनार्य भाषाओं के अनेक शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं। हिन्दी में बहुत से ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं जो प्राचीन काल में अनार्य भाषाओं से तत्कालीन आर्य भाषाओं में ले लिये गये थे। शब्द वस्तुतः आर्य भाषाओं के तद्भव शब्दी के ही समान हैं।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि, "प्राकृत वैयाकरण जिन प्राकृत शब्दों को संस्कृत शब्द-समूस में नहीं पाते थे, उन्हें अनार्य भाषाओं से प्राप्त हुए शब्द मान लेते थे। इन वैयाकरणों ने बहुत से बिगड़े हुए तद्भव शब्दों को भी देशी अर्थात् अनार्य भाषाओं के शब्द मान रक्खा था।" परन्तु यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। अब अन्तिम स्थिति भिन्न है। इसको समझने के लिए डॉ० उदयनारायण तिवारी का यह कथन मनन करने योग्य है—"आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने लगभग साढ़े चार सौ संस्कृत के ऐसे शब्दों को ढूँढ़ निकाला है जिनका अनार्य स्रोत है।" अस्तु।

अनार्य भाषाओं से आगत शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

तमिल भाषा के शब्द—वीस, अमावसी, उपवास।

तेलगू भाषा के शब्द—आली, आलि।

मलयालम भाषा के शब्द—भगी, साधु, चिल्लर आदि।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि द्रविड़ भाषाओं में (अनार्य भाषाओं) से आए हुए शब्दों का प्रयोग हिन्दी में प्राय: अच्छे अर्थ में नहीं होता है। उदाहरण के लिए—"पिल्लै" का अर्थ 'पुत्र' होता है। यहाँ 'पिल्लै' हिन्दी में 'पिल्ला' होकर 'कुत्ते के बच्चे' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मूर्द्धन्य वर्णों से युक्त वस्तुत: द्राविड़ भाषाओं की हिन्दी को देन है। या तो वे शब्द सीधे द्रविड़ (अनार्य) भाषाओं से आए हैं अथवा उनके ऊपर द्राविड़ भाषाओं का गहरा प्रभाव है।

'हिन्दी' भाषा को कोल भाषाओं ने भी थोड़ा बहुत प्रभावित किया है।

हिन्दी में बीस की संख्या का वाचक शब्द 'कौड़ी' सम्भवत: मुण्डा भाषा से आया है।

(४) **हिन्दी प्रदेश की बोलियाँ अथवा उप-भाषाओं के शब्द**—हिन्दी में हिन्दी प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियों एवं उपभाषाओं के अनेक शब्द आ गए हैं जो हिन्दी के साथ एक दम घुलमिल कर एकाकार हो गए हैं। इन शब्दों का आगमन पारिस्परिक व्यक्तिगत सम्पर्क से भी हुआ है तथा आंचलिक साहित्य के द्वारा भी हुआ है। इस ब्रजभाषा, अवधी, बुन्देलखण्डी, भोजपुरी, मैथिली तथा मगही के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(५) **विदेशी भाषाओं के शब्द**—हिन्दी भाषा-भाषी लोग सैकड़ों वर्षों से विदेशियों के सम्पर्क में आते आए हैं। उनके साथ सम्पर्क, विचार-विनिमय आदि के फलस्वरूप यह स्वाभाविक ही रहा कि उनकी भाषाओं के शब्द ग्रहण किये जाते, हुआ भी यही। मुसलमानों और अँग्रेजों ने तो यहाँ अनेक वर्षों तक शासन भी किया। अतएव शासन सम्बन्धी अनेक शब्द उनकी भाषाओं द्वारा ग्रहण किए गये।

डॉ० भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले विदेशी शब्दों के सोलह उपवर्ग बनाये हैं। परन्तु यह समझ लेना चाहिये कि सर्वाधिक शब्द इन चार भाषाओं से लिखे गये हैं—अरबी, फारसी, तुर्की और अँग्रेजी।

हिन्दी शब्द-समूह पर पड़ने वाले विदेशी प्रभाव को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है —(१) मुसलमानी प्रभाव तथा (२) यूरोपीय प्रभाव।

यह दृष्टव्य है कि मुसलमान और यूरोपियन दोनों ही यहाँ शासक के रूप में रहे। अतः इनके प्रभाव के फलस्वरूप प्रायः एक ही वर्ग का शब्द-समूह हिन्दी में आया है। यह शब्द-समूह दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) विदेशी संस्थाओं (कचहरी, फौज, धर्म आदि) से सम्वन्ध रखने वाले शब्द।

(ख) विदेशियों के साथ आने वाली विभिन्न वस्तुओं (नये पहनावे, वस्त्र, भोजन की चीजें) के नाम।

अरबी-फारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्द—ईसवी सन् १००० तक पंजाब में मुसलमान का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। उस समय तक फारसी बोलने वाले तुर्की में पंजाब पर कब्जा कर लिया था। इसके प्रभाव के फलस्वरूप अनेक विदेशी शब्द हिन्दी में प्रवेश पा गये थे। १२०० ई० के वाद तो लगभग ६०० वर्षों तक हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश पर तुर्कों, अफगानों और मुगलों का शासन रहा। इनकी भाषाओं के शब्दों ने भारतीय भाषा के शब्दों को खूब प्रभावित किया। इनकी भाषाओं के सैकड़ों विदेशी शब्दों ने गाँव की बोलियों तक को प्रभावित किया है। आदि काल में तो 'पृथ्वीराज रासो' तक में फारसी के शब्द पाये जाते हैं। मध्य-काल में सूर, तुलसी, केशव, बिहारी आदि कवियों की शुद्ध साहित्यिक हिन्दी में भी इन विदेशी शब्दों के फुटकर प्रयोग पाए जाते हैं।

इन मुसलमानी शब्दों में सर्वाधिक शब्द फारसी के हैं, क्योंकि मुसलमानी शासन में सदैव ही फारसी को दरबारी एवं साहित्यिक भाषा के रूप में अपनाया गया। तुर्की, अरबी आदि अन्य मुसलमानी भाषाओं के शब्द भी प्रायः फारसी के ही माध्यम से ही होकर हिन्दी में आए हैं।

कागज, जरूरत, जिन्दगी आदि फारसी के अनेक शब्द हिन्दी में पूरी तरह से घुल मिल गये हैं। इसी प्रकार तुर्की अरबी के भी अनेक शब्द हिन्दी में ऐसे मिल गये हैं मानों वे तद्भव शब्द ही हों, जैसे—आका, कैंची, काबू, कली, डलिया, चाकू आदि तुर्की के शब्द हैं। अमीर, महल, हलुवा, हलवाई आदि अरबी के शब्द हैं, जिन्हें हिन्दी भाषा-भाषी खुलकर प्रयोग करते हैं।

कुछ शब्द पश्तो के भी प्रयोग होते हैं, जैसे—पठान, रोहिला (रोह = पहाड़) इत्यादि।

यूरोपीय भाषाओं के शब्द—यूरप के निवासी लगभग सन् १५०० ई० से भारत में आने जाने लगे थे। चूकि ये लोग समुद्री मार्ग से आये थे, अतएव ये लोग आरम्भ में समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में ही बसे और हिन्दी प्रदेश से दूर ही रहे। यही कारण है कि हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य में अँग्रेजी के शब्दों का प्रभाव मिलता है।

सन् १८०० ई० से यूरोप वासियों का हिन्दी-प्रदेश के साथ निकट का सम्पर्क हुआ। सन् १८०० ई० के लगभग हिन्दी प्रदेश मुसलमानों के शासन से निकलकर अँग्रेजी शासन के अन्तर्गत आया और सन् १९४७ तक अँग्रेजी शासन के अन्तर्गत रहा। इसी बीच अँग्रेजी यहाँ की राजभाषा बन गई और अब भी बनी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि पिछड़े डेढ़-सौ पौने दो सौ वर्षों से हिन्दी के ऊपर यूरोपीय भाषाओं का विशेषकर अँग्रेजी भाषा का बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि हिन्दी के शब्द-भण्डार के ऊपर अँग्रेजी भाषा के शब्दों का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा है। हिन्दी शब्द-समूह में अँग्रेजी शब्द समूह बहुत ही गहरे बैठ गये हैं—यहाँ तक कि हमारे अशिक्षित ग्रामवासी भी अँग्रेजी के अनेक शब्दों का प्रयोग करते हैं— यद्यपि इनमें अनेक शब्दों के रूप काफी विकृत हो जाते हैं— अंजन (ऐंजिन), सिंगल (सिगनल), अफसर (ऑफीसर), टिकट (टिकिट), अर्दली (आडरली), इस्प्रेस (एक्सप्रेस), ठेठर (थियेटर) आदि शब्दों का प्रयोग घर-घर में पाया जाता है। हाँ एक बात अवश्य है कि अँग्रेजी के अनेक शब्द ऐसे हैं जिन्हें केवल शहर निवासी अँग्रेजी के पढ़े-लिखे व्यक्ति ही प्रयोग करते हैं। इसके द्वारा प्रयुक्त अँग्रेजी शब्द प्रायः तत्सम या अर्द्धतत्सम रूप में ही प्रयुक्त होते हैं; यथा— डाक्टर, स्टेशन, थर्ड डिवीजन, सिनेमा, नर्स, टेलीफोन, मिक्चर आदि।

अँग्रेजी के अतिरिक्त अन्य कई यूरोपीय भाषाओं के शब्दों का भी निःसंकोच प्रयोग पाया जाता है। यथा—

पुर्तगाली भाषा के शब्द—अनन्नास, अलमारी, आलपीन, अचार, कमीज, कमरा, पीपा, लवादा, सन्तरा इत्यादि।

फ्रांसीसी (फ्रेंच) भाषा के शब्द—अंग्रेज, कूपन, कार्तूस इत्यादि।

डच भाषा के शब्द—तुरुप, (ताश के खेल में प्रयुक्त शब्द), बम (गाड़ी का)

स्पेनी शब्द—सिगरेट, सिगार, कार्क, अलपका इत्यादि।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि जर्मन परिवार की भाषाओं के शब्द हिन्दी में बिलकुल नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि इस भू-भाग के निवासियों के साथ भारत-वासियों का सम्पर्क नहीं रहा है :

(६) **दो भाषाओं के योग से बने हुए शब्द**—हिन्दी शब्दावली में कुछ ऐसे शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं जो भिन्न भाषाओं से मिलकर बने हैं। इन्हें हम संयुक्त शब्द भी कह सकते हैं। इनमें कई प्रकार के शब्द हैं—दो देशी भाषाओं से बने हुए शब्द तथा एक देशी एवं विदेशी भाषा से बने हुए शब्द, यथा

डाक खाना (डाक हिन्दी, खाना फारसी)
राज महल (राज संस्कृत, महल अरबी)।
शेयर बाजार (शेयर अँग्रेजी, बाजार फारसी।
रेल मन्त्री (रेल अँग्रेजी, मन्त्री संस्कृत)।
अर्जी नवीस (अर्जी अरबी, नवीस फारसी)।

निष्कर्ष—हिन्दी शब्द-समूह में आर्य-अनार्य, देशी, मुसलमानी तथा यूरोपीय सभी भाषाओं के शब्द एक दम घुल मिल गये हैं, उनका प्रयोग ऐसा स्वाभाविक हो गया है कि विदेशी लगते ही नहीं हैं। कौन कह सकता है कि हलुवा, हलवाई, कड़ाई महल आदि अरबी के शब्द हैं तथा कमीज और साबुन पुर्तगाली भाषा के शब्द हैं ? अतः यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि अन्य समस्त भाषाओं के समान ही हिन्दी शब्द-समूह में भी अनेक भाषाओं का शब्द-संग्रह उपलब्ध है। शब्द-समूह की दृष्टि से हिन्दी एक प्रकार की खिचड़ी भाषा ही है।

भारतीय आर्य भाषा उप-परिवार

प्रश्न १३—आर्य भाषाओं के अन्तरंग और बहिरंग उप-शाखाओं के विभाजन में ग्रियर्सन का क्या आधार है ? इस आधार की मान्यता पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न १४—आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण का आधार स्पष्ट करते हुए डॉ॰ ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न १५—आधुनिक आर्य भाषाओं के वर्गीकरण पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—आर्य भाषाओं का वर्गीकरण—सन १८८० में हार्नली नामक भाषा वैज्ञानिक ने भाषाओं के वर्गीकरण का प्रश्न उठाया। मान्यता यह रही कि आर्य दो समुदायों में भारत आये। आर्यों का एक दल मध्य एशिया के पर्वतों को पार करता हुआ सीधा दक्षिण की ओर चल कर पंजाब में आकर बस गया। दूसरा दल मध्य एशिया से अफगानिस्तान पहुँचा। वहाँ इसके दो दल हो गये। एक दल दक्षिण-पश्चिम की ओर, चल कर ईरान पहुँचा और दूसरा दल दक्षिण पूर्व की ओर काबुल नदी की घाटी से होता हुआ भारत में प्रविष्ट हुआ। हार्नली ने लिखा है "परागत आर्य मध्यदेश में बस गये और पूर्वगत आर्य मध्य देश के चारों ओर फैल गये। परागत एवं पूर्वागत आर्यों की भाषाओं को हार्नली ने क्रमशः 'भीतरी उप-शाखा' और 'बाहरी उप-साखा' नाम दिये।

हार्नली की मान्यता पर विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से विचार किया है। इस विवेचन के आधार पर इन भाषाओं का वर्गीकरण करने वाले दो प्रमुख विद्वान हैं—सल जार्ज ग्रियर्सन और डॉ॰ सुनीतिकुमार चटर्जी।

सर जार्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण—सर जार्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण ऐतिहासिक आधार पर है। इनका वर्गीकरण भारत में आर्यों के दो बार में आगमन पर आधारित है। ग्रियर्सन की मान्यता यह है कि सबसे पहले जो आर्य यहाँ आये थे वे गिलगित की पहाड़ियों से आए और मध्य देश में फैल गये। उनके बाद जो आर्य आये वे पूर्वागत आर्यों से लड़े और उन्हें पराजित कर हिमालय, सिंध, गुजरात तथा राजस्थान

की ओर भगा दिया । सभी प्रकार से उन्नत मध्य देश जब नवागत आर्यों के पर्ण अधिकार में आ गया, तब वहाँ उन्होंने अपनी भाषा को फैलाया । पूर्वागत आर्य सीमावर्ती प्रदेश में वस गये और वहाँ उनकी भाषाएँ फैली । इस प्रकार सर जार्ज ग्रियर्सन के मतानुसार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय आर्य भाषाएँ दो भागों में विभक्त हो गईं ।

इसी ऐतिहासिक स्थापना के आधार पर ग्रियर्सन ने आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया और उन्हें अन्तरंग एवं व हिरंग भाषाएँ यहा । अतरंग साखा में उन्होंने मध्य देशीय भाषाओं को सम्मिलित किया तथा बहिरंग शाखा में समावर्ती प्रदेश की भाषाएँ रक्खी । अतरंग शाखा को उन्होंने एक अतिरिक्त वर्ग मध्यवर्ती उप-शाखा में भी विभाजित किया । इस प्रकार ग्रियर्सन ने ६ उप-शाखाएँ मानी हैं और इनके छः समुदाय बनाए हैं । इनमें १७ भाषाएँ सम्मिलित की हैं; यथा—

(क) बाहरी उप-शाखा—

इसमें तीन समुदाय और सात भाषाएँ हैं—

(१) पश्चिमोत्तर समुदाय—(दो भाषाएँ)

( ) लहँदा ।

(ii) सिंधी ।

(२) दक्षिणी समुदाय (१ भाषा)-—

(iii) मराठी ।

(३) पूर्वी समुदाय (४ भाषाएँ)—

(iv) उड़िया ।

(v) बिहारी ।

(iv) बंगाल ।

(vii) असमिया ।

(ख) मध्यवर्ती उप-शाखा—

(viii) इसमें केवल पूर्वी हिन्दी है ।

(ग) भीतरी उपशाखा—

(४) केन्द्र समुदाय (६ भाषाएँ)

इसमें २ समुदाय और ९ भाषाएं हैं :

(ix) पश्चिमी हिन्दी ।

(x) पंजाबी ।

(xi) गुजराती ।

(xii) भीली ।

(xiii) खानदेशी ।

(xiv) राजस्थानी ।

(५) पहाड़ी समुदाय (३ भाषाएं)

(xv) पूर्वी पहाड़ी या नेपाली ।

(xvi) मध्य पहाड़ी ।

(xiv) पश्चिमी पहाड़ी ।

ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना—ग्रियर्सन ने अपने वर्गीकरण में भाषा-तत्व को विशेष महत्व दिया है ।

ग्रियर्सन ने उच्चारण तथा व्याकरण का भी ध्यान रखा है । ग्रियर्सन के वर्गीकरण का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार यह है कि बहिरंग भाषाएँ संयोगावस्था में पाई जाती हैं और अन्तरंग भाषाएँ वियोगावस्था में है ।

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को अस्वीकार करते हुए कहा सुदूर पूर्व और पश्चिम की भाषाओं में अनेक विशेषताएँ हैं । इन्हें एक साथ रखना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता है ।

भौगोलिक दृष्टि से गुजराती को बाहरी उप-शाखा के अन्तर्गत होना चाहिए परन्तु ग्रियर्सन ने उसको भीतरी उप-शाखा में रखा हैं। ग्रियर्सन ने इसका उत्तर दे दिया है । उनका कहना है । कि मथुरा के यादवों ने गुजरात को अपना उपनिवेश बनाया था और भीतरी उप-शाखा की भाषा ने गुजराती को बहुत प्रभावित किया । गुजराती में बाहरी उप-शाखा की प्रवृत्तियाँ अधिक हैं । यही बात पहाड़ी भाषाओं के सम्बन्ध में है । वे भी बाहरी उप-शाखा में होनी चाहिए थीं, परन्तु हैं भतरी उप-शाखा में-क्योंकि पहाड़ी भाषाओं पर हिमालय के दक्षिणी ढाल के विजेता राजपूतों की भाषा राजस्थानी का व्यापक प्रभाव है । अस्तु ।

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी से ग्रियर्सन को आर्यों के आगमन सम्बन्धी मान्यता को भी अस्वीकार किया है । उनका विश्वास है कि आर्य सप्तसिंधु के ही निवासी थे । वे कहीं बाहर से नहीं आये । उनका कहना है कि चूँकि अन्तरंग की पश्चिमी हिन्दी सदा से भारत की राष्ट्रभाषा रही है, अतः इसी को केन्द्र मानकर आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया जाना चाहिए और उन्होंने किया भी यही है ।

डॉ० ग्रियर्सन के वर्गीकरण में भौगोलिक एवं ऐतिहासिक आधार तो है, परन्तु उसमें वैज्ञानिकता का अभाव है। मध्यवर्ती शाखा के अन्तर्गत पूर्वी हिन्दी नहीं होनी चाहिए, क्योंकि पश्चिमी हिन्दी ही वस्तुतः हिन्दी है। वही वैज्ञानिक दृष्टि से मध्यवर्ती भाषा है। डा० चटर्जी ने इस ओर भी संकेत किया है कि पश्चिमी बहिरंग भाषाओं में भी काफी समानता है और यह ग्रियर्सन के दिमाग में नहीं आई।

ग्रियर्सन ने अपना वर्गीकरण प्रस्तुत करते समय यह भी कहा है कि बहिरंग भाषाओं में शब्दांश इ, उ लुप्त हो जाते हैं, परन्तु गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर विदित होता है कि यह बात समस्त बहिरंग भाषाओं पर लागू नहीं होती है। इसी प्रकार ग्रियर्सन ने यह भी कहा था कि अन्तरंग भाषाओं में 'इ' का 'ए' और 'उ' का 'औ' हो जाता है। परन्तु यह नियम बहिरंग भाषाओं पर लागू होता है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर डॉ० चटर्जी ने पश्चिमी हिन्दी को केन्द्र मानकर आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया। उन्होंने १२ भाषाएँ ली हैं तथा उसके ५ वर्ग किए हैं, यथा—

(१) **उदीच्य (उत्तरी) वर्ग (३ भाषाएँ)—**
(i) सिंधी।
(ii) लहँदा।
(iii) पूर्वी पंजाबी।

(२) **प्रतीच्य वर्ग (२ भाषाएँ)—**
(iv) गुजराती।
(v) राजस्थानी।

(३) **मध्य देशीय वर्ग (१ भाषा)—**
(vi) इसमें सेवल पश्चिमी हिन्दी है।

(४) **प्राच्य (पूर्वी) वर्ग—**
इसमें अर्द्ध मागधी एवं प्रसूत ५ भाषाएँ हैं—
(vii) कोसली या पूर्वी हिन्दी (अर्द्ध मागधी प्रसूत)

(viii) बिहारी
(ix) उड़िया
(x) बँगला
(ix) असमिया
मागधी भाषा

(५) **५ दक्षिणात्य (दक्षिणी) वर्ग (१ भाषा)—**
(xii) मराठी।

इस वर्गीकरण में पहाड़ी बोलियों पर विचार नहीं किया गया है। चटर्जी की मान्यता थी कि पहाड़ी बोलियाँ दरद प्राकृत (पैशाची) की ही एक शाखा है। इसके अतिरिक्त मध्य युग में इन पर राजस्थानी का व्यापक प्रभाव रहा और आधुनिक काल में इन पर हिन्दी का व्यापक प्रभाव पड़ा है। अतः ये बोलियाँ एक दम हिन्दी के निकट आ गई हैं। इन पर पृथक रूप से विचार करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु हाल में उन्होंने विचार बदल दिया और पहाड़ी बोलियाँ को सम्मिलित करते हुए आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तालिका अलग ही प्रस्तुत की। इसमें उन्होंने भाषाओं की छः श्रेणियाँ बनायीं हैं। समस्त उक्त वर्गीकरण ही सरल एवं मान्य है। अतः हम चटर्जी के द्वितीय वर्गीकरण पर विचार नहीं करते।

उपसंहार—डॉ० ग्रियर्सन ने आर्यों के आगमन के आधार पर सभी भाषाओं का वर्गीकरण किया है। जो सरल एवं व्यवहारिक है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इसमें कई त्रुटियाँ हैं। इन त्रुटियों को ध्यान में रखकर डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने जो वर्गीकरण किया है वह वैज्ञानिक होने के कारण सर्वमान्य है। यह मानना ही पड़ेगा कि इस दिशा में मार्ग-दर्शक का कार्य तो सर जार्ज ग्रियर्सन ने ही किया।

देवनागरी लिपि—विकास, त्रुटियाँ सुधार

प्रश्न १—देवनागरी लिपि की उत्पत्ति, नामकरण और विकास पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न २ – भाषा और लिपि के अतरंग सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए देवनागरी लिपि के विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

उत्तर—लिपि अभिव्यक्ति का माध्यम—भाषा का स्वरूप विकसित हो जाने पर मानव ने अपने विचरों को नेत्र-ग्राह्य बनाने की बात सोची होगी दूरस्थ व्यक्ति को अपनी भावनाओं और विचारों से परिचित कराने, भावी पीढ़ी तक ज्ञान राशि की स्मृति सुरक्षित रखने के विचार से उसने विविध प्रयत्न किए होंगे। लिपि इन्हीं प्रयत्नों का परिणाम है। इस प्रकार लिपि की उत्पत्ति के मूल में अभिव्यक्ति की इच्छा निहित है। भाषा और लिपि का अतरंग सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि भाषा, विचारों एवं भावनाओं को श्रवण-ग्राह्य बनाती है और लिपि उसको इन्द्रिय-ग्राह्य बनाती है। वैसे दोनों अन्योन्याश्रित हैं। डॉ० उदयनारायण तिवारी ने ठीक ही लिखा है कि "लिपि के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले विद्वानों का अनुमान है कि भाषा की भाँति ही लिखने की कला की उत्पत्ति भी विचारों की अभिव्यक्ति के लिए हुई होगी।"

लिपि का विकास—अभिव्यक्ति की प्रेरणा लेकर मानव लिपि के अनुसन्धान में प्रवृत्त हुआ होगा और प्रारम्भ में उसका यह प्रयत्न रूप चित्रों एवं प्रतीकों तक सीमित रहा। प्रारम्भ में जादू-टोने के लिए खींची गयी लकीरें ,धार्मिक प्रतीकों के चित्र, पहचान के लिए घड़ों इत्यादि पर बनाये गये चित्र, किसी वस्तु को सजाने के लिये बनाये गये चित्र आदि ही लिपि के प्रारम्भिक रूप रहे थे। अनेक प्रकार की लिपियों की उपलब्धि हमारे उक्त अनुमान को पुष्ट करती हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी ने विभिन्न उपलब्ध लिपियों का अध्ययन करके लिपि के विकास का ऐतिहासिक रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

(१) चित्र लिपि, (२) सूत्र लिपि, (३) प्रतीकात्मक लिपि, (४) भाव मूलक (५) भाव-ध्वनि मूलक लिपि, (६) ध्वनि मूलक लिपि।

लिपि के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री के आधार पर विद्वानों ने तीन निष्कर्ष निकाले हैं, यथा :

(१) ४००० ई० पूर्व के मध्य तक किसी लेखन की किसी भी व्यवस्थित प्रणाली का विकास विश्व के किसी भी भाग में नहीं हुआ था।

(२) ४००० ई० पू० तथा १५० ई० पू० के मध्य लेखन की व्यवस्था प्रणाली यानी लिपि का उद्भव हुआ।

(३) जहाँ तक भारत में लेखन-कला के उद्भव का प्रश्न है, इसके सम्बन्ध में भाषा-वैज्ञानिकों का मत यह है कि यह समय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी आता है।

उत्तर भारत की लिपियाँ—ध्वनि मूलक लिपि लिपि-विकास की चरम परिणित मानी जा सकती है। इसमें संकेतों से किसी वस्तु या भाव की अभिव्यक्ति न करके उसकी ध्वनि को प्रकट करने का विधान होता है।

इस लिपि के दो रूप पाये जाते हैं—अक्षरात्मक लिपि तथा वर्णात्मक लिपि। नागरी लिपि और रोमन लिपि क्रमशः इनके उदाहरण हैं।

प्राचीन भारतीय लिपियों में तीन लिपियों का व्यवहार होता था :

(१) सिन्धु घाटी लिपि, (२) ब्राह्मी लिपि तथा (३) खरोष्ठी लिपि।

देवनागरी लिपि का मूल सम्बन्ध भारत की प्राचीनतम राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी से है। कतिपय पाश्चात्य विद्वान ब्राह्मी लिपि को किसी विदेशी लिपि का विकसित रूप मानते हैं। परन्तु यह मत अब सर्वथा अमान्य कर दिया गया है। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे आर्यों द्वारा ही अविष्कृत माना है। अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी ओझा जी के मत को स्वीकार किया है।

प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी और खरोष्ठी नाम की दो लिपियाँ प्रचलित थीं। इनमें से ब्राह्मी एक प्रकार से राष्ट्रीय लिपि थी। इसका प्रचार पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़कर शेष समस्त भारत में था। देवनागरी लिपि की भाँति यह भी बाईं ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती थी। पश्चिमोत्तर प्रदेश में खरोष्ठी लिपि का प्रचार था और वह आधुनिक उर्दू लिपि की भाँति दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी। यह निश्चित है कि खरोष्ठी लिपि आर्य लिपि नहीं है। इसका सम्बन्ध विदेशी समेटिक 'अरमइक्' लिपि से है।

ब्राह्मी लिपि का प्रचार लगभग ३५० ईसवी तक रहा। इस समय तक उत्तर और दक्षिण की भारत की लिपि में पर्याप्त अन्तर हो गया था।

चौथी शताब्दी के लगभग उत्तर की प्रचलित शैली का नाम गुप्तलिपि रखा गया है। इसका प्रचार उत्तर भारत में छटी से नवीं शताब्दी तक रहा। अक्षरों तथा स्वरों की कुटिल आकृतियों के कारण ही यह लिपि कुटिल लिपि कही जाने लगी थी। इस काल के शिखालेख तथा दानपात्र आदि इसी लिपि में हैं। कुटिल से ही नागरी लिपि तथा काश्मीर की प्राचीन लिपि शारदा लिपि विकसित हुई है। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दशवीं शताब्दी के लगभग प्राचीन बंगला लिपि निकली, जिसके आधुनिक परिवर्तित रूप बंगला, मैथिली, उड़िया तथा नेपाली लिपियों के रूप में प्रचलित हैं। प्राचीन नागरी से ही गुजराती, कैथी तथा महाजनी आदि उत्तर भारत की अन्य लिपियाँ भी विकसित हुई हैं।

शारदा लिपि से वर्तमान काश्मीर टाकरी तथा गुरुमुखी लिपियाँ निकली हैं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि ७ वी शताब्दी के निकट उत्तर भारत की, गुप्त ब्राह्मी लिपि तीन प्रमुख रूपों में विकसित हुई—(१) शारदा लिपि (२) कुटिल लिपि तथा (३) नागरी लिपि । ये तीनों लिपियाँ आधुनिक उत्तर भारतीय लिपियों की जननी हैं ।

नागरी लिपि का सामान्य परिचय—नागी लिपि ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई है । इसका प्रयोग उत्तर भारत में नवीं दसवीं शताब्दी से हो रहा है । किन्तु दक्षिण भारत में कुछ लेख आठवीं शताब्दी तक के पाये जाते हैं । दक्षिण भारत में यह 'नन्दि नागरी' के नाम से प्रसिद्ध है । जिस प्रकार वर्तमान देवनागरी लिपि ब्राह्मी लिपि का विकसित रूप है, उसी प्रकार वर्तमान रूप है ।

देवनागरी लिपि अर्द्ध-अक्षरात्मक लिपि मानी गई है । इसमें कुल ४८ चिन्ह हैं । इन चिन्हों को स्वर और व्यंजन दो भागों में विभक्त किया गया है । इसमें अरबी, फारसी तथा अँग्रेजी से भी कतिपय चिन्ह लिये गये हैं—क, ग, ज, फ, कामा (,) अर्द्धविराम (;) इन्वर्टेड (" ") आदि ।

प्राचीन काल में यह लिपि पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र में व्यवहृत होती थी ।

देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में डॉ० उदयनारायण तिवारी का यह कथन दृष्ठव्य है कि "प्राचीन काल में पश्चिम उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान एवं महराष्ट्र में इसका प्रचार एवं प्रसार था । मध्य देश की लिपि होने के कारण देवनागरी अत्यन्त महत्वपूर्ण लिपि है, इसमें लिखित सबसे प्राचीन लेख सातवीं-आठवीं शताब्दी के हैं । ग्यारवीं शताब्दी तक यह तिथि पूर्णता प्राप्त कर चुकी थी और उत्तरी भारत में सर्वत्र इसका बोलबाला था । गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में इसमें ताम्रपत्र पर लिखे हुए अनेक प्राचीन हस्तलिखित-ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं ।"

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी लिखा है कि "राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य भारत, विन्ध्य प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में इस काल के लिखे प्राप्त समस्त शिलालेख ताम्रपत्र आदि में नागरी लिपि ही पाई जाती है ।

नामकरण के कारण हमारी हिन्दी-लिपि का नाम नागरी लिपि या देवनागरी लिपि नाम क्यों पड़ा, इसका कोई उत्तर सप्रमाण उपलब्ध नहीं है । इसके कतिपय कारणों की कल्पना की गई है, जो विवादास्पद हैं । वे कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१. नाग ब्राह्मणों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण—कतिपय विद्वानों का मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मण इस लिपि का प्रयोग करते थे । इसी कारण यह लिपि 'नागरी' लिपि कहलाई ।

२. **नगर से सम्बन्ध होने के कारण**—कुछ लोगों का ख्याल है कि चूँकि इस लिपि का प्रयोग महत्वपूर्ण नगरों में होता था, इस कारण इसका नाम 'नागरी' हुआ।

३. **नागलिपि से सम्बन्ध होने के कारण**—कुछ विद्वानों का विस्तार है कि नागरी का उद्भव बौद्ध-ग्रन्थ 'ललित विस्तार' की नागलिपि से है। परन्तु विचारणीय यह है कि नागलिपि और नागरीलिपि में कोई सम्बन्ध या समानता नहीं है। केवल नाम के साम्य के आधार पर इस हेतु की कल्पना कर ली गई है।

४. **नगर अपभ्रंश से उत्पत्ति के कारण**—कुछ विद्वानों का विचार है कि चूँकि 'नगर अपभ्रंश' में इसका व्यवस्थित प्रयोग पाया जाता है, अतः नगर अपभ्रंश' से उत्पत्ति होने के कारण ही इसका नाम 'नागरी लिपि' पड़ा।

५. **काशी में प्रचलित होने के कारण**—काशी को देवनगर भी कहते हैं। देवनगर (काशी) में प्रयुक्त होने के कारण यह लिपि देवनागरी कहलाई।

६. **देवनगर के साम्य के कारण**—कुछ विद्वानों कि यह धारणा है कि तांत्रिक यन्त्रों में बनने वाले चिन्ह देवनगर से मिलते-जुलते अक्षरों के कारण इस लिपि को देवनागरी कहा गया। इस मत के प्रमुख प्रतिपादक हैं—श्रीराम शास्त्री। उनका कहना है कि तन्त्र-विद्या में प्रयुक्त देवनगर चिन्ह विशेष ही देवनागरी का मूल आधार है। इस मत के समर्थन में लिपि विशेषज्ञ श्री ओझा जी ने लिखा है कि "तांत्रिक समय में 'नागरी लिपि' नाम प्रचलित था।"

७. **नन्दि नगर से सम्बन्धित होने के कारण**—दक्षिण भारत में इस लिपि का नाम 'दन्दिनागरी' है। नन्दिनागरी का सम्बन्ध 'नन्दिनगर नामक किसी राजधानी से जोड़ा जाता है।

८. **देवभाषा से सम्बन्ध होने के कारण**--डॉ० उदयनारायण तिवारी का मत है कि "चूँकि देवभाषा संस्कृत के लिखने के लिए भी इसका प्रयोग किया गया, अतः इसे देवनागरी नाम से भी अभिहित किया गया।"

हमारे विचार से उपर्युक्त समस्त मत केवल अनुमान पर आधारित हैं। प्रत्येक मत में 'देवनागरी' नाम के साम्य से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इनमें कोई भी मत पुष्ट प्रमाण पर आधारित नहीं है। डॉ० भोलानाथ तिवारी तथा कई अन्य विद्वानों ने नागरी शब्द को नगर के साथ जोड़ा है। हमारे विचार से डॉ० उदयनारायण तिवारी का मत अधिक तर्क-सम्मत एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है। संस्कृत देववाणी कही गई तथा पण्डितों--चतुर जन (नागरिकों) की भाषा रही। अतएव उनकी लिपि को 'देवनागरी' कहना सर्वथा संगत रहा। "वह लिपि जिसे नागरिक देववाणी के लिए प्रयुक्त करते हों।" निश्चित एवं पुष्ट प्रमाण के अभाव में हम तो यही कहेंगे कि देवनागरी लिपि का प्रयोग पण्डित वर्ग के द्वारा संस्कृत-लेखक के लिए किया जाता था।

देवनागरी लिपि का विकास – नागरी लिपि का प्रयोग ईसा की ६वीं शताब्दी के अन्त तथा ७वीं शताब्दी के आरम्भ से पाया जाता है। दसवीं शताब्दी से लेकर ११वीं शताब्दी तक इसमें विकास हुआ। १२वीं शताब्दी से लगाकर अब तक नागरी लिपि प्रायः इसी रूप में चली आ रही है।

ओझा जी के मतानुसार "ईसवीं सन् की १७वीं शताब्दी की उत्तरी भारत की नागरी लिपि में कुटिल लिपि की नाईं अ, आ, घ, प, म, य, ष, और स के सिर दो अंशों में विभक्त मिलते हैं, परन्तु ११ वीं शताब्दी में वे दोनों अंश मिलाकर सिर की एक लकीर बन जाते हैं और प्रत्येक अक्षर का सिरा उतना लम्बा रहता है जितनी कि अक्षर की चौड़ाई होती है। ११वीं शतब्दी की नागरी लिपि वर्तमान नागरी से मिलती-जुलती है और १२ वीं शताब्दी से वर्तमान नागरी बन गई। × × × ई० सन् की शताब्दीं से लगातार अब तक नागरी लिपि बहुधा एक ही रूप में चली आ रही है।"

दसवीं शताब्दी में प्रचलित नागरी लिपि ने अनेक वर्ण आधुनिक वर्णों से बहुत भिन्न हैं।

देवनागरी लिपि के वर्णों के क्रमिक विकास में प्रारम्भिक रूप ब्राह्मी के हैं। पुनः विकास-क्रम में गुप्त एवं कुटिल लिपिकों का भी योगदान है। इस प्रकार ब्राह्मी लिपि ही गुप्त एवं कुटील लिपियों के माध्यम से आधुनिक देवनागरी लिपि में परिणित हुई है।

देवनागरी लिपि में अब तक जो परिवर्तन हुए हैं, उनके अध्ययन के फलस्वरूप डॉ० भोलानाथ तिवारी ने ५ प्रमुख बातों का उल्लेख किया है। वे दृष्टव्य हैं; यथा :

(१) नागरी लिपि क्रमशः जटिलता की ओर आई है। आगे भी इसी ओर प्रयत्नशील है।

(२) धीरे-धीरे शिरो रेखा का प्रयोग कम होता जा रहा है।

(३) विराम-चिन्हों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अन्य भाषाओं से विराम-चिन्ह ग्रहण किये गये हैं और किए जा रहे हैं जैसे – (,) (;) (-) तथा (" ") आदि। संगम (junction) तो अब लिपि का एक अंग ही बन गया है।

(४) पंचम अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वर का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

(५) विदेशी ध्वनियों के आधार पर ड, ढ, ज, फ, क, ख, ब, ॉ (डॉक्टर हॉटेल) आदि कई नए चिन्ह बना लिए गए हैं।

इसके अतिरिक्त मुद्रण और टंकण की सुविधा के विचार से भी कई परिवर्तन किए गए हैं, यथा :

(अ) संयुक्त व्यंजनों के ऊपर-नीचे के मिले हुए रूपों को बदल कर आगे-पीछे कर दिया गया है।

(ब) 'ष' के स्थान पर 'ख' का प्रयोग कर लेते हैं।

कुछ लोग फारसी-अरबी के शब्दों के नीचे बिन्दी नहीं लगाते हैं और उनकी ध्वनि को हिन्दी के अनुरूप बना लेते हैं, जैसे कागज, जरूरत, आतिशवाजी, फकीर, खलक को नीचे की बिन्दी हटाकर कागज, जरूरत, आतिशवाजी, फकीर, खलक करके लिखते हैं। हमारे विचार से यह प्रयास भ्रम पूर्ण है। इससे भाषा का स्वरूप दूषित होता है तथा विकृत उच्चारण को प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

निष्कर्ष—देवनागरी लिपि का इतिहास लगभग १ हजार वर्ष पुराना है—उतना ही पुराना जितना हिन्दी-भाषा और उसके साहित्य का इतिहास।

यह लिपि समय की आवश्यकतानुसार निरन्तर विकासशील है। यह एक अत्यन्त जीवन्त महत्वपूर्ण, लोकप्रिय एवं समर्थ लिपि है। इसका प्रयोग-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है।

प्रश्न ३—"**देवनागरी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है" इस कथन की समीक्षा कीजिये।**

अथवा

प्रश्न ४—**देवनागरी लिपि के गुण-दोषों का सोदाहरण परिचय दीजिए।**

अथवा

प्रश्न ५—देवनागरी लिपि में सुधार करने के लिए जो प्रयास हुए हैं, उनका उल्लेख कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—देवनागरी लिपि की प्रमुख त्रुटियों का उल्लेख कीजिए। इन त्रुटियों को कैसे सुधारा जा सकता है?

उत्तर—विभिन्न लिपियों में देवनागरी का स्थान—हिन्दी-प्रदेश में कई लिपियाँ प्रयुक्त होती हैं—१. महाजन, २. बिहारी अथवा कैथी लिपि तथा ३. मैथिली लिपि। कैथी लिपि के तीन स्थानीय रूप पाए जाते हैं—(अ) तिरहुती कैथी लिपि, (ब) मगही कैथी लिपि तथा (स) भोजपुरी कैथी लिपि।

इन लिपियों के अतिरिक्त उर्दू-लिपि, सिन्धी एवं गुरुमुखी लिपि, बंगला लिपि, टाकरी, जौनसारी कुल्लइ तथा रोमन लिपियाँ भी प्रयुक्त होती हैं।

महाजनी तथा बिहारी एवं (उसके उपभेद) लिपियों का विकास देवनागरी लिपि से ही हुआ है। मैथिली लिपि बंगला के समीप है। परन्तु विद्वानों के मतानुसार उसका विकास प्राचीन नागरी के पूर्वी रूप से ही हुआ है।

उर्दू वस्तुतः अरबी-फारसी लिपि है, जो हिन्दी भाषा की उर्दू शैली की लिपि रूप में प्रयुक्त होती है।

सिन्धी और गुरुमुखी का प्रयोग भारत-विभाजन के बाद शरणार्थियों द्वारा किया जाने लगा है। इनका प्रयोग बहुत ही सीमित है। इनकी उत्पत्ति 'लंडा' लिपि से हुई है।

बंगला लिपि का प्रयोग अत्यन्त सीमित रूप में कतिपय बंगाली परिवारों एवं संस्थाओं में होता है। वैसे यह लिपि भी पुरानी नागरी लिपि की पूर्वी शैली से उत्पन्न हुई है।

टाकरी, जौनसारी तथा कुल्लुइ लिपियाँ अत्यन्त कठिन लिपियाँ हैं। ये पर्वतीय भागों के निवासियों द्वारा स्थानीय रूप में प्रयुक्त होती हैं। इनकी उत्पत्ति शारदा लिपि से हुई है।

सारांश यह है कि रोमन लिपि को छोड़कर शेष लिपियाँ भारतीय लिपियाँ हैं और इन सबका मूलाधार प्राचीन भारतीय लिपि ब्राह्मी लिपि है। देवनागरी लिपि का प्रयोग व्यापक रूप में एवं विस्तृत क्षेत्र में होता है। अन्य लिपियों का प्रयोग अत्यन्त सीमित एवं स्थानीय रूप में ही होता है।

देवनागरी लिपि की श्रेष्ठता—भारतवर्ष के अधिकांश ग्रन्थ, पत्र, पत्रिका, समाचार आदि देवनाग्री लिपि में ही प्रकाशित होते हैं। देवनागरी लिपि हमारी राष्ट्रीय लिप के रूप में स्वीकृत है। उसकी लोकप्रियता का कारण उसकी वैज्ञानिकता तथा अन्य समस्त लिपियों की अपेक्षा उसकी श्रेष्ठता है—विद्वानों के मतानुसार देवनागरी लिपि संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है तथा इसमें संसार की लगभग समस्त भाषाओं की ध्वनियों को उच्चरित करने का सामर्थ्य है। इसकी प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित प्रकार हैं :

(१) यह एक व्यवस्थित रूप में निर्मित लिपि है। इसकी वर्णमाला में वर्ण क्रम अत्यन्त वैज्ञानिक रीति से रखा गया है।

(२) इसमें ध्वनि प्रतीकों की समबद्धता शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक है।

(३) उच्चारण के स्थान के अनुसार व्यंजनों के वर्ग निर्धारित किये गये हैं तथा उसी क्रम में व्यवस्था की गयी है, यथा -कष्ठ्य, तालब्ध, मूर्द्धन्य, दन्त्य और ओष्ठय--जैसे वर्गीकरण अत्यन्त वैज्ञानिक रीति पर किये गये हैं। यही कारण है कि इस वर्णमाला के द्वारा देवनाग्री लिपि एवं हिन्दी-भाषा सरलता पूर्वक सीखी जा सकती है।

(४) ध्वनियों के दोनों रूप—स्वर और व्यंजन विभक्त हैं। रोमन, अरबी फारसी लिपियों में दोनों को मिला दिया गया है।

(५) स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ का पृथक रूप है, यथा अ, आ, इ, ई, आदि।

(६) अल्पप्राण एवं महाप्राण वर्णों के पृथक-पृथक चिन्ह हैं।

(७) प्रत्येक में ध्वनि के लिए पृथक लिपि चिन्ह है, जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है। इसमें अँग्रेजी उर्दू आदि की भाँति वर्तनी Cpellings याद करने की आवश्यकता नहीं रहती है। अँग्रेजी में Cut कट और put पुट होता है। इसमें इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं है। इसी प्रकार इसमें केवल उच्चारित ध्वनियाँ

ही लिखी जाती हैं। अनुच्चारित ध्वनियों को नहीं लिखा जाता है; Walk, Talk में '1' अनुच्चारित है।

(८) उर्दू लिपि की भाँति इससे एक ही ध्वनि के लिए कई वर्ण नहीं हैं। जब तक शब्द की उत्पत्ति न हो, तब तक शुद्ध उर्दू लिखी ही नहीं जा सकती। उर्दू में 'स' के लिए तीन वर्ण हैं—'सीन' 'से' 'स्वाद'। 'त' के लिए दो संकेत हैं—ते तथा तोय। इसी प्रकार अँग्रेजी में 'के' के लिए C, K दो चिन्ह प्रयुक्त होते हैं। कभी कभी तो 'क' के लिए 'Ch' भी प्रयुक्त होता है। फलतः इन लिपियों और भाषाओं को सीखने के लिए वर्त्तनी हिज्जे Spelling का याद करना या रटना आवश्यक हो जाता है। हिज्जे का रटना अमनोवैज्ञानिक है। यह शिक्षा शास्त्र के सिद्धान्तों के प्रतिकूल पड़ता है तथा अधिक समय देना पड़ता है। इस प्रकार ज्ञानार्जन में बालक को अधिक श्रम करना पड़ता है तथा अधिक समय देना पड़ता है। इसके विपरीत नागरी और हिन्दी सीखने की प्रक्रिया वैज्ञानिक सरल रोचक तीव्र गति वाली रहती है।

(९) देवनागरी लिपि में जो मात्राओं का नियम है, वैसा स्वर-व्यंजन में योग उपस्थित करने वाला वैज्ञानिक नियम अन्यत्र दुर्लभ है। उदाहरणार्थ अरबी-फारसी में जबर, जेर, पेश का विधान है। परन्तु इसका प्रयोग केवल प्रारम्भिक अवस्था में ही होता है। बाद में लोग इन चिन्हों को लगाना बन्द कर देते हैं। फलतः अन्दाज से पढ़ने की स्थिति आ जाती है। यही स्थिति रोमन लिपि की भी है। उर्दू लिपि में पाठक अ, इ, उ, की मात्रा लगाने को स्वतन्त्र बना रहता है। 'सुरमादानी' के स्थान पर वह 'सिर में देना' तथा 'अजमेर गये' के स्थान पर 'आज मर गये' पढ़ने को स्वतन्त्र रहता है। रोमन लिपि में भी वह 'Chak' को चक, चाक, चैक आदि कई प्रकार से पढ़ने को स्वतन्त्र रहता है। परन्तु नागरी लिपि में इस प्रकार की मनमानी करने अथवा भूल करने की गुंजाइश बिलकुल नहीं रहती है।

(१०) व्यंजनों के संकेत भी नागरी लिपि में सर्वदा अलग हैं। उर्दू की तरह एक ही रूप या चिन्ह में नुक्ते लगाकर अलग-अलग कई तरह के संकेतों का उच्चारण नहीं होता है। उर्दू की लिपि के बारे में यह कहावत प्रचलित है कि नुक्ते के हेर-फेर से खुदा जुदा हुआ। यदि बिन्दी है के ऊपर लगती हैं तो खे (ख) बनती है और यदि नीचे लगती है तो जीम (ज) बनता है।

रोमन लिपि में कई संकेतों के योग से एक ध्वनि बनाते हैं—जैसे Ch, Th आदि। देवनागरी लिपि में इस प्रकार के जोड़े लगाने की कोई आवश्यकता उत्पन्न नहीं होती है। प्रत्येक ध्वनि के लिए उसमें पृथक चिन्ह उपलब्ध है। नागरी लिपि की श्रेष्ठता के विषय में डॉ० उदयनारायण तिवारी का यह कथन दृष्टव्य है कि— "अपनी सर्वांगपूर्णता से नागरी लिपि भारत की सर्वाधिक प्रचलित एवं प्रतिष्ठित लिपि है। भारत के संविधान में इसे राष्ट्र-लिपि के स्थान पर आसीन किया गया है,

और संस्कृत लिखने के लिए प्रयुक्त होने के कारण यह निखिल भारतीय लिपि है। पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, मध्यभारत, मध्यप्रदेश एवं हिमाचल प्रदेश की बोलियों के अतिरिक्त बिहार की बोलियों तथा वहाँ की अनार्य भाषाओं—मुण्डा एवं संथाली लिखने के लिए भी आज नागरी लिपि का प्रयोग हो रहा है।"

डॉ० राममनोहर लोहिया ने भी देवनागरी लिपि के समर्थन में यह बात कही थी कि "क्यों न भारत की सभी भाषाऐं एक ही लिपि (देवनागरी) अपनाएँ" ?

त्रुटियाँ—आशु लेखन, मुद्रण और टंकण की दृष्टि से देवनागरी लिपि में कुछ कमियाँ पाई जाती हैं। इन त्रुटियों को लेकर देवनागरी लिपि के विरोधी प्रायः यह कह सकते हैं कि देवनागरी लिपि राष्ट्रीय लिपि होने के लिए सर्वथा अक्षम है। हम इन त्रुटियों का उल्लेख यहाँ करते हैं और यह निर्णय अपने विज्ञ पाठकों के ऊपर छोड़ते हैं कि ये त्रुटियाँ वास्तविक रूप से कितनी महत्वपूर्ण हैं; यथा—

१. **आवश्लेषणीय ध्वनि-चिन्ह**— – यह लिपि पूर्णतः वर्णात्मक नहीं है। इसमें कभी-कभी कोई ध्वनि अव्यक्त रहती है। वस्तुतः ऐसा 'अ' की ध्वनि के साथ प्रायः होता है। हम 'क्' और 'क' का उच्चारण प्रायः समान रूप से करते हैं 'पीहर' में प, ह तथा र की ध्वनियाँ व्यक्त रहती हैं। चौथी ध्वनि 'अ' अव्यक्त रहती है।

२. **भ्रामक लिपि चिन्ह**—इसमें एक-दो लिपि चिन्ह ऐसे हैं, जो भ्रांति उत्पन्न कर देते हैं, जैसे रवाना और 'खाना' प्राय; एक ही लिखे जाते हैं और रवाना को 'खाना' प्रायः पढ़ लिया जा सकता है। परन्तु ऐसा बहुत कम है। सन्दर्भ स्पष्ट कर देता है कि शब्द 'खाना' होना चाहिए अथवा 'रवाना'। फिर रवाना लिखते समय र और व के अन्तर को कुछ बढ़ा देने से भ्रान्ति सहज ही दूर हो जाती है। इसी प्रकार 'ण' को 'रा' करके लिखा जाता है। यह भी भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। आरण्ड (अण्डा) को भराडा करके पढ़ा जा सकता है। परन्तु यह भ्रान्ति भी बहुत कम उत्पन्न होती है। 'ण' का काम अ के ऊपर अनुस्वार लगाकर अथवा 'ण' लिख कर चलाया जा सकता है।

३. **अनावश्यक लिपि चिन्ह**—कुछ लोगों के मतानुसार क्ष, त्र, ज्ञ, अनावश्यक लिपि चिन्ह हैं। हमारे विचार में यह आपत्ति भी निराधार है।

४. **'र' चिन्ह के विविध प्रयोग**—'र' ध्यानि के अनेक प्रयोगात्मक रूप हैं—राशि, प्रमाद, टुण्ड्रा, कर्म, धृष्टि, दृष्टि। टंकण की दृष्टि से आवश्यक सुधार कर दिया गया है।

५. **मात्राओं की विविधता**—देवनागरी लिपि में मात्राओं के प्रयोग की विविधता है। कुछ मात्राएँ आगे, कुछ पीछे और कुछ ऊपर कुछ नीचे, लगाई जाती हैं। श्याम किरण, खरी, शूरवीर।

संयुक्ताक्षरों की द्वैरूपता—इसमें संयुक्ताक्षरों का रूप भी दो प्रकार से होता है—बच्चा-बच्चा। उक्त दो त्रुटियाँ वास्तव में लेखन की जटिलता उत्पन्न करने वाली हैं। इसके कारण टंकण में विशेष असुविधा होती है। मात्राओं के चिन्ह वर्ण

के साथ पृथक रूप से लगाने पड़ते हैं और इससे 'टाइपों' की संख्या चार सौ के लगभग हो गई । इससे मुद्रीपटल की एकरूपता प्राप्त करने में बराबर कठिनाई बनी हुई है । कहने की आवश्यकता नहीं है कि इन समस्त कठिनाइयों के होते हुए भी हिन्दी ग्रन्थों का प्रकाशन एवं टंकण दिन-दूना रात-चौगना बढ़ता जा रहा है । काम करने वालों ने प्रत्येक समस्या का समाधान खोज निकाला है । वस्तुस्थिति यह है कि भाषा-विज्ञान एवं शास्त्रीय दृष्टि से कठिनाइयाँ बहुत कम हैं । अधिकांश कठिनाइयाँ कल्पित अथवा राजनीतिक हैं, जो केवल हिन्दी और नागरी का विरोध करने के लिए समय-समय पर उठाई जाती हैं ।

सुधार के प्रयास - देवनागरी लिपि की उपर्युक्त त्रुटियों को करके लिपि में आवश्यक सुधार के प्रयास निरन्तर किये जाते रहे हैं । ये प्रयास व्यक्तिगत एवं संस्थागत दोनों ही स्तरों पर किये हैं । सरकारी तौर पर इस ओर विचार करने के लिए समितियाँ नियुक्त की जा चुकी हैं और उनके सुझाव माँगे जा चुके हैं ।

व्यक्तिगत स्तर पर गम्भीर सुझाव देने वालों में उल्लेखनीय हैं—

डॉ० गोरखप्रसाद, सुनील कुमार चटर्जी और सावरकर बन्धु ।

इस ओर सुझाव देने वाली संस्थाओं में प्रमुख हैं :

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, नागरी प्रचारणी सभा काशी तथा राष्ट्रभाषा प्रचार सीमिति वर्धा । इनके अतिरिक्त कई शासकीय एवं प्रशासकी समितियाँ भी इस ओर गम्भीर विचार-विनिमय कर चुकी हैं ।

समस्त सुझावों एवं प्रस्तावों के आधार पर निम्नलिखित सुधारों की बात की गई है :

(१) देवनागरी लिप के स्थान पर 'रोमन लिप' का प्रयोग किया जाय । यह सुझाव मान्य न हो सका । एक तो रोमन लिप देवनागरी के ग्रन्थों के अध्ययन के समय अपार कठिनाई होगी । यह भी सम्भव था कि लिप की दृष्टि से ये ग्रन्थ कालान्तर में अपठनीय हो जायें ।

(२) शिरो रेखा का लगान समाप्त कर दिया जाए । यह सुझाव भी मान्य न हो सका, क्योंकि तब तो ध, और ध, म और भ का अन्तर ही समाप्त हो जाता है ।

(३) मुद्रण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए मात्राओं को दाहिनी ओर हटाकर लगा दिया । यह सुझाव भी मान्य न हुआ । इससे समस्त प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ने की परम्परा ही समाप्त हो जाती है । इसी प्रकार के सुधार के लिए यह भी एक सुझाव था कि 'इ' 'ई' दोनों की मात्राओं की छोटी, बड़ी लकीर करके केवल दाहिनी ओर ही लगाया जाय—कीरण (किरण) तथा कील । मुद्रण और टंकण में तो यह चल भी जाय, परन्तु लिखते समय मात्रा की पाई को छोटा बड़ा रखना असम्भव है । अतः यह सुझाव भी अमान्य रहा । इस सुझाव के अनुसार कुछ प्रयत्न

किए गए, परन्तु वे व्यावहारिक सिद्ध न हो सके। पढ़ने-पढ़ाने लिखने-लिखाने में एक प्रकार की अराजकता-सी फैली गई।

(४) वर्तमान बारहखड़ी के स्थान पर 'अ' की ही बारहखड़ी लिखी जाये। या इ के लिए 'अ' और उ के लिए 'अ' आदि का प्रयोग किया जाय। व्यवहार की कठिनाइयों के कारण यह सुझाव भी अमान्य रहा।

(५) वर्तमान बारहखड़ी के स्थानों पर 'अ' की ही बारहखड़ी लिखी जाये। या इ के लिए 'अ' और उ के लिए 'अ' आदि का प्रयोग किया जाय। व्यवहार की कठिनाइयों के कारण यह सुझाव भी अमान्य रहा।

(६) संयुक्ताक्षरों को उच्चारण क्रम से लिखना, जैसे प्रेम को पेरेम करके लिखना आदि। यह सुधार अमनोवैज्ञानिक एवं अत्यन्त श्रमसाध्य होने के कारण स्वीकृति न हो सका।

संयुक्ताक्षरों को लिखते समय व्यंजनों में हलादि लगाने अथवा अन्तिम खड़ी पाई को समाप्त करने का भी सुझाव दिया गया।

इनके अतिरिक्त भी कई छोटे-मोटे सुधार सुझाये गये अनुस्कार एवं अनुनासिकता के नवीन प्रयोग, व्यंजनों के नवीन प्रयोग कतिपय अन्य लिपियों के कुछ अक्षरों को ग्रहण करना आदि।

उपसंहार – देवनागरी लिपि इतनी पूर्ण एवं वैज्ञानिक है कि उसमें सुधार के लिये बहुत कम अवकाश है। लोग वाग्विलास कितना ही करें, परन्तु वह जहाँ की तहाँ है।

देवनागरी लिपि सुधार-सम्मेलन द्वारा प्रस्तुत देवनागरी लिपि का संशोधित रूप इस प्रकार है--

अ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ
ा ि ी ु ू े ै ो ौ ं ँ
क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द थ न
प फ ब भ म
य र ल व
श ष स ह
क्ष त्र ज्ञ क्त=क प ह

स्पष्ट है कि देवनागरी लिपि अपनी विशेषताओं के कारण अत्यन्त श्रेष्ठ एवं सार्वभौम लिपि है।

नागरी अंक

प्रश्न ७—नागरी अंकों का विकास बतलाइये ।

उत्तर—नागरी अंकों का विकास ब्राह्मी के अंकों से हुआ है। इन अंकों के दो शैलियों में प्रयोग पाये जाते हैं :

१. प्राचीन शैली २. नवीन शैली

प्राचीन शैली—प्राचीन शैली का प्रचार अशोक से लेकर ४ वीं सदी तक रहा। इस शैली के अंक आकृति में नवीन शैली से भिन्न थे। पहले शून्य का व्यवहार नहीं होता था। इसके परिणामस्वरूप १ से ९ तक की संख्याओं की तरह ही १० २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० आदि के लिये पृथक-पृथक चिन्ह थे। १, २, ३ के साथ शून्य लगाकर ये संख्यायें नहीं लिखी जाती थीं।

अंकों की उत्पत्ति विवादास्पद है

१. प्रिंसेप के अनुसार ये अंक उन शब्दों के प्रथम अक्षर से विकसित हैं, जो शब्द इन अंकों को व्यक्त करते थे, अर्थात् 'एक' के 'ए' से १ का विकास हुआ है। डॉ० बूलर इस मत से सहमत नहीं हैं।

२. कुछ लोग नागरी अंकों को विदेशी अंकों से विकसित मानते हैं, परन्तु यह मत अनुमान पर ही आधारित होने के कारण मान्य नहीं है।

३. १. २. ३. का विकास तो एक अँगुली, दो अँगुली, तीन अँगुली के चिन्ह से हुआ है। शेष सीधी और वक्र रेखाओं से यदृच्छिक ढंग से बना दिये गये हैं। इसका प्रमाण अशोक कालीन अंक-चिन्ह हैं।

नवीन शैली—५वीं सदी से अंकों की नवीन शैली के प्रयोग की संभावना की जाती है। यद्यपि शिला-लेख आदि में प्राचीन शैली का प्रयोग इसके बाद तक चलता रहा। भारतियों ने चौथी पाँचवी शताब्दी में शून्य की खोज की। पूरे विश्व की सून्य की संकल्पना भारत से ही मिली। शून्य के प्रयोग से गणित के क्षेत्र में क्रान्ति ही उपस्थित हो गई। अरबों ने भारत से नवीन शैली का प्रयोग सीखा। अरबों से यूनान ने और यूनान से सारे योरोप में इसका प्रसार हो गया। प्राचीन शैली में १०, २०, ३० आदि के जो चिन्ह थे, उनको नवीन शैली में छोड़ दिया गया और शून्य की सहायता से १, २, ३ आदि संख्यायें लिखी जाने लगीं। अब भारत में भी नागरी अंकों के साथ में अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रचार बढ़ता जा रहा है।

हिन्दी-ध्वनियाँ

[स्वरूप एवं वर्गीकरण]

प्रश्न १—हिन्दी-ध्वनि-समूह का विवेचन कीजिए।

संक्षिप्त रूपरेखा—हिन्दी-ध्वनियों का वैज्ञानिक विवेचन हुआ। हिन्दी-शब्दों में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें एक व्यंजन का भिन्न स्थानीय संयुक्त व्यंजन में परिवर्तन हो जाता है।

शक्कर	शर्करा
बत्ती	वर्तिका

कुछ बोलियों में, विशेषतया कन्नौजी में 'र' का निकट के व्यंजन में परिवर्तित हो जाना भी साधारण नियमों की रूपरेखा में आ गया है।

कन्नौजी	हिन्दी
उद्द	उर्द
मिच्चें	मिर्चें

उदाहरण में अनुरूपता के अनेक उदाहरण मिलते हैं :

लिखित रूप	उच्चारित रूप

हिन्दी में व्यंजनों के स्थान-परिवर्तनों के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं :

घर	गृह
नखनऊ	लखनऊ

हिन्दी-ध्वनि-समूह

हिन्दी ध्वनियाँ दो विभागों में विभक्त की जाती हैं—१. स्वर २. व्यंजन। स्वर से ध्वनियाँ कहलाती हैं जिनके उच्चारण को मुख द्वारा कम ज्यादा तो किया जाता है, किन्तु न तो कहीं बिल्कुल बन्द किया जाता है और न इतना बन्द किया जाता है कि निश्वास रगड़ खाकर निकले, ऐसा न होने से ध्वनि व्यंजक कहलाती है। वैदिक भाषाओं में मैकडानल के अनुसार ५२ ध्वनियाँ थीं।

स्वर—जिह्वा के अगले या पिछले मार्ग के ऊपर उठने की दृष्टि से स्वर के दो भेद माने गए हैं, जिन्हें अग्र स्वर और पश्च स्वर कहते हैं। कुछ स्वर ऐसे भी हैं

जिनमें जिह्वा के बीच का भाग उठता है, ऐसे स्वर 'मध्य स्वर' कहे जाते हैं। दूसरे मुख द्वार अधिक या कम खुलने की दृष्टि से स्वरों के चार भेद किए गए हैं—१. विवृत २. अर्ध-विवृत ३. संवृत ४. अर्ध-संवृत। इन दोनों प्रकार के विभाजनों को दृष्टि में रखते हुए ८. प्रधान स्वर माने गए हैं। जो भिन्न-भिन्न भाषाओं में स्वरों का अध्ययन करने के लिए बाँटों का कार्य करते हैं।

प्रधान स्वर

अ—यह अर्ध-विवृत मध्य स्वर है। शब्दांश के मध्य या अन्त में आने से अ की दो मुख्य भाषा ध्वनियाँ पाई जाती हैं। शब्दांश के अन्त में प्रयुक्त होने वाला कुछ दीर्घ होता है। कुछ विवृत एवं पीछे की ओर हटा होता है। हिन्दी में शब्द या शब्दांश के अन्त में आने वाले अ का उच्चारण नहीं होता है। किन्तु इस नियम के अपवाद मिलते हैं। उच्चारण की दृष्टि से उदाहरण :—कमल्, सरल्, अब्।

आ—उच्चारण में एक या अर्ध मात्रा काल अधिक होने के अतिरिक्त आ और अ में स्थान भेद भी है। आ विवृत पश्व स्वर है और प्रधान स्वर आ से बहुत मिलता जुलता है। इसके उच्चारण में जीभ के नीचे रहने पर भी इसका पिछला भाग कुछ अन्दर की तरफ उठ जाता है। उदाहरण काला, बदाम, आदमी आदि।

ऑ—अँग्रेजी का आ का स्थान आ से काफी ऊँचा है। स्थान स्वर ऑ से आ का स्वर कुछ ही नीचा रह जाता है। उदाहरणार्थ – कान्फ्रेन्स।

ओ—यह अर्द्ध विवृत, ह्रश्व पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग अर्द्ध विवृत पश्च स्वर प्रधान स्वर के स्थान की अपेक्षा कुछ ऊपर की तरफ तथा अन्दर की ओर दबा हुआ रहता है और ओठ खुले गोल रहते हैं। इसका व्यवहार ब्रज भाषा में पाया जाता है। उदाहरण:—"अवलोकि हौं सोच विमोचन को।"

औ—यह अर्द्ध संवृत, दीर्घ पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग ऊपर की ओर उठता है, किन्तु ऊ के स्थान की अपेक्षा नीचे तथा मध्य की ओर झुका रहता है। उदाहरणार्थ—और

उ—यह संवृत, ह्रस्व पश्च स्वर है। उच्चारण में जीभ का पिछला अंश काफी उठ जाता है। उदाहरण उस, मधुर इसमें औठ वन्द गोल हो जाते हैं।

ऊ—यह सवृत, दीर्घ पश्च स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग इतना उठ जाता है कि कोमल तालु के बहुत नजदीक पहुँच जाता है। ऊ का उच्चारण स्थान प्रधान ऊ से कुछ ही नीचा होता है। इसकी अपेक्षा ऊ के उच्चारण में अधिक जोर के साथ बन्द गोल हो जाते हैं।

ई—यह संवृत, दीर्घ, अग्र स्वर है। इसके उच्चारण में जीभ का अगला

भाग इतना ऊपर उठ जाता है कि कठोर तालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। उदाहरणार्थ ईख। ई के उच्चारण में ओंठ फैले—खुले रहते हैं।

इ—यह संवृत, ह्रस्व, अग्र स्वर है। इसका उच्चारण स्थान ई की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा अन्दर की ओर है इसके उच्चारण में फैले हुए ओठ ढीले रहते हैं। उदाहरण:—इस, मिलाप।

ए—यह अर्ध, संवृत दीर्घ अग्र स्वर है। ए के उच्चारण में ओठ ई की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं। उदाहरण एक, अनेक।

आनुनासिक स्वर—आनुनासिक स्वरों के उच्चारण में उच्चारण स्थान वही रहता है, किन्तु साथ ही कोमल तालु और कौआ नीचे झुक जाता है। जिससे मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त श्वास का कुछ भाग नासिक-विवर में गूँजकर निकलता है। इसी के स्वर में अनुनासिकता आ जाती है। देवनागरी में इसको प्रकट करने के लिए कहीं बिन्दी और कहीं अर्धचन्द्र लगाया जाता है।—जैसे अंगरखा आदि।

संयुक्त स्वर—हिन्दी में दो स्वर होते हैं यथा ए और औ। सिद्धान्त की दृष्टि से संयुक्त स्वर के उच्चारण में मुख अवयव एक स्वर के उच्चारण स्थान से दूसरे स्वर के उच्चारण स्थान की ओर सीधे रास्ते में तीव्र गति में बदलते हैं जिसमे श्वास के एक ही झोके में एक ही अवयव में परिवर्तन होती हुई अवस्था में ध्वनि का उच्चारण होता है, अतः संयुक्त स्वर को दो भिन्न स्वर मानना उचित नहीं है। उदाहरण औरत वौनी इत्यादि।

व्यंजन

स्पर्श व्यंजन—

क—यह ध्वनि अरबी, फारसी से आई है। क का उच्चारण जिह्वमूलक कउए के निकट कोमल तालु के पिछले भाग से स्पर्श कर किया जाता है। यह अल्पप्राण, घोषित जिह्वामूलीय, स्पर्श व्यंजन है और इसका स्थान जीभ तथा तालु दोनों की दृष्टि से सबसे पीछे है। उदाहरणार्थ—काबिल।

क—उच्चारण जीभ के पिछले भाग कोमल तालु से छुआकर किया जाता है। यह अल्पप्राण अघोष, स्पर्श व्यंजन है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाकाल में क वर्ग का उच्चारण कोमल तालु के स्थान की दृष्टि से आजकल की अपेक्षा कदाचित कुछ अधिक पीछे से होता था। अतः क उस सम ख के कुछ अधिक निकट रहा होगा। इसलिए क वर्ग का स्थान कण्ठ माना जाता था। आजकल क का स्थान कुछ आगे हट गया है, उदाहरणार्थ—कमला, चकिया।

ख—ख और क के उच्चारण स्थान में समानता है। किन्तु यह महाप्राण अघोप व्यंजन है।

ग—उच्चारण स्थान अन्य कंठ ध्वनियों के समान ही है, किन्तु यह अल्प-

प्राण, अघोष स्पर्श व्यंजन है। फारसी अरबी में ग मिला है। उदाहरण गमला —गमला।

घ—घ का उच्चारण स्थान भी अन्य ध्वनियों के समान है। किन्तु यह महाप्राण रूप व्यंजन है। उदाहरणार्थ घर बघारना।

ट्—समस्त ट वर्गीय ध्वनियों का उच्चारण जिह्वा नोक को उलट कर उसके नीचे के हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआकर किया जाता है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार ट आदि मूर्धन्य व्यंजन हैं। ट अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। उच्चारण की कठिनाई के कारण बच्चे ट वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण देर से कर पाते हैं।

ट—स्थान की दृष्टि से भेद नहीं। किन्तु ठ महाप्राण, मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है।

ड—यह भी उच्चारण की दृष्टि से अन्य मूर्धन्य ध्वनियों के समान है। यह अल्पप्राण, सघोष, मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन है। उदाहरण—डमरू।

ढ—उच्चारण में ड के ही समान है। यह महाप्राण सघोष मूर्धन्य स्पर्श व्यंजन कहा गया है। इसका प्रयोग हिन्दी शब्दों में आरम्भ में पाया जाता है।

उदाहरणार्थ डपली, ढकना।

त—त का उच्चारण जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर की पंक्ति को छूकर-कर किया जाता है। यह अल्पप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन है। उदाहरणार्थ ताल गात।

थ—उच्चारण में दन्त्य त ध्वनि के समान है। किन्तु यह महाप्राण अघोष स्पर्श ध्वनि है। उदाहरणार्थ—थोडा।

द—उच्चारण में त, थ से अलग नहीं है। यह अल्पप्राण सघोष स्पर्श व्यंजन है। उदाहरणार्थ—दानव।

ध—उच्चारण में अन्य दन्त्य ध्वनियों के समान है। यह महाप्राण, सघोष स्पर्श व्यंजन है।

प—प का उच्चारण दोनों ओठों को छुआकर होता है। यह ओष्ठ्य ध्वनि है। ओष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ से सहायता बिलकुल नहीं ली जाती। यह अल्पप्राण, अघोष स्पर्श व्यंजन है। उदाहरण—पान।

फ—इसका उच्चारण प के ही समान है। यह महाप्राण, अघोष स्पर्श व्यंजन है। उदाहरणार्थ—फूल।

ब—इसका उच्चारण भी अन्य ओष्ठ्य ध्वनियों के समान है। पर यह अल्पप्राण सघोष व्यंजन है। बुनना, साबुन।

भ—इसका उच्चारण अन्य ओष्ठ ध्वनियों के समान है। पर यह महाप्राण ओष्ठ सघोष स्पर्श व्यंजन है। उदाहरणार्थ—भलाई।

स्पर्श संघर्षी

च—का उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। अतः यह स्पर्श संघर्षी ध्वनि मानी गई है। तालु के स्थान की दृष्टि से चवर्गीय व्यंजनों का स्थान टवर्गीय व्यंजनों की अपेक्षा आगे की ओर होने लगा है। प्राचीन काल में पीछे की ओर से होता था। यह अल्पप्राण, अघोष, स्पर्श संघर्षी वत्स्र्य व्यंजन है। चन्दन, कचौड़ी।

छ—उच्चारण स्थान च के समान ही है। किन्तु यह महाप्राण, अघोष, स्पर्श व्यंजन है।

ज—उच्चारण स्थान में च के समान है। यह अल्पप्राण, सघोष, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। उदाहरण—जगह।

झ—इसका उच्चारण अन्य वत्स्र्य ध्वनियों के समान होता है। यह महाप्राण सघोष, स्पर्श-संघर्षी व्यंजन है। उदाहरण—झौवा।

अनुनासिक

ङ—इसका उच्चारण जीभ के पिछले भाग को कोमल तालु से स्पर्श कराकर होता है। परन्तु इसके उच्चारण में कोमल तालु कौवा के सहित नीचे को झुक जाता है जिससे कुछ हवा हलक के अन्दर नाक के छिद्रों में होकर निकलती है, नासिका विवर में गूंज पैदा कर देती है। कोमल तालु के नीचे झुक जाने के कारण समस्त आधुनिक व्यंजनों के उच्चारण में जीभ निरानुनासिक व्यजनों की अपेक्षा तालु से कुछ अधिक पिछले भाग को छूती है। ङ सघोष अल्पप्राण, कंठ्य, आनुनासिक ध्वनि है।

ञ—यह सघोष, अल्पप्राण, तालव्य आनुनासिक ध्वनि है। यह ध्वनि हिन्दी साहित्य में नहीं पाई जाती, पर संस्कृत से आयात शब्दों में मिलती है।

ण—यह अल्पप्राण, सघोष, मूर्धन्य अनुनासिक व्यंजन है।

न—यह अल्पप्राण, सघोप, वत्स्र्य अनुनासिक व्यंजन है। उच्चारण में जीभ की नोक दन्त्य स्पर्श व्यजनों के समान दाँतों को पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूड़ों को छूती है। इसीलिए न को दन्त्य न मानकर वत्स्र्य मानना ठीक है। जैसे—निमक, बन्दर।

न्ह—यह महाप्राण, स्पर्श, सघोष, वत्स्र्य व्यंजन है। यह मूल ध्वनि हिन्दी की नहीं है, किन्तु विद्वान इसे सयुक्त न मानकर मूल ध्वनि मानते हैं।

म्—उच्चारण में ओष्ठ स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों ओठों को छुआकर होता है। किन्तु इसमें उच्चारण में अन्य आनुनासिक व्यंजनों के स्थान हवा हलक के नाक के छिद्रो में होकर नासिका विवर में गूँज पैदा करती है। यह अल्पप्राण सघोष, ओष्ठ व्यंजन है। उदाहरणार्थ—माता आदि।

म्ह—यह महाप्राण, सघोष, ओष्ठ, आनुनासिक व्यंजन है। यह भी मूल महाप्राण व्यंजन नहीं माना जाता।

पार्श्विक

ल—ल का उच्चारण जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है। किन्तु साथ जीभ के दाहिने, बाएँ जगह छूट जाती है जिसके कारण हवा पार्श्वों से निकलती रहती है। इसलिए ल ध्वनि देर तक उच्चारित की जा सकती है। ल पार्श्विक, अल्पप्राण, सघोष, वर्त्स्य ध्वनि है।

ल्ह—यह ल का महाप्राण रूप है। ल्ह भी महाप्राण व्यंजनों की तरह माना गया है। व्रजसल्हा उदाहरण रूप में दिया जा सकता है।

लुंठित

र—र के उच्चारण में जीभ की नोक दो तीन बार वत्स्य या ऊपर के मसूढ़े को शीघ्रता से छूती है। र लुंठित, अल्पप्राण, वर्त्स्य सघोष ध्वनि है।

र्ह—यह र का महाप्राण रूप है। उदाहरण :—ब्रज करह्नों (हिन्दी-कराहना)

उछिप्त

ड़—इसका उच्चारण जीभ की नोक उलट कर नीचे के भाग से कठोर तालु को झटके के साथ कुछ दूर तक छूकर किया जाता है। यह अल्पप्राण, घोष, मूर्धन्य उछिप्त ध्वनि है। उदाहरणार्थ :—पेड़, बड़ा।

ढ़—उच्चारण ड़ के ही समान है। यह महाप्राण, सघोष, मूर्धन्य, उछिप्त है। उदाहरण—बढ़िया।

संघर्षी

ह्—इसके उच्चारण में जीभ एवं तालु की सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती है। हवा को भीतर से तेजी से फेंककर मुख-द्वार के खुले रहते हुए स्वर के मुख पर रगढ़ उत्पन्न करके इस ध्वनि का का उच्चारण किया जाता है। स्वर यंत्रमुखी, अघोष, संघर्षी ध्वनि कह सकते हैं।

ह—उच्चारण स्थान एक है पर भेद है कि यह विसर्ग, अघोष ध्वनि है। और ह् सघोष ध्वनि है।

ख़—ख़ का उच्चारण जिह्वामूल को कौवे के निकट कोमल तालु से लगाकर किया जाता है। किन्तु इसके उच्चारण में हलक का दरवाजा बिल्कुल बन्द नहीं किया जाता। हवा रगड़ खाकर निकलती रहती है। क् के समान स्पर्श ध्वनि हो ख जिह्वामूलीय अघोष संघर्षी ध्वनि है। उदाहरणार्थ—खराब।

ग़—उच्चारण स्थान ख के ही समान है। पर यह 'सघोष' ध्वनि है। उदाहरणार्थ— गरीब।

श्—इसका उच्चारण जीभ की नोक कठोर तालु से रगड़कर साथ ही घुमा कर किया जाता है। यह अघोष, संघर्षी, तालव्य ध्वनि है। उदाहरणार्थ—शब्द।

स—इसका उच्चारण जीभ की नोंक वर्त्स को रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। यह वर्त्स्यं, संघर्ती अघोप ध्वनि है। उदाहरणार्थ – सेना।

ज्—उच्चारण स्थान स के ही समान है पर वह सघोष है। अतः वास्तव में ज स्पर्श ज का रूपान्तर न होकर स का रूपान्तर है। उदाहरणार्थ—जालिम।

फ—नीचे से ओठ के ऊपर के दाँतों की पंक्ति से लगाकर उच्चारण किया जाता है। साथ ही ओठों और दाँतों की रगड़ से हवा निकलती है। फ् दन्त्योष्ठ, सघोष ध्वनि है। उदाहरणार्थ—साथ, बर्फ आदि।

व्—उच्चारण नीचे के ओठ के को दाँतों से लगाकर किया जाता है। यह दन्त्योष्ठ, संघर्षी मघोष ध्वनि है।

अर्द्ध-स्वर

य—जीभ के अगले भाग को कठोर तालु की ओर ले जाकर इसका उच्चारण किया जाता है। किन्तु जीभ न च वर्गीय ध्वनियों के समान तालु को अच्छी तरह स्पर्श करती है और न इ आदि तालव्य स्वरों की भाँति दूर रहती है। अतः य् को अर्द्ध स्वर कहा गया है। जीभ को इस तरह तालु के निकट रखना कठिन है। इसलिए हिन्दी में य् के स्थान पर ज जाता है। यह तालव्य सघोष, अर्द्ध स्वर है। उदाहरण—यमुना-जमुना :

व्—जब शब्द के मध्य में स्वरहीन व्यंजन के बाद आता है तो इसका उच्चारण दन्त्योष्ठ न होकर द्वयोष्ठ हो जाता है। ब के उच्चारण की तरह दोनों ओठ बिल्कुल बन्द नहीं किये जाते और न संघर्ष ही होता है। इसमें कोमल तालु का स्पर्श नहीं होता। यह ओष्ठ्य सघोष अर्द्ध स्वर है। उदाहरणार्थ क्वांरा।

प्रश्न २—भारतवर्षीय आर्य भाषाओं की ध्वनियों में आरम्भ से लेकर अब तक क्या-क्या परिवर्तन हुए।

अथवा

प्रश्न ३—हिन्दी की ध्वनियों का विकास प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—हिन्दी के ध्वनि-समूह का आधार वैदिक-भाषा की ध्वनियाँ हैं। वैदिक भाषा में १३ स्वर और १० व्यंजन हैं :—

१, मूल स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ = ९

२. संयुक्त स्वर---ए (आ+इ), ओ (अ+उ), ऐ (आ+इ), औ (आ+उ)=४।

व्यंजन—

१. स्पर्श व्यंजन २७ हैं। उच्चारण-स्थान भेद से जिनके पाँच वर्ग हैं।

कंठ्य—क, ख, ग, घ, ङ।

२, तालव्य—च, छ, ज, झ, ञ।

३. मूर्द्धन्य—ट, ठ, ड, ढ, ण।

४· दंत्य—न, थ, द, ध, न।

५. ओष्ठ्य—प, फ, ब, भ, म।

२—अन्तस्थ व्यंजन ६ हैं—

इँ, य) र- ल, ल्, ल्, ह ऋ, उँ (व)।

३—अघोष उष्म व्यंजन ६ हैं :—

अ—श, स, ष,

ब—विसर्जनीय या विसर्ग :

स—जिह्वामूलक ×

द—उपध्वनीय ×

य—एक शुद्ध अनस्वार ०

प—एक सघोष अंक

ह्

इन वैदिक ध्वनियों के उच्चारण में आज बहुत परिवर्तन हो गया है। कई ध्वनियाँ तो लुप्त हो गई हैं। ऋ का उच्चारण वर्त्स्य माना गया है। बाद में शा का उच्चारण जीभ को दो बार वर्त्स को छुपाकर होने लगा। ल का प्रयोग बहुत कम मिलता है। ल, ल् ह, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय के अतिरिक्त शेष वैदिक ध्वनियों का प्रयोग संस्कृत में होता रहा। कुछ ध्वनियों के उच्चारण में परिवर्तन हो गया ऋ, ॠ लृ का मूल स्वरों के सदृश उच्चारण में परिवर्तन हुआ। ए ओ का उच्चारण में संस्कृत के मूल स्वरों के समान था। आ इ, आ उ, अइ, अउ हो गये थे। पाणिनी के समय में इँ ने य तथा य का रूप धारण कर लिया था। ऊँ और व क्रमशः दंत्योष्ठ् तथा द्वयोष्ठ् में परिवर्तन हो चुके थे। अनुस्वार का उच्चारण पिछले स्वर से मिलाकर अनुनासिक की तरह होने लगा था।

आधुनिक ध्वनि-शास्त्र के अनुसार वैदिक ध्वनियों का विभाजन निम्न प्रकार किया जा सकता है :—

स्वर

	अग्र	विशेष स्वर और शुद्ध अनुस्वर	पश्च
संस्कृत	इ ई		उ ऊ
अर्द्ध संवृत	ए		ओ
विवृत			अ आ
संयुक्त स्वर			अइ, अउ
विशेष स्वर		ऋ, ऋ ऌ	
शुद्ध अनुस्वर		——	

व्यंजन

	द्वयोष्ठ्य	वत्स्यं	मूर्द्धन्य	तालव्य	कण्ठ्य	स्वर यंत्र मुखी
स्पर्श अल्पप्राय	प ब	त द	ट ड	च ज	क ग	
स्पर्श महाप्राण	फ भ	थ ध	ठ ढ	छ झ	ख घ	
अनुनासिक		न	ण	ञ	ङ	
पार्श्विक अल्पप्राण		ल	ल			
पार्श्विक महाप्राण			ल्ह			
उत्क्षिप्त		र				
संघर्षी	× (उप)	स	ष	श	जिह्वा ×	ह
अर्द्ध स्वर	उँ (व)			ईं (य)		

व्यंजन

पाली तथा प्राकृत के ध्वनि-समूह—

पाली में ऋ, ॠ, ऌ ऐ, औ का प्रयोग नहीं मिलता। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ए, ऐ, ओ, औ दस स्वर पाये जाते हैं। पाली में दो नए स्वर ए, ओ ह्रस्व ए ओ पहले-पहल मिलते हैं।

पाली में श, ष, के स्थान पर स का ही प्रयोग मिलता है। पाली में विसर्ग का भी प्रयोग नहीं मिलता। विसर्ग प्राय: पूर्ववर्ती अ से मिलकर ओ में परिवर्तित हो जाता है। अन्यत्र उसका लोप हो जाता है। शेष ध्वनियाँ पाली में संस्कृत के समान ही हैं।

प्राकृत और पाली के ध्वनि समूह में विशेष अन्तर नहीं है। मागधी के अतिरिक्त अन्य प्राकृतों में **श** और **य** का प्रयोग नहीं मिलता। **'विसर्ग'** और 'व' का प्रयोग प्राकृत में भी नहीं मिलता।

हिन्दी ध्वनि-समूह

हिन्दी की अधिकांश ध्वनियाँ तो भारतीय आर्य भाषा के ध्वनि समूह से ही ली गई हैं। कुछ ध्वनियाँ फारसी, अरबी और अंग्रेजी के सम्पर्क से भी आ गई हैं। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी में ध्वनियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :

१. प्राचीन ध्वनियाँ—

अ आ इ ई उ ऊ, ए ओ
क ख ग घ ङ
च छ ज झ ङ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व
स श ह

२. नई विकसित ध्वनियाँ—

अ ए (ऐ), अ ओ (औ) ड़, ढ़, वँ न्ह, म्ह

३. फारसी, अरबी के तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियाँ

क ख ग ज फ

४. अँग्रेजी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त ध्वनियाँ—ऑ

ऋ, ष, ञ—का हिन्दी में उच्चारण नहीं होता, ये संस्कृत तत्सम शब्दों में लिखे जाते हैं। ऋ का उच्चारण रि हो गया है। जैसे रिण, क्रिया, प्रक्रिति। 'ष'

का उच्चारण हिन्दी में, 'श' के समान होता है। मध्य में आने वाले ङ का उच्चारण साहित्यिक हिन्दी में न के समान होता है। **'ण'** का उच्चारण भी हिन्दी में **'न'** के समान होता है। तत्सम के शब्दों के प्रयोग में, **'ण'** का उच्चारण अवश्य मिलता है। जैसे—गणेश, कण, गणना आदि।

साहित्यिक हिन्दी ध्वनियों में व्यवहृत ध्वनियों का वर्गीकरण :—

१. मूल स्वर

अ, आ ओ (ओ), (ओं) ओ, उ (उ) ऊ, ई, इ (इ०) ए, (ए) (ए), (ऐ), (ए)।

इन मूल स्वरों के संयुक्त तथा अनुनासिक रूप भी पाये जाते हैं।

२. स्पर्श—

क क ख ग घ
ट ठ ड ढ
त थ द ध
प फ ब भ

३. स्पर्श संघर्षी—

च, छ, ज, झ

४. अनुनासिक—

ङ, (ङ), ण, न, न्ह, म, म्ह

५. पार्श्विक—

ल (ल्ह्)

६. लुंठित—

र, (र, ह्)

७. उत्क्षिप्त—

ड़, ढ़,

८. संघर्षी—

ह ख, ग, स, श, ज, फ, व

९. अर्द्धस्वर—

य, व

हिन्दी-ध्वनि परिवर्तन का इतिहास—

अ, आ, इ, ई, उ, ऋ संस्कृत की ध्वनियां हिन्दी में अ के रूप में मिलती हैं :—

संस्कृत	हिन्दी
प्रहर	पहर
आश्चर्य	अचरज
वारिद	बादल
गर्भिणी	गाभिन

इसी प्रकार अन्य स्वरों का भी इतिहास है।

संस्कृत व्यंजन क, क्क, क्य् ऋ्, क्व, ङ्, क र्क, स्क आदि ध्वनियाँ हिन्दी के रूप में मिलती हैं।

संस्कृत	हिन्दी
कर्पूर	कपूर
चिक्कन	चिकना
माणिक्य	माणिक
क्रोश	कोश
पक्व	पका
अंक	आँक
शार्करा	शकर
स्कंध	कंधा

विदेशी ध्वनियाँ भी हिन्दी में आई। फारसी और हिन्दी में इ, ई, उ, ऊ, ओ ध्वनियाँ समान हैं।

फारसी	हिन्दी
इनाम्	इनाम
ईमान्	ईमान
फुर्सत	फुरसत

इसी प्रकार अंग्रेजी की ध्वनियों में परिवर्तन हुआ :—

अँग्रेजी	हिन्दी
Earing	एरन्
Time	टीम, टेम, टाइम

स्वराघात वैदिक-भाषा की अपनी विशेषता है। स्वर-परिवर्तन के कारण शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। स्वर-परिवर्तन के कारण पद की आकृति अपना प्रत्यय या विभक्ति में स्वर परिवर्तन अभिलक्षित होता है। 'क' का उच्चारण प्रतिशाख्यों के समय में अति ह्रस्व संवृत स्वर के रूप में होने लगा था। वैदिक काल का ऋ का उच्चारण आज लुप्त हो गया है। ऋ का उच्चारण रि के रूप में होता है। इसी प्रकार ऐ ओ का उच्चारण अइ, अउ हो गया है। व्यंजन ध्वनियों में

मूर्द्धन्य **टवर्ग** का सन्निवेश भारतीय आर्य-भाषा की अपनी विशेषता है। इसका प्रवेश द्राविड़ प्रभाव से हुआ। प्राचीन आर्य, भाषा में शब्दों में **स्वरान्त और व्यंजनान्त** दो विभाग मिलते हैं।

प्राकृत भाषा-काल में आर्य भाषा की **क्त, त्क, त्क, प्त, व** इत्यादि संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर **त्त क्क,** आदि का प्रयोग होने लगा। साथ ही ऊष्म ध्वनियों एवं अर्द्ध स्वरों में भी परिवर्तन हो गया। मागधी में संस्कृत की **श, ष, स** ऊष्म ध्वनियाँ **श,** में परिणित हो गई। परन्तु पालि में केवल दंत्य **स** ही मिलता है। मागधी में केव० ल् ध्वनि है, लेकिन पाली में र, **ल** दोनों ध्वनियों हैं। पुल्लिग एवं नपुंसकलिंग अकारान्त शब्दों के कर्त्ता कारक एक वचन में मागधी में 'ए' परन्तु पालि में ओ प्रत्यय लगता है। जैसे मागधी का **धम्मे** पालि में **धम्मो** रूप में मिलता है।

अपभ्रंश भाषाओं में संस्कृत एवं प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरों का ह्रास हो गया। उपान्त्य स्वरों की मात्रा सुरक्षित रही। आद्य अक्षर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण द्वारा द्वित्य व्यंजन के स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग होने लगा तथा समीपवर्ती स्वरों का संकोच हो गया।

अपभ्रंश में प्राकृत की सभी ध्वनियाँ विद्यमान रहीं। अपभ्रंश में उन प्रवृत्तियों का प्रारम्भ मिल जाता है, जो आगे चलकर हिन्दी में विकसित हुई। शब्द एवं धातु के रूपों में नये-नये प्रयोग कर अपभ्रंश ने हिन्दी के विकास की आधार भूमि उपस्थित कर दी। हिन्दी के विकास की पीठिका होने के कारण अपभ्रंश को **'पुरानी-हिन्दी'** नाम दिया गया है, आधुनिक हिन्दी की ध्वनि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(१) प्राकृत के समीकृत संयुक्त व्यंजन में से केवल एक व्यंजन ध्वनि लेकर पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ करने की प्रवृत्ति आ गई—

प्राकृत	**हिन्दी**
अज्जु	आज

(२) नासिक्य व्यंजन में नासिक्य ध्वनि क्षीण होते—होते लुप्त हो गई और पूर्ववर्ती स्वर सानुनासिक स्वर हो गया।

दन्त	दांत
कण्टक	काँटा
कम्प	काँप

(३) अग्र पश्चात् स्वर-ध्वनि युक्त 'ड', 'ढ' हिन्दी में 'ड', 'ढ' अथवा कम्पित 'र', 'रह' में परिणित हो गया।

(४) पदान्त अथवा मध्यवर्ती 'इ' (ई) × 'अ' एव 'उ' (ऊ) + 'अ' क्रमशः 'ई' तथा 'उ' (ऊ) में परिणित हो गये हैं।

(५) ध्वनि-परिवर्तन के साथ-साथ हिन्दी में लिंग परिवर्तन भी हुआ। संस्कृत, पालि तथा प्राकृत में तीन लिंग हैं, जब कि हिन्दी में नपुंसलिंग नहीं है।

(६) पदान्त में ध्वनि-परिवर्तन के कारण शब्द रूप के जो कुछ चिन्ह अपभ्रंश में बचे थे, उनका भी हिन्दी में लोप हो गया। दो एक को छोड़कर संस्कृत की विभक्तियाँ भी लुप्त हो गई। व्यंजनांत शब्दों के रूप तो हिन्दी में और भी सरल हो गये।

स्वराघात

प्रश्न ४—हिन्दी में स्वराघात और उसके विकास को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—स्वराघात के **गीतात्मक-स्वराघात** और **बलात्मक-स्वराघात** दो भेद होते हैं। गीतात्मक स्वाराघात में आवाज का स्वर ऊँचा-नीचा होता है। किन्तु बलात्मक स्वराघात में मांस को धक्के के साथ छोड़कर जोर दिया जाता है।

स्वराघात का इतिहास—

वैदिक स्वराघात—प्राचीन आर्य भाषा गीतात्मक स्वराघात प्रधान थी। वैदिक साहित्य में प्रत्येक शब्द पर ऊपर नीचे लगे हुए चिन्ह स्वराघात को प्रकट करते थे। गीतात्मक स्वराघात के **उदात्त**, **अनुदात्त** और **स्वरित** तीन भेद होते हैं। सामवेद को छोड़कर अन्य किसी वेद को प्रचलित संहिताओं में उदात्त स्वर या कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता। **स्वरित-स्वर** के ऊपर खड़ी लकीर और अनुदात्त स्वर के नीचे वेड़ी
|
लकीर लगाई जाती है। जैसे अग्निना शब्द में अ अनुदात्त, ग्नि उदात्त और न स्वारित है। पाठ के प्रारम्भ में आने वाले समस्त उदात्त चिन्ह छोड़ दिये जाते हैं तथा प्रत्येक अनुदात्त चिन्हित रहता है, किन्तु स्वारित में पश्चात् आने वाले आनुपात्तों के केवल अन्तिम अनुदात्त को चिन्हित किया जाता है। ऋग्वेद की मैत्रायणी और काव्य संहिताओं में स्वरित स्वर के ऊपर खड़ी लकीर न करके उदात्त स्वर के ऊपर खड़ी लकीर न करके उदात्त स्वर के ऊपर खड़ी लकीर की जाती है। समावेद में उदात्त स्वरित और अनुदात्त स्वरों के ऊपर क्रम से १, २, ३, के अंक बनाये जाते हैं। जैसे अग्निना
३ २ १
साधारणतया प्रत्येक वैदिक शब्द में उदात्त स्वर प्रधान हैं और गीतात्मक स्वराघात पाया जाता है। बलात्मक स्वराघात की न तो प्रधानता थी और न उन्हें चिन्हित ही किया जाता था।

प्राकृत में स्वराघात—

मध्यकालीन भारतीत आर्य भाषाओं में गीतात्मक स्वराघात की प्रधानता नहीं रही, बलात्मक स्वराघात विकसित होता चला गया। वह बलात्मक स्वराघात

शब्दान्त के पूर्व प्रथम दीर्घ स्वर पर प्रायः रहता था। इस युग में कुछ भाषाएँ गीतात्मक स्वराघात को अपनाये रहीं, महाराष्ट्री, अर्द्ध-मागधी, जैन-मागधी तथा काव्य की अपभ्रंश और काव्य की जैन-शौरसेनी में मिलता है। शौरसेनी तथा मागधी में बलात्मक स्वराघात का विकास हुआ। प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा काल के पश्चात् लिखने में स्वराघात का चिन्ह लगाने की प्रथा नहीं रही। अतः स्वराघात की स्थिति के सम्बन्ध में कोई मत अनुमान के ही आधार पर बनाया जा सकता है।

हिन्दी में स्वराघात—

हिन्दी के शब्दों में गीतात्मक स्वराघात नहीं मिलता। प्रश्नवाचक वाक्यों, में इसका थोड़ा-बहुत रूप मिल जाता है। जैसे "**क्यों तुम नहीं पढ़ोगे**" में '**नहीं पढ़ोगे**' का उच्चारण कुछ ऊँचे स्वर में होता है। बलात्मक स्वराघात हिन्दी शब्दों में अवश्य मिलता है। किन्तु वह प्रत्येक शब्द में निश्चित् नहीं है। आधुनिक हिन्दी में स्वर आदि, ह्रस्व और दीर्घ का भेद जितना स्पष्ट है, उतना स्वराघात नहीं है। हिन्दी स्वराघात के सम्बन्ध में कामताप्रसाद गुरु ने कुछ नियम अपने व्याकरण में दिये हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(१) शब्द या शब्दांश के अ का लोप होकर शब्द का उच्चारण व्यंजनीत हो जाने पर उपान्त्य स्वर पर जोर पड़ता है। जैसे—

। । ।
सेब, आदमी कमल

(२) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती स्वर में स्वराघात रहता है। जैसे—

। । ।
चन्दा, लज्जा, विद्या।

(३) विसर्ग युक्त स्वर के उच्चारण में स्वराघात होता है, क्योंकि, उच्चारण में कुछ जोर पड़ता है। जैसे—

। ।
प्रायः अन्तःकरण।

(४) प्रेरणार्थक धातुओं से अ पर स्वराघात होता है। जैसे—

। ।
करना, चुराना आदि।

(५) शब्द के एक ही रूप के कई अर्थ होने पर उनके अर्थों का अन्तर स्वराघात से ही स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए 'की' को लिया जा सकता है। 'की' सम्बन्ध कारण भी क्रिया भी है। क्रिया के रूप में प्रयोग होने से उच्चारण में अधिक जोर देना पड़ेगा।

हिन्दी के कुछ मात्रिक और वर्णिक छन्दों में बलात्मक स्वराघात होता है। जैसे—

अवधेस के द्वारे सकारे गई,
सुत गोद में भूपति लै निकसे ।

इस पद में के, रे, रे, कै, मात्र के हिसाब से दीर्घ है, किन्तु छन्द की दृष्टि से इन्हें ह्रस्व मानना पड़ेगा । इस सवैया में दो वर्ण के पश्चात् बलात्मक स्वराघात है । स्वराघात की दृष्टि से इस पंक्ति को इस प्रकार पढ़ा जा सकता है—

। । । ।
अवधेस के द्वारे सकारे गई,
। । । ।
सुत गोद कै भूपति लै निकसे ।

अवधी में बलात्मक स्वराघात पाया जाता है । वाक्य में प्रयोग होने पर एकारूपी शब्दों में स्वाराघात मिलता है । दो अक्षर, तीन अक्षर तथा अधिक अक्षर के शब्दों में अन्त के दो अक्षरों में से दीर्घ पर स्वराघात होता है । दोनों के दीर्घ पर ह्रस्व होने पर स्वराघात उपान्त्य अक्षर पर होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मध्य भारतीय आर्य भाषाओं में प्राचीन आर्य भाषा की संगीतात्मक स्वराघात प्रणाली को छोड़ दिया गया और बलात्मक स्वराघात का विकास होने लगा । संक्रान्ति काल में बलात्मक स्वराघात के परिणाम-स्वरूप भाषा में अनेक परिवर्तन हुए । उनका आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के स्वरूप निर्माण में बहुत हाथ रहा ।

प्रत्यय और उपसर्ग

प्रश्न ५—हिन्दी के उपसर्ग और प्रत्यय का इतिहास देते हुए उनकी सम्यक् विवेचना कीजिए ।

उत्तर—संस्कृत में संज्ञा, धातु प्रत्यय तथा कारक चिन्ह से मिलकर बनती थी । धातु और प्रत्यय से मूल शब्द बनता था । उस शब्द में आवश्यकतानुसार कारक-चिन्ह लगाये जाते थे । आधुनिक आर्य भाषाओं में संस्कृत के कारक चिन्ह प्रायः लुप्त हो गये हैं । संस्कृत के बहुत से **उपसर्ग** तथा प्रत्यय हिन्दी में आते-आते लुप्त हो गये । कुछ समय से हिन्दी में संस्कृत शब्दों का प्रयोग बढ़ जाने से तत्सम रूप में उपसर्ग और प्रत्ययों का पुनः प्रयोग होने लगा है ।

उपसर्ग—

उपसर्ग वह अक्षर या अक्षर समूह है जो शब्द-रचना के लिए पहले लगाया जाता है । जैसे रूप शब्द में 'अनु' उपसर्ग लगाकर अनुरूप शब्द बनता है । हिन्दी के उपसर्गों को **तत्सम, तद्भव** और विदेशी श्रेणियों में बाँटा जा सकता है ।

तत्सम उपसर्ग :

साहित्यक हिन्दी में संस्कृत के बहुत से शब्दों का व्यवहार होने लगा है। परन्तु अभी ये हिन्दी की ऐसी सम्पत्ति नहीं बन सके हैं कि इनको स्वतन्त्रता पूर्वक **तद्भव** देशी या विदेशी शब्दों में लगाया जा सके। हिन्दी के उपसर्गों के इतिहास में तद्भव और कुछ विदेशी उपसर्गों का ही महत्व है।

तद्भव उपसर्ग :

अ—यह संस्कृत का उपसर्ग है। किन्तु हिन्दी के तद्भव शब्दों में भी इसका प्रयोग मिलता है। जैसे **अबोध, अज्ञान,** अथाह।

संस्कृत में स्वर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के पूर्व अ के स्थान पर अन्त होता है (**अनेक**) किन्तु हिन्दी में व्यंजन से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के पूर्व अ के स्थान पर अन मिलता है। जैसे **अनमोल अनगिनती।**

अति—यह संस्कृत का तत्सम उपसर्ग है। जैसे **अतिकाल।**

नि—संस्कृत का **निर** हिन्दी में नि उपसर्ग है। जैसे **निरीह, निहंग।** किन्तु सस्वर शब्दों में **निरं** मिलता। जैसे निर्दय।

सु. स—सं०, सु हिन्दी सु तथा स दोनों रूपों में मिलती है। जैसे—**सुफल सुजान, सपूत।**

दु, **दुर**—संस्कृत दूर हिन्दी में दु हो जाता है। जैसे—**दुलार दुर्बल।**

हिन्दी के तत्सम शब्दों में **दुर** रूप ही मिलता है। जै—**दुर्बुद्धि।**

कु—यह संस्कृत-तत्सम उपसर्ग है। जैसे **कुचाल, कुचैला, कुन्जर।**

अव—संस्कृत का अव हिन्दी में **अव** के रूप में मिलता है। जैसे—**अवगुन।**

विदेशी उपसर्ग

हिन्दी में कुछ फारसी, अरबी और अँग्रेजी के उपसर्ग मिलते हैं। कुछ मुख्य उपसर्गों का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

कम—इसका मूल फारसी रूप **कम** है। हिन्दी में **कमजोर,** कम-उम्र, कम-समझ, कम दाम अदि में इसका प्रयोग मिलता है।

खुस्—इसका मूल फारसी रूप खुश है। हिन्दी के **खुसामद, खुस्बू, खुसदिल** आदि मे इसका प्रयोग मिलता है।

गैर—मूर फारसी गैर हिन्दी में गैर रूप में प्रयुक्त हुआ है। जैसे—**गैर हाजिर, गैर आबाद** आदि।

ना—फारसी में भी इसका यही रूप है। हिन्दी में **नापसन्द, नालायक, नाबालिग** आदि शब्दों में इसका प्रयोग मिलता है।

दर्—फारसी में इसका रूप दर् है, हिन्दी में **दर् असल, दरबार, दरबार** आदि शब्दों में इसका प्रयोग मिलता है।

फी—फारसी में इसका यही रूप है। हिन्दी में **फी रुपया**, **फी आदमी**, **फी मकान** आदि में इसका प्रयोग हुआ।

ला—फारसी में भी यह इसी में है हिन्दी में **लापता**, **लाचार**, **लाबारिस** आदि इसके उदाहरण है।

वे—इसका फारसी रूप भी **वे** है। हिन्दी में **बेधड़क**, **बेजान**, **वेचैन**, आदि शब्दों में यह प्रयुक्त हुआ है।

बद्—फारसी में इसका रूप बद् है। हिन्दी में **बद्चलन**, **बद्नाम** आदि शब्दों में इसका प्रयोग हुआ है।

हर्—इसका मूल रूप फारसी हर् है। जैसे—हर् रोज हर **बार** हर **घड़ी** आदि।

हेड हाफ सब्—ये अँग्रेजी से आये उपसर्ग हैं। हिन्दी के कई शब्दों में इनका प्रयोग मिलता है—**हेड पंडित, आफ कमीज, सब्डिप्टी।**

प्रत्यय

प्रत्यय उस अक्षर या शब्द-समूह को कहते हैं जो शब्द-रचना में आगे लगाया जाता है। जैसे—बूढ़ा शब्द में **'पा'** प्रत्यय लगाकर **बुढ़ापा** शब्द बनता है।

प्रत्ययों को भी **तत्सम**, **तद्भव** और **विदेशी** श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है। तत्सम प्रत्यय बहुत बड़ी संख्या में तत्सम शब्दों के साथ आ गये हैं। ऐसे प्रत्ययों में इतिहास की दृष्टि से तद्भव तथा विदेशी प्रत्ययों का महत्व है। अतः यहाँ इन्हीं पर विचार किया जायगा।

तद्भव प्रत्यय—

अ—संस्कृत में अ प्रत्यय पु० में अः स्त्रीलिंग में आ तथा नपु० में **अम** के रूप में मिलता है। हिन्दी में इसके योग से स्त्रीलिंग और पुल्लिग दोनों प्रकार के शब्द बनते हैं—

संस्कृत	**म० म० आ० भा०**	**हिन्दी**
चकोरः	चकोरो (अपभ्रंश)	चओर (प्रा०) चकोर
चन्द्रः	वंद	चाँद
भत्तम्	भत्त	भात
जिह्वा	जिब्भा, जिब्भ	जीभ

अक्कड़—इसकी उत्पत्ति प्राकृत अक्क + ड़ = अक्कड़—अक्कड़ से हुई है—घुमक्कड़, पियक्कड़, भुलक्कड़।

अता—इस प्रत्यय की स्त्रीलिंग रूप **अती** है। जैसे—उड़ता पक्षी, बहता पानी, लौटती डाक, हँसती-गाती बाला, गिन्ती आदि।

इस प्रत्यय की उत्पत्ति में संस्कृत ति का प्रभाव कहा है। ति प्रत्यय से

बने हुए, अनेक संस्कृत शब्द तत्सम तथा अर्द्ध तत्सम रूप में म० भ० आ० भा० में वर्तमान थे—

तत्सम	अर्द्ध तत्सम
युक्ति	जुगति
भक्ति	भगति

अरबी-फारसी से लिए हुए 'अत' प्रत्ययान्त तथा ई प्रत्यय युक्त अनेकों शब्द हिन्दी में हैं—वकालत्, वकालती, अदालत् अदालती।

अत्, त—इस प्रत्यय के योग्य से भाववाचक क्रियामूलक विशेष पद और भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं—

इसकी उत्पत्ति प्र० भा० अ० भा० अन से है।

भाववाचक क्रिया मूलक विशेष पद—

चलन्, एँठन, जलन्।

भाववाचक संज्ञाएँ—

खान्-पान्, लेन्-देन्।

अन्त—इसका सम्बन्ध सं० वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्यय अन्त से है। जैसे— रटन्त, गढ़न्त।

आइ, आई—हार्नली ने इस प्रत्यय की उत्पत्ति सं० त० स्त्री ता—प्रा० दा या आ से मानी है। निरर्थक 'क' जोड़ने से सं० तिका, प्रा० दिया हुआ और हिन्दी आई हो गया। जैसे—

लडाई, खुदाई, कमाई, खिलाई, गढ़ाई, चराई, लिखाई, उतराई, मिठाई, भलाई, पंडिताई आदि।

आउ—यह प्रत्यय सं० कृ० तृ अथवा निरर्थक क सहित तृक से निकला है। प्रा० में ऋ का उ में परिवर्तन हो गया और इसका रूप ऊ या उ ओ हो गया। इसका प्रयोग योग्यता के अर्थ में अथवा क्रियामूलक विश्लेषण बनने में होता है—

खाऊ, उड़ाऊ, विकाऊ, टिकाऊ, आदि।

आक्, आका—इसकी उत्पत्ति संस्कृत के आयक से कही जाती है। जैसे— उड़ाका, चलाका, धड़ाका, सड़ाका आदि।

आड़ी—यह प्रत्यय सं० के 'कारी' 'का' ही अन्य रूप हैं। जैसे—अनाड़ी, खिलाड़ी आदि।

आई—इसकी व्युत्पति सम्बन्ध कारक के प्रत्ययों से हुई है। जैसे—

पुजारी, भिखारी, घसिआरी कुठारी, भंगड़ी आदि।

आव—इस प्रत्यक्ष से भाव वाचक संज्ञाएँ बनाती हैं। जैसे—

चढ़ाव, जमाव, झुकाव, घुमाव, छिड़काव, आदि।

आहट—इसकी उत्पत्ति प्रा० भा० आ० भाषा **आहा × आवट्** से हुई कही जाती है। इससे क्रियामूलक भाव वाचक शब्द बनते हैं—

खनखनाहट, गड़गड़ाहट, घबराहट, भनभनाहट, चिल्लाहट आदि।

ई—यह अ० भा० भाषा के सबसे अधिक प्रत्यय हैं। इसके संयोग से भाववाचक, करणवाचक, विशेष, समुदाय वाचक, व्यापार वाचक आदि शब्द बनते हैं। जैसे—

हँसी, बोली, धमकी, घुड़की, रेती, चिमटी, भारी गुलाबी, मारवाड़ी, टोकरी डोरी, तेली, मोची, धोबी, सावधानी, नेकी, गरीबी, बीसी, पच्चीसी डाक्टरी, दलाली महाजनी आदि।

एल—इसकी उत्पत्ति सं० **इल** प्राकृत इल्ल से हुई। इससे संज्ञा और विशेषण शब्द बनते हैं—

फुलेल, नकेल आदि।

ऐरा—इससे कर्तृवाचक, गुणवाचक और सम्बन्धसूचक शब्द बनते हैं—

लुटेरा, ठठेरा, कमेरा, बसेरा, घनेरा, अँधेरा, ममेरा चचेरा आदि।

क—**क** प्रत्यय तथा इसके विविध रूपों का विस्तार सभी आ० भा० आ० में विस्तार से मिलता है। हार्नली इसका सम्बन्ध, सम्बन्ध, कारक से मनाते हैं।

उदाहरण—

मैका, लड़का, फट्का आदि।

जा, जी—इस प्रत्यय के योग के सम्बन्ध वाचक शब्द बनते हैं। यह संस्कृत 'जात' का हिन्दी रूप है :—

भानजा, भतीजा, भतीजी, आदि।

टा, टी—इसका सम्बन्ध सं० वृत्, प्रा० 'वट्ट' से है—

कलूटा, बहटी, डपट, झपट, उचाट, चिम्पा, लंगोटी आदि।

ड़ा, ड़ी—इसकी उत्पत्ति सं० ट-प्रा, ड़ से मानी है। यह प्रत्याय आ० भा० आ० भाषाओं में स्वभाव, व्यापार तथा सम्बन्ध को प्रकट करता है जैसे—

अगाड़ी, पिछाड़ी आदि।

ता, ती—इस प्रत्यय के योग से धातुओं के वर्तमानकालिक कृदन्त रूप बनते हैं। इसकी उत्पत्ति सं० अत् से है **ती** इसका स्त्रीलिंग रूप है :—

बचत, खपत, जिठौता, जीती, देखती आदि।

था, थी—इसकी उत्पत्ति सं० थ (+अ) से है। थी इसका स्त्रीलिंग रूप है। यह प्रत्येक संख्यानायाक चार के साथ क्रम वाचक अर्थ प्रकट करता है—
जैसे—सं में **चतुर्थ** म० भा० आ० में चउत्थ और हिन्दी में चौथा।

न ना, नी—इन सब प्रत्ययों का सम्बन्ध सं० **अनीय-प्राकृत अणीय या अणय से है**। जैसे :—

रहन, घिनौना, होनी, चांदनी।

पा, पन—इन प्रत्ययों का सम्बन्ध संस्कृत के त्व, त्वन् से है। इनके भाववाचक संज्ञा शब्द बनते हैं—

बुढ़ापा, मुटापा, कालापन, लड़कपन।

ला, ली—चैटर्जी इन प्रत्ययों का सम्बन्ध **सं०** ल से मानते हैं, जबकि बीम्स सं० **हल्ल** और प्रा० इल्ल से जोड़ते हैं—

उदाहरण—

घायल, गठीला, सहेली टिकली आदि।

वान—इसका सम्बन्ध सं० **मतुप्** से है, जिसके भान्, वान् आदि रूप होते हैं—जैसे—गुणवान, धनवान आदि।

वाला—इसकी व्युत्पत्ति हार्नली सं० **पाल-क** से हुई है। जैसे—

ग्वाला, गाड़ीवाला आदि।

हरा—इस प्रत्यय का सम्बन्ध सं० के हार से माना गया है—दुहरा, एकहरा आदि।

हारा—इसकी उत्पत्ति सं० हारक (ले जाने वाला) से है। जैसे—पनहारा, लकड़हारा आदि।

विदेशी प्रत्यय—

आना—इसकी उत्पत्ति फा० आनः से है। जैसे—बबुआना, घराना, नजराना, जर्माना आदि।

ई—खुशी, नवाबी, दोस्ती।

खाना—इसकी उत्पत्ति फा० खान से हुई है—

छापाखाना, दवाखाना, डाकखाना।

खोर्—इसकी उत्पत्ति फा० **खोर** से हुई है, जिसका अर्थ खाने वाला है। जैसे—घूसखोर, हरामखोर, गमखोर, चुगुलखोर।

गिरी—इसकी उत्पत्ति फ० **गरी** से हुई। जैसे—

कुलीगीरी, बाबूगीरी।

ची—यह प्रत्यय मूलतः तुर्की का है। यह फारसी से होते हुए हिन्दी में आया है। जैसे—

तबल-ची, मसाल-ची, देगची, बगीची।

बाजी—धोखाबाजी, जुआबाजी, कबूतर-बाजी, रंडीबाजी आदि।

बाज—यह प्रत्यय फा० का बाज् है जिसका अर्थ करने वाला होता है—

धोखेबाज्, दगाबाज्, मुकदमाबाज्, नकलबाज्।

संज्ञा पद-रचना

प्रश्न ६—संज्ञा में ध्वनि-परिवर्तन को उदाहरण सहित समझाइये ।

उत्तर—संस्कृत में आठ विभक्तियों और प्रत्येक विभक्ति में तीन वचनों के रूपों को मिलाकर संज्ञा के चौबीस रूप होते हैं । लिंग-भेद भी रूपों में भेद कर देता है । संस्कृत के समान हिन्दी में आठ ही कारक होते हैं, किन्तु हिन्दी में भिन्न-भिन्न संयोगात्मक रूप नहीं होते । संस्कृत की तरह हिन्दी में द्विवचन भी नहीं होता । हिन्दी में भिन्न-भिन्न कारकों के एकवचन तथा बहुवचन संज्ञा में चार से अधिक रूप नहीं होते । उदाहरण के लिए हिन्दी तथा संस्कृत में **राम** के रूप दिये जाते हैं—

हिन्दी

	एक वचन	बहुवचन
कर्ता—	राम	रामे
कर्म—	राम को	रामों को
करण—	राम से	रामों से
सम्प्रदान—	राम को	रामों के
अपादान—	राम से	रामों से
सम्बन्ध—	राम का, के, की	रामों का, के, की
सम्बोधन—	राम में	रामों में
अधिकरण—	हे राम	हे रामों

संस्कृत

	एक वचन	द्वि०	बहुवचन
कर्ता—	रामः	रामौ	रामः
कर्म—	रामम्	रामौ	रामान्
करण—	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
संप्रदान—	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः

अपादान—	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
सम्बन्ध—	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण—	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन—	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

स्पष्ट है कि संस्कृत के रूपों से हिन्दी के रूपों का सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है।

हिन्दी संज्ञा के मूल रूप में कारक चिन्ह लगाने से पूर्व परिवर्तन करने की संज्ञा का विकृत रूप कहते हैं। हिन्दी में संज्ञा के चार रूपों में दो मूल और दो विकृत रूप होते हैं।

	एक वचन	बहु वचन
मूल रूप	घोड़ा	घोड़े
विकृत रूप	घोड़े	घोड़ा

कुछ आकारान्त एक वचन शब्दों में भी कर्त्ता को छोड़कर अन्य कारकों में एकारान्त विकृत रूप मिलता है। यह विकृत रूप संस्कृत एक वचन की भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूपों का अवरोध मात्र कहा जाता है। हिन्दी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों में 'ओं' लगाने के पहले 'ईकार' तथा 'ऊकार' के स्थान पर 'इकार' तथा 'उकार' हो जाता है। स्त्रीलिंग के अन्य रूपों में ईकारान्त ऊकारान्त संज्ञाओं के मूल रूप बहुवचन इआँ, इएँ तथा उएँ होते हैं।

लिंग—

संस्कृत में पुल्लिग; स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग तीन लिंग हैं, जबकि हिन्दी में नपुंसक लिंग नहीं है। अतः अचेतन पदार्थों को अभ्यास से ही स्त्रीलिंग या पुल्लिग के अन्तर्गत रखा जाता है।

लिंग भेद क्रिया में विकार का कारण बनता है। हिन्दी में क्रिया के पुल्लिग और स्त्रीलिंग दो रूप हैं, जैसे 'आदमी जाता है'—में क्रिया पुल्लिग और 'स्त्री जाती है' में क्रिया स्त्रीलिंग है। हिन्दी क्रिया में कृदन्त रूपों का व्यवहार बहुत अधिक है।

हिन्दी संज्ञाओं में लिंग-भेद की व्युत्पत्ति—

बीम्स का कथन है कि हिन्दी में तत्सम और तद्भाव संज्ञाओं में प्रायः वही लिंग माना जाता है जो कि उनका संस्कृत में लिंग था। हिन्दी में संस्कृत के नपुंसक लिंग प्रायः पुल्लिग हो जाते हैं। बीम्स के इस लिंग नियम के बहुत से अपवाद हैं।

पुल्लिग आकारान्त संज्ञाओं की उत्पत्ति—

(१) संकृत की अन् अन्त वाली संज्ञाओं से जिनके अपना में आकारान्त रूप होते हैं। जैसे राजा।

(२) संस्कृत की तृ अन्त वाली संज्ञाओं से हिन्दी के कर्त्ता, दाता जैसे रूप बने हैं।

(३) **दरिया** दरोगा जैसे शब्द फारसी, अरबी या तुर्की मे आये हैं।

स्त्री लिंग संज्ञा-शब्द—

सामान्य रूप से ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग होते हैं।

(१) संस्कृत के इन् अन्त वाले शब्द हिन्दी में संज्ञा स्त्रीलिग रूप में हैं—

स०	हि०
हस्तिन्	हाथी
स्वामिन्	स्वामी

(२) संस्कृत के ईकारान्त पुल्लिग या नपुंसक लिंग शब्द—

सं०	हिन्दी०
दधि	दही

(३) संस्कृत के **एक, इय** और **ईय** अन्त वाले पुल्लिग या नपुंसक लिंग शब्द—

सं०	हि०
पानीपं	पानी

हिन्दी में कुछ आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द भी हैं। जैसे—**कथा, यात्रा** आदि संस्कृत के ऊकारान्त स्त्रीलिंग शब्द हिन्दी में स्त्रीलिंग में ही प्रयुक्त होते है। जैसे—संस्कृत **वधू** का हिन्दी '**बहू**' है।

हिन्दी में पुल्लिग आकारान्त शब्द स्त्रीलिंग में ईकारान्त हो जाते हैं। जैसे—

पुल्लिग	स्त्रीलिंग
लड़का	लड़की
घोड़ा	घोड़ी

बहुत से शब्दों में इन, इनी, आनी लगाकर पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाये जाते हैं। जैसे—

पु०	स्त्री
धोबी	धोबिन
हाथी	हथिनी

पंडित	पडितानी
मुगल	मुगलानी
मेहतर	मेहतरानी

हिन्दी में कुछ अन्य शब्द ऐसे भी हैं, जिनके लिंग में परिवर्तन हो गया है। संस्कृत में जहाँ उनका प्रयोग पुल्लिग में होता था, वहाँ हिन्दी में स्त्रीलिंग में होता है। निम्न उदाहरणों में देखिये :—

सं०	हिन्दी
देह (पु०)	देह (स्त्री०
बाहु (पु०)	बाँह (स्त्री०)
अक्षि (न०)	आँख (स्त्री०)
विष (न०)	विष (पु०)

वचन

संस्कृत में **एक वचन, द्वि वचन,** और **बहुवचन** मिलते हैं, किन्तु हिन्दी में द्विवचन नहीं मिलता। म० भा० आ० भाषाकाल के प्रारम्भ में ही द्विवचन समाप्त हो गया था। हिन्दी में एक वचन से बहुवचन निम्न प्रकार बनते हैं :—

१. पुल्लिग व्यंजनान्त तथा कुछ स्वरान्त संज्ञाओं में प्रथमा एक वचन तथा बहुवचन के रूपों में भिन्नता नहीं होती। जैसे—

एकवचन	**बहुवचन**
घर	घर
बर्तन	बर्तन

२. आकारान्त तथा व्यंजनान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के प्रथमा के रूप में एँ लगाने से बहुवचन बनता है। जैसे—

एक०	**बहुवचन**
रात	रातें
कथा	कथाएँ

३. आकारान्त पुल्लिग शब्दों में एक वचन के आ के स्थान पर बहुचन में ए हो जाता है। जैसे—

एक०	**बहु०**
लड़का	लड़के
साला	साले

४. स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्दों में ई का स्थान इयां हो जाता है या केवल अनुस्वार जोड़ दिया जाता है। जैसे—

एक०	बहु०
लड़की	लड़की, लड़कियाँ

५. अन्य समस्त विभक्तियों में बहुवचन में ओं लगता हैं जैसे घरों, लड़कों पोथियों आदि।

कारक या परसर्ग

परिवर्तन का इतिहास—

प्रा० भ० अ० भाषा में आठ कारक थे और प्रत्येक कारक का एक वचन द्विवचन, बहुवचन का रूप पृथक-पृथक विभक्ति-प्रत्ययों के योग से बनता था। म० भा० आ० भाषा काल में शब्दों के कारक रूपी समीकरण की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। इसके परिणामस्वरूप प्रा० भा० आ० भा० के शब्दों-रूपों में जटिलता कम होने लगी। एक ही विभक्तियुक्त शब्द-रूप से दो-दो या तीन-तीन कारकों का काम लिया जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि संस्कृत में जहाँ संज्ञा के शब्द रूप चौबीस थे, वहाँ पाँच छः रूप ही श्रेष्ठ रह गये।

प्रा० भा० आ० भाषाओं में विभक्ति प्रत्ययों में और भी कमी आ गई। केवल कर्त्ता बहुवचन, करण कारक, सम्बन्ध बहुवचन और अधिकरण एकवचन के विभक्ति प्रत्यय ही जिस किसी रूप में बच गये।

प्रा० भा० आ० भाषाओं में सविभक्ति रूपों की अल्पता एवं अस्पष्टता अपभ्रंश काल में भी अधिक बढ़ गई। हिन्दी में सहायक शब्दों द्वारा कारक प्रकट करने की प्रवृत्ति बढ़ गई। हिन्दी में केवल कर्त्ता कारक का रूप ही विभक्ति रहित अथवा सविभक्तिक रूप में अपने आप से कारक सम्बन्ध प्रकट करने में समर्थ होता है। जैसे—'घोड़ा दौड़ता है,' 'उसका पूत कुल का उजियाला है।'

हिन्दी में आठ कारकों में से कर्त्ता के कर्तरि प्रयोग एवं सम्बोधन में कोई परसर्ग नहीं लगता। अन्य कारकों में निम्नलिखित परसर्गों का व्यवहार होता है:—

कर्त्ता कर्मणि एवं भावे प्रयोग में 'ने', कर्म-सम्प्रदान में 'को' तथा सम्प्रदान में 'के लिए', करण-अपदान में 'से' सम्बन्ध में 'का' 'के' 'की' तथा अधिकरण में 'में' 'पर' प्रयोग होता है। नीचे प्रत्येक कारक के परसर्गों की उत्पत्ति दी जा रही है:—

कर्त्ता कारक (परसर्ग 'ने')—

'ने' परसर्ग का प्रयोग संज्ञा पद के कर्मणि तथा भावे प्रयोग में होता है:—

कर्मणि प्रयोग—'मैंने एक राजा देखा'।

भावे प्रयोग—'मैंने एक राजा देखा।' 'ने' परसर्ग का व्यवहार खड़ी बोली हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है। इसका व्यवहार पूर्वी हिन्दी में नहीं होता। बुन्देली-कन्नौजी में 'नै' तथा 'ने' कर्त्ताकारक के परसर्ग हैं।

'ने कारक चिन्ह की व्युत्पत्ति—

बीम्स 'ने' का विचार करण कारक के अन्तर्गत करते हैं। अतः इसे कर्मणि तथा भावे प्रयोग का अर्थ देने वाला बताते हैं। पुरानी हिन्दी के कर्म कारक के चिन्ह 'ने' 'नै' तथा आधुनिक हिन्दी के कारक-चिह्न 'नै' में भी साम्य है। बीम्स सम्प्रदान तथा कारण के चिह्न व्युत्पत्ति की दृष्टि से समान मानते हैं। उनके मत में 'ने' का सम्बन्ध **'लगि'**, 'लागि' जैसे शब्दों में है। 'ट्रंप' आदि कुछ विद्वान 'ने' का सम्बन्ध संस्कृत में अकारान्त संज्ञाओं के करण कारक के चिह्न **'एन'** से मानते हैं। इस सम्बन्ध में आपत्ति यह है कि 'ए' का प्रयोग प्राकृत के अन्तिम रूपचन्द के ग्रन्थ में भी कुछ स्थलों पर हुआ है। यदि एन के स्थान पर संस्कृत में 'ने' 'व' कोई चिन्ह होता तो उससे 'ने' की व्युत्पत्ति का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, किन्तु संस्कृत और प्राकृत में ऐसा कोई चिन्ह नहीं है। हार्नली का मत है कि सम्प्रदान के लिए ब्रज में 'कौं', को और मारवाड़ी में नै, ने का प्रयोग होता था। हो सकता है कि 'ने' या 'नै' को सम्प्रदान के लिए अनावश्यक समझकर इसे प्रत्यय-सहित कर्त्ता या करण कारक के लिये ले लिया गया हो। 'ने' हिन्दी में प्रथक कारक चिन्ह है, वह संस्कृत के 'एन' का रूपान्तर नहीं है। गियर्सन के मत को उद्धृत करते हुए ब्लाक ने कहा है कि 'ने' का सम्बन्ध संस्कृत **'तन** से हो सकता है। यथार्थ यह है कि 'ने' की व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

कर्मकारक (परसर्ग 'को')—

यह परसर्ग कर्म एवं सम्प्रदान कारक का बोधक है। हिन्दी की बोलियों में कर्म-सम्प्रदान के परसर्ग ये हैं। कन्नौजी **'को'**, ब्रज **'कौं'** अवधि 'क' आदि।

ट्रंप की व्युत्पत्ति संस्कृत **'कृतं'** से मानते हैं। उनका कथन है कि **'कृतं'** की जब ऋ का लोप हो गया तब 'त' महाप्राण हो गया होगा। हार्नली और बीम्स ने चटर्जी आदि संस्कृत 'कक्ष' से **'को'** की व्युत्पत्ति मानते हैं। **'को'** की व्युत्पत्ति की सीढ़ियाँ निम्न प्रकार हैं:—

कक्षं = कक्खं = कांखं = काहं = कहुँ =
कहं = कौं = को।

करण सम्प्रदान कारक (परसर्ग 'से')—

'से' परसर्ग का कारण और अपादान दोनों कारकों में व्यवहार होता है। हालल इसकी व्युत्पत्ति का सम्बन्ध संस्कृत के **अस्** तथा प्राकृत के **संतो**, **सुन्तो** से मानते हैं और बीम्स के अनुसार इसका सम्बन्ध **समं** से है। केलांग इनकी उत्पत्ति संस्कृत 'सङ्गे' से बतलाते हैं, किन्तु इसका मेल रूप सम-एन है, जिससे इसकी उत्पत्ति निम्न प्रकार हुई है।

सम-एन = सइँ = से ब्रजभाषा के सौं परसर्ग की उत्पत्ति समं से हुई है।

सम्प्रदान कारक (के, लिए परसर्ग)—

के लिये के का सम्बन्ध संस्कृत के 'कृते' से है। 'कृते' का कए और कए का के हो गया। लिये की व्युत्पत्ति संदिग्ध है। सत्य जीवन वर्मा के का सम्बन्ध कारक के प्राचीन चिन्ह केरक का रूपान्तर मानते हैं। हार्नली लिये की उत्पत्ति '**लब्धे**' से मानते हैं।

सम्बन्ध कारक (का, के, की परसर्ग)

सम्बन्ध कारक पुल्लिग एक वचन में '**का**' बहुवचन में 'के' और स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन '**की**' का प्रयोग होता है। इन परसर्गों की व्युत्पत्ति संस्कृत की '**कृ**' धातु से मानी जाती है।

'**का**' = संस्कृत (कृतः) म० भा० आ० **कअ**—यह **कअ** हिन्दी में '**का**' हो गया।

'का' का विकारी रूप 'के' है और 'कि' स्त्री-प्रत्यय ई युक्त रूप है।

अधिकरण कारक (में, पर)

'में' का सम्बन्ध संस्कृत के **मध्ये** से है। इसकी उत्पत्ति '**मध्ये**' से निम्न प्रकार हुई—संस्कृत का **मध्ये**, म० भा० अ० **मज्झे** (मज्झि, मज्झहि,) पुरानी हिन्दी में माँही (महि) हिन्दी में '**में**' हो गया।

'**पर**'—का सम्बन्ध संस्कृति के उपरि से है। हार्नली सं० 'परे', प्राकृत '**परि**' से इसकी उत्पत्ति की संभावना मानते हैं।

कुछ और परसर्ग

आगे—यह अधिकरण कारक का परसर्ग है। इसकी व्यत्पत्ति संस्कृत के '**अग्रे**' प्राकृत के '**अग्गे**' से हुई है। उदाहरण—**इस** शहर के आगे।

ऊपर—यह अधिकरण कारण के साथ में सम्बन्ध कारक या संज्ञा पद के साथ आता है। उदाहरण—**मेज के ऊपर**।

संग, समेत, साथ—ये परसर्ग सम्बन्ध कारक के साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे—लड़कों के साथ, इन सबके साथ (या समेत)।

भीतर—इसका भी प्रयोग परसर्ग के साथ होता है। जैसे—घर के **भीतर**।

ओर—यह उपसर्ग सम्बन्ध कारक के साथ अधिकरण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जैसे—**घर की ओर**।

पीछे—इसका भी प्रयोग सम्बन्ध कारक के साथ अधिकरण के अर्थ में होता है। जैसे—**उसके पीछे**।

पास—यह परसर्ग भी सम्बन्ध कारक के साथ प्रयुक्त होकर अधिकरण के अर्थ में आता है। जैसे—**हमारे पास**।

सर्वनाम

प्रश्न ७—हिन्दी में सर्वनामों की उत्पत्ति पर सम्यक् विचार कीजिए।

उत्तर—सर्वनाम शब्दों का विकास—

पाणिनी के समय तक संस्कृत के सर्वनाम के रूप में बहुत कुछ स्थिरता आ गई थी। हिन्दी सर्वनामों की उत्पत्ति इन्हीं से हुई; किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश का पथ पार करते हुए इनमें पर्याप्त परिवर्तन आ गया। संज्ञा पदों की तरह सर्वनाम के भी विकारी रूपों का लोप होता चला गया और उनके स्थान पर अधिकरण कारक के रूपों का प्रयोग होने लगा। संस्कृत में उत्तम और मध्यम पुरुष के सर्वनामों में प्राय: अन्तर नहीं था; किन्तु अन्य पुरुष में लिंग विचार रहता था। आधुनिक भाषाओं में इसका प्राय: लोप हो गया है।

सर्वनाम के निम्नलिखित भेद होते हैं—

१—व्यक्तिवाचक या पुरुषवाचक सर्वनाम।
२—उल्लेख सूचक—
  क. प्रत्यक्ष उल्लेख सूचक।
  ख. परोक्ष या दूरत्व उल्लेख सूचक
३—साकल्य वाचक।
४—सम्बन्ध वाचक।
५—पारस्परिक सम्बन्ध वाचक।
६—प्रश्न वाचक।
७—अनिश्चय सूचक।
८—आत्मवाचक।

पुरुष वाचक सर्वनाम—

हिन्दी में पुरुष वाचक सर्वनाम का केवल उत्तम तथा मध्यम पुरुष के रूप में ही व्यवहार होता था। अन्य पुरुष में परोक्ष या दूरत्व उल्लेख सूचक सर्वनाम के रूप आते थे।

उत्तम पुरुष के निम्नलिखित रूप हैं—

	एक वचन	**बहु वचन**
अविकारी	मैं	हम
कर्म	मुझे	हमें हमको

तिर्यक या विकारी	मुझ	हम
सम्बन्ध पुंलिग···मेरा		हमारा
सम्बन्धी स्त्रीलिंग···मेरी		हमारी

उत्तम पुरुष की व्युत्पत्ति—

संस्कृत	**प्राकृत**	**अपभ्रंश**	**हिन्दी**
मया	मइ मए	मन, मई	मैं
अस्म	अम्ह, हम्म		हम
मुह्यम	मज्झ		मुझ

'मेरा' की उत्पत्ति 'मम-केर' से निम्न प्रकार हुई :—

मम-केर = ममेर = मेर + अ (मेरा)

मध्यम पुरुष की व्यत्पत्ति

	एक वचन	**बहु वचन**
अविकारी	तू	तुम
कर्म	तुझे	तुम्हें
तिर्यक या अविकारी	तुझ	तुम्ह,तुम
सम्बन्ध पुंल्लिग	तेरा	तुम्हारा
सम्बन्ध स्त्रीलिंग	तेरी	तुम्हारी

व्युत्पत्ति—

संस्कृत	**प्राकृत**	**अपभ्रंश**	**हिन्दी**
त्वया	तुअं	तुहं	तू

'तुझ' का सम्बन्ध प्राकृत के षष्ठी के 'तुह' रूपान्तर तथा तुज्झ और संस्कृत के तुभ्यं में माना जाता है।

'तुम' का सम्बन्ध सस्कृत के **'युष्मे'** तथा प्राकृत के **तुम्हें**, **तुम्ह** से माना जाता है। षष्ठी के **मेरा**, हमारा, तेरा, तुम्हारा, रूप विशेषण के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। अतः साथ में आने वाली संज्ञा के अनुरूप इनके लिंग तथा वचन में भेद होता है। **'र'** लगाकर बने हुए षष्ठी के इन सव रूपों का सम्बन्ध **करक**, **करो**, **केरा**, **करा** आदि प्राकृत प्रत्ययों से माना जाता है। जैसे प्राकृत **यह केरो** या **यह करो** से हिन्दी के **म्हारों मारो**, **मेरा** आदि रूप निकले हैं।

प्रत्यक्ष उल्लेख सूचक सर्वनाम

प्रत्यक्ष उल्लेख सूचक सर्वनाम के रूप निम्नलिखित हैं—

	एक वचन	**बहु वचन**
अविकारी	यह	ये
तिर्यक	इस्	इन्ह

व्युपत्ति—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
एषः	एहो	यह
एतस्य	एअस्स	इस

परोक्ष व दूरत्व उल्लेख सूचक—

हिन्दी में इसके रूप निम्नलिखित हैं—

	एक वचन	बहु वचन
अविकारी	वह	वे
तिर्यक	उस्	उन्ह

व्युत्पत्ति—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
असौ	असो	वह
एभिः	अप० (अहि, अई)	वे
अमुष्य	अउस्स	उस्
आयुष्याम्	उण्ह, उन्ह	उन्

साकल्य वाचक—

साकल्य वाचक सर्वनामों के अन्तर्गत में, **उभय सकल** तथा 'सब' शब्द आते हैं। इनमें सबसे प्रचलित 'सब' है। सब की व्युत्पत्ति संस्कृत के **सवंपालि सब्बो** प्राकृत **सब्ब** से हुई है।

सम्बन्ध वाचक—

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम के हिन्दी में निम्नलिखित रूप प्रचलित हैं—

	एक वचन	बहु वचन
अविकारी	जो	जो
तिर्यक	जिस	जिन, जिन्ह

व्युत्पत्ति—

जो उत्पति सं० यः यो से हुई है। पाली में इसका रूप **यो**, प्राकृत में **जो** मिलता है।

जिनकी उत्पत्ति संस्कृत के **यस्य** से हुई है। पाली में इसका रूप **यस्य** तथा प्राकृत में **जस्स** है।

पारस्परिक सम्बन्ध वाचक—

पारस्परिक सम्बन्ध वाचक सर्वनाम के निम्नलिखित रूप हैं।

	एक वचन	बहु वचन
अविकारी	सो	सो
तिर्यक	तिस्	तिन्-तिन्ह

सो की उत्पत्ति टर्नर के अनुरूप संस्कृत के **सो** से हुई है। डॉ० चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार मानते हैं :—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
सः	सको, सगो, सओ	सो

तिर्यक रूप तिस् की उत्पत्ति संस्कृत के तष्य से निम्न प्रकार हुई है :—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
तष्य	तस्स	तिस

तिन्, तिन्ह की उत्पत्ति संस्कृत तेषां से हुई है—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्वी**
तेषां	ताणां, ताणं	तिन्-तिन्ह

प्रश्न सूचक—

प्रश्नसूचक सर्वनाम के हिन्दी में निम्नलिखित रूप हैं :—

	एक वचन	**बहु वचन**
अविकारी	कौन	कौन्
तिर्यक	किस	किन्

व्युत्पत्ति—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
कः + पुनः	कयुण, कवुण, कउण, कौण	कौन
कस्य	कस्स-किस्स,	किस्

अनिश्चय सूचक—

अनिश्चिय वाचक सर्वनाम के रूप निम्नलिखित हैं—

	एक वचन	**बहु वचन**
अविकारी	कोई	कोई
तिर्यक	किसी	किन्हीं

व्युत्पत्ति—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
कः अपि	कोपि, कोवि, कोई	कोई
कस्यापि	कस्स, कस्सई	किसी

आत्मसूचक सर्वनाम

हिन्दी में आत्मसूचक या निज कथन सर्वनाम आदि का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'आतमन्' से हुई है। प्राकृत में इसके अत्त तथा अप्प रूप मिलते हैं।

हिन्दी में सर्वनाम वाले विशेषणों का भी प्रयोग होता है। ये विशेषण इतना 'इत्ता' 'उतना' 'उत्ता' जितना 'जित्ता' कितना कित्ता' तितनां 'तित्ता' ऐसा वैसा, जैसा, कैसा तैसा आदि हैं।

विशेषण

प्रश्न ८—हिन्दी- विशेषण और संख्या -वाचक विशेषणों की क्रमिक व्युत्पत्ति पर प्रकाश डालिए ।

उत्तर—विशेषण में रूप विकार—

विशेष्य पदों के अनुसार विशेषण-पदों के रूपों में भी प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में परिवर्तन होता था । म० भा० आ० भाषा -काल में भी यह प्रणाली बहुत कुछ सुरक्षित रही । संक्रांतिकालीन भाषा में भी इसके पर्याप्त उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु आ० भा० प्रा० भाषा की अधिकांश शाखाओं में यह प्रणाली प्रायः समाप्त हो चुकी है । पश्चिमी हिन्दी में प्रा० भा० आ० भाषा की यह परम्परा बहुत कुछ सुरक्षित है । आज की साहित्यिक हिन्दी की यह प्रमुख विशेषता है ।

विशेष्य-पद के लिंग, वचन और कारक के अनुसार हिन्दी के तद्भव आकारान्त विशेषण पदों में निम्न प्रकार परिवर्तन होता है—

(१) पुल्लिग विशेष्य पद के साथ आकारान्त विशेषण पद कर्त्ताकारक एक वचन में कोई विकार नहीं होता है ।

(१) कर्त्ता बहु वचन एवं विकारी कारकों के दोनों वचनों में आकारान्त विशेषण-पद का पदान्त 'अ'—'ए' हो जाता है—अच्छे (अच्छा से अच्छे) लड़के सच बोलते हैं ।

(३) स्त्रीलिंग विशेष्य पद के साथ सभी वचनों एवं कारकों में आकारान्त विशेषण पद का पदान्त 'आ' 'ई' में बदल जाता है । जैसे काली घोड़ी :

(४) उपर्युक्त स्थितियों में जिन विशेषण पदों का पदान्त-स्वर 'आ' होता है उनमें—आँ = एँ, आँ = इँ हो जाता है । जैसे बायाँ से बायाँ हाथ को, बाईं हथेली को । आकारान्त विशेषणों के अतिरिक्त अन्य विशेषण पदों के रूप में विकार नहीं होता ।

प्राचीन आर्य भाषा में तुलनात्मक श्रेणियों के प्रयत्न तर् एवं तम् थे । आज ये किसी भी आधुनिक आर्य -भाषा में सुरक्षित नहीं है । हिन्दी में तुलना का भाव तुलनीय संज्ञा या सर्वनाम पद के पश्चात 'से' परसर्ग लगाकर प्रकट किया जाता है । 'और', 'अधिक', 'ज्यादा' शब्द भी जोड़ दिये जाते हैं । जैसे--

(१) यह किताब उससे अच्छी है ।

(२) सतीश राम से अच्छा है ।

(३) वह राम से अधिक सुन्दर है ।

हिन्दी में तम वत् विशेषण (Superlative) का भाव 'सबसे', 'सबमें', 'सबसे बढ़कर' आदि परसर्ग लगाकर प्रकट किया जाता है । जैसे—

(१) मोहन सबसे अच्छा लड़का है ।

(२) राम कक्षा में सबसे बढ़कर है ।

हिन्दी में सादृश्य का भाव संज्ञा अथवा सर्वनाम पदों के साथ 'सरीखा', 'सा' जैसे आदि लगाकर प्रकट किया जाता है। जैसे—

राम जैसे चरित्रवान पुरुष विरले ही होते हैं।

संख्यात्मक विशेषण

संख्यावाचन विशेषण के निम्नलिखित वर्गीकरण किए जा सकते हैं—

गणनात्मक, क्रियात्मक, गुणात्मक, समूह वाचक, भिन्नात्मक, समानुपातिक और ऋणात्मक।

व्युत्पत्ति और विकास

गणनात्मक—हिन्दी के गणनात्मक संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति और विकास प्राचीन आर्य भाषा से स० भा० आ० भाषा से होकर निम्न प्रकार हुआ।

ए—संस्कृत एक् प्राकृत के प्रक्क होकर हिन्दी का एक हुआ। ध्वनि परिवर्तन की सामान्य प्रवृत्ति के कारण मध्य भारतीय आर्य भाषा में एक् का एक रूप होना चाहिए था, परन्तु इस सामान्य प्रवृत्ति का उलंघन कर एक शब्द व्यंजन 'क' को प्रयोगाधिक्य के कारण सुरक्षित रख सका। ग्यारह में क का ग, अर्द्धमागधी ग के प्रभाव से हुआ प्रतीत होता है। क का घोष रूप ग हो गया : एक संयुक्त अल्प संख्यावाचक विशेषण—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
एकादश	एआरह	ग्यारह
एकविंशति	एक्कवीसअ	एक्कीस
एकत्रिंशत्	पक्कतीसअ	एकत्तीस
एकचत्वारिंशत	एक्क चत्तालीसा	इक्तालीस
एक पंचाशत	प्रक्कावण्णं	इक्यावन
एक षष्टि	एकसट्ठि	एकसठ
एक सप्तति	एकसत्तरि	एकहत्तर
एकाशीति	एक्कासीइं	इक्यासी
एकनवति	एक्काशाउइं	इक्यानवे

दो—'दो' की उत्पत्ति संस्कृत'द्वौ'—प्राकृत 'दो' से हुई है। अन्य संख्या से संयुक्त होने पर 'द्वौ' 'बा' या 'व' में परिवर्तित हो जाता है।

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
द्वादश	बारहा बारान	वारन
द्वाविंशत	बाबीसं	बाइस
द्वात्रिंशत	बत्तीसा	बत्तीस
द्वि० चत्वारिंशत्	बयालीस	बयालीस
द्वि पञ्चाशत	बावण	बावन

द्वा-षष्टि	वासठिठ	बासठ
द्वा सप्तति	बिसत्ररि, बावत्तरि	बहत्तर
द्वयशींति	वासीइं	बयासी
त्रि-नवति	तेणउइं	बानवे

तीन—तीन की उत्पत्ति संस्कृत के त्रीणि और त्रीणि के प्राकृत रूप निण्णि से हुई है। संयुक्त संस्थाओं में ते, तें, ति, या तिर रूप मिलते हैं। जिन पर सं० त्रय का प्रभाव है। जैसे तेरह, तेईस, तितालिस, तिरपन आदि।

तीन—संयुक्त अन्य संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार है—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
त्रयोदश	तेरह, तेरस	तेरह
त्रयोर्विशति	तेबीसं, तेवीसा	तेईस
त्रयर्त्रिशत	तेंतीसा,	तैंतीस
त्रिचत्वारिंशत	तेआलीसा	तितालीस
त्रिपंचाशत	तेवण, तिप्पण	तिरपन
त्रिर्षष्टि	तेसट्ठि, तिरसट्टि	तिरसठ
त्रिसप्तति	तेवर्त्तरि	तिहत्तर
त्र्यिशति	तेसीइ	तिरासी
त्रिनवति	तेणउरं	तिरानवे

चार—चार की व्युत्पत्ति संस्कृत चत्वारि, प्राकृत चत्तारि और पुरानी हिन्दी च्वारि से हुई है। अन्य संख्यात्मक शब्दों के साथ में इसका संयोग होने पर इसका रूप चौ, चौं, हो जाता है। समस्त पदों में अथवा चार का प्रयोग होता है। जैसे—चौपाया, चौराहा चारपाई, चार संयुक्त अल्प संख्यावाचक विशेषणों की व्युत्पत्ति—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
चतुर्दश	चउद्दह	चौदह
चतुर्विशति	चउब्बीसं	चौबीस
चर्स्त्रिशत	चोतीसं	चौंतीस
चतुश्चत्वारिंशत्	चवालीसा	चवालीस
चतु:पंचाशत्	चउप्पण	चौवन्
चतुससप्तति	चउहत्तरि	चौहत्त र
चतुरशति	चउरासीइ	चौरासी
चतुरनवति	चरणउइं	चौरान्वे

पाँच—पाँच की व्युत्पत्ति संस्कृत के पंच और प्राकृत पच्च से हुई है। संख्यात्मक शब्दों के साथ आने पर इसका रूप पन, वन, अन, हो जाता है। जैसे—

इक्कावन, चौवन, छप्पन आदि पंच-संयुक्त संख्यावाचक शब्दों की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार है—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
पञ्चदश	पणरह	पन्द्रह
पञ्चविंशति	पडचवीसं	पच्चीस
पञ्चत्रिंशत	पन्नतीसं, पणतीसं	पैंतीस
पञ्च चत्वारिशत्	पन्नचत्तालीस	पैंतालीस
पञ्च पञ्चाशत	पंचावण	पचपन
पञ्च षष्टि	पइसठ्ठि	पैंसठ
पञ्च सप्तति	पञ्चहत्तरि, पन्नत्तरि	पिचहत्तर
पञ्चाशीति	पञ्चासीई	पचासी
पञ्चनति	पञ्चाशाउई	पचान्वे

छः छै—छः या छै का प्राकृत रूप 'छ' मिलता है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि संस्कृत के रूप से प्राकृत का वह रूप बना। डॉ० चटर्जी के इसके प्राकृत रूपों में 'क्षक', 'क्षक्' रूपों की कल्पना की है। क्ष का छ में परिवर्तन सामान्य स्थिति में मेल खा जाता है। अन्य संख्यावाचक संयुक्त रूप निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
षोडश	सोलह	सोलह
षडविंशति	छब्बसं	छब्बीस
षट्त्रशत	छत्तीसं	छत्तीस
षट् चत्वारिंशत्	छच्चातालीसा	छियालीस
षट् पञ्चाशत	छप्पण	छप्पन
षट्षष्टि	—	छियासठ
षट् एकसप्त	छवत्तरि	छियत्तर
षडशीति	छइसीइं	छियासी
षण्णवतिनवति	छण्णउइं	छियान्वे

सात— इसकी उत्पत्ति संस्कृत 'सप्त' और प्राकृत सत्त से स्पष्ट है। अन्य संख्यावाचक-संयुक्त इसके निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
सप्तदश	सत्तरह	सत्तरह
सप्तविंशति	सत्तवीसा	सत्ताइस
सप्तत्रिंशत्	सनतीबीसं	सैंतीस
सप्त एकचत्वारिंशत	सत्तालीसा	सैंतालीस
सप्त पञ्चाशत	सत्तावणं	सत्तावन

सप्तषष्टि	सत्रसट्ठि	सड़सठ
सप्त एक सप्तति	सत्तहत्तरिं	सतहत्तर
षडशीत	सत्तासीइं	सतासी
सप्तनवति	सत्रानउए	सत्तान्वे

आठ—इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'अष्क्ष' और प्राकृत अट्ठ से हुई है। इसके अन्य संख्यावाचक संस्कृत रूप निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
अष्टादश	अट्हारह	अठारह
अष्टाविंशति	अट्ठाबीसा	अट्ठाईस
अष्टात्रिंशत्	अट्ठतीसा	अड़तीस
अष्ट एक चत्वारिंश्त्	अट्ठचत्तालांसा	अड़तालीस
अष्ठपञ्चाशत्	अट्ठवण	अट्ठावन
अष्ठर्षष्टि	अट्ठसट्ठि	अड़सठ
अष्ठसप्तति	अट्ठहत्तरि	अठहत्तर
अष्टाशीति	अट्ठासि	अठासी
अष्ठानवति	—	अठान्वे

नौ—इसकी व्युत्पत्ति 'नव' और प्राकृत 'नउ' या 'नअ' से है। अन्य संख्यावाचक संयुक्त इसके रूप निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
उनविंसति	उनवीसइ	उन्नीस
ऊनत्रिंशत	अणवीसा	उन्तीस
ऊनचत्वारिंशत	उन्तालीस	उन्तालीस
उनपञ्चाशत	ऊणपंचासा	उन्चास
ऊनषष्टि	अउणट्ठि	उन्सठ
ऊनसप्तति	एगूणसत्तरिं	उन्तहर
एकोनाशीति	उणास्सी	उन्नासी
नवाशीति	एगूणवउइं	नवासी
नवनवति	—	निन्यावे

दस—की उत्पत्ति संस्कृत 'दश' और प्राकृत 'दस' से हुई है। अन्य संख्यावाचक संयुक्त रूप निम्न प्रकार हैं—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
विंशति	बीसइ	बीस
त्रिंशत	तीसअ	तीस
चत्वारिंशत	चत्तलीसा	चालीस

पञ्चाशत	पंचासा, पणासा	पचास
सष्ठि	सट्ठि	साठ
सप्तति	सत्तरि	सत्तर
अशीति	असीइ	अस्सी
नवति	नब्बाए, नउए	नब्बे
शन्त्	सउ, सअ	सौ
सहस्र		हजार
लक्ष	लक्ख	लाख
कोटि	कोडि	करोड़
अर्बुद	—	अरब
खरव्	—	खरब

क्रमवाचक संख्यावाचक विशेषण—

क्रम संख्या वाचक विशेषणों का संस्कृत से सीधा सम्बन्ध नहीं है। हिन्दीं में आरम्भ के चार क्रम संख्या वाचक विशेषणों के रूप में एक दूसरे से भिन्न है। इसके आगे 'बा' लगाकर रूप बनाये जाते हैं। उदाहरण—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
प्रथम	पहिल, पहिल्ल	पहला
द्विस्सृत		दूसरा
त्रिस्सृत		तीसरा

[द्वितीय और तृतीय से दूसरा और तीसरा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इनसे दूजा, तीजा तो निकल सकते है।]

चतुर्थ	चउत्थ	चौथा
षष्ठ		छठा, छठवाँ
सप्त		सातवाँ

गुणात्मक संख्यावाचक विशेषण—

हिन्दी के गुणात्मक संख्यावाचक विशेषण दूना, तिगुना, चौगुना आदि लगाकर बनते है। इनमें कुछ की उत्पत्ति निम्न प्रकार है—

संस्कृत	हिन्दी
द्विगुणः	दूना (दो दूना चार)
पञ्चक	पञ्जा (पाँच पंजा पच्चीस)
नवम्	नवाँ (नौ नवाँ इक्यासी)

समूह वाचक संख्यावाचक विशेषण—

कुछ शब्द समूह को प्रकट करते हैं। इनकी उत्पत्ति निम्न प्रकार है :

संस्कृत	हिन्दी
शतकृत	सैकड़ा (सौ का समूह)

लक्षक:	लक्खा
पञ्चक	पंजा (पाँच का समूह)

कुछ समूह वाचक विशेषण अन्य भाषाओं के हैं। कौड़ियों को गिनने में चार के लिए गंडा शब्द आता है, जो मुण्डा एवं संथाली भाषा का है।

भिन्नात्मक संख्यावाचक विशेषण—

भिन्नात्मक संख्यावाचक विशेषण की उत्पत्ति निम्न प्रकार है :

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
पव	पउआ	पाव ($\frac{1}{4}$)
पादौन	पाउण	पौन ($\frac{3}{4}$)
त्रिभागिक	तिहाइअ	तिहाई ($\frac{1}{3}$)
अर्द्धक	अद्धअ	आधा ($\frac{1}{2}$)
सपाद	सवाअ	सवा (१$\frac{1}{4}$)

ऋणात्मक संख्यावाचक विशेषण—

ऋणात्मक संख्यावाचक विशेषण कम् योग से बनते हैं। जैसे 'एक कम सौ' अर्थात निंद्धानवे।

इनके अतिरिक्त प्रत्येकवाची संख्यावाचक विशेषण (एक-एक, सौ-सौ) निश्चित संख्यावाचक विशेषण (दोनों, तीनों, चारों) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण (दसों, बीसों, पचासों) भी हिन्दी में है।

समास

प्रश्न ६—हिन्दी-भाषा की समासों की व्युत्पत्ति लिखिए।

उत्तर—अनेक शब्दों के सम्यक् मिले होने को समास कहते हैं। समास युक्त पद समस्त पद कहा जाता है। समस्त पद में विभक्ति लोप हो जाती है, किन्तु विग्रह करने पर वह प्रकट हो जाती है। कभी-कभी समासबद्ध होने पर विभक्ति का लोप नहीं होता। बँगला में 'मामार गाड़ी' (मामा का घर) में 'क' विभक्त है।

हिन्दी में प्राकृत, देशों, तत्सम, अर्द्धतत्सम तथा विदेशी आदि शब्दों के संयोग से समास बनते हैं। सामान्यत: समास के भेद निम्न प्रकार किये जा सकते हैं :—

द्वन्द्व समास—इसमें पद-समूह दो या अधिक शब्दों से मिलकर बनता है। इसमें संयोगी पद स्वतन्त्र होते हैं।

आश्रय मूलक समास इसमें प्रथम शब्द दूसरे को सीमाबद्ध कर देता है अथवा विशेष रूप में होता है। इसके भेद निम्नलिखित हैं—

(क) तत्पुरुष
(ख) कर्मधारय
(ग) द्विगु

वर्णनमूलक समास—इस समास में समस्यमान रूप मिलकर जो अर्थ प्रदर्शित करते हैं, उनसे किसी अन्य पदार्थ का बोध होता है। इस समास को बहुब्रीहि कहते हैं।

द्वन्द्व समास—द्वन्द्व समास का अर्थ 'जोड़ा' है। इसमें समस्यमान पद अपने रूप में ही विद्यमान रहते हैं औ और, एवं तथा संयोजक से इनका विग्रह सम्पन्न होता है। उदाहरण—

माँ-बाप, माँ-बेटी, नाऊ-धोबी, दिन-रात, दही-भात, नमक-तेल, शत्रु-मित्र, सूर्य-चन्द्र, राहु-केतु, पीर-पैगम्बर, हिसाब-किताब, हाट-बाजार।

कुछ द्वन्द्व समास के पद संस्कृत से आये हैं। कुछ समस्त पदों में दो से अधिक पदों का समास मिलता है। जैसे हाथ-पैर, नाक-कान, हाथी-घोड़ा, पालकी आदि।

सहचर शब्दों के साथ समास द्वारा अनुरूप वस्तुओं के भाव-प्रकाशन के लिए एक प्रकार का द्वन्द समास आधुनिक आर्य भाषाओं में मिलता है। हिन्दी में इसके काम-काज, भूल-चूक, अस्त्र-शस्त्र, आस-पास, राजा-मंत्री, हिन्दू-मुसलमान, राजा-प्रजा ठीक-ठाक, तेल-सेल आदि उदाहरण मिलते हैं - कई द्वन्द्व समास के समस्त पदों में दो विभिन्न भाषाओं के संयोग मिलते हैं। ये दोनों शब्द एक अर्थ प्रकट करते हैं: जैसे—हाट-बाजार, डाक्टर-वैद्य आदि।

तत्पुरुष—तत्पुरुष में दो अन्वित पद विशेष्य होते हैं, जिनमें प्रथम पद द्वितीय पद के अर्थ को सीमित करता है। इसमें द्वितीय पद प्रधान होता है। प्रथम पद का अन्वय द्वितीय पद के साथ कर्म, कारण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध तथा अधिकरण रूप में होता है। संस्कृत की तरह हिन्दी में भी द्वितीय, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी तत्पुरुष मिलते हैं।

(१) कर्मवाचक या द्वितीया तत्पुरुष—माखनचोर, चिड़ीमार आदि।

(२) करणवाचक या तृतीया तत्पुरुष—मैथिलीशरण गुप्त कृत साकेत, आगजला।

(३) उद्देश्यवाचक या चतुर्थी तत्पुरुष—जैसे मालगोदाम, डाक महसूल।

(४) अपादान वाचक या शष्ठी तत्पुरुष—जैसे घर निकाला आदि।

(५) सम्बन्ध वाचक या षष्ठी तत्पुरुष—जैसे राजमहल, राम-कथा आदि।

(६) स्थान-काल वाचक या सप्तमी तत्पुरुष—जैसे आनन्दमगन, घुड़सवार आदि।

कर्मधारय—इसमें पहला पद विशेषण और दूसरा विशेष्य होता है, किन्तु दूसरे पद की प्रधानता रहती है। कर्मधारय समास निम्न रूपों में होता है।

(१) पूर्व पद विशेषण होता है, जैसे कच्चा-केला, महारानी।

(२) उत्तर पद विशेषण होता है—जैसे घनश्याम।

(३) दोनों पद विशेषण होते हैं—जैसे खट्टा-मीठा।

(४) दोनों पद विशेष्य होते हैं—जैसे राज-बहादुर

(५) जहाँ अर्थ के प्रति विशेष बल दिया जाता है—जैसे काल-सर्प ।

(६) जहाँ पहला पद सर्वनाम उपसर्ग संज्ञावाचक हो—जैसे स्वदेशी कपूत आदि ।

(७) उपमान पद के बीच सादृश्य स्थापित हो जाने पर—जैसे मुखचन्द्र ।

(८) समस्त पद के उपमान-उपमेय का अभिनत्व प्रदर्शित होने पर—जैसे चन्द्र-मुख ।

द्विगु—इसमें प्रथम पद संख्यावाचक विशेषण होता है । जैसे पंचनन्द, चौराहा, नवरत्न ।

वर्णनामूलक या बहुव्रीहि समास—इसका समस्त पद किसी अन्य पदार्थ का बोध कराता है । इसके विग्रह में जो, जिसके, जिसका आदि शब्दों का प्रयोग होता है ।

बहुव्रीहि के भेद

१—**व्यक्तिकरण बहुव्रीहि**—इसमें पूर्व पद विशेषण होता है । जैसे—शूलपाणि ।

२—**सामानाधिकरण बहुव्रीहि**—इसमें पूर्व पद विशेषण और उत्तर पद विशेष्य होता है । जैसे—लम्बोदर ।

३—**व्यतिहार बहुव्रीहि**—इसमें परस्पर सापेक्ष क्रिया को प्रकट करने के लिए एक ही शब्द की पुनरुक्ति होतो है । जैसे—मुक्का-मुक्की ।

४—**मध्य पद लोपी बहुव्रीहि**—विग्रह वाक्य में आगत-पद लुप्त होता । जैसे—दो फुटा ।

अव्ययीभाव समास—अव्ययीभाव समास का प्रथम पद साधारण अव्यय होता है—जैसे हर, रोज दिन भर ।

बहुत से स्थलों पर शब्दों का द्वित्व कर वीप्सा का भाव भी प्रकट किया जाता है । जैसे—चलते-चलते, हँसते-हँसते ।

१०. क्रिया-पद : काल-रचना

प्रश्न १०—हिन्दी-क्रियाओं की उत्पत्ति पर सम्यक् रूप से विचार कीजिए ।

उत्तर—क्रियाओं का विकास—

संस्कृत की २००० धातुएँ १० गणों में विभक्त थीं । एक की धातुओं के रूप दूसरे गण की धातुओं के रूपों से भिन्न होते थे । प्रा० भा० आ० भा० संस्कृत की क्रिया का रूप पेचीदा था । म० भा० आ० भाषाओं के काल तक आते-आते क्रिया की बनावट में सरलता आने लगी । क्रिया का रूप संयोगात्मक ही रहा, किन्तु रूपों में कमी हो गई । दस गणों में से १, ४, ६, ७, १०, के रूप पालि में इतने

मिलते-जुलते होने लगे कि इनको सामान्य रूप में एक ही गण माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत का द्विवचन पाली में लुप्त हो गया। छः प्रयोगों में से आत्मने पद और परस्मै पद में अन्तिम का परिशेष हो जाने से यथार्थ में पाँच प्रयोग ही पालि में रह गये। पाली में लकारों की संख्या भी आठ ही रह गई। संस्कृत के लुट और लृङ् निकल गये। इस प्रकार पाली में किसी धातु के सामान्यः २४० रूप ही रह गये।

प्राकृत में क्रिया में और अधिक सरलता आ गई। छः प्रयोगों में से केवल कर्तृ वाक्य, कर्मवाच्य तथा प्रेरणार्थक तीन रूप ही रह गये। वर्तमान, आज्ञा भविष्य तथा कुछ विधि-कालों के ही चिन्ह रह गये। कालों के कम हों जाने से कृदन्तों का प्रयोग अधिक होने लगा। अब भी क्रिया के रूप संयोगात्मक ही थे। हिन्दी-क्रिया के बहुत बड़ी संख्या में रूपों की बनावट वियोगात्मक हो गई है। शुद्ध संयोगात्मक रूप बहुत कम मिलते हैं। कालों की संख्या पन्द्रह के लगभग है, वे प्रायः कृदन्त और सहायक-क्रिया के संयोग से बनते हैं। हिन्दी में क्रिया के रूपान्तरी का ढंग अत्यन्त सरल है। पाँच धातुओं को छोड़कर शेष हिन्दी धातुओं में संस्कृत के गणों के समान किसी प्रकार का भी श्रेणी-विभाजन नहीं है।

हिन्दी धातुओं का वर्गीकरण—

हिन्दी की धातुओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है :—

१—**सिद्ध या मूल धातुएं**—ये धातुएँ अपने मूल रूप में सुरक्षित हैं।

२—**साधित या यौगिक धातुएँ**—ये वे धातुएँ हैं, जो मूल धातु के किसी अन्य प्रयत्न को जोड़ने से बनी हैं।

सिद्ध या मूल धातुओं के भेद

१—**संस्कृत से आई तद्भव धातुएँ**—इनकी संख्या हार्निले के अनुसार ३९३ है। इनको कई श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ धातुओं तो संस्कृत धातुओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। जैसे—

हिन्दी	**संस्कृत**
खा	खाद्

कुछ धातुओं पर तो संस्कृत के किसी विशेष गण के रूप का प्रभाव पाया जाता है। गण-परिवर्तन हो जाता है जैसे—

हिन्दी	**संस्कृत**
नाच	नृत्य

कुछ धातुओं में वाक्य-परिवर्तन मिलता है। जैसे—

हिन्दी	**संस्कृत**
बेच	विक्रय

हार्निले ने मूल धातुओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है :—

तद्भव धातुएँ—ये मूल धातुएँ जो प्रा० भा० आ० से आई हैं।

तद्‌भव—वे मूल धातुएँ जो प्रा० भा० आ० की धातुओं के प्रेरणायिक रूपों से आई हैं।

तत्सम या अर्द्ध तत्सम—वे मूल धातुएँ हैं जो संस्कृत से गई।

संदिग्ध—कुछ मूल धातुएँ हैं, जिनकी उत्पत्ति संदिग्ध हैं।

साधित या यौगिक धातुएँ—ये वस्तुएँ संस्कृत से नहीं ली गई, किन्तु इनका सम्बन्ध या तो संस्कृत के रूपों से है या वे आधुनिक काल में गढ़ी गई हैं। हार्निले इनकी संख्या १८९ मानते हैं। इनके तीन वर्ग किये जा सकते हैं।

नाम धातु—हि० जन्य, संस्कृत जन्य।

संयुक्त धातु—हिन्दी चुके,

अनुकरणमूलक या एक ही धातु को दोहराकर बनाई गई धातु—फूँकना, धड़धड़ाना आदि।

मूल और यौगिक धातुओं की तरह कुछ विदेशी भाषाओं की धातुएँ तथा शब्द हिन्दी में धातुओं की तरह प्रयुक्त होने लगे।

अकर्मक तथा सकर्मक क्रियाएँ

हिन्दी में अकर्मक और सकर्मक दो प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। सिद्ध धातुएँ प्रायः अकर्मक होती हैं। बहुत सी साधित धातुयें भी अकर्मक क्रियाएँ होती हैं। जैसे—

चल् (ना), नाच् (ना), खेल् (ना), इसी प्रकार नाम धातुएँ अकर्मक होती हैं। जैसे डग् (ना), रूढ़ (ना), आदि सिद्ध अकर्मक धातुओं से सकर्मक में परिवर्तित करने के लिए या तो प्रेरणाहीन प्रत्यय जोड़ा जाता है या अकर्मक धातु ह्रस्व स्वर को दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे कट् (ना) अकर्मक और काट् (ना) सकर्मक हैं।

सकर्मक क्रिया वस्तुतः कर्मयुक्त होती हैं। अतः आ० भा० आ० भाषाओं के समान हिन्दी में भी केवल अप्राणिवाचक संज्ञा पद ही कर्मकारक में प्रयुक्त होते हैं। इनमें परसर्ग नहीं आता। जैसे पुस्तक दो। किन्तु निश्चयात्मक अर्थ का बोध कराने पर को का प्रयोग होता है। जैसे पुस्तक को ले चलो।

धातुरूप प्रणाली—

हिन्दी के सभी धातुओं के रूप प्रायः एक ही प्रकार निरूपित होते हैं। केवल पाँच धातुयें ही ऐसी हैं, जिनके अज्ञार्थक-प्रकार के आदरवाचक रूप तथा भूत कालिक कृदन्त तथा उनसे बनने वाले कालों के रूप कुछ भिन्न होते हैं।

धातुओं के रूप लिंग, वचन, प्रकार वाच्य एवं काल-भेद से भिन्न होते हैं। हिन्दी की यह एक विशेषता है कि उसके धातु रूपों में लिंग-भेद भी होता है। इसका कारण कृदन्त रूपों को अपनाना है। कृन्दतों को अपनाने से लिंग-भेद की प्रणाली स्वयं ही आ गई।

प्रकार (Mood)

हिन्दी में निर्देशक, आज्ञा, एवं संयोजक तीन प्रकार होते हैं। इनमें केवल आज्ञा के रूप प्रा० भा० आ० भाषा से परम्परागत प्राप्त हुए हैं। अन्य प्रकारों के रूप बनाने में हिन्दी में नई पद्धति को ग्रहण किया गया है। हिन्दी के आज्ञार्थक प्रकार के रूप प्राचीन आर्य-भाषा से वर्तमान-निर्देशक प्रकार तथा अनुज्ञा अथवा आज्ञार्थक प्रकार के रूप का समिश्रण है। हिन्दी का आज्ञार्थक मध्यम पुरुष एक वचन का प्रा० भा० आ० भा० के आज्ञार्थक म० ए० व० से प्राप्त हुआ है तथा अन्य पुरुषों एवं वचनों के रूप प्रा० भा० आ० भाषा के वर्तमान निर्देशक प्रकार के रूपों से आये हैं। हिन्दी के आदर-सूचक आज्ञार्थक प्रकार के रूप मध्यम पुरुष बहुवचन में मिलते हैं। जैसे कीजिए दीजिए आदि। इनकी उत्पत्ति प्रा० भा० आ० के—या—बिधिलिंग (कुर्यात, दद्यात्) से है।

वाच्य

संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी में वाच्य बनाने में अन्तर हो गया है। संस्कृत में —य—लगाकर कर्मवाच्य बनाता था। प्राकृतों में यह— य—इय— इय्य, ईय, इज्ज में परिवर्तित हो गया। हिन्दी में कर्मवाच्य मूल के भूतकालिक कृदन्त के रूपों में जाना धातु के आवश्यक रूपों के संयोग से बनता है। हिन्दी में भूत निश्चयार्थ काल संस्कृत के भूतकालीन कर्मवाच्य कृदन्त से सम्वद्ध हैं। संस्कृत के कर्मणि प्रयोग के चिह्न में अब तक हैं।

संस्कृत	हिन्दी
कृष्ण चलितः	कृष्ण चला
कृष्णेन पुस्तिका पठितः	कृष्ण ने पुस्तक पढ़ी

काल-रचना

हिन्दी की काल-रचना प्रणाली संस्कृत से बहुत दूर चली गई है। प्रा० भा० आ० भाषा में भूतकाल में धातु लङ., लिट् और लुङ. तीन रूप होते थे। मध्य भारतीय आर्यभाषा-काल में ये तीनों रूप जोड़े जाने लगे और धातु के भूत कालिक कृदन्त के रूप से भूतकाल प्रकट किया जाने लगा। संस्कृत का वर्तमान कालिक कृदन्त रूप हिन्दी में गृहीत हुआ। जैसे—

संस्कृत	हिन्दी
चलन्त	चलता

प्रा० भा० आ० भाषा के तिङन्त एवं दो कृदन्त ही हिन्दी के धातुओं के विविध रूपों के आधार हैं और इनमें सहायक क्रियाओं के योग से हिन्दी की काल-रचना होती है।

ग्रियर्सन के मतानुसार हिन्दी आज्ञा के रूपों का सम्बन्ध संस्कृत के वर्तमान काल के रूपों से ही है, किन्तु बीम्स इसका सम्बन्ध संस्कृत आज्ञा के रूपों से जोड़ते

है। यथार्थता यह है कि संस्कृत के वर्तमान और आज्ञा दोनों ही का प्रभाव हिन्दी के आज्ञा रूपों पर पड़ा है—

सं०	प्रा०	हिन्दी
चलानि	चलयु	चल
चलतु	चलउ	चले
चलायो	चलायो	चले

संस्कृत कृदन्तों से बने काल

संस्कृत कृदन्तों के आधार पर बने हुए हिन्दी कृदन्तों का प्रयोग आधुनिक समय काल के लिए होने लगा। केवल मात्र कृदन्तों से बने हिन्दी में भूत निश्चयार्थ, भूत संभावनार्थ तथा भविष्य आज्ञा तीन काल हैं। इनके लिए क्रम से भूतकालिक कृदन्त, वर्तमान कालिक कृदन्त तया क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग होता है।

इन कृदन्ती कालों के कारण ही हिन्दी-क्रिया में लिंग भेद पाया जाता है।

संयुक्त काल—

इन कालों का सम्बन्ध संस्कृत के कालों में बिल्कुल भी नहीं है। केवल क्रिया के कृदन्त रूप तथा सहायक क्रिया का विकास संस्कृत से अवश्य हुआ है।

कृदन्ती रूप (The Participle)

हिन्दी के वर्तमान कालिक कृदन्त ता, ते, ती प्रत्ययों के योग से निष्पन्न होते है। जैसे चलता आदमी, बहता पानी, उड़ती चिड़िया उड़ते पंक्षी।

कर्मवाच्य अतीत कालिक कृदन्त—

हिन्दी में इनके रूप आ (पुल्लिग) तथा इ (स्त्रीलिंग) प्रत्ययों के योग से बनते हैं। जैसे सुना हुआ किस्सा पढ़ा, सुनी सुनाई बातें।

इस प्रत्यय की उत्पत्ति संस्कृत इत, प्राकृत इआ से हुई है।

पूर्वकालिक क्रिया—

हिन्दी पूर्वकालिक क्रिया के रूप धातु के साथ कर जोड़ने से बनते हैं। जैसे देखकर, सुनकर

द्वैत क्रिया पद—

कार्य की निरन्तरता का भाव प्रकट करने के लिए प्रायः क्रियाओं के पूर्व कालिक रूपों का दित्व किया जाता है। जैसे—उड़ते-उड़ते, सुनते-सुनते। इसके प्रयोग संस्कृत से लेकर हिन्दी तक में मिलते हैं। पाणिनी ने भी वीप्सा के अर्थ में द्वैत क्रियापदों का विधान किया है। जैसे भुकत्वा-भुकत्वा (निरन्तर पकाते-पकाते) हिन्दी में कर्म धातु पद युग्म रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे लिख-पढ़कर, देख-सुनकर। हिन्दी में पारस्परिक क्रिया विनिमय प्रकट करने के लिए क्रिया विशेष्य पदों के द्विगुणित रूप भी प्रयुक्त होते है। जैसे मारा-मारी, देखा-देखी।

संयुक्त क्रिया पद—

आधुनिक आर्य भाषाओं में क्रिया पदों के साथ कृदन्तीय पदों के संयोग के कारण एक विशेष प्रकार का मुहावरेदार प्रयोग बन जाता है। हिन्दी की संयुक्त क्रियाओं को कैलाग ने निम्नलिखित वर्गों में बाँटा है—

(१) **मृशार्थक**—फेंक देना, गिरा देना, पी लेना आदि।
(२) **शून्यता बोधक**—जा सकना, पढ़ सकना आदि।
(३) **पूर्णता बोधक**—खा चुकना, लिख चुकना आदि।

आकारान्त क्रियामूलक विशेष्य पद युक्त—

पौनः पुन्यार्थक—आकारान्त क्रियामूलक विशेष्य पद के साथ कर (ना) धातु के योग से बनते हैं। जैसे—जाया करना, खेल करना आदि।

इच्छार्थक—यह आकारान्त क्रियामूलक विशेष्य पद के साथ चाह (ना) धातु के योग से बनते हैं। जैसे—वह बोलना चाहता है।

असमायिका पद-युक्त—

ये आरम्भिकता बोधक, अनुमति बोधक और सामर्थ्य बोधक होती है।

आरम्भिकता बोधक—खाने लगना, चलने लगना आदि।

अनुमति बोधक—जाने देना, करने देना आदि।

सामर्थ्य बोधक—जाने पाना, करने पाना आदि।

वर्तमान कालिक तथा भूत कालिक कृदन्त युक्त —

इनके निरन्तरता बोधक, प्रगति बोधक और गत्यार्थक तीन प्रकार होते हैं।

निरन्तरता बोधक—जाता रहना, गाती रहना आदि।

प्रगति बोधक—आग बढ़ती जाती थी, लड़के पढ़ते जाते थे आदि।

गत्यार्थक—वह गाते हुए चलता था।

विशेष्य अथवा विशेष पद-युक्त—ये विशेष्य अथवा विशेषण पद के साथ कर (ना), ही (ना), ले (ना) आदि धातुओं के योग से बनते हैं। जैसे भोजन करना मौज लेना आदि।

अव्यय

प्रश्न ११—हिन्दी-अव्ययों की व्युत्पत्ति समझाइये।

उत्तर—संज्ञा तथा सर्वनाम शब्दों के परे तद्धित के कतिपय प्रत्यय लगाने से अव्यय बनते हैं। हिन्दी अव्ययों की उत्पत्ति और विवरण निम्न प्रकार है :—

काल वाचक अव्यय

कालवाचक अव्यय संज्ञा पदों और अव्यय पदों से बनते हैं।

संज्ञा पदों से निर्मित—

संस्कृत	हिन्दी
क्षण	क्षण्

घटिका	घड़ी
स्फूर्ति	फुर्ती

अव्ययों से निर्मित

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
अग्रे	अग्गे	आगे
अद्य	अज्ज	आज
तुरिवे	तुरै, तुरवन्त	तुरन्त

सर्वनाम सम्बन्धी अव्यय दुहराये जाकर अन्य अव्ययों के साथ संयुक्त किये जाते हैं । जैसे—जहाँ-जहाँ, तहाँ-तहाँ ।

अनिश्चिता का भाव प्रकट करने के लिए कभी-कभी सम्बन्धवाची अव्यय का अनिश्चित वाचक अव्यय के साथ संयोग कर दिया जाता है – कभी-कभी, जहाँ-कहीं कभी-कभी अव्ययों के बीच में अनिश्चिता प्रकट करने के लिए 'न' का प्रयोग किया जाता है । जैसे—कभी न कभी, कहीं न कहीं ।

स्थान वाचक अव्यय

स्थान वाचक रूप में यहाँ, वहाँ जहाँ, कहाँ, अव्यय प्रयुक्त होते हैं । इनकी व्युत्पत्ति निम्न प्रकार है—

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
योनस्मिन्	यो + इहा	यहाँ

इसके अतिरिक्त अत्यन्त, नजदीक, भीतर, बाहर, नीचे, ऊँचे आदि अव्यय भी स्थानावाचक रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

परिमाण वाचक अव्यय—

हिन्दी में परिणाम वाचक अव्यय और, बहुत, ज्यादा कम, कुल हैं । इनकी उत्पत्ति निम्न प्रकार है :

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
अपर	अवर	और
बहुत्वम्	बहुत	बहुत

ज्यादा फारसी का है, कम भी फारसी का है । कुल की व्युत्पत्ति कदाचित कलम से हुई है ।

स्वीकार तथा निषेध वाचक अव्यय—

'हाँ' स्वीकार वाचक, तथा 'ने', 'ना', 'नहीं', 'मत' निषेध वाचक अव्यय हैं । 'न', 'ना', का किसी भी क्रिया के साथ प्रयोग हो जाता है, किन्तु मत मत् का प्रयोग केवल विधि क्रिया में ही होता है ।

'न' की व्युत्पत्ति सं० 'न' से है, 'ना' इसका विस्तृत रूप है ।

'नहीं की व्युत्पत्ति संस्कृत 'न असति' से है । प्रकृति में इसके रूप 'न-अहइ' आदि ।

सम्बन्ध वाचक अव्यय—

सम्बन्ध वाचक अव्यय को निम्न श्रेणियों में विभावित किया जा सकता है —

१. समान वाक्य-संयोजक ।

२. आश्रित-वाक्य संयोजक ।

समान वाक्य संयोजक के निम्नलिखित भेद हैं —

१—समुच्चयबोधक, २—प्रतिबंधक, ३—विभाजक, ४—अनुधारणात्मक

हिन्दी में समुच्चय बोधक अव्यय और, एवं, तथा हैं । इनमें एवं और की व्युत्पत्ति अपरम् से है । हिन्दी में किन्तु, मगर और लेकिन का प्रयोग होता है किन्तु और परन्तु तत्सम हैं । मगर और लेकिन फारसी से उधार लिए गये हैं ।

हिन्दी में अत्यधिक प्रचलित विभाजक वा, अथवा तथा या हैं । इनमें वा, अथवा संस्कृत के रूप हैं और या अरबी का है ।

हिन्दी में आश्रित वाक्य संयोजक के रूप में कि, मानों तथा जैसा का प्रयोग होता है । मानों की उत्पत्ति सं० मान्यतु से हुई है । इसका प्राकृत रूप मण्णउ है जैसा की व्युत्पत्ति सं० सादृश्य से है ।

हिन्दी में मनोभाव व्यंजक अव्यय भी हैं । उदात्त, अनुदात्त आदि स्वर के अनुसार इस एकाक्षर प्रत्यय के अर्थ में भी भिन्नता आ जाती है । जैसे—

मैं उच्चारोही स्वर = प्रश्न ;

मनोभाव वाचक अव्यय के निम्न प्रकार हैं—

सम्मति-ज्ञापक—हाँ, अच्छा, यही, जो 'हाँ' आदि है । व्युत्पत्ति—

संस्कृत	**प्राकृत**	**हिन्दी**
आम्	—	हाँ
अच्छः	अच्छअ	अच्छा
जीव	जीअ	जी

असम्मति-ज्ञापक—'न', 'ना', नहीं' है ।

घृणा-व्यंजक-ज्ञापक—वाह, वाह, ओहो शाबाश है । इनमें वाह तथा शाबास फारसी से लिए गये हैं ।

घृणा-व्यंजक—छी-छी, थू-थू, दुर-दुर, राम-राम इत्यादि ।

भय-यंत्रणा या कष्ट-व्यंजक—इस श्रेणी के अव्यय शब्द आह, हाय्, बाप् रे बाप, मर गए रे आदि हैं ।

विस्मय-द्योतक—है, ऐ, ओहो, अरे, राम, अच्छा आदि है । इसमें हैं, एँ, की व्युत्पत्ति सं० 'अइ' से हुई प्रतीत होती है ।

करुणा-द्योतक—आह, हाय राम, राम रे, अरे, बाप रे आदि हैं ।

सम्बोधन-द्योतक—हे, ए, अरे, रे, अजी आदि हैं ।

इनके अतिरिक्त काँव-काँव, क्-क्, भू-भू, प धप्-धप् आदि अनुकारसूचक अव्यय हैं । इनका प्रयोग किसी क्रिया के साथ होता है ।

१३. सन्धि-व्यवस्था

प्रश्न २६—हिन्दी संधि-व्यवस्था का सम्यक् निरूपण कीजिये ।

उत्तर—दो वर्णों की संधि होने पर अनेक नवीन शब्दों की रचना होती है और उनके अर्थ में भी अन्तर आ जाता है, अतः शब्द-रचना में संधियों का विशेष महत्व है ।

दो वर्णों का नैकट्य संधि (वर्णों का मिलन) को जन्म देता है। जब दो वर्ण बोलने में एक से मिले हुए से प्रतीत होते हैं, तब लिखने में इनका मिला हुआ रूप ही लिखा जाता है । वर्णों के मिलने पर कुछ वर्ण-परिवर्तन भी होता है, इन्हीं परिवर्तनों का अध्ययन संधि के अन्तर्गत किया जाता है । हिन्दी में तद्भव शब्दों के साथ संधि बहुत कम हुई । वस्तुतः संधि संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ही होती है । हिन्दी में ऐसे शब्द बहुत हैं । संधि एक ध्वनिगत प्रक्रिया है, अतः दो शब्दों को मिलाकर बोलने पर उनमें ध्वनियाँ जुड़ जाती हैं । हिन्दी के तद्भव शब्दों की संधियाँ निम्न शब्दों में देखी जा सकतीं हैं :

अब + ही = अभी । कहाँ + ही = कहीं । वह + ही = वही । न + हीं = नहीं । सब + ही = सभी । कब + ही = कभी । तब + ही = तभी । जब + ही = जभी आदि शब्द भी द्रष्टव्य हैं ।

भेद

१. स्वर संधि—जहाँ दो स्वर परस्पर मिलते हैं, उस संधि का नाम स्वर है।

सवर्ण दीर्घ स्वर संधि—अ, इ, उ, ऋ के बाद कोई सवर्ण (समान) अक्षर हो तो दीनों के स्थान पर उसी वर्ण का दीर्घ स्वर वर्ण हो जाता है, जैसे—अ + आ = आ, इ, ई + इ, ई = ई ।

उदाहरण (१)—हिम + आलयः = हिमालयः (२) गुरु + उपदेशः = गुरुपदेशः
विद्या + आलयः = विद्यालयः विष्णु + उदयः = विष्णूदयः
दैत्य + अरिः = दैत्यारिः भानु + उदयः = भानूदयः

यण संधि—इ, ई को य, उ, ऊ, को व, ऋ, को र, लृ को ल् हो जाता है । यदि बाद में कोई स्वर हो तो सवर्ण स्वर के होने पर नहीं । जैसे—

(अ) एहि + अत्र = एह्यत्र (ब) मधु + अरि = मध्वारः
इति + आह = इत्यादि मधु + आगमः = मध्वागमः
इति + अत्र = इत्यत्र अनु + अयः = अन्यवः

अयादि संधि—ए को अय, ओ को अव, ऐ को आय, औ को आव हो जाता है, बाद में कोई स्वर हो तो, किन्तु पदान्त में नहीं है । जैसे—

(अ) कवे + ए = कवये (ब) पो + अनः = पवनः
ने + अयनम् = नयनम् विष्ठ्ये + ए = विष्ठावे
हरे + ए = हरये

गुण सन्धि—(१) यदि अ या आ के बाद, इ या ई हो तो दोनों को 'ए' गुण होता है। (२) अ या आ के बाद उ या ऊ हो तो दोनों को 'ओ' गुण होता है। (३) अ या आ के बाद ऋ या ॠ हो तो दोनों को 'अर' गुण होता है। (४) अ या आ के बाद 'लृ' हो तो दोनों को अल् गुण होता है। जैसे—

(अ) उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः
रमा + ईशः रमेशः
जन + ईश्वरः = जनेश्वरः
महा + ईशः = महेशः

(ब) पर + उपकारः = परोपकारः
हित + उपदेशः = हितोपदेशः
पश्य + उपरिः = पश्योपरिः
गङ्गा + उदकम् = गंगोदकम्

वृद्धि संधि—अ या आ के बाद ए या ऐ हो तो दोनों को 'ऐ' हो जाता है। अ या आ के बाद ओ या औ हो तो दोनों को 'औ' हो जाता है जैसे—

मन + एकपुत्रः + ममैकपुत्रः
गङ्गा + ओघः = गङ्गौघः
जल + ओघः = जलौघः
महा + औषधिः = महौषधिः।

२. **व्यंजन संधि**—स या तवर्ग से पहले या बाद में श या चवर्ग में से कोई भी वर्ण हो तो स को श् और तवर्ग (त, थ, द, ध, न) को चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) क्रमशः होता है। जैसे—

रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति।
सद् + जन = सज्जनः
उद् + ज्वलः = उज्जवलः
कस् + चित् = कश्चित्

ष्टुत्व संधि—स् या तवर्ग से पहये या बाद में ष या टवर्ग कोई भी हो तो स् को य् तथा तवर्ग को टवर्ग (त, थ, द, ध, न) को (ट, ठ, ड, ढ, ण) हो जाता है, जैसे—

इष् + तः = इष्टः
दुष् + तः = दुष्टः
विषः + नुः = विष्णुः
कृष् + नः = कृष्णः

यदि अन्तस्य (य, र, ल, व) या अनुनासिक वर्ण को छोड़कर किसी व्यंजन वर्ण से बाद कोई पुरुष व्यंजन हो तो पूर्ववर्ती वर्ण अपने वर्ग के प्रथम वर्ण में परिवर्तित हो जाता है और यदि वह व्यंजन वर्ण पद के अन्त का हो तो उसके स्थान में उसके वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है। जैसे—

दिक + गजः = दिग्गजः
अच् + अन्ता = अजन्ता

सुप + अन्त = सुबन्तः
षट् + आननः = षडानन;

दिक् + अम्बर; = दिगम्बर;
चित् + आनन्द; = चितानन्द
उद्द + देश्यम् = उद्देश्यम्
जगत् + ईश; = जगदीश; ।
वाक् + ईशः = वागीश;
षट्—एव = षडेव
उत् + घाटन = उद्घाटन

यदि अन्तस्थ (य, र, ल, व,) और अनुनासिक व्यंजनों को छोड़कर और किसी व्यंजन के सामने किसी वर्ग का तृतीय (ग, ज, ब, ड, द) या चतुर्थ (घ, झ, ठ, ष, भ) हो तो पूर्ववर्ती व्यंजन अपने वर्ग के तीसरे वर्ण में बदल जाता है ।

जैसे—बुध् + धि = बुद्धि;
सिध् + धि = सिद्धि
लभ् + धा = लब्धा
क्षुभ् + धः = क्षुब्धः
दुध् + धः = दुग्ध

—त द् के बाद ह हो तो 'द्ध' हो जाता है जैसे;
उत् + हार = उद्धारः
उत् + हृत = उद्घृत

—श द के परे ल हो, तो त द को ल हो जाता है, जैसे :
तत् + लीनः = तल्लीन
उत् + लासः = उल्लासः

अनुस्वार संधि

पदान्त में 'म्' का अनुस्वार हो जाता है यदि व्यंजन परे हो। जैंसे ;
कार्यम् + कुरु = कार्यंकुरू
सत्यम् + वद = सत्यंवद

विसर्ग सन्धि

(१) विसर्ग के बाद स्वर हो तो विसर्ग का 'स्' हो जाता है। श, या च होने पर त का च भी होता है। जैसे :
कः + चित् = कश्चित्
धनुः + टंकारः = धनुष्टंकारः
विष्णुः + त्राता = विष्णुस्त्राता ।

पद के अन्तिम 'स्' को 'रु' (र्) हो जाता है। जैसे :
पितुः + इच्छा = पितुरिच्छा

ह्रस्व ऊ के बाद रु (स् के र अथवा :) को उ हो जाता है यदि बाद में ह्रस्व हो :
शिवः + अर्च्य = शिवोऽर्च्यः

रामः + अस्ति = रामोऽस्ति
क + अयम् = कोऽयम् ।
देव + अधुना = देवौऽधना ।

ह्रस्व अ के बाद रु को उ हो जाता है, बाद में यदि हश् (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ पञ्चम वर्ण और ह अन्तस्थ हो तो) रु को 'उ' होने के बाद 'उ' को गुण होकर 'ओ' हो जाता है :

शिवः + वन्द्यः = शिवोवन्द्यः ।
देवः + गच्छति = देवोगच्छति ।
तमः + गुणः = तमोगुणः
बाल + हसति = बालो हसति ।
रामः + वदति = रामो वदति ।

संधि नियमों के विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि जहाँ दो ध्वनियाँ जल्दी-जल्दी उच्चारण में मिल जायँ वहीं सन्धि हो जाती है ।

संस्कृत में दो से अधिक शब्दों में सन्धि करने की प्रवृत्ति रही है । किन्तु हिन्दी में अभी ऐसा नहीं है, क्योंकि इस प्रक्रिया से दुरूहता बढ़ती है ।

हिन्दी में दीर्घ ॠ वाले शब्दों का प्रयोग नहीं है, जैसे—पितृ + ऋण = पितृण, किन्तु सरलता को सुरक्षित रखने के लिए पितृ-ऋण ही प्रयुक्त होता है ।

निबन्ध-लेखन

१. मद्य-निषेध

रूपरेखा—

(१) भूमिका, (२) नशे का प्रचलन, (३) मद्यपान से हानियाँ, (४) मद्य-निषेध के हेतु उठाये गए कदम, (५) मद्य-निषेध की घोषणा का स्वागत, (६) मद्य-निषेध कार्यक्रम की आलोचना, उपसंहार।

भूमिका—'जिसने किया शराब से प्यार, उसने फूँक दिया घर बार, पिता जी मेरे भविष्य के लिये मत पीजिये, 'शराब विष है और इसे पीना मृत्यु को बुलावा देना है'। सड़कों पर इस तरह के अनेक पट्ट देख कर आपका आश्चर्य चकित हो जाना स्वाभाविक है। अचानक ही यह पट्ट कैसे प्रकाश में आ गए, इसके लिए जिज्ञासु होना स्वाभाविक ही है। अभी कुछ वर्ष पूर्व नगर के प्रत्येक क्षेत्र में शराब की दूकानें बडी मात्रा में खुली हुई थीं। शराब ही नहीं गाँजा, भाँग और अफीम आदि का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग और सेवन किया जा रहा था। सड़कों पर झूमते हुए, नाली में गिरते हुए अनेक व्यक्ति दिखलाई पड़ते थे, परन्तु अचानक ही कौन-सा हृदय परिवर्तन हो गया कि ये बातें अब सडकों पर नहीं दिखलाई देतीं। वास्तव में यह हृदय परिवर्तन नहीं हुआ है बल्कि सरकार ने 'मद्य निषेध' की घोषणा कर दी है। अब भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे पूर्ण मद्य निषेध लागू कर दिया गया और शासन ने यह घोषणा कर दी कि ४ वर्ष के अन्दर ही समस्त भारत में 'मद्य-निषेध' कर दिया जायगा।

नशे का प्रचलन—नशाबन्दी की घोषणा एक धमाके के रूप में आई, क्योंकि इस प्रकार का कार्यक्रम भारत के केवल कुछ राज्यों को छोड़ कर देश में अन्य कहीं नहीं अपनाया गया है। अति प्राचीन काल से नशे का प्रचलन रहा है। सुरा का सेवन कोई इस युग की बात नहीं है, अतीत काल में उसके सेवन के चिन्ह उपलब्ध होते हैं। अनेक ग्रन्थों में भी मदिरा के सेवन का उल्लेख है। हमारे पूर्वज जिस सोमरस का पान किया करते थे, वह वास्तव में एक प्रकार की मदिरा ही थी। भाँग और गाँजे की परम्परा भी काफी प्राचीन है। इसका सम्बन्ध तो भगवान शंकर के साथ जोड़ दिया गया है और अनेक भक्तजन तो यहाँ तक कहते हैं कि भाँग और गाँजे के सेवन के बिना 'भोले बाबा' प्रसन्न ही नहीं होते। मध्य युग में मदिरा के सेवन के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। मुगल शासन काल में जहाँगीर मदिरा का बहुत अधिक प्रेमी था। ब्रिटिश काल में भी मदिरा का प्रचलन प्रचुर मात्रा में रहा।

अफसरों को प्रसन्न करना मदिरा प्रयोग द्वारा ही सम्भव था। स्वतन्त्र भारत में 'मद्य निषेध' को राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के रूप में घोषित किया गया, परन्तु स्वतन्त्रता के ३० वर्ष बाद भी केवल कुछ राज्यों में 'मद्य-निषेध' करने के अतिरिक्त इस क्षेत्र में क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाये जा सके।

भारत की बात जाने दीजिये, विदेशों में तो नशा अनिवार्य सी चीज हो गई है। करोड़ों की संख्या में शराब की बोतलें रोज खाली हो जाती हैं। केवल शराब ही नहीं चरस और अफीम का सेवन भी व्यापक मात्रा में किया जाता है। नशे की भिन्न-भिन्न प्रकार की गोलियाँ चालू की गई हैं जिन्हें खाकर लोग मस्ती में झूमने लगते हैं। पिछड़े देशों के लिये तो कहा जाता है कि गरीबी के फलस्वरूप नशे का प्रचलन है, परन्तु उन्नत देशों के लिए क्या कहा जाय। अमेरिका, इंगलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, फ्रान्स आदि में तो नशे का उतना अधिक प्रचलन है कि कोई इसे बुरा भी मानता। बड़े-बड़े समझौते मदिरा की मेज पर ही बैठ कर किये जाते हैं। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को प्रसन्न करने के लिए मदिरा सहित भोज दिये जाते हैं। मदिरा जीवन का एक नारा और अंग बन गयी है। अब तो मदिरा का नशा कोई नशा नहीं समझा जाता तथा लोग उससे अधिक तीव्र मात्रा में नशा करने के हेतु आतुर रहते हैं।

मद्य-पान से हानियाँ—यह ठीक है कि संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न युगों में किसी न किसी युग में नशे का प्रचलन रहा है और आज भी मद्य-पान अधिक मात्रा में प्रचलित है। परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है कि मद्य-पान के अनेक दोष रहे हैं और विभिन्न देशों में विभिन्न अवसरों पर अनेक विद्वानों द्वारा इसकी तीखी आलोचना की गई है। आज की तो बात जाने दीजिए, प्राचीन युग में भी यह रहता था कि मदिरा का सेवन मनुष्य को कुण्ठित कर देता था। चीन जैसा देश अधिक मात्रा में अफीम के सेवन के फलस्वरूप बहुत समय तक पतन के गर्त में गिरा रहा। जब किसी व्यक्ति को कुण्ठित करना होता था तो उसे मद्य पान कराया जाता था। किसी से अपना उल्लू सीधा कराने के लिए उसे अत्यधिक मात्रा में शराब पिला दो और फिर अपना काम निकालो, यह एक आम बात रही है। अत्यधिक मात्रा में मद्य-पान स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक रही है और हजारों व्यक्तियों ने अपना जीवन मद्य पान के फलस्वरूप नष्ट किया है। पाश्चात्य देशों में बहुत से नौजवान विभिन्न प्रकार के नशों का सेवन करके अपने जीवन को बरबाद कर लेते हैं। भारत में भी यही बात पूर्णतया साथ रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो सम्राट मद्य पान से दूर रहे हैं उन्होंने अपने शासन तन्त्र को सुचारु रूप से चलाया है।

मद्य पान वैयक्तिक रूप से तो खराब है ही, सामाजिक रूप से भी अत्यधिक हानिकारक है। इसके फलस्वरूप समाज में अनेक खराबियाँ व्याप्त हो जाती हैं। भारत के गाँवों में तो जितने भी लड़ाई-झगड़े होते रहे हैं उनमें मद्ध-पान का बहुत

बड़ा हाथ रहा है। यदि दुनिया मे की जाने वाली हत्याओं की एक तालिका बनाई जाय तो यह पता चलेगा कि अधिकतर हत्यायें मदिरा का सेवन करके ही की जाती हैं। यही बात चोरियों और डकैतियों के लिये भी सत्य प्रतीत होती हैं।

मदिरा पारिवारिक जीवन के लिए भी अत्यधिक घातक रही है। अनेक परिवार मदिरा के अत्यधिक सेवन के फलस्वरूप बरबाद हो गये हैं। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की ओर माता-पिता इसलिए भी ध्यान नहीं दे पाते कि वे नशे में खोये रहते हैं। परिवार की आय का एक बहुत बड़ा भाग मदिरा में ही खर्च हो जाता है तो फिर उचित शिक्षा और उचित भोजन आदि की व्यवस्था किस प्रकार की जाय।

भारत जैसे गरीब देश के लिए तो मद्य पान कलंक ही है। जहाँ आज भी व्यक्ति को दो जून भोजन नहीं मिल पाता वहाँ मदिरा जैसी वस्तु पर अपव्यय करना कहाँ तक उचित है? हमारे ग्रामीण जन-जीवन के लिए मद्य पान बहुत बड़ा कलंक रहा है। परिवार के परिवार मद्य पान के फलस्वरूप नष्ट हो गये हैं। कहीं पुत्र ने पिता की हत्या कर दी, कहीं पति ने पत्नी की और कहीं पत्नी दुराचारिणी होकर भाग गई। यह सब मदिरापान का ही परिणाम है।

मद्य-निषेध के हेतु उठाये गये कदम—विदेशों में मद्य-निषेध के सम्बन्ध में चाहे जो धारणा हो, परन्तु अपने देश के लिए तो यह निर्विवाद सत्य है कि मदिरा का सेवन एक गरीब देश के लिए बहुत बड़ा कलंक रहा है। मध्य-युग में मदिरा का प्रचलन प्रचुर मात्रा में था, परन्तु प्राचीन और मध्य युग में भी कुछ सम्राट ऐसे हुए जिन्होंने मदिरा को कलंक बताया। प्राचीन भारत में तो नशे को बहुत बुरा समझा जाता था जो लोग यह मत व्यक्त करते हैं कि हमारे पूर्वज नशे का बहुत सेवन करते थे, वे भूल करते हैं। वास्तव में प्राचीन काल में भारत में नशे का प्रचलन तो था, परन्तु केवल कुछ ही व्यक्ति इसका सेवन करते थे। मध्य युग में नशे का प्रचलन काफी बढ़ा। कुछ सम्राटों ने भी इसे प्रोत्साहन दिया। परतन्त्र-काल में मद्य-पान बहुत बड़ा कलंक बन कर बढ़ा। परिणामस्वरूप अनेक समाज-सुधारकों ने मद्य-पान पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग की। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में मद्य पान के विरोध में जन-जागरण का कार्य किया गया। उन्होंने कहा, "यदि मुझे एक घण्टे के लिए भी भारत का तानाशाह बना दिया जाय तो मैं पूरे देश की शराब की दूकानों को बिना मुआवज़ा दिये बन्द करा दूंगा।" यहाँ तक देखना है कि जिस व्यक्ति ने स्वच्छ जनतन्त्र स्थापित करने के लिए जीवन भर संघर्ष किया वह भी देश में नशाबन्दी लागू करने के लिए तानाशाह बनने की बात सोचने के लिए मजबूर हो गया।

स्वतन्त्र भारत में मद्य निषेध को राज्य के नीति-निदेशक तत्वों में स्थान दिया गया है और मद्य-निषेध को सरकार का आवश्यक कर्तव्य बतलाया गया है। सबसे पहले कुछ राज्यों में मद्य-निषेध की घोषणा की गई। इन राज्यों में गुजरात, बम्बई आदि उल्लेखनीय हैं, परन्तु इस कार्य में विशेष सफलता न मिली और समय-समय

पर सरकार को अपनी नीतियों में परिवर्तन करना पड़ा। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद जब मोरार जी भाई मद्य-निषेध के कार्यक्रम को अवश्य ही लागू करेंगे, क्योंकि वे उसके प्रबल समर्थक रहे हैं। हुआ भी ऐसा ही। प्रधान मन्त्री ने सत्तारूढ़ होने के कुछ ही दिन बाद यह घोषणा कर दी कि चाहे जिन कठिनाइयों का सामना केन्द्र को करना पड़े, भारत में कुछ ही वर्षों में पूर्ण मद्य-निषेध कर दिया जायेगा। इस समय स्थिति यह है कि देश के अनेक भागों में मद्य-निषेध कर दिया गया है और जो भाग शेष रह गये हैं, उनमें भी शनैः शनैः चन्द वर्षों में पूर्ण मद्य-निषेध लागू हो जायेगा।

मद्य-निषेध की घोषणा का स्वागत—मद्य-निषेध की घोषणा को अत्यधिक जन-समर्थन प्राप्त हुआ। स्त्री समाज ने तो इसे अपने लिए वरदान माना और अनेक स्थानों पर शासन के इस काम की प्रशंसा की गई। गाँधीवादी विचारधारा के व्यक्तियों, विभिन्न राजनीतिज्ञों, मध्यम वर्गीय परिवार के लोगों और असहाय एवं निरापद सभी लोगों ने इसका समान रूप से स्वागत किया। कुछ ने तो यह मत व्यक्त किया कि स्वतन्त्र भारत में जितने भी क्रान्तिकारी कदम उठाये गये हैं उनमें सबसे अधिक क्रान्तिकारी कदम यही है। प्रधानमन्त्री ने यह आशा व्यक्त की कि पूर्ण मद्य-निषेध के बाद भारत की भावी पीढ़ियाँ इस कल्याण के कार्य से सदैव के लिए छुटकारा पा जायेंगी। विभिन्न धार्मिक संघठनों और सामाजिक संस्थाओं ने इस कार्यक्रम को खुले हृदय से स्वागत किया।

मद्य-निषेध कार्यक्रम की आलोचना—जहाँ मद्य-निषेध कार्यक्रम को व्यापक समर्थन मिला, वहाँ ऐसे व्यक्तियों की भी कभी नहीं जिन्होंने उसकी खुलकर आलोचना की है। अनेक बुद्धिजीवियों ने कहा कि यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन है। जनता पार्टी के एक बहुत बड़े नेता थे पीलू मोदी ने इसे अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर कुठाराघात माना और इसकी खुली आलोचना की। भारत के विभिन्न समाचार पत्रों में मद्य-निषेध कार्यक्रम के बिरोध के सम्वन्ध में अनेक बयान निकाले और देश के प्रधानमन्त्री ने खुलकर यह कहा कि अधिकतर अखबार वाले मदिरा का सेवन करते हैं और इसलिए वे मद्य-निषेध कार्यक्रम के विरोधी हैं। मद्य-निषेध कार्यक्रम की आलोचना यह कहकर भी की गई कि जहाँ एक आर यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन करता है वहाँ दूसरी ओर अव्यावहारिक भी है। पूर्ण नशाबन्दी लागू ही नहीं की जा सकती। इस कार्यक्रम की आलोचना यह कहकर भी की जाती है कि इससे तस्करी और चोरी को बहुत अधिक बढ़ावा मिलेगा। चोरी-छिपे मद्यपान किया जायेगा। मद्यपान के समर्थक यह भी कहते हैं कि मद्य-निषेध से अत्यधिक हानि होगी और सरकार एक बहुत बड़ी राशि जो आबकारी कर के रूप में प्राप्त करती थी, उसे खो देगी। इस घोषणा का उत्तर श्री मोरार जी भाई ने यह कहकर दिया कि यदि किसी अच्छे कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए शासन को आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है तो शासन उसके लिए तैयार है।

क्या पूर्ण नशाबन्दी सम्भव है ?—जहाँ यह प्रश्न बरबस उठता है कि क्या हमारे देश में पूर्ण मद्य-निषेध सम्भव है ? अनेक लोग इसका नकारात्मक उत्तर देते हैं। उनका कहना है कि विगत अनुभव से यह ज्ञात होता है कि जिन राज्यों में मद्य-निषेध किया गया है वहाँ शासन को सफलता नहीं मिली है और चोरी-छिपे मदिरा-पान होता रहा है। जब कुछ राज्यों में ही मद्य निषेध नहीं किया जा सकता तो समस्त भारतवर्ष में उसे क्योंकर लागू किया जा सकेगा।

कुछ व्यक्ति यह भी कहते हैं कि जहाँ मद्य-निषेध किया गया है वहाँ भी मदिरा का प्रयोग खुले आम हो रहा है।

मद्य-निषेध कार्यक्रम के विरोधी एक तर्क यह भी देते हैं कि मदिरा पान कोई आज से नहीं वरन् यह तो बहुत समय से प्रचलित है और थोड़ी मात्रा में मदिरा सेवन स्वास्थ्य के लिए वरदान ही सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में न तो मद्यपान पर अंकुश लगाया जाना चाहिए और न ही मद्यपान पर लगामा प्रतिबन्ध सफल ही हो सकता है। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह कुछ समय के लिये अपने को खोया रखना चाहता है और इस स्थिति में उसे मद्यपान की आवश्यकता होती है, इन परिस्थितियों में भारत में मद्य-निषेध कार्यक्रम कभी सफल नहीं हो सकता।

उपसंहार—मद्य-निषेध कार्यक्रम के सम्बन्ध में चाहे जितनी भी आशंकायें व्यक्त की जायें और उसकी चाहे जितनी अधिक आलोचना की जाय, परन्तु इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं है कि यदि कार्यक्रम को सफल बनाना है तो हम सब दृढ़ प्रतिज्ञ हो जायें तो यह कार्यक्रम अवश्य ही सफल हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता खुले हृदय से इस कार्यक्रम को सफल बनाने में जुट जाय। विभिन्न राज्यों की पुलिस इस सम्बन्ध में कठोर कदम उठाये और राजनेता स्वयं अपने चरित्र के द्वारा ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करें जिससे मद्य-निषेध कार्यक्रम में जनता की आस्था जागृत हो। हमारी कथनी और करनी में अन्तर न हो तो यह कार्यक्रम अवश्य ही सफल होगा और इसमें ही हमारी और आप सब की भलाई है।

मद्य निषेध कार्यक्रम की सफलता के सम्बन्ध में चाहे जितनी भी आशंकायें व्यक्त की जायें, परन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि यह एक क्रान्तिकारी कदम है और इसकी सफलता पर ही भारत की भावी पीढ़ी की उन्नति सम्भव है। हमारी पीढ़ी के बहुत से लोगों में भले ही नशे की आदत रही हो, परन्तु भविष्य मे जब कहीं नशे की वस्तुयें रहेंगी ही नहीं तो भारतीय समाज में धीरे-धीरे नशे की आदत दूर होती जायेगी और जिस दिन देश में पूर्ण नशाबन्दी हो जायगी वह दिन भारतीय इतिहास का सुन्दर दिन होगा। आवश्यकता इस बात की है कि मद्य-निषेध के कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिये सभी लोग प्राण-प्राण से जुट जायें। वर्तमान प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी इस दिशा में सक्रिय कदम उठा रही हैं।

२. अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष

रूपरेखा—

(१) भूमिका, (२) संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष, (३) अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष और भारत, (४) भावी योजनाएँ, उपसंहार।

भूमिका—बच्चा ईश्वर की अनुपम कृति है। उसके सौन्दर्य में ईश्वरीय सौंदर्य है। बच्चा चाहे धनवान का हो और चाहे निर्धन का, चाहे पूर्ण-आत्मा का हो और चाहे पापी का हो, चाहे गोरे का हो, चाहे काले का, हमें बर्बस आकर्षित कर लेता है। संसार का भ्रातृ-भाव यदि देखना हो तो बच्चों में देखिये। विश्वबन्धुत्व और मानव प्रेम की जो भावना बच्चों में दिखलाई देती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अमेरिका, इंगलैण्ड, रूस, भारत, मिश्र, जापान, अफगानिस्तान, इजराइल, सऊदी अरब यहाँ तक कि सभी देशों के बच्चों को एक साथ छोड़ दीजिये वह एक दूसरे में ऐसे घुल-मिल जायेंगे जैसे कि विभिन्न देशों के न होकर वह एक ही माता-पिता की सन्तान हों। बच्चों में देश, जाति, वर्ण, रंग आदि का कोई भी भेद भाव नहीं होता। मानव को प्रदान की गयी यह ईश्वरीय कृति धन्य है। १९७९ का वर्ष इस अनुपम वर्ष के कृति के रूप में मनाया जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष—संयुक्त राष्ट्र संघ संसार की एक ऐसी संस्था है जो केवल युद्धों को रोकने और मानव जाति को विनाश से बचाने में ही योगदान नहीं देती बल्कि मानव-जाति के उत्थान, पिछड़े हुए को उठाने, भूखों के पेट भरने और मानवी सभ्यता के विकास में भी इस संस्था का महान् योगदान है। इस संस्था के तत्वाधान में १९७९ का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय बाल—वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने संसार भर के बच्चों के उत्थान के हेतु अनेक योजनाएँ तैयार कीं और उन्हें कार्यान्वित करने के लिए जुटा हुआ है। संसार के विभिन्न देशों से अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने यह आवाहन किया है कि इस वर्ष बच्चों के कल्याण की विशेष योजनाएँ बनाई जाएँ। यों तो संयुक्त राष्ट्र संघ प्रतिवर्ष पिछड़े हुए देशों के बच्चों के लिए कुछ न कुछ सहायता कार्य करता ही है। उनके लिए दूध के डिब्बे, खाद्य सामग्री और दवाइयों के रूप में सहायता दी जाती है, परन्तु इस वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ व्यापक पैमाने पर यह कार्यवाही कर रहा है। बच्चों के उत्थान के लिए दूध, दवाई, खाद्य पदार्थ और अन्य वस्तुएँ मुफ्त भेजने के साथ ही इस बात के हेतु कदम उठाये गये हैं कि विभिन्न देशों के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार की प्रतियोगितायों के आयोजन किये जायें। विभिन्न देशों के बच्चे एक साथ मिल कर कुछ काम करें इसके हेतु भी कदम उठाये गये हैं और उठाये जा रहे हैं। जो गरीब देश हैं उनमें रहने वाले बच्चों की सुख-सुविधा की ओर विशेष ध्यान दिया जाए, ऐसा संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रयास रहा है। इस वर्ष से संसार के सभी देश इस बात के लिए

कटिबद्ध हो जायें कि वह अपने देश के बच्चों के उत्थान के हेतु हर सम्भव कदम उठायें। इसी उद्देश्य से यह अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष मनाया जा रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष और भारत—भारत एक अत्यन्त निर्धन देश है। यहाँ के हजारों लाखों बच्चों को दो जून भोजन नहीं मिल पाता। नन्हें-नन्हें बच्चे दूध के लिए बिलबिलाते रहते हैं। देश में भुखमरी का साम्राज्य है और इस पर मुसीबत यह है कि बच्चों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। उत्पादन तेजी से नहीं बढ रहा है। मगर बच्चों का उत्पादन तेजी से हो रहा है। ऐसी स्थिति में भारतीय जनता अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और उनके स्तर को ऊँचा उठाने के हेतु कैसे प्रयास कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आवाहन पर भारत सरकार ने देश के बच्चों के कल्याण के हेतु कुछ योजनाएँ बनाई हैं। गरीब जनता के मध्य दवाई और खाद्य पदार्थों के वितरण की भी व्यवस्था की गयी है। देश के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष में बच्चा उत्पन्न करने वाली महिलाएँ तीन माह के अवकाश के स्थान पर चार माह का अवकाश प्राप्त करेंगी। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और जो पिछड़े हुए क्षेत्र हैं उनके बच्चों की ओर शासन विशेष ध्यान देगा और इस देश में भी अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यताओं के अनुकूल मनाया जा रहा है।

भावी योजनाएँ—अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष केवल मात्र एक दिखावा ही बनकर न रह जाएँ इस बात का हमें प्रयास करना चाहिए। १६७६ का वर्ष समाप्त हो जायेगा, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष के मनाने के पीछे जो भावनायें हैं वे भावना हमारे जन-जीवन में सदैव व्याप्त रहनी चाहिए। इस वर्ष सभी देशों के नागरिकों को इस बात का प्रयास करना चाहिए कि संसार का बच्चा चाहे वह निर्धन का हो, चाहे धनवान का, चाहे गोरे के हों, चाहे काले के, चाहे पिछड़े हुए वर्गों के हों, चाहे उन्नति वर्गों के सभी बराबर हैं, सभी के लिए समान भोजन, शिक्षा और उन्नति का प्रयास करना सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है। भारत जैसे गरीब देश के लिए तो यह भी अधिक आवश्यक है कि यहाँ की शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की है कि बच्चों में भेद उत्पन्न कर देता है। इस शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन की विशेष आवश्यकता है। शिक्षा ही वह माध्यम है जो व्यक्ति को अच्छा नागरिक बनाने में योगदान देती है। जब देश में दोहरी शिक्षा व्यवस्था चल रही हो तो यह कैसे सम्भव है कि नागरिकों के मध्य भेद-भाव न हो। जब अच्छे स्कूल और म्युनिस्पिल्टी के स्कूल के बच्चे अलग-अलग दृष्टि से देखे जायेंगे तो उनका विकास भी अलग-अलग प्रकार से होगा। आवश्यकता इस बात की है कि इस व्यवस्था को समाप्त किया जाये। इस प्रकार की योजनायें बनाई जानी चाहिये कि जो सबसे गिरे हुए हैं उनके बच्चों को उन्नति करने का विशेष अवसर प्राप्त हो सके। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में संसार के उन्नत देशों का यह परम पुनीत कत्तव्य है कि वह निर्धन देशों के बच्चों के

लिए अधिक से अधिक धन दान में दें। अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी आदि ऐसे देश हैं जो संसार भर के बच्चों के लिए बाल-कल्याण की योजनायें चला सकते हैं। इन्होंने इस क्षेत्र में कुछ कार्य अवश्य किया है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि मानवी भावना का विकास समुचित मात्रा में किया जाये। संसार के धनवान देश निर्धन देश के बच्चों के भोजन, उनके रखरखाव और शिक्षा-दीक्षा के लिए आगे आ जायें तो इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि निकट भविष्य में संसार से गरीबी का वह भीषण रूप अवश्य समाप्त हो जायेगा जो आज अविकसित देशों में देखने को मिल रहा है।

उपसंहार—अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष केवल एक समारोह के रूप में नहीं मनाया जाना चाहिए। यदि यह केवल मात्र समारोह बन कर रह गया तो इससे कुछ भी भला होने वाला नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि इस योजना के पीछे जो पुनीत भावना कार्य कर रही है उसे संसार के सभी देशों की जनता अपने हृदय में आत्मसात् कर ले और उसके अनुसार कार्य करने में जुट जाये।

३. बढ़ती हुई महगाई

रूपरेखा—

(१) भूमिका, (२) महंगाई का स्वरूप, (३) महगाई क्यों, (४) महंगाई में वृद्धि के प्रमुख कारण, (५) समस्या का निदान, उपसंहार।

भूमिका—आज सर्वत्र एक ही चर्चा है। वस्तुओं के दाम निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। वे मध्यम आदमी की खरीद के बाहर होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में आदमी जिये कैसे? समाचार पत्र मूल्यों की वृद्धि से रंगे हुए दिखलाई पड़ते हैं। आज से कोई दस बर्ष पूर्व यदि कोई कहता था कि लौकी ५ रुपये प्रति किलो बिक रही है और हरा धनिया ११ रुपया प्रति किलो बिक रहा है तो लोग उसे पागल कहते, परन्तु आज स्थिति यही है। खाद्यान्नों, वस्त्रों और हर वस्तु के दाम निरन्तर बढते जा रहे हैं। तेल, गुड़, चीनी, नमक, मिट्टी का तेल, वनस्पति, पत्थर का कोयला आदि सभी कुछ चीजें महंगी हो गई हैं और जनता त्राहि-त्राहि करती जा रही है। वस्तुओं के दाम कितनी तेजी से बढ़ रहे हैं, यह इस बात से ही स्पष्ट है कि हर महीने यही रोना रहता है। वृद्धों की तो बात ही जाने दीजिये। वे तो उलझन में आकर यहाँ तक कह देते हैं कि इससे तो ब्रिटिश राज्य ही अच्छा था।

महंगाई का स्वरूप – महंगाई के स्वरूप पर आँकड़ों की सहायता से एक विहंगम दृष्टि डालने की आवश्यकता होगी। रुपये का मूल्य निरन्तर गिरता जा रहा है। आज रुपया का १९३५ ई० की तुलना में ४ पैसे के बराबर १९३९ ई० की तुलना में पांच पैसे के बराबर, १९४९ ई० की तुलना में २४ पैसे के बराबर रह गया है। थोक कीमत सूचनांक में निरन्तर वृद्धि हो रही है। १९३९ ई० से १९६०

ई० तक यह वृद्धि मंथर गति से थी। १९३९ ई० में जो वस्तु १०० रु० की मिलती थी, वह १९६० में ४६८ रु० की मिलती थी। आज वही वस्तु २००० रु० की मिलती है। इससे स्पष्ट है कि १९३९ ई० की तुलना में आज २० गुना मूल्य वृद्धि हो चुकी है।

महंगाई क्यों ?—यहाँ यह प्रश्न बरबस उठता है कि निरन्तर बढ़ती हुई महंगाई क्यों है ? यह एक ऐसी गुत्थी है जो निरन्तर उलझती जाती है। सबसे बडी गुत्थी रुपयों की पूर्ति एवं राष्ट्रीय आय अथवा कुल उत्पादन के बीच की है। इससे स्पष्ट होता है कि जब रुपयों की पूर्ति अर्थात् खर्च के हेतु पैसा उत्पादन से अधिक होता है तो कीमतें अवश्य बढ़ती हैं। भारत में १९५०-५१ में जहाँ मुद्रा पूर्ति की मात्रा केवल २०१७ करोड़ रुपया थी, वहाँ १९७०-७१ में वह बढ़ कर ७३२१ करोड़ रुपया हो गई। १९७९ ई० में वह १८००३ करोड़ हो गई। इसकी तुलना में राष्ट्रीय उत्पादन नहीं पढ़ पाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३-५ प्रतिशत, दूसरी योजना में ३-८ प्रतिशत. तीसरी में २-९ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।

पिछले ६ महीनों में मुद्रा पूर्ति तथा राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि पर एक सम्यक् दृष्टि डालने से यह स्पष्ट होता है कि १९७२-७३ में ९.६८४ करोड़ रुपये की मुद्रा पूर्ति हुई जो १९७१-७२ की तुलना में १७ प्रतिशत अधिक थी। इस वर्ष राष्ट्रीय उत्पादन ३४,६३५ करोड़ रुपये का हुआ जो १९७१-७२ की तुलना में १-४ प्रतिशत कम था। १९७३-७४ में मुद्रा पूर्ति ११,१७२ करोड़ रुपया हुई जो पिछले वर्ष की तुलना में १५ प्रतिशत अधिक था। राष्ट्रीय उत्पादन ३६,४१७ करोड़ हुआ जो पिछले वर्ष की तुलना में ५-२ प्रतिशत अधिक था। १९७४-७५ में केवल ११·९०७ करोड़ रुपये की मुद्रा पूर्ति हुई जो पिछले वर्ष की तुलना में ७ प्रतिशत अधिक थी। राष्ट्रीय उत्पादन ३६,५७२ करोड़ रुपये का हुआ जो पिछले वर्ष की तुलना में ०-४ प्रतिशत अधिक था। १९७५-७६ का वर्ष राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से पिछले वर्ष की तुलना में अधिक अच्छा रहा। इस वर्ष में मुद्रा पूर्ति में जो बढ़ोत्तरी हुई वह राष्ट्रीय आय की दर से केवल मात्र १-१ प्रतिशत अधिक थी। १९७५-७६ में १३;१४३ करोड़ रुपये की मुद्रा पूर्ति हुई जो ७४-७५ की तुलना में १० प्रतिशत अधिक थी, परन्तु राष्ट्रीय उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई। इस वर्ष राष्ट्रीय उत्पादन ३९,९१७ करोड़ रुपये का हुआ जो पिछले वर्ष की तुलना में ८·९ प्रतिशत अधिक था। १९७६-७७ में मुद्रा पूर्ति १५,६०९ करोड़ की हुई जो पिछले वर्ष की तुलना में १८ प्रतिशत अधिक था। राष्ट्रीय उत्पादन में कम वृद्धि हुई। इस वर्ष का राष्ट्रीय उत्पादन ४०,२५५ करोड रुपये का रहा जो पिछले वर्ष की तुलना में ०-४ प्रतिशत अधिक था। १९७७-७८ में मुद्रा पूर्ति १८,०८३ करोड़ रुपये की हुई जो पिछले वर्ष की तुलना में १६ प्रनिशत अधिक था। राष्ट्रीय उत्पादन केवल ४२ हजार करोड़ रुपये का हुआ जो पिछले वर्ष की तुलना में ४-३ प्रतिशत अधिक था। वर्ष १९७८-७९ में

भी कीमतों और मुद्रा पूर्ति की बीच तेजी से होड़ लगी रही। विशेष रूप से फरवरी, ७९ के बजट के बाद कीमतों की चढ़ाई ज्यादा सीधी हो गई है। २ वर्षों की कीमत स्थिरता को तोड़ कर ६ महीनों के भीतर कीमतें १५ प्रतिशत बढ़ गई हैं। थोक कीमतों का सूचनांक जनवरी, ७९ में १८५१ था, (आधार वर्ष १९७०-७१=१००) १६ महीने पहले जो १८५-१० रुपये का था वह २१६-२० रुपये हो गया। अनुमान यह लगाया जाता है कि यदि कीमतों में इसी गति से वृद्धि होती गई तो वर्ष ७९-८० यानी चालू वर्ष में कीमतें २५७-३० प्रतिशत तक बढ़ जायेंगी और अगर ऐसा हुआ तो यह वर्ष भारतीय अर्थ व्यवस्था के लिये ७२-७३ के बाद सबसे खराब वर्ष होगा।

महंगाई में वृद्धि के प्रमुख कारण—महंगाई क्यों बढ़ती जा रही है, यह स्पष्ट करते हुए हमने इसके प्रमुख कारणों का विवेचन किया है और यही कारण सर्वप्रमुख कारण है। जब राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि उचित मात्रा में नहीं होती तो महंगाई अवश्य बढ़ेगी। परन्तु इस कारण के अतिरिक्त अन्य कारणों ने भी महंगाई की वृद्धि में योगदान दिया है। निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या भी महंगाई के बढ़ने का एक प्रमुख कारण है। भारत की जनसंख्या में बड़ी तेज़ी से वृद्धि हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से आज जनसंख्या दूनी हो गई है और उत्पादन में वृद्धि इतनी तेजी से नहीं हुई है। इस स्थिति में महंगाई का बढ़ना स्वाभाविक है।

पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के औद्योगिक विकास का प्रयास किया गया, परन्तु औद्योगिक विकास इतनी तीव्र गति से नहीं हो सका जितनी तेजी से जनसंख्या में वृद्धि हुई। सरकार की योजना पर खर्चों में वृद्धि से उत्पादन बढ़ने के स्थान पर लोगों के पास खर्च के हेतु रुपया बढ़ा है। घाटे की अर्थ व्यवस्था ने उत्पादन मुद्रा पूर्ति को बढ़ावा दिया है और इसके फलस्वरूप महंगाई में वृद्धि हुई है।

महंगाई में वृद्धि होने का एक अन्य कारण यह भी रहा है कि हमारी योजनायें कुछ हद तक अव्यावहारिक रही हैं। उत्पादन आवश्यकतानुसार नहीं बढ़ाया जा सका है। देश की जनता का नैतिक चरित्र तथा देश के उत्थान के हेतु सक्रिय कदम नहीं उठाया गया है। नैतिक पतन के फलस्वरूप कामचोरी की भावना का विकास हुआ है और इस स्थिति में उत्पादन का गिरना तथा महंगाई का बढ़ना स्वाभाविक है। उत्पादन केन्द्रों पर होने वाली निरन्तर हड़तालों आदि ने भी उत्पादन पर दवाब डाला है।

महंगाई बढ़ने का एक अन्य प्रमुख कारण यह है कि कृषि की उपेक्षा रही है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां की ७० प्रतिशत जनता कृषि पर ही निर्भर करती है। कृषि के कार्य में अधिक लगे हुए लोगों की तुलना में औद्योगिक क्रान्ति पर किया जाने वाला खर्च कहीं अधिक है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हम औद्योगिक क्रान्ति की दिशा में तो आगे बढ़े हैं, परन्तु कृषि के क्षेत्र में अभी हमें वांछित

सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। भारतीय कृषि आज भी वर्षा का जुआ बनी हुई है। सिंचाई के वृहद् साधनों का विकास हम स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी नहीं कर सके हैं। कुछ बडे-बडे बाँध अवश्य बनाये गये हैं और सिंचाई आदि के लिए बहुत सी योजनायें तैयार की गई हैं, परन्तु उनमें से कुछ योजनायें केवल कागज पर ही रह गई हैं।

समस्या का निदान—बढ़ती हुई महँगाई की समस्या चाहे जितनी भीषण हो परन्तु इस समस्या का समाधान करना ही होगा। यह ठीक है कि प्रगति के साथ वस्तुओं के दाम अवश्य बढ़ते हैं और संसार में सर्वत्र महँगाई है, परन्तु भारत में जो महँगाई का भीषण रूप दिखलाई पड़ रहा हैं वह यहाँ की जनसंख्या की कमर तोड़े डाल रहा है। इस समस्या का समाधान करना ही होगा। इसके लिए चाहे जितने बलिदान क्यों न करने पड़ें। मूल्य वृद्धि की समस्या इतनी सरल नहीं है कि केवल मात्र सरकार ही सुलझा सकेगी। आम उपभोक्ताओं, व्यापारियों, समाज सेविकाओं-उद्योगपतियों, राजनीतिज्ञों सभी को एक जुट होकर कार्य करना होगा। सभी को अपने निहित स्वार्थ छोडने होंगे और राष्ट्रीय हित में कार्य करना होगा। देश के उत्पादन में तेजी से वृद्धि करनी होगी। देश के नागरिकों के काम के प्रति दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। "काम टालो" की भावना के स्थान पर "तेजी से काम करो" की भावना का विकास करना होगा, तभी मूल्य वृद्धि की समस्या को सुलझाया जा सकेगा।

हमें अपनी योजनायें भी इस प्रकार से लागू करनी होंगी कि मुद्रा स्फीति में कमी आये। कृषि के विकास की ओर विशेष ध्यान देना होगा। कृषि, लघु उद्योगों आदि कार्यों में तेजी लाई जानी चाहिए। जिला उद्योग केन्द्रों के जाल को मजबूत बनाया जाना चाहिए। यह कार्य तभी सम्भव होगा जब कि सभी प्रकार के उद्योगों को अपनी स्थापित क्षमता के बराबर उत्पादन की छूट दी जाये। रिजर्व बैंक को ऋण नियन्त्रण की अपनी नीतियों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखना होगा। अत्यधिक भुगतान नियन्त्रण रखना होगा। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को अधिक दृढ़ बनाने की आवश्यकता है। आवश्यकता पड़ने पर अनिवार्य वस्तुओं का आयात किया जा सकता है, परन्तु प्रयास यही रहे कि देश का उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहे।

मूल्य वृद्धि को रोकने के हेतु अब तक जो सरकारी प्रयास किये गये हैं वह अत्यन्त प्रभावहीन रहे हैं। उचित मूल्यों की दूकानों को खोलने से ही यदि मूल्य वृद्धि की समस्या सुलझ जाती तो मूल्यों की तेजी पर रोक पहले ही लग जाती। वास्तव में मूल्य वृद्धि को रोकने हेतु बहुमुखी प्रहार की आवश्यकता है। प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री श्री सी० एन० वकील ने इस सम्बन्ध में यह सुझाव दिया है कि एक अध्यादेश जारी किया जाना चाहिए जिसके द्वारा सभी कीमतों को वर्तमान स्तर पर रोक लगा दी जाय। साथ ही वेतन, मजदूरी, किराया, ब्याज आदि भी वर्तमान

स्थिति पर रोक लगाई जाय। हड़ताल को गैर कानूनी घोषित कर दिया जाय और इन बातों का पालन न करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाय। श्री वकील का यह सुझाव भले ही अव्यावहारिक कहा जाय, परन्तु एक न एक दिन ऐसा किया अवश्य जायेगा। मूल्य वृद्धि की समस्या का निदान युद्ध स्तर पर ही किया जा सकता है और यह युद्ध जितनी तेजी से लड़ा जाय उतना ही अच्छा होगा।

उपसंहार— यदि मूल्यवृद्धि की गति को न रोका गया तो हमारा अधःपतन निश्चित है। वेतन, मजदूरी आदि उसी अनुपात में कभी नहीं बढ़ती जिस अनुपात में वस्तुओं के दाम। हमें अपने टाले जा सकने वाले सभी व्ययों को रोकना होगा। घाटे की अर्थव्यवस्था को समाप्त करना होगा। सबसे अधिक बड़ी बात उस राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण करने की है जो महँगाई को रोकने में दृढ़तापूर्वक चट्टान की भाँति अड़ा रहे। जब तब मूल्यवृद्धि की समस्या का निदान युद्ध स्तर पर नहीं किया जाता, उत्पादन में तेजी नही लाई जा सकती। जनसख्या की बढ़ोत्तरी पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता और नैतिक चरित्र का उत्थान नही किया जाता तब तक हम अपनी प्रगति को चाहे जितना अधिक क्यों न कर लें, भूखा-भूखा ही रहेगा और राष्ट्र कभी भी उस शिखर पर नहीं पहुँच सकेगा जिसका स्वप्न हमारे देश के कर्णधारों ने स्वतन्त्रता के पूर्व देखा था। वर्तमान सरकार ने महंगाई रोकने के लिए बहुमुखी कदम उठाये हैं।

---

४. सातवाँ आमचुनाव और भारतीय लोकतन्त्र

रूपरेखा—

(१) प्रस्तावना (२) लोकतन्त्र का स्वरूप, (३) लोकतन्त्र की मान्यताएँ, (४) छठे आम चुनाव तक भारतीय लोकतन्त्र का स्वरूप, (५) सातवें आमचुनाव की पृष्ठभूमि, (६) सातवें आम चुनाव के मुख्य मुद्दे और चुनाव परिणाम, (७) लोकतन्त्र की समाप्ति— निराधार विचार, उपसंहार।

प्रस्तावना— सातवें आमचुनाव के परिणामों की घोषणा के पश्चात् राजनीतिक विचारकों और राजनेताओं के मस्तिष्क में भारतीय लोकतन्त्र की सफलता के सम्बन्ध में विभिन्न आशंकाएँ उत्पन्न हो रही हैं। राजनीतिज्ञों और राजनीतिक विचारकों का बहुत बड़ा वर्ग यह मानता है कि सातवाँ आमचुनाव भारतीय लोकतंत्र की सम्पुटता को व्यक्त करता है, परन्तु विद्वानों का एक वर्ग ऐसा है जिसकी यह धारणा है कि इस आम चुनाव के परिणामों की घोषणा के पश्चात् भारतीय लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में भारी परिवर्तन होगा। कुछ को यह आशंका है कि यहाँ की ससदात्मक व्यवस्था अध्यक्षात्मक व्यवस्थ' के अन्तर्गत परिवर्तित कर दी जायेगी और कुछ यह मत व्यक्त करते हैं कि अब भारत में भी अन्य पड़ोसी देशों की भाँति तानाशाही की प्रवृत्ति बढ़ेगी। विदेशी समाचार पत्रों ने भी इस आमचुनाव के परिणामों के पश्चात् मिश्रित प्रतिक्रिया व्यक्त की है। अधिकतर समाचार-पत्र इस आमचुनाव के परिणामों से यह निष्कर्ष निकाल रहे हैं कि भारत में लोकतान्त्रिक शासन और

अधिक सुदृढ़ होगा । परन्तु ऐसे समाचार-पत्र भी हैं जो यह आशंका व्यक्त कर रहे हैं कि ये आमचुनाव भारत के अन्तिम आम चुनाव होंगे और इसके पश्चात् संसदात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत आमचुनाव नहीं कराये जायेंगे । इन्हीं विरोधी विचारों के मध्य आज भारत का बुद्धजीवी खोया हुआ है ।

सातवें आमचुनाव की पृष्ठभूमि—छठे आम चुनाव में सफलता प्राप्त करने के पश्चात् जनता में फूट के लक्षण आरम्भ से ही परिलक्षित होने लगे । देश का प्रधान मन्त्री कौन हो, इसे लेकर अनेक पक्ष प्रस्तुत किये जाने लगे । श्री मोरारजी देसाई, श्री चरण सिंह और श्री जगजीवन राम सभी प्रधान मन्त्री पद के प्रत्याशी थे । जयप्रकाश बाबू के हस्तक्षेप के फलस्वरूप मोरार जी भाई प्रधान मन्त्री बने । कालान्तर में श्री जगजीवन बाबू और श्री चरण सिंह को उपप्रधान मन्त्री बनाया गया । सत्तारूढ़ होने के पश्चात् जनता पार्टी ने ४२वें संविधान संशोधन की अनेक धाराओं को ४३वें ४४वें संविधान संशोधन के द्वारा समाप्त कर दिया, उसका यह मत था कि ४२वें संविधान संशोधन की अनेक धाराएँ तानाशाही प्रवृत्तियों को जन्म देने वाली हैं । यह भी दावा किया गया कि कांग्रेस शासन में जो तानाशाही प्रवृत्तियाँ फलीभूत हो रही थीं, उन्हें कुचलने का प्रयास किया जा रहा है । श्रीमती गांधी और उनके सहयोगियों के क्रियाकलापों की जाँच के हेतु अनेक आयोगों का गठन किया गया और उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ की गयी । श्रीमती गांधी को बन्दी भी बनाया गया, परन्तु कुछ समय बाद वह रिहा कर दी गयीं । जनता-पार्टी कांग्रेस विरोध के एक मात्र नारे पर सत्ता में आई थी । उसे जनता ने नकारात्मक मत दिया था सकारात्मक नहीं । परन्तु इस दल के नेतागण उसे सकारात्मक मत समझने लगे । यही नहीं उनकी आपसी फूट दिन-प्रति-दिन बढ़ती गयी । आपसी फूट और दलबन्दी का परिणाम यह हुआ कि जनता, जनता पार्टी से दूर होती गयी, परन्तु नेताओं को इस का पता भी नहीं चला । वे अपने दलबन्दी में ही मग्न रहे । १९७९ ई० में जनता पार्टी की फूट अपनी चरम सीमा शिखर पर पहुँच गयी और श्री चरण सिंह अपने बहुत से साथियों के साथ इस पार्टी को छोड़कर चले गये तथा लोकदल नाम की एक नयी पार्टी का जन्म हुआ । केन्द्र में जनता पार्टी बहुमत में नहीं रही और फलस्वरूप श्री मोरार जी देसाई को त्याग-पत्र देना पड़ा एव श्री चरणसिंह ने साम्यवादी दलों एवं कांग्रेस (अर्स) के सहयोग से लोकदल की सरकार बनायी, श्री चरणसिंह को यह आशा थी कि उन्हें श्रमती गांधी, जो कि विभाजित कांग्रेस में कांग्रेस (इ) की अध्यक्ष थीं, का समर्थन प्राप्त होगा और वे स्थायी सरकार दे सकेंगे, परन्तु उनकी यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई । कांग्रेस (इ) ने उन्हें समर्थन देना बन्द कर दिया और फलस्वरूप श्री चरण सिंह को लोकसभा भंग करने और नये आम चुनाव कराने की सिफारिश राष्ट्रपति से करनी पड़ी । इसे राष्ट्रपति ने स्वीकार कर लिया एवं दिसम्बर १९७९ ई० में नये आम चुनाव कराने की घोषणा की गयी ।

सातवें आम-चुनाव के मुख्य-मुख्य मुद्दे और चुनाव परिणाम—सातवें आम चुनाव में सभी दलो की तलवारें कांग्रेस (इ), जिसकी अध्यक्ष श्रीमती इन्दिरा गाँधी थी की ओर खिची रहीं। आम चुनाव में कांग्रेस (इ) ने अधिकतर स्थानों पर अपने प्रत्याशी खड़े किये। उनका गठबन्धन केवल कुछ राजनीतिक दलों विशेष कर मद्रास की द्रविड़मुन्नेत्र कडगम से था। इसके पश्चात् जनता पार्टी ने सबसे अधिक प्रत्याशी खड़े किये। लोक दल ने कांग्रेस (अर्स) और साम्यवादी दलों के साथ चुनाव तालमेल बैठाया था। कहीं-कहीं उनकी मिली-जुली लड़ाई भी थी। बहुतांश राजनीतिक दल यह कहते थे कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को सत्तारूढ़ कर देने का अर्थ भारत से लोकतन्त्र की समाप्ति और तानाशाही की स्थापना है। जनता पार्टी कांग्रेस (इ) के राष्ट्रीय विकल्प होने का दावा कर रही थी उसका कहना था कि भारत की जनता तानाशाही प्रवृत्तियों से दूर रहकर उसे पूर्ण बहुमत प्रदान करेगी। लोकदल के नेता किसानों के मसीहा होने का दावा कर रहे थे। कांग्रेस (अर्स), जिसका प्रभाव दक्षिण भारत में अधिक था, यह दावा कर रही थी कि वह नेहरू और गांधी की नीतियों की तो समर्थक है परन्तु श्रीमती इन्दिरा गाँधी की तानाशाही प्रवृत्तियों की विरोधी है। इन सबसे भिन्न श्रीमती इन्दिरा गाँधी स्थायी सरकार बनाने का दावा तो कर ही रही थीं, साथ ही यह कह रही थीं कि आपातकालीन स्थिति की घोषणा केवल अराजकता को समाप्त करने के लिए की गयी थी और उनके सत्तारूढ़ होने के बाद अब आपात कालीन स्थिति की आवश्यकता नहीं रहेगी। वह अपने सभी भाषणों में देश की विगड़ती हुई अर्थ-व्यवस्था के लिए चिन्ता व्यक्त कर रही थीं और भारत की विदेशों में गिरती हुई प्रतिष्ठा का आरोप जनता पार्टी और लोकदल पर लगा रही थीं। उनका कहना था कि यदि उनको पूर्ण बहुमत मिला तो स्थायी सरकार की स्थापना होने के साथ ही गरीबी और बेरोजगारी दूर होगी, दैनिक जीवन की आम आवश्यकताओं के मूल्य स्थिर होंगे। राष्ट्र पुनः तेजी से आगे आर्थिक प्रगति की ओर जायेगा एवं विदेशों में भारत का सम्मान बढ़ेगा। जनता पार्टी ने हरिजनों को आकर्षित करने के लिए जगजीवन बाबू को प्रधान मन्त्री बनाने की बात कही, क्योंकि पिछले चुनाव तक हजिनों और अल्पसख्यकों के अधिकतर मत इन्दिरा गांधी को ही प्राप्त होते रहे थे। इधर लोकदल और उसके सहयोगियों ने श्री चरण सिंह को किसानों के मसीहा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। श्रीमती गाँधी जाति-व्यवस्था पर कुठाराघात करती रहीं। अल्पसंख्यकों और हरिजनों के हितैषी होने का दावा करती रहीं। ज्यों-ज्यों चुनाव निकट आता गया देश-विदेश के राजनेताओं की आँखें भारत के इस चुनाव की ओर लगती गयीं। देश के मतदाता अपना मन पहले ही बना चुका था। वह शान्त था परन्तु जनता पार्टी के आपसी कलह एवं देश में बढ़ती हुई मँहगाई के प्रति उसकी चिन्ता अत्यधिक थी। वह यह समझ रहा था कि स्थायी सरकार के बिना उसकी समस्याओं का निदान नहीं हो सकता। जनता पार्टी और लोकदल के नामों से वह प्रभावित नहीं हुआ

और एक बार उसने पुनः श्रीमती गांधी के नेतृत्व में अपनी आस्था प्रकट की। लोकसभा की ५४२ सीटों में से ५२५ के हेतु चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस (इ) को २।३ बहुमत प्राप्त हुआ। उसे ३५१ स्थान प्राप्त हुए। लोकदल को ४१, मार्क्सवादी साम्यवादी दल को ३५, जनता पार्टी को ३१, साम्यवादी दल को १०, द्रुमुक को १६, कांग्रेस (अर्स) को १३, अन्ना द्रुमक को २, अकाली दल को १, केरल कांग्रेस को १, मुस्लिम लीग को ३, नेशनल कान्फ्रेंस को ३ और अन्य दलों को १४ स्थान प्राप्त हुए। ४ निर्दलीय भी निर्वाचित हुए। श्रीमती गाँधी ने दक्षिण भारत में अपना प्रभाव अक्षुण बनाये रखा। आन्ध्र प्रदेश में उन्हें ४२ में से ४१ और कर्नाटक में २८ में से २७ स्थान प्राप्त हुए। महाराष्ट्र का बहुमत भी उनके साथ गया और उन्हें ४८ में से ३९ स्थान प्राप्त हुए दक्षिण में केवल केरल ही एक ऐसा प्रान्त जहाँ अन्य दलों की अपेक्षा कम स्थान प्राप्त हुए। तमिलनाडु में द्रुमुक के साथ गठबन्धन करके उन्होंने २० में से १९ स्थान प्राप्त किये और वहाँ सत्तारूढ़ अन्ना द्रुमुक को केवल १ स्थान प्राप्त हुआ। उत्तरी भारत में जहाँ छठे मास आमचुनाव में जनता पार्टी की आँधी के सम्मुख श्रीमती गाँधी का सफाया हो गया था, ने भी सातवें आम चुनाव में श्रीमती गाँधी की काँग्रेस (इ) को अपनाया। देश की राजधानी दिल्ली की ७ सीटों में से उन्होंने ६ पर विजय प्राप्त की। गुजरात, जो मोरार जी भाई का गढ़ समझा जाता थ।, पूरी तरह से ध्वस्त हो गया और वहाँ श्रमती गाँधी को २६ में से २५ स्थान प्राप्त हुए। हिमाचल प्रदेश के तीनों स्थानों पर उन्होंने कब्जा कर लिया। रजवाड़ों के क्षेत्र मध्य प्रदेश में उन्होंने ४० में से ३५ स्थान प्राप्त किये। पंजाब, उड़ीसा आदि राज्य भी पूरी तरह से उनके साथ गये। राजस्थान में उन्होंने जनता पार्टी का किला ध्वस्त कर दिया। देश का सबसे बड़ा राज्य उत्तर प्रदेश भी श्रीमती गाँधी का वरण करने को तैयार हुआ। यहाँ उनका मोर्चा लोकदल से लगा। जनता पार्टी का लगभग सफाया हो गया। यहाँ ८५ स्थानों में से ५१ स्थान श्रीमती को प्राप्त हुए लोकदल के गढ़ समझे जाने वाले बिहार और हरियाणा में भी श्रीमती गाँधी बहुमत प्राप्त करने में सफल हुईं। केवल पश्चिमी बंगाल में वह अपना सिक्का नहीं जमा सकीं। वहाँ उन्हें केवल ४ स्थान प्राप्त हुए जबकि ३७ स्थान साम्यवादी दल और उसके सहयोगियों को प्राप्त हुए। संक्षेप में सातवें आम-चुनाव के बाद श्रीमती गाँधी एक बार पुनः सम्पूर्ण भारत के अटल क्षत्र नेता के रूप में उभर कर आईं और प्रधान मन्त्री की बागडोर एक बार पुनः उन्होंने संभाली।

लोकतन्त्र की समाप्ति—निराधार विचार—सातवें आमचुनाव के परिणामों ने यह सिद्ध कर दिया कि जनता पार्टी लोकदल और साम्यवादियों का यह कथन है कि श्रमती गाँधी लोकतन्त्र को समाप्त कर देंगी, जनता को पसन्द नहीं आया। भारत की जनता ने उसे एक व्यर्थ की निर्मूल विचारधारा माना। पश्चिमो देशों के कुछ समाचार पत्रों की आशंकाओं पर अपनो मोहर लगाने के लिए भी भारतीय जन-मानस तैनार न हुआ। भारतीय जनता को अपनी लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था पर

गर्व है, परन्तु साथ ही वह राष्ट्र की प्रगति भी तेजी से चाहती हैं। उसकी यह मान्यता है कि त्वरित निर्णय लेने वाली स्थायी सरकार ही उसकी समस्याओं का समाधान कर सकती है और इसी उद्देश्य से उसने श्रीमती गाँधी को पुनः सत्तारूढ़ किया है। उधर श्रीमती गाँधी बार-बार यह घोषणा कर चुकी हैं कि भारत में लोकतन्त्र की समाप्ति की आशंका करना बकवास है। आपातकालीन स्थिति नहीं लागू की जायेगी। श्रीमती गाँधी द्वारा स्वयं छठे आमचुनाव की घोषणा किया जाना भी यह सिद्ध करता है कि लोकतन्त्रात्मक विचारधारा उनके हृदय में पूरी तरह से घर किये हुए हैं। सातवें आमचुनाव में अपनी विजय के पश्चात् भी उन्होंने यह कहा कि लोकतन्त्र से अच्छी कोई सरकार हो ही नहीं सकती और भारत की लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था अक्षुण्ण बनी रहेगी। उनका यह कहना कि वह अपने विरोधियों पर बदले की भावना से कोई कार्य नहीं करेंगी अपने विरोधियों के विचारों को भी उचित सम्मान देंगी, इस भावना को व्यक्त करता है कि भारत में लोकतन्त्र की समाप्ति की बात करने वाले पश्चिम के कुछ अखबार व्यर्थ की आशंका व्यक्त कर रहे हैं। पश्चिमी देशों में भी बहुतांश जनता और समाचार पत्र यह कह रहे हैं कि भारत में लोकतन्त्र को आधारशिला अत्यन्त सुदृढ़ है और उसे कोई भी शक्ति हिला नहीं सकती। जब सत्तारूढ़ दल की सर्वमान्य नेता, जिनके ऊपर लोकतन्त्र को समाप्त करने का आरोप लगाया जा रहा था, चुनाव जीतने के बाद और उसके पहले लोकतन्त्र की रक्षक बनने का दावा कर रही है, देश की जनता जिसके हाथ में सर्वोच्च शक्ति है, की आस्था श्रीमती गाँधी की लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में है और वह उनके ही हाथों में लोकतन्त्र के भविष्य की सुरक्षा मान रही है, तो क्योंकर यह आशका की जाती है कि यहाँ लोकतन्त्र को धक्का लगेगा। हमारी भी यही दृढ़ मान्यता है कि देश में सत्ता परिवर्तन हो या न हो, कोई भी दल सत्तारूढ़ हो, देश में लोकतन्त्र का भविष्य सुरक्षित है।

उपसंहार—गाँधी के देश भारत में लोकतन्त्र की समाप्ति की बात करना उचित नहीं है। गाँधी जी बुरे से नहीं, बुरे की बुराई से युद्ध करना चाहते थे, हमारे जनमानस में यह भावना घर करा गये हैं कि सभी देशवासी बराबर हैं। अम्बेडकर और राजेन्द्र बाबू आदि विद्वानों द्वारा बनाया गया भारतीय संविधान लोकतन्त्रात्मक ढाँचे की अनुपम मिसाल है। नेहरू, पटेल और आजाद के नेतृत्व में यह लोकतन्त्रात्मक फलीभूत हुआ है, लालबहादुर और श्रीमती गाँधी ने उसे नयी दिशा दी है। ऐसी स्थिति में हमारा लोकतन्त्र पूरी तरह से सुरक्षित है और इस लोकतंत्रात्मक व्यवस्था अपना कर ही अपने अधिकारों की माँग के साथ ही कर्तव्यों का पालन करते हुए, देश को आर्थिक प्रगति की ओर बढ़ाते हुए गरीबी और बेरोजगारी को दूर करते हुए, अल्पसंख्यकों और पिछड़े हुए लोगों के हितों की रक्षा करते हुए अपने लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत हम उन्नति करते रहें, यही हमारी ईश्वर से कामना है और हमें पूर्ण विश्वास है कि परमात्मा की कृपा से हम अपने इस कार्य में पूर्ण सफल होंगे।

५. साहित्य और समाज

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) साहित्य समाज का सम्बन्ध, (३) साहित्य और समाज का पारस्परिक विनिमय, (४) समाज का साहित्य पर प्रभाव, (५) साहित्य का समाज पर प्रभाव, (६) साहित्य समाज-सुधार का साधन, (७) साहित्य में समाज का जीवन, (८) उपसंहार ।

भूमिका

मनुष्य की चिन्तनशील प्रवृत्ति का परिणाम ही साहित्य के रूप में विकसित होता है । यह चिन्तन भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही होता है । साहित्य मानव-जीवन से जुड़ा है, कहीं भी वह मानव-जीवन से अलग नहीं है । उसका निर्माण मनुष्य अपने जीवन के लिए करता है । अतः साहित्य सामाजिक विषय है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अकेला नहीं रह सकता, उसने अपने जीवन में एकाकीपन तथा उदासीनता को मिटाने के लिए ही साहित्य का निर्माण किया है । यानी मनुष्य के समष्टि रूप का नाम ही समाज है । जिसमें व्यक्ति अंग रूप में अवस्थित है और साहित्य, मनुष्य के भाषाबद्ध विचार-प्रवाह का नाम है, अतः साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है ।

स्कॉट जेम्स ने लिखा है :

"Literature is the comprehensive essence of the intellectual life of nation."

अर्थात् 'साहित्य किसी राष्ट्र के बौद्धिक जीवन का व्यापक सार है ।' राष्ट्र की कल्पना समाज के बिना नहीं की जा सकती । अतः दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि साहित्य किसी समाज के बौद्धिक जीवन का व्यापक सार है । कविवर रवीन्द्र ने लिखा है, "सहित शब्द से साहित्य में मिलने (अर्थात् एक साथ होने) का भाव देखा जाता है । वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रंथ-ग्रंथ का, ही मिलन नहीं है अपितु मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अन्तरंग मिलन भी है, जो साहित्य के अतिरिक्त अन्य में सम्भव नहीं है ।" यही कारण है कि समाज के उत्थान अथवा पतन में साहित्य का बहुत बड़ा योगदान रहता है ।

साहित्य और समाज का सम्बन्ध—द्विवेदीजी के शब्दों में 'साहित्य समाज का दर्पण है' अर्थात् समाज का वास्तविक स्वरूप साहित्य में देखा जा सकता है। समाज-निर्माण के पश्चात् साहित्य का निर्माता होता है और दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। समाज का प्रभाव पहले साहित्य पर पड़ता है। फिर समाज स्वयं साहित्य से प्रभावित होता है।

समाज की विविध प्रकार की गतिविधियों का साहित्य में अंकन किया जाता है। देश, जाति, राष्ट्र, समाज तथा विश्व की उन्नति में साहित्य महत्त्वपूर्ण साधन का कार्य करता है। साहित्यकार अपनी सामग्री का चयन समाज के विस्तृत उद्यान से ही करता है। मानव-जीवन (जो समाज का अंग है,) से अलग साहित्य की कल्पना असम्भव है। साहित्य समाज के विभिन्न अंगों की प्रवृत्तियों की विवेचना करता है तथा उन्हें सुरक्षित रखता है। इसी प्रकार समाज भी यथाशक्ति साहित्य को सुरक्षित रखने का उपाय करता है। अतः साहित्य और समाज का सम्बन्ध अटूट और अमर है। भर्तृहरि ने कहा है 'साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।' मनुष्य की मनुष्यता का एक महत्वपूर्ण अंग साहित्य है तथा समाज की जीवनदायिनी शक्ति देने का कार्य इसी के द्वारा होता है। ठीक ही कहा है किसी कवि ने :

अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है॥

साहित्य को ज्ञान-राशि का संचित कोष भी कहा गया है। मनुष्य अपने विभिन्न प्रकार के अनुभवों को मस्तिष्क में संचित रखता है और समाज सम्बन्धी उन सामान्य और विशेष अनुभवों को वह साहित्य में व्यक्त कर देता है। इसी प्रकार साहित्य में संचित ज्ञान-राशि से समाज अपनी उन्नति का मार्ग बनाता हुआ आगे बढ़ता है। यही कारण है कि किसी विद्वान ने साहित्य को समाज का मस्तिष्क कहा है। इस प्रकार समाज की सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, परम्परा आदि का निर्देशक साहित्य है। यदि हमें प्राचीनकाल के भारतीय समाज का ज्ञान प्राप्त करना है तो उस समय का साहित्य देखना आवश्यक होगा। वेदों, पुराणों, प्राचीन नाटकों तथा तत्कालीन काव्यों को देखकर ही हम उस काल विशेष के समाज का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। तत्कालीन समाज का सुख-दुख, रहन-सहन, आचार-विचार सभी कुछ साहित्य में प्रतिविम्बत होता है। एक वाक्य में समाज की पूरी झाँकी तत्कालीन साहित्य में दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार साहित्य से समाज अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है। समाज हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि आदि असंख्य चरित्र-नायकों के जीवन से आज तक सत्य धर्म, त्याग, परोपकार आदि के निर्वाह और पालन के लिए प्रेरणा ग्रहण करता

रहा है। साहित्य और समाज का यह पारस्परिक विनिमय निरन्तर चलता रहता है।

समाज का साहित्य पर प्रभाव—वैदिक साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि समाज में प्रकृति-पूजा चलती थी। भारत कृषि-प्रधान देश है और उस युग में कृषि की उन्नति के लिए प्रकृति की प्रसन्नता अपेक्षित थी। इन्द्र, वरुण, उषा, सविता आदि देवों की कल्पना तथा उनकी विभिन्न प्रकार की अर्चना-विधियों आदि का वर्णन स्पष्ट बताता है। कि तत्कालीन समाज में बहुदेवोपासना तथा प्रकृति-पूजा का प्रसार था। कृषि-कार्य में गोवंश की अति उपयोगिता के प्रभाव से ही गाय का महत्व इतने विस्तार से कहा गया। इसी प्रकार वर्णाश्रम व्यवस्था का इतना व्यापक गुणगान तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव है। वीरगाथा काल की रचनाओं में श्रृंगार, प्रेम, युद्ध, मारकाट तथा अशान्ति के वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत का समाज विभिन्न राज्यों में बँटा था। शासकों में पारस्परिक मेल का अभाव था। वे स्वातन्त्र्य तथा जीवन के शान्त क्षणों में वैभव-विलास में लीन रहते थे। स्वाभिमान तथा राज्य की रक्षा के लिए लड़ना-मारना आसान समझते थे। उनके लिये राज्य का हित सर्वोपरि था। इसी प्रकार रीतिकाल का साहित्य तत्कालीन समाज-प्रवृत्तियों के चित्रण में समर्थ है। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में जैसा समाज था, उसका पूर्ण प्रभाव तत्कालीन कवियों तथा साहित्यकारों की रचनाओं पर पड़ा है। कला का जो विकास उस युग के समाज में हो रहा था उसका प्रभाव विहारी, देव आदि कवियों की वाणी पर भी स्वाभाविक ढंग से पड़ा। अतः पग-पग पर साहित्य समाज से प्रभावित होता रहता है।

साहित्य का समाज पर प्रभाव—साहित्य मनोवृत्तियों का ही भाषा-चित्र होता है तथा पाठक के हृदय को उपयुक्त अवसर पर प्रभावित करता है। यह प्रभाव प्रवृत्तियों पर पड़ता है और क्रमशः सम्पूर्ण समाज इससे प्रभावित होता जाता है। वैदिक काल के सरल कर्मकाण्ड ने क्रमशः वढ़ते-बढ़ते जटिलता को प्राप्त कर लिया। यज्ञों के सम्पादन काल में किये जाने वाले कवियों के वर्णन ने समाज में पशु-वलि को प्रोत्साहित किया। यहाँ तक कि नर-बलि की प्रथा चल पड़ी। समाज में क्रिया प्रतिक्रिया का क्रम चलता ही रहता है। कर्मकाण्ड की गूढ़ता, पशु-बलि की अधिकता तथा जाति-पाँति की कठोरता आदि सामाजिक तथ्यों ने गौतम के विचारों को झकझोरा। उन्हें सत्य, अहिंसा, गुरुजन सेवा आदि से सम्वन्धित साहित्य से प्रेरणा प्राप्त हुई और उन्होंने स्वयं एतद्विषयक साहित्य का निर्माण किया। इस प्रकार समाज क्रमशः उनके विचारों से सम्बन्धित साहित्य से प्रभावित हुआ और कालान्तर में इनके विचारों ने समस्त समाज को भी प्रभावित किया। भारत में वौद्धधर्म का

प्रचार इतना बढ़ा कि इतर धर्मों का नाम भी कम सुनाई पड़ने लगा। यह सब साहित्य का ही प्रभाव था, जिसने समाज को प्रभावित किया।

साहित्य का प्रभाव समाज पर विलम्ब से पड़ता है। रूसो, मार्क्स, गान्धी आदि मनीषियों के विचारों पर आधारित साहित्य आज समाज को द्रुतगति से बदल रहा है। स्वतन्त्रता, समानता, आत्मनिर्णय जैसी विचारधारायें समाज को साहित्य ने ही प्रदान की हैं। जिन बातों की कुछ दिन पूर्व कल्पना भी नहीं की जा सकती थी आज वे सामान्य तथा दैनिक उपयोग की बन गई हैं। साहित्य में वह शक्ति है जो समाज को प्रशिक्षण प्रभावित करतीं रहती है। साहित्य की प्रेरणा से समाज अपना रूप बदलता है और नवीनता प्राप्त करता है।

साहित्य समाज-सुधार का साधन है—साहित्य का निर्माण होता है समाज की घटनाओं के आधार पर। उसमें समाज की दशा तथा उनके स्वाभाविक परिणामों का वर्णन होता है। साहित्यकार अपने साहित्य में कल्पना का अपूर्व मिश्रण करके समाज को सुधारने का प्रयत्न करता है। उसकी रचनायें समाज के मस्तिष्क से चिन्तन-धारा की दिशा में मोड़ उत्पन्न करती हैं, तथा समाज उसी विचारधारा को क्रमशः 'मनसा' अर्थात् विचारों से फिर 'वाचा' अर्थात् वाणी से (भाषण में) तथा कर्मणा (कार्य रूप में) से ग्रहण करने लगता है। इस प्रक्रिया से वह अपनी त्रुटियों का सुधार करता है तथा धीरे-धीरे समाज में फैले हुए दुर्गुण नष्ट होते जाते हैं। साथ ही अन्य प्रकार के गुणों का विकास भी होता है। मानव-स्वभाव अवसर पाकर दुर्गुणों को भी ग्रहण कर लेता है या बढ़ा लेता है, जिसका सुधार फिर साहित्य के माध्यम से होता है, इस प्रकार साहित्य समाज-सुधार का साधन बनता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजों के शासन काल में भारत में जमींदारी प्रथा थी, किसानों मजदूरों का शोषण होता था, भारतीयों के साथ अनेक दुर्व्यवहार होते थे, समाज का एक बड़ा अंग अभिशापमय जीवन व्यतीत करता था। समाज का रूप विकृत हो गया था। फिर विचारधारा में परिवर्तन हुआ। साहित्य के विभिन्न रूपों में ऐसी रचनाएँ होने लगीं जिनमें कुरीतियों का नग्न चित्र खींचा गया, उनकी हँसी उड़ाई गयी, तथा समाज की भावी पीढ़ी के लिए भूमिका तैयार की गई। फलस्वरूप समाज के रूप में क्रमशः सुधार होता जा रहा है। इसी प्रकार विदेशियों के अत्याचार से पीड़ित जनता ने साहित्य से भक्ति और आध्यात्मवाद की प्रेरणा पाई तथा उसमें संघर्ष करने की शक्ति भी उत्पन्न हुई। इस प्रकार साहित्य युगों से समाज-सुधार का सफल साधन सिद्ध होता चला आ रहा है।

साहित्य में समाज की प्रेरक शक्ति रहती है—साहित्य निर्माण में कल्पना शक्ति का प्रधान हाथ है। समाज और साहित्य की घनिष्टता का मूल कारण हैं मानव प्रवृत्तियाँ। इन्हीं प्रवृत्तियों के संकेत पर दोनों का कार्य आगे बढ़ता है। समाज को प्रेरणा देने वाली शक्ति साहित्य में है। जो कार्य अस्त्र-शस्त्र, बल-पौरुष

तथा दबाव कठिनाई से भी नहीं हो पाता वही कार्य साहित्य से सरलतापूर्वक हो जाता है। किसी भी समाज को बदलने के लिए उसके साहित्य का बदलना आवश्यक है। साहित्य मे समाज के नेताओं के मन पर प्रभाव पड़ता है तथा वे क्रमशः अपनी गति-विधि में मोड़ लाते हैं। साधारण लोग जाने-अनजाने में बदलने लगते हैं तथा उनके विचारों को प्रेरणा-शक्ति साहित्य से मिलती है। साहित्य अनेक प्रकार की योजना-निर्माण में सहायक होता है और योजजानुसार अग्रसर होता रहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी लोग योजना ही बनाते हैं बल्कि जिस प्रकार मस्तिष्क अपनी योजनानुसार शरीर के विभिन्न अंगों से काम लेता है, उसी प्रकार समाज का बुद्धिजीवी वर्ग भी समाज को चलाता है। बिहारी के एक दोहे ने अकर्मण्य तथा विलासिता में लीन महाराज जयसिंह को कर्तव्य-परायण बना दिया। कायरों के हृदय में भी साहित्य वीरता भर देता है तथा मनुष्यों की विचार-धारा को बदल कर उन्हें नई दिशा प्रदान करता है। रूसो द्वारा निर्मित साहित्य ने संसार को प्रजातन्त्र की प्रेरणा दी तथा मनुष्यों में समानता और स्वतन्त्रता की भावना जगाई। गोस्वामी जी के साहित्य ने समाज में राम को ईश्वर रूप में रमाया और सामाजिक जीवन को व्यवस्थित किया। साहित्य का मुख्य ध्येय होता है आनन्द प्राप्त करना तथा समाज का मुख्यतम ध्येय है, आनन्द की खोज। अतः दोनों एक दूसरे के पूरक होकर विकास करते हैं तथा परस्पर प्रेरणा के स्रोत बनते रहते हैं।

उपसंहार—समाज का सांस्कृतिक ढाँचा अनेक कारणों तथा परिस्थितियों के प्रभाव से विकृत हो जाता है। उसके सुधार की अपेक्षा का अनुभव सभी करते हैं। जीवन के भौतिक और आध्यामिक दो पहलू हैं और उनके विकास से ही मानव-जीवन सुख, शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर सकता है। आज जीवन का एकाकी यानी भौतिकवादी विकास है। आज भौतिकवादी साहित्य का निर्माण अधिक हो रहा है, जतः समाज की उन्नति एकाकी है। आवश्यकता है आज आध्यात्मिक विचारधारा की, जिससे जीवन का चरमश्रेय (शान्ति) प्राप्त हो सके तथा एतदर्थ, आवश्यकता है, तत्सम्बन्धी साहित्य प्रसार की अन्यथा मानव-जीवन के परम आनन्द को नहीं प्राप्त कर पावेगा।

---

६. साहित्य में आदर्श एवं यथार्थ

रूपरेखा—

(१) भूमिका, (२) साहित्य का क्षेत्र, (३) जीवन की व्याख्या, (४) साहित्य में आदर्श का स्थान, (५) साहित्य का यथार्थ से सम्बन्ध, (६) साहित्य में आदर्श और यथार्थ का समन्वय, (७) उपसंहार।

भूमिका—अंग्रेजी के **'आइडियलिज्म'** के पर्याय के रूप में आदर्शवाद शब्द का प्रयोग होता है। आदर्श शब्द से आदर्शवाद बना है। आदर्श का अर्थ है—अनुकरणीय उदाहरण। इसमें मानव-जीवन की उच्च भावनाओं का योग रहता है। यही कारण है कि आदर्शवाद की दृष्टि बौद्धिक है। यह जीवन के सूक्ष्मतर मूल्यों को महत्व देता है, अतः इस दृष्टि से वह आध्यात्मिक होता है। साहित्य में किसी रूढ़ अर्थ में इस शब्द का प्रयोग नहीं होता। साहित्यिक आदर्शवाद में मानव जीवन के आन्तरिक पक्षों पर अधिक बल दिया जाता है। आन्तरिक पक्ष में आते है—मानसिक सुख, प्रसन्नता, आत्म सन्तोष आदि। आदर्श में जीवन की महान् प्रवृत्तियों की उच्चता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। जीवन का दूसरा पक्ष वाह्य-पक्ष है। इसमें जीवन की भौतिक आवश्यकताओं पर अधिक बल दिया जाता है। इसमें जगत् में स्थूल रूप से घटित होने वाली घटनाओं का चिन्तन और वर्णन यथार्थ के अन्तर्गत जाता है। हिन्दी-काव्य के प्रगतिवाद और प्रयोगवाद यथार्थवाद के अन्तर्गत हैं। इस प्रकार साहित्य में आदर्श और यथार्थ दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। दोनों जीवन के आन्तरिक और बाह्य दोनों पक्षों से सम्बन्धित हैं तथा दोनों ही उसकी व्याख्या करते हैं।

साहित्य का क्षेत्र—साहित्य का क्षेत्र अति व्यापक है। दवाइयों तथा सिनेमा के ब्योरों से लेकर जीवन और जगत की सभी वस्तुयें साहित्य का विषय बन सकती हैं। इस प्रकार कोई ऐसा विषय बचता नहीं, जिस पर साहित्य न लिखा जा सके। किन्तु साहित्य शब्द का प्रगोग सीमित अर्थ में रूढ़ हो गया है। इसका प्रयोग प्रायः जीवन से सम्बन्धित काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना आदि विषयों पर लिखी गई रचनाओं के लिए होता है। **साहित्य की व्यापक व्याख्या है—सहित + यय् प्रत्यय = साहित्य यानी शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव यानी साथ होना**। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र साहित्य होता है। इस व्यापक परिभाषा में मनुष्य के विचारों और भावों की समष्टि मुख्य है। बाद में इस शब्द का प्रयोग काव्य के लिए होने लगा। **भर्तृहरि** ने कहा है—**'साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाण हीनः'**। इस प्रकार साहित्य, संगीत और कला से खाली व्यक्ति को बिना पूँछ और सींग का पशु माना गया है। अन्य आचार्यों ने भी इस प्रकार का मत व्यक्त किया है तथा ऐसी ही साहित्य की परिभाषाएँ भी दी हैं। एक विद्वान ने जीवन को साहित्य कहा है। साहित्य का क्षेत्र व्यापक होने का एक मुख्य कारण यह भी है कि इस में आदर्श और यथार्थ का अद्भुत मिश्रण मिलता है। इसमें बाह्य और अन्तर जगत् दोनों की व्याख्या होती है।

साहित्य जीवन की व्याख्या के रूप में—साहित्यकार अपनी रचना में विश्व की अपेक्षित वस्तुओं का चयन करके उनका चित्रण तथा जीवन से उनके सम्बन्ध की व्याख्या करता है। प्रकृति-वर्णन तक को कवियों ने जीवन के लिए सापेक्ष

बताया है । प्रायः सभी साहित्यकार अपनी रचना में आदर्शवादी अथवा मिश्रित दृष्टिकोण अपनाते हैं । हिन्दी में **गोस्वामी तुलसीदास** तथा भक्तिकाल के अन्य कवियों की दृष्टि अधिकांशतः आदर्शवादी ही रही है । उनके सामने जीवन का एक आदर्श था । वे अपने तथा औरों के भी जीवन के लिए एक निश्चित लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति को ही अपना आदर्श मानते थे, उसी आदर्श पर चलने की वे राय भी देते थे । इसी आदर्श के कारण उनकी रचनाओं में आध्यात्मिक तथ्यों की अधिकता है तथा भगवद्-भक्ति की प्रधानता है । रीतिकाल में सामन्तवादी प्रवृत्तियों की प्रबलता के कारण आदर्शवाद का प्रश्रय नहीं मिल सका । यह युग ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति का था, अतः इसे यथार्थवाद भी नहीं कह सकते । वास्तव में **यथार्थवाद का प्रारम्भ भारतेन्दु-युग से माना जा सकता है,** जिसका रूप उत्तर-छायावाद काल की प्रगतिवादी रचनाओं में देखा जा सकता है । वे जीवन के व्यावहारिक पक्ष से ही अधिकांश में सम्बन्ध हैं । प्रयोगवादी कवि जीवन की जटिल समस्याओं से सम्बन्धित विविध प्रयोग में लगे दिखाये गये हैं, वे अन्वेषणकर्ता हैं । इस प्रकार ये लोग यथार्थवादी कहे जाते हैं । संक्षप में, पूरे साहित्य मे आदर्श और यथार्थ के वर्णन भरे पड़े हैं । कबीर का दृष्टिकोण अधिक यथार्थवादी कहा जाता है, परन्तु उनमें भी आदर्श की झलक आध्यात्मिक रूप में मिलती है । इस दृष्टिकोण के कवियों में दोनों का मिश्रित रूप प्राप्त हो सकता है । मुंशी प्रेमचन्द तथा अन्य उपन्यासकारों का साहित्य यथार्थवादी कहा जा सकता है । कारण उन लोगों ने जीवन के स्थूल और भौतिक तत्वों का विश्लेषण किया है । पर उसमें भी जीवन-क्रम के प्रति एक आदर्श है ही । इस प्रकार साहित्य कभी आदर्श और यथार्थ से खाली नहीं कर सकता । हाँ यह प्रायः देखा जाता है कि किसी युग में आदर्श की प्रधानता हो जाती है तो उसके बाद उसी की प्रतिक्रिया के रूप में यथार्थ की प्रबलता आ जाती है । इस प्रकार परिवर्तन होता रहता है । यदि आदर्शवाद सूक्ष्म कला को प्रश्रय देता है तो यथार्थवाद स्थूल कला का समर्थक है ।

साहित्य मे यथार्थवाद और यथार्थवाद का स्थान—साहित्य को विद्वानों ने चतुवर्ग फल प्राप्ति का यानी अर्थ धर्म, काम ओर मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना है । मानव-जीवन के ये ही प्राप्य विषय हैं । इसमें काम और अर्थ का सम्बन्ध भौतिकता से अधिक है तथा धम और मोक्ष का आध्यात्मिकता से । आदर्श का उपयोग धर्म और मोक्ष से अधिक सम्बन्धित है । मानव-जीवन में दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रवृत्तियों का मिश्रण है । दैवी सम्पदा को प्राप्त करने का साधन आदर्श से प्रेरित और अनुप्राणित होता है । हिन्दी-साहित्य के पूर्वमध्यकाल तथा छायावादी युग में आदर्श की प्रमुखता रही है । जीवम के लिए कवियों ने अनेक अनुकरणीय ओर मधुर विधामों की कल्पमायें की । उमके फलस्वरूप जीवन का चरम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति भी माना है । भक्तिकाल का भक्त-कवि अपने आराध्य देव से

समीप्य या आत्मीयता की स्थापना करके आनन्द प्राप्त करता था, तथा भौतिक जीवन से क्रमशः विरक्त होता जाता था। रीतिकाल में आदर्श और यथार्थ दोनों मिलते हैं, पर स्पष्ट रूप से किसी भी दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया गया है। फिर द्विवेदी-युग ने यथार्थवाद को आच्छादित कर लिया। 'हरिऔध', 'गुप्त जी', 'पाठक जी' आदि की कविताओं में यथार्थ की स्पष्ट झलक है, भागवत में कथा आई है कि इन्द्र ने कोप करके ब्रज पर प्रलयकारी भीषण जल-वृष्टि की कथा कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को उठाकर ब्रजवासियों तथा गोपालों की रक्षा की। इस घटना को उपाध्याय जी ने मोड़कर यों कह दिया कि कृष्ण जी उस भीषण जल-वृष्टि में इतनी तत्परता से सबकी रक्षा कर रहे थे कि लोगों ने कह दिया कि पर्वत को उठाये हुए हैं। यह कथन प्रस्तुत घटना का यथार्थवादी रूप है।

छायावादी युग में 'पन्त', 'प्रसाद', 'निराला', और 'महादेवी जी' ने फिर आदर्शवाद को कल्पनानुप्राणित रूप में अपनाया। इन लोगों की कविताओं में जीवन का एक दृष्टिकोण है, जो आदर्शवादी ही है। इनमें सौन्दर्य, दर्शन, राष्ट्रियता आदि तत्वों की प्रमुखता है, तथापि इन कवियों को आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता। इसी छायावादी खेवे के कवियों में 'पन्त', 'निराला' आदि अनेक ने आगे चलकर यथार्थवादी दृष्टिकोण अपना लिया। पन्तजी की 'ग्राम्या', और 'युगवाणी', निराला जी की 'वह तोड़ती पत्थर '' तथा 'भिखारी' आदि कविताएँ यथार्थवादी ही हैं। भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसा गाड़ी' आदि अनेक कविताएँ इसी कोटि की है। सक्षेप में आदर्श और यथार्थ से पूरा साहित्य भरा पड़ा है।

साहित्य में यथार्थ और आदर्श का समन्वय—साहित्य में यथार्थ और आदर्श का मिश्रण अधिक मिलता है। साहित्यकार अपनी रचना में वास्तविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का चित्रण करता है। उस घटना विशेष के लिए जो कारण तथा परिस्थितियाँ होती हैं, उनका यथातथ्य वर्णन करता है। इस प्रकार समाज के प्रायः सभी वर्गों की रूपरेखा खड़ी कर देता है। सभी वर्णन नग्न रूप में यथार्थ होते हैं। अब वह किसी पात्र द्वारा बातावरण निर्माण द्वारा आदर्श को चित्रित करता है तथा उसका समर्थ करके आदेश पालन का परिणाम आनन्दमय दिखाता है। इस प्रकार आदर्श एवं यथार्थ का मिश्रण साहित्य की अमूल्य निधि है। मुंशी प्रेमचन्द आदि के उपन्यास तथा अन्य सैकड़ों काव्य-ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं। जब साहित्यकार यथार्थ या आदर्श किसी एक की उपेक्षा कर देता है तो एकांकी होता है और उसे स्थायित्व तथा लोकप्रियता नहीं प्राप्त होतीं है।

उपसंहार—साहित्य जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति है। जीवन में आदर्श और यथार्थ दोनों एक साथ और अलग-अलग दोनों ही रूपों में मिलते हैं। जीवन से मानसिक तथा अध्यात्मक-विषयक कार्य-कलापों में आदर्श का ही महत्व है तथा उसका दृष्टिकोण आदर्शवादी होता है। इस दृष्टि से जीवन की उच्च भावनाओं तथा

पारलौकिक मान्यताओं का अधिक मूल्य होता है। साथ ही साथ जीवन की स्थूल भौतिक परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं होती। यथार्थ जीवन में विश्व की अनेक समस्याएँ आती हैं, जिनसे जीवन बराबर संघर्ष करता रहता है। इस संघर्ष का चित्रण साहित्य का एक मुख्य ध्येय है और होता है।

देवों की विजय, दानवों की हार का युद्ध होता रहा। यही देवासुर-संग्राम जीवन में क्षण-प्रतिक्षण चलता रहता है। आदर्शवाद के चरमबिन्दु पर पहुँचा हुआ यह देव-दानव दोनों का संग्राम ही मानव तथा उसके जीवन की व्याख्या है। यह साहित्य में आदर्श एवं यथार्थ है।

७. राष्ट्रभाषा और हिन्दी

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) राष्ट्र-भाषा के सामान्य गुण और हिन्दी, (३) भारतीय भाषाओं की अवस्था. (४) हिन्दी का वर्तमान रूप, (५) उसकी अन्य भाषाओं से अधिक व्यापकता, (६) वैज्ञानिकता, (७) हिन्दी की देवनागरी लिपि और उसकी भूमिका।

मनुष्य के विचार-प्रकाशन का साधन बोली है। साधारणतया सभी मनुष्य किसी न किसी बोली में परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। बोलियाँ साधारणतया मौखिक होती हैं तथा उनका क्षेत्र सीमित होता है। कतिपय मीलों के व्यवधान पर बोलियों के रूप में अन्तर आ जाता है। जब किसी बोली का क्षेत्र बढ़ जाता है और सामान्य साहित्य का उसमें निर्माण होने लगता है तब वह प्रान्तीय भाषा या विभाषा कही जाती है। विभाषा का निश्चित रूप होता है। विभाषा का क्षेत्र व्यापक होकर जब एक बड़े क्षेत्र को व्याप्त कर लेता है और उसमें उच्च साहित्य को रचनाएँ होने लगती हैं तो उसे भाषा कहा जाता है। भाषा का रूप नियमित व्याकरण द्वारा निर्धारित होता है। उसमें साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि विभिन्न प्रकार की रचनाएँ होती रहती हैं। किसी भी देश में अनेक भाषाएँ पनप कर फल-फूल सकती है पर उनका महत्व स्थानीय (प्रान्तीय) होता है। पूरे राष्ट्र के लिए एक भाषा की अपेक्षा होती है, जिसका क्षेत्र व्यापक हो, जिसमें अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान सम्बन्धी साहित्य का निर्माण हो सके। ऐसी भाषा को राष्ट्र-भाषा कहा जाता है। भारत एक महान् देश है, जिसमें अनेक राज्य (प्रान्त) हैं। हर राज्य की अलग-अलग भाषा है तथा उनका अपने में महत्व भी है। सारे देश की सभी भाषाएँ एक संस्कृत भाषा से ही सर्वाधिक प्रभावित हैं। राष्ट्र-भाषा के लिए आवश्यकता है एक ऐसी भाषा की जो संस्कृत के अधिक समीप हो तथा जिसका क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक हो। हिन्दी ऐसी ही भाषा है जो भारत की राष्ट्र-भाषा बन सकती है।

राष्ट्र-भाषा के साधारण गुण और 'हिन्दी'

'राष्ट्र' शब्द अँग्रेजी 'नेशन' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। देश की सामूहिक भावना को व्यक्त करने वाला साहित्य राष्ट्रीय-साहित्य कहा जाता है। भारत प्राचीन-काल से ऐसा देश रहा है, जिसमें विभिन्न राज्य सम्मिलित रहे। हैं। सब मे अपने देश के प्रति प्रेम, आदर और उसके प्रति त्याग की भावना रही है। किन्तु सभी राज्यों की सामूहिक भावना अभिव्यक्ति तत्कालीन संस्कृत भाषा में हुई यही कारण है कि संस्कृत भाषा में राष्ट्रीयता की भावना का वह रूप मिलता है, जिसे राष्ट्रीय भावना कहते हैं। हिन्दी के वीरगाथा काल में बाह्य आक्रमणों के कारण हिन्दू राष्ट्रीयता का विकास हुआ। पर संस्कृत उस काल से पूर्व भारत की राष्ट्र-भाषा रही। इसी प्रकार यूरोप में लैटिन, रोमन आदि भाषाएँ राष्ट्र-भाषा बनी रहीं। समय और परिस्थितियों ने पलटा खाया। राज्यों का विभाजन हुआ। फलस्वरूप उनकी संख्या बढ़ी तथा उनके प्रभाव में प्रान्तीय भाषाएँ राज्य विशेष की राष्ट्र-भाषाएं बनती चली गईं। फिर भारतेन्दु-युग में राष्ट्रीय-भावना का उदय नये रूप में हुआ। पुनः राष्ट्रीयता का व्यापक अर्थ लिया जाने लगा, तथा हिन्दी में राष्ट्रीय भावनाओं का विकास होने लगा। सन् १९४७ में भारत विभाजित राष्ट्र के रूप में स्वतन्त्र हुआ और उसे एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता हुई। उसमे निम्नलिखित गुणों की अपेक्षा हुई :

१—उस भाषा को प्रजातन्त्र भारत की अधिकतम जनता के लिए सुगम, गम्य तथा सरलता पूर्वक पठनीय होना चाहिए।

२—उस भाषा की लिपि तथा शब्दावली भारत के प्रत्येक भाग के लिए उपयोगी तथा अनुकरणीय हो सके।

३—संस्कृत भाषा के शब्द प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में मिलते हैं, अतः उस भाषा की प्रकृति संस्कृत के अधिक समीप हो।

४—उस भाषा मे ज्ञान, विज्ञान आध्यात्म आदि सभी विषयों को व्यक्त करने की क्षमता बढ़ायी जा सके।

५—उस भाषा का प्रयोग भारत की अधिकांश जनता करती हो।

इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हिन्दी ही कर सकती है। इसकी शब्दावली और लिपि इतनी सरल और वैज्ञानिक है कि सभी भारतीय इसको सरलतापूर्वक समझ और सीख सकते हैं। यह देखा गया है कि अन्य सुदूर प्रान्तों के लोग हिन्दी बोली जाने वाली भूमि में आकर स्वल्प-काल में ही इसे सीख लेते हैं और बोलने-समझने लग जाते हैं, पर अन्य प्रान्तों की भाषाओं के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई पड़ती है। इसी प्रकार यह भाषा अधिक उन्नत भी है। ज्ञान, विज्ञान आध्यात्म से सम्बद्ध विषयों का प्रतिपादन इसमे सरलतम ढंग से हो सकता है। इसकी व्यापकता भी अन्य प्रान्तीय भाषाओं से अधिक है। मिथिला से लेकर पंजाब तक

तथा विन्ध्याचल से उत्तर के पूर्व क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसकी प्रकृति संस्कृत से अधिक साम्य रखती है। अतः यह राष्ट्रभाषा के सभी सामान्य गुणों से युक्त है, तथा इसकी त्रुटियाँ सरलता से दूर की जा सकती हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं की अवस्था—अन्य सभी भारतीय भाषाओं का क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा बहुत सीमित है। उसकी लिपि तथा शब्दावली कठिन तथा एक-देशीय है। संस्कृत शब्द अन्य भाषाओं में जाकर अधिकतर बदले प्रतीत होते हैं। अन्य भाषाओं की प्रकृति भारत की चिर परिचित संस्कृत भाषा से भिन्न है। दक्षिण-भारत की भाषाओं का परिवार ही भिन्न है। इस प्रकार भारत की अन्य भाषाएँ प्रयत्न करने पर भी सम्भवतः हिन्दी जैसी सर्वग्राही नहीं बन पायेंगी अन्य भाषाओं में इतनी नमनीयता नहीं है, जो भारत की बदली हुई परिस्थिति के अनुसार उपयोगी बन सके। फिर भी प्रान्तीय भाषा के रूप में उनकी उपयोगिता अक्षुण्ण है। उनका संरक्षण और सम्वर्द्धन आवश्यक है।

हिन्दी का वर्तमान रूप—वर्तमान रूप में हिन्दी इतनी सर्वग्राही तथा नमनीय है कि वह प्रायः सभी प्रकार के प्रचलित भावों, ज्ञान-विज्ञान एवं प्रचलित शब्दों को अपनाने में समर्थ है। संस्कृत की सहायता से तथा विद्वानों के प्रयत्न से इसका शब्द-भण्डार अत्यन्त व्यापक तथा उवहुद्देश्यपूरक बनता चला जा रहा है। संस्कृत-साहित्य की व्याकरण सम्बन्धी जटिलता हिन्दी में घट गयी है। इस भाषा में 'राम-चरित मानस', 'सूर-सागर', 'बिहारी-सतसई', 'प्रिय-प्रवास' तथा 'कामायनी' जैसे ग्रन्थ बन चुके हैं। आज हिन्दी के प्रौढ़ विद्वान केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी मिलते हैं। अनेक विदेशी विश्वविद्यालय हिन्दी को अपने पाठ्यकम में पढ़ाते हैं।

भारत की सबसे बड़ी विशेषता यहाँ की सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता है। यहाँ तीर्थों में लंका से लेकर काश्मीर तथा पंजाब से बर्मा तक के लोग समान भाव से आते हैं तथा समान रूप से सम्मिलित होते हैं। वहाँ प्रान्तगत विभिन्नता के दर्शन नहीं होते। उनका कार्य हिन्दी-भाषी पण्डों और पुजारियों की टूटी-फूट शब्दावली से चल जाता है। रामेश्वर में उत्तर भारत के लोग जाते हैं, पर उनमें भाषाओं से हिन्दी में अधिक हैं। अतः हिन्दी में ही राष्ट्रभाषा होने की सर्वाधिक योग्यता है।

वैज्ञानिकता—हिन्दी-भाषा में वैज्ञानिक तत्वों को ग्रहण करने की अधिक क्षमता है। विज्ञान प्रयुक्त शब्दावली का निर्माण हिन्दी में सरलतापूर्वक हो सकता है, कारण यह है कि आधुनिक विज्ञान की शब्दावली प्रायः अंग्रेजी भाषा में ही है। हिन्दी और अंग्रेजी की प्रकृति समान है। दोनों भाषाएँ एक ही परिवार से विकसित हुई है। यही कारण है कि वैज्ञानिक शब्दावली हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में वन गई है। साथ ही गणित और ज्योतिष में ऐसे अनेक शब्द हैं, जो ज्यों के त्यों

विभक्ति हटाकर हिन्दी में ग्रहण कर लिए जाते हैं और अनेक ग्रहण भी कर लिए गए हैं। हिन्दी में विभक्तियां अलग से लगाई जाती हैं, अतः ग्रहीत शब्दों में विकार कम आता है और वे अपेक्षित विषय के लिए अभिलषित अर्थ में प्रयुक्त हो जाते हैं अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के शब्दों को भी अपने व्याकरण के अनुसार शासित करके अपनाने में हिन्दी की क्षमता सर्वाधिक है। आध्यात्मिक ज्ञान सम्बन्धी साहित्य हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में है। संक्षेप में यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी अधिक वैज्ञानिक भाषा है।

हिन्दी की देवनागरी लिपि और उसकी उपयोगिता—देवनागरी लिपि का क्रमिक विकास ध्वनि के उच्चारण में स्वास से निकलने से जो क्रम बनता है उसी के आधार पर हुआ है। इसका प्रारम्भिक रूप मोटे तौर पर रख दिया गया था। ज्यों-ज्यों विद्वानों ने इस विषय पर सूक्ष्मता से विचार किया, त्यों-त्यों इसका रूप सुन्दर और अधिक वैज्ञानिक होता चला गया। अपने वर्तमान रूप में यह लिपि सर्वाधिक प्रभावशाली तथा वैज्ञानिक है। इस लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी शब्द के उच्चारण में जितनी ध्वनियों का जितना अंश प्रयोग में आता है उतना ही लिखा जाता है। किसी की आवश्यक ध्वनि नही लिखी जाती और न आवश्यक ध्वनि का अभिप्रेत अंश छोड़ा जाता है। इस लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए संकेत बना हुआ है। अतः जो कुछ लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है। उच्चारण काल के अनुसार स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ और लुप्त तीन रूपों के लिए अलग-अलग संकेत प्रयुक्त होते हैं। इस लिपि में प्रायः सभी ध्वनियों के लिए अलग-अलग संकेत बने हैं। मात्राओं के रूप में स्थिरता तथा वैज्ञानिकता है। व्याकरण प्रायः संस्कृत व्याकरण सूत्रों के आधार पर बना है, अतः वहाँ भी स्थिरता तथा एकरूपता बनी रहती है। अंकों के रूप में सुडौलता तथा वैज्ञानिकता है। हिन्दी में लिपि की यह सबसे बड़ी विशेषता है। अँग्रेजी तक में अपवादों का राज्य है, पर इसके व्याकरण में अपवादों का प्रायः अभाव है। अतः हिन्दी-भाषा की लिपि अधिक उपयोगी है। इसी लिपि में संस्कृत, पाली, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाएँ लिखी गई हैं। इसी से मिलती-जुलती लिपि में बंगला, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तीय भाषाएँ लिखी जाती हैं। अतः यह गुण भी हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के योग्य बनाता है।

उपसंहार—ऊपर के विवेचन में यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत जैसे विशाल राष्ट्र के लिए जिसमें अनेक जाति, धर्म और परस्पर को मानने वाले लोग बसते हैं, जहाँ अनेक प्रान्तीय भाषाएँ बोली और पढ़ी-लिखी जाती हैं, हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है।

८. हिन्दी-साहित्य में प्रकृति-वर्णन

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) हिन्दी-साहित्य में प्रकृति-चित्रण के ढंग, (३) आलम्बन, उद्दीपन, तथा अलंकार रूप में, (४) प्रकृति उपदेशक रूप में, (५) प्रकृति साहित्य की पूरक, (६) उपसंहार ।

भूमिका

संसार में हर देश के साहित्य में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। साहित्य मात्र को प्रकृति से निरन्तर प्रेरणा मिला करती है। साहित्य वास्तव में प्रकृति की अनुकृति के रूप में मिलता है। ईश्वर की इच्छा की अनुकृति सृष्टि मानी गई है, जिसका प्रमाण वैदिक मन्त्रों में मिलता। **'एकोऽहं बहुभविष्यामि, में मनं न रोचते,** इति श्रुतिः (भगवान की इच्छा होती है कि मैं एक से अनेक होऊँगा. अकेला मेरा मन प्रसन्न नहीं है।) तदनुसार सृष्टि का क्रमिक विकास प्रारम्भ हो जाता है। अतः सृष्टि भगवदेच्छा की अनुकृति हुई। साहित्यकार अपनी सृष्टि को नैसर्गिक सृष्टि की अनुकृति के रूप में उपस्थित करता है, अतः उसका सृष्टि (साहित्य अनुकृति (सृष्टि) की अनुकृति होती है। स्वाभाविक रूप से अनुकृति में बनावट या कलात्मकता का समावेश हो जाता। सृष्टि में भी तो अन्यतम कलाकार की अपूर्व कला का चमत्कार हर जगह दृष्टिगत होता है। साहित्य में प्रकनि-वर्णन का बड़ा महत्व है। यदि साहित्यकार प्रकृति की समीक्षा नहीं करेगा, तो वर्ण्य-विषय कहाँ से मिलेगा। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य में प्रकृति का व्यापक अर्थ हुआ हिन्दी-साहित्य का वर्ण्य-विषय। पर प्रकृति अपने संकीर्ण अर्थ में जड़ प्रकृति की बोधक होती है और यहाँ सीमित अर्थ ही लिया जाएगा।

हिन्दी-साहित्य में प्रकृति-वर्णन के रूप—प्रकृति (जड़ प्रकृति) में नदी, पर्वत, वन, उद्यान, कुंज, प्रातः सायं वेला, स्वर्णिम आकाश, पर्वतों से कल-कल ध्वनि में गिरने वाले जल-प्रपात, खेतों में लहलहाती हुई हरी-भरी फसल, ग्रीष्म की जलती हुई दोपहरी, शीत का कड़ाके का जाड़ा, शरद, बसन्त की नैसर्गिक शोभा, चन्द्र किरणों का नृत्य आदि सहस्रों वस्तुओं वस्तुएँ आती हैं। साहित्यकार अपनी परिस्थिति के अनुसार उपर्युक्त वस्तुओं का यथा अवसर चयन करता है, तथा साहित्य में उनका वर्णन करता है। इसी वर्णन में प्रकृति की कला को निखरने का अवसर प्राप्त होता है। साहित्यकार की प्रकृनि में भावात्मकता का योग होने से सजीवता आ जाती है।

हिन्दी साहित्यकारों ने प्रकृति को अनेक रूपों में देखा है—(१) आलम्बन रूप में, (२) उद्दीपन रूप में। इन्हीं दोनों रूपों का क्रमशः विवेचन आगे किया जायेगा।

आलम्बन रूप में प्रकृति-वर्णन—कवि और साहित्यकार जब प्रकृति को देखकर उसमें लीन होकर, उसका सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं तथा उसकी विभिन्न गतिविधियों का अंकन करते हैं, उसके हर परिवर्तन पर आनन्दानुभाव करते हैं, तो वह वर्णन आलम्बन रूप वर्णन कहा जाता है। उस वर्णन का आधार प्रकृति को ही बनाया जाता है। उसका उद्देश्य प्रकृति का संश्लिष्ट वर्णन होता है। यह वर्णन प्रबन्ध-काव्यों तथा नाटकों, उपन्यासों और कहानियों में पृष्ठभूमि या रंगमंच के रूप में किया जाता है। उस प्रकृति-वर्णन में प्रकृति का यही रूप ग्रहण किया जाता है जो भावी कथा-प्रसंग के अनुकूल होता है। 'प्रिय प्रवास'' के प्रथम सर्ग को 'हरिऔध' जी ने सन्ध्या काल के अस्त होते सूर्य के वर्णन से प्रारम्भ किया है :

'दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित ही चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-बल्लभ की प्रभा।'

इस प्रकार का वर्णन कर कवि ने प्रकृनि का ऐसा वातावरण बनाया है कि प्रिय-प्रवास में उत्पन्न चेतना की पृष्ठभूमि सुन्दरता से बन गई है। इसी प्रकार कवि ने वर्षा का वर्णन किया है :

'हिलने लगे मृदु मन्द समीर के,
सलिल बिन्दु गिरा सुठि अंक में।
महि में थे न किसका मन मोहते,
जल धूले दल पादप पुंज, के ॥'

वर्षा के जल से सद्य धुले वृक्ष समूह के पत्तों की नोंक से टपकते जल बिन्दुओं की सुन्दरता को कवि ने कितनी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उन जल-विन्दुओं के शीघ्र पात में समीर का लगना कितनी स्वाभाविकता के साथ दिखाया गया है ? इस प्रकार के चित्र संस्कृत-साहित्य में अत्यन्त संश्लिष्ट रूप से खींचे गये हैं। महर्षि वाल्मीकि ने किष्किन्धा काण्ड में शरद्-चन्द्रिका चित्रित रात्रि को कितनी सुन्दरता से शुक्लाम्बर-धारणी नारी के समान चित्रित किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य में नारी की उत्प्रेक्षा दर्शनीय है :

'रात्रिः शशांकोदित सौम्यवक्त्रा तारांगणोन्मीलित चारु नेत्रा।
ज्योत्स्नांसुक प्रावरण विभाति नारीव शुक्लांशुक संवृत्तांगी ॥

अर्थात् 'सौम्य उदित चन्द्र मुख वाली, तारागणों के रूप में सुन्दर नेत्रों को खोलने वाली और चन्द्र-ज्योत्सना के सुन्दर वस्त्र में शरीर को सजाए हुए रात्रि श्वेत रेशमी वस्त्र-धारणी नारी के समान सुशोभित हो रही है।' कवि ने प्रकृति में नारी की उत्प्रेक्षा की है और साम्य बैठाया है। प्रकृति मानव-हृदय पर प्रभाव डालती है

अतः ऐसी शुक्लांशुक धारिणी सुन्दर रात्रि तत्सम नारी (सीता) की स्मृति को राम के हृदय में जगा रही है।

उद्दीपन रूप में प्रकृति-वर्णन—प्रति-वर्णन का दूसारा रूप उद्दीपन रूप होता है। इस वर्णन-प्रणाली में प्रकृति मानव-हृदय की सुखात्मक भावना, अधिक आनन्ददायिनी, प्रकृति के योग से बन जाती है तथा वियोग और दुःख की भावना अधिक तीव्र हो जाती है। 'लखि चैत की चाँदनी चाह भरी चर्चा चलिवे की चलाइए ना' इस एक ही पंक्ति में कवि ने प्रकृति में मानव-हृदय के अनुकूल 'चाह' की कल्पना की है। मानो प्रेम-मिलन की चाह जो प्रेमी हृदय में बढ़ रही है, उसी का समर्थन चाँदनी रात कर रही है। प्रकृति की मनोहर क्रीडास्थली हृदय में प्रेम की भावना को उद्दीप्त करती दिखाई जाती है। उदाहरण के लिए पदमावत में जायसी का 'षटऋतु वर्णन' रामचरित मानस में 'पुष्प वाटिका का वर्णन' सूरदास जी का 'रास-वर्णन' तथा 'कामायनी' के 'वासना' सर्ग का प्रकृति-वर्णन आदि सभी स्थानों में प्रकृति मानव-हृदय की सुखात्मक भावना को उत्तेजित करती दिखाई गई है। ऐसे प्रसंगों में प्रकृति का सौन्दर्य हृदय में गुदगुदी पैदा करता है और हृदय का उन्माद बढ़ाता है। इसी प्रकार दुखात्मक भावना का उद्दीपन प्रकृति-वर्णन द्वारा कराया गया है। मेघाच्छन्न आकाश है, कभी-कभी चन्द्रमा बादलों में झांक भी लेता है, प्रकृति का अपूर्व रूप है। किन्तु सूर की गोपियों के लिए वह रात्रि काली नागिन सी बन जाती है। इतना ही नहीं बल्कि उसका पूरा प्रभाव भी कवि ने दिखाया है :

> "पिया बिनु नागिन कारी रात।
> कबहुँक जामिनि उगत जुन्हैया डसि उलटी होय जात॥"

इन दो पंक्तियों में रात्रि इतनी विषैली बना दी गयी है कि वह काली नागिन बनकर काटती है। तथा कभी क्षण भर के लिए चन्द्र-प्रकाश के रूप में उलट कर अपने पेट के सफेद भाग को दिखा देती है, तथा पूरा विष वियोगनियों पर चढ़ जाता है। कभी वह विरह-व्यथा मिटाने के लिए वीणा बजाने लगती है तो चन्द्रमा का रथ और भी रुक जाता है, क्योंकि रथ वाले मृग मोहित हो जाते हैं। जायसी का 'बारह मासा वर्णन' में प्रकृति को उद्दीपन रूप बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है। तुलसी ने राम का मन भी वर्षा काल में प्रिया के वियोग से डरने लगता है। रीति-कालीन कवियों के लिए तो प्रकृति का ही काम है—संयोग या वियोग (दुःख) को बढ़ाना। प्रकृति को देखकर विगत संयोग-कालीन घटनाएँ स्मृति रूप हृदय-पटल पर अंकित हुआ करती हैं। उन स्मृतियों में विरह-दुःख और भी बढ़ जाता है। सम्भवतः इसी से खीझ कर बाबा केशवदास ने वर्षा को कालिका के समान कह दिया है। द्विवेदी-युग में प्रकृति को आलम्बन रूप में देखा गया, किन्तु रीति-कालीन छाया हट न सकी। गुप्त जी के 'साकेत', पाठक जी की कविताओं और 'प्रिय प्रवास' आदि प्रायः

सभी काव्यों में दोनों रूपों में प्रकृति-चित्रण किया गया। वर्तमान युग में प्रकृति को चेतन तथा भावमय रूप में चित्रित किया गया है, पन्त की 'छाया', 'किरण', 'बादल' आदि कविताएँ इसी प्रकार की हैं। 'प्रसाद' जी ने 'मदिर-माधव यामिनी' का धीर पद विन्यास देखा, तो महादेव जी ने 'मैं नीर भरी दुख की बदली' कहा। 'इतना ही परिचय इतना ही इतिहास यही, 'उमड़ी कल थी वह आज चली' कहकर उन्होंने जीवन की एक झलक भी दिखाई। इस प्रकार हिन्दी-साहित्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप में बहुत अधिक चित्रण हुआ है।

उपमान रूप में तो प्रकृति अनन्त काल से प्रयुक्त होती रही है। वैज्ञानिक जगत में चन्द्रमा चाहे सुन्दर माना जाय या कुरूप पर साहित्य में तो चिरकाल से अब तक वह सुन्दर मुख का उपमान बनता चला आ रहा है। प्रकृति के साम्य के आधार पर उपमान चुने जाते हैं। मानव शरीर के विभिन्न अंगों की समता में प्रकृति को टटोला जाता है।

हिन्दी साहित्यकारों ने भी अन्य साहित्यकारों की भाँति प्रकृति से सहायता लेकर अपने अलंकारिक वर्णनों को सजाया है। वास्तव में यदि प्रकृति से उपकरण नहीं लिए जाते तो साहित्य में कलात्मकता आ ही नहीं पाती। एक रूप देखिए:

"सघन कुंज, छाया सुखद, शीतल-मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वहि जमुना के तीर।।—'बिहारी'

इस दोहे में कवि ने प्रकृति के वर्णन में 'चार चाँद लगा' दिया है। प्रकृति की सुन्दरता में मन उस जमुना के किनारे वही हो जाता है। यहाँ 'ह्वै' और 'वही' दोनों शब्दों मे अनेक भावनायें भरी हुई हैं। स्मृति का भण्डार है, तथा मनोवृत्तियों की निधि है।

उपसंहार—साहित्य को सृष्टि की अनुकृति कहा गया है। चेतन और जड़ प्रकृतियाँ सृष्टि में अलग-अलग रहती हैं। हर प्राणी अपने पोषण के लिए प्रकृति से ही विभिन्न वस्तुओं को प्राप्त करता है। जड़ प्रकृति का पोषण और वर्द्धन प्रकृति से ही होता है। साहित्य जड़ और चेतन प्रकृतियों का समन्वय कर देता है। यह दोनों दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों को भावात्मक बना देता है। हिन्दी-साहित्य ने प्रकृति को उपदेशक रूप में भी अपनाया है। उसे प्रकृति से ज्ञान भी मिला है। कबीर दास का प्राकृतिक वर्णन, गोसाई तुलसीदास का वर्षा-शरद-ऋतु वर्णन आदि ऐसे ही वर्णन हैं। अतः हिन्दी-साहित्य में प्रारम्भ से ही प्रकृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

---

९. विद्यार्थी जीवन और राजनीति

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) विद्यार्थी के कर्त्तव्य, (३) राजनीति का अभिप्राय, (४) विद्यार्थी का राजनीति से सम्बन्ध, (५) राजनीति से लाभ हानि, (६) उपसंहार।

भूमिका—विद्यार्थी-जीवन में प्रायः सभी प्रकार की बातों का अध्ययन अनिवार्य होता है। यह जीवन ही ज्ञान प्राप्त करने का है। स्कूलों और कालेजों की कक्षाओं में विज्ञान, साहित्य,कला, इतिहास, मनोविज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि सभी प्रकार के विषय पढ़ाये जाते हैं, उन्हीं में राजनीति भी एक विषय है। कतिपय छात्र राजनीति का विषय अपनी बी० ए० तथा तत्समकक्ष कक्षाओं से लेते हैं। इस अध्ययन का ध्येय परीक्षा में उत्तीर्ण होना होता है। पर आज के युग में राजनीति एक ऐसा विषय बन गया है कि खेत में काम करने वाले मजदूर से लेकर कॉलेज के विद्यार्थी तक तथा गाँवों की अशिक्षित जनता से लेकर बड़े-बड़े अधिकारियों तक का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया है। किसी न किसी रूप में सभी लोग राजनीति की बातें करते रहते हैं। विद्यार्थियों का समाज बहुत बड़ा तथा व्यापक है, जो क्रमशः सभी क्षेत्रों में जाता रहता है। अतः विद्यार्थी और राजनीति का सम्बन्ध कैसा रहना चाहिए, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। विद्यार्थी को राजनीति में कितना क्रियात्मक भाग लेना चाहिए तथा किस सीमा तक उसे अलग रहना चाहिए, यह एक ऐसा प्रश्न है जो आज भी विवादग्रस्त बना हुआ है।

विद्यार्थी के कर्त्तव्य—विद्यार्थी का मुख्य कर्त्तव्य है विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त करना तथा ज्ञान-भण्डार से अपने योग्य रत्नों का संचयन करके सग्रहित करना। सामान्यतया विद्यर्थी को प्रायः सभी विषयों से सामान्य परिचय प्राप्त करना चाहिए तथा अपनी बौद्धिक शक्ति के योग्य विषयों को क्रमशः ऊँची शिक्षा के लिए चुनना चाहिए। इस चुनाव में किसी भी कारण से जो छात्र गलती कर जाते हैं, उनका जीवन सफल नहीं हो पाता। जिस विद्यार्थी की प्रवृत्ति विज्ञान में ही लगती है, उसे विज्ञान ही पढ़ना चाहिए, परन्तु जिसकी बुद्धि साहित्य में लगे उसे साहित्य सम्बन्धी विषयों का अध्ययन करना चाहिए। सामान्य ज्ञान के लिए थोड़ी बहुत राजनीति सब विद्यार्थियों को जाननी चाहिए। विद्यार्थी जीवन अर्जित ज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए कम होता है और ज्ञान की पुष्टि के लिए अधिक होता है। अतः सामान्यतः विद्यार्थियों को क्रियात्मक राजनीति से दूर ही रहना चाहिए, अन्यथा राजनैतिक आन्दोलन उनके जीवन-क्रम को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। ज्ञान के समान ही विद्यार्थी का अनुशासन से भी सम्बन्ध है, जो सक्रिय राजनीति में भाग लेने के कारण नष्ट हो जाता है। राजनीति एक ऐसा भूत है कि वह जब किसी विद्यार्थी को लग जाता है, तो वह उसको किसी अन्य कार्य को नहीं करने देता।

विद्यार्थियों का अपने माता-पिता तथा सारे परिवार के प्रति महान् उत्तरदायित्व होता है, उसका भी उसे ध्यान रखना चाहिए। इसके बाद अपने समाज, जाति, धर्म, देश तथा संस्कृति के प्रति भी उसका दायित्व कम नहीं है। इन सभी उत्तरदायित्वों पर विवेक पूर्वक विचार करके उसके ज्ञानार्थ ही राजनीति में भाग लेना चाहिए न कि नेता बनाने के लालच में अपने सभी दायित्वों की बलि देकर सक्रिय राजनीति में भाग लेना।

राजनीति का अभिप्राय—उन सामाजिक तथा सरकारी नियमों का जिनके आधार पर राजकीय कार्य चला करता है राजनीति ज्ञान कहा जाता है। व्यापक अर्थ में इन कार्यों से सम्बन्धित इतर ज्ञान भी राजनीति की सीमा में आते हैं। प्रजातन्त्र के युग में तो राजनीति का क्षेत्र और भी बढ़ गया है। आज हर व्यक्ति का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में शासन से हो गया है। हर वयस्क को अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। हर एक प्रत्याशी अपना प्रचार करता है। जनता सबकी बातें सुनती है तथा उन्हीं में से अपना प्रतिनिधि चुनती है। विद्यार्थी अपनी शिक्षा के लिए बड़े नगरों तथा कस्बों में जाते हैं। वहाँ आये दिन किसी न किसी पार्टी के नेता आते हैं तथा उनके भाषण होते हैं। इन भाषणों में विद्यार्थियों की संख्या कम नहीं रहती। भाषणों का उनकी अल्प अनुभवी बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है। उनकी भावुकता के कारण इन भाषणों का रंग गहरा हो जाता है। परिणाम यह होता है कि उनमें से कुछ बाहरी बातों में ही अधिक रुचि रखने लगते हैं, तथा वे परीक्षा को उचित ढंग से उत्तीर्ण नहीं कर पाते। कुछ लोगों का ध्येयय नेता बनना हो जाता है। वे अपने विद्यालयों में भी पढ़ने के स्थान पर राजनैतिक कही जाने वाली बातों पर वाद-विवाद अधिक करते हैं। कहीं भाषण सुनने जाते हैं, तो कहीं जुलूस में भाग लेते हैं, तो कहीं हड़ताल करने का समर्थन करते हैं, इन सब गतिविधियों का प्रभाव यह पड़ता है कि उनका अध्ययन अव्यवस्थित हो जाता है तथा वे राजनीति का अर्थ हुल्लड़बाजी मान बैठते हैं। विषयों के समुचित ज्ञान के अभाव में वे सुनी-सुनाई बातों को लेकर विवाद ही करते रह जाते हैं। इस प्रकार के राजनीति के क्रियात्मक पक्ष से विद्यार्थियों को विवेकपूर्वक बचना चाहिए।

विद्यार्थी का राजनीति से सम्बन्ध—ज्ञान के लिए विद्यार्थियों को राजनीति का सामान्य मनन-चिन्तन करना चाहिए। अपनी अवस्था के अनुसार देश-विदेश में घटने वाली घटनाओं का विश्लेषण करना चाहिए। जिज्ञासु भाव से तर्क-वितर्क भी करना चाहिये ताकि उनका ज्ञान विस्तृत हो। उन्हें अनेक प्रकार के आन्दोलनों पर विचार करना चाहिए तथा पाठ्यक्रम के अध्ययन से बचे समय का उपयोग सामान्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए करना चाहिए। विश्व में प्रचलित विभिन्न विचारधाराओं का विश्लेषण पूर्वक अध्ययन करना चाहिए अथा अपने और अपने समाज के लिए उपयोगी विचारधारा का परीक्षण और चुनाव करना चाहिए। उनका यह भी

कर्त्तव्य है कि वे राजनीति के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्षों को ठीक ढंग से जानें। इनको जाने बिना उनके जीवन में पूर्णता नहीं आ सकती। उनका ज्ञान ठोस तथा परिस्थिति के अनुकूल चलने वाला हो। उन्हें राजनीति से अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिसे वे भावी जीवन में कार्यान्वित कर सकें, न कि क्रियात्मक राजनीति में पड़कर पथभ्रष्ट हों।

राजनीति से लाभ

वर्तमानकाल में मनुष्य का जीवन अधिकांश में राजनीति से सम्बन्धित हो गया है। प्रजातन्त्र के युग में जनता और सरकार के बीच की खाई अधिक संकीर्ण हो गई है। हर व्यक्ति का जीवन सरकार के लिये बनता चला आ रहा है। साम्यवादी तथा अधिनायकतन्त्र से शासित देशों में तो व्यक्ति पूर्णतया सरकार के ही लिए है। उसका अस्तित्व केवल कहने के लिए है। उनकी शिक्षा और दीक्षा भी ऐसे वातावरण में होती है कि वह स्वतन्त्र चिन्तन में प्रायः असमर्थ हो जाता है। इस तरह की और भी अनेक व्यवस्थाएँ विभिन्न देशों में चल रही हैं। कहीं-कहीं उद्योग अर्थवाद, भौतिकवाद ही जीवन का चरम लक्ष्य माना है। अतः राजनीति का ज्ञान रखने वाला विद्यार्थी अपने जीवन के लिए सुयोग्य मार्ग चुन सकता है। यह देश समाज के लिए उचित व्यवस्था का समर्थन कर सकता है। देश की औद्योगिक आर्थिक और सामाजिक उन्नति में सहायक हो सकता है। विवेक पूर्वक ढंग से अध्ययन करने वाला विद्यार्थी राजनीति से पूरा लाभ उठा सकता है। अपने देश में विद्यार्थियों के ऐसे अनेक उदाहरण मिल जायेंगे, जिन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में राजनीति का गहन अध्ययन कर जीवन के विभिन्न पहलुओं को समझा है और अपने जीवन को उज्जवल बनाया है।

राजनीति से हानियाँ—जब विद्यार्थी राजनैतिक कार्यों में भाग लेना अपना मुख्य कर्त्तव्य मान लेता है, तब उसका मन पाठ्यक्रम पढ़ने से हट जाता है। उसका जीवन अत्यधिक व्यस्त हो जाता है और उसे पढ़ने-लिखने के लिए समय कम मिल पाता है। अतः अधकचरे ज्ञान के कारण भावी गृहस्थ जीवन का उत्तरदायित्व सुचारु रूप से निभाने में असमर्थ हो जाता है। अखबारों को पढ़ने में तथा विभिन्न विषयों पर वाद-विवाद में बराबर उलझा रहता है। उसका एक विद्यार्थी के रूप में सम्मान घट जाता है और तथाकथित नेता बनकर अन्धकार भविष्य में बढ़ता रहता है। इन कार्यों में उसमें अनुशासन हीनता आ जाती है। उससे उसकी अपने समाज की परम्परागत अच्छाइयाँ भी बुराई के रूप में सामने आने लगती हैं, अतः अपनी संस्कृति से उसे अनिच्छा तथा विदेशी संस्कृति में प्रेम होने लगता है। उसमें अहंकार की भावन प्रमुख हो जाती है। एक प्रकार से उसकी कथनी और करनी में साम्य नहीं हो पाता है। इस प्रकार से विद्यार्थी जब राजनीति में भाग लेने लगता है, तो उसका जीवन-क्रम पथ-भ्रष्ट होकर प्रायः नष्ट हो जाता। उसे किसी भी

विषय, का ठोस और पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसे विद्यार्थी चौराहों पर खड़े होकर राजनीतिक विषयों पर गरमागरम बहस करने में ही अपने जीवन की सार्थकता मानते हैं और कर्त्तव्य-पक्ष से च्युत हो जाते हैं।

उपसंहार—विद्यार्थियों को अनेक महत्वकाक्षाओं तथा अभिलाषाओं से प्रेरित होकर उनके अभिभावक विद्यालयों में भेजते हैं। उनको आशा रहती है कि लड़का पढ़-लिखकर आदर्श जीवन बितायेगा तथा परिवार, देश, जाति का कल्याण करेगा। किन्तु वही लड़का जब सक्रिय राजनीति का खिलाड़ी बनकर हड़ताल का नेता बनता है और जेल-यात्रा करता है तो उनकी क्या दशा होती है, इसे कोई भुक्त-भोगी ही जान सकता है। यदि कहीं राजनैतिक कैदी बना तो वर्तमान में उसका घर-बार भी चौपट हो जाता है। इस प्रकार उन अभिभावकों को लेने के देने पड़ जाते हैं। विद्यार्थी की शिक्षा प्रायः समाप्त हो जाती है। दूसरी बात यह है कि विद्यार्थी जीवन में राजनीति में पड़ने वाले व्यक्ति सफल राजनीतिज्ञ भी नहीं बन पाता, कारण उसमें समुचित ज्ञान का अभाव रहता है। राजनीति की उपयोगिता का उसे ज्ञान ही नहीं रहता, अतः वह निर्माण तथा उपयोगी कार्यों को कम कर पाता है। उसमें सहयोग की भावना का पूर्ण विकास भी नहीं हो पाता और विवेकपूर्ण निर्णय वह शीघ्रता से नहीं कर पाता। यही कारण है कि सभी पार्टियों में ऐसे कथित राजनीतिज्ञों की अधिकता है, जो अपनी स्वार्थपरता का उचित पथ-प्रदर्शन नहीं कर पाते। अतः विद्यार्थियों को सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिए।

---

१०. विश्व-शान्ति की समस्या

: :

विश्व-शान्ति और भारत

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) विश्व के मुख्य शक्तिशाली राष्ट्रों की स्थिति, (३) वर्तमान युद्धास्त्रों की विनाश-क्षमता और उनका आतंक, आगामी युद्ध से उत्पन्न स्थिति की पृष्ठभूमि, (४) उपसंहार।

भूमिका—सन् १९१९ ई० में प्रथम महायुद्ध की समाप्ति हुई। जर्मनी तथा उसके सहायकों की अप्रत्याशित पराजय हुई। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों की सामूहिक विजय हुई। दोनों पक्षों में सन्धि हो गई और राष्ट्रपति विलसन महोदय की चार-सूत्री योजना के अनुसार पंगु 'लीग ऑफ नेशन्स' का निर्माण हो गया। लगभग सत्रह वर्षों का समय बीता होगा कि पुनः जर्मनी जापान और इटली की शक्ति ने विश्व के राजनीतिक वातावरण में हलचल मचाना प्रारम्भ कर दी। सन् १९३६ ई० में इटली ने अबीसीनिया पर जर्मनी ने अपने पश्चिमी पार्श्व के देशों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः द्वितीय विश्व-युद्ध का बिगुल बज गया।

लगभग ६ वर्षों तक भयंकर संहार के नाटक खेले जाते रहे । युद्ध में वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण योगदान किया । ऐटम बम का अमेरिका ने जापान के औद्योगिक क्षेत्र नागाशाकी और हिरोशिमा पर प्रयोग कर दिया । फलतः एक बहुत बड़ा भू-भाग नष्ट हो गया और समुद्र में मिल गया । जर्मन-सेनाएँ रूस के मैदान में नष्ट की गई । सन् १९४५ ई० में युद्ध की समाप्ति हुई । अबकी बार फिर ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रान्स और रूस विजयी देश माने गए । पुनः ट्रूमेन महोदय ने 'राष्ट्रसंघ' को और भी सबल रूप में जीवित किया । प्रायः सभी वैज्ञानिकों की सहायता से विनाशकारी अस्त्रास्त्रों का निर्माण करने लगे । इन पन्द्रह-सोलह वर्षों में ध्वनि से दुगनी गति से चलने वाले लड़ाकू विमान तथा व्यापक विनाशकारी क्षमता वाले बम तैयार हो गए । उनके परीक्षणों की होड़ मची । जब युद्ध में इन शस्त्रों के प्रयोग की कल्पना की गई तो विश्व का विनाश साकार रूप में प्रकट होने लगा । तभी से विश्व-शान्ति की समस्या भी सामने आई ।

विश्व के मुख्य शक्ति-शाली राष्ट्रों की स्थिति—युद्ध के बाद प्रायः सभी स्वतन्त्र देशों की सरकारों ने अपने वैज्ञानिकों की सैनिक शक्ति की वृद्धि के लिए साधन जुटाने में लगा दिया । रूस और अमेरिका अपने सिद्धान्तों की विभिन्नता तथा साधनों की प्रचुरता के कारण स्पर्धापूर्वक युद्ध-विमान तथा भयंकर बमों का निर्माण कराने लगे । इन देशों के परीक्षणों का क्रम बढ़ने लगा । ब्रिटेन, फ्रांस आदि अन्य पश्चिमी देश इन्हीं के पीछे आने लगे । फलतः विश्व के सभी राष्ट्र इन दो शिवरों में विभाजित हो गए । अनेक राष्ट्र स्वतन्त्र भी हो गए, पर इन्हीं में भारत पाकिस्तान, ब्रह्मा आदि राष्ट्र है । इनमें से कई राष्ट्रों ने तटस्थ नीति को अपनाया । फलतः एक तीसरा गुट भी बनता हुआ दिखलाई पड़ रहा है । सभी राष्ट्र सयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य हैं । एक प्रकार से यह संस्था विश्व के राजनीतिज्ञों का अखाड़ा बनी हुई है । लम्बे-लम्बे भाषण, आकर्षक प्रस्ताव तथा तीखे वाक्य-बाण इसमें चलते रहते हैं । कई समस्याओं का समाधान भी बात-चीत के माध्यम से हो गया है, किन्तु अधिकाँश समस्याएँ उलझी ही रह गई हैं, जैसे काश्मीर समस्या, भारत-चीन-सीमा-विवाद, जर्मनी की समस्या आदि ऐसी अनेक समस्याएँ हैं, जिनका समाधान नहीं हो सका । इसी प्रकार की निःशस्त्रीकरण की समस्या भी है, जिसका सम्बन्ध विश्व-शान्ति से है । छोटे राष्ट्रों के मतों को बड़े राष्ट्र अपनी ओर ले लेने का प्रयास भी करते हैं । पिछड़े राष्ट्रों की उन्नति के लिए सहायता भी यथासम्भव और यथावसर सभी सदस्य देने को तैयार रहते हैं । इस समय भारत का स्थान विश्व-शान्ति के विषय में अत्यन्त महत्वपूर्ण है । तटस्थ राष्ट्रों में अधिकांश इसके समर्थक हैं ।

वर्तमान युद्धास्त्रों की विनाश-क्षमता और उनका आतंक—वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने दो प्रकार से युद्ध की भयंकरता बढ़ाने में योग दिया है—एक तो अति द्रुतगामी लड़ाकू विमानों के निर्माण से, जिनमें चलने के समय ध्वनि भी नहीं

उत्पन्न होती, दूसरे भयंकर ऐटम, हाइड्रोजन, और न्यूक्लीयर आदि बमों का निर्माण तथा क्षेप्यास्त्रों का निर्माण। इन साधनों ने सभी शक्तिशाली राष्ट्रों को इतनी भयंकर शक्ति प्रदान कर दी है कि यदि युद्ध की स्थति उत्पन्न हो जाय और उसमें इनका प्रयोग कर दिया जाय तो निश्चय ही विश्व का यदि पूर्णतया नहीं तो भी अधिकांशत: विनाश अवश्य ही हो जायेगा। वैज्ञानिकों ने उनकी शक्ति को भी स्पष्ट रूप से बता दिया है। अत: युद्ध छिड़ने का अर्थ सामूहिक विनाश माना जा रहा है। इसीलिए सभी राष्ट्रों के विवादों को शान्तिपूर्वक वार्तालाप द्वारा हल करने का उपाय हो रहा है। इस प्रगति का यह प्रभाव पड़ रहा है कि घनी जनसंख्या वाले देश अधिक आतंकित हो गए हैं। अधिक विस्तार वाले देश भी यह अनुभव कर रहे हैं कि सभ्यता और जन-संख्या का मेरु-दण्ड नष्ट हो जायगा। सदियों के अनवरत प्रयास से निर्मित यह विश्व किस रूप में बचेगा यह एक भयंकर प्रश्न बन गया है। यही कारण है विश्व के सभी राष्ट्रों के कर्णधार निरन्तर विश्व-शान्ति का राग अलापा करते हैं। अब समस्या यह है कि जब सभी चाहते हैं, तो विश्व-शान्ति सम्बन्धी कार्यक्रम सफल क्यों नहीं होता—इसका मूल कारण स्वार्थपरता पारस्परिक अविश्वास की भावना तथा इसकी एक और संगिनी है—विश्व शासक बनने की महत्वकांक्षा। कूटनीति पर सभी राष्ट्रों को विश्वास है तथा सभी यह समझ रहे हैं कि दूसरा गुट हमें धोखा देना चाहता है। प्राय: सभी बड़े राष्ट्र अपनी तथाकथित शक्ति के आंतक से विपक्षी को घुटना टेके देखना चाहते हैं।

आगामी युद्ध से उत्पन्न पृष्ठभूमि—यह कल्पना निराधार नहीं है, साधारण कहे जाने वाले ऐटम बम की करामात को नागाशाकी हिरोशिमा में सभी ने देख लिया है। परीक्षणों द्वारा जो प्रतिक्रिया समुद्रों और वीरान रेगिस्तानों में होती है उनके वास्तविक दृश्य अपने सभी प्रभावों के साथ राष्ट्रनायकों की बुद्धि को झकझोर देते हैं। सभी राजनीतिज्ञ और वैज्ञानिक यह समझ रहे हैं कि यह राष्ट्र-प्रतिष्ठा का अलाप उस समय कहीं न सुनाई पड़ेगा। जब विरोधियों के एक-एक बम से हजारों वर्ग मील की रूप रेखा ही बदल जायेगी। मृतकों को समाधि देने का कार्य भी वे बम स्वयं कर देंगे, वहाँ भी मानव प्रयास की आवश्यकता नहीं रहती। चिता सजा कर अग्निदान भी वे ही कर देंगे। इस पर भी यदि कोई शव कहीं बच जायेगा तो प्रकृति स्वयमेव उससे अपने पंच तत्व—क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर को खींच लेगी। इतने पर भी यदि प्राणी बच गये तो वे दूषित वायु-मण्डल से उत्पन्न असंख्य रोगों से जूझते हुए इहलीला समाप्त करेंगे। फलत: यह रंग-बिरंगा विश्व नष्ट हो जायगा। यही कल्पना विश्व-शान्ति की समस्या को गहरा रंग देकर सामने आ रही है।

विश्व-शान्ति की समस्या का रूप पूर्व प्रकरण में आ चुका है। यहाँ इतना ही कहना आवश्यक है कि आज बड़े-बड़े राष्ट्र भी सभी समस्याओं में इस भय से रुचि ले रहे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि छोटी-सी समस्या युद्धाग्नि दहकाने में चिन-

गारी का काम कर जाय। जहाँ कोई विवाद दो पक्षों में प्रारम्भ होता है, वहीं एक पक्ष का समर्थन अमेरिकन पक्ष और दूसरे का रूसी पक्ष करने लगता है।

विश्व-शान्ति से लाभ और प्रभाव

इसका परिणाम यह होता है कि कहीं-कहीं समस्या हल हो जाती है तथा कहीं-कहीं और उलझ जाती है। छोटी-छोटी घटनाएँ घट करके भी युद्ध की स्थिति नहीं उत्पन्न कर पातीं। राजनैतिक भाषा में नीति और अनीति की परिभाषा भी विचित्र हो जाती है। विश्व-शान्ति से विश्व की स्थिति बनी रहेगी, ऐसी आशा है और मनुष्य अपनी बुद्धि का लाभ उठाता रहेगा।

उपसंहार

वर्तमान विषाक्त वातावरण में दुनियाँ के सभी राष्ट्र किसी न किसी आशंका से भयभीत हैं। सभी के हृदय में आतंक समा गया है। ऐसी दशा में विश्व-शान्ति की योजना में ही वह शक्ति है, जो दुनियाँ का कल्याण कर सकती है। वर्तमान भारत सरकार के प्रयत्न विश्व-शान्ति की दिशा में सराहनीय हैं। प्रधान मन्त्री इन्द्रा गांधी अफगानिस्तान में शान्ति का प्रयास कर रही हैं। उसकी विश्व ने प्रशंसा की है।

---

११. निःशस्त्रीकरण

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) शस्त्रास्त्रों के निर्माण की दिशा, (३) शस्त्रास्त्रों की उन्नति, (४) इस उन्नति का आतंक और भय, (५) निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता, (६) निःशस्त्रीकरण के प्रयास, (७) निःशस्त्रीकरण के लाभ, (८) उपसंहार।

द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका ने विश्व के बड़े-बड़े नेताओं को अत्यन्त चिन्तित कर दिया। हिरोशिमा पर गिरे ऐटम बम के प्रभाव ने विश्व के महान् राष्ट्रों—अमेरिका, रूस, ब्रिटेन आदि को भयानक युद्धास्त्रों के निर्माण के लिए प्रेरित किया। शत्रु से रक्षा तथा विश्व-शासक बनने की महत्वाकांक्षा ने अमेरिका और रूस में विनाशकारी शस्त्रास्त्रों के निर्माण की होड़ लगा दी। फलतः अणुशक्ति की खोज में दोनों देशों के महान् वैज्ञानिक जुट गये। अनेक प्रकार के भयकर बम, राकेट, बमवर्षक विमान आदि ऐसे-ऐसे युद्धास्त्रों का निर्माण हो गया है; उनकी शक्ति से दुनियाँ काँप उठी है। शीतयुद्ध का वातावरण और राष्ट्रों में मतभेद फैला हुआ है। अनेक ऐसी समस्याएं हैं, जिनके आधार पर विश्व-युद्ध की पुनरावृत्ति सम्भावित है। यह भी निश्चय है कि यदि युद्ध का अवसर आया तो उनका प्रयोग फलतः महान् विनाश भी होगा। इस विश्व-विनाश के आशंका जनित भय ने निःशस्त्रीकरण की भावना को पैदा किया। इसी भय को दूर करने के लिए आज निःशस्त्रीकरण के राग सुनाई पड़ रहे हैं।

आधुनिक काल में शस्त्रों के निर्माण की दिशा—वैज्ञानिक प्रयोग की सफलता ने मनुष्य की बुद्धि का अपूर्व विकास कर दिया है। द्वितीय महायुद्ध मे

ऐटम बम की शक्ति ने कुछ क्षणों में ही जापान की अजेय शक्ति को पराजित कर दिया। इस शक्ति की युद्ध-कालीन सफलता ने अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस आदि सभी देशों को ऐसे शस्त्रास्त्रों के निर्माण की प्रेरणा दी कि सभी भयंकर और सर्वविनाशकारी शस्त्र बनाने लगे। अब सेना को पराजित करने तथा शत्रु-देश पर पैदल सेना द्वारा आक्रमण के लिए शस्त्र-निर्माण के स्थान पर देश के देश विनाश करने की दिशा में शस्त्रास्त्र बनाने लगे हैं। इन हथियारों का प्रयोग होने पर शत्रु देशों की अधिकांश जनता और सम्पत्ति थोड़े समय में ही नष्ट की जा सकेगी। चूँकि ऐसे शस्त्रास्त्र प्रायः सभी स्वतन्त्र देशों के संग्रहालयों में कुछ न कुछ आ गये हैं : अतः युद्ध की स्थिति में उनका प्रयोग भी अनिवार्य हो जायगा, अतः दुनियाँ का सर्वनाश या अधिकांश नाश तो अवश्य ही हो जाएगा। इसलिए निःशस्त्रीकरण की योजनाएँ बन रही हैं।

शस्त्रास्त्रों के निर्माण में जो दिशा अपनाई गई उसी के अनुसार आज उन्नत शस्त्रास्त्र बन गये हैं, जिनके प्रयोग से व्यापक विनाश आसन्न दिखाई देता है। वर्तमान युग में एक ही स्थान पर बैठे-बैठे विश्व के प्रायः सभी कोनों पर वार किया जा सकता है। आक्रमण से पहले तो कहीं जाने की आवश्यकता ही कम पड़ेगी और यदि जाना भी पड़ा तो उसके लिए शब्द से दूनी गति से चलने वाले विशालकाय लड़ाकू विमान बन गये हैं, जो अपने वेग और उपकरणों के बल से विश्व-अस्तित्व को चुनौती दे रहे हैं। इस समुन्नति अणु बमों, हाइड्रोजन बमों, न्यूक्लीयर आदि शस्त्रों की भयानकता का अनुभव करके सभी मनीषी इन्हें नष्ट कर देना चाहते हैं। आजकल निःशस्त्रीकरण की दिशा में अनेक सम्मेलन हो रहे हैं, जिनमें इस व्यापक विनाशकारी शस्त्रों के विनाश के इच्छुक सभी राष्ट्र भाग ले रहे हैं। सन् १९६० के मार्च में जेनेवा में दस बड़े राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ था। परन्तु खेद की बात है कि महीनों विचार-विमर्श करने के बाद भी किसी समाधान को नहीं ढूँढ़ा जा सका। रूस के प्रधानमन्त्री श्री ख्राश्चेव ने कुछ ठोस सुझाव पेश किये थे, परन्तु वे सर्वसम्मति से स्वीकृत नहीं हो सके। अब परीक्षणों की रोकथाम तथा बने शस्त्रों के प्रयोग को रोकने के मार्ग खोजे जा रहे हैं। इन प्रयासों के मूल में एक भयंकर आतंक और विश्व-विनाश का भय कार्य कर रहा है।

निःशस्त्रीकरण का अर्थ यह कदापि नहीं है कि विभिन्न देशों की सरकारें रिक्त हस्त, पंचशील का साइन बोर्ड लेकर चलने वाली सेनाओं का संगठन करेंगी। इसका अर्थ इतना ही है कि सार्वजनिक रूप से विनाश करने वाले शस्त्रों का प्रयोग रुक जाएगा ताकि युद्ध की स्थिति आने पर भी व्यापक संहार न हो सकेगा और न वायुमण्डल इतना विषाक्त बन जाए कि भूमण्डल में प्राणियों की स्थिति असम्भव हो जाय। यदि ऐसा नहीं हो सका तो निश्चय ही स्थिति अन्धकारमय हो जायगी। आज के वैज्ञानिक युग में यह आवश्यक है कि विज्ञान द्वारा दी गई महान् शक्तियों

को जन-कल्याण में लगाया जाय। द्रुतगामी वायुयानों द्वारा आवागमन के कार्य को सफल बनाया जाय, जिससे लोग पृथ्वी पर की यात्रा की भाँति आकाश में भी यात्रा कर सकें। जिन वैज्ञानिकों की बुद्धि-शक्ति से हाइड्रोजन बम, ऐटम बम, न्युक्लीयर आदि तैयार किये जा रहे हैं उन्हीं की सहायता से रोगों की रोक-थाम तथा अन्य उपयोगी कार्य किये जा सकते हैं। आज के बुद्धिवादी मनुष्य को सबसे अधिक आवश्यकता है सहानुभूति, करुणा, दया विश्व-प्रेम की, जिससे संसार में शान्ति का वातावरण उत्पन्न हो सके। इस कार्य में आध्यात्मिक शिक्षा से अधिक लाभ हो सकता है।

आज के विश्व के महान् राष्ट्रनायकों के सामने अनेक समस्याएँ हैं। एक ओर उन्हें अपने सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार करना है, अपने देश की भाँति हर देश को बनाना है, तो दूसरी ओर कूटनीति के द्वारा अपनी शक्ति को सर्वोपरि बनाना है। तीसरी ओर भयंकर संहार के विश्व को बचाना है। इस प्रकार विरोधी समस्याओं का हल करना पड़ रहा है। रूस चाहता है कि सभी देश साम्यवादी हो जाएँ और उसी के अनुसार आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था बनाकर चलें। रूस यह भी आकांक्षा रखता ही है कि सभी इस प्रकार की व्यवस्था वाले देश उसी के अस्तित्व को स्वीकार करके अनुगामी बनें। इस प्रकार वह सर्वोपरि, शक्तिशाली बन सकेगा और नियमानुसार विश्व-शासक का गौरव प्राप्त कर सकेगा। दूसरी ओर अमेरिका की दृष्टि में साम्यवाद बेकार की चीज है। विश्व को लोकतन्त्र की पूंजीवादी व्यवस्था ही बचा सकती है। कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि प्रजातांत्रिक प्रणाली का विकास सर्वाधिक हो। सभी देशों की जनता को अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का ज्ञान रहे। वे अपने मानवीय अधिकारों का उपयोग करें तथा अपनी उन्नति में लगे रहें पर अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी राष्ट्रों को अपना नेता भी मानें। इस प्रकार साम्यवादी शिविर निर्बल हो जायगा और केवल उन्हीं लोगों का बोल-बाला रहेगा। यह है विश्व की सामान्य स्थिति। एक सामान्य बुद्धि का मनुष्य भी यह समझ सकता है कि कोई भी राष्ट्र अकेले सारे विश्व का शासक नहीं बन सकता। इससे आज विश्व के सभी राष्ट्र निःशस्त्रीकरण के पक्ष में हैं। आज विश्व को निर्जन और प्राणीहीन होने से बचाने के लिए निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता है।

निःशस्त्रीकरण के प्रयास में प्रायः सभी देशों के विचारवान नेता लगे हुए हैं। वे कभी जिनेवा में, कभी न्यूयार्क, कभी किसी अन्य स्थान पर शिखर सम्मेलन में जन सुरक्षा पर विचार विमर्श करते हैं। परन्तु अभी निर्णय पूर्ण रूप से नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि न तो रूसी गुट को अमेरिकी गुट पर विश्वास है न अमेरिकन गुट को रूसी गुट पर। दोनों शिविरों में अविश्वास और सन्देह का भूत कार्य कर रहा है। दोनों एक दूसरे पर हावी होने का दावा कर रहे हैं। दोनों ही छोटे-छोटे परस्पर विरोधी देशों के झगड़ों में एक-एक का पक्ष ग्रहण कर लेता है, जिससे छोटे राष्ट्रों के झगड़े भी नहीं निपट पा रहे हैं। विज्ञान ने राष्ट्रों की

शक्ति को केन्द्रित कर दिया है। जो व्यक्ति या पार्टी सरकारी मशीनरी पर एक बार अधिकार कर लेता है, वह अपने इशारों पर पूरी सरकार को चलाता रहता है। प्रजातन्त्र प्रणाली में फिर भी सरकार का बदलना उतना कठिन नहीं होता, जितना साम्यवादी व्यवस्था में। कारण यह है कि साम्यवादी व्यवस्था में पार्टी की शक्ति एक नेता के हाथ में केन्द्रित रहती है और उसी नेता के हाथ में सरकार की शक्ति भी रहती है। वहाँ विरोधी दल को कोई अधिकार नहीं रहता। विरोधी को तो वहाँ मार्ग परिवर्तन या देश-त्याग के लिए बाध्य कर दिया जाता है। इस प्रकार नेताओं में अहमन्यता आ जाती है और समन्वय तथा सहयोग नहीं हो पाता। यही कारण है कि रूस और अमेरिका एक मत नहीं हो पा रहे हैं।

उपसंहार—विश्व के राष्ट्र-नायकों की यह प्रवृत्ति बन गई है कि वे शांतिदूत बनने का ढोंग तो रचते हैं पर अविश्वास के कारण निःशस्त्रीकरण के उपाय नहीं प्रयोग में लाते। साफ हृदय से लोग मिलते ही नहीं, परिणाम यह होता है कि किसी भी प्रस्ताव को सर्वसम्मत या बहुमत प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता, न निःशस्त्रीकरण हो पाता है। किन्तु सभी राष्ट्र इसकी उपादेयता समझ रहे हैं और प्रयत्नशील हैं। आशा की जाती है कि किसी दिन निःशस्त्रीकरण का मार्ग अवश्य निकल आयेगा। वर्तमान भारत सरकार इस दिशा में विशेष रूप से प्रयत्नशील है।

---

१२. भ्रष्टाचार-उन्मूलन

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) आचार-विचार, (३) नैतिकता, (४) **मानव-चरित्र**, (५) **भ्रष्टाचार से हानियाँ**, (६) **भ्रष्टाचार उन्मूलन के साधन**, (७) उपसंहार।

आचार सभ्यता का प्रकट रूप है—उसका व्यवहार पक्ष है। चिन्तन एवम् दर्शन की दिशा में कोई देश अथवा राष्ट्र कितना भी अग्रणी क्यों न हो, यदि वह आचार की कसौटी पर खरा नहीं उतरता तो उसे महानता के पद पर विभूषित नहीं किया जा सकता। विज्ञान, कला, साहित्य, संस्कृति, धर्म, राजनीति, समाज नीति आदि सभी क्षेत्रों में प्राप्त उपलब्धियाँ आधार में प्रतिबिम्बत होती हैं और उसे इस प्रकार उसे विशेषता प्रदान करती हैं। राष्ट्र के राग-विराग, उत्थान, पतन, अनुभूति-प्रवृत्ति, विचार तथा संस्कार आचार के रूप में ही साकार होते हैं, इसीलिए आचार को राष्ट्र का मूलाधार माना जाता है।

हमारे देश में तो आचार को विशेष महत्व प्राप्त रहा है। अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर आज तक हमारे महर्षियों तथा राष्ट्र नायकों ने सदाचार की महिमा का मुक्त कण्ठ से बखान किया है। हमारे देश की परम्परा में आचार-धन के सामने और सभी धन तुच्छ समझे जाते हैं। असीम खेद की बात है स्वतन्त्र भारत इसकी रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है। हमारे देश का नारा 'सत्यमेव जयते' है, परन्तु इतना होने पर भी मानो स्वाधीन भारत में सर्वत्र भ्रष्टाचार का ही राज है। सदाचार आज

मूर्खता, फूहड़पन, दकियानूसी आदि को पर्याप्त माना जाने लगा है। आचारहीनता के बल पर भी स्वार्थसाधन ग्राह्य समझा जा रहा है। येन-केन प्रकारेण अपना उल्लू सीधा करना ही परम पुरुषार्थ माना जा रहा है, भ्रष्टाचार ने आज हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों पर गहरा अधिकार कर लिया है। उद्योग हो या व्यापार, नागरिक सेवा हो या समाज कल्याण, चिकित्सालय हो या न्यायालय—सर्वत्र भ्रष्टाचार, का तांडव-नृत्य हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति भ्रष्टाचार से भाराक्रान्त होकर भी उसमें अग्रसर हो रहा है, इसलिए व्याप्त भ्रष्टाचार आज के भारतीय जीवन की सर्व प्रधान समस्या बन गया है। लोकसभा हो या राज्यसभा किसी प्रदेश की विधान सभा हो या विधान परिषद् नगर निगम हो या नगरपालिका, किसी भी कार्यबाई को उठाकर देखिए भ्रष्टाचार का उल्लेख अवश्य मिलेगा। यही नहीं समाचार पत्रों, सभा-समितियों में भी इसकी सर्वत्र चर्चा है।

भ्रष्टाचार का मूल मानव-नियत में विद्यमान है। नीयत का निर्देशन कर रही है आज की भौतिक प्रगति। सीमित साधनों में भौतिक ऐश्वर्य को प्राप्त न कर सकने पर मानव की स्वतः किसी भी प्रकार उन साधनों को जूटाने के लिए अनैतिक राहों पर चलना ही एक मात्र उपाय रह जाता है। यह भ्रष्टाचार रिश्वत व कमीशन के रूप में सरकारी, गैर-सरकारी क्षेत्रों में विद्यमान है। यह रिश्वतखोरी ही है जो भ्रष्टाचार को जन्म देती है।

तथाकथित सम्भ्रान्त लोगों ने भ्रष्टाचार का निर्वाह बड़ी शालीनता से किया है। इनका पहला कार्य शिक्षण को जीवन से अलग करना है। जन-साधारण से कहा जाता है कि शिक्षण के बिना राष्ट्र का कल्याण होने वाला नहीं है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा को इस ढाँचे में ढाला जाता है कि पढ़कर नवयुवक अपने स्वावलम्बी जीवन में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। वह सिर्फ इन लोगों की सरकार में अर्थतन्त्र में एक अफसर क्लर्क या कारीगर बनकर रह जाता है। शिक्षा के माध्यम से एक ऐसी फौज खड़ी हो जाती है, जिसका इस युग में मुख्य काम पैसा कमाना हो जाता है।

दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ये लोग प्रजा को मताधिकार देने का करते हैं, उसका उपभोग स्वार्थी तत्वों द्वारा किया जाता है। कहीं प्रलोभन, कहीं रुपया, कहीं धोका और कहीं जूता, कहीं रिश्ता, तो कहीं बिरादरी, ये सारे हथकण्डे भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने के लिए अपनाये जाते हैं। ये सारे हथकण्डे प्रायः उसी सरकार या दल के होते हैं जो साम, दाम दण्ड, भेद के आधार पर अपना बहुमत प्राप्त कर अपनी सरकार बनाते हैं। जब सरकार बन जाती है तो फिर भ्रष्टाचार के देवता पर पूजन-अर्चन होने लगता है। लोगों में निरीह जनता के प्रति करुणा का भाव जागृत होने लगता है। ये लोग जनता की भलाई का नारा लगाते हैं और जनता में अपने नेतृत्व की आवश्यकता अनुभव कराते हैं। राष्ट्र-निर्माण के नाम पर ये उद्योगपति आड़े-तिरछे होकर जनता और जनमत को भ्रष्ट करने में तुले हैं। प्रश्न यह है कि इस भ्रष्टाचार को कैसे रोका जाय?

हो सकता है कि लोग भ्रष्टाचार को बढ़ा-चढ़ाकर सामने रखते हों। बहुत से ऐसे सरकारी कर्मचारी है, जिनको बड़ी से बड़ी कसौटी पर कसने पर भी भ्रष्टाचार के दोष से मुक्त पाया जाता है। यह भी सही नहीं कि प्रत्येक व्यापारी बेईमान है। किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज देश में अविश्वास का वातावरण है। श्री के० सन्थानम की अध्यक्षता में भ्रष्टाचार के निवारण के बारे में जो समिति बनाई गई थी, उसने सरकार की कार्यवाइयों के आधार पर जो रिपोर्ट दी है, उससे बड़ी चिन्ताजनक स्थिति का पता चलता है कि लोकहित और आर्थिक विकास की दृष्टि से भी राष्ट्र की कितनी हानि हो रही है, लेकिन इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह है कि लोगों का हमारी संस्थाओं पर से विश्वास उठ रहा है और असन्तोष की भावना बढ़ रही है। यदि हमारी समाज व्यवस्था में जनता का विश्वास नहीं रह जाता तो उनका उत्साह खत्म हो जायगा। राष्ट्र के कार्यक्रम में उनका सहयोग प्राप्त नहीं होगा।

यदि हमें भ्रष्टाचार की बुराई को सफलतापूर्वक दूर करना है, तो हमें प्रशासन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा, जिससे देश के कार्यों को कहीं अच्छे ढंग से और कहीं अधिक तेजी से निबटाया जा सके। भ्रष्टाचारियों को उचित दण्ड देने के अतिरिक्त सरकार को उनके नाम और कर्मों का खूब प्रचार करना चाहिए। इस सम्बन्ध में सरकार को व्यापक आन्दोलन चलाना चाहिए, जिससे जनता में यह भावना पैदा हो, कि वे रिश्वत लेना और देना दोनों ही अनुचित समझें। एक ओर वर्तमान स्थिति के बारे में गहरी चिन्ता फैली हुई है और दूसरी ओर इस बुराई को दूर करने की सम्भावनाओं के बारे में लोगों के मन में निराशा और नितान्त उत्साहीनता की भावना व्याप्त है। लोग सोचते हैं कि क्या ऐसा भी हो सकता है? इसी प्रश्न पर देश का भविष्य निर्भर करता है। यदि जनता अपनी इच्छा-शक्ति का सद्पयोग करे तो प्रशासन की शुद्धता और नैतिक परम्पराओं के विकास की उसकी आकांक्षा पूरी होने में अधिक देर नहीं लगेगी।

आज बिनोवा का यह आदर्श भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए सदैव समक्ष रखना होगा—"कार्यकर्त्ताओं को एकत्र होना ही चाहिए, चाहे उनका समय बरबाद ही क्यों न हो? समय बरबाद कब होता? साथ ही साथ शासन को भी इस ओर कठोर कदम उठाने चाहिए। ताकि भ्रष्टाचार का अन्त सम्भव हो।"

---

१३. भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति के गुण-दोष और सुधार

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना, (२) वर्तमान शिक्षा के अवगुण, (३) स्वाधीनतोपरान्त नया युग, (४) उपसंहार।

प्रस्तावना—भारत अपने अतीत काल में सब प्रकार से अतिरिक्त शिक्षा-जगत् में उसकी उपलब्धियाँ ईर्ष्या के योग्य थीं। नालन्दा, तक्षशिक्षा, प्रयाग और काशी भारत की शिक्षा संस्कृति के केन्द्र थे। यहाँ के विश्वविद्यालयों में केवल भारत के ही नहीं, वरन् मिश्र, यूनान, चीन तथा लंका आदि के विद्वान आकर अध्ययन करते थे।

यहाँ के शिक्षा संस्थानों में शिक्षा की आदर्श पद्धति प्रचलित थी। वह केवल छात्र को अपनी जीविकोपार्जन में ही समर्थ नहीं, अपितु आध्यात्मिक क्षमता के विकास में भी सूक्ष्म बनाती थी। उसमें केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं व्यावहारिक योग्यता भी उत्पन्न करती थी। शताब्दियों से दासता-काल में भारत की उस प्राचीन शिक्षा-पद्धति का ह्रास होता गया और अँग्रेजों द्वारा प्रवतित वर्तमान शिक्षा-पद्धति अस्तित्व में आई। फलस्वरूप, देश में न केवल बेकारी ही बढ़ी, अपितु भौतिकवादी अनैतिकता इस सीमा तक बढ़ गई कि जीवन के उदात्त मूल्य महत्वहीन सिद्ध हो गये।

भारतीय शिक्षा शास्त्रियों के अनुसार स्वाधीनता के बीस वर्षों में शिक्षा-प्रणाली में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुए।

वर्तमान शिक्षा के अवगुण—आज की शिक्षा प्रणाली का प्रथम दोष यह है कि यह एक निष्क्रिय एवं यांत्रिक शिक्षा-प्रणाली है। इस प्रणाली में छात्र निष्क्रिय रहता है, छात्र पर कोई भार नहीं पड़ता है। यह अध्यापकों से प्राप्त तथ्य तथा निष्कर्षों को यन्त्रवत् कंठस्थ करता जाता है। उसके अपने कोई विचार नहीं होते हैं, न ही उसका मानसिक विकास हो पाता है। वह केवल पुस्तकों को पढ़कर किताबी ज्ञान प्राप्त कर लेता है जबकि अनुभव शून्य होता है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से हमारा छात्र-समाज पुस्तकों के पीछे चलने वाली भीड़ का अंग बन जाता है, विचारशील नागरिक नहीं बन पाता है।

आज की शिक्षा-प्रणाली—आज की शिक्षा-प्रणाली का दूसरा दोष है कि यह केवल सैद्धान्तिक प्रणाली है। यह प्रणाली व्यावहारिक योग्यता प्रदान नहीं करती। भारतीय शिक्षा शास्त्रियों के मतानुसार शिक्षा की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार कोई तारतम्य नहीं है। यह पद्धति हमें देश-विदेश के इतिहास, भूगोल का ज्ञान तो कराती है, परन्तु अपने जीवन विकास तथा इतिहास का परिचय नहीं देती। आज का छात्र सेक्सपीयर के पात्रों का चरित्र तो याद रखता है, परन्तु अपने मित्रों के चरित्र से अपरिचित रहता है। सारांश यह है कि आज का छात्र ज्ञान का भण्डार तो बन सकता है, पर समाज तथा राष्ट्र के लिए उपयोगी नागरिक नहीं बन पाता।

नैतिक और सांस्कृतिक शिक्षा का अभाव—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का तीसरा महान् दोष है। हमारे स्कूल, कालेज तथा विश्वविद्यालय छात्र समाज को

सूचना मात्र देकर तथ्यों का आंकलन कराते हैं। हमारी शिक्षा-संस्थाएँ गुणों के प्रति आकर्षक, सच्चाई व प्रतिनिष्ठा आत्म-सम्मान की भावना तथा आत्म-गौरव का भाव विकसित नहीं करती।

प्राचीन युग में हमारा छात्र समाज गुरुजनों के प्रति सम्मान, बड़ों के प्रति लगाव छोटों के प्रति प्रेम, धर्म के प्रति आकर्षण और सांस्कृतिक गौरव के प्रति रुचि रखता था। आज का छात्र-समाज इन मान्यताओं से बिलकुल परे है। हमारे छात्र अपनी सांस्कृतिक विरासत को भुलाकर, मेकाले द्वारा प्रवर्तित दास तथा क्लर्क पैदा करने वाली शिक्षा प्रणाली के दास आज बन पड़े हैं।

शारीरिक प्रशिक्षण का अभाव—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का चौथा दोष है। हमारे छात्रों के मुख-मण्डल श्री हीन दिखाई देते हैं तथा कई छात्र रोग-ग्रस्त देखे जा सकते हैं। वे पुस्तकें पढ़-पढ़कर शक्तिहीन हो जाते हैं और स्वास्थ्य शिक्षा के अभाव में शीघ्र ही वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का पाँचवाँ दोष यह है कि यह व्यय साध्य है। कालिज की शिक्षा के लिए प्रति छात्र बहुत व्यय होता है, जिसे गरीब लोग सहन नहीं कर पाते हैं।

इस शिक्षा-प्रणाली का छठा दोष यह है कि वह छात्र के लिए केवल मनोविनोद का साधन-मात्र है। शिक्षा-संस्थाओं में छात्र केवल मनोरंजन हेतु जाते हैं। गम्भीर अध्ययन के उद्देश्य से नहीं। प्राचीन काल में शिक्षालय वनों तथा एकान्त स्थानों में होते थे और आज नगर के मध्य में। मनोरंजन के अन्य साधनों की भाँति आज शिक्षण संस्थाएँ भी मनो-विनोद का साधन मात्र रह गई हैं, विद्या-मन्दिर बनकर नहीं।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का सातवाँ दोष यह है कि आज का शिक्षा प्राप्त व्यक्ति श्रम घृणा करता है इससे बेकारी की समस्या बढ़ती है। आज हरएक शिक्षित व्यक्ति सरकारी नौकरी ढूंढ़ता है।

स्वातन्त्रोत्तर काल में शिक्षा के नये प्रयोग—स्वतन्त्र भारत में तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली की कटु आलोचना हुई। संसद भवन में तथा बाहर, सरकार की शिक्षा नीति पर अनेक प्रहार किये गये। फलतः प्राथमिक स्तर पर बेसिक शिक्षा का समर्थन करना आरम्भ हुआ। गाँधी जी ने सन् १९३७ से बेसिक शिक्षा का समर्थन करना आरम्भ कर दिया। इस शिक्षा का भी कोई युगान्तकारी प्रभाव नहीं हुआ। यह योजना भी भावनात्मक अधिक, व्यावहारिक रूप से कम सिद्ध हुई। फिर भी इसकी अनेक उपलब्धियाँ हैं।

प्राइमरी शिक्षा को तो एक सीमा तक सन्तोषजनक कहा जा सकता है। किन्तु माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा तो अत्यन्त ही निकम्मी है।

माध्यमिक शिक्षा में उत्कर्ष की दृष्टि से भारत सरकार ने सन् १९३२ में 'मुद्रालियर' माध्यमिक आयोग, की स्थापना की, परन्तु उनकी रिपोर्टों पर पानी फेर दिया गया। बहुउद्देशीय माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम है, परन्तु उसकी प्रगति नगण्य और सन्तोषजनक नहीं है। विश्वविद्यालयों की शिक्षा में सुधार 'विश्वविद्यालय अनुदान' आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग ने कॉलिज तथा विश्वविद्यालयों को अनुदान देने के अतिरिक्त कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत नहीं किया।

भारत में शिक्षा पर केवल बजट का ४ प्रतिशत व्यय किया जाता है। यह विषय पूर्णतः उपेक्षित है। वर्तमान मन्त्री तथा उप-मन्त्री देश की शिक्षा व्यवस्था में लाभकारी परिवर्तन लाने के लिए उत्सुक हैं, किन्तु धनाभाव के कारण वे असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में देश में शिक्षा की अत्यन्त ही शोचनीय स्थिति है।

उपसंहार—हमारी शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन होना चाहिए, इन दोषों के कारण यह आवश्यक है कि हम राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का विकास करें। हमारी शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। शिक्षा का महत्व व्यक्ति की स्मरण-शक्ति के विकास में निहित नहीं, बल्कि उसके समूचे व्यक्ति के उत्कर्ष में है।

शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिकता का विकास करना ही नहीं, अपितु व्यक्ति की आध्यात्मिकता का विकास करने में है। शिक्षा मानव में सहयोग, श्रमप्रियता, रचनात्मक काम के प्रति लगाव, बौद्धिक जागृति, वैचारिक स्पष्टता और अच्छे नागरिक बनने की भावना उत्पन्न करने में समर्थ होनी चाहिए। मानव-जीवन में शिक्षा का बहुत महत्व है। अतः वर्तमान शिक्षा-प्रणाली दूषित न होकर चरित्रवान व्यक्ति को उत्पन्न करने वाली होनी चाहिए। मानव का भविष्य अच्छी शिक्षा पर ही निर्भर है।

---

१४. जीवन और साहित्य

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना—जीवन और साहित्य का सम्बन्ध। (२) साहित्य में परिवर्तन। (३) साहित्य और समाज। (४) वर्तमान युग और साहित्य। (५) साहित्य का आदर्श। (६) उपसंहार—सारांश।

साहित्य और जीवन का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे एक-दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध हैं, जिस प्रकार शरीर और आत्मा। साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति और उसकी वास्तविकता दोनों होती हैं। साहित्य समय विशेष की समस्त परिस्थितियों को हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है। किसी भी देश, जाति या समाज की सभ्यता तथा संस्कृति का परिचय हमें उस देश के साहित्य

से प्राप्त हो सकता है। साहित्यकार अपने समय का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी रचनाओं में युग की समस्त जटिलताओं और समस्याओं को जीवन से ग्रहण कर हमारे समक्ष रख देता है। उसके अभिव्यक्त करने के साधन भिन्न हो सकते हैं, किन्तु इतना निश्चित है कि साहित्यकार जीवन से ही प्रेरणा लेकर कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबन्ध, कविता आदि के माध्यम से उन्हें उपस्थित करता है। वस्तुत: हम साहित्य का सृजन इसलिए करते हैं कि हमारे चारों ओर की परिस्थिति हमें प्रेरित करती हैं। कलाकार का भावुक हृदय सुख-दुख से द्रवीभूत हो उठता है। वह अपने हृदय की शान्ति पाने के लिए ही अपने हृदय का भार इस रूप में हलका कर लेता है। सारांश यह है कि जब साहित्यकार का भावुक हृदय अपनी लेखनी से जीवन की समस्याओं को सुलझाने लगता है, तभी साहित्य का निर्माण होता है।

साहित्य सदा परिवर्तनशील होता है। समय के साथ वह परिवर्तित होता रहता है। मानव-जीवन के उत्थान-पतन के साथ उसका भी उत्थान-पतन होता है। आज कितने ही उपन्यास ऐसे हैं जो अपने समय में प्रमुख थे, किन्तु आज वे हमारी परिस्थितियों से भिन्न हैं, इसलिए आज उनका महत्व हमारी दृष्टि में नहीं रह गया है, किन्तु फिर भी उनसे उस युग विशेष की परिस्थितियों का आभास हमें मिल जाता है। शरच्चन्द्र के उपन्यास 'बड़ी बहन', 'देवदास' और 'गोदान' आदि को पढ़कर हम उस समय की सामाजिक कुरीतियों, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों यहाँ तक कि जनता के विचारों की गहराई तक पहुँच जाते हैं। 'गोदान' में उस समय के कृषकों की दशा का नग्न चित्र उपस्थित हो जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में तत्कालीन गांवों और वहां के निवासियों का सजीव वर्णन मिलता है।

साहित्यकार समाज का सुधारक भी होता है। समाज की कुरीतियों और अन्धविश्वासों का उन्मूलन वही कर सकता है। साहित्य किसी देश की आत्मा है। वह जनता के जीवन का साक्षी है। साहित्यकार न केवल समाज का चित्रण ही करता है बल्कि वह उसकी बुराइयों को दूर कर समाज में चेतना भरता है, उसे सजग बनाता है। साहित्यकार समाज का पथ-प्रदर्शक है। मध्य-युग में जीवन से निराश हिन्दू जीवन में चेतना उत्पन्न करने का प्रयास साहित्यकारों ने किया था। उस समय राम और कृष्ण का लोकरक्षक और सूर ने जनता को कितना बल दिया था? स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पहले सुभद्राकुमारी चौहान ने 'झाँकी की रानी' आदि लिखकर किस प्रकार भारतीयों को प्रोत्साहित किया? उस समय अनेक कवियों ने जनता के हृदय में जागृति उत्पन्न कर जन-जीवन को आकृष्ट किया था। इस प्रकार के उदाहरण हमें समस्त देशों के साहित्य में मिलते हैं। साहित्य जन-जीवन को लेकर प्रवाहित होता चला आ रहा है। मानव जीवन की समस्त भावनायें,

आकांक्षाएँ, विकृतियाँ और मानव-जाति का हित उसमें प्रतिबिम्बित होता चला आ रहा है।

आज का युग शोषण और आर्थिक संकट का युग है। इसीलिए साहित्यकार सजग होकर कविता में वेदना करुणा, निराशा, आदि भावों की व्यंजना करते हैं। आज का मानव कितना जर्जर, कंकाल हो गया है, इसीलिए आज का साहित्य भी अपने युग के अनुरूप उसे अभिव्यक्त कर रहा है। जैसे :

'सूखी रोटी या रहस गान ?
देखूं अलस उषा की लाली
या तन के मुरझाये प्रान ?"
अथवा
"हरियाली में देखे हैं
जिसने भूखे सूखे किसान
वह कैसे गाये प्रणय गान"

आज का साहित्यकार इतना सजग है कि वह जीवन के कण-कण को अपनी पैनी दृष्टि से देखकर अंकित कर रहा है। दीन-दुखियों और किसानों की दशा पर आंसू बहाते हुए कवि ने कहा है :

'विद्युत की इस चकाचौंध में
देख दीप की लौ रोती है।
अरी हृदय को थाम महल के
लिए झोंपड़ी बलि होती है।
देख कलेजा फाड़ कृषक
दे रहे हृदय-शोणित की धारें।
बनती ही उन पर जाती हैं
वैभव की ऊँची दीवारें ॥"

इसी प्रकार प्रत्येक देश का साहित्य सदैव अपनी जनता में जीवन भरता रहा है। प्राचीन काल के जीवन से आज हमारे जीवन में अन्तर आ गया है, इनका ज्ञान हम प्राचीन और नवीन साहित्य का अध्ययन कर सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए हमारा प्राचीन और नवीन साहित्य दोनों ही समान रूप से प्रभावित करता है। प्राचीन काल के महाकाव्य रामायण, महाभारत आदि साहित्य की अमर निधियां हैं, जिनके अमर पात्र राम, कृष्ण, युधिष्ठिर लक्ष्मण, सीता, कौशल्या, कैकेयी द्रौपदी आदि जीवन के अनेक अनुभवों को हमारे समक्ष रखती हैं। राम, भरत और सीता आदि का चरित्र नैतिक जीवन को उन्नत बनाने के लिए कितना महान् आदर्श उपस्थित करता है।

आज हम हमारे देश का साहित्य यथार्थ की ओर उन्मुख हो रहा है। उसमें कल्पना की अपेक्षा जीवन की यथार्थता की अभिव्यक्ति अधिक हो रही है। वस्तुतः

साहित्य को ऐसा होना चाहिए जो कल्पना मिश्रित यथार्थ को स्पर्श करता हुआ महान् सन्देश उपस्थित करे तथा हमें कल्याण की ओर ले चले। दूषित एवं निम्न-कोटि का साहित्य जीवन का मार्ग प्रदर्शन करने में असमर्थ होता है। अश्लील एवं दूषित साहित्य जनता की मनोवृत्ति को गन्दा करने में सहायक होता है। जीवन को बनाने के लिए दूषित साहित्य को विनष्ट करने की चेष्टा करनी चाहिए। साहित्य और साहित्य का उद्देश्य तभी सफल कहा जा सकता है, तब वह मानव-जीवन को सत्यं शिवं सुन्दरम् से ओत-प्रोत कर दे।

१५. साहित्य की उपयोगिता (उद्देश्य)

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना, (२) भारतीय मत, (३) आचार्य मम्मट के अनुसार साहित्य के प्रयोजन, (४) पाश्चात्य सिद्धान्त, (५) उपसंहार।

'सहितस्य भावः साहित्यम्' जिनमें हित की भावना निहित हो उसे साहित्य कहते हैं। साहित्य में समान रूप से सबके हित की भावना निहित होती है, किन्तु उसके उद्देश्य के विषय में विद्वानों का बड़ा मतभेद है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक जीवधारी अपने अहंभाव को पुष्ट करने के लिए जो आत्म-प्रकाशन करता है, उससे साहित्य की उत्पत्ति होती है। आदर्शवादियों का कथन है कि—साहित्य एक ऐसा प्रयत्न है जिसके द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के निकट आता है। नीतिवादी कहता है कि—साहित्य से मन और आत्मा का परिष्कार होता है। कलावादी साहित्य का कोई उद्देश्य नहीं मानते।

साहित्य का निर्माण भाषा, विचार, कल्पना और भावों द्वारा होता है। विचार यदि कल्पनात्मक ढंग से प्रकट किये जाते हैं तो साहित्य का रूप ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः निरुद्देश्य कल्पना को साहित्य नहीं कहा जा सकता। साहित्य कभी निरुद्देश्य नहीं होता। कल्पना का सम्बन्ध जनहित से अवश्य होना चाहिए। कुछ लोग केवल कल्पना में सौन्दर्य आवश्यक मानते हैं। उनकी उपयोगिता और अनुपयोगिता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। इसी तरह भावों के शील और अश्लील होने के सम्बन्ध में भी मतभेद है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य उस रचना को कहते हैं जिसमें आनन्द के साथ किसी सत्य का उद्घाटन किया गया हो, जिनकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित एवं प्रभावशालिनी हो। मुंशी प्रेमचन्द्र ने साहित्य का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा था :

"निस्सन्देह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है, पर मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरुषों के प्रेम का जीवन नहीं है।"

भारतीय साहित्यकारों ने साहित्य के दो उद्देश्य कहे हैं। उनमें से एक

अलौकिक पक्ष जीवन के आध्यात्मिक तथा आन्तरिक पक्ष से सम्बन्ध रखता है और दूसरा जीवन के लौकिक अथवा बाह्य पक्ष से सम्बन्ध रखता है ।

भारतीय साहित्यकार साहित्य का प्रथम उद्देश्य मानव मात्र के अन्तस्तल में व्याप्त भावनाओं का अनुभव कर ब्रह्मानन्द महोदय रस की अनुभूति मानते हैं तथा साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त रस की अनुभूति में 'स्व' और 'पर' की भावना का विनाश मानते हैं । इस प्रकार उनकी दृष्टि में साहित्य का प्रधान उद्देश्य 'रस' की अनुभूति है ।

रस की अनुभूति के अतिरिक्त लौकिक पक्ष में भारतीय साहित्यकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में विलक्षणता और कीर्ति तथा प्रीति की प्राप्ति साहित्य का उद्देश्य मानते हैं ।

संस्कृत-साहित्य के आचार्य मम्मट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' में काव्य के छः प्रयोजन बतलाये हैं :

काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षयतये ।
सद्यः परनिबृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।

इनमें पाँचवा सद्यः पर निवृत्ति, अर्थात् अलौकिक आनन्द का प्राप्त तो पूर्वोक्त प्रथम पक्ष का ही रूप है । अन्य पाँच लौकिक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं ।

साहित्य सृजन से यश और अर्थ की प्राप्ति होती है । तुलसी, सूर, आदि कवियों को इससे यश प्राप्त हुआ तथा आधुनिक कवि यश और धन दोनों ही प्राप्त कर रहे हैं ; काव्य के अनुशीलन से-हमें उचित तथा शिष्ट व्यवहार का ज्ञान होता है । अकल्याण को दूर करने में भी काव्य परम सहायक होता है। बिहारी के निम्न दोहे से महाराज जयसिंह को कितना उद्‌वोधन प्राप्त हुआ, इसी के प्रभाव से राजा अपने कर्तव्य की ओर उन्मुख हो गये और प्रजा का कल्याण हुआ :

"नहि पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल ।
अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल ।।"

इस प्रकार काव्य का उपदेश अत्यन्त कोमल और सरस भी होता है । वह कान्ता (पत्नी) के मधुर प्रेम पूर्ण कथन के समान होता है जिसे पूर्ण करने में दुःख और भार नहीं होता बल्कि आनन्द ही प्राप्त होता है ।

साहित्य के उद्देश्य के विषय में पाश्चात्य विद्वानों के अनेक मत हैं । फ्रायड ने अमुक्त भावनाओं की अभिव्यक्ति को साहित्य का प्रधान लक्ष्य माना है । उसका कथन है कि जब वास्तविक रूप में काम का उपभोग न कर उसे चिन्तन रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है, तब साहित्य की सृष्टि होती है । एडलर ने मनुष्य की चिरकालिक हीनता अथवा प्रभुत्व शक्ति की भावना-तृप्ति को ही साहित्य का प्रमुख उद्देश्य माना है । इनके अनुसार साहित्य जीवन के अभावों की पूर्ति मात्र है । क्रोचे ने अभिव्यंजनावाद को साहित्य का मूल उद्देश्य माना है । अभिव्यंजन के अनुसार

साहित्य का उद्देश्य पदार्थों की सफल स्पष्ट अभिव्यक्ति है। ब्रेडले कहते हैं कि कविता, कविता के लिए होती है। वह स्वयं साध्य साध्य है, साधन नहीं।

इनके अतिरिक्त 'मार्क्सवादी प्रचार' को साहित्य का उद्देश्य मानते हैं, जो बिल्कुल असंगत है। इसी तरह साहित्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य सिद्धान्त भी अपूर्ण हैं। भारतीय मत अवश्य युक्तियुक्त और वैज्ञानिक है।

इस सम्बन्ध में हम केवल निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि साहित्य में समन्वय की भावना है। यही भावना साहित्य-सृजन के मूल में है। मनुष्य चिरकाल से मानव-मानव, जड़-चेतन, दृश्य-अदृश्य, विचार-विचार और भाव-भाव में सामंजस्य स्थापित करने की साधना करता चला आ रहा है। अतः इसके लिए विचारों और भावों का पारस्परिक विनिमय आवश्यक है। साहित्य के मूल में स्वयं को दूसरे के निकट लाने की भावना काम करती है। इस सहयोग की भावना का व्यापार प्रसार ही साहित्य का उद्देश्य है।

साहित्य हमारी भौतिक अकांक्षाओं की पूर्ति को स्पर्श करने के साथ-साथ आध्यात्मिक जिज्ञासा को भी शान्त करता है। साहित्य में साधारण जगत् में रहते हुए असाधारण नक्षत्र लोक में चित्रित करता है। साहित्य का एक मात्र लक्ष्य मानव हित है। मानव-जाति के कल्याण की कामना से पूर्ण साहित्य की सत्साहित्य है। साहित्य ही हमें भौतिकता से एक अलौकिक जगत में ले जाता है, जहाँ सत्य शिव और आनन्द एक में मिल जाते हैं। साहित्य से दूर रहने वाला मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं। भर्तहरि ने इसीलिए कहा है।

'साहित्य संगीत कला विहीनः।
साक्षत्पशुः पुच्छविषाणहीनः ॥'

कुछ लोग साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन मानते हैं, किन्तु साहित्य का एकमात्र लक्ष्य मनुष्य है और वह 'सर्वेभवन्तु सुखिनं' का अमर सन्देश उपस्थित करता है। महाकवि भवभूति ने साहित्य को आत्मा की कला कहकर वन्दना की है। इस प्रकार साहित्य हमें सत्य की ओर अग्रसर करता है। सत्य के द्वारा हम सर्व विश्व की कल्पना करते हैं। सत्य और शिव की अनुभूति हमें सुन्दरतम् तक पहुँचा देती है। अतः साहित्य का उद्देश्य हमें जीवन में सत्यं शिवम् सुन्दरम् की अनुभूति कराना भी है।

१६. हिन्दी-काव्य का स्वर्ण-युग भक्तिकाल

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना, (२) भक्तिकाल, (३) निर्गुण और सगुणधारा तथा उनकी विशेषतायें, (४) भक्ति-साहित्य की श्रेष्ठता, (५) उपसंहार।

हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा है। यह भारत की एक अत्यन्त प्रौढ़ उन्नत

और समृद्धिशाली भाषा है। इसका अतीत और वर्तमान अत्यन्त गौरवमय रहा है और भविष्य भी अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होता है। हिन्दी-साहित्य का प्रादुर्भाव ईसा की सातवीं शताब्दी में हुआ, किन्तु काव्य की अवतरित धारा दसवीं शताब्दी से प्रवाहित हुई। इसके आदिकाल में देश की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। क्योंकि इस समय मुसलमानों के आक्रमण भी निरन्तर जारी थे तथा शान्ति के समय देशी राजा अपने को एक-दूसरे से विशेष गौरवशाली सिद्ध करने के लिए आपस में लड़ा करते थे। चारों ओर तलवारों की झनझनाहट सुनाई देती थी। ऐसे अशान्त वातावरण में कला और साहित्य का विकास सम्भव न था। कविगण भी राज्याश्रित रहकर, स्वतन्त्र रचना नहीं करते थे। इसलिए इस युग की काव्यधारा अत्यन्त संकुचित रही है। यह प्रवृत्ति लगभग चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक वर्तमान थी।

इसके बाद हिन्दी-साहित्य का भक्ति युग प्रारम्भ होता है। इस समय भी देश की धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक दशा अच्छी न थी, क्योंकि देश में मुसलमानों का शासन स्थापित हो चुका था, जिससे उत्तर भारत में विरोधी धर्म और संस्कृति का प्रचार बढ़ रहा था और देश में पर्याप्त उथल-पुथल मची हुई थी, किन्तु इतना अवश्य हुआ कि हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों के मिल जाने से प्रत्येक क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई और एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ। इस उथल-पुथल के युग में जन-जीवन में कुछ स्थिरता तो आ गई थी, किन्तु जनता की भावधारा छिन्न-भिन्न होकर अनेक रूपों में प्रवाहित हुई। फलत. इस काल में अनेक विचारक एवं सन्त कवि हुए। जिन्होंने स्वतन्त्र होकर साहित्य-सृजन किया और भगवान के निर्गुण एवं सगुण रूप की उपासना पर बल दिया। इन सन्त कवियो ने निर्गुण एवं सगुण रूप में राम और कृष्ण का लोक-रजक एव लोक-रक्षक रूप प्रस्तुत किया। फलतः इस काल का समस्त साहित्य इनकी चर्चा का विषय बना रहा।

इस काल का साहित्य सर्वोत्कृष्ट और महान् है। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वीरगाथा काल के कारण कवियों के समान इस युग के साहित्यकार राज्याश्रित न थे, वे स्वतन्त्र विचारक थे। उन्होंने जीवन और जगत का समन्वय कर लोगों के भीतर व्यापक चेतना जाग्रत की।

इस काल में निर्गुण और सगुण शाखा के अन्तर्गत कविता क्रमशः ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी तथा राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति की चार उपधाराओं में प्रवाहित हुई। पहली दो धाराओं के प्रवर्तक कबीर और मालिक मुहम्मद जायसी थे और दूसरी दो के तुलसीदास और सूरदास थे। वस्तुतः वही सोलहवीं शताब्दी हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्वर्ण-युग उपस्थित करती है। क्योंकि इसी काल में तुलसी, सूर और केशव आदि महान् युग प्रवर्तक कवि हुए, जिन्होंने अपनी अपूर्व साहित्यिक रचनाओं द्वारा मध्य युग के साहित्य का पूर्ण विकास उपस्थित किया।

भक्त कवियों में प्रमुख गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ राम-

चरितमानस में नीति, ज्ञान, वैराग्य, राजनीति, धर्म, समाज आदि का जैसा रूप उपस्थित किया वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। प्रत्येक दृष्टि से उनका यह काव्य अपूर्व है। काव्य कला, शिक्षा एवं उद्देश्य आदि की दृष्टि से भी यह अनुपम ग्रन्थ है। वास्तविकता तो यह है कि कथा और प्रसंग से, तर्क और बुद्धि से, उपदेश और निर्देश से जिस प्रकार भी सम्भव था गोस्वामीजी ने रामभक्ति को सबसे अधिक सहज, सुलभ और फलदायक प्रमाणित किया। 'रामचरितमानस, में भक्ति धारा का स्वरूप देखिए :

"सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरसहिं राम सुजस बरबारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोई मधुरता सुसीतलताई॥
सो जल सुकृति सालि हित होई। राम भगत जन-जीवन सोई॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सलिल स्रवन मग चलेउ सुहावन॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद शीत रुचि चारु चिराना॥
सुभ सुन्दर सम्वाद वर, विरचे बुद्धि विचार।
तेइ एहिं पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥
सप्त प्रबन्ध सुभग सो पाना। ग्यान नयन निरखत मनमाना।"

इस प्रकार मनोहर घाट बंधे सप्त सोपान संयुक्त निर्मल जल, कमल, मुक्ता, मीन और मराल से सुशोभित एक परम पवित्र निष्कुलष मानस की व्यवस्था की गयी है। वास्तव में भक्तिधर्म का प्रचार कर तुलसी और कबीर ने जनता को कुमार्ग से हटाकर मुक्ति का मार्ग दिखाया। साहित्यिक दृष्टि से सूर, मीरा और हित हरिवंश आदि ने अपनी रचनाओं द्वारा जो तन्मयता उपस्थित की वह साहित्य की महानिधि है। वस्तुत: काव्य और नैतिकता आदि की दृष्टि से साहित्य का जैसा विकास इन भक्त कवियों ने किया वैसा अभी सम्भव नहीं है। सूरदास और मीरा आदि ने स्नेहसिक्त तरल हृदय से निकले हुए अनूठे पदों को पढ़ कर हृदय आप्लावित हो जाता है। तुलसीदास के सर्वगुण सम्पन्न लोकनायक राम के चरित को पढ़कर मन का कलुष विनिष्ट हो जाता है। शृंगार रस का मर्यादित चित्र देखिए :

"राम को रूप निहारित जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूल गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।"

इस प्रकार रस, छन्द, अलंकार, प्रबन्ध पटुता प्राकृतिक चित्रण, मनोवैज्ञानिकता, नैतिकता भक्ति आदि प्रत्येक दृष्टि से हिन्दी-साहित्य का भक्ति-काल 'स्वर्णयुग' कहलाने के योग्य है।

---

१७. वर्तमान हिन्दी-कविता की गतिविधि

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना—संसार की परिवर्तनशीलता, (२) काव्य-कला में परिवर्तन, (३) साहित्य में वादों का प्रभाव, (४) छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, (५) प्रयोगवाद, (६) उपसंहार—सारांश।

संसार परिवर्तनशील है। इसकी समस्त वस्तुएँ समयानुसार परिवर्तित होती रहती हैं। हिन्दी-साहित्य के काव्य को ही लीजिये। इसकी धारा ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से अबाध गति से प्रवाहित हो रही है। इसमें भी समयानुसार परिवर्तन होता रहा है। आरम्भिक काल में हिन्दी-काव्य रूपी शिशु वीरता की गोद में पला। शास्त्रों की झनझनाहट ही उसका शृंगार रही। आगे चलकर भक्तिकाल में वीरता के स्थान को भक्ति ने ले लिया। इस समय तुलसी, सूर, कबीर, मीरा आदि ने भक्ति-रस की जो अपूर्व सरिता प्रवाहित की, उसमें मग्न होकर भारतीय जनता मुगलों की पीड़ा और अत्याचार रूपी पंक को धोकर निर्मल हो गई। उसे राम और कृष्ण के अनुपम चरित्र और सौन्दर्य ने पूर्ण रूप से प्रभावित किया। धीरे-धीरे भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना हो जाने के बाद भारतीय जनता ने शान्ति की साँस ली, किन्तु खेद है कि मुगल सम्राटों की विलासिता के साथ जनता भी उसमें लिप्त हो गयी। कविगण भी आश्रित होकर जीविका के लोभ से समयानुकूल शृंगारमय कविता करके अपने आश्रय-दाताओं का मनोरंजन करने लगे, फलतः अठारहवीं शताब्दी के काव्य पूर्णतः शृंगारमय हो गये। राम और कृष्ण का पावन रूप रसिया और छलिया के रूप में प्रदर्शित किया जाने लगा। साहित्य की स्वच्छन्द धारा राज-महलों की गन्दी नालियों में प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार रीतिकाल का समस्त साहित्य शृंगारमय रहा। उसमें राष्ट्रीयता और देश-भक्ति आदि को कोई स्थान न था। उन्नसवी शताब्दी के आरम्भ में मुगल साम्राज्य के पतन के बाद अंग्रेजों के आगमन से साहित्य भी प्रभावित हुआ और पद्य की दो धाराओं में प्रवाहित हुआ। अब तक केवल हिन्दी में पद्यमय रचनायें ही होती थीं, किन्तु गद्य का परिवर्तन हो जाने के बाद हिन्दी का पूर्ण विकास हुआ। गद्य के अनेक प्रकार के नाटक, कहानियाँ, उपन्यास आदि साहित्य के विविध अंगों में परिवर्तन आरम्भ हुआ। अब तक काव्य की भाषा ब्रज थी। अंग्रेजी राज्य के साथ ब्रज के स्थान को खड़ी बोली ने लिया और काव्य की भाषा खड़ी बोली हो गयी। इसी समय परिवर्तन के साथ भाव-परिवर्तन भी आरम्भ हुआ। कविगण राज्याश्रय छोड़कर स्वतन्त्र रूप से अपने मनोभावों को व्यक्त करने लगे। अब तक जो कविता केवल कामिनी-कलेवर के चित्रण में लगी हुई थी, वह राष्ट्र-प्रेम और देश-भक्ति के गीत गाने में व्यक्त हुई। कविगण देश की दुर्दशा पर आँसू बहाने लगे। उन्हें राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु मोहक प्रतीत हुई। इसी समय देश की राजनीति

में परिवर्तन के कारण साहित्यकार अत्यन्त निराश हो गये और साहित्य की धारा में परिवर्तन आ गया।

कविगण अपने हृदय के समस्त सुख-दुख, आशा-निराशा तथा कशमकश को प्रकृति का आधार बनाकर व्यक्त करने लगे। फलतः आधुनिक युग की कविता करुण वेदना, निराशा आदि से ओत-प्रोत हो गयी। इस नीरसता का प्रभाव जन-जीवन पर भी हुआ और कविता में स्पष्ट दिखाई देने लगा। ऐसे समय में जयशंकर प्रसाद महादेवी वर्मा, निराला आदि ने अपनी रचनाओं से करुणा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया। 'आँसू' में करुणा का एक चित्रण देखिये

"जल उठा स्नेह दीपक सा,
नवनीत हृदय था मेरा।
अवशेष धूप रेखा से,
चित्रित कर रहा अंधेरा॥"

धीरे-धीरे छायावाद के स्थान पर रहस्यवाद प्रतिष्ठित हो गया और कविगण चिन्तन रूप में या आन्तरिक वेदना या व्याकुलता की अनुभूति के रूप में व्यक्तिगत कविता लिखने लगे। इसलिए यह कविता जन-साधारण में आनन्द का संचार करने में असमर्थ रही। एक उदाहरण लीजिए :

"नीचे विपुला धरणी है,
दुख भार वहन सी करती।
अपने खारे आँसू से,
करुणा सागर को भरती॥"

इसी समय हिन्दी-काव्य में अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने समय-समय पर अपने मन के सुख-दुःख तथा अनुभूतियों से प्रभावित रचना की। अपनी धुन में मस्त रहने वाले इन मनमौजी कवियों ने कभी-कभी अपने समाज की घटनाओं से प्रभावित होकर देश-भक्ति के गीत गाए हैं। ऐसे कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, भगवतीचरण वर्मा, गुरुभक्तसिंह 'भक्त', 'नवीन' और 'बच्चन' आदि हैं। कवि की अभिलाषा के रूप में निम्न गीत देखिए :

"मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाव वीर अनेक।"

× × ×

"सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती, मुट्ठी में मन चाही।
कैसे पूजूँ गुमराही को मैं हूँ एक सिपाही॥"

आधुनिक कविता प्रकृति की ओर झुकती जा रही है। उसकी भाषा तत्सम प्रधान और नवीन छन्दों से युक्त है, वह मुक्तक होने के साथ गेय भी है।

इधर कुछ दिनों से वर्तमान कविता छायावाद और रहस्यवाद में मुख मोड़कर प्रयोगवाद की ओर उन्मुख हो रही है। प्रगतिवाद समाज के भौतिक विकास

में विश्वास रखने वाला, विकासशील, विषमता विरोधी भावनाओं की मान्यताओं को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है। वह मानव सत्ता पर विश्वास करता है। भिखारी, पागल, किसान, मजदूर आदि शोषित वर्ग इस कविता के विषय होते हैं। प्रत्येक समस्या को यथार्थ की कसौटी पर देखा जाता है। प्रगतिवादियों का मूल उद्देश्य जन-मगल की भावना है, किन्तु ऐसी अधिकांश रचनाओं में जीवन-शक्ति का सर्वथा अभाव है। प्रगतिवादी कविता का एक उदाहरण देखिए :

"बीते युग की परछाईं सी, बीते युग का इतिहास लिये।
'कल' के उन तन्द्रिल सपनों में, अब का निर्मम उपहास लिये।"
"हिलती-डुलती हँसती-कँपती, कुछ रुक-रुककर कुछ सिहर-सिहर।
"चरमर-चरमर चूँ चरर मरर, जा रही चली भैंसा गाड़ी।।"

प्रगतिवाद मानव-जीवन के भौतिक पक्ष पर ही विचार करता है। यदि रोटी की समस्या को सुलझाने वाला साहित्य है। प्रगतिवाद ने यद्यपि कविता को स्वछन्द वातावरण में साँस लेने का अवसर दिया है, किन्तु उसकी कविता जनता के लिए होते हुए भी जनता से दूर है।

उसी प्रकार की सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप अब साहित्य में 'प्रयोगवाद' का जन्म हुआ। यह हिन्दी-काव्य की अति आधुनिकतम प्रवृत्ति है। प्रयोगवाद में रूढ़ियों और खोखली परम्पराओं के प्रति विद्रोह की भावना रहती है। वह स्वस्थ सामाजिक जीवन दर्शन की खोज करना चाहता है तथा उसके अनुरूप इतिहास निर्माण की चेष्टा कर रहा है। प्रयोगवाद का एक उदाहरण लीजिए :

"देखो देखो नौजवान
कितनी बड़ी बुरी हालत में तेरा हिन्दुस्तान
धोती के लिए खड़ा कोई साड़ी के लिए परेशान
कोई गमछा खोज रहा है दुकान दुकान।"

इस प्रकार की कविता निश्चित रूप से अपना स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सकती। इस वाद की कितनी कविताओं में विदेशी प्रवृत्ति भी दीख पड़ती है। आज की कविता का विषय क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। सारांश यह है कि वर्तमान हिन्दी-काव्य द्रुतगति से बढ़ रहा है। आशा है वर्तमान विविधता के बीच से क्रमशः एक प्रौढ़ मानवतादी स्पष्ट और जीवन-सौन्दर्य से पूर्ण काव्यधारा प्रभावित होगी।

१८. सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

रूपरेखा

(१) हमारी आदर्श परम्परा, (२) सत्य का महत्व, (३) शिव का महत्व, (४) सुन्दर का महत्व, (५) उपसंहार ।

सत्यं, शिवं, सुन्दरम् चाहे भारतीय मनीषा का शब्द न रहा हो, किन्तु इसकी मूल आत्मा में भारतीयता की गन्ध अवश्य है । भारतीय आदर्श एवं पवित्र निष्ठा में वह शब्द इस तरह रच-पच गया है कि हम इसे अनायास ही भारतीय शब्दावली के रूप में स्वीकार कर लेते हैं । कारण स्पष्ट है – हमारी आदर्श परम्परा में ऐसे कितने शब्द हैं जो जीवन को समष्टि में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, उनकी आत्मा में सम्पूर्ण मानवता की आत्मा मुखरित होती है । इसलिए हम इन शब्दों की प्रकृति में अभारतीयता का लेशमात्र भी नहीं पाते ।

सत्य क्या है ? यह एक दार्शनिक प्रश्न है, जिसे याज्ञवल्क्य से लेकर गाँधी, सुकरात से लेकर कांट तथा कनफ्युसियम से लेकर फूहान तक ने अपने तर्क के निकष पर कसा, ज्ञान मीमांसा पर ठोका-पीटा, किन्तु वह दुर्बोध ही बना रहा । कविवर 'प्रसाद' के शब्दों में सत्य केवल :

मेधा के क्रीड़ा पिजर का पाला हुआ है ।

वास्तव में हमारी व्याख्या 'सत्य' के इस स्वरूप के निराकरण से तात्पर्य नहीं रखती । वस्तुत 'सत्य' कुछ भी हो, उसकी सीमाएँ एक ओर चाहे अगम्य ब्रह्म का स्पर्श कर, दूसरी ओर स्थूल जड़ को अपनी परिधि में घेरती हों किन्तु 'सत्य' से हमारा तात्पर्य जीवन की उन प्रेरणाओं एवं व्यवहारगत नीतिवादिता से है, जो इसे क्रियान्वित करती हैं । प्रकारान्तर से हमारा तात्पर्य जीवनगत 'सत्य' से है, किन्तु यहीं पर सत्य और यथार्थ से टक्कर शुरू हो जाती है ।

सत्य एवं यथार्थ क्या किसी वस्तु के दो पहलू हैं, या यथार्थ सत्यजात एक भावना मात्र । प्रायः इस विषय में यही विचार किया जाता है कि यथार्थ सत्य-प्रसूत एक विचार मात्र है; जिसके माध्यम से हम सत्य के दर्शन करते हैं । किन्तु यह वैसे ही सत्य है जैसे हम कहें कि महाकाव्य ने 'कामायनी' को जन्म दिया है । वास्तव में कामायनी एवं महाकाव्य जिस तरह दो परस्पर पृथक तत्व है, ठीक उसी प्रकार सत्य और यथार्थ, किसी वस्तु की दो अभिव्यक्तियाँ हैं, उस अभिव्यक्ति में से सत्य स्वतः स्फूर्त है और यथार्थ को हम परिवेश की पृष्ठभूमि में देख पाते हैं । इसीलिए कुछ तत्वों को जिनका महत्व किंचितमात्र भी नहीं है; यथार्थ के दर्शन नहीं होते ।

अब प्रश्न सत्य के प्रकाशन का उठता है । सत्य का स्वभाव है स्वतः स्फूर्त होना अर्थात् उसमें स्वप्रेरकत्व का तत्व निहित है सत्य का यह गुण न होता तो

सम्भव है विश्व की समस्त सहज अभिव्यक्तियाँ प्रकाशित न होतीं । यही सहज अभिव्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न स्वरूप ग्रहण करती है । प्रकारान्तर से विभिन्न सन्दर्भों में यह स्वभाव बनकर व्यक्ति होता है । चित्र, संगीत, काव्य-कला आदि ललित कलाओं में सत्य से स्वतः हेय बन जाता है ।

सत्य की इसी मीमांसा तक पहुँचते-पहुँचते हमें एक शब्द से साक्षात्कार होता है—वह है, कुत्रिमता' । वह शब्द असत्य नहीं है, कला-स्वभाव ही यदि उसका 'सत्य' पक्ष है, तो उसका प्रयत्नजात आरोपण 'कृत्रिमता' है । वह असत्य नहीं होगा, क्योंकि उस कृत्रिमता का भी अपना एक सत्य है, जो स्वाभाविकता का सत्याभास है । अतः इस अत्याचार को हम असत्य की सज्ञा नहीं दे सकते । यहीं हमारी परिधि विशेष रूप से स्पष्ट हो जाती है—सत्य वस्तु का चिरन्तन स्वभाव और उस स्वभाव से पलायन ही कृत्रिमता, आडम्बर, छल या आत्म-प्रवंचना है ।

क्रोचे आदि विद्वानों का कहना है कि सत्य का स्वभाव बड़ा ही कोमल है तब इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक हो जाता है कि सत्य का स्वरूप जब इतना कोमल है कि वह लाजवन्ती नायिका की भाँति केवल नयन-राग मात्र से आत्म-समर्पण कर देती है, तो उसकी उपयोगिता क्या ? दूसरे शब्दों में उनका 'शिव' पक्ष क्या है ? क्या सत्य का स्वभाव 'शिवम्' पक्ष की अवमानना करना है ? या स्वतः 'शिवं' सत्य को आत्मसात कर लेता है ।

'शिवं' क्या है ? यह भी एक तात्विक प्रश्न है और इसका दृष्टिकोण अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है, किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि 'शिवं' विश्व-चेतना में निहित वह तत्व है जो मानव को 'हित' की ओर ले जा सके । 'शिवं' वास्तव में साधन पक्ष की ओर उन्मुख एक साध्य पक्ष है; जो स्वतः तो पूर्ण है, किन्तु सत्य से पृथक कोई तत्व नहीं । सत्य के स्वभाव-निर्देशन द्वारा स्पष्ट हो चुका है कि सत्य स्वतः प्राणवान् है । सत्यता कोई सापेक्षिक मूल्य नहीं है और न सत्य दृष्टिकोणपरक ही है । सापेक्षिक तो सत्य का यथार्थ पक्ष है और वह दृष्टिकोणपरक भी है । इस दृष्टिकोण-परक भवना में ही सुख-दुःख, ग्लानि-द्वेष आदि मनोविकार निहित रहते हैं । किन्तु इन सब के परे जहाँ सत्य का दर्शन होता है । वहाँ ज्योति की सद्यःप्रकीर्ण आभा से जगत-मण्डल आलोकित हो उठता है । आचार्य शुक्ल के शब्दों में—"मंगल की ऐसी वर्षा होती है कि सारा जीवन जगमगा उठता है ।" कारण स्पष्ट है—सत्य बिना 'शिवं' टिक ही नहीं सकता ।

"सत्यं' और 'शिवं' तथा 'सत्यं' परस्पर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं —जो पृथक अस्तित्व रखते हुए भी एक हैं । अस्तित्व, दूसरे की स्थिरता पर निर्भर है । सत्य स्वतः स्फुरणशील है, तो 'शिव' उस स्फूर्ति को प्रकाश देकर उसे जन-जीवन में खींच लाने को बाध्य करता है । 'शिव' एक ओर स्वतः 'सत्यं' से

परिव्याप्त है तो दूसरी ओर 'सत्य' को गति देता है। तथ्य स्पष्ट है—शिव बिना सत्यं के प्रकाश-हीन-दीपक की भाँति व्यर्थ ही होगा, क्योंकि बिना सत्यं को लिए तो 'शिवं' का ढाँचा स्थिर ही नहीं किया जा सकता।

'शिवं' शब्द की जटिलता प्रायः लोगों को भ्रम में डाल देती है और इसे वे उपयोगिता का पर्याय समझने लगते हैं। उपयोगिता ठीक यथार्थ की भाँति है तथा यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उपयोगिता यथार्थ की ही अभिव्यक्ति है। क्योंकि उसमें कृत्रिम योजनाओं का अभाव है। दूसरी ओर 'शिव' सत्यं का स्भाव है, जो स्वतः प्रकट होकर सत्यं की मर्यादा की ही प्रतिष्ठा नहीं करता अपितु उसके स्वरूप को भी पूर्णरूपेण स्पष्ट करता है।

'शिवं' के पश्चात् 'सुन्दरम्' का प्रश्न उठता है। क्या सौन्दर्य अपनी परिधि से 'सत्यं' एवं 'शिवं' को समेट कर चलता है? क्या सौन्दर्य के परस्पर दो पक्ष—'सत्यं' 'सुन्दरम्' अनिवार्य तत्व हैं या सौन्दर्य सत्य एवं शिवं का पक्ष हैं। अंग्रेजी कवि कीटस ने कहा है :

"सत्य और सौन्दर्य परस्पर एक दूसरे के समर्थक तत्व हैं।"

इस सूत्र वाक्य का तथ्य स्पष्ट है, जैसा कि क्रोचे ने कहा है—"आकृति के सहज प्रकाशन के लिए उसका स्वभाव अर्थात् सत्य की अभिव्यक्ति आवश्यक है जहाँ स्वाभाविकता का रंग जितना ही गहरा होगा, सौन्दर्य अभिव्यक्ति उतनी ही प्रखर होगी।

वस्तुतः काव्यकला के उद्देश्य एवं साधन दोनों सौंदर्य के समर्थक हैं। इसीलिए काव्य-कला से आनन्द की सृष्टि सम्भव है। जब हम सत्यं एवं शिवं के साथ सौंदर्य का 'सुन्दर' शब्द जोड़ देते हैं तो यह पद-योजना काव्य की वाक्यावली बन जाती है। किन्तु जहाँ तक विभिन्न विचारकों ने इसी की व्याख्या की है, यह शब्दावली विचार-मय सारभूत सामग्री के रूप में सिद्ध होती है :

(१) सत्यंम—दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है।

(२) शिवम्—आचार-दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है।

(३) सुन्दरम्—काव्य-कला का सूत्र वाक्य है।

परन्तु तीनों मिलकर एक विचार-चेतना की समष्टि का निर्माण करते हैं, जहाँ जीवन की पूर्णता मिलती है। अतः ये तीनों शब्द की पूर्णता के द्योतक तीन प्रकाश-केन्द्र हैं, जिनके आधार पर अन्ध-मानव अपने लक्ष्य-पथ की ओर गमन करता है।

अब 'शिवम्' एवं सुन्दरम् का प्रश्न उठता है। क्या प्रत्येक शिव सुन्दर है और प्रत्येक सुन्दर शिव है? प्रथम समस्या नीति शास्त्र की समस्या बन जाती है, क्योंकि आचार क्या सुन्दर होना चाहिए? दूसरा प्रश्न साहित्यिक समस्या बन कर खड़ा हो जाता है। अब समस्या यह है कि 'क्या काव्य के सुन्दरम् में शिवत्व की अनिवार्यता है? शुद्ध कलावादी इसकी उपेक्षा करते हैं, किन्तु नीति एवं उपयोगिता-

वादी इसी 'सुन्दरम्' को प्रश्रय देते हैं, जो 'बहुजन हिताय' एवं 'बहुजन सुखाय' की पृष्ठभूमि पर टिका है।

इस प्रकार समस्त मूल्यों के निरीक्षण के उपरान्त निष्कर्ष यह निकलता है कि 'सत्यम्' एक दार्शनिक समस्या है, किन्तु जीवन का समस्त समस्याएँ 'सत्यम्' से ओत-प्रोत हैं, अतः 'शिवम्' को भी 'सत्यम्' के आश्रय में आना होगा। जीवन का सौन्दर्यगत मूल्य भी है, अर्थात् जीवन के लिए भावात्मक सत्ता अपरिहार्य है। किन्तु यह 'सुन्दरम्' बिना 'सत्यम्' एवं शिवम् के अस्तित्व-हीन सिद्ध होती हैं। अस्तु वे तीनों, मानव मूल्यों की पूर्णता 'त्रिदेव' की भाँति ही करते हैं।

---

१६. हिन्दी उपन्यास का स्वरूप और विकास

(१) उपन्यास का रूप, (२) हिन्दी में उपन्यास का प्रारम्भ, (३) प्रेमचन्द्र युग, (४) उपन्यास का वर्तमानरूप, (५) उपन्यासों पर बाह्य प्रभाव (६) उपसंहार।

उपन्यास का रूप—गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपन्यास मुख्य हैं। उपन्यास मानव-जीवन तथा समाज पर आधारित पूर्ण कथानक होता है। यह कहानी से भिन्न है। कहानी में जीवन के किसी एक ही पक्ष का चित्रण होता है, परन्तु उपन्यास में जीवन की झांकी होती है। उपन्यास मानव-जीवन तथा समाज की विभिन्न घटनाओं का संग्रहीत रूप होता है। इसमें कथावस्तु का व्यवस्थित संगठन होता है। चरित्र-चित्रण, देशकाल और उद्देश्य पर पूर्ण ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार उपन्यास का क्षेत्र जीवन से पूर्णतया सम्बद्ध है।

हिन्दी-उपन्यास का प्रारम्भ—बहुत से विद्वान इंशाअल्लाखाँ की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं, परन्तु अन्य उसे उपन्यास स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं है, वह उसे केवल कहानी ही मानते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी-उपन्यास का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से हुआ।

हिन्दी-साहित्य में उपन्यास के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मनोरंजन पर ही विशेष ध्यान दिया गया। प्रारम्भिक उपन्यासकारों में प० किशोरीलाल गोस्वामी तथा देवकीनन्दन खत्री का नाम महत्वपूर्ण है। इन लेखकों ने ऐय्यारी, जासूसी तथा ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। इन लोगों ने कतिपय सामाजिक उपन्यासों की रचना भी की है। इन लेखकों ने विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। गोस्वामी जी ने लगभग ६५ उपन्यासों की रचना की है। आपके उपन्यासों में श्रृंगार का नग्न चित्रण किया है। 'चपला' शीर्षक उपन्यास सर्वाधिक श्रृंगार-रिक उपन्यास हैं।

गोस्वामी जी के बाद देवकीनन्दन खत्री का प्रमुख स्थान है। आपने उपन्यास के लिए क्षेत्र तैयार करने का कार्य किया। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'चन्द्रकान्ता संतति', 'भूतनाथ', 'गढ़-कुण्डार' आदि हैं। इन उपन्यासों के घटना-चक्र के जंजाल

में पाठक उलझकर शेष संसार को भूल जाते हैं तथा तन्मय होकर उसी में रमे रहते हैं। विचित्र रूप से घटनाओं का क्रम बढ़ता चलता है तथा उसमें अद्भुत अद्भुत घटनाएँ घटती जाती हैं। तिलिस्म और ऐय्यारी की विचित्र करामात दिखाई जाती है। इन उपन्यासों ने अत्यधिक पाठकों को हिन्दी-उपन्यास की ओर आकर्षित किया। इनका सामाजिक प्रचार खूब हुआ। भूतनाथ' और 'गुप्त गोदान' देवकीनन्दन जी पूरा न कर सके थे; जिन्हें क्रमशः दुर्गाप्रसाद खत्री तथा किशोरी लाल जी ने पूर्ण किया। इनके अतिरिक्त 'वीरेन्द्र वीर', 'नरेन्द्र मोहनी', 'कुसुम कुमारी' आदि उपन्यासों को देवकीनन्दन जी ने लिखा है। इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। इसलिए इनमें मन रमाने के लिए उपयुक्त सामग्री दी गई हैं। इनकी भाषा सरल है तथा कथानकों का विस्तार इस प्रकार से किया गया है कि पाठक की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। उपन्यास के विकास-क्रम में बाबू गोपालराम गहमरी का स्थान भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने लगभग ५०-६० उपन्यासों की रचना की है। इन उपन्यासों में ऐय्यारी तथा जासूसी तत्वों की अधिकता है। भाषा सरल तथा व्यावहारिक है, शैली सुगम तथा उद्देश्य मनोरजन हैं। इस प्रकार जासूसी और तिलिस्मी उपन्यासों का पूरा विकास हुआ। इन उपन्यासों में लेखकों ने सुरुचि तथा सामाजिक कल्याण पर ध्यान कम दिया, अतः उपन्यास-क्षेत्र में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ।

प्रेमचन्द-युग—हिन्दी-उपन्यास क्षेत्र में परिवर्तन लेकर 'हरिऔध' जी का आगमन हुआ उन्होंने अपने दोनों उपन्यासों—**'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल'** में भाषा पर विशेष ध्यान दिया। संस्कृत-गर्भित, पुष्ट और सबल भाषा का प्रयोग उपाध्याय जी ने अपने उपन्यासों में किया। कथावस्तु और कलात्मकता की दृष्टि से ये उपन्यास सफल कहे जायेंगे। इनका कथानक सामाजिक है तथा वर्णन में स्वाभाविकता है। **श्री लज्जाराम मेहता तथा ब्रजनन्दनसहाय** इस युग के प्रारम्भिक उपन्यासकार हैं। किन्तु **उपन्यास-क्षेत्र में क्रान्तिकारी युग परिवर्तन प्रेमचन्द जी के उपन्यासों से होता है**। इन्होंने पाठकों के सामने एक विस्तृत और ठोस दृष्टिकोण रखा। 'सेवासदन' ने मुंशी जी की औपन्यासिक कला को उपयोगिता सिद्ध कर दी। इनके उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। समाज के विभिन्न वर्गों का यथार्थ चित्र खींचा गया है, अपने समय के परिवर्तनों को इन्होंने अपने उपन्यासों में महत्वपूर्ण स्थान दिया। गांधीवादी विचारधारा असहयोग आन्दोलन आदि का स्पष्ट प्रभाव इनके उपन्यासों पर पड़ा है। फिर भी मुंशी जी का दृष्टिकोण आदर्शवादी ही माना जायेगा। इनके यथार्थ चित्रण के पीछे एक सुन्दर आदर्श रहा करता था। सुधार की भावना से ये प्रेरणा प्राप्त करते थे। **'सेवा-सवन'** में वेश्या-सुधार का प्रभाव इसी भावना का परिणाम है। उपन्यास-क्षेत्र में इनकी देन अमर रहेगी।

प्रेमचन्द जी का जीवन कठिन परिस्थतियों में बीता, आर्थिक अभाव उनके जीवन का अंग बनकर आया और रहा। स्वयं वे देहात के मध्यम वर्ग में उत्पन्न हुए थे तथा उससे उनका बरावर सम्बन्ध रहा। शहर में उन्हें शिक्षा मिली तथा अपने जीवन का उत्तरार्द्ध उन्होंने शहर में ही व्यतीत किया, अतः उन्हें ग्रामीण और शहरी जीवन के अनुभवों को चित्रित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने बी० ए० तक येन-केन प्रकारेण शिक्षा प्राप्त की। बचपन से ही उन्हें लिखने का शौक था। पहले वे उर्दू में लिखा करते थे, किन्तु बाद में हिन्दी लिखना आरम्भ कर दिया। तब से अन्त तक वे लिखते रहे। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं पर आर्यसमाजी विचारधारा का पूरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'निर्मला' में अनमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। इसमें भी एक प्रकार के आदर्श और **सुधार** की भावना है। '**कर्म भूमि**' और '**रंग भूमि**' पर गांधी जी के विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। 'गबन' में आधुनिक समाज की एक समस्या का बड़ा सुन्दर निरूपण है। कायाकल्प एक बोझिल कथानक वाला उपन्यास माना जाता है। 'गोदान' इनका अन्तिम उपन्यास है। इनकी कथावस्तु सामान्य किसान परिवार के यहाँ से ली गई है। प्रेमचन्द जी ने सामाजिक कुरीतियों की पूरी निन्दा की है तथा उनके सुधार की आशा भी व्यक्त की है। उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ भी लिखी हैं।

उपन्यास के विकास में प्रसादजी ने नया दृष्टिकोण रखा। उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा के बल पर उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया। इनके उपन्यास तितली, 'कंकाल' और 'इरावती' हैं। इनमें 'इरावती अपूर्ण है। प्रसाद जी का दृष्टिकोण यथार्थ वादी था। उन्हें उपन्यास लिखने में काफी सफलता मिली तथा भावी उपन्यासकारों के लिए मार्ग-दर्शन का कार्य भी उन्होंने किया। समाज के विभिन्न वर्गों के चित्रांकन में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। भाषा की दृष्टि से सरलता का अभाव होने पर भी उनमें आकर्षण है तथा संगठन और कथा-विकास की क्षमता है।

पारिवारिक जीवन पर आधारित उपन्यास लिखने वालों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का नाम महत्वपूर्ण है। 'भिखारिणी' और 'माँ' इनके सफल उपन्यास हैं। पारिवारिक जीवन की विविध समस्याओं का सुन्दर चित्रण और समाधान इन उपन्यासों में किया है। छुआछूत जैसे सामाजिक विषयों पर भी इन्होंने प्रकाश डाला है।

वर्तमान युग—श्री वृन्दावनलाल वर्मा वर्तमान युग के प्रतिष्ठित उपन्यासकार रहे हैं। आपने ऐतिहासिक विषयों पर अधिक ध्यान दिया है। 'झाँसी की रानी', 'गढ़-कुण्डार', विराटा की पद्मिनी' मृगनयनी' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन उपन्यासों के कथानक प्रायः राजघरानों से ही सम्बन्धित हैं। इनके उपन्यासों में आदर्श, यथार्थ प्रेम, ऐतिहासिक तत्व आदि विभिन्न विषयों का सुन्दर समन्वय बन पड़ा है। वर्मा जी कुशल तथा स्वाभाविक कलाकार थे।

वेचन शर्मा 'उग्र' सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री गोविन्दवल्लभ पंत आदि अनेक उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं से इस क्षेत्र की सेवा की है। निराला जी 'निरूपमा', 'अलका', 'प्रभावती' आदि तथा 'उग्र' जी ने 'चन्द हसीनों के खतूत', 'बुधुवा की बेटी', 'दिल्ली का दलाल' तथा 'शराबी' आदि अच्छे उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में वर्तमान सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। बाबू भगवतीचरण वर्मा के दो उपन्यास 'दो बहनें' तथा 'चित्रलेखा' प्रसिद्ध हैं।

वर्तमान युग के प्रसिद्ध लेखकों में जैनेन्द्र, नागर, यशपाल अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, उपेन्द्रनाथ अश्क, रामचन्द्र तिवारी आदि हैं। अज्ञेय जी तथा अन्य वर्तमान लेखकों ने इस क्षेत्र में नई कला का प्रारम्भ किया है। नदी के द्वीप और 'शेखर' एक जीवनी' तथा 'अपने-अपने अजनवी' इनके अच्छे उपन्यास है। वर्तमान समय के लेखकों के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं और उनकी विचारधारायें विभिन्न दिशाओं की ओर संकेत करती हैं। समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का उन पर प्रभाव है। कुछ उपन्यासकारों में विद्रोह तथा स्वच्छन्दता की भावना प्रमुख है।

गद्य साहित्य के प्रायः सभी अंगों का विकास तेजी से हो रहा है। सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव उपन्यासों के ऊपर भी पड़ रहा है। आज उपन्यास लिखने का दृष्टिकोण काफी बदल गया है। नये उपन्यासकार— उदयशकर भट्ट, मोहनसिंह सेंगर, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे आदि ने नया प्रयोग इस क्षेत्र में प्रारम्भ किया है। उपन्यास-साहित्य का विकास सुन्दरता से हो रहा है और आगे भी होता रहेगा। भावी युग के लिए वर्तमान युग अच्छी पृष्टभूमि बना रहा है।

---

२०. हिन्दी-कहानी का स्वरूप और विकास

(१) भूमिका, (२) हिन्दी कहानी का प्रारम्भ, (३) प्रेमचन्द-प्रसाद-युग (४) कहानी का वर्तमान रूप, (५) कहानी पर बाह्य प्रभाव, (६) उपसंहार।

भूमिका—मानव-जीवन के विकास के साथ ही कहानी का विकास मानना पड़ता है। मानव-स्वभाव की विशेषता है कि वह अपने अनुभवों को दूसरों को सुनाना तथा दूसरों में अनुभवों को सुनाना चाहता है। इसमें उसकी अपूर्व उत्सुकता रहती है। अतः वह अनादि काल से इस प्रकार की घटनाओं की कथा कहता सुनता आ रहा है। यहीं से कहानी का प्रारम्भ माना जा सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में कहानी का रूप मौखिक रहा। फिर संस्कृत-साहित्य के गद्य युग से इसका लिखित विकास होता चला आ रहा है। संस्कृत-साहित्य में 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' 'बेताल पंचविंशति', 'कथा-सरित सागर' आदि कहानी-संग्रहों का सृजन हुआ। जैन और बौद्ध युगों में जातक तथा अन्य धर्म-कथाएँ प्रचलित हुईं। इन कहानियों की शैली तथा इनके उद्देश्य भिन्न थे। अतः उनमें कहानी की कलात्मकता का अभाव है।

हिन्दी-कहानी का प्रारम्भ—हिन्दी में इंशाअल्लाखाँ की **'रानी केतकी की कहानी'** प्रथम कहानी मानी जाती है और इस पर फारसी का स्पष्ट प्रभाव है। कहानी-कला की दृष्टि से यह सफल कहानी नहीं कही जा सकती है। **'राजा भोज का सपना'** आज की कहानी के अधिक समीप है। **'इन्दुमती'** कहानी को लाला किशोरीलाल ने १९०० ई० में प्रकाशित किया, इस पर अँग्रेजी के **'टेम्पस्ट'** का प्रभाव अधिक है। इसके बाद अनेक कहानियों की रचना हुईं।

कहानी के पाँच तत्व—(१) कथावस्तु, (२) पात्र और चरित्र-चित्रण (३) देशकाल, (४) उद्देश्य और (५) शैली मुख्य है। कुछ लोग कथोपकथन को भी मानते हैं। इन तत्वों के समुचित योग से लिखी गई साहित्यिक कहानी ही आज की वास्तविक कहानी कही जाती है। ऐसी कहानियों का विकास वींसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही माना जाता है। शुक्ल जी का 'ग्यारह वर्ष का समय', किसी बंगाली महिला का **'दुलाईवाली'** गुप्त जी की 'निन्यानवे का फेर' आदि प्रारम्भिक कहानियाँ हैं।

प्रसाद जी ने **'इन्दु'** पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया, जिससे कहानी के स्वस्थ विकास में बड़ा योग मिला। एक ओर तो अनेक नवीन कहानीकारों को प्रोत्साहन मिला, दूसरी ओर कहानी की कलात्मकता में सुधार हुआ। साथ ही साथ कहानी के उद्देश्य को निश्चित करने में सरलता हुई। कहानी लिखने के कई उद्देश्य सामने आये। कहानी के उद्देश्य हैं—मनोरंजन, सिद्धान्त प्रचार, भाषा का परिष्कार शिक्षा देना तथा सामाजिक और व्यक्तिगत सुझाव आदि। इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए कहानी रचना होने लगी।

प्रसाद-प्रेमचन्द-युग—अध्ययन की सुविधा के लिए कहानी के विकास-क्रम को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - **प्रथम उत्थान** तथा **द्वितीय उत्थान**। **कहानी के प्रथम उत्थान** से प्रेमचन्द जी का सहयोग अधिक महत्वपूर्ण है। इस युग की कहानियों में जीवन के विविध अंगों पर प्रकाश डाला गया है तथा कथानक समाज के मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के जीवन से लिया गया। इस युग के कहानीकारों ने जीवन की विविध समास्याओं को कहानी में स्थान दिया है। इन कहानियों में अनेक अनुभवों की अच्छी अभिव्यक्ति हो सकी है। मुन्शी प्रेमचन्द जो कहानियों की अपेक्षा उपन्यासों में अधिक सफल रहे, उनकी मुख्य कहानियाँ हैं—'आत्माराम' 'सुजान भगत', 'नशा', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'नमक का दारोगा' आदि। 'आकाश दीप', 'ममता', 'परीक्षा' आदि प्रसाद जी की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। प्रसाद जी की कवित्व-शक्ति इन कहानियों में भी आ गई हैं। इस प्रकार कहानी साहित्य का प्रथम उत्पादन प्रायः सामाजिक तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण को लेकर चला है।

कौशिक जी ने सामाजिक विषयों पर सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। आपने लगभग ३५० कहानियाँ लिखीं। इनमें 'ताई', 'मनुष्यता का दण्ड' आदि मुख्य हैं। आपने कई उपन्यासों की रचना भी की हैं पर कहानी में ही आपको अधिक सफलता

प्राप्त हुई है। राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों से संबंधित बहुत सी कहानियों की रचना सुदर्शन जी ने की। आपने अपनी कहानियों में स्वाभाविक और यथार्थ चित्र खींचा है। 'गुरुमंत्र', 'न्याय मन्त्री' आदि कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। इन लेखकों ने कथोपकथन पर अधिक ध्यान दिया है। किसी-किसी कहानी में प्रेमचन्द युग का आदर्शवादी दृष्टिकोण भी दिखायी पड़ता है। घटना-चक्र व्यवस्थित तथा पात्रों के चरित्र प्रतिनिधि रूप आये हैं। अधिकांश पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दीखते हैं। इन लेखकों ने भाषा की स्वाभाविकता तथा गतिशीलता का अच्छा निर्वाह किया है।

कहानी का वर्तमान युग—आदर्शवादी भावनायें वर्तमान युग में निर्बल पड़ गई हैं। इस आदर्शवाद की प्रतिक्रिया हो रही है। कविता, उपन्यास, निबन्ध आदि की तरह कहानियों में भी यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। इन कहानीकारों ने समाज के नग्न चित्र को सजीव रूप में उपस्थित किया है, किन्तु जीवन और समाज का आदर्श गिर गया है। इन कहानियों में आकर्षण तो है, पर अनुकरण करने योग्य चित्र कम ही मिलतते हैं। इन कहानियों ने आदर्शवादी तथ्यों को स्वीकार ही नहीं किया है, अत: इनकी रचनाओं में सुरुचि का अभाव घटकता है। इस परम्परा के कहानीकारों में चतुरसेन शास्त्री, 'बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन आदि प्रसिद्ध हैं। इन कलाकारों ने कहानी को कलात्मक बनाया, भाषा-भाव का सुन्दर सामंजस्य बैठाया तथा घटनाओं की व्यवस्थित अवतारण की। इसलिए मनोरंजन के साथ-साथ आवश्यक भावुकता का भार भी इन लेखकों की अनेक कहानियों में बढ़ा दिया गया है।

इस युग से बहुत-सी प्रेम-प्रधान तथा ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी गई हैं। इन कहानियों में बड़ी ही सुन्दरता तथा कलात्मकता के साथ ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण किया गया है। 'ममता', 'आकाश दीप', 'पुरस्कार' आदि प्रसाद जी की कहानियाँ इसी कोटि में आती हैं। इस प्रकार की प्रेम-प्रधान कहानियों में प्रेम और साहस का आकर्षक समन्वय किया गया है। ऐतिहासिक उपन्यासों के सफल लेखक बाबू वृन्दावनलाल वर्मा ने भी बहुत-सी ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। इन ऐतिहासिक कहानियों में घटनाओं की अवतारणा में कल्पना का सुन्दर पुट दिया गया है। अतीत की घटनाएँ कल्पना के सहयोग से मौलिक बना दी गई हैं फिर भी कहानीकारों ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में नवीन और यथार्थवादी दृष्टिकोण भी कहीं-कहीं अपनाया है।

वर्तमान युग में कौतूहल तथा हास्य-प्रधान कहानियों की भी रचनाएँ हुई हैं। ये कहानीकार पात्रों के चरित्र-चित्रण के स्थान पर घटना-चक्र पर ध्यान देते हैं। घटनाओं का क्रमिक विकास ही पात्रों के चरित्रों को मोड़ता चलता है। जे० पी० श्रीवास्तव तथा बेढ़व बनारसी ने अपने हास्य-प्रधान कहानियों की रचना की हैं।

वर्तमान युग में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कहानियों की रचना अधिक हो रही हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि कहानीकार इसी कोटि में आते हैं। इन लेखकों की कहानियों में बौद्धिकता का प्रभाव अधिक रहता है। अज्ञेय जी ने बौद्धिकता में सरसता भरने का सफल प्रयास किया है। इन कहानीकारों की बहुत सी कहानियों पर फ्राइड का प्रभाव पड़ा है। इससे अनेक लेखकों को प्रेम-प्रधान कहानियों में सुरुचि का समन्वय करने में सफल नहीं कहा जा सकता। इलाचन्द्र जोशी इसी वर्ग के कहानीकार हैं।

वर्तमान युग में समाजवादी और गांधीवाद विचारधारा से प्रभावित कहानियों की रचना भी हो रही है। इस प्रकार की कहानी विचार-प्रचार का साधन बनाई जा रही हैं। अंचल आदि अनेक ऐसी कहानियों की रचना कर रहे हैं। भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेंगर, नागर, यशपाल सियारामशरण गुप्त, कमलेश्वर, पहाड़ी आदि अनेक कहानीकार इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

समाज के विकास के अनुसार ही साहित्य का विकास हो रहा है। देश काल की परिस्थिति के अनुसार गद्य-साहित्य के विभिन्न क्षेत्र विकसित होते जा रहे हैं। किन्तु मानव-जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति कहानी के रूप में ही हो रही है। कहानी का विकास मुद्रण-कला की सुविधा के कारण बड़ी तेजी से हो रहा है। आज के युग का पाठक व्यस्त रहता है कि वह बड़े-बड़े उपन्यासों को पढ़ने का अवसर नहीं पाता, न वह लम्बी कहानियों को ही पूरा पढ़ पाता है, अतः छोटी कहानियों की माँग बढ़ रही हैं। इसी कारण वर्तमान युग में कहानी-साहित्य का व्यापक प्रचार तथा विकास होता जा जा रहा है।

हिन्दी-नाटक का स्वरूप और विकास

(१) भूमिका, (२) नाटक का प्रारम्भ, (३) हिन्दी में नाटक की प्रारम्भिक स्थिति, (४) भारतेन्दु युग, (५) द्विवेदी युग; (६) पूर्व-प्रसाद-युग, (७) उत्तर-प्रसाद युग।

भूमिका—नाट्य-शास्त्र के प्रणेता आचार्य भरत के अनुसार सतयुग के अन्त में संसार में अनेक प्रकार की आसुरी प्रवृत्तियों का प्रचार बढ़ जाने से लोगों को बहुत कष्ट हुआ; अतः इस दुःख निवारण के लिए देवताओं ने ब्रह्मा जी से कोई खिलौना माँगा। ब्रह्मा जी ने चारों वेदों से चार तत्व कथोपकथन, संगीत, अभिनय और रस लेकर पंचम वेद के रूप में नाट्य वेद का उपदेश दिया तभी नाट्य वेद का जन्म हुआ। संस्कृत-साहित्य में नाटकों का प्रारम्भ ईसा पू० ३ शताब्दी से पूर्व हुआ। तब से निरन्तर नाटक-रचना होती आ रही है। संस्कृत में काव्य के दो भेद माने गये हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेदों में नाटक एक मुख्य भेद

है, जिसकी कथा पौराणिक या ऐतिहासिक होती है और जिसमें लगभग ५ अंक होते हैं। हिन्दी नाटक प्रायः दृश्य-काव्य के पर्याय के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी को उत्तराधिकार रूप में अनेक वस्तुएँ संस्कृत से प्राप्त हुई हैं' उन्हीं में नाटक भी हैं। हिन्दी में गद्य के अन्य अंगों की तरह नाटक का भी वास्तविक विकास भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ हुआ है। भारतेन्दु युग के पूर्व भी कतिपय नाटक—'रुक्मिणी हरख', हनुमन्नाटक', 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि लिखे गये, जिन पर संस्कृत के नाटकों का प्रभाव है तथा उन्हें काव्य-नाटक कहना ही अधिक उचित है। इन नाटकों में नाटकीय तत्वों का विकास बहुत कम हो पाया है।

हिन्दी नाटक का प्रारम्भ—१९ वीं शताब्दी में "**आनन्द रघुनन्दन तथा "प्रबोध चन्द्रोदय**' नाम के दो नाटक लिखे गये। इसके सिवाय लोकरजन के अनेक नाटक—'रासलीला', 'पूरनभक्त' आदि लिखे गये। 'इन्द्र सभा' शीर्षक नाटक ऐसे नाटकों में प्रसिद्ध रहा। बाबू गोपालचन्द्र जी को हिन्दी का सर्वप्रथम नाटककार होने का गौरव प्राप्त है। तत्पश्चात् भारतेन्दु युग का प्रारम्भ होता है। तब से नाटक-क्षेत्र में निरन्तर निवास करता चला जा रहा है।

हिन्दी-नाटक का विकास-क्रम समझने की सुविधा के लिये इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) भारतेन्दु युग, (२) पूर्व-प्रसाद युग तथा (३) उत्तर-प्रसाद युग।

भारतेन्दु-युग के नाटक—भारतेन्दु जी की प्रतिभा बहुमुखी थी, उन्होंने साहित्य के विभिन्न अंगों को पूर्ति का प्रयत्न स्वयं किया तथा अन्य लेखकों को इस कार्य के लिये प्रोत्साहित किया। उन्होंने स्वयं कई संस्कृति नाटकों का हिन्दी में अनुबाद किया तथा दर्जनों नाटकों और प्रहसनों की रचना की इनके समय में बंगला और अंग्रेजी से भी नाटकों का अनुवाद हिन्दी में किया गया। भारतेन्दु जी ने नाटकों को नया रूप देकर लेखकों का पथ प्रदर्शन किया। इनके नाटकों में अभिनेता तथा पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग आदि गुणों के कारण स्वाभाविकता आयी। इनके नाटकों कई भागों में बाँटा जा सकता है—श्रृंगार-प्रधान—जैसे 'चन्द्रावली' 'प्रेम योगिनी' तथा 'सतीप्रताप' आदि; राष्ट्रीयता-प्रधान—जैसे 'नीलदेवी' 'भार-दुर्दशा' आदि तथा हास्य-व्यंग्य प्रधान जैसे 'विषस्य विषमौधम' 'अन्धेर नगरी' आदि उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी-युग और नाटक-युग – इस युग के अन्य नाटककारों ने प्रायः इन्हीं के अनुकरण पर नाटक की रचना की है। इनमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू रायकृष्ण दास, लाला श्री निवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी प्रमुख हैं। बाबू रायकृष्णदास ने 'महाराणा प्रताप' तथा लालाजी ने संयोगिता-स्वयंवर' लिखकर अपनी नाटक-कला का परिचय दिया। इस युग में नाटकों के विषय पौराणिक, राजनीतिक तथा सामाजिक रहे हैं। सामाजिक कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य किया गया। 'बड़े मुँह मुहासे' तथा 'चौपट-चपटे' जैसे प्रहसन लिये गये।

संस्कृत नाटकों के अनुवाद किये गये। इन अनुवादों में भारतेन्दु जी के अनुवाद बड़े सफल रहे। संस्कृत के 'मुद्राराक्षस', 'मालती माधव', 'उत्तर-राम-चरित 'नागानन्द', मृच्छकटिक' आदि नाटकों के सुन्दर अनुवाद किये गये। राजा लक्ष्मण सिंह ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का अनुवाद किया।

अँग्रेजी के कई नाटकों के भी अनुवाद किये गये। इसी युग में शेक्सपीयर के कई नाटकों का हिन्दी अनुवाद निकला। ये अनुवाद साधारण कोटि के माने जाते हैं। इन अनुवादों के बाद नाटक का दूसरा युग प्रारम्भ हो जाता है।

इस युग में नाटक **मण्डलियों का प्रचार** अधिक हो गया था। अतः नाटक मण्डलियों के लिये अनेक नाटक लिखे गये जो अभिनय की दृष्टि से अधिक सफल रहे हैं, यद्यपि इनमें साहित्यिकता का अभाव ही है। इस युग के नाटककारों को अधिक लोकप्रियत प्राप्त हुई। नारायण प्रसाद 'बेताब' तथा राधेश्याम कथावाचक सर्वाधिक लोकप्रिय हुए। इन नाटकों का मुख्य उद्देश्य था—दर्शकों को मनोरंजन प्रदान कर पैसा कमाना। यह इन लोगों का व्यावसायिक दृष्टिकोण था, फलतः साहित्यिक सुरुचि की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इन नटकों में नृत्य तथा पद्यों की भरमार रहती थी। कथोपकथन भी प्रायः पद्यों में ही कराया जाता था। इन कारणों से नाटकों में अस्वाभाविकता आ जाती थी। इसी युग में 'चन्द्रहास' और 'तिलोत्तमा' शीर्षक से नाटकों की रचना गुप्त जी ने की जो अच्छे कहे जाते हैं। नाटक के क्षेत्र में अनेक नये-नये प्रयोग भी हो रहे थे। कतिपय नवीन नाटककारों के भी दर्शन इस युग में हुए। 'कृष्णार्जुन युद्ध' तथा 'अंजना' को लेकर क्रमशः पं० माखनलाल चतुर्वेदी तथा सुदर्शन जी क्षेत्र में आये और 'उग्र' जी ने 'ईसा' तथा पं० गोविन्दवल्लभ पंत ने 'बरमाला' नामक नाटकों की रचना की। अन्तिम चरण में प्रसाद जी ने भी नाटक रचना प्रारम्भ कर दी थी। प्रसाद जी के नाटकों में नए दृष्टिकोण का श्रीगणेश था; इसी से आने वाला युग प्रसाद युग से सम्बोधित किया गया।

प्रसाद-युग और नाटक—प्रसाद जी का युग नाटक के क्षेत्र में संक्रान्ति-युग कहा जा सकता है। नाटक रचना के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो रहा था। प्रसाद जी स्वतं भारतीय गौरव की विगत घटनाओं से प्रेम रखते थे और उन्होंने खोजपूर्ण दृष्टि से अनेक ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'राज्यश्री' आदि नाटकों में प्राचीन भारत के वैभव तथा वातावरण का चित्र खींचा गया। इनमें ऐतिहासिक कथानक को साहित्यिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कुछ पौराणिक कथाओं को भी नाटक का विषय बनाया। इनमें 'सज्जन', 'विशाख', 'जनमेजय का नागयज्ञ' आदि मुख्य हैं। इन नाटकों की कथावस्तु पौराणिक है, किन्तु नाटककार प्रसाद ने इन्हें मौलिक रूप दिया है इन्होंने प्रतीकात्मक शैली पर 'कामना' नाटक लिखा। प्रसाद जी के नाटकों में नाटकीय तत्वों का सुन्दर विकास है। उनमें साहित्यिक सौष्टव है, फिर भी वे अभिनय की दृष्टि से काफी कठिन हैं। उनमें दार्शनिक विचारधारा है और वे साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण

हैं। प्रसाद जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में नवीन तथा खोजपूर्ण दृष्टि का परिचय दिया है। उनके नाटक दुखान्त नहीं हैं, पर उनमें दुखद घटनाओं का अभाव नहीं है। उन्होंने नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विशेष ध्यान दिया है। उनके नाटकों में कल्पना और इतिहास का मधुर समन्वय है। 'एक घूंट' नामक सुन्दर एकांकी नाटक भी उन्होंने लिखा है।

आलोच्य युग में पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों की रचना का क्रम चलता रहा। मैथिलीशरण गुप्त ने 'तिलोत्तमा' तथा 'अनघ' की रचना की। मिश्रबन्धुओं के 'पूर्व भारत' तथा 'उत्तर भारत' और बद्रीनाथ का 'बेनु चरित्र' पौराणिक नाटक सामने आये। जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने 'प्रताप-प्रतिज्ञा', वियोगी हरि ने 'प्रबुद्ध-यमन' तथा उदयशंकर भट्ट ने 'चन्द्रगुप्त मौर्य नामक सुन्दर ऐतिहासिक नाटक लिखे। इस प्रकार के नाटकों में अतीत के गौरव की झाँकी है। इस युग में समस्यामूलक नाटक भी लिखे गये, जिनमें समाज में प्रचलित अनेक समस्याओं पर विचार किया गया है। दूसरे सामाजिक नाटक भी लिखे गये। इस प्रकार के नाटक जगन्नाथप्रसाद, शर्मा 'मिलिन्द', लक्ष्मीनारायण मिश्र तथा प्रेमचन्द आदि ने लिखे।

इस युग में पुरानी परम्परा के अनुसार प्रहसनों की रचना की गई। राधेश्याम ने 'कौंसिल की मेम्बरी', जालान ने 'घर-कट-सूम', प० गोविन्दबल्लभ पंत से 'कंजूस की खोपड़ी' तथा भट्ट जी ने 'विवाह का विज्ञापन' आदि प्रहसन लिखे। मौलिक नाटकों के सिवाय अनेक अनुवाद भी संस्कृत और अँग्रेजी से हिन्दी में किये गये। गाल्सवर्दी के 'सिलवर बाक्स' का 'चाँदी की डिबिया' नाम से अनुवाद किया गया और भी अनेक नाटकों का अनुवाद किया गया। सक्षेप में प्रसाद युग हिन्दी नाटक का स्वर्ण युग है। इस युग में नाटकों की भाषा, भाव, शैली आदि सभी तत्वों का पूर्ण विकास हुआ।

प्रसादोत्तर युग और नाटक—प्रसाद युग के बाद भारतीय समाज की विभिन्न समस्याओं और परिस्थितियों का साहित्य पर अधिक प्रभाव पड़ने लगा। नाटककारों ने अपने नाटकों में इन समस्याओं का चित्रण करना प्रारम्भ किया। इस युग के नाटककारों मे चतुरसेन शास्त्री, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, प० लक्ष्मीनारायण मिश्र, रामकुमार वर्मा, विष्णुप्रभाकर आदि प्रमुख हैं। इस युग मे नाटकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 'सिन्दूर की होली' 'अगूर की बेटी', 'छाया और बन्धन' आदि इस युग के अच्छे नाटक हैं। इन नाटकों में नाटकीय तत्वो की व्यवस्था उपयुक्त तथा सुन्दर हो सकी है। कथा वस्तु का विकास संगठित रूप में किया गया है। उसमें अभिनेयता का अभाव नहीं है।

नाटकों का वर्तमान युग—प्रस्तुत युग में छाया नाटक तथा रेडियो नाटक भी लिखे जा रहे हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी अधिक प्रसिद्ध हो रहे हैं। 'रेशमी टाई' पृथ्वीराज की आँखें, आदि ऐसे ही नाटक हैं। इस युग में नाटकों का अभिनय कम होता है। अतः नाटकों का साहित्यिक महत्व ही अधिक ध्यान में रखा

जाता है। इससे उसमें रंगमंच की योजना की योग्यता गौण हो जाती है। नाटकों में रस-निष्पति पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है, पर आज इनका भी अभाव-सा है, क्योंकि आज नाटक रचना दर्शन के लिए न होकर पाठकों के लिए ही रही है।

दृश्य-काव्य का लक्ष्य होता है प्रेक्षकों में भावना का विकास करना तथा उन्हें मनोरंजन प्रदान करना। साथ ही साथ उनमें सुरुचि को बढ़ाना। आज के नाटकों का विकास सर्वाङ्गीण नहीं कहा जा सकता। हिन्दी में नाटक-साहित्य का विकास क्रम कुछ रुक-रुक कर हुआ है। आशा है, भविष्य में निरन्तर नाटकों का विकास होता जायेगा तथा नाटक-रचना अपने सभी उद्देश्यों की पूर्ति में सफल होगी।

---

२२. देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता

(१) भूमिका, (२) देवनागरी लिपि का क्रमिक विकास, (३) इसकी वैज्ञानिकता (४) इसका स्वरूप, (५) देवनागरी लिपि के गुण, (६) देवनागरी लिपि के कतिपय दोष, (७) उपसंहार।

भूमिका—भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत को देववाणी तथा उसमें प्रयुक्त लिपि को देवनागरी लिपि कहा जाता है। जिस प्रकार अन्य लिपियाँ अरबी, रोमन, चीनी, जापानी, द्रविड़ आदि हैं, उसी प्रकार देवनागरी लिपि भी है। इस लिपि का प्रयोग कब से हो रहा है यह निश्चित नहीं है। वेदों की रचना इसी लिपि में की गई है। वेदों की व्यवस्थित तथा उत्कृष्ट रचना को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि वैदिक युग के पूर्व से ही इसका प्रयोग होता आ रहा है। लिपियों का प्रयोग ध्वनियों को व्यक्त करने के संकेत के रूप में होता है। मनुष्य के मुख से जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं उनको किस रूप में रखा जाय या उनको व्यक्त करने के लिए कैसा संकेत रखा जाय यही लिपियों के आविष्कार का कारण है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया, त्यों-त्यों मनुष्य को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने तथा स्थायी रखने के लिए साधन आवश्यक होने लगे। इस क्रम में मनुष्य ने ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए संकेतों का निर्माण किया और इन संकेतों की रूप रेखा और आकार-प्रकार ध्वनि विशेष के उच्चारण में श्वास के घुमाव के अनुसार बनाया गया। देवनागरी लिपि इसी आधार पर बनाई गई है। इसका प्रारम्भिक रूप सीधा सादा था, परन्तु धीरे-धीरे इसे सुन्दर और व्यवस्थित करके वर्तमान रूप में लाया गया।

देवनागरी लिपि का क्रमिक विकास—महर्षि पाणिनि के मतानुसार शंकर भगवान जब ताण्डव नृत्य कर रहे थे, तो उसके अन्त में उन्होंने अपने डमरू को चौदह बार बजाया और उससे देवनागरी ध्वनियों का विकास हुआ। उसी के आधार पर पाणिनि ऋषि ने अपने व्याकरण ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' की रचना की उन्होंने चार सहस्र से अधिक सूत्रों का निर्माण किया। इन्हीं सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण व्याकरण शास्त्र की रचना हुई। इसमें स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ, ॠ,

लृ, आदि तेरह और क् ख्, ग्, घ्, ङ्; च्, छ्, ज्, झ् ञ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द् न्, प, फ्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स्, ह् क्ष्, त्र् ज्ञ् अः आदि अड़तीस व्यंजनों का समावेश हुआ। यही देवनागरी लिपि का परिवार है। इनका वर्तमान रूप अनेक परिवर्तनों और संशोधनों के बाद बन पाया है। वर्तमान सरकार ने भी टंकण-सुविधा के लिए इनमें कुछ सुधार करने का प्रयास किया पर इनका रूप और आकार इतना वैज्ञानिक और सुन्दर है कि सुधार में विकृति आ जाती है और लाभ भी नहीं होता। इनकी वर्णमाला में सभी सम्भव ध्वनियों के लिए संकेत बने हुए हैं। स्वर व्यंजनों से मिलकर उन्हें उच्चारण सुलभ बनाते हैं। इनके व्यंजनों में स्वराभाव दिखाने के लिए हलन्त लगाना पड़ता है। या संयुक्ताक्षर बनाना पड़ता है।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता—देवनागरी लिपि में हर ध्वनि के लिए निश्चित संकेत के कारण जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा भी जा सकता है। पाठक को अपनी ओर से कुछ भी मिलाना नहीं पड़ता और न किसी ध्वन्यांस को छोड़ने की आवश्यकता पड़ती है। इसी कारण यह लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक मानी जाती है। वैज्ञानिक वही वस्तु कही जाती है जिसमें सविकल्पक ज्ञान हो यानी जहाँ स्पष्ट और ठोस ज्ञान हो। इन लिपियों में स्पष्ट और ठोस ज्ञान भरा हुआ है। व्याकरण शास्त्र ने इन सभी वर्गों के उच्चारण-स्थान तथा उच्चारण में श्वास गति और जिह्वा की स्थितियों का बराबर ध्यान रखा है, अतः प्रत्येक वर्ग का स्वतन्त्र स्पष्ट अस्तित्व माना जाता है। कोई भी लिपि ऐसी नहीं है जिसमें इतनी वैज्ञानिकता हो। रोमन, अंग्रेजी, अरबी, चीनी, जापानी आदि विभिन्न लिपियों के लिखने और पढ़ने में अनेक विकल्पों की शका हो जाती है कहीं संयोग में वर्ण का रूप ही लुप्त हो जाता है तो कहीं उनसे उच्चारण में भेद हो जाता है। कहीं व्याकरण के नियम से अधिक महत्वपूर्ण अपवाद ही बन जाते हैं। अँग्रेजी में 'बी यू-टी' का उच्चारण 'बट' हो जाता है तथा 'पी-यू-टी' का उच्चारण 'पुट' होता है। एक ही स्वर 'यू' जो प्रथम स्थान 'अ' का काम करता है, वही दूसरे स्थान पर 'उ' का काम करता है। इस प्रकार की अनेक अव्यस्थाएँ दीखती हैं। 'एच' और 'यू एस इ' से हाउस' शब्द बन जाता है इसमें इ' का वर्ण उच्चारण में स्पष्ट नहीं होता, यही स्थिति अनेक शब्दों में देखी जाती है। अरबी लिपि में तीन ही स्वरों से काम लिया जाता है, अतः विकल्प ज्ञान उच्चारण में सम्भावित रहता है। यही दशा और भाषाओं की लिपियों की भी है! देवनागरी लिपि के उच्चारण में सदा निर्विकल्प ज्ञान रहता है, अतः लिखने-पढ़ने और समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। इन कारणों से इनकी वैज्ञानिकता पूर्णरूपेण प्रमाणित हो जाती है।

इसका स्वरूप व्याकरण के अनुकूल है। 'क' वर्ग के सभी वर्ण प्रायः समान से लगते हैं, क्योंकि उनके उच्चारण में स्थान समीप ही होते हैं। उसमें ध्वन्यात्मक समानता जान पड़ती है। किन्तु श्वास के उच्चारण मे पृथक विकारगति होती है, इस-

लिए उनके आकार में भिन्नता है । इसी प्रकार की स्थिति 'च वर्ग ''ट वर्ग' 'त वर्ग' और 'प वर्ग' के वर्णों की भी है । य, र, ल, व आदि वर्ण अपना-अपना स्वतन्त्र उच्चारण स्थान रखते हैं, अतः उनके आकार में समता का अभाव है और वे वर्गीकृत भी नहीं हैं । स्वरों के आकार निर्धारण में उनके उच्चारण काल का ध्यान रखा गया है और वे हस्व, दीर्घ, प्लुत इस प्रकार विभाजित किये गये हैं कि उनसे सम्बन्धित मात्राएँ उच्चारण-प्रकार के अनुसार पास की हैं । 'अ 'इ' आदि स्वर व्यंजनों में मिलकर हलन्त की तिरछी लकीर को, जो व्यंजनों के नीचे लगाई जाती है, लुप्त कर देते हैं । अन्य मात्राओं का रूप भी इसी प्रकार निर्धारित हुआ है । इनके रूपों में भी सन्देह के लिए स्थान नहीं रहता ।

देवनागरी लिपि में एक वर्ग 'ख' है जो 'र' और 'व' का मिला हुआ रूप है यदि लेखकों में सतर्कता बरती जाय, वर्णों के ऊपर दी जाने वाली रेखा पर ध्यान दिया जाय तो यह सन्देश भी मिट जाता है । 'ख' को मिलाकर रेखा खींचते हैं तथा र, ब की शिरोरेखा अलग-अअग खींची जाती है । कुछ लोग श और स तथा ष, ख को सदोष मानते हैं । पर इन ध्वनियों में भारतीय विद्वानों ने उचित अन्तर और भेद को दिखाया है तथा इनके उच्चारण स्थान में विभिन्नता प्रमाणित की है, अतः ये भी निर्दोश ही हैं । इस प्रकार देवनागरी लिपि के प्रत्येक वर्ण प्रायः निर्दोष हैं ।

देवनागरी लिपि के गुण-दोष—ध्वनि को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के कारण लिपियों का महत्व है । ध्वनि के आकार-प्रकार पर स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों का बहुत प्रभाव पड़ता है । भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ की प्रकृति और वायु मण्डल प्रायः स्पष्ट और सम रहता है, अतः मुँह खोलकर श्वास लेने में या ध्वनियों के उच्चारण में कठिनाई नहीं पड़ती । इसलिए ये सकेत ध्वनियों को ठीक-ठीक व्यक्त करने में समर्थ हैं । इसका परिणाम, शुद्धता के रूप में पहले बताया गया है । इनमें दोष यह है कि टंकण-क्रिया में कठिनाई पड़ती है । यह कठिनाई संयुक्त अक्षरों तथा वर्णों की अधिकता और मात्राओं के लिए भिन्न-भिन्न संकटों के कारण होती है । विराम चिह्नों का प्रयोग भी आवश्यक होता है । इन कारणों से मशीन का आकार बढ़ जाता है । फिर भी प्रयास करके इनको टंकित किया जाने लगा है ।

देवनागरी लिपि में सुधार—देवनागरी लिपि इतनी पूर्ण और वैज्ञानिक है कि इसमें आगे सुधार की कोई गुंजाइश ही नहीं है । इस बीच में जो सुधार किये गये वे भी उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सके बल्कि वे भ्रम पैदा करने वाले ही अधिक हुए । 'इ' और 'ई' (ि ी) की मात्राओं का क्रमशः 'ी' रूप दिया गया था । इसमें कठिनाई यह है कि यदि लेखकों की असावधानी में खड़ी रेखा तनिक बढ़ गई तो गलती स्वाभाविक हो जायेगी । इस प्रकार इतनी पूर्ण लिपि में सुधार के स्थान पर व्याकरण सम्बन्धी नियमों का स्पष्ट अध्ययन अधिक आवश्यक है । नागरी लिपि अपने वर्तमान रूप में निर्दोष है ।

भारत सरकार और कुछ राज्य सरकारों ने देवनागरी लिपि में सुधार के

लिए कुछ समितियों की नियुक्ति की ओर कुछ सुधार भी किये गये। इन सुधारों का कोई विशेष महत्व देवनागरी लिपि के क्षेत्र में है नहीं। इससे उसकी वैज्ञानिकता में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई।

२३. हिन्दी और उर्दू का विरोध मिटाने की आवश्यकता और उपाय

(१) भूमिका, (२) हिन्दी और उर्दू की समानता, (३) हिन्दी और उर्दू की भिन्नता, (४) दोनों की प्रकृति, (५) विरोध मिटाने के उपाय, (६) उपसंहार।

भूमिका—१६६२ ई० में जब मुहम्मद गौरी ने दिल्ली पर अधिकार जमा लिया और शासनाधिकार कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंपकर स्वयं गजनी चला गया तो फारसी और पंजाबी के शब्द लाहौर और दिल्ली के समीपवर्ती स्थानों में प्रचलित थे, वे वहाँ की खड़ी बोली में मिल-जुल गये। इस प्रकार व्रजभाषा, राजस्थानी, हरियानी, अवधी आदि से मिलकर एक नई भाषा बन गई जिसे **अमीर खुसरो** ने **'हिन्दवी'** नाम दिया उन्होंने **'खालिकबारी'** नाम से एक शब्द-कोष बनाया जिसमें इन मिश्रित देशी भाषा को 'हिन्दवी' कहा गया। इधर सूफियों ने अपना धर्म-प्रचार कार्य इसी 'हिन्दवी में प्रारम्भ कर दिया था। आगे चलकर यह भाषा रेखता (मिश्रित) भाषा कही गई। अमीर खुसरो फारसी के मशहूर शायर थे तथा देशी भाषा के अच्छे कवि और ज्ञाता थे। उन्होंने तथा इसी वर्ग के कतिपय अन्य विद्वानों ने १३ वीं—चौदह वीं शताब्दी में इस भाषा को 'हिन्दवो', 'हिन्दुई' या 'हिन्दी' नाम दिया। फारसी के कुछ शायरों ने इसमें अरबी, फारसी तुर्की शब्दों की अधिकता कर दी और शाहजहाँ के शासन-काल में इसका नाम बदल कर 'हिन्दवी' रेखता हो गया जो कालान्तर में बदलकर उर्दू कर दिया गया। फिर भी इस भाषा के लिए बहुत समय तक 'रेखता' शब्द का प्रयोग होता रहा। औरंगजेब की दक्षिण विजय के बाद उर्दू की दकनी और गुजरी शैलियों पर फारसी का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा, तब से इन भाषाओं का दो धाराओं में बढ़ने लगा। संस्कृत के विद्वानों ने संस्कृत शब्दों का मिश्रण किया तथा फारसी वालों ने अरबी-फारसी का और तदनुसार हिन्दी और उर्दू दो नामों का प्रयोग चल पड़ा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दी और उर्दू में खींचा-तानी प्रारम्भ हो गई। **भारतेन्दु और बाबू हरिश्चन्द्रजी** के समय तक **राजा लक्ष्मणसिंह** आदि विद्वानों के प्रयत्न से हिन्दी का शुद्ध रूप अपनाया जाने लगा। **राजा शिवप्रसाद 'सतारे हिन्द'** आदि अनेक विद्वानों ने **'आम-ओ-फहम'** जुबान यानी हिन्दुस्तानी को प्रश्रय किया।

हिन्दी और उर्दू की समानता और भिन्नता—हिन्दी और उर्दू में पर्याप्त समानता है। दोनों के क्रियापदों में एकता है। विभक्तियाँ भी प्रायः एक सी ही

हैं। हिन्दी में कहते हैं, 'बातचीत करते हैं' और उर्दू में कहते हैं गुफ्तगू करते हैं' उर्दू में क्रिया हिन्दी की है पर उसमें 'गुफ्तगू' फारसी का शब्द मिलाकर उसे उर्दू बना दिया गया है। 'आपने मेरे गरीबखाने पर तशरीफ लाकर बड़ी इनायत फरमाई' (उर्दू) तथा 'आपने मेरी कुटी पर पधार कर बड़ी कृपा की, (हिन्दी)। इन दोनों वाक्यों की भाषा की प्रकृति तो एक ही है पर उसमें शब्दों के संयोग के अनुसार अन्तर पड़ गया है और दोनों का झुकाव दो दिशाओं में स्पष्ट दीखता है। हिन्दी का झुकाव संस्कृत की ओर हो गया तथा उर्दू का रुख फारसी की ओर। आगे चलकर दोनों भाषायें स्पष्टतया दो दिशाओं में विकसित होने लगीं। यों तो सभी सजीव भाषाएँ अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को अपना बना कर मिला लेती हैं, पर उनकी प्रकृति में अन्तर नहीं आने पाता। उर्दू को मोड़ देकर हिन्दी से भिन्न किया गया तथा फारसी की प्रकृति लाने का प्रयास किया गया। अरबी और फारसी के शब्दों को उनकी मूल प्रकृति (यानी मुक्ता आदि) के साथ अपनाना उर्दू में प्रारम्भ किया तथा 'संस्कृत को संसकिरत; ब्राह्मण' को 'बराह्मन' कहना प्रारम्भ किया गया, अतः स्वभावतया दोनों में विरोध बढ़ा। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के मुसलमानों ने उर्दू को अपनाया और हिन्दुओं ने हिन्दी को। काँग्रेस से हिन्दी-मुसलमानों को मिलाने का प्रयास किया और उसी की एक कड़ी हिन्दुस्तानी (मिश्रित भाषा) प्रकाश में आई। सन् १९४७ ई० में जातीय आधार पर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का बँटवारा हो गया फलतः भारत ने हिन्दी को अपनी राष्ट्र भाषा माना तथा पाकिस्तान ने उर्दू को। फिर भी भारत में दोनों भाषाएँ अभी चल रही हैं।

लिपि की भिन्नता—हिन्दी और उर्दू की भिन्नता का एक मुख्य कारण है—उर्दू का अरबी लिपि में तथा हिन्दी का देवनागरी लिपि में लिखा जाना। दोनों लिपियों में मूल-प्रकृति में भेद है। देवनागरी लिपि बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती है तथा अरबी लिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर। जहाँ तक दोनों पिपियों की वैज्ञानिकता का प्रश्न है, निर्विवाद रूप से नागरी लिपि अधिक वैज्ञानिक है। इसकी प्रत्येक लिपि अपनी स्वतन्त्र ध्वनि को व्यक्त करने में समर्थ है। जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। इसी वर्णमाला में स्वरों की संख्या आवश्यकता के अनुसार सूक्ष्म है, किन्तु अरबी लिपि में सभी ध्वनियों के लिए लिपियां नहीं हैं। उनकी लिपियों में इतनी समानता है कि एक नुकते (बिन्दु) की गलती से 'खुदा' को सरलता से 'जुराद' पढ़ा जा सकता है। उनके यहाँ केवल 'जेर' 'पेश' तीन ही स्वर हैं जिसके उच्चारण के समय अन्दाज लगाना पड़ता है। संक्षेप में वर्तमान दशा में हिन्दी-उर्दू दोनों समान्तर मार्ग पर बढ़ रही हैं तथा दोनों की प्रकृतियों में काफी अन्तर आ गया है।

दोनों की प्रकृति—हिन्दी की क्रियाएँ प्रत्यय, उपसर्ग तथा विभक्तियाँ आदि संस्कृत से आई है। सस्कृत व्याकरण के सूत्रों के आधार पर हिन्दी-व्याकरण बना है। संस्कृत के समान शब्द के अनेक रूप होते हैं जिनमें सूक्ष्म अन्तर है। उनमें से

समानान्तर रूप से क्रिया रूप को ले लिया है तथा बहुतों को छोड़ दिया गया है, पर जिनको ग्रहण किया गया है वे नियमित हैं तथा उनका विकास क्रम स्वाभाविक है। 'गम्' धातु का अर्थ है जाना। संस्कृत के वर्तमान काल में इसका रूप निम्न प्रकार है—प्र० पु० के एक व०, दि०, व० बहुवचन में क्रमशः गच्छति, गच्छतः; गच्छन्ति होता है। हिन्दी में साधारण लोगों की बोली में क्रमशः जाता है, खाते हैं—हो जाता है। द्विवचन और बहुवचन में हिन्दी में अन्तर नहीं है, अतः द्विवचन को हटाकर केवल एक वचन, बहुवचन, दो ही रखें गये हैं। इसी प्रकार से अन्य परिवर्तनों के कारण हिन्दी में संस्कृत-भाषा की जटिलता नहीं रह गई फिर भी अनियमितता नहीं आई है। यही क्रम अन्य विभक्तियों में चला है। संस्कृत के पद विभक्तियों के साथ मिलाकर लिखे जाते हैं तथा हिन्दी में विभक्तियाँ अलग से लगती हैं। इसका एक प्रभाव यह होता है कि हिन्दी के वाक्य में कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि का निश्चित स्थान बन गया है। उन शब्दों का यदि स्थान परिवर्तन कर दिया जाय तो अर्थ में अन्तर बढ़ जाता है, पर सस्कृत में यह बात नहीं होती। इस प्रकार हिन्दी की प्रकृति संस्कृत के साथ चलती है। उर्दू की प्रकृति किसी निर्धारित मार्ग का संकेत नहीं करती यद्यपि उसे फारसी की ओर माना जाता है।

विरोध मिटाने का उपाय—भाषा-सम्बन्धी विरोध का प्रश्न तो तब उठता है जब उन्हें मिलाने का अस्वाभाविक प्रयत्न किया जाता है। कोई आपत्ति नहीं है यदि दोनों भाषाएँ स्वाभाविक रूप में उन्नति करती जाएँ। लेकिन यदि विरोध मिटाकर एकता का प्रयास करना है तो उनके लिए संकीर्णता और दुराग्रह छोड़कर कुछ उपाय अपनाये जा सकते हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि हिन्दी और उर्दू की मूल प्रकृति भारतीय है। भारतीय देशी भाषाओं से ही दोनों का प्रारम्भ हुआ है। अतः प्रथम उपाय यह है कि दोनों की मूल भारतीय प्रकृति को स्वीकार किया जाये और उनके विकास को स्वाभाविक क्रम से बढ़ाया जाय। नागरी लिपि में दोनों को लिखा जाय तथा उनमें एकरूपता ले आने का प्रयत्न किया जाय। दूसरा उपाय वह है कि अरबी, फारसी तथा संस्कृत के तत्सम और तद्भद शब्दों का प्रयोग हिन्दी के रूप में किया जाय तथा भावाभिव्यक्ति के योग्य प्रचलित शब्दों को हिन्दी की प्रकृति के अनुसार ग्रहण किया जाय। यदि 'चाकू' का प्रयोग करना है तो उसे 'चाकू, या 'छुरिका' ना लिखकर 'चाकू' या 'छुरी' लिखा जाय। यदि 'गनीमत' का प्रयोग करना है तो उसे 'गनीमत' लिखा जाय। यदि गाड़ी का प्रयोग करना है तो कोई आवश्यकता नहीं है कि 'शकट' को खोजा जाय। इस प्रकार से यदि उपाय किया जाय तो सम्भव है कि एकता आ जाय। इस कार्य के लिए सबसे अधिक आवश्यकता हैं संकीर्ण मनोवृत्ति तथा दुराग्रह के त्याग की। 'प्रिय-प्रयास', कामायनी', 'रामचन्द्रिका', 'स्वर्ण-किरण' आदि ग्रन्थों की भाषा को और निम्न स्तर पर लाना पड़ेगा। इसके लिए भाषा को सर्वाधिक सामान्य भाषा बनाना पड़ेगा। उसके लिए 'हल्दीघाटी' या 'भैंसा भाड़ी' या 'मेरे नगपति मेरे गिशाल' शीर्षक कविताओं को

भाषा अपनानी पड़ेगी। इससे स्वाभाविक साहित्यिक गौरव तो नहीं आ पायेगा पर हिन्दी सर्व-साधारण की भाषा बन जायेगी और हिन्दी उर्दू का विरोध प्रायः मिट जायेगा।

उपसंहार—आज के युग में जो हिन्दी उर्दू का विरोध खड़ा करके अपने स्वार्थ-साधन में रत हैं वह दोनों ही भाषाओं के सबसे बड़े शत्रु हैं। धर्म-निरपेक्ष भारत जनता से यह आशा की जाती है कि वह ऐसे लोगों से सचेत रहेगी और हिन्दी और उर्दू को और अधिक निकट लाने का प्रयास करेगी।

इसी दिशा में हिन्दी और उर्दू के कुछ प्रगतिशील लेखक निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इस दिशा में लखनऊ, इलाहाबाद और बम्बई में कुछ सम्मेलन भी हो चुके हैं और हिन्दी-उर्दू समझौते पर हस्ताक्षर भी किये जा चुके हैं। वास्तव में दोनों को विरोधी मानना ही अनुचित है। दोनों ही इसी देश की भाषाएँ हैं और उनका सहअस्तित्व उचित ही नहीं आवश्यक भी है।

२४. अकविता अथवा नई अकविता

हिन्दी-साहित्य विविधताओं और नवीनताओं का भण्डार है। उसमें अनेक बाद और कविता के अनेक रूप सामने आये हैं और आते चले जा रहे हैं। वर्तमान युग नई कविता का युग है। इसे कुछ लोगों ने अकविता के नाम से भी सम्बोधित किया है। अकविता के नाम देने का इसका मुख्य उद्देश्व सम्भव यह है कि वे किसी खेवे के परम्परागत गुण के दर्शन नहीं कर पाते। वास्तव में यह कोई उचित तरीका नहीं प्रतीत होता। जीवन की परिस्थितियों के बदलने के साथ जीवन से सम्बन्धित सभी बातें बदल जाती हैं। साहित्य अथवा काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है और इस कारण जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन होने के साथ-साथ उसके स्वरूप और उसकी विशेषताओं में भी परिवर्तन हो जाता है।

नई कविता और उसकी विशेषतायें—नई कविता में परम्परा और विद्रोह दोनों के स्वर सुनाई देते हैं। परम्परागत स्वरों में तो लोग कविता को अकविता की संज्ञा नहीं दे सकते, परन्तु जहाँ विद्रोह के स्वर सुनाई देते हैं। वहाँ उसे अकविता की संज्ञा अवश्य दी जाती है। इस समय अधिकांश कवि छायावादी कविता के प्रति विद्रोह की पताका लहराये हुए हैं। वे काव्य की प्रचलित मान्यताओं को स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार प्रगतिवादियों से भी पृथक होकर प्रयोगवादियों ने कई कविता का विकास किया।

वर्तमान समय में प्रगतिवादी और प्रयोगवादी और इन दोनों विशेषताओं की परिधियों में न बँध जाने वाली कवितायें हो रही हैं और उनकी समीक्षा भी हो रही है। लक्ष्य यह है कि नई कविता अथवा अकविता विकास के पथ पर है। वह नये-नये रूपों में, नये-नये प्रतीकों और नये-नये उपमानों को लेकर सामने आ रही है। उसका

स्वरूप भी स्थिर नहीं है। इसी कारण उसके सम्बन्ध में कोई निहित बात कह पाना सम्भव नहीं हो सका।

परम्पराओं के प्रति विद्रोह—आज सम्पूर्ण जीवन में परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है। यही बात साहित्य के क्षेत्र में भी देखने को मिलती है। नई कविता में प्राचीन परम्पराओं के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरा है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस कविता में केवल नकारात्मक तत्व ही विद्यमान हैं। इनमें निश्चित चेतन के भी दर्शन होते हैं। इसी चेतना से प्रेरित होकर अनेक प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने कुछ नये साहित्य का सृजन किया है। इस साहित्य में नवीन परम्पराओं और भविष्य के प्रति अटल विश्वास के भी दर्शन होते हैं। इसी कारण इस कविता को यहाँ विरोध मिला है। वास्तव में इस कविता को तिरस्कार की भावनाओं से देखना सर्वथा अनुचित है और रूढ़िवादिता का परिचायक है। वैसे हिन्दी साहित्य की यह परम्परा रही है कि जब कोई नई धारा सामने आई है तो पहले उसे विरोध का सामना करना पड़ा। सबसे पहले जब छायावादी युग में कवियों ने अपनी रचनायें आरम्भ की तो इनका विरोध किया गया, वैसे ही आज देखने को मिल रहा है।

नई कविता में प्राचीन साहित्यिक मान्यताओं, नई धारणाओं और सामाजिक परम्पराओं के प्रति विद्रोह के भाव प्रबल रूप से दिखाई देते हैं। यह स्वाभाविक भी है। नई कविता के क्षेत्र में अधिकांश कवि नई पीढ़ों के हैं। उन्होंने परम्पराओं की गिरती हुई दीवारों को देखा है और वे एक नई सृष्टि की रचना की लालसा से प्रेरित हैं और इस कारण उनका विद्रोही होना स्वाभाविक है।

नई कविता जहाँ एक ओर इन सभी बातों और भावनाओं से प्रेरित और प्रभावित हैं, वहाँ उसमें मौलिकता भी विद्यमान है।

नई कविता का स्वरूप—आज, सच बात तो यह है कि नई कविता का स्वरूप पूरी तरह से स्थिर नहीं हो पाया है। उसकी विषय-वस्तु और आत्मबल निश्चय नहीं है। किन्तु इतना अवश्य है कि यह कविता संघर्ष करके ही आगे बढ़ सकती है। इसके विषय में निम्नलिखित बातें दृष्टव्य हैं—

(१) नई कविता की विषय-वस्तु उसकी आत्मा और उसकी सामग्री यह मान कर आगे चलती है कि हमारा युग संघर्ष का युग है और वह अत्यधिक आधुनिक है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसमें आधुनिकता का भाव बोध है।

(२) नई कविता ने अपनी आत्मा अथवा विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे प्रतीकों और उपमानों, बिम्बों और सिद्धान्तों को अपनाया है जो यथार्थ जीवन की उपज हैं और उनका सीधा सम्बन्ध सम्पूर्ण वैयक्तिक जीवन और भाव स्तर से है। इसी कारण वह सर्वथा नई प्रतीत होती है और कभी-कभी उनके समझने में दुरूहता आ जाती।

(३) इस नई कविता अथवा अकविता का पूर्ण विश्वास मानव के प्रति है। मानव को ही वह केन्द्र मानकर चलती है।

(४) इस कविता में मनोवैज्ञानिक स्थिति को स्वीकार किया गया है, जिसमें होकर पिछले २० वर्ष में मानव ने विकास किया।

(५) इस कविता में छोटे को महत्व दिया जाता है, जिसको सामान्य रूप से अनावश्यक और महत्वहीन समझकर त्याग दिया करते हैं।

(६) इस कविता में कला अथवा बाह्य शृंगार की अपेक्षा सत्य को अधिक महत्व दिया जाता है।

अकविता की साहित्यिक पृष्ठभूमि और परिप्रेक्ष की नवीनता—अकविता जहाँ एक ओर ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि को साथ लिए हुए है वहाँ दूसरी ओर वह प्ररिप्रेक्ष की नवीनता को भी हमारे सामने लाकर रख देती है। वास्तव में, जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, नवीन कविता नवीन संस्कृति, चेतना, सामाजिक मान्यताओं और नवीन भावनाओं की देन है। उसमें यथार्थ की परिधि को स्वीकार तो किया गया है, किन्तु उसमें अतिवादिता का अभाव है। इसके साथ ही साथ इसमें सौन्दर्य-बोध की गहराई भी है। दृष्टि से निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :—

'सारांश यह है कि नई कविता सौन्दर्य-बोध की उस गहराई की अभिव्यक्ति है, जिसमें वस्तु, भाव, सत्य और अनुभव सत्य की लय (Tune) में सम्पर्कात्मक स्वाभाविकता एवम् सहजता है। आज जीवन का नया अनुभव उन दिशाओं को स्थापित करता है, जिनके बदलते सन्दर्भ के साथ नये मूल्यों की स्थापना की जा सके।"

—नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकान्त वर्मा

मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि—नई कविता अथवा अकविता का सही मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है कि हम उसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को भी समझ लें। आज का मानव जीवन की विषम परिस्थितियों के आघात से जर्जर है। उसका जीवन अनेक कुण्ठाओं और दुर्बलताओं का शिकार है। इन सबका प्रभाव हमें नई कविता में देखने को मिलता है। इसका साथ ही वह अहम् को भी संजोये हुए है।

भाव-बोध के स्तर और सौन्दर्य-बोध के नए तत्त्व—वातावरण में नवीनता के साथ नई कविता अथवा अकविता में भाव-बोध और सौन्दर्य-बोध के नये तत्व का समावेश हो रहा है। इस नये भावबोध के अन्तर्गत जीवन के कटु और यथार्थ सत्य और उसके साथ-साथ शिव का भी समावेश किया गया है। इसी कारण इस कविता में नये विषयों का समावेश हुआ है। इन विषयों के अन्तर्गत जीवन-संघर्ष, जीवन की नई मान्यतायें, जीवन के नये तत्व आदि समाविष्ट हुए हैं अतः यह कहा जाय कि भाव-तत्व के नवीनताओं के जनक महाकवि 'निराला' हैं तो यह अत्युक्ति न होगी। उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक के अन्तर्गत जिस कविता की रचना की है सम्भवतः वह आगे चलकर नई कविता अथवा अकविता के रूप में विकसित और प्रफुल्लित हुई, इसी बात को कुछ लोग प्रयोगवाद अथवा नया प्रयोग कहते हैं। इसमें कुछ तथ्य भी है। इस नये भाव-बोध में वर्जनाओं को स्वीकार नहीं किया गया है और स्पष्टवादिता को विशेषरूप से स्थान दिया गया है। इस खेवे के कवियों ने इस प्रकाश में अन्य को देखने का प्रयास किया है। इस सत्य दर्शन में मनोवैज्ञानिक दृष्टि के साथ-साथ बौद्धिकता भी है।

आज यथार्थवाद और मानवीय स्तर हमें नई कविता के भाव-बोध के अन्तर्गत देखने को मिलता है। उसी के दर्शन हमें इस कविता के सौन्दर्य-बोध के सन्दर्भ में भी होते हैं। इस खेवे के कवियों ने जीवन को केवल सुन्दर ही नहीं देखा है उसके खोखलेपन और उसकी दुर्बलताओं का चित्रण भी उन्होंने अपनी कविता में किया है। इन कवियों ने सौन्दर्य को जीवन के साथ सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। वास्तव में इस नई कविता में सौन्दर्य सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है।

यथार्थ के नए धरातल—इस नई कविता अथवा अकविता में हम यथार्थ के नये धरातल के भी दर्शन होते हैं। ये कवि इस बात को स्वीकार नहीं करते कि यथार्थ के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण प्रगतिवादी कवियों का चला आ रहा है वही सच्चा दृष्टिकोण है वह यह भी मानते हैं कि उसमें भी परिवर्तन होना चाहिये।

नई कविता के प्रतिमान—इस नई कविता में नये प्रतिमानों के दर्शन होते हैं और उनमें सबसे महत्वपूर्ण है मानव विशिष्टता एवं आत्म-विश्वास का आधार। इस क्षेत्र के कवि मानव को एक विशेष महत्व देते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि उसके नये रूप के साथ ही सभ्यता का नया रूप भी निखरेगा। इन कवियों में आत्म-विश्वास के स्वर बड़े ही प्रबल रूप में मुखरित हुए हैं। एक उदाहरण देख लीजिए :

मेरे अहम् की मीनार की ही नींव में
एक पत्थर हिचकियाँ ले रहा
एक हिचकी
प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना
आह, ऊँचा गगन
औ, नीव का पाताल, आंसू की नदी में।

नई कविता और नये गीत अथवा अगीत—नई कविता पम्परागत प्राचीन छन्दों का परित्याग कर चुकी है। एवं जो गीत सामने आ रहे हैं उनमें तुक का अभाव है। इन गीतों में भाव प्राधान्य है। अतुकान्त छन्दों के माध्यम से अथवा मुक्त छन्दों के द्वारा भावधारा का प्रवेश किया गया है। कोमल कामिनी और रम्य कल्पनायें उनमें अधिक मुखर हैं। प्राचीन तुकान्त शब्दों में न होने के कारण ही सम्भवतः इस युग की कविता को अकविता अथवा अगीत का नाम दिया जाता है।

प्राचीन छन्दों के परित्याग के साथ-साथ इन कवियों ने प्रेम के नये दृष्टिकोण को भी अपनाया है। नई भावभूमि और नये दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए इन लोगों ने नये प्रतीकों और बिम्बों को ग्रहण किया है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् सत्य ने जो नया स्वरूप धारण किया, वही आगे चलकर विकसित होता चला आ रहा है। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, हँसकुमार तिवारी, नागार्जुन, गजानन माधव मुक्ति-बोध, भारत भूषण अग्रवाल, नरेन्द्रकुमार मेहता, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, अजित कुमार, कुँवरनारायण आदि इस नये खेवे अथवा कविता के प्रमुख कवि हैं। इन कवियों ने हमारी कविता को नई दिशा दी है। यह नई दिशा नये जीवन दर्शन से प्रेरित है। इसका वास्तविक स्वरूप क्या होगा, यह भविष्य ही बता सकता है।

———

२५. राष्ट्र-निर्माण में छात्रों (युवाजनों) का दायित्व

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना—राष्ट्र का वर्तमान भौतिक स्वरूप, (२) छात्रों का राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, (३) उपसंहार।

राष्ट्र-निर्माण में छात्रों का दायित्व एक महत्त्वपूर्ण विषय है, जिस पर राष्ट्र के प्रत्येक शिक्षाविद्, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ तथा छात्रों का ध्यान नितांत आवश्यक तथा स्वाभाविक है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र की खुशहाली, प्रगति तथा उसकी समृद्धि का स्रोत स्वयं छात्र-समुदाय होता है। छात्र ही अपने राष्ट्र के भविष्य के निर्णायक अंग माने जाते हैं। अतीत में राष्ट्र के प्रति छात्रों की सहयोगी भावना को कभी भी नहीं भुलाया जा सकता जबकि उन्होंने राष्ट्रीय नेताओं के कुशल नेतृत्व में ब्रिटिश-कालीन शासकों की (कालिमामयी) दासता की लोह-शृङ्खलाएँ तोड़ने के लिए एक दायित्व-पूर्ण भूमिका अदा की थी।

वह एक युग था जब हमारे समक्ष दासता का जटिल प्रश्न हमारी प्रगति के लिए बाधक था। आज स्वतन्त्रता का सूर्योदय हुए छब्बीस वर्ष हुए, हम विश्व के सबसे बड़े लोकतन्त्रीय समाज में पल रहे हैं। अतः राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का उत्तर-दायित्व भी महान् होना चाहिए। परन्तु इस अवधि में छात्रों ने आशा के विपरीत निराशाजनक चित्र प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता के प्रति हमारा स्वाभिमानी दृष्टिकोण होना चाहिए था, नवचेतना की भावना को राष्ट्र के कोने-कोने तक पहुँचाना था। इसमें राष्ट्रीयता की वह सामूहिक चेतना नहीं, जो स्वराज्य से पूर्व थी। हम अपने वैयक्तिक स्वार्थों में इतने जकड़े हुए हैं कि राष्ट्रहित के प्रश्न को गर्त में डालकर विशुद्ध राजनैतिक दलों की राजनीति में खेलने लगते हैं। उस समय हम भूल जाते हैं कि भारत हमारा निजी राष्ट्र है, राष्ट्र का प्रत्येक कण हमारी राष्ट्रीय-सम्पत्ति है। दल चाहे कोई भी हो राष्ट्र के प्रति प्रत्येक छात्र का दायित्व किसी दल के द्वारा प्रदत्त अधिकार नहीं वरन् उसका निजी कर्तव्य है।

देश में अभाव है, असमानताएं भी हैं। भूख, गरीबी, सामाजिक अन्याय, प्रान्तीयता एवं साम्प्रदायिकता आदि जटिल समस्याओं का प्रभाव अभी तक बना हुआ है। इन सबके निवारण का दायित्व छात्रों का नवयुवक बुद्धिजीवी वर्ग पर आता है। नवयुवकों को ही कल के भारत का नेतृत्व, प्रशासन तथा शान्ति व्यवस्था को हाथ में लेकर राष्ट्र की नींव को दृढ़ करना है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत को अभी काफी प्रयत्न करने होंगे। विश्व-दौड़ में राष्ट्र काफी पिछड़ गया है। वर्तमान में राष्ट्र की दशा यह है कि संसार की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ हमारे लोकतन्त्रीय समाज को सन्देह की दृष्टि से देखती हैं। हमारी विदेश नीति पर चारों ओर से आलोचना के तीक्ष्ण बाण चल रहे हैं। तब आवश्यकता इस बात की है कि विश्व की सबसे बड़ी लोकतन्त्रीय पद्धति की रक्षा के लिए छात्र-

समुदाय में सामूहिक चेतना जाग्रत हो और वे समाज में ऐसे नवयुवकों को जन्म दें जो कि देश का नेतृत्व सफलतापूर्वक कर सके, विश्व के समक्ष कुशल विदेश-नीति का निर्देशन करे तथा लोकतन्त्र की रक्षा में सहायक हो।

अन्य मुख्य प्रश्न देश की अखण्डता का है। राष्ट्र को साम्यवादी चीन तथा पाक का खतरा बराबर बना हुआ है। चीन की बढ़ती हुई आणविक शक्ति निर्विवाद रूप से समीपवर्ती राष्ट्रों के लिए भय का खतरा बनी हुई है। अमेरिका तथा रूस भारतवर्ष पर आणविक अस्त्र निरोधक सन्धि पर हस्ताक्षर कराने के लिए निरन्तर संलग्न हैं। पाकिस्तान की विदेश नीति ने एक नया मोड़ लिया है। अभी तक भारत का मित्र कहे जाने वाला देश रूस, पाक की सैनिक शक्ति में वृद्धि करने के लिए उसे सैनिक साज-सामान से दृढ़ बना रहा है। ऐसी अवस्था में देश की अखण्डता को बनाए रखने का भार प्रत्येक भारतीय, विशेषकर छात्र-वर्ग पर आ जाता है। प्राचीन यूनान तथा अनेक वर्तमान राष्ट्रों के छात्रों ने अतीत में युद्धकालीन अवस्था में राष्ट्र रक्षा का भार वहन करके गौरव प्राप्त किया है।

देश को आज स्वर्गीय भाभा जैसे श्रेष्ठ वैज्ञानिकों की आवश्यकता है जो आज नहीं तो कल भारत को विश्व के आणविक क्षेत्र में प्रतिष्ठा का पद दिलवाने में सहायक हों। सैनिक नेतृत्व की बागडोर संभालने का उत्तरदायित्व भी छात्रों का है। राष्ट्र को वैज्ञानिक, औद्योगिक, तकनीकी तथा सैनिक क्षेत्र में सम्पन्न बनाने का दायित्व भी पूर्णतः छात्र वर्ग का ही है।

स्वतन्त्रता के पश्चात भारत की आन्तरिक रूप से प्रगति की जो आशायें थीं वे प्रायः धूमिल-सी हो गई हैं। छात्रों के नैतिक आचरण की ओर सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। छात्रों से उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका अदा करने की आशा किस प्रकार की जावे जबकि देश के शिक्षकों में असन्तोष की भावना है। शिक्षकों की आर्थिक-अवस्था शोचनीय है। यदि शिक्षकों को छात्रों का अपेक्षित सम्मान भी न मिले तो फिर यह कहाँ तक उचित है कि शिक्षक ही सम्पूर्ण उत्तरदायित्व को वहन करने की चेष्टा करें। ऐसा वातावरण तो केवल उस स्थिति में ही सम्भव है जबकि छात्र-संगठन शिक्षकों को मर्यादा के दृष्टिकोण से अनुमापन करें, उनकी कठिनाइयों को समझें और उनके निवारण के लिए मार्ग तलाश करें।

दोषयुक्त शिक्षा-प्रणाली के फलस्वरूप छात्रों के जीवन पर कुप्रभाव पड़ा है। भारतीय संस्कृति के स्थान पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव छात्र-वर्ग में तीव्र गति से बढ़ रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर अभी तक शिक्षा का समान पाठ्यक्रम का निर्माण नहीं हो सका। छात्रों में भाषा के प्रति निरन्तर असन्तोष है। देश में शिक्षा-संस्थाएँ अनेक आरम्भ की गयीं, परन्तु-अधिकांश संस्थायें उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका अदा करने में समर्थ नहीं हैं। उनके द्वारा बड़ी मात्रा में छात्रों की संख्या में वृद्धि हुई है। वे शिक्षा का उच्च स्तर तथा नैतिक आचरण का निर्माण छात्र-समुदाय में पैदा न कर

सकें। यही कारण है कि छात्रों के रोजगार की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, छात्र-आन्दोलन देश के प्रत्येक भाग में जन्म ले रहे हैं। इस रोग के निदान के लिए छात्रों के संगठनों को अखिल भारतीय स्तर पर संगठित होकर विचार करना चाहिए।

भारत के राजनीतिक स्वरूप की अवस्था बदल रही है। अनेक राजनीतिक दलों ने जन्म लिया है। छात्रों का कर्त्तव्य होता है कि वे विशुद्ध राजनीति के दलदल से दूर रहें। परन्तु समाज के बुद्धिजीवी वर्ग होने के नाते उनका दायित्व है कि वे दलों के उद्देश्य तथा उनकी योजनाओं का भली प्रकार अध्ययन करें, उनके उचित-अनुचित लक्ष्यों को भारत की अज्ञान तथा अनभिज्ञ जनता के सामने लावें ताकि राष्ट्र में लोकतन्त्र की नींव दृढ़ हो सके और स्वतन्त्र भारत के स्वप्न साकार हो सकें।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से प्रत्येक समस्या पर उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका छात्र-समुदाय को प्रस्तुत करनी होगी। राष्ट्र से अभाव, असमानतायें, भूख, गरीबी, अन्याय, प्रान्तीयता, एवं साम्प्रदायिकता जैसे भीषण रोगों का उन्मूलन करना ही होगा। छात्रों को वैज्ञानिक तकनीकी, औषधि, कला, संस्कृति तथा दर्शन आदि क्षेत्रों को विकसित करने हेतु सम्पूर्ण दायित्व स्वयं वहन करना होगा। शिक्षकों की मर्यादा के लिए छात्रों को आगे आना है, तभी इस राष्ट्र के कल्याण की आशा की जा सकती हैं। छात्र चरित्र-निर्माण के आदर्श को विश्व जनमत के न्याय के लिए प्रस्तुत करें, तभी हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में ख्याति अर्जित कर सकते हैं।

छात्रों ने असम में आन्दोलन के द्वारा जो जन-जीवन अस्त-व्यस्त कर दिया है और देश में डीजल तथा मिट्टी के तेल का जो अभाव पैदा कर दिया है। वह सोचनीय है और छात्रों के चरित्र पर प्रश्न चिन्ह है।

२६. विज्ञान अभिशाप या वरदान

रूपरेखा

(१) प्रस्तावना—वर्तमान युग विज्ञान का युग है, (२) विज्ञान की नई-नई खोजों ने मनुष्य का बहुत हित किया है, (३) विज्ञान समाज को विकसित करने में सहायक हुआ है, (४) विज्ञान संसार को विनाश की ओर भी ले जा रहा है, (५) उपसंहार—हमारा कर्त्तव्य।

आज के युग में विज्ञान की विजय पताका चारों तरफ फहरा रही है। चारों ओर विज्ञान का साम्राज्य है। विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को क्रीत दासी बना लिया है। सृष्टि के कोने-कोने में विज्ञान का बिगुल बज रहा है। चारों ओर उसका ही साम्राज्य है। हम जिस ओर अपनी दृष्टि डालते हैं, उधर विज्ञान के चमत्कार मनुष्य को आश्चर्यचकित कर देते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान ने विजय प्राप्त कर ली है। किसी देश की शक्ति उसकी जनसंख्या पर निर्भर नहीं होती; पर उसकी उन्नति निर्भर रहती है उस देश के वैज्ञानिक आविष्कारों पर समस्त सृष्टि यन्त्र की भांति विज्ञान के इशारों पर कार्य कर रही है। प्राचीनकाल में जिन देशों में अन्न का दाना भी पैदा नहीं होता था, वहाँ देखते हैं कि खेत लहलहा रहे हैं। यह सब विज्ञान की बदौलत ही है। आज पृथ्वी विज्ञान के आतंकों से थर्रा रही है। अब

हमें यह देखना है कि मनुष्य ने किन-किन भौतिक शक्तियों जैसे वाष्प, विद्युत, गैस और ईंधन आदि का आविष्कार किया है। सारे वैज्ञानिक अनुसन्धान इन चार चीजों पर अवलम्बित है।

विज्ञान के चमत्कारों में स्थान सम्बन्धी आविष्कार ने मानव-जीवन को अत्यन्त सरल बना दिया है। द्रुतगामी यानों में बैठकर मनुष्य महीनों का मार्ग घण्टों में तै कर सकता है। वायुयान में बैठकर दुनियाँ में किसी भी स्थान को सुगमता से पहुँच सकता है। साइकिल, मोटर, रेल, जहाज आदि से मानव को बहुत सुविधा हो गई है। अब तो इतने तेज चलने वाले राकेट बनाये गये हैं, जो एक मिनट में कई सौ मील जा सकते हैं। टेलीफोन से मनुष्य हजारों मील की दूरी पर बैठे बातचीत कर सकता है बेतार के तार द्वारा भी अपना सन्देश भेज सकता है। विज्ञान ने संसार को वहुत छोटा बना दिया है। विज्ञान के स्थान सम्बन्धी आविष्कार देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी दिशाओं में सहयोग प्रदान कर रहे हैं। विज्ञान द्वारा दूरदर्शक यन्त्रों का आविष्कार कर दिया गया है। वह दिन अब दूर नहीं जब हम समस्त ग्रहों तक आसानी से पहुँच सकेंगे। चन्द्रमा के धरातल पर मानव पहुँच ही चुका है।

विज्ञान ने चिकित्सा-संसार में एक अद्भुत करामत दिखाई है। चिकित्सा के लिए विज्ञान ने ऐसी-ऐसी औषधियों को जन्म दिया है, जो अमृत को भी शरमिन्दा कर देती है। मृत्यु को छोड़कर विज्ञान ने मनुष्य जीवन के समस्त अंगों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। ऐक्सरे विज्ञान का क्या ही अद्भुत आविष्कार है, जिसके द्वारा प्राणी के बारीक से बारीक अंग की जांच की जा सकती है। वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक का कृत्रिम हृदय लगाकर दिल का ऑपरेशन करने में सफलता प्राप्त कर ली है। एक व्यक्ति का खून दूसरे के शरीर में डालना, एक आँख निकालकर दूसरे के लगा देना, खराब हड्डी निकालकर अच्छी लगा देना साधारण बात बन गई है। प्लेग, कॉलरा, चेचक आदि के टीके तथा इंजेक्सन लाखों की जानें बचा देते हैं। आधुनिक औषधियों और द्रव्यों का कहाँ तक बयान किया जाय। मरणासन्न मनुष्य भी कुछ काल तक जीवित रखा जा सकता है।

विज्ञान द्वारा ही हम मनोरंजन की सामग्रियाँ प्राप्त करते हैं। सिनेमा हमको चकित करने वाला कैसा चमत्कार है, जिसको देखकर दांतों तले उँगली दबानी पड़ती है। रेडियो भी कम अद्भुत वस्तु नहीं है। पलक जगते ही संगीत, नृत्य' भाषण तुरन्त ही हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं। विज्ञान ने वस्त्रों और भोजनों में भी कई चमत्कार कर दिखाए हैं। मशीन में कते बुने और सिले वस्त्र तो साधारण बात है। नाइलोन आदि ऐसे पदार्थ बनाए हैं जिनका कपड़ा प्रयोग में लाया जा सके। भोजन के विषय में विज्ञान ने विटामिन का सिद्धान्त देकर खाने के चुनाव में बड़ी सुविधा कर दी है।

विज्ञान ने अखिल-भूमण्डल में जागृति उत्पन्न कर दी है। उसी ने राष्ट्रीयता का बीज बोया है। वही राजनीतिक शासन का विधाता है और वही निर्बल को सबल बनाता है। विज्ञान की उन्नति के कारण ही आज मानव के चरण चन्द्रमा तक पहुँच चुके हैं।

मनुष्य के दिमाग में अच्छाई बुराई दोनों हैं। यदि एक ओर सुख है, तो दूसरी ओर दुख भी। विज्ञान ने हमारी धार्मिकता का विनाश कर दिया है। सामाजिक विषमता की बुराइयाँ भी विज्ञान की देन हैं। देश में समाज के अन्दर चोर-बाजारी, घूस, रिश्वत-खोरी, भ्रष्टाचार, अनैतिका, विज्ञान के इन साधनों से ही बढ़ी है। विज्ञान का दुरुपयोग किया जा रहा है। भलाई के लिये विज्ञान के चमत्कार काम में लाने की अपेक्षा उन्हें मानव ने विनाश की ओर धकेला है। आज हम देखते हैं कि बड़ी-बड़ी मशीनों के आविष्कारों ने हजारों लोगों को निकम्मा कर दिया है। रूस और अमरीका एक दूसरे से भयभीत होकर भयानक बम बनाने और परीक्षण करने में होड़ लगाए हुए हैं। विज्ञान के विभिन्न चमत्कार आदि आज संसार में न होते तो युद्ध का भय एक प्रतिशत रह जाता। जनता की पुकार और अपनी परेशानी के कारण विज्ञान को विनाश में लगाने वालों ने उसे निर्माण की ओर मोड़ने का विचार किया है। युद्ध की भयंकरता का विधाता विज्ञान को ही माना जा सकता है। आज विवेकशील मानव स्वार्थ से विमुख होकर विज्ञान को लोक-कल्याणकारिणी रूप दे रहा। योरुप की वैज्ञानिक जनता सभ्य होने का दावा करती है। वह तो बर्वर जातियों में भी निकृष्ट है। बर्वर एक दो मनुष्य के संहार से ही तृप्त हो जाते हैं। यह सम्पूर्ण जातियों और राष्ट्रों के विनाश से भी तृप्त नहीं होती। अतः सृष्टि के वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे आविष्कारों को जन्म दें, जिनसे मानव-जाति का भला हो, वह समृद्ध और सुखी बने। साथ ही देश की विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति हो सके।

२७. विद्यार्थी और अनुशान (छात्र समस्या का समाधान)

रूपरेखा

१. प्रस्तावना, २. विद्यार्थी का कर्तव्य, ३. अनुशासन की रूपरेखा, ४. अनुशासन से लाभ, ५. अनुशासन मानने में बाधाएँ, ६. उपसंहार।

जीवन में विद्यार्थी-जीवन की सफलता का सर्वाधिक महत्व है, इसी जीवन की सफलता पर भावी जीवन की सफलता निर्भर रहती है। जिसका यह जीवन सुन्दर तथा उचित ढंग से बीतता है, उसका शेष जीवन स्वतः सफल बनता चला आता है। इस जीवन को सुयोग्य बनाने में अनुशासन का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुशासन ही वह धन है जो व्यक्ति को सुखी बनाता है। जो विद्यार्थी जीवन से उचित उनुशासन में रहकर समय व्यतीत करता है, उसका जीवन-क्रम एक ऐसे व्यवस्थित तथा सफल मार्ग पर चलने का अभ्यासी हो जाता है कि विद्यार्थी-जीवन में तो सफलता और

सम्मान पाता ही है, भविष्य के लिए मार्ग-निर्धारण में भी सफल होता है। उसका जीवन उचित अनुशासन में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। वह उचित ढंग से कार्य करने का सम्मानित जीवन बिताने का तथा अनेक प्रकार की बुराइयों से बचने का मार्ग अपना लेता है। जीवन का अनुशासन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनुशासन का विद्यार्थी जीवन में अत्यधिक महत्व है।

विद्यार्थी-जीवन की अवस्था—पाँच वर्ष से लेकर पच्चीस वर्ष तक। यही आयु है, जब मनुष्य अपने जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा ग्रहण करता है। विविध प्रकार का ज्ञान इसी जीवन में प्राप्त किया जाता है। ये ज्ञान मुख्यतया और अनुकरण से दूसरे पुस्तकों के अध्ययन और मनन चिन्तन से। पुस्तकीय ज्ञान की परीक्षाएँ समयानुसार लिखित रूप में ली जाती हैं तथा अन्य प्रकार के ज्ञान की हमें दैनिक जीवन में निरन्तर आवश्यकता पड़ती रहती है, विद्यार्थी को उनके अभिभावक बारम्बार पढ़ने को कहते हैं, परन्तु उसका चंचल मन तथा क्रीड़ाप्रिय प्रवृत्तियाँ उसे दूसरी ओर खींचती हैं। ऐसी दशा में अनुशासन ही वह अस्त्र है जो उचित रूप में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर देता है। अनुशासन मानने की भावना के निर्बल रहने पर विद्यार्थी का मन विभिन्न प्रकार की विपथगामी प्रवृत्तियों का शिकार बन जाता है। परिणाम यह होता है कि वह अपने कर्तव्य का पालन उचित रूप से नहीं कर पाता। उसके प्रथम कर्तव्य, ज्ञानार्जन में अनुशासनहीनता सबसे बड़ी बाधा सिद्ध होती है। उसका दूसरा कर्तव्य है—स्वास्थ्य बनाना। अनुशासनहीनता के कारण स्वास्थ्य भी ठीक ढंग से नहीं बन पाता फलतः विद्यार्थी का कोई भी कर्तव्य बिना अनुशासन के पूरा नहीं हो पाता।

सम्बन्धित नियमों का पालन, गुरुजनों की आवश्यक तथा उपयोगी आज्ञाओं का मानना तथा अपने से छोटों और बड़ों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना आदि अनुशासन में आते हैं। जीवन का वास्तविक निर्माण विद्यार्थी जीवन में ही होता है, क्योंकि यह ऐसी अवस्था होती है, जब मन में संस्कार ग्रहण की क्षमता अधिक होती है। साथ ही साथ भावुकता भी अधिक रहती है। इस विद्यार्थी जीवन में विवेक शक्ति स्वल्प कार्य करती है। अतः दूरदर्शिता का अभाव स्वाभाविक होता है, ऐसी दशा में अनुशासन उसे ठीक मार्ग पर ले जाने में सहायक होता है। अनेक बातों को उसे अनुशासन के कारण मानना पड़ता है, जिसका उसके मन के अनुसार कोई ठोस लाभ नहीं दीखता, पर भविष्य का परिणाम तो लाभकारी होता है। यह जीवन ऐसी आस्था में चलता है जब दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने का पूरा अवसर रहता है। यह लाम अनुशासन में रहकर उठाया जा सकता है। परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करना अनशासन के कारण सरल होता है। अनुशासित लड़के अपने मन को अध्ययन में लगाने के अभ्यस्त हो जाते हैं जिससे उनका अध्ययन ठोस और अच्छा

होता है तथा परीक्षा में सफलता मिलती है। अतः विद्यार्थी का कर्तव्य है कि अनुशासन में रह कर कार्य करें।

अनुशासन मानने से जीवन में व्यवस्था का वातावरण बनता है। जो लोग अनुशासन नहीं मानते, उनको अपने मन की चंचलता को बनाने में सफलता नहीं मिल पाती तथा उसी के कारण वे अपने अध्ययन को सुचारु रूप से पूर्ण नहीं कर पाते। पहले तो मन पढ़ने में स्वयं लगेगा नहीं और यदि दिखाने के लिए बैठेंगे भी, तो मन कहीं दूसरी जगह घूमता रहेगा और विषय ज्ञान नहीं होगा। फलतः बुद्धि पाठ्य-विषयों में प्रवेश ही नहीं करेगी और फिर सब धीरे-धीरे पढ़ने से भागने लगेगा। ऐसी दशा में मन को प्रयासपूर्वक लगाना पड़ता है और कालान्तर में वह पाठ्य विषयों को ग्रहण करने लगता है फिर उसे पठन-पठान में आनन्द आने लगता है। आगे चलकर विषयों का अच्छा ज्ञान होने लगता है और परीक्षओं में अच्छी सफलता मिलती है। यह कार्य अनुशासन के बिना दुस्साध्य होता है। अनुशासन से दैनिक जीवन में व्यवस्था आ जाती है। इसके द्वारा अनेक गुणों का विकास होता है। नियमित रूप से कार्य करने में क्षमता का विकास होता है। अनुशासन द्वारा कर्तव्य और अधिकार का समुचित ज्ञान होता है। यह एक ऐसा गुण है जिससे मनुष्य अधिक सर्वप्रिय बन जाता है। अनुशासित विद्यार्थी के लिए सबकी सद्भावनाएँ स्वभावतया बनी रहती हैं। अनुशासन सांसारिक जीवन को सुन्दरता से चलाने में सहायक होता है। संक्षेप में अनुशासन जीवन में रस उत्पन्न करके इसका उचित विकास करता है। परिवार में अनुशासन मानने की परम्परा बन जाती है जिससे व्यक्ति गृह कलह से बच जाता है। इस प्रकार से विद्यार्थियों को अनुशासन से अनेक लाभ होते हैं ठीक ही कहा गया है कि अनुशासन ही जीवन है।

विद्यार्थी जीवन में कुछ ऐसी बाधाएँ आ जाती हैं जो विद्यार्थियों को अनुशासित नहीं रहने देतीं। जैसाकि कहा जा चुका है प्रथम बाधा मन को चंचलता के कारण आती है। विद्यार्थी-समुदाय का मन अनुभवी नहीं होता। अतः गुरुजनों की आज्ञाएँ उसे दबाब जैसी ज्ञात होती हैं और विद्यालयों के नियम कारागार के नियम जैसे। वह उन सभी बन्धनों से मुक्ति अवश्य चाहता है, चाहे परिणाम कुछ भी हो इसके लिए उसे अनुशासन प्रिय बनना है। वर्तमान युग में प्रजातन्त्र की भावना के विकास के साथ अनेक संगठनों की स्थापना हुई और स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में यूनियनों का संगठन बना। अध्यापकों में भी कुछ ऐसे लोग हैं जो अनेक प्रकार से अनुशासन के कार्य में बाधक बन जाते हैं। मजदूरों और मालिकों जैसा सम्बन्ध छात्रों और अधिकारियों तथा अध्यापकों में मान लिया जाता है। अतः अनुशासन के लिए स्थान तो नहीं रह जाता। छात्रों की अनुशासनहीनता इतनी बढ़ जाती है कि वे अपना तथा संस्था दोनों का अहित करते हैं। धीरे-धीरे कतिपय छात्रों को राजनीति का ज्ञान रखना आवश्यक है पर राजनीतिक दाँव-पेच का पेशा बनाकर

अपने मूल कर्तव्य को भूल जाना हानिकारक होता है। ऐसी स्थिति अनुशासनहीनता में ही उत्पन्न होती है।

सिनेमा तथा अन्य मनोरंजन के साधनों से ज्यों-ज्यों छात्रों का परिचय बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उनमें अनेक प्रकार की अनुशासनहीनताएँ भी बढ़ती जाती हैं। अनुशासन के मार्ग में सहशिक्षा से भी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं; क्योंकि मनोवृत्तियों की धारा अनेक परिस्थितियों के कारण संयत नहीं रह पाती। पाश्चात्य सभ्यता का विकास और प्रसार अनुशासन को बिगाड़ने में सहायक हो रहा है। स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व की भावना अच्छी होते हुए भी विद्यार्थियों के लिए घातक सिद्ध हो रही है। आज का विद्यार्थी मानता है कि छात्र और अध्यापक का सम्बन्ध सामान्यतया कुछ समता जैसा है। उस पर गुरुओं के गौरव का अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ पाता। अपने भावी जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए विद्यार्थियों के लिये यह अति आवश्यक है कि वे अनुशासन में रहें, अनुशासन और सफलता का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। जहाँ अनुशासन है, वहीं सफलता है और जहाँ अनुशासनहीनता है, वहाँ असफलता है।

२८. 'करम प्रधान विश्व रचि राखा'

(१) भूमिका, (२) कर्म का रूप, (३) उसकी प्रधानता, (४) उसका प्रभाव, (५) उपसंहार।

भूमिका—कर्म ही जीवन है। जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त जीवन के साधनात्मक विविध रूप, चेतना की परिणत अवस्थिति, व्यावहारिक क्रिया-कलाप, शारीरिक स्पन्दन और बौद्धिक चिन्तन सभी कर्म की अवस्थाएँ हैं जो काल, स्थान और परिस्थिति भेद से विभिन्न रूप धारण करती हैं। अतः विश्व की वास्तविक स्थिति कर्ममय है। भारतीय विश्वास के आधार पर वर्तमान कर्मों की प्रेरणा भी पूर्व जन्म के कर्ममय श्रृंखला से आबद्ध रहती है। कहा गया है :

"पूर्व जन्मकृतं कर्मं तद्दैवं इति कथ्यते" का आधार भी कर्म है।

कर्म के व्यापक स्वरूप की विश्लेषणात्मक भावना से प्रेरित होकर ही गोस्वामी जी ने "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा" इस अर्धाली का प्रयोग किया। सृष्टि का अर्थ ही कर्म से संयुक्त है क्योंकि 'सृज्' धातु जिससे सृष्टि शब्द का निर्माण होता है कर्म की ही प्रतीकात्मक विवेचना है। अतः जब सृष्टि स्वयं कर्ममय है तो उसमें अवस्थित पशु-प्राणी, जीव-जन्तु यदि कर्ममय मार्गों का अनुसरण करें तो कोई विचित्र बात नहीं।

कर्म सृष्टि का आधार—सारी सृष्टि की अवस्थिति, सत, रज और तम तीन गुणों के आधार पर है, और ये गुण ही प्रकृति में वर्तमान समस्त तत्वों के विधायक तथा विकास के कारण है। अतः कर्म के तीन रूप होते हैं। (1) सात्विक-वृत्ति प्रधान कर्म, (ii) राजवृत्ति प्रधान कर्म, (iii) तामस-वृत्ति प्रधान कर्म। सात्विक-प्रवृत्ति प्रधान

कर्मों को ही दैवी सम्पदा भी कहा गया है। अतः करुणा, दया, क्षमा, तितिक्षा आदि सात्विक गुणों पर आश्रित कर्म, जो होते हैं वे सात्विक वृत्ति प्रधान कर्म कहे जाते हैं। समाज के शान्तिमय और सर्व सुखमय वातावरण के निर्माण में इनका विशेष हाथ रहता है। आगे चलकर मोक्ष के साधन भी इन्हीं के द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः उत्तम कोटि के ये ही कर्म हैं।

राजस-कर्मों की स्थिति सात्विक और तामस के मध्य की होती है, परन्तु अधिकतर सात्विक कर्मों की ही प्रधानता रहती है। करुणा, क्षमा, तितिक्षा आदि सात्विक भावों के साथ ही घृणा और क्रोध जैसे तामस भावों का भी इनमें सन्निवेश होता है। परन्तु राजस क्रोध और घृणा एवं तामस क्रोध और घृणा में अन्तर होता है आधार का। एक तो न्याय पर आधारित होता है और दूसरा अन्याय पर। यही कारण है कि किसी समाज के व्यावहारिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए राजस वृत्ति प्रधान कर्मों को ही विशिष्टता प्रदान की जाती है।

तामस वृत्ति प्रधान कर्म घृणा, द्वेष, कलह, अन्याय, अत्याचार, क्रोध आदि कलुषित मनोभावों के परिणामस्वरूप उद्तभुत होते हैं। ये समाज की अधोगति के कारण बनते हैं। समाज में इन कर्मों को सर्वथा हेय दृष्टि से देखा जाता है। हमारी पौराणिक कथाओं में जो राक्षसों के चित्र उपस्थित कर उनको निम्न श्रेणी में रखा गया है, उसके मूल में उनके कलुषित आचरण ही हैं। किसी भी देश में इस प्रकार के व्यक्ति घृणा के पात्र होते हैं। चोरी, डाका, व्यभिचार, परपीड़न आदि समाज विरोधी तत्व इस कर्म स्वरूप है। यही कारण है कि समाज की धारणा करने वाले तत्वों से समायुक्त धर्म की व्याख्या में इनका परिहार कर दिया जाता रहा है।

इस प्रकार से यह तीनों रूप ही विविध प्रकार से कल्पनावस्था, साधनावस्था और सिद्धावस्था में अवस्थित रहते हैं। सामान्य जीवन में भी हम देखते हैं कि हम जैसा कर्म करते हैं, उसी प्रकार उनका फल भी प्राप्त करते हैं। यदि हमारा कर्म बुरा होता है तो उसका परिणाम सर्वदा बुरा होता है। भले ही कोई जब तक चोरी में पकड़ा नहीं जाता तब तक सुख की रोटी खा ले, किन्तु चोरी का परिणाम तो उसके पकड़े जाने पर कारागार की चहारदीवारियों में प्राप्त होता। अतः यदि अच्छे कर्म यदि पहले अच्छे फलदायक न भी हों तो भी परिणाम शुभकारी होते हैं। किसी भी रोगी को खीर ज्वर में भले ही क्षण भर के लिए प्रसन्न बना दे, परन्तु परिणाम में वह रोग की वृद्धि का कारण बनेगी। कड़वी ओषधि का घूंट पहले कष्टदायी तो अवश्य होगा। परन्तु अन्त में रोग-मुख भी कर देगा। अतः कर्म की बिडम्बना पर विचार करना आवश्यक नहीं है। बल्कि कर्म करना आवश्यक है। गीता में भगवान कृष्ण ने इसलिए कहा है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन'

(कर्म ही करना चाहिए, फल की इच्छा नहीं करना चाहिए)

कर्म सर्वदा इच्छा रूपी पावक में आहुति बनकर आता है अतः श्रेष्ठ कर्म वह है जिससे इच्छा की निवृत्ति रहती है, अर्थात आसक्ति रहित कर्म ही श्रेयस्कर है। "योगः कर्मसु कौशलम्" वाक्य भी इसी ओर संकेत करता है।

कर्म का हमारे जीवन पर व्यापक प्रभाव है। कर्म-विहीन हमारा जीवन निष्क्रिय हो जाता है। हमको अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों के विकास के लिए कर्म आवश्यक है। कर्म के कारण ही जीवन की सारी सुविधाएँ जो आज प्राप्त हैं एकत्र हुई हैं। विज्ञान कर्म का साक्षात् प्रतीक है। हमारे यहाँ कर्म के महत्व को स्पष्ट करते हुए संस्कृत के नीतिकारों ने कहा था—

उद्योगेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुषुप्त सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगः॥

अर्थात् सभी कार्य उद्योग करने से ही सिद्ध होते हैं, कोरे मनोरथ से सम्भव नहीं हो सकते, जिस प्रकार सोये हुए सिंह के मुख में अपने आप पशु प्रवेश नहीं करते।

कहने का यह अर्थ है कि कर्म हमारे जीवन की उन्नति का महान् साधन है। हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से किसी भी प्रकार से हम उन्नति नहीं कर सकते। अतः आवश्यक है कि हम कर्म करें। इसके साथ ही साथ यदि हम तनिक और ध्यान दें तो हमें ज्ञात होगा कि धर्म के कारण ही हम जीवन धारण करते है। यदि संसार में कर्म का महत्व न होता तो संसार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता। अतः कर्म का जीवन पर यह व्यापक और गहरा प्रभाव किसी भी अवस्था में उपेक्षणीय नहीं। जिस क्षण इनकी उपेक्षा होगी उसी क्षण हम समाप्त हो जायेंगे।

कर्म का एक और स्वरूप होता है। जिसको कि साधना के क्षेत्र में निष्काम कर्म कहते हैं। इसका अर्थ हमें यह नहीं लगाना चाहिए कि कर्म करना श्रेयस्कर नहीं, क्योंकि कर्म ही बन्धन का मूल कारण है। वास्तव में इसका अर्थ है कि कर्म बिना किसी आसक्ति से करना चाहिए। कर्म का त्याग किसी भी अवस्था में सम्भव नहीं, क्योंकि हमारे ऐन्द्रिक कर्म तो सर्वदा होते ही रहेंगे। इस प्रकार कर्म जीवन की प्रत्येक स्थिति का प्रमुख तत्व है।

उपसंहार—अतः हम यह कह सकते हैं कि कर्म हमारी जीवन पद्धति का व्यवस्थापक वह तत्व है जिसमें हमारे व्यावहारिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, काल्पनिक, मानसिक समस्त व्यापार अवस्थिति पाते हैं। कर्म ही जीवन-विकास का प्रधान कारण है। आज तक सभ्यता का विकास, विज्ञान के विविध अन्वेषण, साधन के विविध पथों का निदर्शन, व्यवहार के विविध निर्माण सारी बातें ही कर्म की देन हैं। हमारे व्यक्तिगत और समष्ठिगत सारे सम्बन्ध कर्मों के द्वारा ही निर्धारित होते हैं। अतः गोस्वामी जी का यह विशुद्ध कर्म-विश्व को धारणा करना सर्वदा काम्य है।

२६· अपनी करनी, पार उतरनी

रूपरेखा

(१) भूमिका, (२) करनी की आवश्यकता, (३) स्वावलम्बन का साधन, (४) पार उतरने का वास्तविक अर्थ, (४) उपसंहार।

भूमिका—इस संसार को कर्मलोक कहा गया है। मनुष्य संसार में कर्म करने के लिए ही आता है। गोस्वामी जी ने कहा है—'करम प्रधान विश्व रचि राखा जो जस करे सो तस फल चाखा' अर्थात् विश्व में कर्म की प्रधानता है। संसार की सृष्टि के विषय में विभिन्न धर्मों के विभिन्न मत हैं और प्रत्येक धर्म-ग्रंथ अपने कर्म को सबसे प्राचीन मानते हैं। हर धर्म की मान्य पुस्तकों में सृष्टि-निर्माण का वर्णन मिलता है। सभी धार्मिक ग्रंथ इतना अवश्य मानते हैं कि मनुष्य कर्म करने के लिए ही संसार में आता है। दूसरी योनियाँ विगत जन्मों के कर्मों को भोगने के लिए अवतरित होती हैं ऐसा भारतीय सिद्धान्त है। सम्भवत: उसी कारण 'सबसे दुर्लभ मनुज शरीरा' कहा गया है। मनुष्य अपने कर्मों के आधार पर अपने भावी जीवन का निर्माण करता है। उसका भावी जीवन उसके वर्तमान कर्मों के आधार पर प्राप्त होता है। इसीलिए कहा गया है कि 'अपनी करनी पार उतरनी'।

उक्ति का अर्थ और महत्त्व—'अपनी करनी पार उतरनी' वाक्य का तात्पर्य है कि मनुष्य के सांसारिक जीवन के कई क्षेत्रों में दूसरों की करनी का फल भी प्राप्त हो जाता है। पर इस भवसागर से पार उतरने के लिए केवल अपनी ही करनी आवश्यक होती है। मनुष्य जितना ही कर्म करता है, उतना ही उसके मन का संस्कार होता जाता है, इस प्रकार से आध्यात्मिक कर्मों का संस्कार पुष्ट होने पर मनुष्य निष्काम कर्म करना प्रारम्भ करता है। इस प्रकार उसके मन का संस्कार मिलने लगता है और कालांतर में सांसारिक संस्कारों का अभाव हो जाता है, तब उसका जीव शुद्धात्मा का रूप प्राप्त कर लेता है। फलतः वह मोक्ष या परमपद का अधिकारी हो जाता है। इस प्रकार की स्थिति केवल अपने कर्मों से उत्पन्न हो सकती है। अतः 'अपनी करनी पार उतरनी' की उक्ति चरितार्थ हो जाती है।

कर्ममय विश्व—यही संसार कर्म-क्षेत्र माना गया है। पहले हम संसार में प्रत्यक्ष देखते हैं कि प्राणीमात्र को कर्म करना पड़ता है। पशु-पक्षी भी अपनी जीवन-यात्रा के लिए निरन्तर कर्म-निरत रहते हैं। प्रकृति स्वयं ही अविश्रान्त कर्म में लगी हुई है। नदियाँ निरन्तर बह रही हैं; झरने बराबर पर्वतों में झरा करते हैं; पवन की गति कभी बन्द नहीं होती है, सूर्य-चन्द्र का कार्यक्रम बराबर समयानुसार चला करता है—जाड़ा, गर्मी, बरसात हर वर्ष नियमित रूप से आते रहते हैं। इस प्रकार मनुष्य भी जन्म के बाद से क्रमशः कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। जीवन धारण करना भी कर्म के बिना असम्भव है। पर कर्म सामान्यतः उन कार्यों को कहते हैं जिनका सम्बन्ध मानव जीवन के विशेष क्रम से होता है। नित्य-कर्म से लेकर बड़े

काम को कर्म कहा जा सकता है। किन्तु 'करनी' शब्द का प्रयोग महत्वपूर्ण धार्मिक कार्यों के लिए किया जाता है। इसीलिए कहावत है, 'जैसी करनी वैसी भरनी'। इस प्रकार के धार्मिक कार्यों के करने की नितान्त आवश्यकता कही गई है। करनी में वे कर्म आयेंगे जिनमें परोपकार तथा 'बहुजन' हिताय और 'बहुजन सुखाय' की भावना मिलती है। इस प्रकार की करनी आवश्यक है और ऐसे ही कार्यों से मनुष्य के जीवन का बेड़ा पार होने लगता है यदि मनुष्य अपनी करनी को उचित ढंग से करता रहे तो निश्चय ही कभी न कभी उसे सफलता मिलेगी। कर्म जिस दृष्टि से किये जाते हैं उस दृष्टि से सफलता भी मिलती है। इस प्रकार आध्यात्मिक कार्य का प्रभाव मनुष्य की आध्यात्मिक सफलता पर पड़ता है। अतः यदि मनुष्य यह चाहता है कि वह आवागमन के चक्र से छुटकारा पा जाय तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह तदनुकूल कर्म करे तथा अपनी आत्मा को शुद्ध करे।

स्वावलम्बन की भावना—इस उक्ति का दूसरा पक्ष यह है कि मनुष्य केवल अपने ही कर्त्तव्यों से सफल हो सकता है। इसका अभिप्राय यह कि परावलम्बी होने से मनुष्य का काम कभी नहीं चल सकता। उसे सदैव ठोकरें ही खानी पड़ती हैं। उसे निरन्तर स्वावलम्बी होने का प्रयास करना चाहिए। स्वावलम्बी मनुष्य अपनी कर्त्तव्यपरायणता के आधार पर अपना जीवन संसार में तो सफल बनाता ही है साथ ही भावी जीवन के लिए भाग्य का निर्माण भी करता है। मनुष्य के कर्मों की तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं—क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध कर्म। क्रियमाण में किए हुए कर्मों का तत्काल या कुछ समय के भीतर फल प्राप्त होता है। दूसरा संचित कर्म-फल होता है, अर्थात् पूर्व जन्म में किये कर्मों के वे फल जिनका उस जन्म में भोग नहीं हो सकता है। तीसरी है प्रारब्ध-कर्म यानी वे कर्म-फल जिनका ज्ञान नहीं है या जिनके विषय निश्चित नहीं है। इनमें दो अन्तिम प्रकार के कम-फलों को भाग्यवादी भाग्य में सन्निहित मानते हैं। अतः इसका तात्पर्य हुआ कि भाग्य भी मनुष्य के ही कर्मों से जो लोग पूर्व-जन्म में विश्वास करते हैं, उनका मत है कि पूव, जन्म में किया गया कर्म ही भाग्य है। अतः भाग्य को मनुष्य स्वयं बनाता है। इस सिद्धान्त में पुनर्जन्म की मान्यता है। किन्तु सबका ध्येय संस्कारों से सम्बन्धित है। यही संस्कार का प्रभाव है, जो मनुष्य के कर्मों को नियन्त्रित करता रहता है। इसीलिए भारतीयों दर्शनों ने निष्काम कर्म पर बल दिया है ताकि संस्कार न बन सकें। कारण यह है कि यदि कर्म अच्छे होंगे, तो उनका फल सुख के रूप में प्राप्त होगा यदि बुरे होंगे तो उनका फल दुख के रूप में प्राप्त होगा। इस प्रकार कर्म (करनी) की अच्छाई सदा वांछित रहती है।

कर्म के आधार पर मोक्ष-प्राप्ति—पार उतरने का वास्तविक अर्थ है भव-सागर से पार उतारना अर्थात् आवागमन से मुक्त होना। इसी के साधनों की चर्चा

पूर्व प्रसंग में की गई है । मोक्ष ही ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य आवागमन से छुटकारा पाता है । स्वर्ग भी सुख-भोग के स्थान के रूप में कल्पित किया गया है, क्योंकि कहा गया है—'क्षीणे पुण्ये मृत्यु लोके विशन्ति' अर्थात् प्राणी पुण्य के क्षीण (समाप्त) हो जाने पर फिर संसार में आ जाता है । अतः वह पार उतर नहीं पाता । इस प्रकार पार उतरने का अर्थ मोक्ष प्राप्त करना ही मानना समीचीन है ।

उपसंहार—मनुष्य की विवेकशीलता और ज्ञान उसकी समाज से स्वीकृत नियमों पर चलने की प्रेरणा देता है । वह अपने विवेक द्वारा यह निश्चय करता है कि कौन कार्य करने योग्य है और कौन से त्याज्य है ? किन कार्यों का फल मानव-जीवन को ऊपर उठाने वाला होता है तथा किन कर्मों का फल उसे गिराने वाला होता है ? इन सभी बातों का निर्णय धर्मशास्त्रों के आधार पर तथा मनुष्य के विवेक द्वारा होता है जो मनुष्य अपने जीवन में इन बातों पर ध्यान नहीं दे पाता वह निश्चय मन को चंचलता का शिकार होकर पथभ्रष्ट हो जाता है । अतः उसकी करनी बन नहीं पाती । जिसकी करनी बिगड़ जाती है, उसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं हो पाता और न वह पार हो पाता है ।

---

३०. लोकतन्त्र में विरोधी दलों का महत्व

रूपरेखा

(१) राजनीतिक दलों का महत्व, (२) लोकतन्त्र में दलीय-व्यवस्था का स्वरूप, (३) लोकतन्त्र और विरोधी दल, (४) विरोधी दलों की भूमिका—उपसंहार ।

भूमिका—आधुनिक युग लोकतन्त्र का युग है । जिन देशों में लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को नहीं अपनाया गया है, वे भी लोकतन्त्र का दम भरते हैं । लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन है । यहाँ शासन का कार्य जनता की इच्छा पर निर्भर करता है । जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती है । प्रत्येक विषय पर जनता की इच्छा की जानकारी करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है । यही कारण है कि लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन किया जाता है और आम चुनाव में जनता को इस बात का अवसर दिया जाता है कि वह किसी विशेष राजनीतिक दल को सत्तारूढ़ करके उस दल की नीतियों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करे । यदि वह राजनीतिक दल जनता की इच्छाओं के अनुसार कार्य नहीं करता तो अगले आम चुनाव में उसे पराजय का मुख देखना पड़ता है । इस प्रकार शासन का कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है और दलीय व्यवस्था के फलस्वरूप उसका स्वरूप लोकतन्त्रात्मक बना रहता है ।

राजनीतिक दलों का महत्व—लोकतन्त्र में विरोधी दल की भूमिका पर प्रकाश डालने के पूर्व हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम जान लें कि लोकतन्त्रीय में राजनीतिक दल ही वह आधार हैं, जिन पर निर्भर करके शासन का ढाँचा खड़ा किया जा सकता है। वे लोकमत का निर्माण करने में सहायक होते हैं। सरकार का निर्माण उनकी विजय और पराजय पर निर्भर करता है। राजनीतिक दल शासन-सत्ता को मर्यादित करते हैं और राजनीतिक चेतना का प्रसार करते हैं। वे जनता और शासन के मध्य सम्पर्क बनाये रखने का साधन है। शासन को दृढ़ता प्रदान करना भी राजनीतिक दलों का ही कार्य है।

लोकतन्त्र में दलीय व्यवस्था का स्वरूप—ब्राइस का मत है, "राजनीतिक दल जनतन्त्र से कहीं अधिक प्राचीन है।" आधुनिक लोकतन्त्रात्मक युग में राजनीतिक दलों के स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार से हैं। कुछ राजनीतिक दल धार्मिक और साम्प्रदायिक भावनाओं से प्रेरित होकर निर्मित किये जाते हैं, कुछ पर वातावरण सम्बन्धी प्रभाव होता है, कुछ मानव के रूढ़िवादी और प्रगतिवादी स्वभाव के आधार पर निर्मित होते हैं, परन्तु अधिकतर राजनीतिक दलों का निर्माण आर्थिक हितों को ही ध्यान में रखकर किया जाता है। लोकतन्त्रात्मक राज्यों में दलीय व्यवस्था का रूप भी अलग-अलग दिखलायी पड़ता है। जिन देशों में एक ही राजनीतिक दल है, वे भी अपने को लोकतन्त्रवादी कहते हैं। सोवियत संघ में केवल साम्यवादी दल ही है परन्तु सोवियत संघ भी लोकतन्त्रवादी गणराज्य कहलाता है। कुछ राज्यों में द्वि-दलीय व्यवस्था के दर्शन होते हैं, परन्तु आधुनिक युग के अधिकांश राज्यों में बहुदलीय व्यवस्था दिखलाई पड़ती है। द्वि-दलीय व्यवस्था वाले राज्यों में एक सत्तारूढ़ दल होता है और दूसरा विरोधी दल। बहु-दलीय व्यवस्था वाले राज्यों में एक सत्तारूढ़ दल होता है और अन्य विरोधी दल। कभी-कभी कुछ दल मिलकर शासन का सूत्र अपने हाथ में सँभालते हैं शेष विरोधी दल के रूप में कार्य करते हैं।

लोकतन्त्र और विरोधी दल—यह ठीक है कि आधुनिक युग में जिन राज्यों में एक राजनीतिक दल है वे भी लोकतन्त्रात्मक राज्य होने का दम भरते हैं परन्तु विरोधी दल के अभाव में सच्चे लोकतन्त्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। लोकतन्त्र इसी भावना पर निर्भर करता है कि "मैं जो कुछ विचार कर रहा हूँ वह ठीक है, परन्तु हो सकता है कि वह गलत हों या उसमें कुछ कमियाँ हों।" जब इन कमियों या गलतियों की ओर इंगित करने वाला कोई सबल विरोधी दल ही न हो तो कैसा लोकतन्त्र ? लोकतन्त्र शासन-व्यवस्था में सत्तारूढ़ दल शासन की नैय्या का खेवक होता है, परन्तु विरोधी दल उस नाव को ठीक से चलाने में सहायक होता है। यदि विरोधी दल न हो तो थपेड़ों से नाव के उलट जाने का भय है। वास्तव में विरोधी दल के अस्तित्व के बिना लोकतन्त्र की कल्पना करना उचित नहीं है।

विरोधी दलों का अस्तित्व मानव-स्वभाव के अनुकूल है। मानव में यह

स्वाभाविक गुण होता है कि वह स्वयं विचार करता है और जब वह स्वयं विचार करता है तो दूसरों के विचारों से उसके विचार बहुधा भिन्न होते हैं। इस विभिन्नता को शासन के संचालन में कार्य-रूप देने का कार्य विरोधी दल ही करते हैं।

विरोधी दल, सत्तारूढ़ दल की निरंकुशता पर अंकुश लगाने का कार्य भी करते हैं। विरोधी दल शासन की स्वेच्छारिता पर रोक लगाते हुए शासन में संतुलन बनाये रखते हैं। विरोधी दल का अस्तित्व राज्य के विद्रोह से भी रक्षा करता है, क्योंकि यदि जनता में सरकार के विरुद्ध अविश्वास व्याप्त हो जाता है तो विरोधी दल दूसरी सरकार बनाने के हेतु तत्पर रहता है। लॉवेल ने लिखा है, "एक मान्यता प्राप्त विरोधी दल की स्थायी उपस्थिति से निरंकुशता के मार्ग में बाधा पड़ती है।"

श्रेष्ठ कानूनों के निर्माण के लिए भी विरोधी दल का होना आवश्यक है। कानूनों के निर्माण में विरोधी दल की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रहती है। श्रेष्ठ कानूनों का निर्माण तभी सम्भव है जब कानूनों के गुणों व दोषों पर उचित रूप से विचार हो। व्यवस्थापिका में विद्यमान विरोधी दल के सदस्य सत्तारूढ़ दल द्वारा प्रस्तुत किये गये विधेयकों की बाल की खाल उधेड़ने के हेतु तत्पर रहते हैं। इस वाद-विवाद से विधेयकों के सभी दोष सामने आ जाते हैं और श्रेष्ठ कानूनों का निर्माण सम्भव होता है।

विरोधी दल शासन को दृढ़ता प्रदान करने में सहायक होते हैं। वे सार्वजनिक शिक्षा के साधन बनते हैं। अपनी नीतियों से वे जनता को अवगत कराते हैं, साथ ही सत्तारूढ़ की नीतियों की खामियों पर खुलकर प्रहार करते हैं। विरोधी दल शासन का ध्यान छोटी से छोटी जन-समस्याओं की ओर आकर्षित करने में तत्पर रहते हैं। सत्य तो यह है कि यदि विरोधी दलों का अस्तित्व न हो तो सरकार को बहुत सी बातों की जानकारी हो हीं न सके और यदि जानकारी हो भी जाय तो सत्तारूढ़ दल अपनी कमजोरियों को इस हद तक छिपाता रहे कि राष्ट्र का अहित होने लगे। इस दृष्टि से विरोधी दलों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

विरोधी दल की भूमिका—लोकतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था में विरोधी दलों का महत्व जितना अधिक है उनकी भूमिका भी उतनी ही अधिक उपयोगी है। विरोधी दल का दायित्व अत्यधिक है। इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए विरोधी दल को सदैव तत्पर रहना होता है। विरोधी दल का कार्य है कि वह सत्तारूढ़ दल की कमियों को बतलाकर उन्हें दूर करने में उसे सहयोग प्रदान करे। विरोधी दल केवल मात्र सत्तारूढ़ दल का आलोक ही नहीं होता बल्कि शासन को चलाने में सहयोग देने वाला भी होता है। केवल आलोचना मात्र ही करना विरोधी दल का दायित्व नहीं है, बल्कि रचनात्मक सुझावों के द्वारा शासन को दृढ़ बनाना भी है और इस दायित्व का निवाह करने हेतु विरोधी दल को सदैव तत्पर रहना चाहिए।

विरोधी दल की भूमिका एक सजग प्रहरी की भूमिका है। एक सजग प्रहरी

चोर या डाकुओं के आने पर केवल शोरगुल ही नहीं माचाता बल्कि उनका सामना करने के लिए हर समय तैयार रहता है। इस प्रकार विरोधी दल केवल मात्र शासन की आलोचना ही नहीं करता बल्कि राष्ट्रोत्थान में सहयोग प्रदान करता है, साथ ही विदेशी आक्रमण के समय प्राण-प्रण से उसका मुकाबला करने हेतु तत्पर रहता है।

उपसंहार—संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि विरोधी दल सदैव इस भावना से कार्य करते हैं कि कल उन्हें सत्तारूढ़ होना है और सत्तारूढ़ होने पर जो आज सत्तारूढ़ दल है उसका सहयोग प्राप्त करना है। यह भावना ही लोकतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था में विरोधी दल की भूमिका को महत्वपूर्ण बना देती है। लोकतन्त्र विचारों की विभिन्नता में एकता को प्रदर्शित करता है। विचारों की विभिन्नता विरोधी दल के अभाव में सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यह कहा जाता है कि लोकतन्त्र का ढाँचा विरोधी दल के अभाव में खड़ा ही नहीं रह सकता तथा यदि कोई ऐसा ढाँचा खड़ा किया जाता है तो वह सच्चे अर्थों में लोकतन्त्र नहीं है बल्कि तानाशाही का दूसरा रूप है।